Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

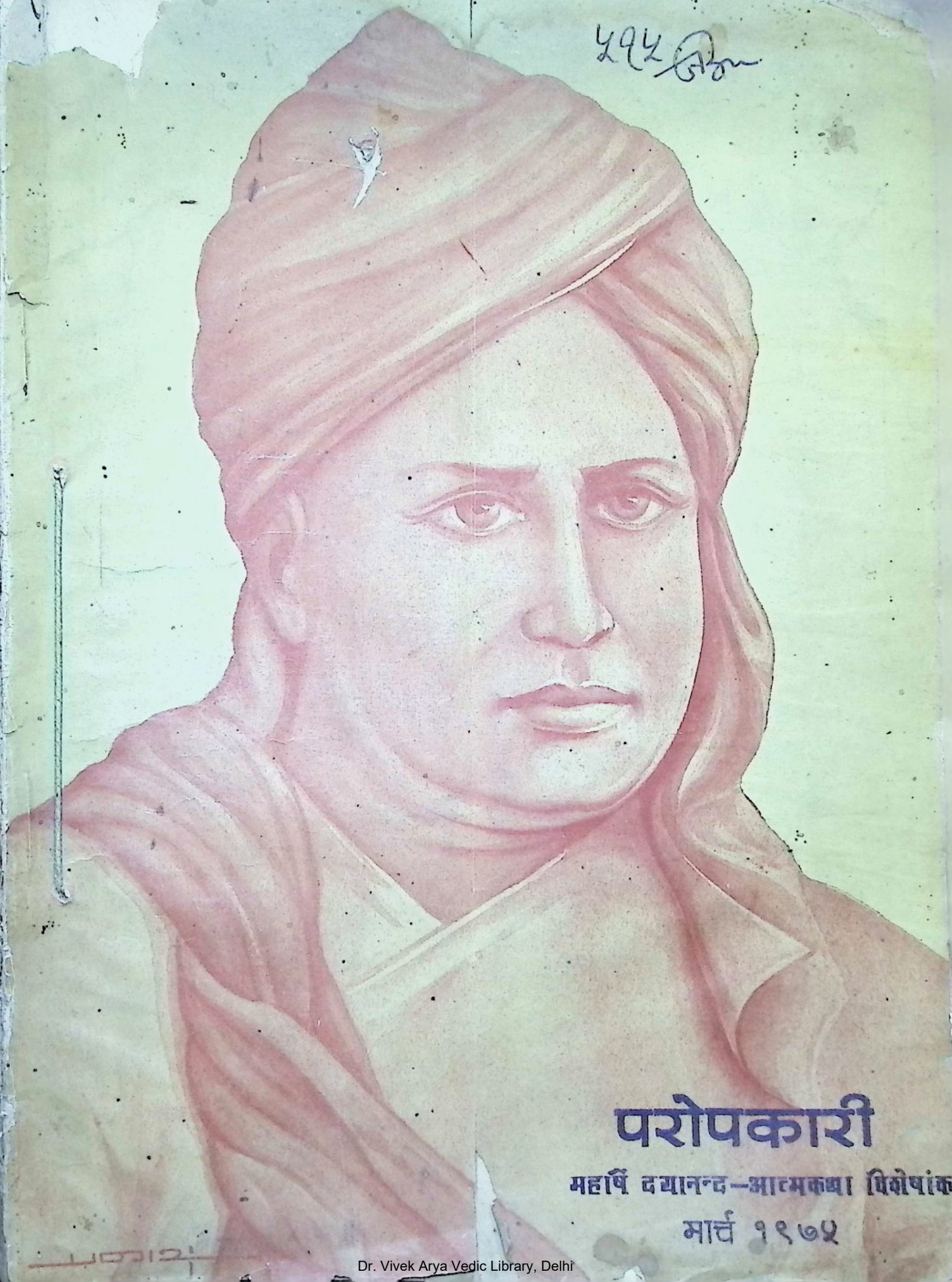

परोपकारी

महर्षि दयानन्द–आत्मकथा विशेषांक

मार्च १९७५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ओ३म्

महर्षिचित्रावली, पूर्णता की ओर—

सिर्फ १०० दानी महानुभावों की आवश्यकता है जो कि ऋषि-उद्यान-स्थित सरस्वतीभवन में बन रही चित्रावली के लिये प्रत्येक १०१) रु० दान दे सकें

आर्यजगत् को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि महर्षिचित्रावली अब पूर्णता की ओर अग्रसर है। महर्षि के श्रद्धालु आर्यों द्वारा दिये गये सहयोग से ही यह सम्भव होगा कि यह चित्रावली शीघ्र पूरी हो। अब मात्र १०० ऐसे श्रद्धालुओं को अपना सहयोग प्रदान करना शेष है जो प्रत्येक १०१) रु० दान दे सकें। इस राशि के प्राप्त होने से शेष रहे चित्र शीघ्र ही पूरे करवाये जा सकेंगे।

आर्यों का यह नियम रहा है कि वे शुरू किये गये शुभ-कार्यों में अपना भरपूर सहयोग प्रदान करके उसे पूर्ण करते हैं। इसी विश्वास के साथ आपसे निवेदन है कि इस कार्य में अपना अमूल्य दान देकर चित्रावली को पूर्ण करने में सहयोग प्रदान करें ताकि आर्यसमाज-स्थापना-शताब्दी के शुभ दिवस १२ अप्रेल तक यह चित्रावली पूर्ण करवा दी जाय, हमारे इस निश्चय की पूर्ति में कृपया दान राशि शीघ्र प्रेषित कर अनुगृहीत करें।

चित्रावली हेतु अब तक प्राप्त दान का विवरण

	पूर्व पत्रों में प्रकाशित दान-राशि का योग	रु० १३,६९८=५२
१०६.	कुमारी अनुपमा बिरला, अमृतसर	१०१=००
१०७.	कुमारी जयश्री बिरला, अमृतसर	१०१=००
१०८.	कुमारी अंजलि बिरला, अमृतसर	१०१=००
१०९.	डॉ० सरस्वती कुमारी पण्डित बड़ौदा, स्व० श्री शान्तिप्रिय जी बड़ौदा की स्मृति में	१०१=००
११०.	श्री लाला गुरदत्तामल जी डांग की स्मृति में श्री भूमि डांग कलकत्ता द्वारा	२०१=००
१११.	श्री सुआलाल जी मथुराप्रसाद जी नवाल राजगढ़	१०१=००
११०.	श्री मदनलाल जी मलिक, फॉरकशन सुपरिन्टेन्डेन्ट, आसाम ऑइल कं लि., डिगबोई (आसाम)	१०१=००
१११.	श्री बाबूलाल जी बियाणी, मीरा जी, कौमुदी, मंजुषा एवम् सुषमा, बसंत बिहार—दिल्ली	२५०=००

ऋषि के हस्तलेखों की सुरक्षार्थ २० हजार रुपयों की आवश्यकता

महर्षि के हस्तलेखों के जीर्ण-शीर्ण हो जाने के कारण उनके नष्ट हो जाने का खतरा हो गया है। उन्हें सुरक्षित रखने के लिए उनका पटलीकरण (Lamination) करवाना अत्यावश्यक है। इस कार्य हेतु आवश्यक राशि के लिये आर्यजगत से निवेदन है कि वे अपने मुक्त हस्त से इस कार्य हेतु दान दें। महर्षि के विभिन्न ग्रन्थों के हस्तलेखों के कुल पृष्ठों की संख्या लगभग २०,००० है। इस पटलीकरण के कार्य में लगभग ३०,००० रुपया व्यय होने का अनुमान है। अतः आर्यजनों से निवेदन है कि आर्यसमाज-स्थापना-शताब्दी वर्ष में इस शुभ कार्य में अधिक से अधिक धनराशि प्रेषित कर आर्यों की ऐतिहासिक धरोहर को सुरक्षित रखने में अपना सहयोग प्रदान करें। अपना दान निम्नलिखित पते पर नकद, ड्राफ्ट या चैक द्वारा प्रेषित करें:—

☐ मंत्री परोपकारिणी सभा
दयानन्द आश्रम, आर्यसमाज-मार्ग
अजमेर-305001.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

परोपकारी

महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा का मुख पत्र

महर्षि दयानन्द स्मारक ट्रस्ट टंकारा का मुखपत्र 'टंकारापत्रिका' भी इसमें सम्मिलित है

वर्ष : १७ अंक : ५

फाल्गुन-चैत्र २०३१
मार्च १९७५
दयानन्दाब्द १५०
सृष्टि-सम्वत् १,९६,०८,५३,०७५

इस अंक का मूल्य २)५० रुपये

वार्षिक मूल्य : आठ रुपये

सम्पादक
डॉ० मानकरण शारदा
श्रीकरण शारदा

प्रबन्ध सम्पादक
डॉ० भवानी लाल भारतीय
आदरी सम्पादक
डॉ० शिवपूजन सिंह कुशवाह

मुद्रक
सतीशचन्द्र शुक्ल
प्रबन्धकर्त्ता, वैदिक-यन्त्रालय
आर्यसमाज-मार्ग, अजमेर—३०५००१

परोपकारी

महर्षि दयानन्द आत्मकथा विशेषांक

मार्च १९७५

परोपकारी का यह अंक

आर्य जगत के सम्मुख परोपकारी का महर्षि दयानन्द-आत्मकथा विशेषांक प्रस्तुत करते हुए हमें अत्यन्त प्रसन्नता है। महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्वहस्ताक्षरांकित आत्म कथन का हस्तलेख उनके पुराने रेकर्ड में सभा को उपलब्ध हुआ है जिसे संग्रह के लिये इस अंक में प्रस्तुत किया जा रहा है। मूल हस्त-लेखों की प्रतिलिपियों सहित इनका हिन्दी प्रस्तुतिकरण एवम् 'थियोसोफिस्ट' पत्र में प्रकाशित इसके अंग्रेजी अनुवाद को भी प्रबुद्ध पाठकों के लिये एक अनुपम भेंट के रूप में छापा जा रहा है।

आर्यसमाज स्थापना शताब्दी वर्ष के उपलक्ष्य में 'परोपकारी' द्वारा प्रस्तुत यह दूसरा विशेषांक है। प्रथम विशेषांक 'ऋषि-मेला विशेषांक' के रूप में प्रस्तुत किया गया था जिसका आर्यजगत की ओर से अपूर्व स्वागत किया गया है। हमें आशा है प्रबुद्ध पाठक वर्ग इस अंक को भी पसंद करेंगे।

हमें यह घोषणा करते हुए अत्यन्त हर्ष है कि परोपकारी का आगामी अंक (अप्रेल अंक) भी विशेषांक के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। इसमें आपके सम्मुख महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा का का विगत ९० वर्षों का सचित्र इतिहास प्रस्तुत किया जायेगा।

इन अंकों के सम्पादन में मेरे सहयोगी, डॉक्टर भवानीलाल जी भारतीय ने जो अथक परिश्रम किया है, तदर्थ मैं उनका हृदय से आभारी हूँ।

श्रीकरण शारदा

सम्पादक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आर्य समाज स्थापना शताब्दी वर्ष के उपलक्ष्य में

परोपकारिणी सभा के महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

ऋग्वेद दशम मण्डल का भाष्य एवम् भाषाभाष्य

प्रथम खण्ड लागत मूल्य पर उपलब्ध है

आर्य जगत् को यह सूचना देते हुए परम हर्ष होता है कि प्रसिद्ध आर्य विद्वान् स्वामी ब्रह्ममुनि जी द्वारा ऋग्वेद के दशम् मण्डल के १ से ८० सूक्त तक का भाष्य एवम् भाषा भाष्य छप कर तैयार है! स्वामी ब्रह्ममुनिजी ने वर्षों के परिश्रम से पूर्णतया स्वामी दयानन्द जी सरस्वती द्वारा निर्दिष्ट सिद्धान्तों पर इन्हें तैयार किया है। प्रचार की दृष्टि से इन ग्रन्थों का मूल्य लागत मात्र ही रखा गया है।

- **ऋग्वेद भाष्य (प्रथम खण्ड) :**
  बढ़िया सुपर कलैण्डर पेपर पर छपे ७०० पृष्ठों के इस अनुपम ग्रन्थ का मूल्य मात्र ३०) रुपया।
- **ऋग्वेद भाषाभाष्य (प्रथम खण्ड) :**
  सुपर कलैण्डर पेपर पर छपे ३६० पृष्ठ, मूल्य मात्र पन्द्रह रुपया!
- १२ अप्रैल १९७५ तक अपने आदेश प्रेषित करने वाले आर्य जनों को इसी मूल्य पर इन ग्रन्थों के साथ स्वामी ब्रह्ममुनि जी कृत अथर्ववेद मुनि भाष्य की एक प्रति निःशुल्क भेंट की जाएगी।
- वैदिक यन्त्रालय प्रकाशन योजना के सदस्यों को उपरोक्त मूल्य पर २५ प्रतिशत की विशेष छूट दी जा रही है।
  अपने आदेश तुरन्त प्रेषित कीजिये।

प्राप्ति स्थान

- **प्रकाशन विभाग, वैदिक यन्त्रालय, पोस्ट बॉक्स–३८, अजमेर ३०५००१**
- **वैदिक पुस्तकालय, आर्य समाज मार्ग, केसरगंज अजमेर–३०५००१**

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ऋषि दयानन्द की आत्मकथा : ऐतिहासिक विवरण

☐ डॉ० भवानीलाल भारतीय

भारतीय धार्मिक एवं सांस्कृतिक पुनर्जागरण के सूत्रधार स्वामी दयानन्द सरस्वती अपने युग के अद्वितीय महापुरुष थे। उनके विचारों का प्रभाव उनके जीवन काल में केवल स्वदेश तक ही सीमित नहीं रहा, अपितु इंगलैण्ड, जर्मनी तथा अमेरिका तक उनकी ख्याति का प्रसार हुआ। ऐसे युग-प्रवर्तक महापुरुष का जीवन निश्चय ही समग्र मानव जाति के लिये प्रेरणादायी सिद्ध हो सकता है, यह अनुभव कर स्वामी जी के जीवन-काल में ही उनके जीवन-वृत्त को लेखबद्ध करने का प्रयास किया गया था। स्वामी जी ने स्वयं भी अपने एक व्याख्यान में आत्मकथन के रूप में स्व-जीवन-वृत्त की कुछ चर्चा की थी। चैत्र शुक्ला पञ्चमी १९३२ वि० तदनुसार १० अप्रैल १८७५ ई० को बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना[1] करने के पश्चात् वे पूना गये। यहां न्यायमूर्ति महादेव गोविन्द रानडे तथा अन्य महाराष्ट्रीय भक्तों के आग्रह पर उन्होंने बुधवार पैंठ के भिड़े के बाड़े में एक व्याख्यान-माला प्रस्तुत की। इस व्याख्यान-क्रम की अन्तिम वक्तृता ४ अगस्त १९७५ को हुई जिसमें श्री महाराज ने अपने जीवन की कुछ प्रमुख घटनाओं का उल्लेख किया। कालान्तर में उपदेश मञ्जरी या पूना प्रवचन के नाम से जब स्वामी जी के ये १५ भाषण मराठी से हिन्दी भाषा में अनूदित होकर प्रकाशित हुये[2] तो काशी शास्त्रार्थ (१६ नवम्बर १८६९ ई०) तक का प्रामाणिक जीवन-वृत्त स्वयं स्वामी जी के श्रीमुख से कथन किया हुआ ही, संसार को उपलब्ध हो गया।

आत्म-कथन प्रस्तुत करने का एक अन्य अवसर उन्हें तब मिला जब थियोसोफिकल सोसाइटी के प्रवर्तकों में से एक कर्नल एच०एस० आल्काट ने अप्रैल १८७९ ई० में स्वामी जी से अपना आत्मकथन लेख-बद्ध कर थियोसोफिस्ट पत्र में प्रकाशनार्थ भेजने का आग्रह किया। कर्नल के इस अनुरोध को स्वीकार कर स्वामी जी ने अपने नर्मदा-तट भ्रमण तक का वृत्तान्त तीन किस्तों में लिख कर थियोसोफिस्ट में प्रकाशनार्थ भेजा। मैडम एच० पी० ब्लैवेट्स्की इस पत्र की सम्पादिका थीं। अतः उन्हीं के द्वारा सम्पादित होकर यह आत्मकथन अंग्रेजी अनुवाद के रूप में थियोसोफिस्ट के तीन अंकों में प्रकाशित हुआ। पण्डित लेखरामजी के अनुसार यह सामग्री उक्त पत्र के नवम्बर व दिसम्बर १८८० के अंकों में छपी थी, परन्तु पण्डित भगवद्दत्त जी ने थियोसोफिस्ट के मूल अंकों को देखकर यह निश्चय किया कि यह आत्म-वृत्तान्त अक्टूबर १८७९, दिसम्बर १८७९ तथा नवम्बर १८८० के अंकों में प्रकाशित हुआ है।[3] इन अंकों में स्वामी जी का यह आत्मकथन निम्न प्रकार से छपा[4]—अक्टूबर १८७९ जन्म से लेकर ऋषिकेश यात्रा पर्यन्त (१९११ वि०) पृ० ९ से १२ दिसम्बर १८७९ टिहरी से लेकर जोशी मठ यात्रा पर्यन्त (१९१२ वि०) पृ० ६६ से ६८ नवम्बर १८८० बद्रीनारायण से नर्मदा-तट पर्यन्त (१९१६ वि०) पृ० २४ से २६।

जिस समय स्वामीजी ने आत्म-वृत्तान्त को प्रकाशन के लिये थियोसोफिस्ट में भेजा उसी समय उसकी दो प्रतिलिपियां दो आर्य पुरुषों ने करली थीं। एक प्रतिलिपि

---

१. प्राचीन उपलब्ध प्रमाणों से आर्यसमाज की स्थापना तिथि पञ्चमी ही सिद्ध होती है।

२. हिन्दी अनुवाद पं० गणेश रामचन्द्र तथा महाशय श्री निवासराव ने पं० लेखराम की प्रेरणा से किया।

३. पंडित महेशप्रसाद मौलवी आलिम फाजिल ने भी इस तथ्य की पुष्टि की है। द्रष्टव्य—महर्षि जीवन दर्शक पृ० ३।

४. थियोसोफिस्ट के ये अंक काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

श्री मथुराप्रसाद जी मंत्री आर्यसमाज अजमेर[1] तथा दूसरी पंडित छगनलाल श्रीमाली भूतपूर्व कामदार मसूदा (जिला अजमेर) के पास थी। जब श्री महाराज की जीवनी के तथ्यों का संग्रह करते हुये पंडित लेखराम अजमेर आये थे तब उन्होंने उक्त दोनों प्रतियों को देखा था तथा उन्हीं के आधार पर स्वसंगृहीत महर्षि दयानन्द के उर्दू जीवन-चरित में इस सामग्री को स्थान दिया था।[2] थियोसोफिस्ट के इन लेखों को विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं ने उद्धृत किया।[3] फर्रुखाबाद से प्रकाशित होने वाले भारतसुदशाप्रवर्तक (अंक संख्या ६, ७, ८) आर्यसमाचार मेरठ, आर्य अखबार बम्बई, री जेनेरेटर दि आर्यावर्त लाहौर, पताका अखबार कलकत्ता आदि ने इस सामग्री को प्रकाशित किया। भारतसुदशाप्रवर्तक में प्रकाशित यह आत्म-वृत्तान्त 'श्रीयुत स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज की कुछ दिन-चर्या' के शीर्षक से पुस्तकाकार भी छपा। इसका सम्पादन पं० गणेशप्रसाद शर्मा ने किया था।

थियोसोफिस्ट की सामग्री को मास्टर दुर्गाप्रसाद ने अपने सत्यार्थप्रकाश के अंग्रेजी अनुवाद के प्रारम्भ में भी प्रकाशित किया। सत्यार्थ-प्रकाश का यह आंग्लभाषानुवाद १९०८ ई० में प्रकाशित हुआ था तथा इस आत्मवृत्तान्त को मास्टर जी ने The Autobiography and Travels of Swami Dayanand Saraswati शीर्षक से उद्धृत किया। थियोसोफिकल प्रकाशन गृह अड्यार मद्रास ने Autobiography of Pandit Dayanand Sarasvati शीर्षक से इस आत्मकथा को १९५२ में प्रकाशित किया। इसके प्रकाशकीय वक्तव्य में लिखा गया है कि पण्डित दयानन्द सरस्वती की यह आत्मकथा एक मात्र थियोसोफिस्ट पत्र के लिये ही उनके द्वारा लिखी गई थी जिसका सम्पादन उस समय एच० पी० ब्लैवेट्स्की करती थी तथा यह आत्मवृत्तान्त हिन्दी से अनूदित किया गया है।"[1] इस पुस्तक में श्री महाराज का जो इतिवृत्त दिया गया है वह जोशी मठ भ्रमण पर्यन्त ही है, इससे यह विदित होता है कि मद्रास संस्करण में मूल थियोसोफिस्ट में प्रकाशित इतिवृत्त की दो किस्तें ही समाविष्ट हो सकीं और नर्मदा तटवर्ती प्रांत भ्रमण तक का वृत्तान्त जो नवम्बर १८८० के अंक में छपा था इसमें समाविष्ट नहीं हो सका। परन्तु इस ग्रन्थ में स्वामीं जी से सम्बन्धित कुछ अन्य सामग्री प्रकाशित हुई जिसका जीवनीकारों के लिये विशिष्ट उपयोग है।[2]

पंडित भगवद्दत्त जी ने स्वामी जी के स्वकथित (पूना प्रवचन में) तथा स्वलिखित (थियोसोफिस्ट में) आत्म-

---

१. श्री मथुराप्रसाद भहड़ (माहेश्वरी) अजमेर की धर्मशीला आर्य महिला श्रीमती गुलाब देवी (चाची जी) के पति थे।

२. यह उर्दू जीवन-चरित १८९७ ई० में मुन्शी गुलाब सिंह के प्रेस में लाहौर से छपा।

३. श्री रतनचन्द वेरी द्वारा सम्पादित तथा लाहौर से प्रकाशित 'दि आर्य' नामक मासिक पत्र के जुलाई १८८२ के अंक में The Autobiography of Swami Dayanand शीर्षक से थियोसोफिस्ट में प्रकाशित इतिवृत्त का प्रारम्भिक भाग (विवाह की तैयारियाँ तक) उद्धृत किया गया है।

१. "This autobiography of Pandit Dayanand Saraswati was written by him expressly for the Theosophist, then edited by H. P. Blavatsky; translated from Hindi."

२. आत्म-कथन के अतिरिक्त इस पुस्तक में (१) The Pupil of Swami Dayanand at the Congress of Orientalists (२) An "Honest" Enquiry into the aims of out Society. (३) Gleanings from the works of Svami Dayanand Sarasvati. By IL PENSEROSO. (४) Swami Dayanand Sarasvati and the Pandits of Lahore. (५) Is idolatry taught in the Yajurveda ? शीर्षक ५ अन्य परिशिष्ट सामग्री छपी है। विशेष जानकारी के लिये द्रष्टव्य—वेद वाणी में प्रकाशित मेरा लेख 'ऋषि दयानन्द की आत्मकथा—एक ऐतिहासिक विश्लेषण' मई १९६९ ई०।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वृत्तान्त का एक स्वसम्पादित सुन्दर संशोधित संस्करण श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट से प्रकाशित किया। अब तक इसके सात संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। प्रथम संस्करण कब छपा यह ज्ञात नहीं होता क्योंकि इस संस्करण की भूमिका के अन्त में सम्पादक ने तिथि का उल्लेख तो १५ चैत्र दयानन्दाब्द लिख कर किया परन्तु वर्ष का उल्लेख नहीं है। द्वितीय संस्करण २० आषाढ़ दयानन्दाब्द ३४ (१९१७ ई०) को प्रकाशित हुआ। तृतीय संस्करण की भूमिका में पण्डित भगवद्दत्त जी ने आत्मकथन के एक अन्य हस्तलेख का उल्लेख किया है। पण्डितजी के अनुसार स्वामी श्रद्धानन्द जी के पास आत्मकथन की मूल प्रतिलिपि थी। संन्यास-ग्रहण के समय स्वामी जी ने इसे प्रो० रामदेवजी को सौंप दिया। १९७४ वि० के गुरुकुल कांगड़ी के उत्सव पर प्रो० रामदेव जी के सौजन्य से यह हस्तलेख पण्डित भगवद्दत्तजी को प्राप्त हुआ। इसमें हाथी छाप के ६ पृष्ठ थे। प्रथम पांच पृष्ठों में प्रत्येक पर सत्ताइस पंक्तियाँ थीं। अन्तिम पृष्ठ पर चौदह पंक्तियाँ थीं। पण्डित भगवद्दत जी इस बात का निर्धारण नहीं कर सके कि हस्तलेख का लेखक कौन है? उनके अनुसार "लेख बड़ा स्पष्ट है और प्रायः अक्षर श्री स्वामी जी के अक्षरों से मिलते हैं। यद्यपि लेख उनका नहीं है, पर पूर्ण निश्चय नहीं हो सका कि लेखक कौन है? कारण कि ऋषि के दो लेखकों के प्रायः अक्षर उनके अक्षरों से मिलते हैं।"

प्रस्तुत संस्करण—परोपकारिणी के पुराने कागजों में वैदिकयन्त्रालय के (स्वामी जी के समकालीन) प्रबन्धकर्ता मुन्शी समर्थदान के बस्तों में स्वामीजी के आत्मवृत्तान्त की मूल पाण्डुलिपि दो किस्तों में प्राप्त हुई। यह वही पाण्डुलिपि है जो श्री महाराज ने थियोसोफिस्ट में प्रकाशनार्थ भेजी थी। तीसरी किस्त अनुपलब्ध है, परन्तु प्रस्तुत संस्करण में उसे पण्डित भगवद्दत्त जी के संस्करण के आधार पर उद्धृत किया जा रहा है। इसी पाण्डुलिपि के ६ पृष्ठ पण्डित भगवद्दत्त जी ने देखे होंगे क्योंकि यह हाथी छाप कागज पर लिखी गई है तथा प्रथम पांच पृष्ठों में प्रत्येक पर २७ पंक्तियां हैं। हमें प्राप्त पाण्डुलिपि के अन्तिम पृष्ठ पर १७ पंक्तियां हैं जब कि पंडित भगवद्दत्त जी द्वारा दृष्ट पाण्डुलिपि के अन्तिम पृष्ठ पर १४ पंक्तियाँ थीं। दोनों किस्तों पर श्री महाराज के हस्ताक्षर हैं तथा प्रथम पर यत्र तत्र उनके द्वारा किया हुआ संशोधन भी है। पाण्डुलिपि की दूसरी किस्त सम्पूर्णतया श्री महाराज की ही लिखी हुई है।

प्रस्तुत संस्करण का महत्त्व इस दृष्टि से और भी बढ़ जाता है जब हम देखते हैं कि अब तक स्वामी जी की आत्मकथा के जो संस्करण प्रकाशित हुये हैं वे या तो पंडित लेखराम द्वारा लिखित उर्दू जीवन-चरित से अनूदित होकर प्रकाशित हुये अथवा थियोसोफिस्ट के अंग्रेजी में अनूदित आत्म-वृत्तान्त का पुनः अनुवाद होकर हिन्दी में आये। हमारे इस सस्करण में जोशी मठ तक का वृत्तान्त उस मौलिक सामग्री का अंश है जो स्वयं श्री महाराज के हस्ताक्षरों से प्रमाणित होकर थियोसोफिस्ट में प्रकाशनार्थ भेजी गई थी। अंग्रेजी अनुवाद मद्रास संस्करण (जोशी मठ तक का वृत्त) तथा पण्डित दुर्गा प्रसाद द्वारा उद्धृत सत्यार्थप्रकाश के अनुवाद की भूमिका में प्रकाशित (नर्मदा तट भ्रमण का वृत्त) सामग्री से लिया गया है।

अब हम पाठकों के ज्ञान के लिये स्वामीजी की आत्मकथा के विभिन्न संस्करणों का विवरण प्रस्तुत करते हैं—

हस्तलेखों का विवरण—

(१) मुन्शी समर्थदान के बस्ते में प्राप्त जीवनवृत्त की दो किस्तें। इन्हीं के आधार पर यह संस्करण तैयार किया गया है।

(२) श्री मथुराप्रसाद, मंत्री आर्यसमाज अजमेर की प्रति। इस संस्करण के सम्पादक को श्री मथुराप्रसाद की प्रतिलिपि भी प्राप्त हो गई है। यह प्रति श्री मथुराप्रसाद जी की पत्नी एवं गुलाबदेवी के भतीजे स्वर्गीय केशवदेव कपूरिया के कागजों में उपलब्ध हुई।

(३) पण्डित छगनलाल श्रीमाली की प्रति।

(४) प्रो० रामदेवजी की प्रति (इसकी वर्तमान स्थिति अज्ञात है)

प्रकाशित हिन्दी संस्करण—

(१) श्रीयुत स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज की कुछ दिनचर्या–जिसको पण्डित गणेशप्रसाद लेखाध्यक्ष

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आर्यसमाज फर्रुखाबाद ने प्रेमी जनों के आनन्द विनोदार्थ भारतसुदशाप्रवर्त्तक से उद्धृत की। कम्प फतेगढ़ मुन्शी-चुन्नीलाल यन्त्रालय में पंडित जगन्नाथप्रसाद के प्रबंध से छापी गई। (इसका द्वितीय संस्करण १८८७ ई० में प्रकाशित हुई।) एक दुर्लभ प्रति सम्पादक के पुस्तकालय में।

(२) मुन्शी दयाराम तहसीलदार ने पंडित लेखराम रचित स्वामी जी उर्दू जीवन-चरित में उद्धृत आत्म वृत्तान्त का हिन्दी में अनुवाद कर सर्वप्रथम १९०४ ई० में वजीरचन्द्र शर्मा के आर्य पुस्तकालय लाहौर से प्रकाशित कराया। इसका तृतीय संस्करण १९७९ वि० (जनवरी १९२३ ई० ४० दयानन्दाब्द, में प्रकाशित हुआ।

(३) श्री देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय रचित 'दयानन्द चरित' की अवतरणिका में थियोसोफिस्ट से अनूदित आत्मवृत्त का हिन्दी अनुवाद पंडित घासीरामजी ने किया। भास्कर प्रेस मेरठ से १९१२ ई० में प्रकाशित दयानन्द चरित।

(४) ऋषि दयानन्द सरस्वती स्वरचित (लिखित वा कथित) जन्म चरित्र-पंडित भगवद्दत्त द्वारा सम्पादित। (श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट से प्रकाशित)

(५) ऋषि दयानन्द सरस्वती की आत्मकथा-पंडित जगत्कुमार शास्त्री द्वारा सम्पादित। गोविन्दराम हासानन्द दिल्ली द्वारा प्रकाशित, दयानन्द ग्रन्थ संग्रह के अन्तर्गत तथा पृथक् रूप से प्रकाशित। (सं० २०१० वि०) इसमें भी पूना के व्याख्यान तथा थियोसोफिस्ट में प्रकाशित लेखों का अनुवाद (पंडित देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय लिखित दयानन्द चरित की अवतरणिका का अनुवाद जो पंडित घासीराम द्वारा किया गया) संकलित है। दयानन्द चरित का प्रकाशन गोविन्दराम हासानन्द कलकत्ता ने भी किया था। (तृतीय संस्करण १९४६ ई०)।

(६) महर्षि दयानन्द लिखित आत्मकथा (थियोसोफिस्ट से अनूदित) आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश द्वारा २०१० वि० में प्रकाशित।

प्रकाशित अंग्रेजी संस्करण—

(१) मास्टर दुर्गाप्रसाद ने थियोसोफिस्ट में प्रकाशित सामग्री को A Triumph of Truth or a Short autobiography of the great Rishee Swami Dayanand Saraswati शीर्षक से पृथक् पुस्तक रूप में प्रकाशित किया तथा अपने सत्यार्थप्रकाश के अंग्रेजी में अनुवाद की भूमिका में भी उद्धृत किया।

(२) Autobiography of Pandit Dayanand Sarasvati. थियोसोफिकल पब्लिशिंग हाउस अड्यार मद्रास से १९५२ ई० में प्रकाशित।

प्रकाशित उर्दू अनुवाद—

(१) पंडित लेखराम रचित (संकलित) 'महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित' में संग्रहीत प्रथम संस्करण १८९७ ई० (हिन्दी अनुवाद पंडित रघुनन्दन सिंह निर्मल कृत तथा आर्यसमाज नयाबांस दिल्ली से २०२८ वि० में प्रकाशित)।

(२) उर्दू अनुवाद श्री दलपतराय विद्यार्थी एम-ए० कृत 'खुद नविशत स्वानेह उमरी' १९४५ वि० में लाहौर से प्रकाशित।

(३) उर्दू अनुवाद भाई जवाहिरसिंह कृत 'स्वानेह उमरी दयानन्द'।

अन्य भाषाओं में अनुवाद—

(१) पंडित देवेन्द्रनाथ कृत बंगानुवाद यह १८९४ ई० में प्रकाशित दयानन्द चरित की अवतरणिका में छपा। इसमें पूना प्रवचन तथा थियोसोफिस्ट की पूर्ण सामग्री बंगला में अनूदित की गई।

(२) पंडित देवेन्द्रनाथ लिखित तथा वैदिक मैगजीन के फरवरी १९१६ के अंक में प्रकाशित The birthplace and parentage of Swami Dayanand शीर्षक लेख से विदित होता है कि आत्मवृत्तान्त के बंगानुवाद के आधार पर उसका गुजराती भाषा में भी अनुवाद हुआ था।

(३) स्वर्गीय पंडित कालीचरण शर्मा मौलवी आलिम फाजिल ने 'स्वानेह उमरी आरिफ दयानन्द' शीर्षक से इसका फारसी भाषा में अनुवाद किया।

पुनश्च—मुन्शी इन्द्रमणि के शिष्य जगन्नाथदास ने 'दयानन्द जीवन चरित और समालोचना,' शीर्षक पुस्तक में इस सामग्री को समग्रतः उद्धृत कर उस पर अपनी आलोचना लिखी है। प्रकाशन १९७२ वि०। □□

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मैं स्वामी दयानन्द सरस्वती संक्षेप से अपना जन्मचरित्र लिखता हूँ॥

संवत् १८८१ के वर्ष में मेरा जन्म दक्षिण गुजरात प्रान्त देश काठियावाड़ का मजोकठा देश मोर्वी का राज्य औदीच्य ब्राह्मण के घर में हुआ था, मैंने पांचवे वर्ष में देवनागरी अक्षर पढ़ने का आरम्भ किया था। और मुझको कुल की रीति की शिक्षा भी माता पिता आदि किया करते थे, बहुत से धर्म शास्त्रादि के श्लोक और सूत्रादि कभी कण्ठस्थ करा करते थे। फिर ८ आठवें वर्ष में मेरा यज्ञोपवीत करा के गायत्री संध्या और उस की क्रिया भी सिखा दी गई थी। और मुझको यजुर्वेद की संहिता का आरम्भ करा के उसमें से प्रथम रुद्राध्याय पढ़ाया गया था, और मेरे कुल में शैव मत था उसी की शिक्षा भी किया करते थे। और पिता आदि लोग यह भी कहा करते थे कि पार्थिव पूजन अर्थात् मट्टी का लिङ्ग बना के तूँ पूजा कर। और माता मने किया करती थी कि यह प्रातःकाल भोजन कर लेता है इससे पूजा नहीं हो सकेगी पिताजी हठ किया करते थे कि पूजा अवश्य करनी चाहिये क्योंकि कुल की रीति है। तथा कुछ २ व्याकरण का विषय और वेदों का पाठ भी मुझको पढ़ाया करते थे। पिताजी अपने साथ मुझको जहां तहां मन्दिर और मेल मिलापों में लेजाया करते और यह भी कहा करते थे कि शिव की उपासना सब से श्रेष्ठ है। इस प्रकार १४ चौदहवें वर्ष की अवस्था के आरम्भ तक यजुर्वेद की संहिता संपूर्ण और कुछ अन्य वेदों का भी पाठ पूरा हो गया था। और शब्दरूपावली आदि छोटे २ व्याकरण के ग्रंथ भी पूरे हो गये थे। पिताजी जहां २ शिवपुराण आदि की कथा होती थी वहां २ मुझको पास बैठा कर सुनाया करते थे। और घर में भिक्षा की जीविका नहीं थी किन्तु जिमींदारी और लेन देन से जीविका के प्रबन्ध कर के सब काम चलाते थे। और मेरे पिता ने माता के मने करने पर भी पार्थिव पूजन का आरम्भ करा दिया। जब शिवरात्रि आई तब १३ त्रयोदशी के दिन कथा का माहात्म्य सुना के शिवरात्रि के व्रत करने का निश्चय करा दिया। परन्तु माता ने मने भी किया कि इससे व्रत नहीं रहा जायगा तथापि पिताजी ने व्रत का आरम्भ करा दिया। और रजब १४ चतुर्दशी की सांझ हुई तब बड़े २ बस्ती के रईस अपने पुत्रों के सहित मन्दिरों में जागरण करने को गये वहां मैं भी अपने पिता के साथ गया और प्रथम प्रहर की पूजा भी करी दूसरे प्रहर की पूजा कर के पूजारी लोग बाहर निकल के सो गये। मैंने प्रथम से सुन रक्खा था कि सोने से शिवरात्रि का फल नहीं होता है। इसलिये अपनी आंखों में जल के छींटे मार के जागता रहा और पिता भी सो गये तब मुझको शंका हुई कि जिस की मैंने कथा सुनी थी वही

इस मन्दिर के काम में विघ्न हों क्योंकि मुझको उनकी सेवा करना उचित था और यह शंकर है मैं क्या और धतूरा आदि का भक्षण करता हूँ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यह महादेव है वा अन्य कोई क्योंकि वह तो मनुष्य के साफ करने के देवता है वह बैल पर चढ़ता, चलता फिरता खाता पीता त्रिशूल हाथ में रखता डमरू बजाता वर और शाप देता और कैलाश का मालिक है इत्यादि प्रकार काम महादेव कथा में सुनाया, तब पिताजी को जगा के मैंने पूछा कि यह कथा का महादेव है वा कोई दूसरा तब पिता ने कहा कि क्यों पूछता है? तब मैंने कहा कि कथा का महादेव तो चेतन है वह अपने ऊपर चूहों को क्यों चढ़ने देगा और इसके ऊपर तो चूहे फिरते हैं तब पिताजी ने कहा कि कैलाश पर जो महादेव रहते हैं उनकी मूर्त्ति बना और आवाहन कर के पूजा किया करते हैं अब कलियुग में उस शिव का साक्षात् दर्शन नहीं होता। इसलिये पाषाणादि की मूर्त्ति बना के उन महादेव की भावना रख कर पूजन करने से कैलाश का महादेव प्रसन्न हो जाता है। ऐसा सुन के मेरे मन में भ्रम हो गया कि इसमें कुछ गड़बड़ अवश्य है। और भूख भी बहुत लग रही थी पिता से पूछा कि मैं घर को जाता हूँ। तब उन्होंने कहा कि सिपाही को साथ ले के चला जा परन्तु भोजन कदाचित् मत करना। मैंने घर में जा कर माता से कहा कि मुझ को भूख लगी है। माता ने कुछ मिठाई आदि दिया उसको खा कर १ एक बजे पर सो गया। पिताजी प्रातःकाल रात्रि के भोजन को सुन के बहुत गुस्से हुए कि तैंने बहुत बुरा काम किया। तब मैंने पिता से कहा कि यह कथा का महादेव नहीं है इसकी पूजा मैं क्यों करूँ। मन में तो श्रद्धा नहीं रही परन्तु ऊपर के मन पिताजी से कहा कि मुझ को पढ़ने से अवकाश नहीं मिलता कि मैं पूजा कर सकूँ। तथा माता और चाचा आदि ने भी पिता को समझाया इस कारण पिता भी शान्त हो गये कि अच्छी बात है पढ़ने दो। फिर निघण्टु निरुक्त और पूर्वमीमांसा आदि शास्त्रों के पढ़ने की इच्छा करके आरम्भ करके पढ़ता रहा और कर्म काण्ड विषय भी पढ़ता रहा। मुझ से छोटी १ एक बहन फिर उससे छोटा एक भाई फिर भी एक बहन और एक भाई अर्थात् दो बहन और दो भाई और हुए थे तब तक मेरी १६ वर्ष की अवस्था हुई थी। जो छोटी मुझ से छोटी १४ वर्ष की जो बहन थी उसको हैजा हुआ एक रात्रि में जिस समय मैं नौकर था। नौकर ने खबर दी कि उसको हैजा हुआ है। तब सब जने वहां से तत्काल आये और वैद्य आदि बुलाये औषधि भी की तथापि चार घंटे में उस बहन का शरीर छूट गया सब लोग रोने लगे। परन्तु मेरे हृदय में ऐसा धक्का लगा और भय हुआ कि ऐसे ही मैं भी मर जाऊँगा शोच विचार में पड़ गया। जितने जीव संसार में हैं उनमें से एक भी न बचेगा। इससे कुछ ऐसा उपाय करना

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

चाहिये कि जिससे यह दुःख छूटे और मुक्ति हो अर्थात् इसी समय से मेरे चित्त में वैराग्य की जड़ पड़ गई। परन्तु यह विचार अपने मन में ही रक्खा किसी से कुछ भी न कहा। इतने में १६ वर्ष की जब अवस्था हुई तब जो मुझ से अति प्रेम करने वाले बड़े धर्मात्मा विद्वान् मेरे चाचा थे उनकी मृत्यु होने से अत्यन्त वैराग्य हुआ कि संसार में कुछ भी नहीं परन्तु यह बात माता पिता से तो नहीं कही किन्तु अपने मित्रों से कहा कि मेरा मन गृहाश्रम करने का नहीं चाहता। उन्होंने माता पिता से कहा। माता पिता ने विचारा कि इसका विवाह शीघ्र कर देना चाहिये। जब मुझको मालूम पड़ा कि ये २० बीसवें वर्ष में ही विवाह कर देंगे तब मित्रों से कहा कि मेरे माता पिता को समझाओ कि अभी विवाह न करें। तब उन्होंने एक वर्ष जैसे तैसे विवाह रोका। तब तक २० बीसवां वर्ष पूरा हो गया। तब मैंने पिताजी से कहा कि मुझे काशी में भेज दीजिये कि मैं व्याकरण ज्योतिष और वैद्यक आदि ग्रन्थ पढ़ आऊँ। तब माता पिता और कुटुम्ब के लोगों ने कहा कि हम काशी को कभी न भेजेंगे जो कुछ पढ़ना हो सो यहीं पढ़ो। और अगलीसाल में तेरा विवाह भी होगा क्योंकि लड़की बाला नहीं मानता। और हम को अधिक पढ़ा के क्या करना है जितना पढ़ा है वही बहुत है। फिर मैंने पिता आदि से कहा कि मैं पढ़ कर आऊं तब विवाह होना ठीक है तब माता भी विपरीत हो गई कि हम कहीं नहीं भेजते और अभी विवाह करेंगे। तब मैंने चाहा कि अब सामने रहना अच्छा नहीं। फिर तीन ३ कोश ग्राम में अपनी जिमींदारी थी वहां एक अच्छा पण्डित तथा माता पिता की आज्ञा ले के वहां जा कर उस पण्डित के पास में पढ़ने लगा। और वहां के लोगों से भी कहा कि मैं गृहाश्रम करना नहीं चाहता। फिर माता पिता ने मुझे बुला के विवाह की तैयारी कर दी तब तक २१ इक्कीसवां वर्ष भी पूरा हो गया। जब मैंने निश्चित जाना कि अब विवाह किये बिना कदाचित् न छोड़ेंगे। फिर गुप्त चुप संवत् १९०३ के वर्ष में घर छोड़ के संध्या के समय भाग उठा, चार कोश पर एक ग्राम था वहां जा कर रात्रि को ठहर कर दूसरे दिन प्रहर रात्रि से उठ के १५ कोश चला परन्तु प्रसिद्ध ग्राम सड़क और जानकारों के ग्रामों को छोड़ के बीच २ में नित्य चलने का प्रारम्भ किया। तीसरे दिन मैंने किसी राजपुरुष से सुना कि फलाने का लड़का घर छोड़ कर चला गया उस को खोजने के लिये सवार और पैदल आदमी यहां तक आये थे। मेरे पास जो कुछ थोड़े से रुपैये और अंगूठी आदि मूल्य था वह सब पोपों ने ठग लिया। मुझ से कहा कि तुम पक्के वैराग्यवान् तब होगे कि जब अपने पास की चीज सब पराये कर दो फिर उन लोगों

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

के कहने से मैंने जो कुछ था सब दे दिया। फिर लाला भगत की जगह जो कि सायले शहर में है वहां बहुत साधुओं को सुनकर चला गया वहां एक ब्रह्मचारी मिला उसने मुझसे कहा कि तुम ने ठीक ब्रह्मचारी होजाओ उसने मुझको ब्रह्मचारी की दीक्षा दी और शुद्ध चैतन्य नाम मेरा नामरक्खा तथा काषाय वस्त्र भी करा दिये। जब मैं वहां से अहमदाबाद के पास कोठ गांगड़ जो कि छोटा सा राज्य है वहां आया तब मेरे गांव के पास का जानपहचान वाला एक वैरागी मिला उसने पूछा कि तुम यहां कहां से आये और कहां जाया चाहते हो। तब मैंने उससे कहा कि घर से आया और कुछ देशभ्रमण किया चाहता हूं। उसने कहा कि तुमने काषाय वस्त्र धारण करके क्या घर छोड़ दिया मैंने कहा कि हां मैंने घर छोड़ दिया और कार्त्तिकी के मेले पर सिद्धपुर को जाऊंगा। फिर मैं वहां से चलकर सिद्धपुर में आके नीलकण्ठ महादेव की जगह में ठहरा कि जहां खाड़ी स्वामी और ब्रह्मचारी ठहर रहे थे। उनका सत्संग और जो २ कोई महात्मा वा पण्डित मेले में सुनपड़ा उन सबके पास गया और उनसे सत्संग किया। जो मुझको कोठ गांगड़ में वैरागी मिला था उसने मेरे पिता के पास पत्र भेजा कि तुम्हारा पुत्र ब्रह्मचारी हुआ काषाय वस्त्र धारण किये मुझको मिला और कार्त्तिकी के मेले में सिद्धपुर को गया। ऐसा सुन के सिपाही ये केसहित पिताजी सिद्धपुर में आकर मेले में खोज कर पता लगा के जहां पण्डितों के बीच में मैं बैठा था वहां पहुंच कर मुझसे बोले कि तूं हमारे कुल में कलंक लगाने वाला पैदा हुआ। जब मैंने पिताजी को देखा और उठ के चरण स्पर्श किया और नमस्कार करके बोला कि आप को चिंता मत हो जिसमें मैं किसी आदमी के बहकाने से चला आया और मैंने बहुत सा दुःख पाया। अब मैं घर को आने वाला था। परन्तु अब आप आये यह बहुत अच्छा हुआ कि अब मैं साथ २ घर को चलूंगा। तो भी क्रोध के मारे मेरे रंगे रूके रंगे वस्त्र और हम तूं को तोड़ फाड़ के फेंक दिये और वहां भी बहुत कठिन बातें कहकर बोले कि तूं अपनी माता को हत्या लिया चाहता है। मैंने कहा कि मैं अब घर को चलूंगा तो भी मेरे साथ सिपाही करा दिये कि क्षण भर भी इसको अकेला मत छोड़ो और रात्रि को भी पहरा रक्खो। परन्तु मैं भागने का उपाय देख रहा था। सो जब ती सरी रात के तीन बजे के पीछे पहरे वाला बैठा २ सो गया उसी समय मैं लघुशंका का बहाना करके भागा। आधा कोश पर एक मन्दिर के शिखर की गुफा में एक वृक्ष के सहारे से चढ़ और जल का लोटा भर के छिपकर बैठ रहा। जब चार बजे का अमल हुआ तब मैं ने उन्हीं सिपाहियों में से एक सिपाही मालियों

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

से मुझको पूछता सुना तब मैं और भी छिप गया ऊपर बैठा सुनता रहा वे लोग ढूँढ़ के
चले गये मैं उसी मन्दिर की शिखर में दिन भर रहा। जब अंधेरा हुआ तब उस पर से उतर
सड़क को छोड़ के किसी से पूछ के दो कोश पर एक ग्राम था उस में ठहरके अहमदाबाद होता हुआ
बड़ोदरे शहर में आ कर ठहरा। वहां चेतनमठ में ब्रह्मानन्द आदि ब्रह्मचारी और संन्यासियों
से वेदान्त विषय की बहुत बातें की। और मैं ब्रह्म हूं अर्थात् जीव ब्रह्म एक है ऐसा निश्चय
उन ब्रह्मानन्दादि ने मुझको करा दिया प्रथम वेदान्त पढ़ते समय भी कुछ २ निश्चय हो
गया था परन्तु वहां ठीक दृढ़ हो गया कि मैं ब्रह्म हूं। फिर वहीं बड़ोदे में एक बनारसी बाईबैरा
गी का ख्यान सुन कर उस की में जा के एक सच्चिदानन्द परमहंस से मैं टक्कर के अनेक प्र
कार की शास्त्र विषयक बातें हुईं फिर वहां सुना कि आजकल चारोदा कन्याली में बड़े २ संन्यासी
ब्रह्मचारी और विद्वान् ब्राह्मण रहते हैं। वहां जा के दीक्षित और चिदाश्रमादि स्वामी ब्रह्म
चारी और पण्डितों से अनेक विषयों का परस्पर संभाषण हुआ। फिर एक परमानन्द प
रमहंस से वेदान्तसार अर्थात् हरिमीडे तोटक वेदान्त परिभाषा आदि प्रकरणों का
थोड़े महिनों में विचार कर लिया। उस समय ब्रह्मचर्याश्रम में कभी २ अपने हाथ से
रसोई बनाने पड़ती थी इस कारण पढ़ने में विघ्न विचार के कहा कि अब संन्यास ले लेना
अच्छा है। फिर एक दक्षिणी पण्डित के द्वारा वहां जो दीक्षित स्वामी विद्वान् थे उनको कहलाया
कि आप उस ब्रह्मचारी को संन्यास की दीक्षा दे दीजिये। क्योंकि मैं अपना ब्रह्मचारी का ना
म भी बहुत प्रसिद्ध करना नहीं चाहता था क्योंकि घर का भय बड़ा था जो कि अब तक बना है।
तब उन्होंने कहा कि उस की अवस्था कम है इसलिये हम नहीं देते। इसके अनन्तर दो म
हिने के पीछे दक्षिण से एक दण्डी स्वामी और एक ब्रह्मचारी आके चारोदा से कुछ कम
कोश भर मकान जो कि जंगल में था उस में ठहरे उनको सुन कर एक दक्षिणी वेदान्ति प
ण्डित और मैं दोनों उनके पास जा के शास्त्र विषयक संभाषण करते से मालूम हुआ कि अच्छे विद्वान हैं।
और वे शृंगेरी मठ की ओर से आके द्वारिका की ओर को जाते थे उनका नाम पूर्णानन्द सर
स्वती था। उनसे उस वेदान्ति के द्वारा कहलाया कि ये ब्रह्मचारी विद्या पढ़ा चाहते हैं। यह
मैं ठीक जानता हूं कि किसी प्रकार का अपराध इनमें नहीं है इनको आप संन्यास दे दीजि
ये संन्यास लेने का इनका प्रयोजन यही है कि निर्विघ्न विद्या का अभ्यास कर सकें। तब उन्हों
ने कहा कि किसी गुजराती स्वामी से कहो क्योंकि हम तो मराठे हैं। तब उन से कहा कि दक्षिणी
स्वामी गौड़ों को भी संन्यास देते हैं तो यह ब्रह्मचारी तो पंच द्राविड़ है इसमें क्या चिन्ता है। तब उन्होंने

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मान लिया और उसी ठिकाने तीसरे दिन संन्यास की दीक्षा दण्ड ग्रहण कराया और दयानन्द सरस्वती नाम रक्खा। परन्तु मैंने दण्ड का विसर्जन भी उन्हीं स्वामीजी के सम्मुख कर दिया क्योंकि दंड की भी बहुत सी क्रिया है कि जिससे पढ़ने में विघ्न हो सकता था। फिर वे स्वामीजी हरिद्वार की ओर चले गये। मैं कुछ दिन चारों ओर कन्याली में रहके व्यासाश्रम में एक योगानन्द स्वामी को सुना कि वे योगाभ्यास में अच्छे हैं उनके पास जाके योगाभ्यास की क्रिया सीखके एक कुशासन की छि नौ दश हरके बाहर रहते थे उनको सुनके व्याकरण पढ़ने के लिये उनके पास गया और कुछ व्याकरण का अभ्यास करके फिर चारों ओर में आकर ठहरा वहां दो योगी मिले कि जिनका नाम ज्वालानन्द पुरी और शिवानन्द गिरि था उनसे भी योगाभ्यास की बातें हुईं और उन्होंने कहा कि तुम अहमदाबाद में आओ वहां हम नदी के ऊपर दूधेश्वर महादेव में ठहरेंगे। वहां आवोगे तो योगाभ्यास की रीति सिखलावेंगे। वहां से वे अहमदाबाद को चले गये फिर एक महिने के पीछे मैं भी अहमदाबाद में जाके उनसे मिला और योगाभ्यास की रीति सीखी। फिर आबू राज पर्वत में योगियों को सुनके वहां जाके अर्बुदाभवानी आदि स्थानों में भगनी गिरि आदि योगियों से मिलके कुछ और योगाभ्यास की रीति सीखके संवत् १९११ के वर्ष के अन्त में हरद्वार के कुम्भ के मेले में आके बहुत से साधु संन्यासियों से मिला और जब तक मेला रहा तब तक चण्डी के पहाड़ के जंगल में योगाभ्यास करता रहा जब मेला हो चुका तब हृषीकेश में जाके संन्यासियों और योगियों से योग की रीति सीखता और सत्संग करता रहा॥

इसके आगे फिर लिखेंगे। दयानन्द सरस्वती

परोपकारिणी सभा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

फिर वहां से एक ब्रह्मचारी और दो पहाड़ी साधु भी साथ हुए हम सबने दिल्ली में आए। वहां बहुत साधु और राज पाट तो सेठ सभी भक्त आए। वहां एक पण्डित ने एक दिन मुझे और ब्रह्मचारी को अपने घर में भोजन करने के लिये निमंत्रण दिया। समय पर उसका एक मनुष्य बुलाने को आया तब मैं और ब्रह्मचारी उस के घर भोजन करने को गये। जब उसके घर के द्वार में घुसकर देखा तो एक ब्राह्मण मांस को काटता था। उस को देख कर जब भीतर गये तब बहुत से पंडितों को एक सिंहासन के भीतर बैठे देखे और वहां बकरा मांस, चमड़ा, और हड्डी देखे पीछे लौटे। पंडित देखके बोला कि आइये। तब मैंने उनसे कहा कि आप अपना काम करो हम बाहर जाते हैं। ऐसा कहकर अपने स्थान पर चले आये। तब पण्डित ने हमको बुलाने आया। उनसे मैंने कहा कि तुम सूर्य अन्न नहीं दो हम ब्रह्मचारी बनाते हैं। पंडित बोले कि आप के लिये तो सब पदार्थ बनाये हैं। मैंने उनसे कहा कि आपके घर में मुझसे भोजन कदापि नहीं खाया जायेगा। क्योंकि आप तो मांसाहारी हैं और मुझको तो सदैव नेत्रों से घृणा आती है। फिर पण्डित ने अन्न से जिमाया। पीछे वहां कुछ दिन रहकर पण्डितों से पूछा कि इस पहाड़ देश में कौन २ शास्त्र के ग्रन्थ देखने को मिलते हैं। मैं देखना चाहता हूं। तब उन्होंने कहा कि व्याकरण, काव्य, कोष, ज्योतिष, और तन्त्र ग्रन्थ देखने को मिलते हैं। तब मैंने कहा कि और ग्रन्थ तो मैंने देखे हैं परन्तु तन्त्र ग्रन्थ देखना चाहता हूं। तब उन्होंने छोटे बड़े ग्रन्थ मुझको दिये मैंने देखे तो बहुत मृषाचार की बातें उनमें देखीं कि माता, कन्या, भगिनी, चमारी, धोबिन, आदि से संगम करना, नग्न करके पूजना, मद्य, मांस, मच्छी, मुद्रा अर्थात् ब्राह्मण से लेके चांडाल पर्यन्त एकत्र भोजन करना, और नक्षत्रियों से मैथुन करना इन पांच प्रकारों से मुक्ति कहना आदि लिखे उनमें देखके चित्त को खेद हुआ मैंने ये ग्रन्थ बनाये हैं वे कैसे नष्ट हों फिर वहां से श्रीनगर को जाके के द्वारा घाट पर मन्दिर में रहे और वहां श्री तत्त्व ज्योंका त्यों देखना और पंडितों से सब विषय में संवाद होता रहा। इतने में एक नंगा नग्न साधु जो कि सब दिन पहाड़ में रहा हुआ था आया उससे भेंट हुई और योग विषय में कुछ बात चीत होने लगी तब पंडित ने कहा कि यह साधु अच्छा है कई बार इससे बातें हुई। मैंने उससे पूछा उसने बता दिया उसने मुझसे पूछा उसका उत्तर मैंने दिया। वे नौ बजे उठके दो घड़ी तक वहां रहे। जब वे पण्डित आये तब श्री रुद्र प्रयागादि देवताओं के स्थान पर पहुंचकर उसके ऊपर पहाड़ पर एक छोटा सा स्थान है वहां जाकर बारह वर्ष तक तप करके पीछे उन साधु और ब्रह्मचारी को वहां छोड़ के एक तालाब की ओर चले गये वहां पहुंचकर बद्रीनाथ जी के पर्वत पर पहुंचे वहां से बद्रीनाथ जी के दर्शन किये वहां से आगे चले बद्रीनाथ जी के पुजारी जो नम्बूदरी थे उनसे मिले तब तक चंद्रप्रयाग आ गया तब तक चंद्रप्रयाग के पीछे वे साधु और ब्रह्मचारी भी

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वहां मार्ग में वहां का समाचार देखा ॥ फिर इस प्रकार हुई कि इन सब पर्वतों में जो कुछ पूछने के योग्य था उसे पूछा कि कोई साधु महात्मा रहता है वा नहीं परन्तु मार्ग कठिन और बड़े पहाड़ों में अति शीत था है। वहां के निवासियों से भी पूछा कि इन पहाड़ों में कोई साधु महात्मा रहता है वा नहीं उन्होंने कहा कि कोई नहीं। फिर वहां मैं २० दिन रह कर पीछे को चल दिया क्योंकि वह बहुत भारी और साधु दो दिन रह कर शीत से घबराके प्रथम ही चलने थे फिर मैं वहां से चलके तुङ्गनाथ के पहाड़ पर चढ़ गया उसका मन्दिर पूजारी व ऋतु मूर्ति आदि की सब लीला को देखकर उस तीसरे पहर वहां से नीचे को उतर बीच में से दो मार्ग थे एक पश्चिम को और एक पश्चिम और दक्षिण के बीच को जाता था। तो तुङ्गनाथ मार्ग था मैं उसमें चढ़ गया आगे दूर जाकर देखा तो तुङ्गनाथ पहाड़ और ऋतु गङ्गा सूखा था वहां उसमें मार्ग बन्द हो रहा है। विचारा कि जो पहाड़ पर चढ़ते तो रात हो जाती और पहाड़ का मार्ग कठिन है वहां पर कुछ न सूझता तो ऐसा विचार उस नाले में बड़ी कठिनता से घास और वृक्षों को पकड़ कर नीचे उतर कर नाले के किनारे पर चढ़ कर देखा तो पहाड़ और तुङ्गनाथ के ही मार्ग नहीं। तब का सूर्य अस्त होने को था फिर विचारा कि जो रात हो जावे तो बड़ी भय कुछ भी नहीं है फिर क्या करेंगे। ऐसा विचार कर पांवों को बड़ी उतावली में चलते अनेक कष्ट कर और कांटों से लगे शरीर के वस्त्र फट गये। बड़ी कठिनता से पहाड़ के पार उतरा तब सड़क मिली और मैं वहां से सड़क पर चलके एक स्थान मिला वहां के लोगों से पूछा कि यह कहां की सड़क है कहा कि ओखीमठ की। फिर वहां रात को रहकर कल से गुप्तकाशी को गया वहां थोड़ा ठहर कर ओखीमठ में जाकर उस मैं ठहरा के देखा तो बड़ी लीला है। ये पत्थर बड़े भारी रखने वहां के महन्त ने कहा कि तुम हमारे चेले हो जाओ ये यहां रहो। जाओ के कहा वाले तुम्हारे हाथ होगा मैंने मन में कहा मुझे महान्त होना है मैंने उनको उत्तर दिया कि सुनो तो सही सोच लो आपने माता, पिता, बन्धु, कुटुम्ब, और घर आदि को क्यों छोड़ा बल तुम्हारा स्थान और तुम्हारे से अधिक है। मैंने जो तत्त्व विषय सब छोड़े हैं वह बात तुम्हारे पास किञ्चित् मात्र भी नहीं है उनने पूछा कि वह क्या बात है। मैंने उत्तर दिया कि सत्य विद्या योग मुक्ति और अपने आत्मा का परमात्मा आदि ग्रन्थों से धर्म्मात्मा तपस्वी बनकर जीते रहना है। तब महान्त जी कहने लगे अच्छा तुम कुछ दिन यहां रहो मैंने उनको कुछ उत्तर नहीं दिया और रात को चलके मार्ग में चलके जोशीमठ को पहुंचे वहां के दक्षिणी शास्त्री और संन्यासी थे उनसे मिलकर वहां रहा ॥

दयानन्द सरस्वती

परोपकारिणी सभा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मैं स्वामी दयानन्द सरस्वती संक्षेप से अपना जन्म चरित्र लिखता हूं ।।

संवत् १८८१ के वर्ष में मेरा जन्म दक्षिण गुजरात प्रान्त देश काठियावाड़ का मजोकठा देश मोर्वी का राज्य औदीच्य ब्राह्मण के घर में हुआ था, यहां अपना पिता का निज निवास स्थान के प्रसिद्ध नाम इसलिये मैं नहीं लिखता कि जो माता-पिता आदि जीते हों मेरे पास आवें तो इस सुधार के काम में विघ्न हो क्योंकि मुझको उनकी सेवा करना उनके साथ घूमने में श्रम और धन आदि का व्यय कराना नहीं चाहता[1] मैंने पांचवें वर्ष में देवनागरी अक्षर पढ़ने का आरम्भ किया था। और मुझको कुल की रीति की शिक्षा भी माता पिता आदि किया करते थे, बहुत से धर्मशास्त्रादि के श्लोक और सूत्रादिक भी कण्ठस्थ कराया करते थे। फिर आठवें वर्ष में मेरा यज्ञोपवीत कराके गायत्री संध्या और उसकी क्रिया भी सिखा दी गई थी। और मुझको यजुर्वेद की संहिता का आरम्भ कराके उसमें से प्रथम रुद्राध्याय पढ़ाया गया था, और मेरे कुल में शैव मत था उसी की शिक्षा भी किया करते थे। और पिता आदि लोग यह भी कहा करते थे कि पार्थिव पूजन अर्थात् मट्टी का लिङ्ग बनाके तूं पूजा कर। और माता मने किया करती थी कि यह प्रातःकाल भोजन कर लेता है इससे पूजा नहीं हो सकेगी पिताजी हठ किया करते थे कि पूजा अवश्य करनी चाहिये क्योंकि कुल की रीति है। तथा कुछ-कुछ व्याकरण का विषय और वेदों का पाठ मात्र भी मुझको पढ़ाया करते थे। पिताजी अपने साथ मुझको जहां तहां मन्दिर और मेल मिलापों में ले जाया करते और यह भी कहा करते थे कि शिव की उपासना सबसे श्रेष्ठ है। इस प्रकार १४ चौदहवें वर्ष की अवस्था के आरम्भ तक यजुर्वेद की संहिता संपूर्ण और कुछ अन्य वेदों का भी पाठ पूरा हो गया था। और शब्द रूपावली आदि छोटे-छोटे व्याकरण के ग्रन्थ भी पूरे हो गये थे। पिता जी जहां-जहां शिव पुराण आदि की कथा होती थी वहां, मुझ को पास बैठा कर सुनाया करते थे। और घर में भिक्षा की जीविका नहीं थी किंतु जिमीदार और लेन-देन से जीविका के प्रबन्ध करके सब काम चलाते थे। और मेरे पिता ने माता के मने करने पर भी पार्थिव पूजन का आरम्भ करा दिया था। जब शिवरात्रि आई तब १३ त्रयोदशी के दिन कथा का माहात्म्य सुना के शिवरात्रि के व्रत करने का निश्चय करा दिया। परंतु माता ने मने भी किया कि इससे व्रत नहीं रहा जायगा तथापि पिताजी ने व्रत का आरम्भ करा दिया। और जब १४ चतुर्दशी की साम हुई तब बड़े-बड़े वस्ती के रईस अपने पुत्रों के सहित मंदिरों में जागरण करने को गये वहां मैं भी अपने पिता के साथ गया और प्रथम प्रहर की पूजा भी करी दूसरे प्रहर की पूजा करके पुजारि[2] लोग बाहर निकलके सो गये। मैंने प्रथम से सुन रक्खा था कि सोने से शिवरात्रि का फल नहीं होता है। इसलिये अपनी आंखों में जल के छींटे मार के जागता रहा और पिता भी सो गये तब मुझ को शंका हुई कि जिसकी मैंने कथा सुनी थी वही यह महादेव है वा अन्य कोई क्योंकि वह तो मनुष्य के माफक एक देवता है। वह बैल पर चढ़ता, चलता फिरता, खाता पीता त्रिशूल हाथ में रखता डमरु बजाता वर और शाप देता और कैलाश का मालिक है इत्यादि प्रकार का महादेव कथा में सुना था, तब पिता जी को जगा के मैंने पूछा कि यह कथा का महादेव है वा कोई दूसरा तब पिता ने कहा कि क्यों पूछता है। तब मैंने कहा कि कथा का महादेव तो चेतन है वह अपने ऊपर चूहों को क्यों चढ़ने देगा और इसके ऊपर तो चूहे फिरते हैं तब पिताजी ने कहा कि कैलाश पर जो महादेव रहते हैं उनकी मूर्ति बना और आवाहन करके पूजा किया करते हैं अब कलियुग में उस शिव का साक्षात् दर्शन नहीं होता। इसलिए पाषाणादि की मूर्ति बना के उन महादेव की भावना रख कर पूजन करने से कैलाश का महादेव

१. यह संशोधन श्री महाराज ने स्वहस्त से हाशिये पर किया है।

२. स्वामी जी मंदिर के पुजारियों को विनोद में पुजारि—पूजा+अरि पूजा का शत्रु कहा करते थे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रसन्न हो जाता है। ऐसा सुन के मेरे मन में भ्रम हो गया कि इसमें कुछ गड़बड़ अवश्य है। और भूख भी बहुत लग रही थी पिता से पूछा कि मैं घर को जाता हूँ। तब उन्होंने कहा कि सिपाही को साथ लेके चला जा परन्तु भोजन कदाचित् मत करना। मैंने घर में जाकर माता से कहा कि मुझ को भूख लगी है। माता ने कुछ मिठाई आदि दिया उसको खाकर १ एक बजे पर सो गया। पिताजी प्रातःकाल रात्रि के भोजन को सुनके बहुत गुस्से हुये कि तैंने बहुत बुरा काम किया। तब मैंने पिता से कहा कि यह कथा का महादेव नहीं है इसकी पूजा मैं क्यों करूं। मन में तो श्रद्धा नहीं रही परन्तु ऊपर के मन पिताजी से कहा कि मुझको पढ़ने से अवकाश नहीं मिलता कि मैं पूजा कर सकूं। तथा माता और चाचा आदि ने भी पिता को समझाया इस कारण पिता भी शान्त हो गये कि अच्छी बात है पढ़ने दो। फिर निघण्टु निरुक्त और पूर्व मीमांसा आदि शास्त्रों के पढ़ने की इच्छा करके आरम्भ करके पढ़ता रहा और कर्मकाण्ड विषय भी पढ़ता रहा। मुझसे छोटी १ बहन फिर उससे छोटा एक भाई फिर भी एक बहन और एक भाई अर्थात् दो बहन और दो भाई और हुए थे तब तक मेरी १६ वर्ष की अवस्था हुई थी। पीछे मुझसे छोटी १४ वर्ष की जो बहन थी उसको हैजा हुआ एक रात्रि में कि जिस समय नाच हो रहाथा। नौकर ने खबर दी कि उसको हैजा हुआ है। तब सब जने वहां से तत्काल आए और वैद्य आदि बुलाये औषधि भी की तथापि चार घन्टे में उस बहन का शरीर छूट गया सब लोग रोने लगे। परन्तु मेरे हृदय में ऐसा धक्का लगा और भय हुआ कि ऐसे ही मैं भी मर जाऊंगा शोच विचार में पड़ गया। जितने जीव संसार में हैं उनमें से एक भी न बचेगा। इससे कुछ ऐसा उपाय करना चाहिए कि जिससे यह दुःख छूटे और मुक्ति हो अर्थात् इसी समय से मेरे चित्त में वैराग्य की जड़ पड़ गई। परन्तु यह विचार अपने मन में ही रक्खा किसी से कुछ भी न कहा। इतने में १९ वर्ष की जब अवस्था हुई तब जो मुझ से अति प्रेम करने वाले बड़े धर्मात्मा विद्वान् मेरे चाचा थे उनकी मृत्यु होने से अत्यन्त वैराग्य हुआ कि संसार में कुछ भी नहीं परन्तु यह बात माता-पिता से तो नहीं कही किन्तु अपने मित्रों से कहा कि मेरा मन गृहाश्रम करना नहीं चाहता। उन्होंने माता-पिता से कहा माता-पिता ने विचारा कि इसका विवाह शीघ्र कर देना चाहिये। जब मुझको मालूम पड़ा कि ये २० बीसवें वर्ष में ही विवाह कर देंगे तब मित्रों से कहा कि मेरे माता-पिता को समझा दो अभी विवाह न करें। तब उन्होंने एक वर्ष जैसे-तैसे विवाह रोका तब तक २० बीसवां वर्ष पूरा हो गया। तब मैंने पिताजी से कहा कि मुझे काशी में भेज दीजिये कि मैं व्याकरण ज्योतिष और वैद्यक आदि ग्रन्थ पढ़ आऊँ। तब माता-पिता और कुटुम्ब के लोगों ने कहा कि हम काशी को कभी न भेजेंगे जो कुछ पढ़ना हो सो यहीं पढ़ो। और अगली साल में तेरा विवाह भी होगा क्योंकि लड़की बाला नहीं मानता। और हमको अधिक पढ़ा के क्या करना है जितना पढ़ा है वही बहुत है। फिर मैंने पिता आदि से कहा कि मैं पढ़ कर आऊँ तब विवाह होना ठीक है तब माता भी विपरीत हो गई कि हम कही नहीं भेजते और अभी विवाह करेंगे। तब मैंने चाहा कि अब सामने रहना अच्छा नहीं। फिर ३ कोश ग्राम में अपनी जिमीदारी थी वहां एक अच्छा पण्डित था माता-पिता की आज्ञा लेके वहां जाकर उस पण्डित के पास मैं पढ़ने लगा। और वहां के लोगों से भी कहा कि मैं गृहाश्रम करना नहीं चाहता। फिर माता-पिता ने मुझे बुला के विवाह की तैय्यारी कर दी तब तक २१ इक्कीसवां वर्ष भी पूरा हो गया। जब मैंने निश्चित जाना कि अब विवाह किये बिना कदाचित् न छोड़ेंगे। फिर गुपचुप संवत् १९०३ के वर्ष घर छोड़ के संध्या के समय भाग उठा चार कोश पर एक ग्राम था वहां जाकर रात्रि को ठहर कर दूसरे दिन प्रहर रात्रि से उठ के १५ कोश चला परन्तु प्रसिद्ध ग्राम सड़क और जानकारों के ग्रामों को छोड़ के बीच-बीच में नित्य चलने का प्रारम्भ किया। तीसरे दिन मैंने किसी राज पुरुष से सुना कि फलाने का लड़का घर छोड़ कर चला गया उसको खोजने के लिये सवार और पैदल आदिमी यहां तक आये थे। जो मेरे पास थोड़े से रुपैये और अंगूठी आदि भूषण था वह सब पोपों ने ठग लिया। मुझसे कहा कि तुम पक्के वैराग्यवान् तब होंगे कि जब अपने पास की चीज सब

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पुण्य कर दो फिर उन लोगों के कहने से मैंने जो कुछ था सब दे दिया। फिर लाला भगत की जगह जो कि सायले शहर में है वहाँ बहुत साधुओं को सुन कर चला गया वहाँ एक ब्रह्मचारी मिला उसने मुझसे कहा कि तुम नैष्ठिक ब्रह्मचारी हो जाओ उसने मुझको ब्रह्मचारी की दीक्षा दी और शुद्ध चैतन्य मेरा नाम रक्खा तथा काषाय वस्त्र भी करा दिये। जब मैं वहां से अहमदाबाद के पास कौठ गांगड़ जोकि छोटा सा राज्य है वहां आया तब मेरे गाम के पास का जान पहचान वाला एक वैरागी मिला उसने पूछा कि तुम कहां से आये और कहां जाया चाहते हो। तब मैंने उससे कहा कि घर से आया और कुछ देश भ्रमण किया चाहता हूं। उसने कहा कि तुमने काषाय वस्त्र धारण करके क्या घर छोड़ दिया। मैंने कहा कि हां मैंने घर छोड़ दिया और कार्त्तिकी के मेले पर सिद्धपुर को जाऊंगा। फिर मैं वहां से चल कर सिद्धपुर में आके नीलकण्ठ महादेव की जगह में ठहरा कि जहां दण्डी स्वामी और ब्रह्मचारी ठहर रहे थे। उनका सत्संग और जो-जो कोई महात्मा वा पण्डित मेले में सुन पड़ा उन सबके पास गया और उनसे सत्संग किया। जो मुझको कौठ गांगड़ में वैरागी मिला था उसने मेरे पिता के पास पत्र भेजा कि तुम्हारा पुत्र ब्रह्मचारी हुआ काषाय वस्त्र धारण किये मुझ को मिला और कार्त्तिकी के मेले में सिद्धपुर को गया। ऐसा सुन के सिपाहियों के सहित पिताजी सिद्धपुर में आकर मेले में खोज कर पता लगाके जहां पंडितों के बीच में मैं बैठा था वहां पहुंच कर मुझ से बोले कि तूँ हमारे कुल में कलंक लगाने वाला पैदा हुआ। जब मैंने पिताजी की ओर देख के उठके चरण स्पर्श किया नमस्कार करके बोला कि आप क्रोधित मत हूजिये मैं किसी आदिमी के बहकाने से चला आया और मैंने बहुत सा दुःख पाया। अब मैं घर को आने वाला था। परन्तु अब आप आये यह बहुत अच्छा हुआ कि अब मैं साथ-साथ घर को चलूंगा। तो भी क्रोध के मारे मेरे गेरु के रंगे वस्त्र और एक तूंबे को तोड़ फार के फेंक दिये और वहां भी बहुत कठिन-कठिन बातें कह कर बोले कि तूँ अपनी माता की हत्या लिया चाहता है। मैंने कहा कि मैं अब घर को चलूंगा तो भी मेरे साथ सिपाही कर दिये कि क्षण भर भी इसको अकेला मत छोड़ो और इस पर रात्रि को भी पहरा रक्खो। परन्तु मैं भागने का उपाय देख रहा था। सो जब तीसरी रात के तीन बजे के पीछे पहरे वाला बैठा-बैठा सो गया उसी समय मैं लघु शंका का बहाना करके भागा। आध कोश पर एक मंदिर के शिखर में एक वृक्ष के सहारे से चढ़ और जल का लोटा भर के छिप कर बैठ रहा जब चार बजे का अमल हुआ तब मैंने उन्हीं सिपाहियों में से एक सिपाही मालियों से मुझ को पूछता सुना तब मैं और भी छिप गया ऊपर बैठा सुनता रहा वे लोग ढूंढ कर चले गये मैं उसी मंदिर की शिखर में दिन भर रहा। जब अन्धेरा हुआ तब उस पर से उतर सड़क को छोड़ के किसी से पूछा के दो कोश पर एक ग्राम था उसमें ठहर के अहमदाबाद होता हुआ बड़ोदरे शहर में आकर ठहरा। वहां चेतन मठ में ब्रह्मानन्द आदि ब्रह्मचारी और संन्यासियों से वेदान्त विषय की बहुत बातें की। और मैं ब्रह्म हूँ अर्थात् जीव ब्रह्म एक है ऐसा निश्चय उन ब्रह्मानन्दादि ने मुझको करा दिया प्रथम वेदान्त पढ़ते समय भी कुछ-कुछ निश्चय हो गया था परन्तु वहां ठीक दृढ़ हो गया कि मैं ब्रह्म हूँ। फिर वहीं बड़ोदे में एक बनारसी बाई वैरागी का स्थान सुनकर उसमें जाके एक सच्चिदानन्द परमहंस से भेंट करके अनेक प्रकार की शास्त्र विषयक बातें हुई फिर वहां सुना कि आजकल चाणोद कन्याली में बड़े-बड़े संन्यासी ब्रह्मचारी और विद्वान् ब्राह्मण रहते हैं। वहां जाके दीक्षित और चिदाश्रमादि स्वामी ब्रह्मचारी और पण्डितों से अनेक विषयों का परस्पर संभाषण हुआ। फिर एक परमानन्द परमहंस से वेदान्त-सार आर्य्या हरिमीड़े तोटक वेदान्त परिभाषा आदि प्रकरणों का थोड़े महिनों में विचार कर लिया। उस समय ब्रह्मचर्य्यावस्था में कभी-कभी अपने हाथ से रसोई बनाने पड़ती थी इस कारण पढ़ने में विघ्न विचार के चाहा कि अब संन्यास ले लेना अच्छा है। फिर एक दक्षिणी पण्डित के द्वारा वहां जो दीक्षित स्वामी विद्वान् थे उनको कहलाया कि आप उस ब्रह्मचारी को संन्यास की दीक्षा दे दीजिये। क्योंकि मैं अपना ब्रह्मचारी का नाम भी बहुत प्रसिद्ध करना नहीं चाहता था क्योंकि घर का

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भय बड़ा था जोकि अब तक बना है। तब उन्होंने कहा कि उसकी अवस्था कम है इसलिये हम नहीं देते। इसके अनन्तर दो महिने के पीछे दक्षिण से एक दण्डी स्वामी और एक ब्रह्मचारी आके चाणोद से कुछ कम कोश भर मकान जो कि जंगल में था उसमें ठहरे उनको सुनकर एक दक्षिणी वेदान्ति पण्डित और मैं दोनों उनके पास जाके शास्त्र विषयक संभाषण करने से मालूम हुआ कि अच्छे विद्वान् हैं। और वे शृंगीरी मठ की ओर से आके द्वारिका की ओर को जाते थे उनका नाम पूर्णानन्द सरस्वती था। उनसे उस वेदान्ति के द्वारा कहलाया कि ये ब्रह्मचारी विद्या पढ़ना चाहते हैं। यह मैं ठीक जानता हूँ कि किसी प्रकार का अपगुण इनमें नहीं है इनको आप संन्यास दे दीजिये संन्यास लेने का इनका प्रयोजन यही है कि निर्विघ्न विद्या का अभ्यास कर सकें। तब उन्होंने कहा कि किसी गुजराती स्वामी से कहो क्योंकि हम तो माराष्ट्र हैं। तब उनसे कहा कि दक्षिणी स्वामी गौडों को भी संन्यास देते हैं तो यह ब्रह्मचारी तो पंच द्राविड़ है इसमें क्या चिन्ता है। तब उन्होंने मान लिया और उसी ठिकाने तीसरे दिन संन्यास की दीक्षा दण्ड ग्रहण कराया और दयानन्द सरस्वती नाम रक्खा। परन्तु मैंने दण्ड का विसर्जन भी उन्हीं स्वामी जी के साम्हने कर दिया क्योंकि दण्ड की भी बहुत सी क्रिया है कि जिससे पढ़ने में विघ्न हो सकता था। फिर वे स्वामी जी द्वारिका की ओर चले गये। मैं कुछ दिन चाणोद कन्याली में रहके व्यासाश्रम में एक योगानन्द स्वामी को सुना कि वे योगाभ्यास में अच्छे हैं उनके पास जाके योगाभ्यास की क्रिया सीख के एक कृष्ण शास्त्री छिनौर शहर के बाहर रहते थे उनको सुनके व्याकरण पढ़ने के लिये उनके पास गया और कुछ व्याकरण का अभ्यास करके फिर चाणोद में आकर ठहरा वहाँ दो योगी मिले कि जिनका नाम ज्वालानन्दपुरी और शिवानन्द गिरि था। उनसे भी योगाभ्यास की बातें हुई और उन्होंने कहा कि तुम अहमदाबाद में आओ वहां हम नदी के ऊपर दूधेश्वर महादेव में ठहरेंगे। वहां आवोगे तो योगाभ्यास की रीति सिखलावेंगे। वहाँ से वे अहमदाबाद को चले गये फिर एक महिने के पीछे मैं भी अहमदाबाद में जाके उनसे मिला और योगाभ्यास की रीति सीखी। फिर आबूराज पर्वत में योगियों को सुनके वहां जाके अर्वदा भवानी आदि स्थानों में भवानीगिरि आदि योगियों से मिल के कुछ और योगाभ्यास की रीति सीख के संवत् १९११ के वर्ष के अन्त में हरद्वार के कुम्भ के मेले में आके बहुत साधु संन्यासियों से मिला और जब तक मेला रहा तब तक चण्डी के पहाड़ के जंगल में योगाभ्यास करता रहा। जब मेला हो चुका तब हृषीकेश में जाके संन्यासियों और योगियों से योग की रीति सीखता और सत्संग करता रहा॥

इसके आगे फिर लिखेंगे

दयानन्दसरस्वती

फिर वहां से एक ब्रह्मचारी और दो पहाड़ी साधु मेरे साथ आये हम सब जने टिहरी में आए वहाँ बहुत साधु और राजपंडितों से समागम हुआ। वहाँ एक पण्डित ने एक दिन मुझे और ब्रह्मचारी को अपने घर में भोजन करने के लिये निमंत्रण दिया। समय पर उसका एक मनुष्य बुलाने को आया। तब मैं और ब्रह्मचारी उसके घर भोजन करने को गये। जब उसके घर के द्वार में घुस करके देखा तो एक ब्राह्मण मांस को काटता था। उसको देखकर जब भीतर गये तब बहुत से पण्डितों को एक सिमियाने के भीतर बैठे देखे और वहाँ बकरे का मांस, चमड़ा और शिर देख के पीछे लौटे। पण्डित देख के बोला कि आइये। तब मैंने उत्तर दिया कि आप अपना काम कीजिये। हम बाहर जाते हैं। ऐसा कह कर अपने स्थान चले आये। तब पण्डित भी हमको बुलाने आया। उनसे मैंने कहा कि तुम सूखा अन्न भेज दो। हमारा ब्रह्मचारी बना लेगा। पण्डित बोले कि आपके लिए तो सब पदार्थ बनाये हैं। मैंने उनसे कहा कि आपके घर में मुझ से भोजन कदापि न किया जावेगा। क्योंकि आप लोग मांसाहारी है। और मुझको देखने से घृणा आती है। फिर पण्डित ने अन्न भेज दिया। पीछे वहाँ कुच्छ दिन ठहर कर पण्डितों से पूछा कि इस पहाड़ देश में कौन-कौन शास्त्र

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

के ग्रन्थ देखने को मिलते हैं। मैं देखना चाहता हूँ। तब उन्होंने कहा कि व्याकरण, काव्य, कोष, ज्योतिष, और तंत्र ग्रन्थ बहुत मिलते हैं। तब मैंने कहा कि और ग्रन्थ तो मैंने देखे हैं परन्तु तंत्र ग्रन्थ देखना चाहता हूँ। तब उन्होंने छोटे बड़े ग्रन्थ मुझको दिये। मैंने देखे तो बहुत भृष्टाचार की बातें उनमें देखी कि माता, कन्या, भगिनी, चमारी, चांडाली, आदि से संगम करना, नग्न करके पूजना। मद्य, मांस, मच्छी, मुद्रा अर्थात् ब्राह्मण से लेके चांडाल पर्य्यन्त एकत्र भोजन करना और उक्त स्त्रियों से मैथुन करना इन पांच मकारों से मुक्ति का होना आदि लेख उनमें देख के चित्त को खेद हुआ कि जिनने ये ग्रन्थ बनाये हैं वे कैसे नष्टबुद्धि थे। फिर वहाँ से श्रीनगर को जाके केदार घाट पर मंदिर में ठहरे और वहाँ भी तंत्र ग्रन्थों का देखना और पण्डितों से इस विषय में संवाद होता रहा। इतने में एक गंगागिरि साधु जो कि पहाड़ में ही रहता था उससे भेंट हुई और योग विषय में कुच्छ बातचीत होने से विदित हुआ कि यह साधु अच्छा है। कई बार उससे बातें हुई। मैंने उससे पूछा उसने उत्तर दिया उसने मुझसे पूछा उसका उत्तर मैंने दिया। दोनों प्रसन्न होकर दो महिने तक वहाँ रहे। जब वर्षा ऋतु आई तब आगे रुद्र प्रयागादि देखता हुआ अगस्त मुनि के स्थान पर पहुंच कर उसके उत्तर पहाड़ पर एक शिवपुरी स्थान है वहाँ जाकर चार महिने निवास करके पीछे उन साधु और ब्रह्मचारी को वहाँ छोड़ के अकेला केदार की ओर चलता हुआ गुप्त काशी में पहुंचा। वहाँ कुच्छ दिन रह कर वहाँ से आगे चल के त्रियुगी-नारायण का स्थान और गौरीकुण्ड देखता हुआ भीम गुफा देखकर थोड़े ही दिनों में केदार में पहुंच कर निवास किया। वहाँ कई एक साधु पण्डे और केदार के पूजारी जङ्गम मत के थे उनसे समागम हुआ तब तक पांच छः दिन के पीछे वे साधु और ब्रह्मचारी भी वहाँ आ गये। वहाँ का सब चरित्र देखा। फिर इच्छा हुई कि इन बर्फ के पहाड़ों में भी कुच्छ घूम के देखें कि कोई साधु महात्मा रहता है वा नहीं परन्तु मार्ग कठिन और उन पहाड़ों में अतिशीत भी है। वहाँ के निवासियों से भी पूछा कि इन पहाड़ों में कोई साधु महात्मा रहता है वा नहीं। उन्होंने कहा कि कोई नहीं। फिर वहाँ २० बीस (दिन) रहकर पीछे को अकेला ही लौटा क्योंकि वह ब्रह्मचारी और साधु दो दिन रह कर शीत से घभरा के प्रथम ही चले गये थे। फिर मैं वहाँ से चल के तुङ्गनाथ के पहाड़ पर चढ़ गया। उसका मंदिर पूजारी बहुत सी मूर्ति आदि की सब लीला को देख कर तीसरे पहर वहाँ नीचे को उतरा। बीच में से दो मार्ग थे एक पश्चिम को और एक पश्चिम और दक्षिण के बीच को जाता था जो जङ्गली मार्ग था मैं उसमें चढ़ गया। आगे दूर जाकर देखा तो जंगल पहाड़ और बहुत गहरा सूखा नाला है उसमें मार्ग बंद हो रहा है। विचारा कि जो पहाड़ पर चढ़े तो रात हो जावेगा पहाड़ का मार्ग कठिन है वहाँ पहुंच नहीं सकता। ऐसा विचार उस नाले में बड़ी कठिनता से घास और वृक्षों को पकड़-पकड़ नीचे उतर कर नाले के किनारे पर चढ़ कर देखा तो पहाड़ और जङ्गल है कहीं भी मार्ग नहीं। तब तक सूर्य्य अस्त होने को आया विचारा कि जो रात हो जावेगी तो यहाँ जल अग्नि कुच्छ भी नहीं है फिर क्या करेंगे ऐसा विचार कर आगे को बढ़ा जङ्गल में चलते अनेक ठोकर और कांटे लगे शरीर के वस्त्र भी फट गये। बड़ी कठिनता से पहाड़ के पार उतरा तब सड़क मिला। और अंधेरा भी हो गया। फिर सड़क-सड़क चल के एक स्थान मिला वही के लोगों से पूछा कि यह कहाँ की सड़क है कहा कि ओखी मठ का। फिर वहां रात्रि को रहकर क्रम से गुप्त काशी आया वहाँ थोड़ा ठहर कर ओखी मठ में जाकर उसमें ठहर के देखा तो बड़ी भारी पोप लीला बड़े भारी कारखाने। वहाँ के महान्त ने कहा कि तुम हमारे चेले हो जाओ यहाँ रहो, लाखों के कारखाने तुम्हारे हाथ हो जावेंगे मेरे पीछे तुम्ही महान्त होंगे। मैंने उनको उत्तर दिया कि सुनो ऐसी मेरी इच्छा होती तो अपने माता, पिता, बंधु, कुटुम्ब, और घर आदि ही क्यों छोड़ता क्या तुम्हारा स्थान और तुम उनसे भी अधिक हो सकते हो। मैंने जिस लिये सब छोड़े हैं वह तुम्हारे पास किंचिन्मात्र भी नहीं है उनने पूछा कि कह क्या बात है। मैंने उत्तर दिया कि सत्य विद्या,योग, मुक्ति और अपने आत्मा का पवित्रता आदि गुणों से धर्म्मात्मता पूर्वक उन्नति करना है। तब महान्त ने कहा कि अच्छा तुम कुच्छ दिन यहाँ रहो। मैंने उनको कुच्छ उत्तर न दिया और प्रातःकाल उठके मार्ग में चल के जोशी मठ को पहुंच

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

के वहां के दक्षिणी शास्त्री और संन्यासी थे उनसे मिल कर वहाँ ठहरा ॥

दयानन्दसरस्वती

और बहुत से योगियों और विद्वान् महन्तों और साधुओं से भेंट हुई और उनसे वार्तालाप में मुझको योग विद्या सम्बन्धी और बहुत नई बातें ज्ञात हुई।

उनसे पृथक् होकर पुनः मैं बद्रीनारायण को गया। विद्वान् रावल जी उस समय उस मंदिर का मुख्य महन्त था। और मैं उसके साथ कई दिन तक रहा। हम दोनों का परस्पर वेदों और दर्शनों पर बहुत वाद विवाद रहा। जब उनसे मैंने पूछा कि इस परिस्थिति में कोई विद्वान् और सच्चा योगी भी है या नहीं, तो उसने यह जताने में बड़ा शोक प्रकट किया कि इस समय इस परिस्थिति में कोई ऐसा योगी नहीं है। परन्तु उसने बताया कि मैंने सुना है कि प्रायः ऐसे योगी इसी मंदिर के देखने के लिये आया करते हैं। उस समय मैंने यह दृढ़ संकल्प कर लिया, कि समस्त देशों में और विशेषतः पर्वतीय स्थलों में अवश्य ऐसे पुरुषों का अन्वेषण करूंगा। एक दिन सूर्योदय के होते ही मैं अपनी यात्रा पर चल पड़ा और पर्वत की उपत्यका में होता हुआ अलखनंदा नदी के तट पर जा पहुंचा। मेरे मन में उस नदी के पार करने की किंचित इच्छा न थी। क्योंकि मैंने उस नदी के दूसरी ओर एक बड़ा ग्राम माना नामक देखा, अतः अभी उस पर्वत की उपत्यका में ही अपनी गति रख कर नदी के वेग के साथ साथ मैं जंगल की ओर हो लिया। पर्वत, मार्ग और टीले आदि सब हिम के वस्त्र पहने हुये थे। और बहुत घनी हिम उनके ऊपर थी। अतः अलखनंदा नदी के स्रोत तक पहुंचने में मुझको अत्यन्त कष्ट उठाने पड़े। परन्तु जब मैं वहाँ गया तो अपने आपको सर्वथा अपरिचित और अजान जाना। और अपने चारों ओर ऊंची ऊंची पहाड़ियाँ देखी तो मुझे आगे जाने का मार्ग बंद दिखाई दिया। कुछ ही काल पश्चात् पथ सर्वथा लुप्त हो गया, और उस मार्ग का मुझ को कोई पता न मिला। उस समय मैं सोच व चिंता में था कि क्या करना चाहिये। अन्ततः अपना मार्ग अन्वेषण करने के अर्थ मैंने नदी को पार करने का दृढ़ निश्चय कर लिया। मेरे पहने हुए वस्त्र बहुत हलके और थोड़े थे और शीत अत्यधिक था। कुछ ही काल पश्चात् शीत ऐसा अधिक हुआ कि उसका सहन करना असम्भव था। क्षुधा और पिपासा ने जब मुझे अत्यन्त बाधित किया तो मैं एक हिम का टुकड़ा खाकर उसको बुझाने का विचार किया, परन्तु उससे किंचित् आराम वा संतुष्टि प्रतीत न हुई। पुनः मैं नदी में उतर उसे पार करने लगा।

कतिपय स्थानों पर नदी बहुत गम्भीर थी और कहीं पानी बहुत कम था। परन्तु एक हाथ या आध गज से कम गहरा कहीं न था। किन्तु विस्तार अर्थात् पार में दस हाथ तक था अर्थात् कहीं से चार गज और कहीं से पांच गज। नदी हिम के छोटे और तिरछे टुकड़ों से भरी हुई थी। उन्होंने मेरे पांव को अति घावयुक्त कर दिया सो मेरे नग्न पांव से रक्त बहने लगा। मेरे पांव शीत के कारण नितान्त सन्न हो गये थे। जिस कारण मैं बड़े-बड़े घावों से भी कुछ काल तक अचेत रहा। इस स्थान पर अतिशीत के कारण मुझ पर अचेतनता सी छाने लगी। यहां तक कि मैं अचेतन अवस्था में होकर हिम पर गिरने को था जब मुझे विदित हुआ कि यदि मैं यहां पर इसी प्रकार गिर गया तो पुनः यहां से उठना मेरे लिये अत्यन्त असम्भव और कठिन होगा। एवं दौड़ धूप करके जैसे हुआ मैं प्रबल प्रयत्न करके वहां से कुशल मंगल पूर्वक निकला और नदी के दूसरी ओर जा पहुंचा। वहां जाकर यद्यपि कुछ काल तक मेरी अवस्था ऐसी रही जो जीवित की अपेक्षा मृतवत् थी तथापि मैंने अपने शरीर के उपरिभाग को सर्वथा नंगा कर लिया और अपने समस्त वस्त्रों से जो मैंने पहने हुये थे जानु वा पांव तक जंघा को लपेट लिया। और वहां पर मैं सर्वथा शक्तिहीन और घबराया हुआ आगे को हिल सकने और चल सकने में अशक्त खड़ा हो गया। इस प्रकार प्रतीक्षा में था कि कोई सहायता मिले जिससे मैं आगे को चलूं। परन्तु इस बात की कोई आशा न थी कि वह आवेगी कहाँ से? सहायता की आशा में था, परन्तु सर्वथा विवश था और जानता था कि कोई सहायता का स्थान दिखाई नहीं

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

देता। अन्त को पुनः एक बार मैंने अपने चारों ओर दृष्टि की और अपने सम्मुख दो पहाड़ी पुरुषों को आते हुये देखा जो मेरे समीप आये और अपने काश सम्भ से (?) मुझ को प्रणाम करके उन्होंने अपने साथ घर जाने के लिये मुझे बुलाया और कहा, "आओ, हम तुमको वहां खाने को भी देवेंगे।" "जब उन्होंने मेरे क्लेशों को सुना और मेरे वृत्त को श्रवण किया तो कहने लगे "हम तुमको सिद्धपत पर भी जो एक तीर्थस्थान है, पहुँचा देवेंगे। "परन्तु उनका मुझको यह सच कहना अच्छा प्रतीत न हुआ। मैंने अस्वीकार किया और कहा "महाराज, शोक! मैं आपकी यह सब कृपा स्वीकार नहीं कर सकता क्योंकि मुझ में चलने की किंचित शक्ति नहीं है।" यद्यपि उन्होंने मुझको बहुत आग्रह पूर्वक बुलाया और आने के लिये अत्यधिक अनुरोध किया; तथापि मैं वहीं अपने पांव जमाये खड़ा रहा और उनकी आज्ञा वा इच्छानुकूल मैं उनके पीछे चलने का साहस न कर सका। मैंने उनसे कह दिया कि यहां से हिलने का प्रयत्न करने की अपेक्षा मैं मर जाना उत्तम समझता हूं। ऐसा कह कर मैंने उनकी बातों की ओर ध्यान करना भी बंद कर दिया अर्थात् पुनः उन्हें न सुना। उस समय मेरे मन में विचार आता था कि उत्तम होता यदि मैं लौट जाता और अपने पाठ को स्थिर रखता इतने में वह दोनों सज्जन वहां से चले गये और कुछ ही काल में पर्वतों में लुप्त हो गये।

वहां जब मुझे शांति प्राप्त हुई तो मैं भी आगे को चला और कुछ काल वसुधारा (प्रसिद्ध तीर्थ व यात्रा स्थान) पर विश्राम करके माना ग्राम के निकटवर्ती प्रदेश में होता हुआ उसी सायं लगभग आठ बजे बद्री-नारायण जा पहुंचा। मुझे देख कर रावलजी और उनके साथी जो घबराये हुए थे, विस्मय प्रकाश पूर्वक पूछने लगे—"आज सारा दिन तुम कहाँ रहे?" तब मैंने सब वृत्तान्त क्रमबद्ध सुनाया उस रात्रि कुछ आहार करके जिससे मेरी शक्ति लौटती हुई जान पड़ी, मैं सो गया। दूसरे दिन प्रातः शीघ्र ही उठा और रावलजी से आगे जाने की आज्ञा मांगी। और अपनी यात्रा से लौटता हुआ रामपुर की ओर चल पड़ा। उस सायं चलता-चलता एक योगी के घर पहुंचा। वह बड़ा तपस्वी था। रात्रि उसी के घर काटी। वह पुरुष जीवित ऋषि और साधुओं में उच्च कोटि के ऋषि होने का गौरव रखता था। धार्मिक विषयों पर बहुत काल तक उसका मेरा वार्तालाप हुआ। अपने संकल्पों को पहले से अधिक दृढ़ करके मैं आगामी दिन प्रातः उठते ही आगे को चल दिया। कई वनों और पर्वतों से होता हुआ चिलका घाटी से उतर कर मैं अन्ततः रामपुर पहुंच गया। वहां पहुंच कर मैंने प्रसिद्ध रामगिरि के स्थान पर निवास किया। यह पुरुष पवित्राचार और आध्यात्मिक जीवन के कारण अतिप्रसिद्ध था। मैंने उसको विचित्र प्रकृति का पुरुष पाया। अर्थात् वह सोता नहीं था, वरन् सारी-सारी रातें उच्चस्वर से बातें करने में व्यतीत करता। वह बातें प्रकट में अपने साथ करता हुआ ही प्रतीत होता था। प्रायः हमने उच्च स्वर से चीख मारते हुये उसे सुना। पुनः कई बार रोते हुये और चीख मारते हुये सुना। पर वस्तुतः जब उठ कर देखा तो उसके कमरे में उसके अतिरिक्त और कोई पुरुष दिखाई न दिया। मैं ऐसी वार्ता से अत्यन्त विस्मित हुआ। जब मैंने उसके चेलों और शिष्यों से पूछा तो उन विचारों ने केवल यही उत्तर दिया कि ऐसी इनकी प्रकृति ही है।" पर मुझे यह कोई न बता सका कि इसका क्या रहस्य है। अन्त को स्वयं जब मैंने उस साधु से कई बार एकान्त में चर्चा की तो मुझे ज्ञात हो गया कि वह क्या बात थी? इस प्रकार मैं इस निश्चय करने के योग्य हो गया कि अभी वह जो कुछ करता है वह पूरी-पूरी योग विद्या का फल नहीं है, प्रत्युत पूरी में अभी उसे न्यूनता है और यह वह वस्तु नहीं कि जिसकी मुझे जिज्ञासा है। यह पूरा योगी नहीं यद्यपि योग में कुछ गति रखता है।

उससे चलकर मैं काशीपुर गया। वहां से द्रोण सागर जा पहुंचा। वहीं मैंने सारा शरद् ऋतु काटा। हिमालय पर्वत पर पहुंच कर देह त्याग करना चाहिये, ऐसी इच्छा हुई। परन्तु मन में यह विचार आ गया कि ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् देह छोड़ना चाहिये। अतः वहां से मुरादाबाद होता हुआ सम्भल आ पहुँचा। वहां से गढ़मुक्तेश्वर से होते हुये पुनः मैं गंगा तट पर आ निकला। उस समय अन्य धार्मिक पुस्तकों के अतिरिक्त मेरे पास निम्न लिखित पुस्तकें भी थीं। शिव संध्या, हठ योग प्रदीपिका,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

केशाराणि संगीत (?) प्रायः मैं इन्हीं पुस्तकों को यात्रा में पढ़ा करता था। उनमें से कई पुस्तकों का विषय नाड़ी चक्र था। पर उनमें इस विषय का ऐसा लम्बा चौड़ा विवरण था कि 'पुरुष पढ़ता-पढ़ता थक जाता। मैं उन्हें कभी भी पूर्णतया अपनी बुद्धि में न ला सका और न ही समझकर स्मरण कर सका। अतः मुझे विचार हुआ कि न जाने ये सत्य भी हैं व नहीं। ऐसा संदेह होता ही गया, यद्यपि मैं अपने संशय मिटाने का यत्न करता रहा। परन्तु वह संदेह दूर न हुये और न ही उनके दूर करने का कोई अवसर प्राप्त हुआ।

एक दिन दैव संयोग से एक शव मुझे नदी में बहता हुआ मिला। तब समुचित अवसर प्राप्त हुआ कि मैं उसकी परीक्षा करता और अपने मन में उन पुस्तकों के सम्बन्ध में जो विचार उत्पन्न हो चुके थे उनका निर्णय करता। सो उन पुस्तकों को जो मेरे पास थीं, समीप ही एक ओर रख, वस्त्रों को ऊपर उठा मैं नदी के भीतर गया और शीघ्र वहां जा शव को पकड़ तट पर आया। मैंने तीक्ष्ण चाकू से जैसा हो सका उसे यथायोग्य काटना प्रारम्भ किया और हृदय को उसमें से निकाल लिया और ध्यान-पूर्वक देख परीक्षा की। अब पुस्तकोल्लिखित वर्णन की उससे तुलना करने लगा। ऐसे ही शिर और ग्रीवा के अंगों को काट कर सामने रक्खा। यह निश्चय करके कि दोनों अर्थात् पुस्तक और शव लेश मात्र भी परस्पर नहीं मिलते, मैंने पुस्तकों को फाड़ कर उनके टुकड़े कर डाले और शव को फेंक साथ ही पुस्तकों के टुकड़ों को भी नदी में फेंक दिया। उसी समय से शनैः शनैः मैं यह परिणाम निकालता गया, कि वेदों, उपनिषदों, पातञ्जल और सांख्य शास्त्र के अतिरिक्त अन्य समस्त पुस्तकें जो विज्ञान और योग विद्या पर लिखी गयीं मिथ्या और अशुद्ध हैं। ऐसे ही कुछ दिन और गंगा तीर पर विचरते हुये फर्रूखा-बाद पहुंचा। और शृंगीराम पुर से होकर छावनी की पूर्व दिशा वाली सड़क से कानपुर जाने वाला था, जब संवत् १९१२ विक्रम समाप्त हुआ।

१९१३ वि० अगले पांच मास में कानपुर वा प्रयाग के मध्यवर्ती अनेक प्रसिद्ध स्थान मैंने देखे। भाद्रपद के प्रारम्भ में मिर्जापुर पहुंचा। वहां एक मास से अधिक विंध्याचल अशोलजी के मंदिर में निवास किया। असूज के आरम्भ में काशी पहुंचा। वहां जाके मैं उस गुफा में ठहरा जो वरणा और गंगा के संगम पर है। और जो उस समय भवानन्द सरस्वती के अधिकार में थी। वहां पर कई शास्त्रियों अर्थात् काकाराम, राजाराम आदि से मेरा परिचय हुआ परन्तु वहां केवल १२ ही दिन रहा।

तत्पश्चात् जिस वस्तु की खोज में था उसके अर्थ आगे को चल दिया। और असूज सुदि २ सं० १९१३ को दुर्गाकुण्ड के मंदिर पर जो चण्डालगढ़ में है, पहुंचा। वहां दस दिन व्यतीत किये। यहां मैंने चावल खाने सर्वथा छोड़ दिये और केवल दूध पर अपना निर्वाह करके दिन-रात योग विद्या के अध्ययन और अभ्यास में तत्पर रहा। दौर्भाग्यवश वहां मुझे एक बड़ा दोष लग गया, अर्थात् भांग पीने का स्वभाव हो गया। सो कई बार उसके प्रभाव से मैं सर्वथा बेसुध हो जाया करता। एक दिन मंदिर से निकल कर चण्डालगढ़ के निकटस्थ जो एक ग्राम आता था तो एक पुराना साथी मिला। ग्राम के दूसरी ओर कुछ ही दूर एक शिवालय था। वहां जाकर मैंने रात काटी। रात्रि के समय भांग से उत्पन्न हुई मादकता के कारण जब मैं अचेत सोता था तो मैंने एक स्वप्न देखा। वह ऐसे था। मुझे विचार हुआ कि मैंने महादेव और उनकी स्त्री पार्वती को देखा। वे परस्पर वार्त्तालाप कर रहे थे और उनकी बातों का पात्र मैं था, अर्थात् मेरे ही सम्बन्ध में वे कह रहे थे। पार्वती महादेव जी से कहती थी "उत्तम हो यदि दयानन्द सरस्वती का विवाह हो जावे" परन्तु देवता इससे भेद प्रकट कर रहे थे और उनका संकेत भांग की ओर था। मैं जागा और स्वप्न पर विचार करने लगा। तब मुझे बड़ा दुःख और क्लेश हुआ। उस समय धारासार वर्षा हो रही थी। मैंने उस बरामदे में जो मंदिर के मुख्य द्वार के सन्मुख थे विश्राम किया। वहां नन्दी वृष-देवता की एक विशाल मूर्ति खड़ी थी। अपने वस्त्र और पुस्तकादि उसकी पृष्ठ पर रखकर मैं उसके पीछे बैठ गया और निज विचार में निमग्न हुआ। सहसा नन्दी मूर्ति के भीतर दृष्टिपात करने पर मुझे विदित हुआ कि एक मनुष्य उसमें छिपा हुआ है। मैंने अपना हाथ उसकी ओर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

फलाया। इससे वह अति भयभीत हुआ, क्योंकि मैंने देखा कि उसने तत्काल छलांग मारी और छलांग मारते ही वेग ग्राम की ओर भागा। तब उसके जाने पर मैं उस ही मूर्ति के भीतर बैठ गया और अवशिष्ट रात्रि भर वहां सोता रहा। प्रातः काल एक वृद्धा वहां आई। उसने वृष देवता की पूजा की, जिस अवस्था में कि मैं भी उसके अन्दर ही बैठा हुआ था। कुछ देर पीछे वह गुड़ और दही लेकर लौटी। मेरी पूजा करके और भ्रान्ति से मुझे ही देवता समझकर उसने कहा "आप इसे ग्रहण कीजिये और इसमें से कुछ खाइये।" मैंने क्षुधार्त्त होने के कारण वह सब खा लिया। दही क्योंकि बहुत खट्टा था, अतः भांग की मादकता के दूर करने में एक अच्छा निदान हो गया। उससे मादकता जाती रही और मुझे बहुत आराम प्रतीत हुआ।

चैत्र १९१४–वहां से आगे चला और वह मार्ग पकड़ा कि जिस ओर पर्वत थे और जहां से नर्मदा निकलती है, अर्थात् नर्मदा के स्रोत की ओर यात्रा आरम्भ की। मैंने कभी एक बार भी किसी से मार्ग नहीं पूछा प्रत्युत दक्षिण की ओर यात्रा करता हुआ चला गया। शीघ्र ही मैं एक ऐसे उजाड़, निर्जन स्थान में पहुंच गया जहां चारों ओर बहुत घने वन और जंगल थे। वहां जंगल में अनियमित दूरी पर बिना क्रम झाड़ियों के मध्य में कई स्थानों पर मलिन और उजाड़ झोंपड़ियां थी। कहीं-कहीं पृथक्-पृथक् ठीक झोंपड़ियां भी दृष्टिगोचर होती थीं। उन झोंपड़ियों में से एक पर मैंने किञ्चित दुग्धपान किया और पुनः आगे की ओर चल दिया। परन्तु इसके आगे लगभग पौन कोस चलकर मैं पुनः एक ऐसे ही स्थान पर पहुंचा जहां कोई प्रसिद्ध मार्ग आदि दिखाई न देता था। अब मेरे लिये यही उचित प्रतीत होता था कि उन छोटे-छोटे मार्गों में से (जिन्हें मैं न जानता था कि कहां जाते हैं।) कोई एक चुनूं और उस ओर चल दूं। सुतरां मैं शीघ्र ही एक निर्जन वन से प्रविष्ट हुआ। उस जंगल में बेरियों के बहुत वृक्ष थे। परन्तु घास इतना घना और लम्बा था कि मार्ग सर्वथा दृष्टिगोचर न होता था। वहां मेरा सामना एक बड़े काले रीछ से हुआ। वह पशु बड़े वेग और उच्च स्वर से चींखा। चिंघाड़ कर अपनी पिछली टांगों पर खड़ा हो मुझे खाने के निमित्त उसने अपना मुख खोला। कुछ काल तक मैं निष्क्रिय स्तब्धवत् खड़ा रहा। पश्चात् शनैः शनैः मैंने अपने सोटे को उसकी ओर उठाया। उससे भयभीत हो वह उलटे पांव लौट गया। उसकी चिंघाड़ वा गर्ज ऐसी बलपूर्ण थी कि ग्राम वाले जो मुझे अभी मिले थे, दूर से उसका शब्द सुन कर लठ ले शिकारी कुत्तों सहित मेरी रक्षार्थ वहां आये। उन्होंने मुझे यह समझाने का परिश्रम किया कि मैं उनके साथ चलूं। वे बोले "इस जंगल में यदि तुम कुछ भी आगे बढ़ोगे तो तुम्हें संकटों का सामना करना पड़ेगा। पर्वत या वन में बहुत से भयानक क्रूर और हिंसक जंगली पशु अर्थात् रीछ, हाथी, शेर आदि तुमको मिलेंगे।" मैंने उनसे निवेदन किया कि आप मेरे कुशल मंगल का कुछ भय न करें क्योंकि मैं कुशल मंगल, और रक्षित हूं। मेरे मन में तो यहीं सोच थी कि किसी प्रकार नर्मदा का स्रोत देखूं। अतः समस्त भय और कष्ट मुझे अपने संकल्प से न रोक सकते थे। जब उन्होंने देखा कि उनकी भयानक बातें मेरे लिये कोई भय उत्पन्न नहीं करतीं और मैं अपने संकल्प में पक्का हूं तो उन्होंने मुझे एक दण्ड दिया जो मेरे सोटे से बड़ा था और जिससे मैं अपनी रक्षा करूं। परंतु मैंने उस दण्ड को तुरन्त अपने हाथ से फेंक दिया।

उस दिन जब तक कि संसार में चारों ओर अन्धकार न छाया मैं बराबर यात्रा करता हुआ चला गया। कई घण्टों तक मानव बस्ती का मुझे कोई चिह्न न मिला। दूर-दूर तक कोई ग्राम दिखाई न दिया। कोई झोंपड़ी भी तो दृष्टिगोचर न होती थी और न ही कोई मनुष्य जाति मेरी आंखों के सामने आई। पर वह वस्तुएँ जो प्रायः मेरे मार्ग में आई, वृक्ष थे। उनमें से अनेक टूटे पड़े थे कि जिनकी जड़ों को मस्त हस्तियों ने तोड़ और उखेड़ कर फेंक दिया था। इससे कुछ दूर आगे मुझे एक विशाल विकट वन दिखाई दिया। उसमें प्रवेश करना कठिन था अर्थात् बेर आदि कांटे वाले वृक्ष इतने घने लगे हुए थे कि उनके भीतर से निकल कर वन में पहुंचना अति दुस्तर प्रत्युत असम्भव प्रतीत होता था। प्रथम तो मुझे उसके भीतर से निकलना असम्भव दिखाई दिया, परन्तु पीछे पेट केवल और जानू के सहारे मैं शनैःशनैः सर्पवत् उन वृक्षों

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

में से निकला। और इस प्रकार उस बाधा और कठिनाई पर विजय प्राप्त की। इस दिग्विजय के प्राप्त करने में मुझ को अपने शरीर के मांस को भी भेंट करना पड़ा। मैं इसमें से घायल और अधमरा होकर निकला। उस समय सर्वत्र अन्धकार छाया हुआ था। तम के अतिरिक्त कुछ दृष्टिगोचर न होता था। यद्यपि मार्ग रुका हुआ था और दिखाई न देता था तो भी मैं आगे बढ़ने के विचार को तोड़ न सकता था। मैं इस आशा में था कि कोई मार्ग निकल ही आवेगा। अतएव निरन्तर आगे को चलता गया और बढ़ता रहा। अन्त को मैं एक ऐसे भयानक स्थान में पहुंचा कि जहां चारों ओर उच्च शैल और पर्वत थे कि जिन पर घनी औषधियाँ और वनस्पतियाँ उगी हुई थीं। पर इतना अवश्य था कि मनुष्यवास के वहां कुछ-कुछ चिह्न और संकेत पाये जाते थे। अस्तु। शीघ्र ही मुझे कई झोंपड़ियां और कुटियायें दिखाई पड़ीं। उनके चारों ओर गोबर के ढ़ेर लगे हुये थे। निकट ही स्वच्छ जल की एक छोटी सी नदी थी। उसके तीर पर बहुत सी बकरियां चर रही थीं। झोंपड़ियों और टूटे-फूटे घरों के द्वारों और छिद्रों में से टिमटिमाता हुआ प्रकाश दिखाई देता था जो जाते हुये पथिक को स्वागत और बधाई के शब्द सुनाता हुआ प्रतीत होता था। मैंने वहाँ एक विशाल वृक्ष के नीचे जो एक झोंपड़ी के ऊपर फैला हुआ था रात्रि व्यतीत की। प्रातः उठकर मैं अपने क्षत पांव, हाथ, और दण्ड को नदी जल से धोकर संध्या वा प्रार्थना के लिये बैठने को ही था कि किसी जंगली पशु की गर्ज मेरे कर्ण गोचर हुई। वह ध्वनि 'टमटम' का उच्च स्वर था। कुछ काल पश्चात् मैंने एक बड़ी सवारी या जन समूह को आते हुये देखा। उसमें बहुत से स्त्री-पुरुष और बालक थे। उनके पीछे बहुत सी गौऐं और बकरियाँ थीं। वे एक झोंपड़ी या घर से निकले। अनुमान है कि वे किसी धार्मिक त्यौहार की रस्में पूरी करने के लिये जो रात्रि को हुआ, आये थे। जब उन्होंने मेरी ओर देखा और मुझे उस स्थान में एक अजान पुरुष जाना तो बहुत से मेरे चारों ओर एकत्र हुये। अन्ततः एक वृद्ध पुरुष ने आगे बढ़कर मुझ से पूछा तुम कहां से आये हो? मैंने उन सबसे कहा कि मैं काशी से आया हूं और अब नर्मदा नदी के स्रोत की ओर यात्रा के लिये जा रहा हूं। इतना पूछ कर वे सब मुझे अपनी उपासना करने में निमग्न छोड़ कर चले गये। उनके जाने के आधा घण्टा पश्चात् उनका एक अध्यक्ष दो पर्वतीय पुरुषों सहित मेरे पास आया और एक दिशा में बैठ गया। वह वस्तुतः उन सबकी ओर से प्रतिनिधि बन कर मुझे अपनी झोंपड़ियों में बुलाने को आया था परन्तु पूर्ववत् मैंने अब भी उनका निमन्त्रण अस्वीकार किया क्योंकि वे सब मूर्तिपूजक थे। तब उसने अपने साथ वालों को मेरे समीप अग्नि प्रज्वलित करने का आदेश किया। और दो पुरुषों को स्थापित किया कि रात्रि भर मेरी रक्षा करते हुये जागते रहें। जब उसने मुझ से मेरे भोजन के सम्बन्ध में पूछा और मैंने उसे बताया कि मैं केवल दूध पीकर निर्वाह करता हूं तो उस दयावान् अध्यक्ष व नेता ने मुझ से मेरा तूंबा मांगा। उसे लेकर वह अपनी कुटी को गया और वहां से उसे दूध से भर कर मेरे पास भेज दिया मैंने उस रात्रि उसमें से थोड़ा सा दूध पिया। वह फिर मुझे उन दोनों पहरा देने वालों के ध्यान में छोड़ कर लौट गया। उस रात्रि मैं घोर निद्रा में सोया और सूर्योदय तक सोया रहा। तत्पश्चात् अपने संध्या आदि से अवकाश प्राप्त करके मैं उठा और यात्रा के लिये चला। □□

परोपकारी मासिक

शुल्क

वार्षिक : ८ रुपये

मासिक : ७५ पैसे

विज्ञापन की दरें

१. आवरण तीसरा व चौथा पूरा पृष्ठ	रु. ३००)००
२. आवरण तीसरा व चौथा आधा पृष्ठ	रु. २००)००
३. आवरण तीसरा व चौथा पृष्ठ दो रंगों में	रु. ४००)००
४. आवरण तीसरा व चौथा आधा पृष्ठ दो रंगों में	रु. २५०)००
५. आवरण के अन्दर पूरा पृष्ठ एक रंग में	रु. २००)००
६. आवरण के अन्दर आधा पृष्ठ एक रंग में	रु. १००)००
७. आवरण के अन्दर चौथाई पृष्ठ एक रंग में	रु. ७०)००

□ विज्ञापन व्यवस्थापक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

The Autobiography of Swami Dayanand Saraswati

It was in a Brahmin family of the Audichya caste in a town belonging to the Rajah of Morwee, in the province of Kathiawar, that in the year of Samvat, 1881, (1924 A. D.) I, now known as Dayanand Saraswati, was born. If I have from the first refrained from giving the names of my father and of the town in which my family resides, it is because I have been prevented from doing so by my duty. Had any of my relatives heard again of me, they would have sought me out. And then, once more face to face with them, it would have become incumbent upon me to follow them home. I would have to touch money again,* serve them, and attend to their wants. And thus the holy work of the Reform, to which I have wedded my whole life, would have irretrievably suffered through my forced withdrawal from it.

I was hardly five years of age when I began to study the Devanagari characters, and my parents and all the elders commenced training me in the ways and practices of my caste and family, making me learn by rote the long series of religious hymns, mantras, stanzas and commentaries. And I was but eight when I was invested with the sacred Brahmanical cord (triple thread), and taught Gayatri. Sandhya with its practices, and Yajur Veda Samhita preceded by the study of the Rudradhyaya † As my family belonged to the Shiva sect, their greatest aim was to get me initiated into its religious mysteries, and thus I was early taught to worship the uncouth piece of clay representing Shiva's emblem, known as the Parthiva Lingam. But, as there is a good deal of fasting and various hardships connected with this worship, and I had the habit of taking early meals, my mother, fearing for my health, opposed my daily practising of it. But my father sternly insisted upon its necessity, and this question finally became a source of everlasting quarrles between them. Meanwhile, I studied the Sanskrit grammer, learned the Vedas by heart and, accompanied my father to the Shrines, temples, and places of Shiva worship. His conversation ran invariably upon one topic, the highest devotion and reverence must be paid to Shiva, his worship being the most divine of all religions. It went on thus till I had reached my fourteenth year, when, having learned by heart the whole of the Yajur Veda Samhita, parts of the other Vedas, of the Shabda Rupavali and the grammar, my studies were completed.

As my father's was a banking house and he held, more over, the office-hereditary in my family of a Jamadar, we were far from being poor and things, so far, had gone very pleasantly. Wherever there was a Shiva puran to be read and explained, there my father was sure to take me along with him, and finally, unmindful of my mother's remonstrances, he imperatively demanded that I should begin practising Parthiva Puja. When the great day of gloom and fasting-called Shivaratree-had arrived, this day following on the 13th of

* *No Swami or Sanyasi can touch money or personally transact monetary business. Ed. Theos.*

† *Astronomy includes Astrology in India, and it is in Benaras that the subtlest of metaphysics and so called occult science are taught.*

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Vadi of Magh. My father regardless of the protest that my strength might fail, commanded me to fast, adding that I had to be initiated on that night in to the sacred legend, and participate in that night's long vigil in the temple of Shiva. Accordingly, I followed him, along with other young men, who accompanied their parents. This vigil is divided in to four parts called praharas. consisting of three hours each. Having completed my task, namely, having sat up for the first two praharas till the hour of midnight, I remarked that the pujaris, or temple desservants, and some of the ley men devotees, after having left the inner temple had fellen asleep outside. Having been thaught for years that by sleeping on that particular night, the worshipper, lost all the good effect of his devotion, I tried to refrain from drowsiness by bathing my eyes, now and then, with cold water. But my father was less fortunate. Unable to resist fatigue he was the first to fall asleep, leaving me to watch alone.

Thoughts upon thoughts crowded upon me, and one question arose after the other in my disturbed mind. Is it possible, I asked my self, that this semblance of man, the idol of a personal God, that I see bestriding his bull before me, and who, according to all religious accounts, walks about, eats, sleeps and drinks, who can hold a trident in his hand, beat upon his dumroo (drum), and pronounce curses upon men, is it possible that he can be the Mahadeva, the Great Deity, the same that is invoked as the Lord of Kailash, the Supreme Being and the Divine hero of all the stories we read of him in his puranas (Scriptures) ? Unable to resist such thoughts any longer, I awoke my father, abruptly asking him to enlighten me, to tell me whether this hideous emblem of Shiva in the temple was identical with the Mahadeva (Great God) of the Scriptures, or something else. "Why do you ask it ?" said my father. "Because", I answered, "I feel it impossible to reconcile the idea of an Omnipotent, living God, with this idol, which allows the mice to run over its body, and thus suffers its image to be polluted without the slightest protest." Then my father tried to explain to me that this stone reprentation of the Mahadeva of Kailash, having been consecrated by the holy Brahmins became, in consequence, the God himself, and is worshipped as such, adding that as Shiva cannot be perceived personally in this Kali-Yug the age of mental darkness, hence we have the idol in which the Mahadeva of Kailash is worshipped by his votaries; this kind of worship is pleasing to the great Diety as much as if, instead of the emblem, he were there himself. But the explanation fell short of satisfying me. I could not, young as I was, help suspecting misinterpretation and sophistry in all this. Feeling fain with hunger and fatigue, I begged to be allowed to go home. My father consented to it, and sent me away with a Sepoy, only reiterating once more his command that I should not eat. But when once home, I had told my mother of my hunger, she fed me with sweetmeats, and I fell into a profound sleep.

In the morning, when my father returned and learned that I had broken my fast, he felt very angry. He tried to impress me with the enormity of my sin; but do what he could, I could not bring myself to believe that thar idol and Mahadeva were one and the same God, and therefore, could not comprehend why I should be made to fast for, and worship, the former. I had, however, to conceal my lack of faith, and bring forward as an excuse for abstaining from regular worship, my ordinar

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

study, which really left me little or rather no time for any thing else. In this I was strongly supported by my mother, and even by my uncle, who pleaded my cause so well that my father had to yeild at last and allow me to devote my whole attention to my studies. In consequence of this, I extended them to "Nighantu", "Nirukta", "Purvamimansa", and other Shastras, as well as to "Karmakand" or the Ritual.

There were besides myself in the family two younger sisters and two brothers, the youngest of whom was born when I was already sixteen. On one memorable night, as we were attending a nautch festival at the house of a friend, a servant was despatched after us from home, with the terrible news that my sister, a girl of fourteen, had been just taken ill with a mortal disease. Not withstanding every medical assistance, my poor sister expired within four ghatikas* after we had returned. It was my first bereavement, and the shock my heart received was great. While friends and relatives were sobbing and lamenting around me, I stood like one petrified, and plunged in a profound reverie. It resulted in a series of long and sad meditations upon the instability of human life. 'Not one of the beings that ever lived in this world could escape the cold hand of death' I thought; I, too, may be snatched away at any time and die. Whether, then, shall I turn for an expedient to alleviate this human misery, connected with our death bed; where shall, I find the assurance of, and means of attaining Muktee, the final bliss ? It was there and then, that I came to the determination that I must find it, cost whatever it may, and thus save myself from the untold miseries of the dying moments of an unbeliever. The ultimate result of such meditations was to make me voilently break, and for ever, with the mummeries of external mortification and penances, and the more to appreciate the inward efforts of the soul. But I kept my determination secret, and allowed no one to fathom my innermost thoughts. I was just eighteen then. Soon after, an uncle a very learned man and full of divine qualities, one who had shown for me the greatest tenderness, and whose favourite I had been from my birth expired also; his death leaving me in a state of utter dejection and with a still profounder conviction settled in my mind that there was nothing stable in this world, nothing worth living for or caring for in a worldly life.

Although I had never allowed my parents to perceive what was the real state of my mind, yet I had been imprudent enough to confess to some friend how repulsive seemed to me even the idea of a married life. This was reported to my parents, and they immediately determined that I should be betrothed at once and the marriage solemnity performed as soon as I should be twenty.

Having discovered their intention, I did my utmost to thwart their plans. I caused my friends to intercede on my behalf, and they pleaded my caused so earnedly with my father that he promised to postpone my betrothal till the end of that year. I then began entreating him to send me to Benaras, where I might complete my knowledge of Sanskrit grammar, and study astronomy and physics, until I had attained a full proficiency in these difficult sciences. But this time it was my mother who voilently opposed my wishes. She declared that I should not go to Benaras, as whatever I might fell inclined to study, could be learned at home as well as abroad; that I knew enough as it was and had to be married anyhow before

* *About half an hour.*

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

the coming year; as young people through an excess of learning were apt to become too liberal and free sometimes in their ideas. I had no better success in that matter with my father. On the contrary, for no sooner had I reiterated the favour I begged of him, and asked that my betrothal should be postponed until I had returned from Benaras a scholar, proficient in arts and sciences, that my mother declared that in such a case she would not consent even to wait till the end of the year, but would see that my marriage was celebrated immediately. Perceiving at last, that my persistence only made things worse, I desisted and declared myself satisfied with being allowed to pursue my studies at home, provided I was allowed to go to an old friend, a learned pandit, who resided about six miles from our town in a village belonging to our Jamadaree. Thither then, with my parent's sanction, I proceeded, and placing myself under his tution, continued for sometime queitly with my study. But while there, I was again forced into a confession of the insurmountable aversion I had for marriage. This went home again. I was summoned back at once, and found upon returning that everything had been prepared for my marriage ceremony, I had entered upon my twenty-first year, and had no more excuses to offer. I now fully realized that I would neither be allowed to pursue my studies any longer, nor would my parents ever make themselves consenting parties to my celibacy. It was when, driven to the last extremity that I resolved to place an eternal barrier between myself and marriage.

On an evening of the year Samavat 1903, without letting any one this time into my confidence, I secretly left my home, as I hoped, for ever. Passing that first night in the vicinity of a village about eight miles from my home, I arose three hours before dawn, and before night had again set in I had walked over thirty miles, carefully avoiding the public thorough fare, villages, and localities, in which I might have been recognized. These precautions proved useful to me, as on the third day after I had absconded, I learned from a government officer that a large party of men, including many horsemen, were diligently roving about in search of a young man from the town of who had fled from his home. I hastened further on, to meet with other adventures. A party of begging Brahmins had kindly relieved me of all the money I had with me, and made me part even with my gold and silver ornaments, rings, bracelets and other jewels, on the plea that the more I gave away in charities, the more my selfdenial would benifit me in the after life. Thus, having parted with all I had, I hastened on to the place of residence of a learned scholar, a man named Lala Bhagat, of whom I had much heared on my way, from wandering Sanyasis and Bairagees (religious mendicants). He lived in the town of Sayale, where I met with a Brahmachari who advised me to join at once their holy order, which I did.

After initiating me into his order and conferring upon me the name of Shuddha Chaitanya, he made me exchange my clothes for the dress worn by them-a reddish-yellow garment. From thence, and in this new attire, I proceeded to the small principality of Kouthkangdi situated near Ahmedabad, where, to my misfortune, I met with a Bairagi, a resident of a village in the vicinity of my native town and who was well acquainted with my family. His astonishment was as great as my perplexity. Having naturally enquired how I came to be there, and in such an attire, and learned of my desire to travel and see the world, he ridiculed my dress and blamed me for leaving my home

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

for such an object. In my embarrassment he succeeded in getting himself informed of my future intentions. I told him of my desire to join in the Mella* of Kartik, which was to be held that year at Sidhpur, and that I was on my way to it. Having parted with him, I proceeded immediately to that place, and took my abode in the temple of Mahadeva at Neelkantha, where Dandi Swami and other Brahmacharis already resided. For a time, I enjoyed their society unmolsted, visiting a number of learned scholars and professors of divinity who had come to the Mella, and associating with a number of holy men.

Meanwhile the Bairagi, whom I had met at Kouthakangda, had proved treacherous. He had despatched a letter to my family, informing them of my intentions, and pointing it to my wherebouts. In consequence of this, my father had come down to Sidhpore with his Sepoys, traced me step by step in the Mella, learning something of me wherever I had sat among the learned pandits, and finally, one fine morning appeared suddenly before me. His wrath was terrible to behold. He reproached me voilently, accusing me of bringing an eternal disgrace upon has family. No sooner had I met his glance, though knowing well that there would be no use in trying to resist him, I suddenly made up my mind how to act. Falling at his feet with joined hands, I entreated him in supplicating tones to appease his anger. I had left the home through bad advice, I said; I felt misreable, and was just on the point of the returning home, when he had providetially arrived; and now I was willing to follow him home again. Notwithstanding such humility in a fit of rage he tore my yellow robe into shreds, snatched at my tumba,† and, wresting it violently from hand, flung it far away; pouring upon my head at the same time a volley of bitter reproaches and going so far as to call me a matricide.

Regardless of my promises to follow him, he gave me in the charge of his Sepoys, commanding them to watch me night and day, and never leave me out of their sight, for a moment.

But my determination was as firm as his own. I was bent on my purpose and closely watched for my opportunity of escaping. I found it on the same night. It was three in the morning, and the Sepoy, whose turn it was to watch me, believing me asleep fell asleep in his turn. All was still, and so, softly rising and taking along with me a tumba full of water, I crept out, and must have run over a mile before my absence was noticed. On my way it espied a large tree, whose branches were overhanging the roof of a pagoda; on it I eagerly climbed and hiding myself among its thick foliage upon the dome, awaited what fate had in store for me. About 4 in the morning, I heared and saw through the apertures of the dome, the Sepoys enquiring after me, and making a diligent search for me in side as well as out side the temple. I held my breath and remained motionless, until finally, believing they were on the wrong track, my pursures reluctantly retired. Fearing a new encounter, I remained concealed on the dome the whole day, and it was not till darkness had again set in that, alighting, I fled in an opposite direction. More than ever I avoided the public throughfares, asking my way of people as rarely as I could, until I had again reached Ahmedabad, from whence I at once proceeded to Baroda. There I settled for some

* *Mela is a religious gathering, numbering at times hundreds of thousands of pilgrims.*

† *A vessel to hold water, made of a dried gourd.*

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

time; and at Chetan Math (Temple) I held several discourses with Brahmanand and a number of Brahmacharis and Sanyasis upon the Vedanta philosopy. It was Brahmanand and other holymen who established to my entire satisfaction that Brahm, the Deity, was no other than my own self, my Ego. I am Brahm, a portion of Brahm jiva (Soul) and Brahm, the Deity being one and the same. Formerly, while studying Vedanta, I had come to this opinion to a certain extent, but now the important problem was solved, and I gained the certainty that I was Brahm*.

At Baroda learning from a Benares woman that a meeting composed of the most learned scholars was to be held at a certain locality, I repaired thither at once; visiting a personage known as Satchidanand Paramhansa, with whom I was permitted to discuss upon various scientific and metaphysical subjects. From him I learned also, that there were a number of great Sanyasis and Brahmcharis who resided at Chanoda Kanyali. In consequence of this, I repaired to that place of sanctity on the banks of Nerbuddhah and there at last met for the first time with real Dikshits or initiated Yogis, and such Sanyasis as Chidashrama and several other Brahmacharis. After some discussion, I was placed under the tution of one Parmanand,Paramhamsa and for several months studied "Vedantsar", "Arya Harimihir Totak" "Vedant Paribhasha", and other philosophical treatises. During this time, as a Brahmcharis I had to prepare my own meals, which proved a great impediment to my studies. To get rid of it I therefore concluded to enter if possible, into the 4th Order of the Sanyasis† Fearing moreover to be known under my own name, on account of my family's pride and well aware that once received in this order I was safe, I begged of a Dekkani pandit a friend of mine, to intercede on my behalf with a Diksheet the most learned among them that I might be initiated into that order a

* *This passage is of such importance that the original is here by appended for the cosideratian of the learned. Ed. Theos.*

† *Sannsyasa—There are different conditions and orders prescribed in the Sastras (1) Brahmchari—One who leads simply the life of celibacy, maintaing himself by begging while prosecuting his duties; (2) Grhasthasram—one who leads a married but a holy life (3) Vanaprastha—who lives the life of a herhot. (4) Sannyasa or Chaturthasram. This is the highest of the four, in which the members of either of the other three may enter the necessary conditions for it being the renunciation of all worldly consideration. Following are the fonr different successive stages of this life—(a) Kutichara—Living in a hut, or in a desolate place, and wearing a red-ocure coloured garment, carrying a three knotted bamboo rod, and wearing the hair in the centre of the Crown of the head having the sacred thread, and devoting oneself to the eontemplation of Parabrahma: (b) Bahudaka—one who lives quite apart from his family and the world, maintains himself on alms collected in seven houses, and wears the same kind of reddish garments, (c) Hamsa—the same as in the preceding except the carrying of only a one knotted bamboo: (d) Paramahamsa—the same as others: but the ascetic wear the sacred thread, and his hair and beard are quite long. This is the highest of all these orders. Paramahamsa who shows himself worthy on the very thresh hold of be coming Dikshit.*

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

once. He refused however, point blank to initiate me, urging my extreme youth. But I did not despair. Several months later, two holymen, a Swami and a Brahmachari, came from the Dekan, and took up their abode in a solitary, ruined building in the midst of a jungle, near Chanoda and about two miles distant from us. Profoundly versed in the Vedant Philosophy, my friend, the Dekkaniy pandit, went to visit them, taking me along with him. A metaphysical discussion following brought them to recognize in each other Diksheets of a vast learning. They informed us that they had arrived from "Shringeri Math", the principal convent of Shankaracharya, in the south, and were on their way to Dwarka. To on of them Purnanad Sarswati, I got my Dekkani friend to recommend me particularily, and state at the same time, the object I was so desirous to attain and may difficulties. He told him that I was a young Brahmachari, who was very desirous to pursue his study in metaphysics unimpeded; that I was quite free from any vice or bad habits for which fact he vouchsafed: and that, therefore he believed me worthy of being accepted in this highest probationary degree, and initiated me into the 4th order of the Sanyasis: adding that thus I might be materially helped to free myself from all worldly obligations, and proceed untrammelled in the course of my metaphysical studies. But this Swami also declined at first. I was too young, he said. Besides, he was himself a Maharashtra, and so he advised me to appeal to a Gujrati Swami. It was only when fervently urgrd on by my friend, who reminded him that Dekkani Sanyasis can initiate even Gaudas, and that there could exist no such objection in my case, as I had been already accepted, and was one of the five Dravids, that he consented.

And on the third day following he consecrated me into the order, delivering up to me a Dand* and naming me Dayanand Saraswati. By the order of my initiater though, and my proper desire, I had to lay aside the emblematical bamboo—the Dand, renoucing it for a while, as he ceremonial performances connected with it would only interefere with and impede progress of my studies.

After the ceremony of initiation was over they left us, and proceeded to Dwarka. For some time I lived at Chanoda Kanyali; as a simple Sanyasi. But upon hearing that at Vyasashram there lived a Swami whom they called Yoganand, a man thoroughly versed in Yoga†,to him I addressed myself as an humble student, and began learning from him the theory as well as some of the practical modes of the science of Yoga (or Yog Vidya). When my preliminary tuition was completed I proceeded to Chhinour, as on the out skirts of this town lived Krishna Shastree, under whose guidance I perfected myself in the Sanskrit grammar, and returned to Chanoda where I remained for some time longer. Meeting there to Yogis-Jwalanand Poore and Shivanand Giree, I practiced Yoga with them also and we all three held together many a dissertation upon the exalted science of Yoga, until

* *The three and seved knotted bamboo of Sannyasis given to them as a sign of power, after their initiation.*

† *A religious "magician" practically. One who can embrace the past and the future in one present, a man who has reached the most perfect state, of clairvoyance, and has a thorough knowledge of what is now known as mesmerism, and the occult properties of Nature, which sciences help the student to perform the greatest phenomena: such phenomena must not be confounded with miracles which are an absurdity.*

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

finally, by their advice, a month after their departure, I went to meet them in the temple of Doodheshwar, near Ahmedabad, at which place they had promised to imart to me the final secrets and modes of attaining Yoga Vidya They kept their promise, and it is to them that I am indebted for the acquirement of the practical portion of that great science. Still later, it was divulged to me that there were far higher and more learned Yogis than those I had met yet still not the highest who resided on the peaks of the mountain of Aboo, in Rajputana. Thither then, I travelled again, to visit such noted places of sanctity as the Arvada Bhawanci and others; encountering, at last those whom I so eagerly sought for, on the peak of Bhawani Giree, and learning from them various other systems and modes of Yoga. It was in the year of samvat 1911, that I first joined in the Kumbha Mella at Hardwar, where so many sages and divine philosophers meet, often unperceived, together. So long as Mella congregation of pilgrims lasted, I kept practising that science in the solitude of the jungle of Chandee: and after the pilgrims had separated I transferred myself to Rishikesh, where sometimes in the company of good and pure Yogis*and Sanyasis oftener alone, I continued in the study and the practice of Yoga.

After passing a certain time in solitude, on the Rishikesh, a Brahmchari and two mountain ascetics joined me, and we all three went to Tehri. The place was full of ascetics and Raj (Royal) pandits, so called on account of their great learning. One of them invited me to come and have dinner with him at his house. At the appointed hour he sent a man to conduct me safely to his place and both the Brahmchari and myself followed the messenger. But what was our dismay upon entering the house, to first see a Brahmin preparing and cutting meat, and then, proceeding further in to the interior apartments, to find a large company of pandits seated with a pyramid of flesh, rumpsteaks and dressed up heads of animals before them. The master of the house cordially invited me in, but with a few brief words begging them to proceed with their good work and not to disturb themselves on my account. I left the house and returned to my own quarters. A few minutes later the meat eating pandit was at my side praying me to return and trying to excuse himself by saying that it was on my account that the sumptuous viands has been prepared ! I then firmly declared to him that it was all useless. They were carnivorous, flesh eating men, and myself a strict vegetarian, who fell sickened at the very sight of meat. If he would insist upon providing me with food, he might do so by sending me a few provisions of grain and vegetables which my Brahmchari would prepare for me. This he promised to do, and then, very much confused retired.

Staying at Tehri for some time, I inquired of the same pandit about some books and learned treatises I wanted to get for my instruction; what books and manuscripts could be procured at that place and where. He mentioned some works on Sanskrit grammar, classics, lexicographies, books on astrology and the Tantras or ritualistics. Finding that the latter were the only ones unknown to me, I asked him to procure the same for me. There upon the learned man brought to me several works upon this subject. But no sooner had I opened them, then my eye fell upon such an amount of incredible obscenities, mistranslations, misinterpretations of text and absurdity, that I felt perfectly horrified. In this

* *One may be Yogi, and yet not a Dikshit, i.e., not have received his final initiation into the mysteries of Yoga Vidya.*

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ritual, I found that incest was permitted with mothers, daughters and sisters (of the shoemaker's caste) : as well as among the Pariahs of the out castes and worship was performed in nude state. Spirituous liquors, fish and all kinds of animal food and Moodra* (exhibition of indecent images) were allowed from Brahmin down to Mang, and it was explicitly stated that all those five things of which the name commences with the nasalm as for instance Madya, (intoxicating liquor), Meen (fish) Mans (flesh), Moodra, and Maithcon (coition) were so many means for reaching muktee (salvation) ! By actually reading the whole contents of the Tantras I fully assured myself of the craft and viciousness of the authors of this disgusting literature which is regarded as Religious. I left the place and went to Shreenagar.

Taking up my quarters at a temple, on Kedar Ghat, I used these Tantras as weapons against the local pandits, whenever, there was an oppotunity for discussion. While there, I became acquainted with a Sadhoo named Ganga Giri, who by day never left his mountain where he resided in a jungle. Our acquaintance resulted in friendship as I soon learned how entirely worthy he was of respect. While together, we discussed Yoga and other sacred subjects, and through close questioning and answering became fully and mutually satisfied that we were fit for each other. So attractive was his society for me, that I stayed over two months with him. It was only at the expiration of this time, and when autumn was setting in, that I, with my companions, the Brahmchari and the two escetics, left Kedar Ghat for other places. We visited Rudra Prayag and other cities, until we reached the shirine of Agasta Munee. Further to the North, there is a mountain peak known as the Shivapooree (town of Shiva) where I spent the four months of the cold season, when finally parting from the Brahmchari and the two ascetics, I proceeded, back to Kedar, this time alone and unimpeded in my intentions, and reached Gupta Kashee.†

I stayed but a few days there, and went

* *The word Mudra has been variously understood ond interpreted. It means the signer of a royal as well as of a religious personage: a ring seal with initials engraved upon it. But it is also understood in another sense, the pristine and esoteric. Bhuchari, Chachari, Khehari and Charachari and Agochari—these five were the Mudras practised by the Aryas to qualify themselves for Yoga. They are the initiative stages to the difficult system of Raja-Yoga, preliminaries of Dnauti pauti, the early discipline of Hatha-Yoga. The Mudra is a quite distinct and independent course of Yoga training, the completion of which helps the candidate to attain Anima, Laghima and Garima. For the meaning of these Siddhis, see article on Yoga Vidya in the November number of the Theosophist (1879). The sense of this holy word once perverted, the ignorant Brahmins debased it to imply the pictorial representation of the emblems of their deities, and to stgnify the marks of those sexual emblems daubed upon their bodies with Gopichandn made of the whitish clay of the rivers held sacred. The Vaisnavas debase the mark and the word less than ihe Saivas: but the Saktas by applying it to the obscene gestures and the indecent exposures or their filty rituals have entirely degraded its Aryan meaning Ed.*

† *Gupta Kasi—Gupta Secret, hidden, Kasi, the ancient name of Benaras, is a holy place enshorded in mystery. It is about 50 miles from Badrinath. Ed.*

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

thence to the Triyugee Narayan* shrine, visiting on my way Gowree Koond tank and cave Bheemgoopha. Returning in a few days to Kedar, my favourite place of residence, I there finally rested, a number of ascetic Brahmin worshippers called pandas, and the devotees of the Temple of Kedar, of the jangam sect, keeping me company until my previous companions, the Brahmachari, with his two ascetics, returned. I closely watched their ceremonies and doings, and observed all that was going on with a determined object of learning all that was to be known about these sects.

But once that my object was fulfilled, I felt a strong desire to visit the surrounding mountains, with their eternal ice and glacies, in quest of those true ascetics I have heared of, but as yet had never met them. I was determined, come what might, to ascertain whether some of them did or did not live there as rumoured. But the tremendous difficulties of this mountanious journey, and the excessive cold forced me, unhappily, to first make inquiries among the hill-tribes and learn what they knew of such men. Every where I encountered either a profound ignorance upon the subject or a ridiculous superstition. Having wandered in vain for about twenty days, disheartened, I retraced my steps, as lonely as before, my companions who had at first accompanied me, having left me two days after we had started through dread of the great cold. I then ascended the Tunganath Peak.† There, I found a temple full of idols and offciating priests, and hastened to descened the peak on the some day. Before me were two paths, one leading West and the other South-West. I chose at random that which led towards the jungle, and ascended it. Soon after, the path led me into a dense jungle with rugged rocks dried up waterless brooks. The path stopped abruptly there. Seeing myself thus arrested, I had to make my choice to either climp up still higher or descend. Reflecting what a height there was to the summit, the tremendous difficulties of climbing that rough and steep hill, and that the nigh would come before I could ascend it, I concluded that to reach the summit that night was an impossibility. With much difficulty, howere, catching at the grass and the bushes, I succeded in attaining the higher bank of the Nala (the dry brook), and standinn on a rock, surveyed the environs. I saw nothing but torme nted hillocks, highland, and a dense pathless jungle covering the whole, where no man could pass. Meanwhile the sun was rapidly descending towards the horizon. Darkness would soon set in, and then, without water or any means for kindling a fire, what would be my position in the dreary solitude of that jungle !

By dint of tremendous exertion though, and after an acute suffering from thorns, which tore my cloths to shreds, wounded my whole body, and lamed my feet, I managed to cross the jungle, and at last reached the foot of the hill and found myself on the highway. All was to darkness around and over me and I had to pick my way at random, trying only to keep the road. Finally I reached a cluster of huts, and learning from the people tha tthat road led to Okhee Math, I directed my steps towards that place, and passed the night there. In the morning, feeling sufficiently rested and refreshed I returned to the Gupta Kashee, from whence I started the next day, on my northward journey. But that journey attracted me, and soon again I repaired to Okhee Math, under the pretext

* *There Yugas or the Three Epochs.*

† *At Badrinath (Northern India) on the right bank or the Bisenganga, where the celebrated temple or Visnu, with hot mineral springs in it, annually attracts numerous pilgrims.*

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

of examining that hermitage and observing the way of living of its inmates. There I had time to examine at leisure the doings of that famous and rich monastery, so full of pious pretences and a show of asceticism, The high priest (or Chief Hermit), called Mahant, tried hard to include me to remain and live there with him, becoming his disciple. He even held before me the prospect, which he thought quite dazzling, of inherting some day his lacs of rupees, his splendour and power, and finally, succeeding him in his Mahantship or supreme rank. I frankly answered him that had I ever craved any such riches or glory, I would not have secretly left the house of my father which was not less sumptuous or attractive than his monastery, with all its riches. The object which induced me to do away with all these worldly blessing, I added, "I find you neither strive for, nor possess the knowledge of." He then enquired what was that object for which I so strived. "That object", I answered, "is the secret knowledge, the Vidya, or true erudition of a genuine Yoga the Mooktee, which is reached only by the purity of one's soul, and certain attainments unattainable without it. Meanwhile, the performances of all the duties of man towards his fellow-men, and the elevation of humanity thereby". The Mahant remaked that it was very good, and asked me to remain with him for some time at least. But I kept silent and returned no reply; I had not yet found what I sought for. Rising on the following morning very early, I left this rich dwelling and went to Joshee Math. There, in the company of Dakshanee or Maharastra Shastrees and Sannyasis, the true ascetics of the 4th Order, I rested for a while.

At Joshee Math I met many Yogis and learned ascetics and, in a series of discussions, learnt more about Yoga-Vidya, and parting with them, went to Badrinarayan. The learned Rawaljee was at that time the chief priest of that temple, and I lived with him a few days. We held discussions upon the Vedas, and the "Darshanas." Having enquired from him whether he knew of some genuine Yogi in the neighbourhood I learnt, to my great regret, that there were none there at the time, but that he had heared that they were in the habit of visiting his temple at times. Then I resolved to make a thorough search for them throughout the country and especially in the hills.

One morning at day break, I set out on my journey, when, following along the foot of the mountains, I at last reached the banks of the Alaknanda river. I had no desire of crossing it, as I saw on its opposite bank the large village called "Mana". Keeping, therefore, still to the foot of the hills, I directed my steps towards the jungle, following the river course. The hills and the road itself were thickly covered with snow and, with the greatest difficulty, I succeeded in reaching that spot where the Alaknanda is said to take its rise. But once there, finding myself surrounded by lofty hills, on all sides and being a stranger in the country, my progress, from that moment, was greatly retarded, Very soon, the road ceased abruptly and I found no vestige of even a path. I was thus at a loss what to do next, but I determined finally to cross the river and enquire for my way. I was poorly and thinly clad, and the cold was intense and soon became intolerable. Feeling hungry and thirsty, I tried to deceive my hunger by swallowing a piece of ice, but found no relief. I then began to ford the river. In some places it was very deep, in others shallow not deeper than a cubit but from eight to ten cubits wide.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

The river bed was covered with a small and fragmentary bits of ice which wounded and cut my naked feet to blood. Very luckily the cold had quite benumbed them, and even large bleeding cracks left me insensible for a while. Slipping on the ice more than once, I lost my footing and came nearly falling down and thus frezzing to death on the spot. For, should I have found myself prostrated on the ice, I realized that, benumbed as I was all over, I would find it very difficult to rise again. However with great exertion, and after a terrible struggle, I managed to get safe enough on the other bank. Once there more dead than alive. I hastened to denude the whole upper part of my body; and, with all I had of clothes on me, to wrap my feet up to the knees and then exhausted, famished, unable to move. I stood waiting for help and knowing not whence it would come. At last throwing a last look around me, I espied two hillmen, who came up and having greeted me with their "Kashissamba" invited me to follow them to their home, where I would find food. Learning my trouble, they, moreover, promised to guide me to "Sadpat" a very sacred place; but I refused their offers, for I could not walk Notwithstanding their pressing invitation I remained firm and would not "take courage" and follow them as they wanted me; but after telling them that I would rather die, refused even to listen to them. The idea had struck me that I had better return and prosecute my studies. The two men then left me and soon disappeared among the hills. Having rested, I proceeded on my way back. Stopping for a few minutes at Basudhara a sacred bathing place, and passing by the neighbourhood of Managram, I reached Badrinarayan at 8 o'clock that evening. Upon seeing me, the Rawaljee and his companions were much astonished and enquired where I had been ever since the early morning. I then sincerely related to them all that had happened to me. That night after having restored my strength with a little food, I went to bed, but getting up early on the following morn, I took leave of the Rawaljee and set out on my journey back to Rampur. That evening, I reached the home of a hermit, a great ascetic, and passed the night at his place. That man had the reputation of one of the greatest sages living, and I had a long conversation with him upon religious subjects. More fortified than ever in my determination, I left him next morning, and after crossing hills, forest and having descened the Chilkia ghattee, I arrived at last at Rampur where I took up my quarters at the house of the celebrated Ramgiri, so famous for the holiness and purity of his life. I found him a man of extraordinary habits though. He never slept, but used to pass whole nights in holding conversations - vrery loud sometimes, apparently with himself. Often, we heard a loud scream, then weeping, though there was no one in his room within, Extremely surprised, I questioned his disciples and pupils and learnt from them that such was his habit, though no one could tell me what it meant. Seeking an interview with him I learnt some time after, what it really was; and thus I was enable to get convinced that it was not true Yoga he practised but that he was only partially versed in it. It was not what I sought for.

Leaving him I went to Kashipur, and thence to Drona Sagar, where I passed the whole winter, Then again to Sambal through Moradabad, when, after crossing Garh Mukteshwar I found myself again on the banks of the Ganges. Besides other religions works, I had with me the "Shiva Sanhita" "Hat-pradipika", "Yoga-Bij" and "Gherand Sanhita", which

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

I used to study during my travels. Some of these, books treated on the Nari chalan and Nari chakaras, (nervous system) giving very exhaustive descriptions of the same, which I could never grasp and which finally made me doubt as to the correctness of these works. I had been for some time trying to remove my doubts, but had found as yet no opportunity. One day, I chanced, to meet a corpse floating down the river. There was the opportunity and it reminded with me to satisfy myself as to the correctness of the statements contained in the books about anatomy and man's inner organs. Ridding myself of the books which I laid near by, and taking off my clothes, I resolutely entered the river and soon brought the dead body out and laid it on the shore. I then proceeded to cut it open with a large knife in the best manner I could. I took out and examined the kamal (the heart) and cutting it from the navel to the ribs, and a portion of the head and neck, I carefully examined and compared them with the description in the books. Finding they did not tally at all, I tore the books to pieces and threw them into the river after the corpse. From that time gradually I came to the conclusion that with the exception of the Vedas, Upanishadas, Patanjali and Sankhya, all other works upon science; Yoga were false. Having lingered for some time on the banks of the Ganges, I arrived next at Furrukhabad; when having passed Sringirampur I was just entering Cawnpur by the road east of the cantonment, the samavat year of 1912 (1855 A. C.) was completed.

During the following five months, I visited many a place between Cawnpur and Allahabad. In the begining of Bhadrapad, I arrived at Mirzapur where I stopped for a month or so near the shrine of Vindyachal Asooljee, and arriving at Benaras in early part of Ashwin, I took my quarters in the cave (at the confluence of the Baruna and the Ganges) which then belonged to Bhumanand Saraswati. There, I met with Kakaram, Rajaram and other Shastrees, but stopped there only twelve days, and renewed my travels after what I sought for. It was at the shrine of Durga-Koh-o in Chandalgarh, where I passed ten days. I left off eating rice altogether and living but on milk. I gave myself up entirely to the study of Yoga which I practised night and day.

Unfortunately, I got this time into the habit of using bhang, a strong narcotic leaf, and at times felt quite intoxicated with its effect. Once after leaving the temple, I came to a small village near Chandalgurh where by chance I met an attendant of mine former days. On the other side of the village, and at some distance from it stood a Shivalaya (a temple of Shiva) whither I proceeded to pass the night under its walks. While there under the influence of bhang, I fell fast asleep and dreamt that night a strange dream. I thought, I saw Mahadeo and his wife Parvati. They were conversing together, and the subject of their talk was myself. Parvati was telling Mahadeo that I ought to get married, but the god did not agree with her. She pointed to the bhang. This dream annoyed me a good deal when I awoke. It was raining and I took shelter in the verandah opposite the chief entrance to the temple, where stood the huge statue of the Bull-god Nandi. Placing my clothes and books on its back, I sat and meditated; when suddenly happening to throw a look inside the statue, which was empty, I saw a man concealed inside. I extended my hand towards him, and must have terrified him, as jumping out of his hiding place, he took his heels in the direction of the village. Then I

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

crept into the statue in my turn and slept there for the rest of the night. In the morning an old woman came and worshipped the Bull-god with myself inside. Later on, she returned with offerings of 'Gur' (molasses) and a pot of "Dahi" (curd milk) which, making puja to me (whom she evidently mistook for the god himself), she offered and desired me to accept and eat. I did not disabuse her, but, being hungry ate it all. The curd being vary sour proved a good antidote for the bhang and dispelled the signs of intoxication, which relieved me very much.

After this adventure, I continued my journey towards the hills and that place where the Nerbuddah takes its rise. I never once asked my way, but went on travelling southward. Soon I found myself in a desolate spot covered thickly with jungles, with isolated huts appearing now and then among the bushes at irregular distances. At one of such places I drank a little milk and proceeded onward. But about half a mile farther I came to a dead stop. The road had abruptly disappeared and there. remained but the choice of narrow paths leading, I knew not, where. I soon entered a dreary jungle of wild plum trees and very thick and huge grass with no signs of any path in it, when suddenly I was faced by a huge black bear. The beast growled ferociously, and rising on its hind legs, opened wide its mouth to devour me. I stood motionless for some time and then slowly raised my thin cane over him, and the bear ran away terrified. So loud was its roaring, that villagers whom I had just left, hearing it, ran to my assistance and soon appeared armed with large sticks and followed by their dogs. They tried hard to persuade me to return with them. If I proceeded any further, they said. I would have to encounter the greatest perils in the jungles which in those hllls were the habitat of bears, buffalloes, elephants, tigers and other ferocious beasts. I asked them not to feel anxious for my safety, for I was protected. I was anxious to see the sources of the Nerbuddah and would not change my mind fot fear of any peril. Then seeing that their warnings were useless, they left me after having made me accept a stick, I immediately threw away.

On that day I travelled with out stopping until it grew quite dusk. For many hours I had not perceived the slightest trace of human habitation around me, no villages in the far off, not even a solitary hut, or a human being. But what my eyes met the most was a number of trees, twisted and broken, which had been unprooted by the wild elephants, and, fell by them to the ground, further on I found myself in a dense and impenetrable jungle of plum trees and other prickly a shrubs whence, at first I saw no means of extricating myself. However, partly crawling on the belly, partly creeping on my kness, I conqured this new obstacle and after paying a heavy tribute with pieces of my clothes and even my own skin, bleeding and exhausted I got out of it. It had grown quite dark by that time, but even this if it impeded did not arrest my pr ogress onward, and I still proceeded, until I found myself entirely hemmed in by lofty rocks and hills thickly grown over with a dense, vegetation, but with evident signs of beings inhabited. Soon I perceived a few huts, surrounded by heaps of cowdung, a flock of goats grazing on the banks of a small stream of clear water and a few welcome lights glimmering between the crevices of the walls. Resolving to pass the night there. and go no further till the next morning, I took shelter at the foot of a large tree which overshadowed one of the huts. Having washed my bleed-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ing feet, my face and hands in the stream, I had barley sat to tell my prayers, when I was suddenly disturbed in my meditations by the loud sounds of a tom-tom. Shortly after, I saw a procession of men, women and children, followed, by their cows snd goats emerging from the huts and preparing for a night religious festival. Upon perceiving a stranger, they all gathering around me, and an old man came enquiring from whence I had appeared. I told them I had come from Benaras, and was on my pilgrimage to the Nerbudda sources, after which answer they all left me to my prayers and went further on. But in about half hour, came one of their headmen accompanied by two hillmen and sat by my side. He came as a delegate to invite me to their huts. But, as before., I refused the offer (for they were idolators). He then ordered a large fire to be lit near me and appointed two men to watch over my safety the whole night· Learning that I used milk for all food, the kind headmen asked for my "kamandalu" (a bowl) and brought it back to me full of milk of which I drank a little that night. He then retired, leaving me under the protection of my two guards. That night I soundly slept until dawn, when rising, and having completed me devotions, I prepared myself for further events.

(Here the autobiography ends. T.)

□□

परोपकारी मासिक के स्वामित्व आदि के बारे में घोषणा

[फार्म ४ के अनुसार]

पत्र का नाम : 'परोपकारी' मासिक
प्रकाशन स्थल : दयानन्द आश्रम, आर्यसमाज मार्ग, केसरगंज अजमेर
प्रकाशक का नाम : श्रीकरण शारदा
राष्ट्रीयता : भारतीय
पता : मन्त्री, परोपकारिणी सभा, केसर गंज, अजमेर

सम्पादक का नाम : श्री करण शारदा
राष्ट्रीयता : भारतीय
पता : 'सुखदा', अशोक मार्ग, अजमेर (राज.)

मुद्रक का नाम : सतीश चन्द्र शुक्ल
राष्ट्रीयता : भारतीय
पता : प्रबन्धकर्त्ता, वैदिक यन्त्रालय, अजमेर

पत्र का स्वामित्व : परोपकारिणी सभा, आर्य समाज मार्ग, केसर गंज, अजमेर

मैं, श्रीकरण शारदा, एतद् द्वारा घोषणा करता हूँ कि उपरोक्त वर्णन मेरी जानकारी में पूर्णतया सही है।

दिनाङ्क २५ फरवरी १९७५

प्रकाशक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

रात रात होती है, दिन दिन
होता है, यह नियम अटल है

एक रात पर, शिव–मन्दिर में एक निराली बात हो गयी,
एक हृदय का तिमिर मिटा, आलोक हो गया, प्रातः हो गयी !

एक भक्त बालक के मन में, एक अनोखी ज्योति जग गई
शिव-प्रतिमा की जड़ता को लख, सच्चे शिव की लगन लग गई

और खोज में निकल पड़ा वह, थाम डगर जानी–अजनानी,
गहन वनों, पर्वत–शृंगों पर, रहा ढूंढता वह गुरु–ज्ञानी,

आखिर मथुरा में जा उसको, मिला एक आचार्य निराला,
जिसने वेद-ज्योति से उसके, मन में भरा अमित उजियाला,

ज्ञान-ज्योति जो जगी हृदय में, शंका-भ्रम की मात हो गयी!
एक हृदय में बोध हुआ तो, भारत भर में प्रातः हो गयी !

घोर निराशा भागी मन से, आशा का संचार हो गया,
नरक समान घिनौना था जो, स्वर्ग तुल्य संसार हो गया,

अखिल विश्व को आर्य बनाना दयानन्द का ध्येय बन गया,
ले सत्यार्थ–प्रकाश हाथ में, कर्म भूमि में वीर तन गया,

सभी दिशाओं में गूंजा स्वर, रजनी गयी प्रभात हो गयी !
नवयुग का सा दृश्य छा गया, ऐसी अनुपम प्रातः हो गयी !

नवयुग का सा दृश्य छा गया, क्रांति-क्रांति का शोर मच गया,
युग–युग के परतन्त्र जनों को, दयानन्द का मन्त्र जंच गया

बोध की रात

□ कुलदीप चड्ढा

एक हृदय में बोध हुआ तो चारों ओर हुआ उजियाला,
उसे बांटने को जन–जन में, सभी ओर घूमा मतवाला

जहां तिमिर था वहीं गया वह, ले पाखण्ड खण्डिनी झण्डी,
वेद–ज्ञान का सूर्य उगा तो पस्त हुए सारे पाखण्डी,

जनता ने नव–जीवन पाया उसको मिला हितैषी सच्चा,
दयानन्द की चरण–शरण की ओर बढ़ा हर बूढ़ा बच्चा,

ज्ञान–ज्योति वह दयानन्द की, जन-जन को सौगात हो गयी!
नवल सूर्य का उदय हुआ तो जगती-तल में प्रातः हो गयी!

जगती–तल में प्रातः हुई, भूले भटकों को राह मिल गया,
दयानन्द की अतुल दया से, पतितों को उत्साह मिल गया,

दलितों का उद्धार हो गया, कायर ने उठ सीना ताना,
वीर धरा के नवयुवकों ने, फिर पहना केसरिया बाना,

और अन्त में भारत-माता के भी कटे दासता-बन्धन,
विधवाओं अबलाओं सब का, बन्द हो गया रोदन-क्रंदन,

दयानन्द को बोध हुआ तो बदल गया मानो जग सारा,
धन्य दया का सूर्य समेटा जिसने युग–युग का अन्धियारा।

जब तक जीवित रहा देह, उज्ज्वल मोती की सीप बन गयी,
मरण हुआ तो वही धधक कर, दीवाली का दीप बन गयी,

इसीलिए शिव–रात्रि नए ही, अर्थों में विख्यात हो गयी !
इसी रात को तिमिर मिटा, कण कण में नूतन प्रातः हो गयी!

एक निराली बात हो गयी !
एक निराली बात हो गयी !

□ डिफेंस इलैक्ट्रॉनिक्स रिसर्च लेबोरेट्री, हैदराबाद—५०००५५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ओ३म्

महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा संस्थापित एवम् परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित

वैदिक-यन्त्रालय की प्रकाशन-योजना

महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा संस्थापित वैदिक-यन्त्रालय की प्रकाशन-योजना के सदस्य बनकर ज्ञानार्जन एवं स्वाध्याय हेतु प्रकाशित ग्रन्थों को उचित मूल्य पर प्राप्त कीजिए—अपने लिये, अपने आर्यसमाज के लिये, और अपनी शिक्षण-संस्था के लिए-सबके लिए।

आर्यसमाज-स्थापना-शताब्दी वर्ष के उपलक्ष्य में अधिक से अधिक संख्या में वैदिक साहित्य खरीदिये। इन का प्रचार व प्रसार करने हेतु उचित मूल्य पर इन्हें हम से प्राप्त कीजिये।

अपने क्षेत्र में अधिक से अधिक प्रबुद्ध आर्य बनाइये, वैदिक साहित्य का प्रचार करना अपना ध्येय बनाइये और महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा ज्ञानार्जन हेतु प्रज्ज्वलित यज्ञाग्नि में आहुति देकर महर्षि को सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित कीजिये।

योजना के अन्तर्गत प्रकाशित ग्रन्थ:—

१. दयानन्दवचनामृत

डॉ. भवानीलाल जी भारतीय द्वारा सम्पादित पुस्तक जिसमें महर्षि दयानन्द द्वारा रचित विभिन्न ग्रन्थों के चुने हुए विचार संकलित हैं. मूल्य ४० पैसे मात्र.

२. महर्षि दयानन्द: जीवन और सन्देश

श्री भूदेव शास्त्री द्वारा लिखित. महर्षि के जीवन और सन्देशों के बारे में संक्षेप में दी गई जानकारी. गागर में सागर. मूल्य ४० पैसे मात्र.

३. मेरा सुखद स्वप्न

पं. जगन्नाथ उपाध्याय द्वारा गौ रक्षा हेतु रचित अत्यन्त रोचक पुस्तक. हर गौ प्रेमी इसे अवश्य पढ़ना चाहेगा. मूल्य ५० पैसे मात्र.

४. ईशादिदशोपनिषद् मूल

महर्षि दयानन्द कृत मूल संस्कृत में प्रकाशित दशों उपनिषद् संग्रहीत. मूल्य ४) रुपये मात्र.

५. ऋग्वेद दशम् मण्डल भाष्य एवम् भाषा भाष्य

स्वामी ब्रह्ममुनि जी द्वारा ऋग्वेद के दशम मण्डल का भाष्य प्रथम खण्ड रु. ३०)००, भाषा भाष्य प्रथम खण्ड मूल्य १५)००, छप कर तैयार है। महर्षि के निर्देशों के अनुसार तैयार किया गया एक महत्त्वपूर्ण प्रकाशन.

विशेष भेंट

१. अथर्ववेद मुनि भाष्य : मात्र एक रुपये में

स्वामी वृहन्मुनि द्वारा रचित अथर्ववेद के तीन काण्डों का भाष्य. ३०० पृष्ठों की फुल क्लाथ बाइण्डिंग वाली पुस्तक जिस पर प्रतिपुस्तक सात रुपया व्यय हुआ है मात्र एक रुपया व डाक व्यय पर. प्रकाशन योजना के सदस्यों के लिये सुरक्षित. सीमित प्रतियां है. अतः तुरन्त सदस्य बनकर लाभ उठावें.

२. परिवार नियोजन राष्ट्रीय संकट

सरकार द्वारा बहु-प्रचारित कार्यक्रम से किस तरह का राष्ट्रीय संकट आ रहा है, इस बारे में विशिष्ट पुरुषों के क्या विचार हैं, जानने के लिए यह पुस्तक अवश्य पढ़ें. मूल्य ३० पैसे किन्तु प्रचारार्थ मात्र १५ पैसे.

शीघ्र प्रकाश्य

१. महर्षि दयानन्द और स्वामी विवेकानन्द

डॉ भवानीलाल भारतीय द्वारा रचित उत्तम ग्रन्थ, जिसमें दो युग प्रवर्तक चिन्तकों के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है. बढ़िया कागज पर लगभग १६० पृष्ठों में छपी पुस्तक का मूल्य मात्र ४) रुपये.

२. महर्षि दयानन्द की आत्म कथा

महर्षि द्वारा संशोधन मूल हस्त लेखों की प्रतिलिपि सहित प्रकाशित होने वाली संग्रहणीय पुस्तक. हिन्दी व अंग्रेजी अनुवाद सहित. अब तक अप्रकाशित आत्म कथा.

कृपया अगला पृष्ठ देखें

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

३. परोपकारिणी सभा का इतिहासः

महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा के गत ६० वर्षों का खोजपूर्ण इतिहास प्रसिद्ध अनुसंधान विद्वान डॉ० भवानीलाल जी भारतीय द्वारा.

उपरोक्त पुस्तकों के अग्रिम आदेश बुक किये जा रहे हैं.

महर्षि कृत ग्रन्थ

महर्षि के हस्त लेखों से मिलान करके छापे गये प्रामाणिक ग्रन्थ भी इस योजना के अन्तर्गत सुलभ हैं. इन समस्त ग्रन्थों पर सदस्यों को २५ प्रतिशत कमीशन दिया जा रहा है:—

१.	सत्यार्थ प्रकाश सजिल्द	६)५०
२.	सत्यार्थ प्रकाश अजिल्द	५)००
३.	ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका सजिल्द	६)५०
४.	ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका अजिल्द	५)००
५.	संस्कार विधि सजिल्द	३)००
६.	संस्कार विधि अजिल्द	२)५०
७.	ऋग्वेद भाष्य भाग १ से ९	१३०)००
८.	ऋग्वेद भाषा भाष्य भाग १ से ९	६४)००
९.	यजुर्वेद भाष्य भाग १ से ४	७०)००
१०.	यजुर्वेद भाषा भाष्य भाग १ व २	२०)००
११.	वर्णोच्चारण शिक्षा	०)२५
१२.	संधि विषय	०)८०
१३.	नामिक	१)००
१४.	कारकीय	१)००
१५.	स्त्रैणताद्धित	३)००
१६.	आख्यातिक अजिल्द	५)०
१७.	सौवर	०)४०
१८.	पारिभाषिक	२)००
१९.	धातुपाठ	०)८०
२०.	गणपाठ	०)६०
२१.	उणादिकोष	१)८०
२२.	निघण्टु	०)६५
२३.	व्यवहार भानु	०)४०
२४.	अष्टाध्यायी मूल	१)००
२५.	गो करुणानिधि	०)२०
२६.	स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश	०)१०
२७.	आर्योद्देश्यरत्नमाला	०)१०
२८.	आर्याभिविनय	०)७५
२९.	नित्यकर्मविधि	०)५०
३०.	पञ्चमहायज्ञ विधि	०)५०
३१.	भ्रमोच्छेदन	०)२०
३२.	भ्रान्तिनिवारण	०)३५
३३.	मेला चान्दापुर	०)३०
३४.	काशी शास्त्रार्थ	०)२०
३५.	चतुर्वेद विषय सूची	५)००
३६.	अष्टाध्यायी भाष्य प्रथम भाग	१०)००
३७.	हवन मन्त्र	०)१०
३८.	वेद विरुद्ध मत खण्डन	०)३५
३९.	वेदान्तध्वान्ति निवारण	०)१५

आंग्ल भाषा के ग्रन्थ

1.	Life of Swami Dayanand	35.00
2.	Dayanand Commemoration Volume	15.00
3.	Aryoddeshya Ratnamala	0.15
4.	The Beliefs of Dayanand	0.15
5.	Vedati Dhwanti Niwaran	0.15
6.	Swami Dayanand & Satyarth Prakash	0·50
7.	Works of Dayanand & Paropkarini Sabha	3·00
8.	Vyavhar Bhanu	1.50
9.	Mela Chandapur	1 50
10.	Bhramochedan	0.50
11.	Kashi Shastrarth	0 50

विस्तृत सूची पत्र के लिये सम्पर्क कीजिए। प्रकाशन योजना के अन्तर्गत संस्थाएं, समाजें, पुस्तक-विक्रेता आदि भी सदस्य बन सकते हैं। उत्तम साहित्य सस्ते मूल्य पर प्राप्त करने का एक उत्तम अवसर.

सम्पर्क □ व्यवस्थापक, प्रकाशन-विभाग
वैदिक-यन्त्रालय, आर्य समाज-मार्ग, केसरगंज,
अजमेर–305001.

प्रकाशक एवम् सम्पादक श्रीकरण शारदा, मंत्री, परोपकारिणी सभा अजमेर द्वारा प्रकाशित एवम् सतीश चन्द्र शुक्ल, प्रबन्धकर्ता वैदिक यन्त्रालय अजमेर द्वारा मुद्रित

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

५१५(iii)

ओ३म्

आर्य संसार

वार्षिक - विशेषाङ्क

महर्षि दयानन्द

की

देन

निबन्ध प्रस्तुति

* श्री स्वामी समर्पणानन्दजी सरस्वती
* श्री जी० पी० भट्टाचार्य
* श्री जयदेव एम० ए०
* श्री भवानीलाल भारतीय, एम० ए०, पी० एच० डी०
* श्री सुमेधा मित्र
* श्री चन्द्रप्रकाश आर्य एम० ए०
* शान्ति देवोजी शर्मा

पौष
२०२७

दिसम्बर
१९७०

सम्पादक :
उमाकान्त उपाध्याय, एम० ए०

मूल्य :—
इस अंक का १ रु०
वार्षिक २ रु०

आर्य-समाज कलकत्ता
१९, विधान सरणी,
कलकत्ता-६

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रकाशकीय

तीन वर्ष पूर्व आर्य समाज कलकत्ता ने "महर्षि दयानन्द की देन" विषय पर एक सहस्र रुपये के पुरस्कार की घोषणा करके निबन्ध प्रतियोगिता का आयोजन किया था। इस प्रतियोगिता में हिन्दी, बंगला और अंग्रेजी भाषाओं में निबन्ध स्वीकार किये गये थे। अखिल भारतीय स्तर के उच्च कोटि के विद्वानों ने भाग लिया।आर्य समाज की अन्तरङ्ग सभा ने निम्नलिखित विद्वानों से निर्णायक बनने का अनुरोध किया :—

हिन्दी तथा अंग्रेजी के लिए—

डा० सत्यप्रकाशजी डी० एस० सी०
पं० सुखदेवजी विद्यावाचस्पति
प्रो० उमाकान्तजी उपाध्याय एम० ए०

बंगला के लिए—

श्री पं० दीनबन्धुजी वेद शास्त्री
डा० बुद्धदेव भट्टाचाय एम० ए० डी० फिल०
प्रो० उमाकान्तजी उपाध्याय एम० ए०

इन विद्वानों ने सानुग्रह इस भार को स्वीकार कर लिया। इनका निर्णय निम्न प्रकार था :—

श्री जी० पी० भट्टाचार्य	प्रथम
श्री स्वामी समर्पणानन्दजी सरस्वीती	द्वितीय
प्रो० जयदेवजी एम० ए०	,,
श्री शान्तिदेवीजी	तृतीय

इस विशेषांक में इन पुरस्कृत निबन्धों के साथ कुछ अन्य प्रतियोगी निबन्ध भी प्रकाशित किये जा रहे हैं।

हम एतद्वारा सभी सम्बन्धित व्यक्तियों को आभार ज्ञापन कर रहे हैं—

—प्रकाशक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ओ३म्

महर्षि दयानन्द की देन

१

स्वामी समर्पणानन्द जी सरस्वती

●

प्रस्तुत निबन्ध के सम्बन्ध में हमारे एक सम्माननीय निर्णायक महोदय ने लिखा था :

"स्वामी समर्पणानन्दजी आर्य-जगत् के लब्ध-प्रतिष्ठ संन्यासी हैं। उनका लेख अपनी विशिष्ट शैली पर है। उसे औरों के तारतम्य में आँकना शोभा नहीं देता।"

दूसरे सम्मान्य निर्णायक महोदय ने लिखा था :

"स्वामीजी (स्वामी समर्पणानन्दजी) अपने ढंग के निराले विद्वान्, अद्भुत प्रतिभा के संन्यासी हैं। यह प्रतियोगिता की श्रेणी से ऊपर का लेख है।"

हम भी इस निबन्ध को सर्वप्रथम प्रकाशित करने का लोभ संवरण नहीं करना चाहते।

— सम्पादक

साधारण से साधारण अनपढ़ मनुष्य से लेकर आइन्स्टीन सरीखे मौलिक विज्ञान वेत्ता तक के प्रातः काल उठते ही आँख खुलने पर जो सबसे पहला प्रश्न हृदय में उठता है वह इस विश्वकी पहेली है। यह क्या है? मैं कौन हूँ? मेरा लक्ष्य क्या है? मेरा इस संसार से क्या सम्बन्ध है? यह सबसे बड़ी पहेली है। यह पहेलियों की पहेली है। इसका उत्तर दो अद्वैतवादी देते हैं। एक द्वन्द्वात्मक अध्यात्मवादी दूसरे द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी। एक कहता है कि यह सब कुछ आत्मा ही आत्मा है, दूसरा कहता है यह सब कुछ जड़ प्रकृति ही प्रकृति है। साधारण अनपढ़ मनुष्य से लेकर बड़े से बड़े कर्मयोगी महात्मा तक सब के लिये विश्व की पहेली का यह विचित्र समाधान पहेलियों की पहेली है। उसे यह समझ नहीं

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आता कि अद्वैत में से द्वन्द्व कैसे पैदा हो गया? चेतन में से जड अथवा जड में से चेतन का विकास कैसे हो गया? वह कहता है कि कैसे हो गया? वैज्ञानिक देवता सिर हिला कर पाण्डित्य से लदी मुद्रा में कहता है—

'अजी बको मत, सिर मत खाओ। कह तो दिया कि बस हो गया।'

साधारण पुरुष कबीर के स्वर में स्वर मिलाकर कहता है तुम पढ़े हुओं से हम बेपढ़े अच्छे :

पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ, पण्डित हुआ न कोय।
ढाई अक्षर प्रेम के, पढ़े से पण्डित होय॥

इसी बात को विद्वन्मूर्धन्य कृष्ण वार्ष्णेय कृष्ण द्वैपायन के मुख से इन शब्दों में कहता है अथवा कृष्ण द्वैपायन कृष्ण वार्ष्णेय के मुख से इस प्रकार कहलाता है—

क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षरउच्यते,

× × ×

यस्मात् क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः,
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रार्थतः पुरुषोत्तमः।

सब प्राणियों का देह तथा पञ्चभूतमय जड जगत् है। जगत् अर्थात् जड परिवर्तनशील जगत् है। प्राणियों में जीवात्मा कूटस्थ है जिसके आधार पर स्मृति खड़ी है।

इस क्षर तथा अक्षर (जीवात्मा) दोनों से ऊपर पुरुषोत्तम है।

इसमें व्याकरण का उत्तम पुरुष और जोड़ दीजिये, क्योंकि ज्ञाता होने की दृष्टि से 'मैं' का स्थान सबसे उत्तम है। परमात्मा तथा प्रकृति दोनों का प्रत्यक्षादि प्रमाणों द्वारा प्रमाण करने वाला प्रमाता, तथा जिन कर्मों का फल भगवान् देता है उनका कर्त्ता तो मैं ही हूँ। प्रकृति तथा पुरुषोत्तम तो प्रमेय अथवा उपास्य मात्र हैं। इस दृष्टि से पुरुषोत्तम को पुरुषोत्तम कहने वाला उत्तम पुरुष तो मैं ही हूँ।

इसलिये भगवान् ने उत्तम पुरुष के मुख से कहलाया —

योऽसा वादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्,

मेरी सूक्ष्म तथा स्थूल शरीर की दुनिया छोटी सी ही सही, परन्तु जिस प्रकार आदित्यादि लोकों में अधिष्ठाता होकर बसा है, इसी प्रकार अपनी छोटी सी दुनियाँ में मैं वही हूँ जो तू अपने इस आदित्य (उपलक्षण=आदित्यादिमय ब्रह्माण्ड) में है। अर्थात् अधिष्ठाता, निर्माता, प्रमाता।

इसीलिये भक्त भक्ति के आवेश में विभोर होकर कहता है तेरे आशीर्वाद तो तबही फलेंगे कि या तो मैं समर्पण द्वारा तू अर्थात्, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड शक्तियों का अधिष्ठाता बन जाऊँ अथवा तू वात्सल्यातिरेक में मेरे समर्पण को इतना स्वीकार कर ले कि मैं जो कुछ करूँ त्वन्मय होकर करूँ। या तो सर्वभूत हितकर भक्तियोग के बल से मैं सर्व शक्तिमान् बन जाऊँ अथवा समर्पण की पराकाष्ठा से वात्सल्य विभोर होकर तू मन्मय हो जा। तबही जानूँ कि हमारे मुंह मांगे आशीर्वाद मिल गये। सुनिये वेद क्या कहता है—

यदग्ने स्यामहम् त्वं वं वा घास्याअहम्
स्युष्टे सत्या इहाशिषः

ऋ० ८-४४-२३

मैं हूँ, यह सर्वोत्तम ज्ञान है इसीलिये मैं उत्तम पुरुष है। मैं धोखा नहीं सचमुच की जीवित जागृत शाश्वत चेतना शक्ति हूँ। छोटा ही सही, पर हूं! सचमुच हूँ जबरदस्त, जोरदार, सनातन सत्ता हूँ! और कुछ करके रहूँगा। या तो मैं कर्मयोग द्वारा वहाँ चढ़ जाऊंगा, या समर्पण योग द्वारा, जैसे दर्पण सूर्य को अपने में उतार लेता है, इस प्रकार उसे अपने में उतार लूंगा। वह आशीर्वाद देनेवाला, मैं लेने वाला; या तो मैं लेके रहूँगा, या उसे देना पड़ेगा। कुछ कहलो बात एक ही है।

यह सीधा, सच्चा, सबकी समझ में आ जानेवाला, ब्रह्माण्ड की पहेली का निर्मल, उज्ज्वल प्रकाशमय, शान्तिमय, समाधान, इसका नाम है "त्रैतवाद", यह है दयानन्द की सबसे पहली देन। यह है परमात्मा का विष्णुरूप अर्थात् यज्ञरूप। यज्ञ का अर्थ है पूजक तथा पूज्य का पूजा साधन द्वारा सङ्गतिकरण। सो अद्वैत में संगतिकरण कैसा? यह है—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विष्णुस्त्र्यक्षरेण त्रींल्लोकानुदजयत्तानुज्जेषम्।

(यजु० ९-३१)

यह हैत्रैताऽग्नि, यह है पिता पुत्र सन्तान द्वारा सबसे छोटे पारिवारिक संगठन का मूल रूप।

ऋषि दयानन्द कहते हैं अनादि पदार्थ तीन हैं—एक ईश्वर, द्वितीय जीव, तीसरा प्रकृति अर्थात् जगत् का कारण। इन्हीं को नित्य भी कहते हैं।

स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश ६

सो मैं हूँ। 'वह बड़ा इन्द्र है, मैं छोटा इन्द्र हूँ' पर जब मुझे इन्द्रिय मिली है तो मैं इन्द्रियों का इन्द्र हूँ तथा इनके द्वारा इस पृथिवी के अन्त तक और सच पूछो तो पृथिवियों की पृथिवी प्रकृति के अन्त तक, जहाँ भी अपने कर्म यज्ञ की वेदी बना लूं, वहाँ का मैं ही राजा हूँ और मेरे लिये वह छोटा-सा यज्ञ ही संसार का केन्द्र है। शंकर के चेले कहते हैं 'तू परमात्मा है", मैं कहता हूँ "मुझे झूठ बोलना न सिखाइये।" "महाराज" वे कहते हैं, "अरे! झूठ बिना संसार का व्यवहार नहीं चलता"।

मैं हाथ जोड़ के कहता हूँ, परिस्थितिवादी कहते हैं कि "तू जड़ पदार्थ है और परिस्थितियों की कठपुतली है", मैं कहता हूँ, "धत् परे हट, जड़ होगा तू, मैं तो पूर्णतया चेतन हूँ। यह सारी पृथिवी मेरे बाप की दी हुई जायदाद है, जहाँ चाहूँ अपनी वेदि बनाऊँ, वही मेरा विश्व केन्द्र है। जब मैं पिता से विमुख होता हूँ तो मुझ में जड़ता आती है। पर जब मैं पिता की आज्ञा का यथावत् पालन करता हूँ तो बस फिर क्या पूछना?"

इयंवेदिः परोअन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः

ऋग्वेद १, १६४, ३५

मैं परिस्थितियों का पुतला नहीं। पिता मेरी पीठ पर है, लक्ष्य सामने है, परिस्थितियों को चीरता हुआ अन्त को उससे जा मिलूंगा। मैं केन्द्र हूँ, परिस्थितियों के घेरे को चीरने के लिये पैदा हुआ हूँ। लक्ष्य है चार धाम की यात्रा द्वारा सारे मार्ग को आनन्द की धाराओं से आर्द्र करता इन्द्र तक पहुँचूँ। वह कह रहा है—

इन्द्रायेन्दो परिस्रव

मेरे चान्द, मेरे इन्दो, चारों ओर आर्द्रता पैदा करता हुआ प्रवाहित हो और मेरी गोद में आजा।

जहाँ सब से कठोर हिंसक हों, वहाँ आर्द्रता पैदा करता हुआ आ।

शर्यणावति सोममिन्द्रः पिबतु वृत्रहा
बलं दधान आत्मनि करिष्यन् वीर्यम्
महदिन्द्रायेन्दो परिस्रव

ऋग्वेद ९-११३-१

इस यात्रा में चार धाम हैं—पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यो और स्वः।

ऋ० १९०, ३

चौथा धाम स्वः है और पहिले तीन स्वर्ग।

यजु० १३-३१

इस तुरीय धाम की कथा ऋग्वेद ९वम् मण्डल ९६ सूक्त १९ मन्त्र से आरम्भ होती है। ११३ सूक्त में कहा है यह तुरीय धाम वह लोक है, जहाँ परम सुख सुरक्षित धरा है।

यस्मिन्लोके स्वर्हितम्।

ऋ० ९, ११३-७

जब मैं आया उस दिन सबकी आँखों में आनन्दाश्रु थे। सब ने मुझे कहा इन्दो, फिर शैशव में इन्दु था ही। फिर दो इन्दु एक होकर इस रथ के पहिये बने। यात्रा आगे बढ़ी। जब मेरा घर इन्दुशाला बन गया मैंने और मेरी पत्नी ने कहा 'चलो अब संसार भरके इन्दुओं को अपने इन्दु मानने का अभ्यास करने चलें।' पुत्र और पुत्र-वधू को अपनी इन्दु शाला से खेलने को छोड़ कर हम आगे बढ़ लिये—एक पहुँचे हुए के पास पहुँचना सीखना आरम्भ किया। अब पराए इन्दु मुझे अपने इन्दु लगते थे, मेरा मन उधर फँसने लगा। पहुँचे हुए ने कहा, सोम्य आगे बढ़, मैंने कहा कहाँ जाऊँ?

कुलपतिजी बोले—

इन्द्रायेन्दो परिस्रव

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इस तृतीय धाम में तप और श्रद्धा का उपार्जन किया है। अब यह तुम्हारा तृतीय सबन हो लिया। इस बार तुम श्रद्धा रस में भट्टी पर चढ़ाये गये हो—

ऋतवाकेन सत्येन श्रद्धया तपसा
सुत इन्द्रायेन्दो परिस्रव

ऋ० ९-११३-२

अब तो मंजिल पर पहुँच गए, अब फँसो मत यह सूर्य की दुहिता श्रद्धा—

श्रद्धावै सूयस्य दुहिता

शतपथ १२. ७. ३. ११

तुझे यहाँ तक ले आई। ऊपर से धर्ममेघसमाधि में स्नान किया इस प्रकार प्रभु कृपा की जलधारा तथा प्रत्यक्ष दर्शन जन्य श्रद्धा की धूप में बढ़ कर यहाँ पहुँच गया। अब अटका तो भटका। तेरी किस्मत भी क्या कहेगी? प्रभु का गुण गान करने वालों ने तेरा स्वागत किया। उनसे तू और रसीला हुआ। किस्मत की खूबी देखिये—

टूटी कहाँ कमन्द? दो चार हाथ जब कि लबेबाम रह गया। इसलिये —

पर्जन्यवृद्धम् महिषम् तं सूर्यस्य दुहिता भरत्।
तं गन्धर्व्वाः प्रत्यगृभ्णन् तम् सोमे रसमादधुः
इन्द्रायेन्दो परिस्रव।

ऋ० ९-११३-३

जिस कुलपति के पास तू परिष्कृत होने आया था उसने तेरा परिष्कार कर दिया। अबतो—

ऋतंवदन् ऋत द्युम्न सत्यम् वदन् सत्यकर्मन्
श्रद्धां वदन्त्योम राजन् धात्रा सोम परिष्कृत
इन्द्रायेन्दो परिस्रव।

ऋग्वेद ९-११३-४

नपी तुली प्रत्यक्षादि प्रमाण सिद्ध सत्य ज्ञानमय बात बोलता हुआ उस ज्ञान को ही अपना सर्वस्व समझ कर लुटाता हुआ ईमानदारी से निष्कपट होकर बोलता हुआ, और उस सत्य वचन को कर्म में परिणत करता हुआ, सब में अपनी अनुभव जन्य श्रद्धा की बात कहता हुआ—

बहे चल मेरे रस भरे चन्दा।

देख भूलना नहीं! प्रभु का गान करने वालों ने जो रस तुम में भरा है उसका नाम वीर रस है। कहीं दब कर उस रस में विष न मिला देना। रसीले! यह उग्ररस है, और तू फब्बारा—

सत्य मुग्रस्य वृहतः सं स्रवन्ति सं स्रवाः
सं यन्ति रसिनो रसाः पुनानो ब्रह्मणा हर
इन्द्रायेन्दो परिस्रव

ऋ० ९-११३-५

यह उग्ररस असत्य की शिलाओं तक को फोड़ कर निकलना जानता है। यह वृहत् रस है सबको ऊंचा उठाने वाला है उसके सामने झुकना सीख। पर, दुष्टों के साथ अकड़ना भी सीख। इसके सोते चारों ओर फूट निकलते हैं तब बीररस के रसिक जानते हैं, कि आज कौन रसीला आया है। इसलिये सदा रसिको, हरियाली के तुल्य मन हरने वाले, अपने वेद ज्ञान के प्रवाहों से सबको पवित्र करता हुआ बहता चल! मेरे रस भरे चन्दा।

तर्क को धर्म गुरुओं ने गाली दी है। ऋषि दयानन्द की अद्भुत देन है "तर्क को उचित स्थान पर प्रतिष्ठित करना" वेद कहता है। चक्षोः सूर्यो अजायत (पुरुष सूक्त १२ मन्त्र) चक्षु आदि इन्द्रियों से प्राप्त प्रत्यक्ष ज्ञान ही तो वह सूर्य है जिसकी पुत्री श्रद्धा है। दयानन्द ने हमें तर्क की प्रतिष्ठा सिखाई और उसकी पुत्री श्रद्धा को भी उचित स्थान दिया इसलिये नपीतुली प्रत्यक्षादि प्रमाण बिरुद्ध बात मत कह—

यत्र ब्रह्मापवमान छन्दस्यां वाचं वदन्।
ग्राव्णा सोमे महीयते सोमेनानन्दम्
जनयन्निन्द्रायेन्दो परिस्रव॥

ऋ० ९-११३-६

जहाँ चार वेदों के ज्ञाता विद्वान् सबको पवित्र करते हों, उस पवित्र सत्सङ्ग रूप सवन में नपीतुली बात बोलता हुआ, विद्वज्जनों के वाद संघर्ष में पीस कर यथार्थ परीक्षा पूर्वक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

निकाले हुए ज्ञान रस से सबके लिये आनन्द उत्पन्न करता हुआ, बहता चल मेरे रस भरे इन्दो।

जहाँ अन्ध विश्वास का नाम नहीं है—

यत्रज्योतिरजस्रं यस्मिलोके स्वर्हितम्
तस्मिन मांधेहं पवनामृते लोके अक्षित
इन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥ ७ ॥

हे पवमान हम भक्त जन तेरे पास आए हैं विशेष कर मैं शिष्य होकर तेरे पास आया हूँ। मुझे उस लोक में पहुँचा जहाँ निरन्तर ज्योति जलती है, जहाँ नित्य आनन्द है। उस अक्षय अमृत के धाम में मुझे पहुँचा।

जहाँ वह सुव्यवस्था है जो आकाश में सौर मण्डल में देखने में आती है जहाँ द्यौः को प्राणायामादि द्वारा वाह्य आकाश से उतार कर मनुष्य अपने अन्दर रोक लेते हैं यह सम्पूर्ण मानव प्रजा (मनुष्य वा आपः-शत ७-३-१-२०) जिस ओर बह रही हैं हे पवमान उस अमृत धाम में मुझे भी पहुँचा

इन्द्रायेन्दो परिस्रवः ॥ ८ ॥

जिस कैवल्य में मनुष्य परम ज्योति के स्वरूप में अवस्थित होता है, इसलिये जहाँ सब लोग ज्योतिष्मान् हैं जहाँ शरीर वन्धन न होने के कारण जीव स्वच्छन्द विचरते हैं उस धाम में मुझे भी मृत्यु रहित करदे।

इन्द्रायेन्दो परिस्रवः ॥ ९ ॥

जहाँ कामनाएं और उनके निमित्त किये जाने वाले नियम सब सम्पूर्ण हो जाते हैं, जहाँ बड़ों से बड़े परमात्मा का धाम है। उस प्रभु प्रेम के बन्धन को मेरे लिये अमृत कर दो हे इन्दो—

इन्द्रायेन्दो परिस्रवः ॥ १० ॥

यत्रानन्दाश्चय मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते
कामस्य यत्राप्ताः कामास्तत्र मा मृतं कृधि
इन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥ १० ॥

जहाँ मानसिक और शारीरिक आनन्द दूसरों के साथ बातचीत का आनन्द तथा नाना प्रकार की कला कृतियों का प्रमोद सब इकट्ठे बसते हैं, जहाँ कामना की भी सब कामना पूर्ण हो जाती है, उस प्रभु प्राप्ति के आनन्द में स्नान कराके मुझे भी मृत्यु भय रहित कर दे।

इन्द्रायेन्दो परिस्रवः ॥ ११ ॥

इस तर्क बुद्धि के सहारे ऋषि दयानन्द हमें दोनों ओर की खन्दकों से बचाता हुआ ले चलता है। न तो यहाँ अन्ध श्रद्धा है, न नास्तिकता। न तो अकर्मण्य भक्तिवाद है, न भक्तिहीन कर्मयोग। न तो तर्कहीन श्रद्धा है, न श्रद्धाहीन तर्क अर्थात् प्रत्यक्ष अनुभव को भी निषेध करनेवाला तर्क। न तो पलायनवादी वैराग्य है, न पलायनवादी विषय शक्ति। न तो अनन्त नरक है, न अनन्त मोक्ष। यह मनुष्य जीवन है, स्वर्ग नरक धाम है। यह जीवन ही कर्म भूमि है। राजयोग भक्तियोग सब कर्मयोग के साधन हैं। न वैष्णवों का रङ्गीलापन है, न नास्तिकों की रुक्षता। न जैनों की अहिंसा है, न कम्यूनिस्टों की हिंसा। न तो हिंसा रस के लिये हिंसा है, न लोक कल्याण विघातिनी अहिंसा। लक्ष्य सामने है—

इन्द्रायेन्दो परिस्रवः

साधन हैं इन्द्रियें तथा जीवन का समय। साधन है वर्णाश्रम व्यवस्था। इस व्यवस्था में न तो पूंजीवादी अर्थतंत्रता है, न कम्यूनिस्ट व्यक्तित्व नाशिनी परतंत्रता। लोक कल्याणकारी कार्य करना पड़ेगा, यह परतन्त्रता है। अविद्या अभाव अन्याय, अकर्मण्यता, किस शत्रु से लड़ना है। इस चुनाव में पूर्ण स्वतन्त्रता। यह अविचलित रूप से सीधा लक्ष्य की ओर ले जाने वाला सीधा मार्ग ही ऋषि की सर्वश्रेष्ठ देन है। न तो प्राचीन हर बात अच्छी है और न वेदों तक का परित्याग है। न देश मोह है, न देश द्रोह है। देश भक्ति है पर वह विश्व कल्याण का मार्ग बनाने वाली देश भक्ति है। दूसरे देशों को कुचल कर अपने देश का भला चाहने वाली स्वार्थमय क्रूर देश भक्ति नहीं जिसका ठीक नाम देश मोह है। हां दबाव में आकर अपने देश के जूते का भी अपमान वह सह नहीं सकता था।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मनुष्य के जन्म से लेकर मरण पर्यन्त तथा परिवार के संगठन से लेकर चक्रवर्त्ती सार्वभौम महाराज्य सभा के निर्माण तक कोई विषय उस ऋषि से नहीं छूटा इसलिये यदि उसकी सब देन एक शब्द में कहनी हो तो वह सत्यार्थप्रकाश है।

परन्तु इन सब देनों से बड़ी देन ऋषि का जीवन स्वयम् है। जो कहा सो करके दिखा दिया। खण्डन में स्वदेश विदेश किसी का पक्षपात नहीं किया। राष्ट्र तथा धर्म के विरोध में लड़ने के लिये सम्पूर्ण राष्ट्र को तय्यार किया। देश की एकता के निमित्त गुजराती का पक्षपात छोड़कर हिन्दी को अपनाया। परन्तु आर्य समाज के नियम बनाने के समय छठे नियम में स्पष्ट लिख दिया "संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य हैं।" गौण रूप से बचा खुचा समय विश्व कल्याण को, मुख्य उद्देश्य ऋषि दयानन्द ने ही बनाकर दिखाया।

परन्तु व्यक्तिगत रूप से जो उन्हें विष देने आया उसे मुक्त करवाते समय कहा "मैं संसार को कारागार में बन्द करने नहीं आया किन्तु कारागार से छुड़ाने अब आया हूँ" और अन्त में १३वीं वार विष खाकर विष देनेवाले को दयार्द्र होकर धन देकर विदा किया और दयानन्द इस नाम को सार्थक किया।

अन्तमें मृत्यु काल में सबसे बड़ी परीक्षा थी। इस मृत्यु ने गुरुदत्त सरीखे नास्तिक में भक्तिरस का संचार कर दिया इसे मृत्यु कहें वा जीवन शक्ति का स्रोत। ग्रन्थ भी दे जीवन भी देन, और अन्त में मृत्यु भी देन।

देनेवाले बहुत देखे, पर ऐसा दिलदार नहीं देखा। वैदिक भाषा में देवता कहते हैं देनेवाले को बस वह देवताओं का देवता था। कोई वस्त्र दाता कोई धन दाता, कोई अन्न दाता, परन्तु ऋषि दयानन्द इस अभागे मानव समाज को उस की खोई हुई आत्मा फिर प्रदान की।

इसलिये, आत्मदा! तुझे बार बार प्रणाम हो

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

CONTRIBUTIONS OF MAHARSHI DAYANANDA

२

G. P. BHATTACHARJEE
Lecturer, International Relations Dept.,
Jadavpur University.

Historical Setting

Historical research has indisputably proved the existence of a highly developed civilization in India during the Vedic age. Due to various factors, not yet clearly explained by scholars, a process of decline set in in the Vedic civilization. During this period of social stagnation and spiritual decay various creeds and doctrines challenging the foundation of the vedic civilization arose. Meanwhile, overrun by the forces of Islam, India entered into a period of political uncertainty and social conflict. Though during this time there were a number of attempts for religious rejuvenation and reconciliation of various creeds, they remained confined to specific areas and attained very limited success. The old Vedic civilization remained burried under the debris of the past.

The British conquest of India later on brought about a new vigour and dynamism in the social, political and intellectual life of India. India was not only politically and economically unified but she also came in contact with the Western science, technology and ideas. Along with this current of western culture the past and almost forgotten civilization of India was also revived from oblivion by a galaxy of scholars, both western and Indian, through their researches on Indian antiquities. The interaction of these two cultural forces

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

one, rational, secular and science-oriented, imported from the west, and the other, spiritual and transcendental, revived from the past heritage of India, stirred an intellectual fermentation in the country and produced what is known as the Nineteenth Century Renaissance. This Renaissance was a multi-dimensional cultural movement and it connotes different, sometimes contradictory, thought-currents. One section of the people, extremely orthodox in character, however remained outside the influence of this Renaissance and tried to preserve the conventional customs and institutions. Another section was carried off their feet by the invigorating influence of the western ideas and they looked at the past calture of India with unconcealed disdain. The more sober section tried to bring about a reconciliation between the past heritage of India and the western science and technology.

India produced two outstanding personalities, one the eastern side and another on the western, to lead this school of reconciliation. Broadly speaking, Raja Rammohan Roy of Bengal and Maharshi Dayananda Saraswati of Gujarat belong to the same school. The difference between them was more one of degree and emphasis rather than fundamental. Raja Rammohan was a great scholar and knew a number of languages, both western and Indian, including Sanskrit. In those days a number of outstanding scholars came to India from England and the English language was making steady highway in the country. The age was in dire need of a man capable of interpreting the language of the vedic texts in its original and uncorrupted from. The Pandits of the age interpreted the Vedas in the light of the Puranic mythological stories. Their interpretation could not give a clear idea of the Indian civilization as developed in the Vedic age. The European Scholars learned Sanskrit from these Pandits and necessarily their veiws were also coloured by the interpretation made by them. It was Maharshi Dayananda who with extra-ordinary insight tried to liberate his outlook from the ballast of the Puranic stories and interpreted the Vedic texts in the literal sense. *His interpretation opened up a new vista about the nature of the Vedic civilization. Here in lies*

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

basic role of Maharshi Dayananda in the nineteenth century cultural history of India. His contributions must be judged in the light of historical context and the specific historical need which he satisfied.

Brief life-sketch—
three phases of his life :

Born in 1824 in an orthodox Brahmin family of Morvi state in Kathiawar, Gujrat, Dayananda[1] developed a deep interest in religion in his young age. While still in his teens he lost his faith in the traditional practice of the Hindu religion and realised the futility and dangers of institutions like image-worship and polytheism. His unconventional ideas brought him in conflict with his father and Dayananda left the house of his father as the latter tried to force upon him a marriage when he was only twenty years of age. The career of Dayananda now entered into the second chapter. He broke off all relations with his home and took the life of an ascetic. He wandered on foot all over India and saw the details of the Hindu Society with his own eyes. This wide experience produced a rich harvest in the fertile soil of his mind irrigated by deep study and meditation. In 1860 he began studies under Swami Virajanand Saraswati at Mathura and continued it for two and a half years. In 1834 he started public preaching and thus entered into the third phase of his career. In his public preaching he, at first, used only the Sanskrit language which could not be understood by the broad mass of the Indian people. He, therefore, later on started preaching in vernacular. On April 10, 1875 he first established the Arya Samaj in Bombay. In 1877 the constitution of the Arya Samaj was finally prepared at Lahore. Dayananda was now fully absorbed in his mission of preaching the new gospel. He wrote a number of books, the most significant being Satyartha Prakash explaining his ideas and tried to organise people under the banner of the Arya Samaj. His mission proved very successful in the Western part of the country—Gujrat, the Punjab, U. P, and Rajasthan. On October 30, 1883, the earthly existence of the Maharshi came to an end.

Basic approach of Dayananda to Indian problems :

A man of iron will and versatile

1. His real name was Mul Shankar.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

genius Dayananda left a deep impression upon the history of India. He gave the Indian people a new direction as well as a new dynamism and enriched diverse fields of our national life. An attempt may be made to assess his many-sided contributions by dividing them into three groups, namely, religious, social and political. This division must not be taken in any rigid sense because his contributions to various fields were closely interrelated. He looked with dismay at the conversion of the Hindus to Christianity by the missionaries in the wake of the political subjugation of the country. The superstitions and evil practices existing in the Hindu community gave the Christian missionaries an opportunity to carry on their work of conversion successfully. Dayananda could not lend his support to the various evil practices in the Hindu society which, he found, were eating into the vitals of the Hindu civilization. India or Aryavarta, the land of the Vedic civilization, he feared, might loss her identity as a result of political subjugation and other evils. What was her political subjugation due to? According to him the subjugation of India was due "to mutual feud, differences in religion, want of purity in life, lack of education, child marriage, ... indulgence in carnal gratification, untruthfulness and other evil habits.[2]" Social degeneration, in his view, was the cause of political subjugation. Political liberation, therefore, he thought, was conditional upon the removal of the social evils. And what was the basic cause of social evils among the people of Aryavarta? It was due to their deviation from the original Vedic civilization. Restoration of original Vedic civilization, therefore, was the only remedy to all the social evils among the Hindus. Thus, in the eye of Dayananda, political liberation, social reform and revival of the Vedic Culture were causally connected. Restoration of Vedic civilization would lead to social reforms and prepare the country for political freedom. Thus in Dayananda we find a religious preacher, a social reformer and a political prophet combined in one. Though we shall discuss his contributions under three separate sections still this integrating factor must not be lost sight of.

2 Satyartha Prakash. Quated in V. P. Varma Modern Indian Political Thought, P. 60.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Religious Reforms :

Swami Dayananda was an out-and-out religious man and he became an ascetic. His asceticism did not however lead him to ignore the society and go into seclusion for salvation of the soul. With a spirit of complete detachment he lived in society and worked for society.

Swami Dayananda found that the Hindu society of his time was entirely different from the Hindu society of the Vedic period. Supperstitious customs and institutions were maintained by the people in the name of the Hindu religion though they had no sanction in the Vedas. Polytheism, idolatry, untouchability etc. were regarded as essential features of Hinduism but none of them, he found, could be justified by the Vedic standard. He saw that a large number of people, repelled by the superstitous Hindu practices, were attracted towards Christianity. He tried to arrest this process by showing to the people the real character of the Vedic religion.

The degeneration of the Hindu civilization, Swami Dayananda analysed, started with the religious system of the Puranas. The mythology of the Puranas, which is the latest development of the Hindu thought, was the basis of the popular Hindu religion but this mythology could not, he pointed out, claim any support either from the law books or the Vedas. The commentators on the Vedas who arose during the Puranic period however tried to find in the Vedas sanction for their own ideas. Thererore, they interpreted the Vedas in their own way. Men like Sayana and Mahidhar belonged to this class of commentators. They belonged to what is usually called the mythological school of interpretation of the Vedas. They interpreted the Vedas to justify the Puranic mythology and thus they tried to give the present degenerate popular Hindu religion a Vedic sanction. The western scholars accepted these commentaries as authoritative and so their interpretation of the Vedas was also influenced by the writings of Sayana and Mahidhar and others of this school. Dayananda tried to interpret the Vedas on the basis of original texts without being influenced by the works of the commentators of the later age.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

It is accepted by all that Yaska, the author of Nirukta, is the highest authority on the interpretation of the Vedas. He is quoted with respect by Sayana and Mahidhar also. Swami Dayananda tried to interpret the Vedas on the basis of the principles laid down by Yaska in his Nirukta. According to Yaska all the terms in the Vedas have been used in their jougika derivative or sense. It implies that there cannot be any proper names or historical reference in them. Yaska may, therefore, be regarded as the founder of the etymological school of the interpretation of the Vedas (also known as Nairuktik school) as opposed to the mythological school (also called Aitihasik school). Swami Dayananda by following the etymological school gave the Vedic mantras a meaning entirely different from the traditional one. The terms like *Agni, Vayu, Surya, Akasa* etc. used in the Vedas do not, according to the etymolagical school, refer to particular deities presiding over different departments of nature. They are used in two senses. Sometimes they indicate physical objects and forces and sometimes they refer to the Supreme Being. One Supreme Being is referred to by various terms. Words like *Agni, Vayu, Surya, Soma* are used to describe the indescribable whom the Vedas term *Om*. The sense in which these terms are used whether in the sense of physical objects or to describe the indescribable Supreme Being is to be judged by the context alone. By explaining the various terms used in the Vedas in their etymological sense Dayananda gave a highly interesting interpretation of the Vedic hymns. Urvasi, as for example, according to him, does not mean the heavenly nymph and a celebrated beauty in Indra's court but lightning. The Vedic mantras which appear as silly stories to many contain, according to Dayananda's interpretation, truth of profound significance.

By following these principles Swami Dayananda interpreted the Vedas which gives us the picture of a highly developed and scientific civilization in ancient India. His interpretation is found in his famous book *Satyartha Prakash* which he wrote in Hindi. The first ten chapters of the book deal with the explanation of the Vedic teachings. In the eleventh chapter he explains the religion of

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

the Puranas and the Tantras which, according to him, is a clear deviation from the Vedic teachings. In the twelth chapter the Buddhist, Jain and Charvaka views are explained and commented upon. The atheistic views of these schools led to the decline and fall of the Indian civilization and therefore Dayananda thought the recrudescence of these ideas should be checked by all means. The Vedic Scholarship of Swami Dayananda is clearly revealed in this book and no one, whether he agrees with him or not, can read this book without admiring the analytical power and depth of learning of the author. The main purpose of the book is to inspire the people to reconstruct the Indian life on the model of the ancient Vedic society "by a pruning of all the engrafted shoots upon the Vedas."[3]

In the book Satyartha Prakash Swami Dayananda tried to establish the thesis that the Vedic religion was absolutely monotheistic in nature. In the Vedas there are hymns which assert the unity of God but at the same time there are passages where many divine beings or devatas are referred to. This has led many to conclude that Vedic religion was polytheism in character. Max Muller considered henotheism as the most appropriate term to explain the Vedic religion. By polytheism, he pointed out, we understood an organised system of Gods, each occupying different positions and ranks in the hierarchy, under the authority of one Supreme God—either a Zeus or a Jupiter. Under the Vedic system he found no such hierarchy of position among the gods, and, therefore, Max Muller preferred the term henotheism to explain the Vedic religious system. Swami Dayananda could not agree with these views. He contented that the Vedas refer to only one Supreme God though He was given a large number of names. As the attributes of God are innumerable so also the names given to Him. The terms like *Agni, Vayu, Surya* which occur in the Vedas do not, according to Dayananda, refer to different gods; they are different attributes of the same Almighty. Different namas which are given to the Almighty God are also names of different material objects, and the actual sense in which the terms are used must be judged, as we

3. MacDonald, *The Government of India*, p. 236.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

have already pointed out, with reference to the context.

The interpretation of the Vedas as given by Dayananda appears to many as ridiculous. Some consider him to be a false interpretor of the Vedas. His interpretation is undoubtedly unconventional and it goes against the traditional faith and dogmas. But that is no reason why he should be dismissed summarily. His interpretation is based on a definite principle which he follows consistently. One should either show that the etymological principle of interpretation is itself wrong or that his interpretation is not justified by that principle. But no one has yet tried to cross sword with Dayananda on that level.

Social Reforms :

Along with his attempt to revive the original Vedic culture Dayananda tried to introduce a number of social reforms in the Hindu society. He found that a number of social practices among the Hindus which made the Hindu society vulnerable to the Christian attack had no Vedic sanction. He, therefore, tried to purge the Hindu society of these evils.

Dayananda was violently opposed to idolatry and brought as many as sixteen charges against it.[4] He raised his strong voice against the custom of traditional sacrifice and encouraged travels by the Hindus to foreign lands. Like Raja Rammohan Roy he stood for the emancipation of women. He found that contrary to the Vedic Principles a number of inhuman restrictions and taboos were imposed upon the Hindu women. He tried to remove these taboos and restrictions and championed the principal of equality of men and women. The system of child marriage was disapproved by him and no man below 25 and no woman below 16 should, in his opinion, be given in marrigge. He was a great advocate of female education and remarriage of widows.

Swamy Dayananda was opposed to the system of caste restriction in the form in which it existed the Hindu society. He however tried to revive the Vedic system of Varnashrama. According to the Vedic

4. For these charges see Swami Dayananda's *Satyartha Prakash*.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

principles he thought that one's Varna should be determined not by birth but by capacities, psychological dispositions and actions. The society, according to him, should be divided into four castes only on this sound Vedic principle. He considered the innumerable castes and sub castes existing in the Hindu society on the hereditary basis as contrary to the fundamental spirit of the Vedic sociology. The system of untouchability as existed in the Hindu society was bitterly denounced by him and Mahatma Gandhi appreciating the outlook of Dayananda observed: "Among the many rich legacies that Swami Dayananda left to us, his unequivocal pronouncement against untouchability is undoubtedly one."

In the Suddhi movement Maharishi Dayananda introduced one revolutionary item in the programme of the Arya Samaj. He believed that 'lost' Hindus, that is the Hindus converted to other religions, should be brought back within the Hindu fold. This movement of re-Hinduising the fallen is known as the Suddhi movement. With Vedic liberalism and rationalism he believed that the door of Hinduism should not remain closed to those who once had left it for some reason or other.

Swami Dayananda tried to bring about a radical change in the educational system of our country. The system of education introduced into India by the British, whatever might be its advantages, had no relation with the past cultural heritage of the country. The products of this system became culturally alien to the general mass of the people. Swami Dayananda tried to change this system of education and he may rightly be considered as the precursor of the national system of education which became popular during the Swadeshi movement. He maintained that the people of India must study the old and uncorrupted culture of their land and for this purpose they must turn to Sanskrit and read the Vedas. The students must not simply acquire knowledge but also form their character and become good members of the community. The Dayananda Anglo-Vedic College was based upon the ideas of the Maharishi[5] and there, in addition

5. The split of the Arya Samaj inta two groups. one led by Lala Hans Raj and the other by Swami Sraddhananda (Munshi Ram) need not be discussed in this essay. It may however be men-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

to the Sanskrit and the Vedas, English, Western Sciences, Western Philosophy, History etc. were also tought.[6] It is thus clear that Dayananda was not opposed to the study of Western science and the English language but he considered a thorough knowledge of the past Vedic culture of India and the Sanskrit language as essential for the national regeneration and social progress of India.

The Arya Samaj founded by Swami Dayananda is an important force in the social life of modern India. By constructive activities it has always been trying to lay the foundation of a new society in Aryavarta. Besides running a number of schools and colleges for both men and women, it has set up a number of orphanages and 'homes' for widows. The Samaj has its own depressed classes mission and it has raised thousands of downtrodden social pariahs to the status of higher classes. It has championed with steadfast devotion the cause of the emancipation of women and has brought comfort and happiness to a large number of child widows. The Samaj has also organised relief in times of social distress caused by natural calamities like famine and flood.[7]

Political reforms :

Swami Dayananda was not a political thinker in the technical sense of the term but a careful study of his views clearly reveals his political mind. He contributed immensely to the domain of political thought without himself being a politician. Thought a religious man par excellence he did not ignore the material side of human existence. No aspect of human life was alien to him and his mission was to bring the entire humah existence under the guidance of an all-pervading spiritual philosophy.

The most striking feature of his political philosophy that easily draws our attention is his contribution to the concept of nationalism. Nationalism in the modern sense is essentially a political concept but it draws its

tioned that the DAV College remained under the control of the first group and the latter group founded a new educational institution called the Gurkula near Hardwar.

6. Hans Kohn, *A History of Nationalism in the East*, p. 65.

7. See Introduction by Ghasi Ram to the Commentary on the Vedas by Swami Dayananda.
For a history of the Arya Samaj see the book of Lajpat Rai.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

vitality from its cultural content. The British government by unifying the country through railways, telegraph, common laws and administration, created objective conditions for the rise of political nationalism. The role of Swami Dayanand was to introduce into this concept of nationalism a soul of its own. He tried to make the people proud of their own past Vedic culture by explaining to them its real nature and grandeur. The Oriental Scholars of the West did much to discover the past culture of India but they could not clearly differentiate the elements of pure Vedic culture from those of the decadent Puranic age. It was Swami Dayananda who first drew our attention to this vital aspect of the study of Indology. In this connection the observation of Dr. Mazumdar may appropriately be quoted. He writes : "In the seventies of the last century the religious prophets, like Sriramakrishna and Swami Dayananda, did much more than the Orientalists to make the people of India proud of their own culture.[8]"

The contributions of Sri Ramakrishna and Swami Dayananda towards making the Indian people, at least the mass of the Indian people, proud of their past culture is certainly greater than those of the Oriental scholars. But the difference between the outlook of Sri Ramakrishna and Swami Dayananda should not be lost sight of. Sri Ramakrishna tried to popularise the past Indian culture as a whole, but Swami Dayananda tried to revive the Vedic culture only to the exclusion of the Puranic culture. In fact, many of the superstitious ideas and practices prevailing among the Hindus which follow from the decadent age of Puranic mythology can by no means be supported. A more discriminating attitude distinguishes Swami Dayananda from Sri Ramakrishna.

Like Swami Dayananda Raja Rammohan Ray also tried to enrich the cultural content of Indian nationalism. A critical student of Indian nationalism cannot however ignore the difference in the outlook of these two outstanding products of the nineteenth century India. The attitude of Raja Rammohan and the Brahma Samaj was essentially

8. Dr. Beman Behari Mazumdar, *History of Political Thought from Ram Mohan to Dayananda, Vol. I : Bengal*, p. 336.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

eclectic. Their attempt was to create a new synthesis taking elements from various civilizations like the Hindu, Muslim and the Christian. The role of Swami Dayananda, on the other hand, was to explain to the people the nature of the Vedic Culture in pure and unadulterated form. He exhorted the people of India to create a new civilization on the basis of the Vedic principles taking various elements from Western science and technology. Hans Kohn has rightly pointed out that though the Arya Samaj and the Brahma Samaj "were children of one and the same revolution" It was "the Arya Samaj which by reawakening the India of the past, did most to pave the way for the India of the 20th century"[9]. Mrs. Annie Besant, it may be mentioned here, dates "the undermining of the belief in the superiority of the White Races to the spreading of the Arya Samaj" (and the Theosophical society).[10]

Though Swami Dayananda's main contribution to the field of political thought lay in introducing the cultural content to the concept of Indian nationalism, he was not a narrow nationlist. He stood for national patriotism but was opposed to national arrogance. He in fact championed the cause of universalism but his concept of Universal Brotherhood did not go against the principal of national patriotism. Like Sri Aurobindo of the later period he held that national cultures of different states should instead of coming in conflict with one another contribute to the development of a cosmopolitan human culture. He proclaimed time and again : "The wall of isolation and prejudice set up by the nations of the earth will soon crumble down to the dust before the onrush of a tidal wave of a great idea and all the nations of the earth will take part in a joyous festivity of love.[11] Swami Dayananda did not support everything Indian nor did he condemn everything foreigner. He was the greatest critic of several elements of ancient Indian culture. He himself observed : "Though we are born in Aryavarta (India) and still live in

9, Hana Kohn, op. cit., p. 63

10. Mrs. Besant's Presidential Address to the annual session of the Indian National Congress in 1917.

11 Alokananda Mahabharati, *The Master's World-Union Scheme*, pp. 12-13.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

it, yet just as we do not defend the evil d ctrines and practices of the religions prevailing in our own country—on the other hand expose them properly—in like manner we deal with alien religions. We treat the foreigners in the same way as we treat our own countrymen in recognition of our common humanity."[12] Swami Dayananda praised several traits of the British national character, such as, their better social efficiency, superior social institutions, self sacrificing and enterprising spirit, obedience to authority etc. He found many good qualities in the western civilization and stood for a reconciliation between the two. There was no scope for any arrogance in his catholic outlook. Explaining the attitude of Dayananda, Acharya Pronobonanda wrote : "India is the home of Eastern culture and England is the type of western culture. Eastern culture is essentially spiritualistic, while Western culture is essentially materialistic Both are incomplete, one without the other. Perfection lies in the harmonious combination of both. It is through divine dispensation that India and England heve been united. Both cultures have met it India so that each may profit by the experience of the other, so that the imperfection of both may be healed."[13] A dispassionate study of his views clearly indicates that his mind was free from all narrowness and arrogance.

If we are to use any modern 'ism' to connote his philosophy, it is better to call him a humanist. His humanism was based upon the concept of spiritual man. Man represents a divine spark within him and this divinity unites the entire human race. An individual is not different from an animal if he remains under the control of his physical impulses only. By unfolding the potentialities of the divine spark inherent in every man, an individual can develop his humanity. Swamiji himself said : "Should a man act like an animal, which if strong oppresses the weak, and even puts them to death, he is more an

12. Introduction to *Satyartha Prakash* by Dayananda. The introduction is taken from *Light of Truth on an English Translation of the Satyartha Prakash of Dayananda* by Dr. Chiranjiva Bharadwaja, p. iv (introduction).

13. Acharya Pronobananda, *Thakur Dayananda and Arunachal Mission*. Quoted in Alokanand Mahabharati, op. cit., pp. 10—11

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

animal than a man. He alone can fitly be called a man who being strong protects the weak. He that injures others in order to gain his selfish ends can only be called a big animal."[14] Man can outgrow his animal existence only by developing the divine forces within him. He will then feel the unity of mankind and work not simply for his own gain but for general welfare. Swami Dayananda tried to elevate man to this spiritual level. He often told his disciples: "We have come to work for the good of the world, we must not look to our own happiness." Again he often said: "The good of the world must be placed above the good of one's own or even that of one's friends and relations."[15] In this connection we may refer to the ninth and tenth principles of the Arya Samaj as laid down by Swami Dayananda. The ninth principle stated: "Not to be content with promoting one's own happiness or well being but to consider one's welfare only in the welfare of all....." The tenth principle ran thus: "To have due regard to one's own individual freedom and development with the ultimate object of promoting general weal; or in other words, subordinating, disciplining and developing self so as to promote social welfare.[16]" Thus to promote social welfare of man was the utlimate objective of the Arya Samaj. Man should not be selfish but should work for others—this is the ultimate message of Dayananda whom we can possibly truly characterise as a great humanist.

Humanist outlook of Dayananda led him to dream of a new social order which one may call Moral Socialism. He had the vision of a cosmopolitan commonwealth of man. All countries would be free and equal and each national-unit would be a union of free individuals. In this ideal society neither money nor trade and commerce would exist in the traditional sense. There would take place only an exchange of goods between different centres. Railways, telegraph system, aeroplanes etc. would remain for the welfare of the community—as a whole. "Under the scheme, motive of 'gain' shall give place to motive of 'service' to the

14. Introduction to *Satyartha Prakash* by Dayananda taken from Dr Chiranjiva Bharadwaja, op. cit., p. iv (Introduction)

15. Alokananda Mahabharati, op. cit., p. 12.

16. Quoted by V. P. Varma, op. cit., p. 57.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

whole community—each living for all and all for each.[17]" Like a true socialist Dayananda championed the interest of the submerged, downtrodden and exploited classes in society. He said : "In this New Era, God will manifest Himself amongst the submerged classes. Great religious teachers will rise from their ranks.[18]" But this new social order, he was firmly convinced, would not be established by force or by introducing changes in the social system only. What was necessary was a change in human outlook, a change of human nature. Referring to the activities of the socialists who were trying to establish a new social system by force he said. "They are pursuing a wrong track. Liberty, equality and fraternity shall never be established on earth by blood-shed. The only means to that end is spiritual force and love.[19] "Not common interest but love alone, according to Dayananda, can bring into existence a new social order without the frontier of nations and division of class.

Dayananda tried to apply these principles to the organisation of his Arya Samaj and the various Ashrams established under its auspices. The organisational structure of the Arya Samaj was based on the principle of democratic election. The Ashrams were regarded as the common property of all its members and everything was managed by them in cooperation. They were like so many religious republics.[20]

Though Dayananda had his utopia he was not an utopian thinker but a practical idealist. He believed that India, the cradle of the Vedic civilization, had a vital role to play in the world, But as long as India would remain enslaved she would not be able to play that role. He, therefore, wanted to make India free and supplied a dynamic philosophy to Indian nationalism. His role was to prepare the country socially and psychologically for freedom. He himself did not take any direct part in the political movement against the British but the British Government was immensely afraid of him and his

17. Alokananda Mahabharti, op. cit., p. 157. For details of the ideal society, as envisaged by Dayananda, see the chapter 'What is Thakur Dayananda's scheme of this book.
18. Ibid., pp. 30.31.
19 Ibid., p. 32.
20 Ibid., p. 32.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Arya Samaj. As Romain Rolland has put it : "He (Swami Dayananda) always claimed to be non-political and non anti-British but the British Government judged differently.[21]" Once when Swamiji was at Silchar (Assam) the police arrested him along with two of his disciples but they were later on released as there was no valid charge against them. The Government however always exercised pressure upon his disciples who were on Government service.[22] The British India, it is clear, understood the far-reaching and revolutionary implications of his teachings and activities. It is therefore, not surprising that Sir Valentine Chirol, who Visited India on behalf of 'The Times' to find out the causes of Indian unrest after 1907, considered the Arya Samaj as a serious menace to the British supremacy in India. The impact of the doctrines of Swami Dayananda and of the Arya Samaj founded by him is obvious though no detailed study on this topic has yet been made in our country. Zacharias has aptly remarked that "Tilak merely carried on the lines Dayananda had inaugurated"[23]. The political outlook of Lajpat Rai was besed upon the doctrines of the Arya Samaj.

Two common charges against Dayananda refuted :

After explaining his main contributions in broad outline let us refer to and comment upon the two charges that are usually brought against Dayananda. He is considered by some as 'reactionary'. anti-modern and revivalist. Secondly, his aggressive and militant posture is denounced by many. Zacharias, as for example, wrote : "with him (Dayananda) rowdyness had entered Indian public life".[24] Do these charges stand the test of logic and historical analysis ?

Dayananda, it is true, derived his inspiration for creating a new India from the Vedic past. But on that account he cannot be considered as more 'reactionary' than the pioneers of the Renai-sance and the Reformation movements of Europe. The Renaissance movement derived inspi-

21. Roma in Rolland, the life of Ramakrishna, 157-58.
22. Alokananda Mahabharati, op cit. pp. 67-68.
23. Zacharias, H. c. F. *Renascent India*, p. 39.
24. Ibid., P. 39.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ration from the ancient Greek civilization. The Reformation movement returned to the original Bible to combat the corruption of the Christian Church. If these movements can lay the foundation of modern Europe, is it reasonable to hold Dayananda as 'reactionary, and anti-modern? Shri Durga Prasad has aptly described him as the "Luther of India".[25] Swami Dayanand, one should remember, found greatest opposition to his work from the orthodox Brahmins of country. He was neither a 'reactionary' orthodox nor was his vision dazzled by the glitter of the modern western civilization. He was therefore condemned both by the orthodox as well as by the blind worshippers of 'modernism'.

Let us now come to the second charge. Dayananda was full of energy, dynamism and vitality. He firmly believed that national regeneration could not be attained by a spirit of passivity, inertia and resignation. Courage of conviction and honesty of purpose made him assertive. His ideas and activities brought about a new energy and enthusiasm among the masses of the Indian people. He made his appeal "not to an English educated elite but to the broad masses of his fellow countrymen."[26] His messsage stirred the imagination of a section of the Indian people and brought in them a sense of pride in their culture. With him, therefore, entered not "rowdyism" but assertion of the self-respect by the Indian people. Moreover, as Dr. Varma has put it, "the militancy manifested by Dayananda and Arya Samaj was partly a counterpoise to the domineering attitudes of the two other semitic churches in India, Islam and Christianity."[27]

A detailed study of the life, ideas and activities of Swami Dayanada will fully justify the remark of Dr. K. P. Jayaswal that "in the nineteenth century there was nowhere else such a powerful teacher of monotheism, such a preacher of the unity of man, such a successful crusader against capitalism in spirituality."[28] A critical examination of his views will enable us to discover solutions of many of the evils modern India is suffering from. We can forget this savant of modern India only at our own peril.

25. Durga Prasad, *An English Translation of the Satyartha Prakash of Maharshi Swami Dayananda.* See Introduction, P. xii.

26. B. B. Mazumdar, *History of the Indian Reformation*, p. 68.

27. Dr. V. P. Varma, op. cit., p. 59.

28. K. P. Jayaswal's article in Dayananda Commemoration volum, pp. 162-63.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

महर्षि दयानन्द की देन

३

श्री जी० पी० भट्टाचार्य

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

ऐतिहासिक अनुसन्धान ने यह निर्विवाद रूप से प्रमाणित कर दिया है कि वैदिक काल में भारतवर्ष में एक अति उन्नत संस्कृति वर्तमान थी। वैदिक संस्कृति में अनेक कारणों से अध.पतन आरम्भ हो गया, यद्यपि इन कारणों की समग्र सम्पूर्ण व्याख्या विद्वानों ने की नहीं है। इस सामाजिक गति हीनता और अध्यात्मिक पतन के काल में अनेक सम्प्रदाय सिद्धान्त वैदिक संस्कृति को ललकारते हुए खड़े हो गये। इसी बीच, इधर इस्लाम की शक्ति से आक्रान्त होने पर भारत में राजनीतिक अनिश्चय और सामाजिक संघर्ष का काल आरम्भ हो गया। यद्यपि इस काल में, धार्मिक पुनरुत्थान और विरोधी सिद्धान्तों में समझौते के अनेक प्रयास हुए, किन्तु वे एक निश्चित क्षेत्र में आबद्ध रहे और उन्हें अति सीमित सफलता मिली। प्राचीन वैदिक संस्कृति भूतके अवशेषों में ढकी पड़ी रही।

ब्रिटेन की भारत विजय के कारण भारत के सामाजिक राजनीतिक, बौद्धिक जीवन में नवचेतना और गतिशीलता का जन्म हुआ। भारत न केवल राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से एक इकाई में बँध गया, बल्कि इसका सम्पर्क पश्चिम के विचार, विज्ञान और तकनीक से हुआ। पश्चिम की इस धारा के साथ ही भारत के अतीत और विस्मृतप्राय संस्कृति का उद्धार विद्वानों के दल, पश्चात्य और पौरस्त्य, दोनों ने भारत के अतीत के सम्बन्ध में अपने अनुसन्धान के द्वारा, किया। इन दो सांस्कृतिक शक्तियों की क्रिया प्रतिक्रिया आरम्भ हुई। इनमें से एक पश्चिम से आयात, बुद्धिवादी, धर्मनिरपेक्ष और विज्ञान के आधार पर थी और दूसरी आध्यात्मिक एवं श्रेष्ठ भारत की प्राचीन परम्परा से उद्भूत हुई। इन्होंने देश में एक बौद्धिक क्रान्ति का जन्म दिया जिसे उन्नीसवीं सदी का पुनर्जागरण कहते हैं। यह जागरण बहुपक्षीय सांस्कृतिक आन्दोलन था और विभिन्न विचार धाराएँ, और कभी कभी विरोधी विचारधाराएँ सन्निविष्ट हुई। कुछ लोग, जो सर्वथा परम्परावादी थे, इस पुनर्जागरण के प्रभाव से पृथक रहे और उन्होंने रुढ़िगत परम्पराओं और संस्थानों की रक्षा की चेष्टा की। एक ओर विचारधारा के लोग थे जो पश्चिमी विचारों के प्रवाह में बह गये और वे भारत के अतीत के प्रति अनावृत हीनता का दृष्टिकोण रखने लगे। अधिक शान्त लोगों ने भारत की अतीत परम्परा और पश्चिम के विज्ञान एवं तकनीक में ताल मेल बैठाने की चेष्टा की।

इस सामञ्जस्यवादी विचारधारा का नेतृत्व करने के लिये भारत के दो छोरों से दो महापुरुष पैदा हुए; एक पूर्वी भारत से, दूसरे पश्चिमी भारत से। समान्यतः बंगाल के राजा राममोहन राय और गुजरात के महर्षि दयानन्द सरस्वती का

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सम्बन्ध इसी विचारधारा से है। उन दोनों में कोई मौलिक अन्तर न था; जो कुछ भेद था वह मात्रा और महत्व का था। राजा राम मोहन राय महान् विद्वान् थे। वे पाश्चात्य एवं पौरस्त्य, संस्कृत समेत, कई भाषाएँ जानते थे। उन दिनों ब्रिटेन से कई प्रसिद्ध विद्वान भारत वर्ष आये और इस देश में अंग्रेजी भाषा की निरन्तर प्रगति होती जा रही थी। उस युग की यह एक महती आवश्यकता थी कि कोई ऐसा समर्थ व्यक्ति पैदा होता जो वेदों का भाष्य मौलिक और विशुद्ध रूप में करता। उस युग के पण्डितों ने वेद भाष्य किये थे किन्तु वे पौराणिक कथाओं के आलोक में थे। उनके भाष्य वैदिक काल की समुन्नत संस्कृति का यथोचित सुस्पष्ट ज्ञान नहीं दे सकते थे। योरोपीय विद्वानों ने इन्हीं पण्डितों से संस्कृत पढ़ी थी अतः अनिवार्यतः योरोपीय विद्वानों की भाषाओं में भी वही रंग चढ़ गया। यह महर्षि दयानन्द ही थे, जिन्होंने असामान्य अन्तर्दृष्टि से वेदों पर न्यस्त पौराणिक कथा भार से वेदों को मुक्त किया और वेदों का अर्थ वैदिक भाषा के दृष्टिकोण से किया। वैदिक संस्कृति की प्रकृति के सम्बन्ध में उनके भाष्य ने एक नूतन पथ का उद्घाटन किया। उन्नीसवीं शती में भारत के सांस्कृतिक इतिहास में महर्षि दयानन्द का आधारभूत कार्य छिपा है। इसी ऐतिहासिक परिवेश के आलोक में तथा जिस विशिष्ट ऐतिहासिक आकांक्षा की पूर्ति उन्होंने की, उसके परिप्रेक्ष्य में, महर्षि दयानन्द के अवदानों का मूल्याङ्कन होना चाहिये।

संक्षिप्त जीवन चित्र: उनके जीवन के तीन चरण

* महर्षि दयानन्द का जन्म १८२४ में मौरवी राज्य, कठियावाड़, गुजरात में एक कट्टर परम्परावादी ब्राह्मण परिवार में हुआ। छोटी अवस्था में ही उनमें धर्म के प्रति गहरी अभिरुचि का विकास हुआ। उनकी आयु अभी बीस वर्षों की भी न थी जब हिन्दुओं की धार्मिक परम्परा पर से उनकी आस्था हट गई और उन्होंने अनुभव किया कि मूर्तिपूजा और बहुदेवता वाद व्यर्थ तथा हानिकारक हैं। इनके परम्परा विरुद्ध विचारों के कारण इनकी अपने पिताजी से अनबन रही। अभी दयानन्दजी की आयु केवल बीस वर्षों की ही थी जबकि इनके पिताजी ने बलात् इनकी इच्छा के विरुद्ध इनका विवाह करना चाहा और दयानन्द जी अपने पिताजी का घर छोड़ने के लिये बाधित हो गये। यहाँ से दयानन्द जी के जीवन का द्वितीय चरण आरम्भ होता है। उन्होंने घर से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया और संन्यास ले लिया। उन्होंने सम्पूर्ण भारत का भ्रमण किया और अपनी आँखों हिन्दु समाज का विस्तार से अध्ययन किया। उनके उर्वर मस्तिष्क में, उनके गम्भीर अध्ययन और साधना के फलस्वरूप इस विस्तृत अनुभव ने बहुत सुन्दर परिणाम उत्पन्न किया। सन् १८६० ई० में उन्होंने मथुरा में गुरु स्वामी विराजानन्द जी के पास अध्ययन आरम्भ किया और यह अध्ययन का क्रम ढ़ाई वर्षों तक चलता रहा। सन् १८६४ ई० में उन्होंने जनता में प्रचार करना, उपदेश देना आरम्भ किया। इस प्रकार उनके जीवन के तृतीय चरण का आरम्भ हुआ। इन अपने जन प्रवचनों में वे संस्कृत भाषा का ही प्रयोग किया करते थे, अतः साधारण जनता का विशाल भाग उसे समझ न पाता था। अतः पीछे उन्होंने जन भाषा + में प्रवचन आरम्भ किया। १० अप्रैल १८७५ ई० को इन्होंने सर्वप्रथम बम्बई में आर्य समाज की स्थापना की। सन् १८७७ ई० में लाहौर में आर्य समाज के विधान को अन्तिम रूप दिया गया। स्वामी दयानन्द जी इस समय अपने सन्देश के प्रचार में पूर्णरूप से तल्लीन हो गये थे। उन्होंने कई पुस्तकें लिखीं। इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण सत्यार्थ प्रकाश है। इनमें इन्होंने अपने विचारों की व्याख्या की है और इन्होंने लोगों को आर्य समाज की पताका के नीचे संगठित करने की चेष्टा की। देश के पश्चिम भाग में गुजरात, पंजाब, उ० प्र०, और राजस्थान में इनका सन्देश विशेष रूप से सफल हुआ।

* इनका वास्तविक नाम मूल शंकर था।

+ स्वामी दयानन्द जी इसे 'आर्य भाषा' के नाम से अभिहित करते हैं। सम्पादक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

३० अक्टूबर १८८३ ई० को महर्षि के पार्थिव शरीर का अन्त हो गया।

भारतीय समस्याओं के प्रति महर्षि दयानन्द के मौलिक विचार

महर्षि दयानन्दजी सुदृढ़ इच्छा और बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्ति थे। उन्होंने भारत के इतिहास पर गहरा प्रभाव डाला है। उन्होंने भारतीय जनता को एक दृष्टिकोण और नूतन गतिशीलता दी। उन्होने हमारे राष्ट्रिय जीवन को बहुविध समृद्ध किया। उनके बहुपक्षीय अवदानों का मूल्यांकन उन्हें तीन वर्गों में विभक्त करके किया जा सकता है : धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक। उनके अवदान परस्पर बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं अतः इस वर्गीकरण को बहुत दृढ़ता से नहीं पकड़ना चाहिये। राजनीतिक परतन्त्रता के परिप्रेक्ष्य में ईसाई धर्म-प्रचारकों द्वारा हिन्दुओं के धर्म-परिवर्त्तन को स्वामी दयानन्द ने बड़ी चिन्ता से देखा। हिन्दू समाज में प्रचलित अन्धविश्वास और कुरीतियों ने ईसाई धर्मप्रचारकों को अच्छा अवसर दिया और वे बड़ी सफलता से हिन्दुओं को ईसाई बना रहे थे। भारत या आर्यावर्त्त की हिन्दू सभ्यता की चेतना को चरने वाली कुरीतियों को दयानन्द का समर्थन नहीं मिल सका। स्वामी दयानन्द को भय था कि वैदिक सभ्यता की यह भूमि राजनीतिक परतन्त्रता और अन्य बुराइयों के कारण अपना स्वत्व खो बैठेगी। यह राजनीतिक परतन्त्रता क्यों थी? स्वामीजी के विचार से भारत की राजनीतिक परतन्त्रता का कारण था, "परस्पर ईर्ष्या, द्रोह, मतमतान्तर, जीवन में अपवित्रता, शिक्षा का अभाव, बालविवाह... ..भौतिक सुखों में आसक्ति, असदाचार और अन्य कुरीतियाँ।"२ इनके विचार में सामाजिक पतन ही राजनीतिक परतन्त्रता का कारण था। अतः उन्होंने सोचा कि राजनीतिक स्वतन्त्रता का आधार है सामाजिक कुरीतियों को दूर करना और आर्यावर्त्त के लोगों में सामाजिक कुरीतियों का मूल आधार क्या था? वास्तविक वैदिक संस्कृति से पथभ्रष्ट होने के कारण ही सामाजिक कुरीतियाँ आई थीं। अतः मूल वैदिक संस्कृति का पुनः स्थापन ही हिन्दू-कुरीतियों को दूर करने का एकमात्र उपाय था। इस प्रकार महर्षि दयानन्द के विचार में राजनीतिक स्वतन्त्रता, सामाजिक सुधार और वैदिक सभ्यता के पुनरुद्धार में कार्य-कारण भाव का सम्बन्ध था। वैदिक सभ्यता के पुनरुद्धार से सामाजिक सुधार होगा और इसी से राजनीतिक स्वतन्त्रता का मार्ग प्रशस्त होगा। इस प्रकार दयानन्द में धार्मिक उपदेशक, समाज-सुधारक और राजनीतिक सन्देष्टा, तीनों एक में अनुस्यूत हैं। यद्यपि हम इन तीनों अवदानों को तीन अलग खण्डों में वर्णन करेंगे, फिर भी, इस सामञ्जस्यकारी तत्त्व का ध्यान रखना चाहिये।

धार्मिक सुधार :

स्वामी दयानन्द पूर्णतः धार्मिक व्यक्ति थे और वे संन्यासी बने। किन्तु संन्यास के कारण इन्होंने समाज का तिरस्कार कर केवल एकान्त और आत्म-कल्याण को ही लक्ष्य नहीं बनाया। पूर्ण वैराग्य के साथ ये समाज में रहे और इन्होंने समाज के लिए काम किया। स्वामी दयानन्द ने देखा कि तात्कालिक हिन्दू-समाज वैदिक-काल के हिन्दु-समाज से सर्वथा भिन्न था। वेद के आदेश के विरुद्ध लोग अन्धविश्वासपूर्ण परम्परा का पालन हिन्दु-धर्म के नाम पर कर रहे थे। बहुदेवतावाद, मूर्त्तिपूजा, अस्पृश्यता आदि हिन्दु-धर्म के आवश्यक अंग माने जा रहे थे। किन्तु स्वामी दयानन्द ने देखा कि वेदों के आधार पर इनमें से किसी की भी प्रामाणिकता नहीं थी। उन्होंने देखा कि हिन्दु अन्धविश्वासों से ऊबकर बहुत से लोग ईसाइयत की ओर आकृष्ट होते जा रहे थे। वैदिक धर्म की वास्तविकता दिखाकर उन्होंने इस गतिविधि को अवरुद्ध करने की चेष्टा की।

२ –बी० पी० वर्मा द्वारा Modern Indian Political Thouhgt में पृष्ठ ६० पर सत्यार्थप्रकाश से उद्धृत।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्वामी दयानन्द ने विचार किया और देखा कि हिन्दु-सभ्यता का पतन पुराणों की धर्म-परम्परा से आरम्भ हुआ। हिन्दु-विचारधारा की अन्तिम कड़ी, पुराण-कथाएँ ही प्रचलित हिन्दु-धर्म का आधार थीं। स्वामी दयानन्द ने बताया कि ये पुराण कथाएँ न तो वेदों द्वारा समर्थित हैं और न स्मृतियों द्वारा ही। पौराणिक काल के वेदभाष्यकारों ने अपने विचारों का समर्थन वेदों में खोजने की चेष्टा की। अतः उन्होंने वेदों के भाष्य अपने ढंग से कर लिए। सायण और महीधर जैसे भाष्यकर्त्ता इसी वर्ग के हैं। वे प्रायः वेदों के पौराणिक भाष्यकार के रूप में सम्मिलित जाने जाते हैं। उन्होंने वेदों का ऐसा भाष्य किया जिसमें पुराण कथाओं को वेदों से प्रमाणित करने की चेष्टा की। पश्चिम के विद्वानों ने इन भाष्यों को प्रमाणरूप में स्वीकार किया। अतः इनके वेद-भाष्य भी सायण, महीधर और इसी विचारधारा के दूसरे भाष्यों से प्रभावित हुए। परवर्त्ती काल के भाष्यकारों के प्रभाव से मुक्त होकर स्वामी दयानन्द ने मूल ग्रन्थों के आधार पर वेदों का भाष्य किया।

यह सर्वसम्मत है कि निरुक्तकार यास्क वेदभाष्य के सम्बन्ध में सर्वोच्च प्रमाण हैं। सायण और महीधर ने भी सम्मानपूर्वक उनके उद्धरण दिये हैं। स्वामी दयानन्द ने यास्क प्रतिपादित निरुक्त के सिद्धान्तों के आधार पर वेद भाष्य करने का प्रयास किया। यास्क के अनुसार वेद के सभी पद अपने यौगिक अर्थ में प्रयुक्त हैं। इसका अभिप्राय यह हुआ कि उनमें व्यक्तिवाचक संज्ञा या ऐतिहासिक सन्दर्भ हो ही नहीं सकता। पौराणिक अथवा ऐतिहासिक विचार-धारा के प्रतिकूल यास्क को वेदभाष्य की नैरुक्तिक परम्परा का संस्थापक माना जा सकता है। अन्ध-परम्परा के सर्वथा विरुद्ध स्वामी दयानन्द ने नैरुक्तिक विचारधारा का अनुसरण करते हुए वेद-ग्रन्थों का अर्थ किया। वेदों में प्रयुक्त अग्नि, वायु, सूर्य, आकाश, आदि पद, निरुक्त या निर्वचन प्रक्रिया के अनुसार, प्रकृति के विभिन्न विभागों पर शासन करने वाले देवताओं के वाची नहीं हैं। इनका दो अर्थों में प्रयोग हुआ है। कभी वे भौतिक पदार्थों का बोध कराते हैं तो कभी सर्वशक्तिमान् परमात्मा का। अग्नि, वायु, सूर्य, सोम आदि पद उसी वर्णनातीत का वर्णन करने के लिए प्रयोग किये जाते हैं और उसे ही वेदों में ओ३म् कहा गया है। इन शब्दों का प्रयोग किसी भौतिक पदार्थ का वर्णन कर रहा है या वर्णनातीत सर्वशक्तिमान् का, यह निर्णय केवल सन्दर्भ के आधार पर ही किया जा सकता है। इन विभिन्न पदों का निर्वचनानुसारी भाष्य करके स्वामी दयानन्द ने वेद-मन्त्रों का अति सुरुचिपूर्ण अर्थ किया। उनके अनुसार उर्वशी स्वर्गीय अप्सरा और इन्द्र के दरबार की सुन्दरी नहीं अपितु विद्युत है। जिन वेद-मन्त्रों में बालिश कथाओं का वर्णन समझा जाता था, दयानन्द के अनुसार उनमें अति महत्त्वपूर्ण सत्य उद्घाटित हुआ है। इन सिद्धान्तों के आधार पर स्वामी दयानन्द ने जो वेदभाष्य किये, उनसे प्राचीन भारत की अति उन्नत एवं वैज्ञानिक संस्कृति का परिचय मिला। उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' में, जिसे उन्होंने हिन्दी में लिखा था, उनकी व्याख्या मिलती है। प्रथम दश समुल्लासों में वैदिक शिक्षा का वर्णन है। एकादश समुल्लास में पौराणिक और तान्त्रिक मान्यताओं की व्याख्या है। स्वामीजी के अनुसार इनमें वेदों से सुस्पष्ट मतभेद है। द्वादश समुल्लास में, बौद्ध, जैन और चार्वाक मतों की समालोचना है। इन नास्तिक विचारों के कारण, भारतीय सभ्यता संस्कृति का पतन हुआ है अतः स्वामी दयानन्द उनके प्रचार को हर प्रकार से रोकना चाहते थे। इस पुस्तक में स्वामी दयानन्द की वैदिक विद्या पूर्णरूप से प्रकट हुई है। कोई उनके विचारों से सहमत हो या न हो, किन्तु जो भी इस पुस्तक को पढ़ेगा, वह उनकी विश्लेषण क्षमता और विद्या की गम्भीरता की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता। इस ग्रन्थ का मूल उद्देश्य यह था कि प्राचीन वैदिक सभ्यता के आधार पर जो "जड़ें आई हैं, उन्हें काट-छाँटकर"[३] भारतीय जन-जीवन के पुनर्निर्माण के लिए लोगों को प्रोत्साहित किया जाय।

३. MacDonald, The Government of India. P. 236.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्वामी दयानन्दजी ने सत्यार्थ प्रकाश में यह स्थापना की कि वेद धर्म एक एकेश्वरवाद का हामी है। वेदों में ऐसे मन्त्र हैं, उनमें ईश्वर की एकता का वर्णन है किन्तु साथ ही ऐसे सन्दर्भ हैं, जिनमें अनेक देवों का प्रसङ्ग है। इससे बहुतों ने यह निष्कर्ष निकाला कि वेद धर्म बहुदेवतावादी है। वेद-धर्म की व्याख्या के लिये मैक्समूलर ने Henotheism+ शब्द को सर्वापेक्षया अधिक उपयुक्त समझा। उसने कहा कि बहुदेवतावाद से हम देवों की एक ऐसी व्यवस्थित परम्परा समझते हैं जिस में सर्वशक्तिमान् प्रभु (चाहे Zeus हो or Jupiter हो) सबसे ऊपर और उसके अन्दर अनेक देवताओं का स्थान है। उसे वेदों में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं मिलती है। अतः मैक्समूलर ने Henotheism शब्द का चुनाव किया। स्वामी दयानन्द इन विचारों से सहमत न हुए। उन्होंने कहा कि वेद में एक ही ईश्वर का वर्णन है यद्यपि उसे अनेक नामों से अभिहित किया गया है। जिस प्रकार ईश्वर के विशेषण अनन्त हैं, उसी प्रकार उसके नाम भी अनन्त हैं। स्वामी दयानन्द ने अनुसार अग्नि, वायु, सूर्य आदि पद भिन्न-भिन्न देवताओं के वाचक न होकर एक ही सर्वशक्तिमान् ईश्वर के विभिन्न विशेषण हैं। ये विभिन्न पद भौतिक पदार्थों के नाम भी हैं अतः जैसा हमने पहले कहा है, इन पदों का वास्तविक अर्थ उनके सन्दर्भ से ही निर्णीत हो सकता है।

स्वामी दयानन्द के वेदभाष्य बहुतों को उपहसनीय लगते हैं? कुछ लोगों ने उन्हें अशुद्ध व्याख्या करने वाला समझा। उनकी व्याख्या सचमुच परम्परा निरपेक्ष है, अतः परम्परा और अन्धविश्वास के विरुद्ध है। किन्तु यह उनके तिरस्कार का कोई कारण नहीं। उनकी व्याख्या निश्चित सिद्धान्तों के आधार पर है और वे इन सिद्धान्तों का अनवरत अनुसरण करते हैं। कोई या तो यह दिखा दे कि वेदभाष्य की निर्वचन पद्धति स्वयं अशुद्ध है या फिर यह दिखा दे कि स्वामी दयानन्द के भाष्य में यह पद्धति संगत नहीं हुई। किन्तु आज तक उस स्तर पर स्वामी दयानन्द से किसी ने हाथ मिलाने का साहस नहीं किया।

+ बिना दूसरे देव को इन्कार किये एक देव की पूजा।

—सम्पादक

समाज सुधार—

वैदिक संस्कृति के पुनरुद्धार की चेष्टा के साथ ही स्वामी दयानन्द ने हिन्दू समाज के कई सुधार की चेष्टा की। उन्होंने देखा कि हिन्दू समाज में प्रचलित तमाम कुरीतियाँ, वेद के आदर्श के विरुद्ध हैं और उन्हीं के कारण हिन्दू समाज ईसाइयों के आक्रमण का शिकार बना हुआ है। अतः उन्होंने हिन्दु समाज से इन कुरीतियों को दूर करने की चेष्टा की।

स्वामी दयानन्द मूर्ति पूजा के कट्टर विरोधी थे और इसके विरुद्ध उन्होंने सोलह आक्षेप किये।[४] उन्होंने बलि प्रथा का दृढ़ विरोध किया और हिन्दुओं द्वारा विदेश यात्रा को प्रोत्साहन दिया। राजा राममोहन राय की तरह वे भी नारी-स्वतन्त्रता के समर्थक थे। इन्होंने देखा कि वैदिक सिद्धान्तों के विरुद्ध, बहुत से अमानवीय बन्धन हिन्दु स्त्रियों पर लगे हैं। स्त्री और पुरुषों की समानता के सिद्धान्त का प्रचार करते हुए उन्होंने स्त्रियों पर लगे इन बन्धनों को हटाने की चेष्टा की। उन्होंने बाल विवाह का विरोध किया। उनके मतानुसार २५ वर्ष से कम के पुरुष और १६ वर्ष से कम की स्त्री का विवाह नहीं होना चाहिये। वह स्त्री शिक्षा और विधवा विवाह के प्रबल समर्थक थे।+ स्वामी दयानन्द ने तदानीन्तन प्रचलित जाति प्रथा का विरोध किया। उन्होंने वैदिक वर्णाश्रम धर्म के पुनरुद्धार की चेष्टा की। उन्होंने विचार किया कि वैदिक सिद्धान्तानुसार किसी का वर्ण उसके

४—डा० चिरंजीव भारद्वाजकृत सत्यार्थ प्रकाश का अंग्रेजी अनुवाद पृ० ३५८-६०। यह प्रसंग मूल सत्यार्थ प्रकाश में एकादश समुल्लास पृ० तृ९७-९८ (वैदिक यन्त्रालय, अजमेर ३४वाँ प्रकाशन) सम्पा०।

+ विधवा विवाह के स्थान पर ऋषि ने 'नियोग' प्रथा का समर्थन किया। आज के समाज में नियोग कठिन है अतः विधवा विवाह कम हानिकर प्रथा के रूप में समर्थित है।

—सम्पादक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जन्म से नहीं अपितु उसके गुण कर्म स्वभाव से निश्चय होना चाहिये। उनके अनुसार, वैदिक सिद्धान्तों के आधार पर समाज को चार वर्णों, में ही विभक्त करना चाहिये। हिन्दुओं में प्रचलित असंख्य जाति उपजाति की प्रथा को उन्होंने वैदिक समाज संघटन की भावना के विरुद्ध कहा। हिन्दू समाज में व्याप्त अस्पृश्यता का उन्होंने विरोध किया। महात्मा गांधी ने स्वामी दयानन्द के दृष्टिकोण की प्रशंसा करते हुए कहा है—"अस्पृश्यता के विरुद्ध स्वामी दयानन्द की सुस्पष्ट घोषणा असंदिग्ध रूप से हमारे लिए उनके समृद्ध दाय में से एक है।"

कहाप दयानन्द ने शुद्धि आन्दोलन के रूप में आर्य समाज के पुरोगम में एक क्रान्तिकारी योजना दी। उनका विश्वास था कि खोये हुए हिन्दुओं को, जो दूसरे मतों में चले गये हैं, उनको पुनः हिन्दुओं में मिला लेना चाहिए। यह पुनर्हिन्दु-करण का आन्दोलन शुद्धि आन्दोलन के नाम से जाना जाता है। उदार और प्रबुद्ध वैदिक मान्यताओं के साथ उनका विश्वास था कि हिन्दुओं का दरवाजा सदा उनके लिये खुला रहना चाहिये जो किसी समय किसी कारण से इसे त्याग कर अन्यत्र चले गये थे।

स्वामी दयानन्द अपने देश की शिक्षा व्यवस्था में आमूल परिवर्तन लाने के लिये सचेष्ट थे। अंग्रेजों द्वारा चालित शिक्षा व्यवस्था की जो भी अच्छाई हो, किन्तु इसका देश की विशाल सांस्कृतिक परम्परा से कोई सम्बन्ध न था। इस शिक्षा व्यवस्था की उपज सांस्कृतिक दृष्टिकोण से जनसाधारण के लिये विदेशी थी। स्वामी दयानन्द इस व्यवस्था को बदलना चाहते थे। इस प्रकार राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था का, जिसका स्वदेशी आन्दोलन के दिनों अधिक प्रचार हुआ, आदि प्रचारक स्वामीजी को समझना चाहिए। उनका कहना था कि भारतीय लोग अपने देश का विशुद्ध सांस्कृतिक साहित्य पढ़ें और इसके लिये उन्हें संस्कृत और वेद की ओर लौट आना चाहिये। छात्र केवल ज्ञान ही न प्राप्त करें, बल्कि अपने चरित्र से समाज के अच्छे सदस्य बनें। दयानन्द-एँग्लो-वैदिक कालेज की स्थापना महर्षि के विचारों के आधार पर की गई थी।५ इसमें संस्कृत और वेदों के अतिरिक्त अंग्रेजी, पश्चिमी विज्ञान, पश्चिमी दर्शन, इतिहास आदि भी पढ़ाये जाते थे।६ इससे यह सुस्पष्ट है कि दयानन्द का विरोध पश्चिमी विज्ञान और अंग्रेजी भाषा से नहीं था। किन्तु राष्ट्रिय पुनरुद्धार और जातीय उत्थान के लिये वे विगत वैदिक सभ्यता और संस्कृत भाषा का ज्ञान अनिवार्य मानते थे।

स्वामी दयानन्द द्वारा स्थापित आर्य समाज वर्तमान भारत के सामाजिक जीवन में एक महत्वपूर्ण शक्ति है। क्रियात्मक क्रियाकलाप से इसने आर्यावर्त में एक नये समाज को स्थापित करने की चेष्टा की है। स्त्री और पुरुष दोनों के लिये एक बड़ी संख्या में स्कूल कालेज चलाने के अतिरिक्त इसने अच्छी संख्या में अनाथालय और विधवा सदनों की स्थापना की है। दलित वर्गों के लिये समाज का अपना मिशन है और इसने सहस्रों पद्दलितों को उठाकर उच्च वर्ग की प्रतिष्ठा दी है। इसने बड़ी दृढ़ता और निष्ठा से स्त्री स्वतन्त्रता के प्रश्न को लिया और बड़ी संख्या में बाल-विधवाओं की सुख-सुविधा की व्यवस्था की। अकाल और बाढ़ जैसे प्रकृति के प्रकोपों के अवसर पर आर्य समाज ने अनेक बार रिलीफ का काम किया है।७

५—आर्य समाज में मतभेद और दो दलों की सृष्टि (एक के नेता लाला हंसराज और दूसरे के नेता स्वामी श्रद्धानन्द) का वर्णन इस लेख में अनपेक्षित है। हाँ, इतना कहा जा सकता है कि डी० ए० वी० कालेज प्रथम दल के अन्दर रहा और दूसरे दल ने एक नूतन शिक्षण संस्था की स्थापना हरद्वार के पास गुरुकुल नाम से किया।

६—Hans Kohu, "A History of Nationalism in the East" P. 65

७—Sea Introduction of Ghasi Ram to the Commentary on the Vedas & Swami Dayanand.

आर्य समाज के इतिहास के लिये लाला लाजपतराय की पुस्तक द्रष्टव्य है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

राजनीतिक सुधार

शब्द के अपने तकनीकी अर्थ में दयानन्द राजनीतिक चिन्तक नहीं थे, किन्तु उनके विचारों के सतर्क स्वाध्याय से उनका राजनीतिक चिन्तन उद्घाटित होता है। स्वयं राजनीति की परिधि से बाहर रहकर भी उन्होंने राजनीतिक क्षेत्र में भी प्रभूत अवदान किया है। अत्यन्त धार्मिक होकर भी उन्होंने मनुष्य के अस्तित्व के भौतिक पक्ष की उपेक्षा नहीं की। मानव जीवन का कोई भी पक्ष उनके लिये परकीय नहीं था और उनके मिशन का उद्देश्य था कि सम्पूर्ण मानव जीवन को आध्यात्म दर्शन के निर्देश में लाया जाय।

उनके राजनीतिक विचार की अत्यन्त आकर्षक विशेषता जो बड़ी सरलता से हमारा ध्यान आकृष्ट कर लेती है, उनके राष्ट्रियता के विचार के अवदान में है। वर्तमान विचार परम्परा में राष्ट्रियता अनिवार्यतः राजनीतिक विचार है किन्तु इसका पोषण सांस्कृतिक विचार से होता है। अंग्रेज सरकार ने रेल, तार, समान व्यवस्था और विधि की सृष्टि करके राजनीतिक राष्ट्रीयता की परिस्थिति को ठीक कर दिया था। स्वामी दयानन्द का काम था कि राष्ट्रियता के इस विचार में वे इसकी आत्मा सन्निविष्ट कर दें। वैदिक संस्कृति की वास्तविक प्रकृति और आभा की व्याख्या करके उन्होंने जनमानस में उसके प्रति गौरव का भाव पैदा करने का प्रयास किया। पश्चिम के प्राच्य विद्या विदों ने भारत के अतीत की संस्कृति का पता करने की बड़ी चेष्टा की किन्तु फिर भी वे वैदिक संस्कृति और पतनोन्मुख पौराणिक काल की संस्कृति में अन्तर न दिखा सके। प्राच्य विद्या के इस महत्वपूर्ण पक्ष की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करने वाले स्वामी दयानन्दजी प्रथम व्यक्ति थे। इस सम्बन्ध में डो० मजुमदार का उद्धरण उपयुक्त होगा। वे लिखते हैं, गत शताब्दी की सप्तति में श्रीरामकृष्ण और स्वामी दयानन्द जैसे धार्मिक नेताओं ने भारत को अपनी संस्कृति का गौरव बोध कराने में पश्चिमके विद्वानों की तुलनामें बहुत अधिक काम किया।[८] किन्तु श्रीराम कृष्ण और स्वामी दयानन्द के दृष्टिकोणों में जो भेद है उससे आँख नहीं मोड़ा जा सकता। श्री राम-कृष्ण ने भारत की समग्र प्राचीन संस्कृति को जनप्रिय बनाने का प्रयास किया, जब कि स्वामी दमानन्द ने पौराणिक सभ्यता को त्याग कर केवल वैदिक संस्कृति के पुनरुद्धार की चेष्टा की। वस्तुतः बहुत सारे अन्ध-विश्वासी आचार विचार जो पतनोन्मुख पौराणिक कथा साहित्य की देन है, किसी प्रकार भी समर्थित नहीं हो सकते। विभेद की यह तीव्रतर भावना स्वामी दयानन्द को श्री राम-कृष्ण से पृथक करती है।

स्वामी दयानन्द की तरह राजा राममोहन रायने भारतीय राष्ट्रीयता के सांस्कृतिक अंग को समृद्ध करने की चेष्टा की। भारतकी उन्नीसवी शती के इन दो प्रमुख व्यक्तियों मेंअंतराल की अवहेलना कोई समीक्षात्मक अध्ययन करने वाला विद्यार्थी नहीं कर सकता। राजा राम मोहन राय और ब्राह्म समाज का दृष्टिकोण अनिवार्यतः बहुस्रोतों से श्रेष्ठ सञ्चयन (ec'ectic) का था। उनकी चेष्टा थी कि हिन्दु मुसलमान और ईसाई आदि विभिन्न सभ्यताओं में सामञ्जस्य करके एक नूतन रूप बनाया जाय। दूसरी ओर स्वामी दयानन्द का कार्य था, लोगों को विशुद्ध वैदिक परम्परा का परिचय कराना। उन्होंने भारतीय जनता को प्रेरित किया कि वे पश्चिम के विज्ञान और तकनीक के विभिन्न पक्षों को लेकर वैदिक सिद्धान्तों के आधार पर एक नूतन सभ्यता की सृष्टि करें। हंस कान ने उचित ही संकेत किया है कि "यद्यपि ब्राह्म समाज और आर्य समाज एक ही क्रान्ति की उपज थे। किन्तु यह आर्य समाज ही था जिसने प्राचीन भारत को जगा कर बीसवीं शती के लिये मार्ग प्रशस्त कर दिया।[९]" यह यहाँ

८—Dr. Bemav Bebari Mazumdar, History of Political thought from Ram Mohan to Dayanand. Vol. I: Bengal P. 336.

९—Hans kohn, पूर्व उद्धृत पृ० ६३

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कहा जा सकता है कि श्रीमती एनीबेसेन्ट के अनुसार आर्य समाज (और थियोसोफिकल सोसाइटी) के प्रचार के युग ने श्वेत जाति की उच्चता के विश्वास को कम किया।[१०]

यद्यपि राजनीतिकी विचार धारा में स्वामी दयानन्द का मुख्य अवदान था भारतीय राष्ट्रियता में सांस्कृतिक तत्त्व का सन्निवेश तथापि वे संकुचित राष्ट्रियतावादी न थे। उन्होंने राष्ट्र भक्ति का समर्थन किया किन्तु मिथ्या राष्ट्रभिमान का विरोध किया। उन्होंने विश्व बन्धुत्व के विचार को बलदिया किन्तु इनका विश्व बन्धुत्व का विचार राष्ट्र भक्ति के विरुद्ध नहीं जाता। परवर्ती काल के श्री अरविन्द की तरह, इन्होंने कहाकि विभिन्न राज्यों की संस्कृतियों को चाहिये कि वे परस्पर संघर्ष में पड़ने के बजाय एक विश्व जननी मानव सभ्यता के निर्माण में योगदान करें। उन्होंने बहुबार घोषणा की, कि धरती के राष्ट्रों के द्वारा; पार्थक्य और पक्षपात की जो दीवारें बनाई गई हैं, वे शीघ्र ही एक महान विचार के सम्मुख धराशायी हो जायगी और आनन्दोत्सव में सब राष्ट्र सम्मिलित होंगे।[११] स्वामी दयानन्द ने न तो प्रत्येक भारतीय वस्तु का समर्थन किया, न ही प्रत्येक विदेशी वस्तु की निन्दा की। वे प्राचीन भारत की संस्कृति के कई तत्त्वों के महत्तम समालोचक थे। उन्होंने स्वयं कहा है: "यद्यपि मैं आर्यावर्त देश में पैदा हुआ हूँ और बसता हूँ तथापि जैसे इस देश के मतमतान्तरों की झूठी बातों का पक्षपात न कर यथातथ्य प्रकाश करता हूँ वैसे ही दूसरे देशस्थ व मत वालों के साथ भी वर्तता हूँ। जैसे स्वदेश वालों के साथ मनुष्योन्नति के विषय में वर्तता हूँ वैसा विदेशियों के साथ भी, तथा सब सज्जनों को वर्तना योग्य है।[१२] स्वामी दयानन्द ने कई बातों में अंग्रेजों के राष्ट्रिय चरित्र की प्रशंसा की है, यथा उनकी उच्चतर सामाजिक दक्षता, उनके सुन्दरतर सामाजिक संगठन, उनका आत्म त्याग और उनकी साहसी प्रकृति, उनकी अनुशासन प्रियता आदि। पश्चिमी सभ्यता में भी वे कई गुणों के कायल थे और उन्होंने दोनों में सामञ्जस्य का समर्थन किया। उनके विश्वजनीन दृष्टिकोण में कहीं मिथ्या प्रतिष्ठा के लिये स्थान न था। दयानन्द के दृष्टिकोण का वर्णन करते हुये आचार्य प्रणवानन्द ने लिखा है: भारत "प्राच्य संस्कृति का घर है और इंगलैण्ड पाश्चात्य संस्कृति का। प्राच्य संस्कृति अनिवार्यतः आध्यात्मिक है और पाश्चात्य संस्कृति अनिवार्यतः भौतिक। दोनों एक दूसरे के बिना अपूर्ण हैं। पूर्णता दोनों के सहयोगी सामञ्जस्य में है। यह दैवी विधान है कि भारत और इंगलैण्ड एकत्र हुए हैं। दोनों संस्कृतियाँ भारत में एकत्र हुई हैं जिससे एक दूसरे के अनुभव से लाभ उठा सकें। एक दूसरे की अपूर्णता की पूर्ति हो सके।[१३] उनके विचारों का सतर्क अध्ययन यह सुस्पष्ट करता है कि उनका मस्तिष्क सर्व प्रकार की सङ्कीर्णताओं और मिथ्या अभिमान से मुक्त था।

यदि उनके 'दर्शन' के लिये किसी वर्तमान 'वाद' का प्रयोग करना हो तो यह अच्छा होगा कि उन्हें 'मानववादी' कहा जाय। उनके मानववाद का आधार आध्यात्मिक मनुष्य है। मनुष्य अपने अन्तरात्मा में स्थिति दैवी स्फुलिंग का प्रतिनिधि है और यही देवता सम्पूर्ण मानव जाति को एकत्र करती है। एक व्यक्ति किसी पशु से भिन्न न होगा यदि वह अपनी भौतिक कामनाओं के अधीन बना रहे। मनुष्य के भीतर स्थिति दैवी शक्ति के स्फुलिंग को विकसित करके मानव अपनी मानवता का विकास कर सकता है। स्वामीजी ने स्वयं कहा है: "जैसे पशु बलवान होकर निर्बलों को दुःख देते और मार भी डालते हैं, जब मनुष्य शरीर पा के वैसा ही

१०—श्रीमती बेसेन्ट का भारतीय राष्ट्रिय कांग्रेस में १९१७ में दिया गया भाषण।

११—Alokanand Maharshi the Masters world union Seheme PP 12-13

१२—सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका से

13—Acharya Pronobananda Thakur Dayanand and Arunachal Mission. Suoted in Alokanand Mahabharati, op. cit, pp. 10-11

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कम करते हैं तो वे मनुष्य स्वभाव युक्त नहीं किन्तु पशुवत् हैं। और जो बलवान होकर निर्बलों की रक्षा करता है वही मनुष्य कहाता है और जो स्वार्थवश होकर पर हानि मात्र करता रहता है, वह जानों पशुओं का भी बड़ा भाई है।[१४] मनुष्य केवल दैवी शक्तियों के विकास के द्वारा ही अपनी पशु सत्ता को दबा सकता है। तभी उसे मानव एकता की अनुभूति होगी और वह केवल अपने स्वार्थ की न सोच कर जन साधारण के कल्याण के लिये कार्य करेगा। स्वामी दयानन्द ने मानव को इस आध्यात्मिक स्तर तक उठाने की चेष्टा की वह अपने शिष्यों से प्रायः कहते थे। "हम संसार के कल्याण के लिये आये हैं, हमें अपने सुख की चिन्ता नहीं करनी चाहिए।" प्रायः वे और भी कहते, "संसार का कल्याण अपने सुख या अपने मित्रों और साथियों के कल्याण से उच्चतर है।"[१५] इस सम्बन्ध में हम स्वामी दयानन्द द्वारा प्रतिपादित आर्य समाज के नवम और दशम नियमों का उद्धारण दे सकते हैं। नवम नियम है : "प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।" दशम नियम इस प्रकार है, सब मनुष्यों को सामाजिक सर्व हितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र हैं।" इस प्रकार समाज कल्याण ही आर्य समाज का अन्तिम उद्देश्य था। स्वामी दयानन्द सम्भवतः महान् मानवतावादी थे और उनका अन्तिम उपदेश था कि मनुष्य को स्वार्थी नहीं बनना चाहिये बल्कि इसेदूसरों के हित के लिये कार्य करना चाहिये।

स्वामी दयानन्द ने अपने मानवतावादी दृष्टिकोण में एक नूतन समाज व्यवस्था का स्वप्न देखा, जिसे नैतिक समाजवाद कह सकते हैं। उनकी दृष्टि सार्वजनीन मानव कल्याण परिषद् की थी। सभी देश स्वतन्त्र और समान होंगे और हर राष्ट्रिय इकाई स्वतन्त्र व्यक्तियों का समुदाय होगा। ऐसे आदर्श समाज में न मुद्रा न व्यवसाय वाणिज्य अपने परम्परागत रूप में होंगे। वे विभिन्न केन्द्रों से वस्तुओं के आदान प्रदान मात्र होंगे। रेल, तार, हवाई सेवा देश के कल्याण के लिये होंगी। "इस व्यवस्था में लाभ की भावना के स्थान पर सम्पूर्ण समाज की सेवा की भावना होगी—प्रत्येक व्यक्ति सब के लिये और सब प्रत्येक व्यक्ति के लिये जीवित रहेंगे।[१७] स्वामी दयानन्द ने एक सच्चे समाजवादी की भाँति समाज के शोषित और पददलित वर्गों के स्वार्थ का समर्थन किया। उन्होंने कहा, "इस नवयुग में भगवान् दलित वर्ग में प्रकट होंगे। महान धर्मोपदेष्टा उठ खड़े होंगे।" किन्तु उनका दृढ़ विश्वास था कि यह समाज व्यवस्था न तो बलात् शक्ति से स्थापित होगी और न केवल समाज की परम्परा बदलने से स्थापित होगी। मानव के दृष्टिकोण में परिवर्तन की आवश्यकता है। उसके स्वभाव में परिवर्तन अपेक्षित है। जो केवल शक्ति से समाज परिवर्तन करना चाहते हैं। ऐसे समाजवादियों के सम्बन्ध में वे कहते हैं, "वे भ्रान्त पथ पर चल रहे हैं। रक्तपात से कभी स्वतन्त्रता समानता, बन्धुत्व की स्थापना धरती पर न हो सकेगी। इस साध्य का साधन तो केवल आध्यात्मिक शक्ति और प्यार है।[१९] सामूहिक स्वार्थ नहीं, केवल प्रेम ही राष्ट्र और जाति निर्विशेष नये समाज की स्थापना में समर्थ है।

दयानन्द ने इन नियमों को आर्यसमाज के सङ्घटन में लागू किया और इसके तत्त्वावधान में कई आश्रमों की स्थापना हुई। आर्यसमाज का संघटनात्मक ढाँचा जनतान्त्रिक चुनाव पर आधारित है। आश्रम इसके सब सदस्यों की सामूहिक

14—सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका

15—Alokanand a Mahabharati op cit p. 12

१७. अलोकानन्द महाभारती, पृ० १७५, दयानन्द की कल्पना के आदर्शसमाज के लिए द्रष्टव्य है इस पुस्तक का "What is Thakur Dayananda's Scheme नामक अध्याय।

१८. वही पृष्ठ ३०-३१

१९. वही पृ० ३२

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सम्पत्ति समझे जाते हैं और प्रत्येक वस्तु की व्यवस्था सब के सहयोग से होती थी। ये अनेक धार्मिक गणतन्त्र (Republic) की तरह थे।[२०]

यद्यपि दयानन्द के अपने विचार थे किन्तु वे 'मनमोदी' विचारक न थे, वे एक क्रियात्मक आदर्शवादी थे। उनका विश्वास था कि वैदिक सभ्यता के आदि स्थान भारत को विश्व में एक विशिष्ठ कार्य करना है। किन्तु जब तक भारत परतन्त्र है, वह उस काम को करने में असमर्थ है। इसलिए वे भारत को स्वतन्त्र करना चाहते थे और उन्होंने भारत की राष्ट्रियता को एक गतिशील दर्शन दिया। देश को सामाजिक और मानसिक रूप में स्वतन्त्रता के लिए तैयार करना, उनका कार्य था। उन्होंने स्वयं अंग्रेजों के विरुद्ध किसी राजनीतिक आन्दोलन में भाग नहीं लिया, किन्तु अंग्रेज सरकार को उनसे तथा आर्यसमाज से बड़ा भय था। जैसा रोमारोला ने कहा है :—

"वे (स्वामी दयानन्द) अपने को सदा राजनीति और अंग्रेजों के विरोध से अलग बताते थे, किन्तु अंग्रेज सरकार का निश्चय इससे भिन्न था।"[२१] एकबार स्वामीजी जब सिल्चर (असम) में थे तो पुलिस ने उन्हें और उनके दो शिष्यों को पकड़ लिया, किन्तु वे छोड़ दिये गये, क्योंकि किसी के पास उनके विरुद्ध कोई प्रमाण न था। किन्तु स्वामीजी के जो शिष्य सरकारी नौकरी में थे, उनपर सरकार सदा कड़ी निगाह रखती थी।[२२] यह साफ है कि अंग्रेजी शासन ने उनके उपदेश और कार्य के सुदूरगामी परिणाम और क्रान्ति को समझ लिया था। अतः इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि 'दि टाइम्स' की ओर से सर वैलेण्टिन शिरोल (Sir Velentine Chirole) जब १९०७ की अशान्ति के पश्चात् उसके कारणों की खोज करने भारत आये तो उन्होंने अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध आर्य समाज को एक बड़ा खतरा घोषित किया। इस दिशा में स्वामी दयानन्द और उनके द्वारा स्थापित आर्य समाज का प्रभाव सुस्पष्ट है। यद्यपि इस विषय पर अब तक हमारे देश में कोई विस्तृत अध्ययन नहीं किया गया है। जैकारियस ने ठीक ठीक ही कहा है कि, "स्वामी दयानन्द ने जिस मार्ग की कल्पना की थी, तिलक केवल उस पर चलते गये।"[२३] लाला लाजपत राय का राजनीतिक दृष्टिकोण आर्य-समाज के सिद्धान्तों के आधार पर था।

दयानन्द के विरुद्ध दो आक्षेपों का निराकरण :

स्वामी दयानन्द के प्रमुख अवदानों की एक रुपरेखा प्रस्तुत करने के पश्चात् उनके विरुद्ध दो आक्षेपों का निराकरण करते हैं। कुछ लोग उन्हें प्रतिक्रियावादी, नूतनता विरोधी और उद्धारवादी समझते हैं। उदाहरणार्थ, जैकेरियस ने लिखा है कि उनके (दयानन्द के) साथ भारतीय जन-जीवन में रुखाई का प्रवेश हुआ है।"[२४] क्या ये आक्षेप तर्क और ऐतिहासिक विश्लेषण के सम्मुख ठहर पाते हैं ?

यह सत्य है कि दयानन्द ने नूतन भारत के निर्माण का उत्साह विगत वैदिक भारत से प्राप्त किया था। किन्तु इस कारण उन्हें पुनरुद्धार युग अथवा योरुप के सुधारवादी आंदोलन के किसी नेता से अधिक प्रतिक्रियावादी नहीं कहा जा सकता। पुनरुद्धार आंदोलन ग्रीक सभ्यता से उत्साहित हुआ था। सुधारवादी आंदोलन ईसाई चर्चों में व्याप्त भ्रष्टाचार को मिटाने के लिये मूल बाइबल की ओर मुड़ गया था। यदि ये आंदोलन वर्तमान योरुप की जड़ जमा सकते हैं तो क्या यह कहना तर्क सङ्गत है कि दयानन्द प्रतिक्रियावादी और नवीनता विरोधी थे ? श्री दुर्गाप्रसाद ने ठीक ही उनका

२०. वही पृ० ३२

२१—Romain Rolland, The Life of Rama Krishna, PP. 157-58

२२—Alokananda Mahabharati. Op. cit p. p. 67-68

२३—Zacharias, H. C. F. Revascent India p. 39

२४—वही पृ० ३९

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वर्णन "भारत के लूथर"२५ के रूप में किया है। यह भूलना न चाहिए कि स्वामी दयानन्द का बड़ा तीव्र विरोध देश के परम्परावादी ब्राह्मणों ने किया था। न वे प्रतिक्रियावादी थे न परम्परावादी, नहीं ही उनका दृष्टिकोण योरुप की वर्तमान चमक दमक में चौंधिया गया था। इसलिये स्वामी दयानन्द की निन्दा परम्परावादी और नूतनतावादी दोनों ने किया।

अब दूसरे आक्षेप को देखें। दयानन्द शक्ति और गतिशीलता से भरपूर थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि राष्ट्रिय पुनरुद्धार निष्क्रियता गतिहीनता और पलायन से नहीं किया जा सकता। आस्था के उत्साह और उद्देश्य की ईमानदारी ने उन्हें प्रभावी बनाया। उनके विचारों और कार्यों ने भारतीय जनता में एक नये उत्साह और शक्ति की सृष्टि की उन्होंने अपना निवेदन "किसी शिक्षित अंग्रेज से नहीं बल्कि अपने देश के विस्तृत जन समुदाय से किया।"२६ उनके सन्देश ने भारतीय जनता के एक वर्ग को हिला दिया और उनके हृदय में अपनी संस्कृति के प्रति अभिमान की भावना पैदा कर दी। अतः दयानन्द के साथ भारतीय जन जीवन में रुखाई का नहीं बल्कि आत्म सम्मान की भावना का जागरण हुआ। और भी जैसा डा० वर्मा ने कहा है, "दयानन्द और आर्य समाज में प्रकटित संघर्ष अंशतः भारत में स्थित इस्लाम और इसाइयत के दृष्टिकोण के फलस्वरूप था।"२७

समापन दृष्टि :

स्वामी दयानन्द के जीवन विचार और कार्यों का विस्तृत अध्ययन डा० के० पी० जायसवाल के निम्न मत को पूर्ण प्रमाणित करेगा, "उन्नीसवीं शती में ऐसा एकेश्वरवाद का उपदेष्टा, मानव एकता का प्रचारक, आध्यात्मिक पूँजीवाद के विरुद्ध जेहाद करने वाला सफल अन्य कोई (दयानन्द के अतिरिक्त न था।२८ उनके विचारों की समीक्षा से ऐसी बहुत सी समस्याओं का समाधान निकलेगा जिनसे भारत परेशान है। भारत के इस सन्त को भुलाकर हम अपनी रक्षा भी न कर सकेंगे।+

२५—Durga Prasad, "An English Translation of the Satyarth Prakash of Maharshi Swami Dayanand. Sea Introduction p. XII.

२६—B. B. Mazumdar, History of the Indian Reformation p. 68

२७—Dr. V. P. Varma, op. cit. p. 59

२८—K. P. Jayaswal's article in Dayananda Commenoration Volume, p. p. 162-63

+ यह लेख श्री जी० पी० भट्टाचार्य के अंग्रेजी लेख का हिन्दी अनुवाद है। —सम्पादक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ओ३म्

महर्षि दयानन्द की देन

४

प्रो० जयदेव आर्य, एम० ए० वेदाचार्य विद्यावाचस्पति
प्राध्यापक संस्कृत विभाग जाट महाविद्यालय—हिसार (हरियाना)

महर्षि दयानन्द को सामान्यतः एक धार्मिक सुधारक के रूप में स्मरण किया जाता है परन्तु दुर्भाग्यवश मध्यकाल में धर्म शब्द के अतिसंकुचित अर्थों में रूढ़ हो जाने से इतने मात्र कथन से केवल महर्षि के वास्तविक विराटस्वरूप एवं जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उनके महान् योगदान की अभिव्यक्ति नहीं होती अपितु उससे उनके सम्बन्ध में साम्प्रदायिकता एवं संकुचितता की एक भ्रान्त धारणा का भी उदय होता है। अतः उनके वास्तविक स्वरूप ज्ञान के लिये या तो उन द्वारा प्रतिपादित वैदिक धर्म के विराट् स्वरूप को ध्यान में रखना होगा अथवा उन्हें केवल मात्र धार्मिक सुधारक से कहीं अधिक उच्चपद प्रदान करना होगा। श्रीमती सरोजिनी नायडू के शब्दों में "महर्षि दयानन्द उस दर्पण के समान हैं जिसमें लोग प्रत्येक प्रकार के रंग देखते हैं। कोई उन्हें ऋषि, कोई राजनीतिक नेता, कोई सच्चा मानव एवं कोई धार्मिक नेता कहता है और वह निस्सन्देह इन सब गुणों का समूह हैं। परन्तु मैं उन्हें बौद्धिक, सामाजिक, राष्ट्रीय एवं हर प्रकार की दासता से मुक्तिदाता मानती हूं।" विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शब्दों में "प्रणाम है उस महान् गुरु दयानन्द को जिन्होंने अपनी दिव्य दृष्टि से सर्व प्रथम भारत के आत्मिक इतिहास में सत्य और एकता को देखा। जिस महान् गुरु के मनने भारत माता के जीवन के सब अंगों को अपनी दिव्य ज्योति से ज्योतित कर दिया।" विट्ठल भाई पटेल के शब्दों में "वह एक सच्चे राजनीतिक नेता हैं" तो विपिन चन्द पाल के शब्दों में वह "स्वतन्त्रता के देवता तथा शान्ति के राजकुमार" हैं। नेताजी सुभाष उन्हें १९२९ के अपने अमरावती के भाषण में संसार के राजनीतिक नेताओं एवं पथ प्रदर्शकों में सर्वोच्च स्थान (१) देते हुये कहते हैं, मेरी ईश्वर से प्रार्थना है कि उनकी स्थापित आर्य-समाजें अपने संस्थापक के अनुरूप बनें जिससे वे हमारी धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, आध्यात्मिक एवं आर्थिक उन्नति का कारण बन सकें जिसके लिये कि हम इतना तड़प रहे हैं।" इन श्रद्धाञ्जलियों से स्पष्ट है कि महर्षि की दृष्टि से मानवजीवन का कोई भी पक्ष अछूता नहीं रहा है जिस पर उन्होंने विश्व का मार्ग प्रदर्शन न किया हो। इसी परिप्रेक्ष्य में हम इस लघु निबन्ध में उनकी बहुविध देने पर संक्षेप से विचार करेंगे।

महर्षि दयानन्दकी सर्वश्रेष्ठ देन है 'धर्म के वास्तविक स्वरूपका उद्घाटन।' उनसे पूर्व धर्म शब्द अतिसंकुचित

(१) महर्षि दयानन्द संसार की नज़रों में (उर्दू) लाः उलफतरायकृत १९३३

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सम्प्रदायिक अर्थों में प्रयुक्त किया जाता था। मनुष्य-जीवन को ऊंचा एवं पवित्र बनाने से उसका कोई सम्बन्ध न था। अमुक चिन्ह धारण, अमुक नाम स्मरण, अमुक धार्मिक क्रियाएँ अमुक नदी में स्नान, अमुक स्थान की यात्रा, अमुक प्रकार का धर्म स्थान निर्माण, अनेक असम्भव चमत्कार दिखला कर सब सृष्टिनियमों का उल्लंघन करने वाले अतएव ईश्वर के प्रतिनिधि दूत, पुत्र, अथवा अवतार पर और उस द्वारा रचित पुस्तक पर तथा उसकी गद्दी पर वर्तमान में अधिष्ठित गुरु पर बिना किसी तर्क या संशय के पूर्ण अन्धविश्वास से आत्मसमर्पण, अन्यमतस्थ लोगों की हत्या, देवी देवताओं पर अपना या दूसरों का बलिदान, परलोक की इच्छा से इहलोक में पूर्ण सुख-पराङ्मुखता, वैज्ञानिक अविष्कारों से पूर्ण घृणा, विजातीय अथवा विदेशीजनों से अस्पृश्यता अथवा स्वयं निर्मित भोजन का ग्रहण—ये थीं विभिन्न मतवादियों की धार्मिक मान्यताएं, मुक्तिका एक मात्र साधन और इनसे भिन्न सब कुछ था अधर्म और नरक द्वार। महर्षि ने मानव को मानव का शत्रु एवं दानव बना देने वाली, धर्म के वास्तविक स्वरूप पर जमी, इन बाह्याडम्बरों एवं दानवीय प्रवृतियों की गहरी परतों को एक झटके से उखाड़ कर धर्म के वास्तविक जीवन दायक स्वरुपको हमारे नेत्रों के समक्ष प्रस्फुरित कर दिया। उन्होंने कहा कि धर्म केवल परलोक का नहीं अपितु इहलोक की उन्नति का भी साधक (२) है और वह बाह्य चिन्ह धारण (३) अथवा कर्म-काण्ड की सम्पन्नता में नहीं अपितु धृति, क्षमादि मनुक्त गुणों (४) से अपनी आत्मा को पवित्र बनाने में ही उसका स्वारस्य है। उन्होंने स्वयं सन्ध्या, यज्ञ, यज्ञोपवीत आदि पर बल दिया परन्तु उन्हें जीवन का साध्य न कह कर उसे ऊँचा उठाने का साधन मात्र घोषित किया। जो बाह्य यज्ञ करता है पर अपना जीवन यज्ञमय अर्थात् परोपकारमय नहीं बनाता, जो ईश्वर नाम लेता है पर स्वजीवन में ईश्वर के दयादि गुणों के धारण का निरन्तर प्रयास नहीं करता, जो यज्ञोपवीत पहनता है पर उसके तीन सूत्रों द्वारा निर्दिष्ट अपने त्रिप्रकारक कर्तव्यों को पूर्ण नहीं करता, उसके ये बाह्य कर्मकाण्ड एवं चिन्ह सर्वथा व्यर्थ हैं (५) कहीं भी जन्मा, कोई भी व्यक्ति, केवल सदाचरण से ही ईशकृपा और मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। उसे किसी भी व्यक्ति या पुस्तक पर अन्धविश्वास रखना न आवश्यक है और न मोक्ष प्राप्ति में सहायक। पीर पैगम्बरों के असम्भव चमत्कारों की मान्यताएं मिथ्या हैं। विद्या, बुद्धि तर्क एवं विज्ञान धर्म विरोधी नहीं अपितु धर्म के अभिन्न अङ्ग हैं (६)। अतः कोई व्यक्ति कितना भी बड़ा क्यों न हो उसे केवल सुचरित एवं विद्या बुद्धितर्कानुमोदित उपदेश ही आचरणीय हैं अन्य नहीं (७) हमारा उपास्य केवल समस्त जगत का स्रष्टा, पालक, तथा संहर्ता ईश्वर ही है—कोई अन्य नहीं (८) केवल वेद ही ईश्वरीय ज्ञान है क्योंकि उसमें कोई भी बात बुद्धि या सृष्टिनियम के विरुद्ध नहीं (९)। यह संसार तथा मानव शरीर मिथ्या अथवा दुःखों का घर नहीं अपितु शारीरिक, आत्मिक तथा सामाजिक उन्नति में प्रयत्नशील रहकर मोक्ष प्राप्ति का साधन है (१०) इसे निष्प्रयोजन

(२) यतोऽभ्युदयनिः श्रेयससिद्धिः स धर्मः। वैशेषिक १।१।२
(३) न लिंगं धर्मकारणम्॥ मनु एवं स० प्रकाश समु० ५
(४) मनु० ६।९२।

५—जैसे वह न्यायकारी है तो आप भी न्यायकारी होवें और जो केवल भांड के समान परमेश्वर के गुणकीर्तन करता जाता है और अपने चरित्र नहीं सुधारता उसका स्तुति करना व्यर्थ है। स० प्रकाश सम० ७॥

६—यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्मं वेदनेतरः। मनु०।
तृण (कहीं २ पृथिवी) से लेकर परमेश्वर पर्यन्त समस्त पदार्थोंका यथावत् ज्ञान करना चाहिये। स० प्रकाश समु० ३।

७—यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि। स० प्र० भूमिका तथा समु ३॥ ८—आर्य समाज का द्वितीय नियम। ९—बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेद वैशेषिक ६।१।१॥ १०—शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्। मनु०॥ तथा आर्य समाज के षष्ठ तथा नवम नियम।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कष्ट देना अथवा नष्ट करना अधर्म है। ईश्वर सर्वव्यापक हैं। अतः उसकी प्राप्ति अपने अन्दर होगी, कहीं बाहर नहीं। इस प्रकार महर्षि ने धर्म पर किसी के भी एकाधिकार को पूर्णतया समाप्त कर घोषणा की कि सभी प्राणी उस ईश्वर के समान रूप से कृपा पात्र पुत्र हैं—(११) कोई व्यक्ति-विशेष नहीं। उन्होंने धर्म को मन्दिरों-मस्जिदों के बन्द, अन्धकारपूर्ण तथा संकुचित कमरे से निकाल कर खुले प्रकाशमय क्रियात्मक जीवन रूपी उपवन में (१२) प्रवेश दिलवाया। और बतलाया कि कृतकर्मफल भोग आवश्यक है (१३) अतः शुभकर्म ही करो। पापमुक्ति सम्भव नहीं।

सर्वाङ्गीण धर्म

महर्षि का धर्म पूजापाठ तक सीमित न होकर मानव जीवन की सर्वाङ्गीण उन्नति के साधनों को अपने में समेटे हुए हैं। उनका धर्म यज्ञरूप है और यज्ञ में योग-साधन से लेकर शिल्पशास्त्र तक सभी लोकोपकारी, श्रेष्ठतम कार्य सम्मिलित हैं। १४। इसीलिये उनके ग्रंथों में समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र और राजनीति आदि सभी मानव जीवनोपयोगी विधानों का वर्णन हुआ है। मानव जीवन की बाल्य, युवा एवं वृद्ध—इन तीनों अवस्थाओं में से बाल्यावस्था के कर्तव्य कर्मों का विवेचन सत्यार्थप्रकाश के द्वितीय तथा तृतीय समुल्लासों में, युवावस्था का चतुर्थ तथा वृद्धावस्था का विवेचन पंचम समुल्लास में हुआ है। मानव के ईश्वर के प्रति, अपने प्रति, तथा अन्यों के प्रति कर्त्तव्यों में से प्रथम का उल्लेख आर्यसमाज के प्रथम दो नियमों में किया तो दूसरे का तृतीय-चतुर्थ में तथा तीसरे का ५-१० नियमों में। ईश्वर के विभिन्न नामों की व्याख्या सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम, घर में बाल शिक्षा की द्वितीय और गुरुकुल में तृतीय, गृहाश्रम की चतुर्थ, वानप्रस्थ संन्यास की पंचम, राजनीति की षष्ठ, वेद ईश्वर की सप्तम, सृष्टि-उत्पत्ति स्थिति-प्रलय की अष्टम, बन्ध-मोक्ष की नवम तथा आचार-अनाचार एवं भक्ष्याभक्ष्य विषय की दशम समुल्लास में व्याख्या करके उन्होंने, धर्म के विराट स्वरूप का दर्शन करवाया। स्वामी वेदानन्दजी द्वारा सम्पादित सटिप्पण सत्यार्थ-प्रकाश में दी गई अकारादि विषयानुक्रमणिका पर दृष्टि डालने से मानवबुद्धि चमत्कृत होकर रह जाती है कि महर्षि द्वारा प्रतिपादित सर्वाङ्गीण धर्म के क्षेत्र तथा महर्षि की दिव्य दृष्टि से मानवजीवन तथा बुद्धि से सम्बन्धित कोई भी तो विषय अछूता नहीं बचा है जिस पर उन्होंने कुछ न कुछ प्रकाश न डाला हो। महर्षि से पूर्व तथा पश्चात् हुए दूसरे धर्माचार्यों के ग्रन्थों में हमें ऐसी विशाल एवं सुलझी हुई दृष्टि का दर्शन नहीं होता। महर्षि से पूर्व राजा राममोहनराय ने इस दिशा में अवश्य कुछ प्रयत्न किया था परन्तु फिर भी महर्षि की अपेक्षा उनके प्रचार का विषय क्षेत्र तथा प्रभाव अतिसीमित नगण्य प्रायः ही था।१५। महर्षि ने धर्म को उसके समन्वित रूप में देखा। जहां महात्मा बुद्ध ने आत्मपरमात्म-परक ज्ञानकाण्ड, यज्ञपरक कर्मकाण्ड तथा ईश्वरोपासनापरक उपासना काण्ड की उपेक्षा कर केवल श्रेष्ठाचरण पर जोर दिया, शंकर ने केवल ज्ञानकाण्ड की महिमा गाई और भक्ति युग के सन्तों ने सब कार्य परित्याग कर केवल आत्मस्मरण को जीवन सार माना वहाँ महर्षि ने तीनों को समानरूपेण महत्वपूर्ण, आवश्यक एवं अन्योन्यपूरक बतलाया।

११—शृण्वन्तु सर्वेऽमृतस्य पुत्राः तथा कृण्वन्तो विश्वमार्यम। वेद॥

१२—धारणाद्धर्म इत्याहुः (महाभारत।

१३—अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतकर्मशुभाशुभम्।

१४—यज्ञोवै श्रेष्ठतमम् कर्म। शतपथ। तथा ऋषिकृत ऋक् तथा यजुः भाष्य।

१५—"ब्राह्म समाज जहाँ सौ वर्ष में तीन चार हजार से अधिक ब्राह्मवादी न बना सका वहाँ पर सन् १८९१ में ही आर्यसमाजियों की संख्या ४०००० हजार हो चुकी थी और आज लगभग १० लाख है। विवेकानन्द चरित। सत्येन्द्रनाथ मजुमदार कृत (हिन्दी) पृष्ठ ३८३॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विचार-स्वातन्त्र्य

महर्षि दयानन्द धर्मक्षेत्र में विचार-स्वातन्त्र्य के अग्रदूत तथा गुरुडम के प्रबल शत्रु थे। उन्होंने न गुरुगद्दी स्थापित की, न अपना उत्तराधिकारी चुना और नहीं आर्यसमाजियों के लिये अपने ग्रन्थों को मान्य ठहराया।७ जहाँ इस्लाम और ईसाइयत१६ तलवार के बल पर फैले, वहाँ आर्यसमाज ने निर्भीकता से स्वसिद्धान्तमण्डन और परमतखण्डन करते हुए भी अपने सिद्धान्त बलात् किसी पर लादने का प्रयत्न नहीं किया, अपितु इसके विपरीत दूसरे मतस्थ भले लोगों१७ को स्वमंच से बोलने का १८ अवसर दिया। पण्डित लेखराम, अछूतोद्धारक रामचन्द्र, पण्डित तुलसीराम स्टेशन-मास्टर, आदि अनेक आर्यों को क्रमशः मुसलमानों, पौराणिकों तथा अहिंसा-वादी जैनों ने कत्ल किया पर आर्यसमाज के इतिहास में किसी भी विधर्मी को मारने की एक भी घटना दिखाई न पड़ेगा। महर्षि के सरसैय्यद अहमदखाँ तथा पादरी स्काट जैसे विधर्मियों से बड़े मधुर सम्बन्ध थे। आर्यसमाज ने दैवी-विपत्तियों में अपने सहायता-शिविरों में बिना साम्प्रदायिक भेदभाव के सब पीड़ितों की समान रूप से सहायता की है। वस्तुतः आधुनिक युग में सच्ची मतनिरपेक्षता (सैक्युलैरिज्म) की स्थापना का श्रेय महर्षि को ही है।

दार्शनिक देन ।१९।

महर्षि ने सांसारिक उन्नति से विमुख करने वाले शंकर के 'ब्रह्मसत्यम् जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैवनापरः' के अद्वैत, रामानुजादि वैष्णवाचार्यों के अवतारवाद-प्रतिष्ठापक विशिष्टाद्वैत आदि, जैनों और बौद्धों के स्याद्वाद सप्तभंगीनय, शून्यवाद तथा क्षणिकवाद आदि दार्शनिक सिद्धान्तों की युक्तियुक्त समालोचना करके दार्शनिक जगत् में 'त्रैतवाद' सिद्धान्त की प्रतिष्ठा की। जहाँ शंकर जैसे दार्शनिक भी छओं दर्शनों में विरोध मानकर वेदान्तेतर दर्शनों का खण्डन करते थे वहाँ महर्षि ने षड्दर्शन समन्वय सिद्धान्त२०—स्थापित किया और कपिल को ईश्वरवादी२१ ठहराया। 'मोक्ष से पुनरावृत्ति'२२ मानी। ईश्वर-प्रत्यक्ष का सिद्धान्त दिया। ये महर्षि की विशिष्ट दार्शनिक देन हैं।

साहित्यिक देन

महर्षि ने साहित्यिक जगत् में तो युगान्तर ही उपस्थित कर दिया। मैक्समूलर के शब्दों में १९ वीं शती का सबसे बड़ा आविष्कार वेदों का आविष्कार है और इसके आविष्कारक निस्सन्देह महर्षि दयानन्द हैं। जिस समय मैकाले ने अंग्रेजी साहित्य के एक खाने को समग्र भारतीय साहित्य से अधिक मूल्यवान घोषित किया था तब महर्षि ने चारों मूल वेदों को सब सत्य-विद्याओं का पुस्तक घोषित कर मैकाले के उस गर्व को चूर-चूर कर दिया। योगीराज अरविन्द२३ जैसे अनेक देशी-विदेशी विद्वानों ने महर्षि की वैदिक स्थापना से प्रभावित हो वेद पर विपुल साहित्य की रचना की। जहाँ शंकर,

---

१६—देखो, इन्क्विजिन कोर्ट्स् तथा जीस्वीट्स् का इतिहास।

१७—यह बड़े अन्धेर की बात है कि मुसलमान और अंग्रेज जो भले आदमी हैं उनसे तो छूत गिनना और वेश्यादिकों में छूत न मानना। आदिम स० प्र० और आ० स० के सिद्धान्त। स्वामी श्रद्धानन्द कृत पृष्ठ ८२।

१८ देखो आर्य समाज बम्बई का प्रारम्भिक इतिहास।

१९ आगरा विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत डाक्टर वेदप्रकाश का 'आधुनिक युग को महर्षि की दार्शनिक देन' नामक शोध-प्रबन्ध।

२० देखो प० बुद्धदेव मीरपुरी तथा स्वामी ओमानन्द कृत "षड्दर्शन समन्वय" नामक ग्रन्थ द्वय।

२१ आचार्य उदयवीर शास्त्रीकृत सांख्यदर्शन पर तीन ग्रन्थ।

२२ गंगाप्रसाद उपाध्याय कृत लघु निबन्ध।

२३ "मेरे विचार में तो वेदों में विज्ञान के तत्व भी हैं जिन से आधुनिक जगत सर्वथा अनभिज्ञ हैं। इस प्रकार दयानन्द वैदिक प्रज्ञा की गम्भीरता और उच्चता अधिक नहीं, कुछ कम ही प्रदर्शित की है। दयानन्द और वेद नामक निबन्ध।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

रामानुजादि मध्यकालीन तथा राममोहनराय२४ आदि नवीन आचार्यों की गति अधिकाधिक उपनिषदों तक थी और सायणादि आचार्यों ने वेदों को केवल कर्मकाण्डपरक माना था वहाँ महर्षि ने निरुक्त प्रणाली पर किये स्वभाष्य में उन्हें धर्म का आधार२५ घोषित किया। उन्होंने वेद में इतिहास, पशु-हिंसा, अश्लीलता, बहुदेवतावाद, मैक्समूलर-प्रतिपादित हीनोथीज्म२६। अद्वैतवाद तथा जादू-टोना 'ब्राह्मण-ग्रन्थों एवं शाखाओं का वेदत्व' आदि प्रचलित अनेक भ्रान्तियों का प्रबल युक्तियों एवं प्रमाणों से निराकरण कर न केवल वेदभाष्य पद्धति में क्रान्तिकारी नवयुग की आधार-शिला रखी२७ अपितु कुरान और बाइबल आदि की आलोचना कर उन्हें भी एक नवीन भाष्यपद्धति प्रदान की।२८ महर्षिकृत आलोचना के प्रकाश में प्रमुख मान्य धर्म-ग्रन्थों तथा चमत्कारों२९ की सर्वथा नवीन, बुद्धिगम्य व्याख्या की गई।३० महर्षि द्वारा आलोचना के लिये सर्वप्रथम हिन्दी में करवाए गए कुरान-भाष्य की भाषा-शैली मुसलमानों द्वारा बहुत पसन्द की गई। हिन्दी में सभी प्रकार के शास्त्रीय गम्भीर साहित्य३१ का प्रचलन उन्हीं के प्रयास की महान देन है। मूल जैन-साहित्य का प्रकाशन उन्हीं की आलोचना का परिणाम है।

ऐतिहासिक देन

महर्षि ने कई क्रान्तिकारी ऐतिहासिक स्थापनाएँ की। 'आर्य यहीं के आदिवासी' ३२ तथा 'द्रविड़ कोल, भील आदि उन्हीं की सन्तान' ३३ हैं। महर्षि की यह स्थापना द्रविड़ कषगम के पृथक्तावादी आन्दोलन कोस ूल नष्टकर अखण्ड राष्ट्रीयता की स्थापक है। 'आर्य मद्य मांससेवी नहीं थे', 'मानवजाति का उत्पत्तिस्थान तिब्बत' ३४ है और 'वह आर्यावर्त का भाग था, आर्यों का संसार में चक्रवर्ती राज्य रहा है', 'वेद अनादिकाल से हैं', 'पुराण वेदव्यासकृत नहीं', 'श्रीकृष्ण दुराचारी नहीं थे' आदि महर्षिकृत स्थापनाएँ अनेक

---

२४ अरविन्द कृत 'दयानन्द दि मैन एण्ड हिज़ वर्क' तथा महर्षि दयानन्द और राजाराम मोहन राय-भवानीलाल भारतीय पृ० २१।

२५ वेदोऽखिलो धर्ममूलम्। मनु।

२६ – मैक्समूलर ने वेदों को बाइबल से हेय सिद्ध करने के लिये इस वाद की स्थापना की जिसका निराकरण महर्षि ने कर मैक्समलर की योग्यता का भण्डाफोड़ किया और वेद में एकेश्वरवाद की स्थापना की। मैक्समुलर ने १८५९ में वेदकाल भी १२०० ई० पू० माना था, पर फिर महर्षि से बहुत प्रभावित हो उसने १८८९ में गिफर्ड लैक्चर्ज़ "में वेदकाल निर्णय को असम्भव बतलाया। यह महर्षि का प्रभाव था जबकि स्वामी विवेकानन्द ने मैक्समूलर को 'भारतीय ऋषि' कह कर उनकी प्रशंसा की थी।

२७—डा० सुधीरकुमार गुप्ता का पी० एच० डी० शोध प्रबन्ध "वेदभाष्य पद्धति को महर्षि दयानन्द की देन।"

२८—देखो सरसैयद अहमद खां, मौलाना मुहम्मद अली, एम० ए०, मौलाना सनाउल्ला तथा मौलाना आज़ाद आदिकृत कुरान भाष्य, बाईबिल पर पादरी सण्डलैण्ड, जैन-मत पर बच्छराज सिंघी कृत "जैन शास्त्रों की असंगत बातें", पण्डित बेचरदास कृत "जैन साहित्य में विकार", जगमन्दिरलाल जैनी कृत "आउटलाइन्स आफ् जैनिज्म" आदि कृतियां तथा पं० मदनमोहन मालवीय तथा अन्य पौराणिकों द्वारा प्रकाशित पुराणों के संशोधित संस्करण।

२९—यथा अयोध्यासिंह उपाध्याय, "हरिऔध" के "प्रिय-प्रवास" में कृष्ण द्वारा गोवर्द्धन-प्रर्वत-धारण की नवीन व्यवस्था।

३०—महर्षि ने वेद-भाष्य, अष्टाध्यायी-भाष्य, वेदांग-प्रकाश, ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका आदि गम्भीर ग्रन्थ हिन्दी में तब लिखे जब पण्डितगण भाषा-ग्रंथों को हेय दृष्टि से देखते थे। गुरुकुल कांगड़ी ने सभी विषयों पर उच्च कोटि के अनेक ग्रन्थ हिन्दी में प्रकाशित किये।

३१—"आर्यों का आदि देश" डा० सम्पूर्णानन्द कृत।

३२—पौण्ड्रकाश्चौण्ड्र द्रविड़ों .....आदि मनु १०। ४३-४४ तथा महाभारत शान्ति पर्व ६५।१४०।

३३—इसीलिये तिब्बत (त्रिविष्टप) ही स्वर्ग कहलाया। चीनी भी पुराने तिब्बत के ही भाग चीनी-तुर्किस्तान (सिक्यांग) को अपना उद्भव-स्थान मानते हैं। देखो सत्यार्थ-प्रकाश का प्रभाव। स्वामी वेदानन्द कृत पृ० ६।

३४. न वदेद्यावनीं भाषां प्राणैः कण्ठगतैरपि। हस्तिना ताड्यमानोऽपि न गच्छेज्जैन मन्दिरम्।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अनेक इतिहासविदों द्वारा आज मान्य हैं। महर्षि ने पण्डों की बहियों और दान विषयक ताम्रपत्रों की चर्चा तथा महाराज युधिष्ठिर के पश्चात् हुए राजाओं की नामावली का समावेश सत्यार्थ प्रकाश के एकादश समुल्लास में कर भारतीयों का ध्यान अपने प्राचीन इतिहास की ओर आकृष्ट किया।

शैक्षणिक देन

शिक्षाक्षेत्र में आज जो समस्याएँ हमारे शिक्षाशास्त्रियों के मस्तिष्क को उद्वेलित कर रही हैं, उनका समाधान आज से सौवर्ष पूर्व ही महर्षि ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में कर दिया था। जब मैकाले ने भारतीय काले अंग्रेजों को उत्पन्न करने वाली आधुनिक शिक्षाप्रणाली को जन्म दिया उसी समय महर्षि ने राष्ट्रीय शिक्षा का उद्घोष करके शिक्षाक्षेत्र में नवीन क्रान्ति का सूत्रपात किया जिसने गुरुकुल कांगड़ी और डी० ए० वी कालिज लाहौर आदि के रूप में पल्लवित होकर ब्रिटिश शासन को हिला दिया, जिससे इन संस्थाओं की जांच के लिये ब्रिटिश शासन को रूमजे मैक्डानल्ड को भारत भेजना पड़ा। जब एक ओर राममोहनराय ३५ तथा सरसैयद अहमद खां जैसे महानुभाव भी केवल अंग्रेजी शिक्षा—पद्धति में ही कल्याण देखते थे, तब महर्षि ने एक आदर्श तथा यथार्थ का समन्वयवादी दृष्टिकोण हमें दिया। उन्होंने यथासम्भव विदेशी भाषाओं के अध्ययन की भी प्रेरणा भारतीयों को दी ३६ परन्तु सर्वप्रमुख स्थान अपनी भाषा संस्कृत और हिन्दी को देने का आग्रह किया। वर्तमान भाषायी आन्दोलन का आदर्श यही है। उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश में प्रथम संस्करण में अंग्रेजी के "गौड्" आदि शब्दों का मूल परमात्मा के लिये आये विशेषण 'गुढ़' आदि संस्कृत शब्दों में दर्शाकर ३७ संस्कृत का सर्वभाष मूलत्व ३८ स्थापित करते हुये हमें भाषा विज्ञान की ओर उन्मुख किया।

महर्षि ने उस समय अपनी सन्तानों को पाठशाला न भेजने वाले माता पिता के लिये राज्य द्वारा दण्ड तथा प्रत्येक विद्यार्थी को समान वस्त्र, खान-पान तथा आदान-प्रदान का विधान कर ३९ जो समाजवादी दृष्टिकोण दिया, उसे आर्यसमाज के गुरुकुलों ने व्यावहारिक रूप प्रदान कर शिक्षाक्षेत्र में एक चामत्कारिक कार्य किया। महर्षि ने अपनी दूर दृष्टि से उस समय कुछ भारतीय छात्रों को तकनीकी शिक्षा के लिये जर्मनी भेजने की योजना बनाई ४० और श्यामजी कृष्ण वर्मा को पढ़ने तथा वैदिक-धर्म प्रचार के लिये स्वयं इङ्गलैण्ड भेजा। आज विद्यार्थियों की जिस अनुशासनहीनता और चरित्रहीनता को लक्ष्य कर श्री प्रकाश एवं कोठारी कमीशन आदि अनिवार्य धार्मिक शिक्षा की बात कहते हैं, महर्षि ने उसका निर्देश उसी समय किया था, कि बालकों को माता पिता घर में ही आरम्भ से सदाचार की शिक्षा दें ४१ और विद्यालयों में केवल सदाचारी अध्यापक, अध्यापिकाएं ही रखे जाएँ। ४२ इस सदाचार की शिक्षा के लिये उन्होंने स्वनिर्मित पाठ्यक्रम में "व्यवहारभानु" नामक एक स्वतन्त्र लघु ग्रन्थ की रचना की। आज जहां फैशन में पले शिक्षितों को ग्राम सेवा और विद्यालयों में विद्यार्थियों को श्रम कार्य (मैनुअल वर्क) के लिये प्रेरित किया जाता है उसका विधान भी महर्षि ने यह लिख कर किया था कि चाहे वह राजकुमार या राजकुमारी हों, चाहे दरिद्र के सन्तान हों, सब को तपस्वी होना चाहिये। ४३ इङ्गलेण्ड के वर्तमान राजकुमार

३५. महर्षि दयानन्द राजाराममोहनराय—भवानीलाल भारतीयकृत पृ० ९६-१०५।

३६. मुसलमान की भाषा पढ़ने में अथवा अन्य किसी देश की भाषा पढ़ने में कुछ दोष नहीं होता, किन्तु गुण ही होता है। आदिम स० प्र० और आ० स० के सिद्धान्त पृ० ८८। स० प्र० समु० २ तथा महर्षि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन।

३७. स० प्र० और आ० स० के सिद्धान्त पृ० ७९।

३८. देखो भगदत्तकृत 'भाषा का इतिहास'।

३९. स० प्र० समु० ३।

४०. 'पत्र और विज्ञापन' में जर्मन प्रोफेसर 'बीस' के साथ हुआ पत्र-व्यवहार।

४१. स० प्र०समु० २।

४२-४३. वही समु० ३।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ने भी पर्याप्त समय तक कड़ा शारीरिक श्रम करवाने वाले एक विद्यालय में शिक्षा पाई है। आज की एन० सी० सी० के समान महर्षि ने कैकई का उदाहरण देकर कन्याओं तक के लिये धनुर्वेद-शिक्षा का विधान किया है। ४४

सह शिक्षा के जिन भयंकर परिणामों की चर्चा अमरीकन बाल-अपराधों के जर्जलिण्डसे नेकी और जिस सह शिक्षा के कारण पश्चिमी देशों में अवैध बच्चों तथा विवाह-विच्छेदों की संख्या उत्तरोत्तर वृद्धि पर है, उसे ध्यान में रखते हुए महर्षि ने बालकों तथा बालिकाओं के विद्यालय एक दूसरे से तथा भीड़-वाले नगरों से बहुत दूर स्थापित करने तथा अध्ययन समाप्ति तक माता पिता से न मिलने का निर्देश किया, जिससे उनका चित्त अध्ययन से विचलित न हो। इसी प्रकार गुरु शिष्य का पारस्परिक सम्पर्क घनिष्ठ होता है, जिसके उद्देश्य से आज कल आवास (रेजीडेन्शियल) विश्वविद्यालयों को महत्व दिया जा रहा है। यद्यपि सहशिक्षा होने से उच्छृङ्खलता, फैशन एवं फजूल खर्ची वहां खूब बढ़ रही है। यह महर्षि की शिक्षा की उपेक्षा का अवश्यम्भावी परिणाम है। कहना न होगा, आधुनिक काल में स्त्री-शिक्षा के महर्षि दयानन्द तथा आर्यसमाज ही सर्वप्रथम प्रतिष्ठापक हैं और आर्यसमाज द्वारा अनेक विशाल महिला-शिक्षण-संस्थाएँ स्थापित हुई हैं।

सामाजिक देन

चिरकाल से सन्तसम्प्रदाय जनता को 'तुझको परायी क्या पड़ी, अपनी निबेड़ तू' तथा 'संसार मिथ्या है' आदि मन्त्र पढ़ाता हुआ केवल आत्मोद्धार का उपदेश करता था। निठल्ले साधुओं की संख्या वृद्धि पर थी, ऐसे समय महर्षि ने आर्यसमाज के षष्ठ, नवम तथा दशम नियम में हर व्यक्ति द्वारा सामाजिक उन्नति के प्रयत्न को आवश्यक ठहराया। दशम नियम तो समाज-शास्त्र का सार है जिसके अनुसार हमें स्वतन्त्रता उन्हीं कार्यों के करने व न करने में है, जिनका प्रभाव केवल हम तक सीमित रहे, पर समाज को प्रभावित करने वाले कार्यों में हमें अपनी इच्छा को प्रधानता न देकर समाजहित को ही सर्वोपरि समझना चाहिये। महर्षि ने पाखण्डी मूर्ख साधुओं की राज्य द्वारा हलादि कार्यों में नियुक्ति का और संन्यास से पूर्व परीक्षा का विधान४५ किया। महर्षि ने जिस अछूतोद्धार आन्दोलन को जन्म दिया४६ उसी के परिणामस्वरूप स्वामी श्रद्धानन्द ने तिलक-फण्ड में से पाँच लाख रुपये की राशि पृथक निकाल कर अमृतसर में १९१९ की कांग्रेस में अछूतोद्धार कार्यक्रम को कांग्रेस-कार्यक्रम में सम्मिलित करने का प्रस्ताव पारित करवाया, जिसे पश्चात् गान्धीजी और मालवीयजी ने भी अपनाया। महर्षि की शिक्षा से प्रभावित बडौदा के महाराजा गायकवाड़ अछूतों की शिक्षा का प्रबन्ध कर राष्ट्र को डा० अम्बेडकर जैसा महान् विधिवेत्ता प्रदान किया। उन्हीं की कृपा से लाखों अछूत मुसलमान होकर पाकिस्तान समर्थक बनने से बचे। महर्षि द्वारा प्रदत्त सिद्धिमन्त्र४६ का यदि हिन्दू-समाज और काश्मीरी४७ पण्डित विरोध न करते तो न पाकिस्तान के समर्थक इतने रहते और न काश्मीर की समस्या आज हमारे सम्मुख होती। महर्षि ने उन सब लोगों को, जिन्हे हिन्दु म्लेच्छ या शूद्र कह कर घृणा की दृष्टि से देखते थे, ४८ वैदिक

४४. वही समु० ३ आर्यकन्या महाविद्यालय बड़ोदा में आरम्भ से ही कन्याओं को घुड़सवारी और धनुर्वेद आदि की शिक्षा दी जाती है।

४५. आदिम स० प्र० और आ० स० के सिद्धान्त पृ० ७३।

४६. सरदार पटेल द्वारा ऋषि को श्रद्धांजलि—हिन्दुस्तान टाइम्स् ११-११-१९५०।

४७. महर्षि ने राज्य के स्थायित्व के लिये महाराजा काश्मीर को शुद्धि-व्यवस्था बनाकर भेजी थी, जिसके अनुसार शुद्धि करने के इच्छुक महाराज को वहाँ के पण्डितों के विरोध ने रोक दिया।

४८. स्वामी शंकराचार्य शूद्रों को श्मशान से उपमा देकर वेद के श्रवण, उच्चारण तथा धारण के अपराध में उनके श्रोत्रजिह्वाहृदयादि अंगों को नष्ट करने का विधान करते हैं। ब्रह्मसूत्र भा० १।३।३८।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

धर्म में आने, आर्य कहलाने तथा वेद पढ़ने का अधिकार प्रदान कर ४९ अपनी सार्वभौमिकता का परिचय दिया तथा निरन्तर रिसने वाले हिन्दू-समाजरूपी तालाब को, जिसमें से पानी बाहर तो निकलता रहता था, मगर अन्दर नहीं आ सकता था, शुष्क होने से बचा लिया५० ।

महर्षि के प्रभाव के सुपरिणामस्वरूप बाल, वृद्ध तथा बहुविवाहों, कन्यावध तथा यज्ञों में या देवी-देवता आदि पर पशुबलि के विरुद्ध जनमानस में तीव्र आक्रोश जागृत हुआ और लाखों कन्यायों और पशुओं की प्राणरक्षा हुई। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर द्वारा देखे गये विधवा विवाह-प्रथा५१ के स्वप्न को मूर्तरूप देने का श्रेय महर्षि दयानन्द के आर्यसमाज द्वारा प्रसारित स्त्री-पुरुष समानाधिकार तथा सर्वजनकल्याण की भावना को ही है। महर्षि ने ही विधर्मियों की गोद में जाने वाले अनाथ बच्चों की सर्वप्रथम सुध ले फिरोज़पुर में सर्वप्रथम अनाथालय खोला५२। महर्षि ने रेवाड़ी में सर्वप्रथम गोशाला खोली। महर्षि ने समुद्रयात्रा पर लगे प्रतिबन्ध को उड़ाकर संसार में वैदिक-धर्मप्रसार तथा व्यापार के महत्व को बढ़ाया। हिन्दुओं का पण्डों द्वारा सर्वस्व हरण करने वाली दानप्रथा, जिसके अधीन लड़कियों का पण्डों को दान तथा मूर्तियों से विवाह तक पुण्य समझा जाता था, का महर्षि ने विरोध कर दान, श्रद्धा तथा शक्ति-अनुसार५३ लोकोपकारी विद्यादि कार्यों के लिये ही उचित' के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। स्त्रियों का दम घोटने वाली पर्दाप्रथा५४ समाप्त हुई तथा स्त्रियों को समाज में सम्मानजनक स्थान मिला। जहाँ स्वामी शंकर ने कन्याओं का पाण्डित्य केवल गृहतन्त्र तक ही सीमित रखा था५५ वहाँ महर्षि ने उन्हें लड़कों के समान ही सभी प्रकार के ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा, यज्ञोपवीत तथा वेदाध्ययन का अधिकार दिलाया।५६ महर्षि ने गुण-कर्म-स्वभावानुसार वर्णव्यवस्था निर्धारण में अन्य वर्ण को प्राप्त हुई सन्तानों के विनिमय में दूसरे वर्ण से आई सन्तानों को देने-दिलाने का विधान करके५७ तो आज के तथाकथित साम्यवाद को भी कहीं पीछे छोड़ दिया है।

विवाह व्यवस्था की देन

विवाह की समस्या भी आज की प्रमुख समस्याओं में से एक है। महर्षि ने गृहस्थाश्रम निन्दकों की आलोचना करते हुए इसे श्रेष्ठ एवं पूर्ण वैराग्य तथा आत्मसंयम के अभाव में तथा सृष्टिसूत्र संचालनार्थ अनिवार्य घोषित किया। विवाह में दहेज तथा अन्य अपव्यय की निन्दा करते हुए५८ उन्होंने ब्राह्म-विधि को सर्वश्रेष्ठ कहा। उन्होंने लड़के और लड़की की परस्पर सहमति के बिना समाज द्वारा विवाह-निषेध, उपयुक्त साथी की खोज के लिये एक दूसरे के गुणों का विवरण, चित्र-प्रदर्शन, माता-पिता तथा आचार्य द्वारा परस्पर वार्तालाप की व्यवस्था तथा उपयुक्त वर के बिना कन्या के आमरण पितृ-गृहनिवास का विधान५९ किया। उन्होंने 'अष्टवर्षामवेद्

४९. यजु० २६।२।

५०. हिन्दुशुद्धि सभा तथा दयानन्द साल्वेशन मिशन ने लाखों विधर्मियों या विधर्मीबनों की शुद्धि से राष्ट्रियता को सुदृढ़ किया।

५१. महर्षि के पूना व्याख्यानों का संग्रह 'उपदेशमञ्जरी' द्रष्टव्य।

५२. भिवानी, दिल्ली आदि नगरों में भी आर्यसमाज ने अनाथालय खोले।

५३. वेदभाष्य के लिये एक सज्जन की सारी सम्पत्ति १० हजार रुपये लेने से इन्कार कर ऋषि ने केवल एक हजार रुपया लिया।

५४. आदिम स० प्र० और आ० स० के सिद्धान्त पृ० ६२।

५५. बृहदारण्यक के ६-४-१९ मन्त्र 'दुहिता मे पण्डिता जायेत' पर भाष्य।

५६. आर्य विद्वान् प्रोफेसर महेश प्रसाद की पुत्री कल्याणी ने ने हिन्दु विश्वविद्यालय में सर्वप्रथम वेद पढ़ा।

५७. स० प्र० समु० ४।

५८. आदिम स० प्र० के सिद्धान्त। पृ० ६४-६५।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

गौरी' आदि का कड़ा खण्डन करते हुए 'विवाह यौवन में तथा एक समय में एक ही' का विधान किया और बहुविवाह तथा बालविवाह का निषेध६०। विवाह में जन्मगत जाति-पांति एवं देश-विदेश का विचार छोड़कर गुण-कर्म-स्वभावानुसारी वर्णव्यवस्था का प्रबल समर्थन किया६१। पैर की जूती नारी को पूज्या मातृशक्ति का उच्चस्थान दिलवाया६२। स्त्री के लिये पातिव्रत्य की अनिवार्यता के समान पुरुष के लिये भी एक पत्नीव्रत के प्रबल पोषक महर्षि ने पूर्व ही कई विवाह कर चुकने वाले उदयपुर नरेश आदि को सब पत्नियों से एक समान प्रेम व्यवहार का आदेश दिया। ६३। स० प्र० (प्रथम संस्करण) में उन्होंने मनुस्मृति के प्रमाण ६४ पूर्वक कुछ विशिष्ट अवस्थाओं में पति-पत्नी के पारस्परिक सम्बन्ध-विच्छेद का भी विधान किया। महर्षि ने नियोग के रूप में विवाहविच्छेद का एक सुन्दर विकल्प भी प्रस्तुत किया। दम्पती में से किसी भी एक के सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ होने पर समाज की अज्ञानुसार वह किसी दूसरे व्यक्ति से सन्तानोत्पति कर वंश परम्परा भी चला सकता है और दूसरे साथी की जीवन यात्रा में सर्वतोभावेन सहायता भी कर सकता है।

राजनीतिक देन

महर्षि की राजनीतिक देन हमारे देश का कायाकल्प कर सकती है। साम्यवाद ने केवल अन्धे बल प्रयोग को ही सब कुछ माना तो गान्धीवाद ने थोथे आदर्शों के वशीभूत हो क्षात्र-शक्ति को सर्वथा तिरस्कृत कर अत्याचारियों को प्रोत्साहन दिया, पर महर्षि ने ब्रह्म एवं क्षात्र शक्तियों के समन्वय, साम, दाम, दण्ड, भेद इन नीति के चारों अंगों और विजयप्राप्ति के लिये युद्धस्थल से भाग जाने को भी आवश्यक बतलाया। महर्षि ने प्रजातन्त्र प्रणाली को सर्वश्रेष्ठ माना पर उसमें राजा के हर पाँच वर्ष पश्चात् नहीं, अपितु कोई दोष न होने पर वंशपरम्परा से भी चलते रहने का विधान किया। इसे बृटिश शासनप्रणाली के कुछ निकट समझा जा सकता है। उनके अनुसार राजा तथा आप्त विद्वानों की सभा को अन्योऽन्याश्रित होना चाहिये और मूर्खों की अपेक्षा आप्त पुरुषों का मत ही मान्य होना चाहिये। राज्य के सुचारु संचालन के लिये धर्मार्यसभा, तथा राजार्य सभा होनी चाहिये। उच्चपदस्थ व्यक्तियों को निम्न पदस्थों की अपेक्षा और ज्ञानियों को मूर्खों की अपेक्षा, अपराध का उत्तरोत्तर अधिक दण्ड मिलना चाहिये—महर्षि की यह व्यवस्था आज शासन में व्याप्त भ्रष्टाचार को जड़मूल से उखाड़ सकती है। महर्षि पंचायतशासन के आधार पर एकात्मक राज्य-प्रणाली के पोषक हैं, विघटनात्मक वर्तमान संघात्मक प्रणाली के नहीं ६५। उनकी दण्डव्यवस्था कठोर है जिससे अपराधी भयभीत हों। महर्षि आग्नेयास्त्र तथा शतघ्नी (तोप) आदि शक्तिशाली शस्त्रों से सज्जित सेना को राष्ट्र रक्षा का आवश्यक साधन मानते हैं। वह एक के पश्चात् दूसरी अदालत में अपील करने वाली बड़ी व्ययसाध्य तथा दोषपूर्ण वर्तमान न्यायप्रणाली की कटु आलोचना करते हुए असावधान न्यायाधीशों ६६ तथा झूठे साक्षियों के लिये दण्ड विधान करते हैं और पुलिस की अपेक्षा प्राचीन चौकीदारी व्यवस्था को श्रेष्ठ कहते हैं। जिसमें किसी से अन्याय नहीं होता था।

आर्थिक देन

महर्षि ने कृषकों को "सब राजाओं का राजा" कहते हुए विधान किया कि उन पर कर इतना न लगे कि वे आर्थिक

५९-६०. स० प्र० समु० ४।

६१. आदिम स० प्र० और आर० स० के सिद्धान्त पृष्ठ ८३।

६२. शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमाः। वेद।

६३. महर्षि के पत्र और विज्ञापन।

६४. देखो मनु अ० ९।७२।

६५. स्व० मेहरचन्द महाजन आदि सभी आर्य नेता संघात्मक प्रणाली के विरोधी रहे।

६६. आदिम स० प्र० और आ० स० के सिद्धान्त पृ० ९०-९१।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

संकट में पड़ जायें। उन्होंने स० प्र० के प्रथम सं० में जंगल से लकड़ी, घास आदि कटाकर गुजारा करने वालों तथा नमक पर, कर को अनुचित ठहराया। उन्होंने अधिकाधिक धनी होकर परोपकारार्थ दान का उपदेश दिया, बशर्ते कि कमाई का साधन पवित्र एवं न्याय्य हो। सेवा निवृत्त कर्मचारियों की मृत्यु पर उनकी अल्पव्यापक सन्तानों को वयस्क होने तक राज्य से सहायता का अधिकारी माना, यदि उनका आचरण ठीक रहे। पूंजी एवं श्रम में उन्हें विरोध नहीं, अपितु सहयोग अपेक्षित है। वह गौ के दूध में बछड़े के भाग की भी सीमा निर्धारित करते हैं ६७। फिर श्रमिक के अधिकार की उपेक्षा का तो प्रश्न ही नहीं उठता। वह स्वदेशी वस्तुओं के अधिकतम प्रयोग तथा विदेशों के ६८ साथ व्यापार को राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का आधार मानते हैं। गोपालन और कृषि की उन्नति के लिये उन्होंने गोशाला तथा गोकृष्यादि-रक्षिणी सभा की स्थापना की। गोकरुणानिधि में आंकड़े देकर गौ रक्षा के लाभ दर्शाए। इस प्रकार कृषि, गोपालन, शिल्पविद्या, स्वदेशी-प्रयोग, दूसरे देशों से व्यापार और उचित कराधान यह उनकी अर्थव्यवस्था के मूलाधार हैं। जिन की अव्यवस्था से आज राष्ट्र में अर्थ संकट है।

वैज्ञानिक देन

महर्षि ने १८७५ में ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका में वेद प्रमाणों से विमानों तथा वेतार के तार आदि का उल्लेख किया, जिससे प्रोत्साहित हो महर्षि के ही शिष्य बम्बई के श्री बापू शिवकरजी तल्पदे ने १९०४ में तथाकथित सर्वप्रथम उड़ान भरनेवाले राईट-बन्धुओं से पहले ही महाराजा गायकवाड़ की अध्यक्षता में बम्बई में अपने विमान की उड़ान का प्रदर्शन ६९ किया। उनके पीछे पी० सी० रे आदि अनेक विद्वानों ने प्राचीन भारतीय विविध विज्ञानों पर अनेक ग्रन्थ लिखे। जब विज्ञान भी पृथिवी की आयु थोड़ी सी मानता था, महर्षि ने सृष्टि की आयु लगभग दो अरब वर्ष बतलाई, जो आज अनेक वैज्ञानिकों को मान्य है। ७० आज भारद्वाज का 'यन्त्र सर्वस्व' तथा भोजकृत 'समरांगण सूत्रधार' आदि ग्रन्थ महर्षि की स्थापनाओं के समर्थक हैं।

राष्ट्रीय देन

महर्षि दयानन्द राष्ट्रीयता के अग्रदूत थे। उन्होंने भारतीय स्वाधीनता की नींव रखी ४६। एच कैम्बेल बेनरमैन से बहुत पूर्व उन्होंने स्वराज्य को सुराज्य से श्रेष्ठ घोषित किया। १८८६ में दादाभाईनौरोजी आर्य समाज लन्दन में जाते थे,७१ अतः सम्भव है, उन्होंने 'स्वराज्य' शब्द सत्यार्थप्रकाश से ही लिया हो। इङ्गलेण्ड में ऋषिशिष्य श्यामजी कृष्णवर्मा ने भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन की नींव डाली और पूना के श्रीरानाडे की शिष्य परम्परा में गोखले और गान्धीजी हुए। कांग्रेस द्वारा नियुक्त मोतीलाल नेहरू तथा मौलाना हसरत ७२ मुहानी की रिपोर्ट के अनुसार सत्याग्रह में जेल जाने वाले ७० से ९० प्रतिशत लोग आर्य समाजी थे।

विपिनचन्द्र पाल के अनुसार राजनारायण बोस ने १८६[illegible] में सर्वप्रथम स्वदेशी आन्दोलन चलाया था। जो शीघ्र समाप्त हो गया। पर महर्षि का आन्दोलन समस्त देशव्यापी हुआ। ७३। महर्षि ने कलकत्ता में श्री महेन्द्र लाल सरकार से आयुर्वेद प्रणाली की उन्नति पर बातचीत की तथा उदयपुर नरेश को इसे उन्नत करने की एक विधिवत् योजना बनाने

६७ आदिम स० प्र० और आ० स० के सिद्धान्त पृ० ८३।

६८ स० प्र० समु० ८।

६९ परोपकारी मासिक मार्च ६७ में पृष्ठ ४६ कालम २ पर प्रोफेसर ताराचन्द गाजरा का पत्र।

७० 'लिमिटेशन्ज़ आफ साइन्स' ग्रन्थ।

७१ आ० स० का इतिहास-इन्द्र विद्यावाचस्पति भाग २।

७२ सत्य निर्णय—ज्ञानचन्द्र कृत परिशिष्ट।

७३ विगिनिङ्गज़ ऑफ फ्रीडम् मूवमेन्ट इन माडर्न इण्डिया विपिनचन्द्र पाल पृष्ठ ४७।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दी। अपने शिष्य श्यामजी वर्मा को ब्यावर की सर्वप्रथम स्वदेशी-वस्त्र मिल का प्रबन्धक होने की अनुमति दी। इस प्रकार उन्होंने हर क्षेत्र में स्वदेशी का प्रचलन किया, और विदेशी समर्थक ब्राह्म समाजियों की आलोचना की। हिन्दी को सरकारी कार्यालयों की भाषा बनवाने के लिये उन्होंने सर्वप्रथम आन्दोलन किया और राजस्थान के अपने शिष्य राजाओं की राजसभा में उसे प्रचलित करवाया। ७४। महर्षि ने मेला चान्दापुर तथा दिल्ली दरबार में प्रमुख धर्माचार्यों को एकत्रित करके सर्वप्रथम सर्वधर्म सम्मेलन तथा भावात्मक एकता सम्मेलनों का आयोजन किया। सर सैयद अहमद खाँ के घर श्यामजी आदि शिष्यों को भोजन के लिये भेजने तक से भी वह न हिचकिचाये। राज धर्म ईसाइयत का प्रबल खंडन तथा वैदिक धर्म की श्रेष्ठता का मण्डन कर भारतीयों में आत्म-गौरव बढ़ाया। यदि उनके पदचिन्हों पर भारत सरकार चलती तो ईसाई प्रचारकों के कारण उत्पन्न नागालैण्ड की समस्या आज न होती।

---

७४ दयानन्द कौ मेमोरेशनवोल्यूम पृष्ठ ३६९।

सार रूप में हम कह सकते हैं कि महर्षि दयानन्द की एक ही देन थी 'सत्य एवं विद्या के सब अंगों का पूर्ण समन्वय'। उन्होंने विश्व को अतिवाद के रोग से बचा कर समन्वित, मध्यमार्ग अपनाने का जीवनदायी उपदेश दिया। उन्होंने धर्म के क्षेत्र में नास्तिकता का बहुदेवतावाद के अतिवादों का एकेश्वरवादी समन्वय; सांसारिक जीवन में त्याग और भोग का समन्वय; राजनीति में साम-दण्ड का समन्वय, ईश्वर के सगुण-निर्गुण, ब्रह्मा-विष्णु-महेश आदि नामों तथा दयालु-न्यायकारी होनेका समन्वय, ज्ञान-कर्म-उपासना का समन्वय, धर्म विज्ञान का समन्वय, राष्ट्रीयता-अन्तर्राष्ट्रीयता में समन्वय, शारीरिक-आत्मिक-सामाजिक उन्नति में समन्वय, देशी-विदेशी भाषाज्ञान समन्वय भौतिक एवं आध्यात्मिक शिक्षा में समन्वय, उत्तर-दक्षिण भारतीयों का समन्वय, श्रद्धा-तर्क में समन्वय, हिन्दू-मुस्लिम-ईसाइयों में समन्वय, धर्म-राजनीति में समन्वय, लोक-परलोक में समन्वय—अभिप्राय यह कि जीवन के सभी अंगों में पूर्ण समन्वय प्रचारित किया, जहाँ एकांगीपन नहीं, सम्पूर्णता है और जो पारस्परिक विवाद के मूलकारण सभी एकांगी दृष्टिकोणों के विवाद को शान्त कर सकता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

महर्षि दयानन्द की देन

५

डा० भवानीलाल भारतीय, एम. ए., पी. एच. डी.
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, गवर्नमेंट कालेज, पाली (राज)

महर्षि के आविर्भाव की पृष्ठभूमि : तत्कालीन परिस्थितियाँ

भारत के धार्मिक और सांस्कृतिक पुनर्जागरण के महान् ज्योतिवाहक स्वामी दयानन्द जिस समय सौराष्ट्र की पुण्य भूमि पर अवतीर्ण हुए, उस समय तक भारत में ब्रिटिश शासन सुदृढ़ रूप से स्थापित हो चुका था। अंग्रेज जाति के सम्पर्क ने भारतवासियों में हीन भावनायें जागृत कीं। पाश्चात्य सम्पर्क ने भारतियों को दिग्मूढ़ सा बना दिया और पश्चिमी देशों की लौकिक समृद्धि को देखकर वे अपने को नितान्त दीन, हीन तथा अपदार्थ समझने लगे। मैकाले द्वारा निर्धारित अंग्रेजी शिक्षा-प्रणाली ने देशवासियों के स्वात्म बोध को और भी नष्ट कर दिया। जिस शिक्षा का लक्ष्य ही एक ऐसा वर्ग उत्पन्न करना था जो रंग और आकृति में चाहे भारतीय हो, परन्तु आचार और विचार, बुद्धि और भावना से अंग्रेज हो, उससे अधिक आशा करना व्यर्थ ही था।

शासन के अतिरिक्त हिन्दू समाज के गौरव और वर्चस्व को नष्ट करने में दो अन्य शक्तियाँ भी लगी हुई थीं। शताब्दियों तक के मुस्लिम शासन ने भारतवासी मुसलमानों के हृदय में यह बात दृढ़ता पूर्वक जमा दी थी कि वे शासक वर्ग के हैं और प्रकृति ने उन्हें हिन्दुओं पर शासन करने के लिये ही उत्पन्न किया है। अब तक तो वे औरंगजेबी शासन काल की भाँति तलवार के बल पर हिन्दू धर्म जो समाप्त करने की चेष्टा में रहे थे, परन्तु अब अंग्रेजी शासन की धर्म निरपेक्षता की तथा कथित नीति के सम्मुख उन्हें अपनी पद्धति को परिवर्तित करना पड़ा। अब इस्लाम के मुल्ला और मौलवी, फकीर और प्रचारक हिन्दू धर्म की संकीर्णता एवं क्षुद्रता, उसमें व्याप्त मूढ़ विश्वासों और कदाचारों का खुले आम उपहास करने लगे तथा वाणी और लेखनी से हिन्दू धर्म की कटुतम आलोचना उनके लिये सामान्य वस्तु बन गई।

अंग्रेजी शासन में ईसाई प्रचारकों को भी हिन्दू धर्म और संस्कृति पर ध्वन्सात्मक आक्रमण करने की छूट मिल

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

गई। ईसाइयत का यह धक्का इस्लाम से भी अधिक घातक सिद्ध हुआ। ईसाई प्रचार के दो रूप थे—एक प्रणाली थी ईसाई प्रचारकों द्वारा जन-जन में ईसाई विश्वासों के प्रति श्रद्धा जागृत करने के लिये नगर-नगर तथा ग्राम-ग्राम में ईसाई मिशनों का व्यवस्थित जाल बिछाना। ईसाई धर्म ग्रंथों का वितरण, लोक भाषा में हिन्दू धर्म की आलोचना के व्याख्यान देना, यत्र-तत्र हिन्दु देवी-देवताओं का उपहास करना, इस कार्य प्रणाली के आवश्यक अंग थे। परन्तु ईसाई कार्य प्रणाली का एक दूसरा रूप भी था। मैक्समूलर, मोनियर-विलियम्स, ग्रिफिथ तथा विल्सन आदि पाश्चात्य पण्डितों का संस्कृत विषयक अनुसंधान तथा अध्ययन भी ईसाई मत के पूर्वाग्रह से दूषित था। ये पाश्चात्य मनीषी विशुद्ध सारस्वत साधना की दृष्टि से वैदिक तथा संस्कृत-साहित्य के अध्ययन में प्रवृत नहीं हुये थे। इनका लक्ष्य द्विविध था—भारत में शासक बनकर आने वाले अंग्रेज आई. सी. एस. अधिकारियों को भारत में सर्वाधिक व्याप्त हिन्दू धर्म से परिचित कराना तथा हिन्दू धर्म शास्त्र एवं भारतीय नीति रीति को ईसाई धर्म तथा पाश्चात्य जीवन प्रणाली से हीन तर, कुत्सित, मिथ्या एवं निकृष्ट सिद्ध करना।

ईसाइ प्रचार का अन्तिम परिणाम निकला 'अत्यधिक भावुक प्रकृति के बंगाली युवक ईसाई मृग तृष्णा की ओर आकृष्ट हुए' माइकेल मधुसूदन दत्त, पादरी लाल बिहारी दे, इण्डियन नेशनल कांग्रेस के प्रथम सभापति व्योमेशचन्द्र बनर्जी जैसे प्रबुद्ध लोग भी अपने परम्परागत धर्म को त्याग कर 'गॉस्पेल' के अनुयायी बन गये। दक्षिण में नीलकण्ठ शास्त्री और महाराष्ट्र की विदुषी पण्डिता रामा बाई भी इसाइयत के आकर्षण से अपने को मुक्त नहीं रख सके। ईसाई प्रचार के इस आक्रान्त रूप ने सामान्य लोगों को तो प्रभावित किया ही—केशवचन्द्र सेन, रामतनु लाहिरी, तथा प्रतापचन्द्र मजूमदार जैसे ब्रह्म नेता भी उससे अप्रभावित नहीं रह सके।

धर्म और संस्कृति के क्षेत्र में जब ऐसी संक्रान्तिकालीन अवस्था उत्पन्न हो चुकी थी, उस समय आर्य सभ्यता और वैदिक धर्म के मूलभूत संस्कारों की सुरक्षा हेतु महर्षि दयानन्द का आविर्भाव हुआ। महर्षि एक ऐसे ज्योतिर्धर थे, जिन्होंने अपने क्रान्तिदर्शी, ओजस्वी तथा वर्चस्वी व्यक्तित्व से धर्म समाज, राष्ट्र, शिक्षा तथा अर्थनीति जीवन के विविध क्षेत्रों को प्रभावित कर देश के मुमुर्षु जर्जर और कंकाल शेष शरीर में नवीन प्राणों का संचार किया। महर्षि दयानन्द की देन का विवेचन इसी परिपेक्ष्य में किया जाना चाहिए।

धर्म के क्षेत्र में महर्षि दयानन्द की देन

दयानन्द मूलतः एक धार्मिक नेता थे। धर्म के विस्मृत स्वरूप की उन्होंने पुनः स्थापना की। उन्होंने बताया कि धर्म का अभिप्राय केवल रूढ़िगत विचारों का अनुसरण करते हुये कर्मकाण्ड के जटिल क्रिया जाल का पतन ही नहीं है, अपितु धर्म उन उदात्त गुणों की समष्टि का नाम है जो मनुष्य के नैतिक औ आध्यात्मिक उत्थान में सहायक होते हैं। दयानन्द ने वेद को धर्म का मूलाधार बताया। उनकी यह मान्यता भारतीय धर्म चिन्तन के पूर्णतया अनुकूल थी। वैदिक धर्म का मूल स्रोत ऋग्वेदादि में चार मन्त्र संहितायें हैं जो ईश्वर का अनादि ज्ञान होने के कारण पूर्णतया निर्भ्रान्त तथा स्वतः प्रमाण हैं, यह उनकी निश्चित धारणा थी। महर्षि ने संहिता प्रमाणवाद को पुनः प्रतिष्ठित किया। यों तो वेद प्रमाणवाद सभी प्राचीन और अर्वाचीन धर्माचार्यों को स्वीकार्य रहा है, परन्तु व्यावहारिक रूप में वेद विरुद्ध मतवादों का प्रचलन ही अधिक रहा। स्वामीजी ने धर्म सम्बन्धी प्रत्येक मान्यतों और विश्वास को वेद प्रमाण के कसौटी पर कसने का आग्रह किया।

वेद प्रामाण्य के साथ-साथ दयानन्द ने आर्य ग्रन्थ प्रमाण के सिद्धान्त को भी पुनर्जीवित किया। इसके लिये उन्हें अपने विद्या-गुरु सुगृहीत नामधेय दण्डी विरजानन्द सरस्वती से प्रेरणा मिली। दण्डीजी ने अपनी आर्य-प्रज्ञा के बल पर यह सिद्ध किया कि वेद के पश्चात् उन्हीं ग्रन्थों को प्रामाणिक माना जाना चाहिये जो साक्षात्कृत धर्मा मन्त्रद्रष्टा कवियों

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

द्वारा निर्मित हैं तथा जो युक्ति, तर्क, विज्ञान तथा सृष्टिकर्म के सर्वदा अविरुद्ध हैं। आर्य-ग्रन्थ प्रमाण की इस कसौटी के द्वारा ही दयानन्द तत्व, पुराण तथा शतशः उन अन्य ग्रन्थों का खण्डन कर सके जिन्होंने अपने वेद, युक्ति और विज्ञान विरुद्ध सिद्धान्तों से जन मानस को दूषित कर रक्खा था। दयानन्द के हाथ में आर्य ग्रन्थ-प्रमाणवाद का यह आयुध नहीं होता तो वे मध्ययुगीन धर्माडम्बर को भिन्न-भिन्न कर वैदिक धर्म को पुनः उद्भासित करने में असफल रहे होते।

धर्म में बहुविवाद को समाविष्ट करना महर्षि की एक महान् देन है। वस्तुतः धर्म बहुविवाद का विरोधी नहीं है। भगवान् मनु ने तर्क के अनुकूल ही धर्म का अनुसन्धान करने का आदेश दिया है।[1] निरुक्तकार यास्क के अनुसार तर्क ही ऋषि है[2] और महर्षि कणाद ने वेदों को बुद्धिपूर्वक रचित ईश्वरीय कृति माना है।[3] यदि धर्म में युक्तिवाद (Rationality) का समावेश नहीं है, तो वह मिथ्या विश्वासों का समूह मात्र है। तर्क और युक्ति का महत्व धर्म के क्षेत्र से लुप्त हो गया। उसका स्थान श्रद्धा और विश्वास अन्ध विश्वास में ले लिया। कालान्तर में यह श्रद्धा अन्ध-श्रद्धा रह गई और यह विश्वास अन्ध-विश्वास में परिणत हो गया। दयानन्द ने बलपूर्वक घोषणा की, कि वास्तविक धर्म वही है जो तर्क के प्रहारों को सहन कर सके तथा युक्ति की आधार-शिला पर खड़ा हो। उन्होंने सत्य और असत्य की परीक्षा के लिये पांच कसौटियाँ निर्धारित कीं उनमें जहाँ वेद, आप्त वाक्य तथा आत्मा के अनुकूल तथा प्रत्यक्षादि आठ प्रमाणों से सिद्ध होने वाला भी स्वीकार किया। दयानन्द का यह प्रखर बुद्धिवाद धर्म के क्षेत्र में ऋषि की देन है।

१. यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्मवेद नेतरः। मनु० १२।१०६।

२. "मनुष्या वा ऋषियुष्कामस्तु देवानब्रुवन्। को न ऋषिर्भविष्यति? तेभ्यएतं तर्कमृषि प्रायच्छान्नमन्त्रार्थ चिन्ताभ्यूहमभ्यूढम्।" निरुक्त परिशिष्ट।

३. बुद्धि पूर्वावाक्य कृतिर्वेदे। वैशेषिक दर्शन ६।१।१।

समाज-सुधार के क्षेत्र में ऋषि की देन —

महर्षि दयानन्द का व्यक्तित्व बहुमुखी था। धर्म, समाज, राष्ट्र, संस्कृति—प्रत्येक क्षेत्र में उन्होंने अपनी क्रान्तदर्शी प्रतिभा का परिचय दिया है। धर्म के साथ-साथ भारतीय समाज में व्यापक और क्रान्तिकारी परिवर्तन करने की उनकी प्रबल इच्छा थी। अतः दयानन्द को समाज संशोधकों की पंक्ति में शीर्ष स्थान प्रदान करने में हमें कुछ भी विप्रतिपत्ति नहीं होनी चाहिये। गत ८० वर्षों के भारत के सामाजिक जीवन में जो कुछ सुधार और परिष्कार हुये है, उनका श्रेय स्वामी दयानन्द को ही दिया जाना चाहिये। स्वामी दयानन्द प्रवर्तित सुधार आन्दोलन ने उत्तर भारत के जन-मानस को किस प्रकार प्रभावित किया है, इसका ठीक-ठीक अध्ययन तो कोई समाज शास्त्री ही कर सकता है। स्वामीजी ने सर्वप्रथम बाल-विवाह, अनमेल विवाह, वृद्ध-विवाह तथा बहुविवाह जैसी सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध आवाज उठाई। उन्हीं से प्रेरणा पाकर स्व० दीवान बहादुर हरविलास शारदा ने तत्कालीन केन्द्रीय धारा सभा में बाल-विवाह निरोधक कानून पेश किया जो शारदा एक्ट के नाम से पारित हुआ।

हिन्दू-समाज के जीर्ण-शीर्ण ढाँचे को पुनर्गठित करने के लिये महर्षि ने वर्णाश्रम व्यवस्था को वैज्ञानिक आधार प्रदान कर उसे युगानुकूल सिद्ध किया। यद्यपि हिन्दू-समाज विगत सहस्राब्दियों से मिथ्या जात-पांत के जिस वात्याचक्र में फँस गया था, उससे मुक्त होना सहज कार्य नहीं था, तथापि महर्षि ने शास्त्रीय आधार पर वर्णगत और जातिगत वैषम्य को दूर करने का प्रशंसनीय प्रयास किया। स्वामीजी के कठोर से कठोर आलोचकों को भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि हिन्दू-समाज में व्याप्त स्पृश्यास्पृश्य के अभिशाप को दूर करने तथा तथाकथित दलितवर्ग के लोगों को अन्य उच्चवर्णस्थ लोगों के स्तर पर लाने में स्वामीजी का प्रशस्तिपूर्ण योगदान रहा है। स्वयं महात्मा गान्धी ने ऋषि दयानन्द की निर्वाण अर्द्ध-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शताब्दी के उत्सव पर यरवदा कारागार से प्रेषित अपने पत्र में इस तथ्य को इस प्रकार स्वीकार किया है—

"Among the many rich legacies that Swami Dayanand has left to us, his unequivocal pronouncement against untouchability is undoubtedly one."१

नारी-शिक्षण और नारी जागरण के कार्य में भी महर्षि अग्रदूत रहे। मध्यकालीन धर्माचार्यों ने नारी को अत्यन्त उपेक्षित, घृणित तथा तिरस्करणीय बना रक्खा था। यहाँ तक कि सम्पूर्ण विश्व-प्रपंच को मिथ्या मानने वाले तथा जीव-ब्रह्मैक्य का तारस्वर से उद्घोष करने वाले शंकर, रामानुज, मध्व, निम्बार्क, वल्लभ आदि वेदान्ताचार्यों ने भी नारी को नरक का द्वार और विश्वास के अयोग्य२ ही माना। उसी नारी को 'शुद्धा पूता योषितो यज्ञिया इमा' और 'स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ' जैसे वेद मन्त्रों के आधार पर उसके उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित करना महर्षि का ही कार्य था। दयानन्द के नारी जागरण विषयक महत् कार्य के प्रति अपनी विनम्र और भक्तिपूत श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुये सुप्रसिद्ध फ्रैन्च विद्वान् रौमां रौलां ने ठीक ही लिखा है :—

"Dayanand was no less generous and bold in his crusade to improve the condition of women, a deplorable in India. He revolted against the abuses from which they suffered."३

१—Dayanand Commemoration Volume.

२—शंकराचार्यकृत प्रश्नोत्तरी।

३—The Llfe of Shri Ramakrishna. P. 156.

राष्ट्रवादी दयानन्द

महर्षि दयानन्द अपने समकालीन तथा समानधर्मी अन्य धर्माचार्यों से अनेक बातों में पूर्णतया भिन्न थे। उच्च कोटि के संस्कृतज्ञ विद्वान्, महान् धर्मसंशोधक तथा क्रान्तिकारी समाज सुधारक होने के साथ-साथ उनमें अपने राष्ट्र के प्रति अगाध निष्ठा तथा भक्ति थी। दयानन्द मूलतः राष्ट्रवादी थे, परन्तु राष्ट्रवाद को उन्होंने संकुचित अर्थ में ग्रहण नहीं किया था उनके राष्ट्रीय विचारों का उल्लेख करते हुये योगी अरविन्द ने लिखा है—

He had the national stinct and he was able to make it luminious."१

अर्थात् दयानन्द में राष्ट्रीय भाव था और वह उसे उद्दीप्त कर सका था। रौमां रौलां ने स्वामीजी को भारत के राष्ट्रीय पुनर्जागरण का पुरोधा बताते हुये उसे राष्ट्रीय चेतना का प्रतीक माना है। होम-रूल आन्दोलन की प्रसिद्ध नेत्री श्रीमती ऐनी बेसेन्ट ने तो यहाँ तक लिख दिया है कि ऋषि दयानन्द ही प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने—"India for Indians"—"भारत भारतवासियों के लिये" की घोषणा की।

महर्षि ने अपने लेख और वाणी में सर्वत्र स्वराज्य और साम्राज्य की चर्चा की है। वेदभाष्य, सत्यार्थप्रकाश, आर्याभिविनय तथा गोकरुणानिधि के शतशः उद्धरण इस बात के द्योतक हैं कि ऋषि दयानन्द भारत की राजनैतिक परतन्त्रता से अत्यन्त दुखी थे, तथा उनकी एकान्त कामना थी कि भारत विदेशियों के दासता पाश से मुक्त होकर स्वराज्य का गौरव प्राप्त करे।

यहाँ एक बात पर विचार कर लेना अप्रासंगिक न होगा, क्या दयानन्द की राष्ट्रीयता पश्चिम की देन है? बहुधा यह समझा जाता कि भारत में स्वतन्त्रता के भावों का बीज वपन पाश्चात्यों के सम्पर्क से हुआ। परन्तु दयानन्द की राष्ट्रीय

१—Dayanand: The man and his work.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विचारधारा के लिये यह नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः उन्होंने अपनी अन्तःप्रज्ञा के बल पर ही भारत की राजनैतिक मुक्ति का चिन्तन किया तथा अपनी राष्ट्रीय भावना को प्राचीन आर्य वाङ्मय में विद्यमान तत्वों से पोषित तथा पल्लवित किया। इस दृष्टि से दयानन्द अपने समकालीन तथा परवर्ती सभी स्वाधीनचेता महापुरुषों को पीछे छोड़ते प्रतीत होते हैं। राष्ट्र पुरुष महात्मा गांधी ने जहाँ अपने सर्वोदय के विचारों के लिये जॉन रस्किन और लियो तालसताय जैसे पश्चिमी विचारकों से प्रेरणा ग्रहण की; वहाँ दयानन्द के प्रेरणा-स्रोत वेद के वे महनीय सूक्त हैं, जिनमें स्वराज्य की अर्चना[1] और मातृभूमि की वन्दना[2] की शतशः ऋचायें भरी पड़ी हैं।

दयानन्द का राष्ट्रवाद उस फासिस्ट 'राष्ट्रवादी समाजवाद का पर्याय या स्थानापन्न नहीं है जो My country—(National Socialism) में विश्वास रखता है। इसके विपरीत दयानन्द का 'Right or Wrong' राष्ट्रवाद उस चक्रवर्ती आर्य साम्राज्य के आदर्श को मूर्तिमान करने का एक सोपान मात्र है जिसके लिये ऐतरेय ब्राह्मणकार ने लिखा है—"स्वस्ति साम्राज्यं भौज्यं स्वाराज्यं वैराज्यं पारमेष्ठ्यं राज्यं महाराज्यमाधिपत्यमयं समन्तपर्यायी स्यात्सार्वभौमः सार्वायुषान्तादापरार्धात् पृथिव्यै समुद्रपर्यन्ताया एकराडिति।'[3] चक्रवर्ती आर्य नरेश समुद्रपर्यन्त पृथ्वी पर एकराट् साम्राज्य की स्थापना करे, यही दयानन्द का आदर्श था। उसमें न तो एकतन्त्री शासन की स्वेच्छाचारिता के लिये अवकाश था और न आधुनिक प्रजातन्त्र प्रणाली का मूढ़ जन विश्वास। सत्यार्थ प्रकाश के छठे समुल्लास में मनुस्मृति आदि विधि ग्रन्थों के आधार पर महर्षि ने राजनीति के ऐसे ही स्वर्णिम सूत्रों को ग्रथित किया है। दयानन्द के राष्ट्रवाद से प्रेरणा पाकर उनके अनुयायी आर्यसमाजियों ने स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में जो स्वर्णिम पृष्ठ जोड़े हैं, उनका तो इतिहास ही पृथक है।

दयानन्द का शैक्षणिक क्षेत्र में योगदान

दयानन्द अपने युग के महान् शिक्षा शास्त्री थे। उनके द्वारा रचित सत्यार्थप्रकाश के द्वितीय तथा तृतीय समुल्लास बालक-बालिकाओं के लालन-पालन, शिक्षण तथा उन्हें सुसंस्कृत बनाने की दृष्टि से लिखे गये हैं। संस्कृत शिक्षा प्रणाली को प्रोत्साहित करने के लिये उन्होंने अद्वितीय प्रयास किये। संस्कृत व्याकरण के सुगम बोध के लिये उन्होंने 'वेदाङ्ग प्रकाश' के नाम से चौदह खण्डों में एक ग्रन्थमाला तैयार की। 'व्यवहार भानु' तथा 'संस्कृत वाक्य प्रबोधः' नामक उनके दो लघु ग्रन्थ पठन-पाठन व्यवस्था के अन्तर्गत छपे। अष्टाध्यायी का भाष्य भी उन्होंने लिखा। ग्रन्थ निर्माण के अतिरिक्त अपने देशाटन प्रसङ्ग में वे जहां भी गये, उन्होंने संस्कृत पाठशालायें स्थापित कीं। संस्कृत के वैदिक और लौकिक साहित्य का विधिवत् अध्ययन करने के लिए उन्होंने एक पाठ विधि का भी निर्माण किया जिसका उल्लेख सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास और संस्कार विधि के वेदारम्भ संस्कार के अन्तर्गत हुआ है। स्वामी दयानन्द के शिक्षा विषयक मन्तव्यों से ही प्रेरणा पाकर कालान्तर में स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का उद्धार किया गया। गुरुकुलों की स्थापना द्वारा भारत की राष्ट्रीय शिक्षा नीति के निर्द्धारण में अभूतपूर्व सहायता मिली है।

स्वामी दयानन्द की संस्कृत और आर्य भाषा (हिन्दी) को देन

शिक्षा का प्रश्न भाषा के प्रश्न से अनिवार्यतः जुड़ा हुआ है। दयानन्द ने संस्कृत भाषा के प्रचारार्थ बहुविध प्रयत्न किये। उन्होंने संस्कृत को भाषण, प्रवचन, वाद-विवाद, शास्त्रार्थ, पत्र-व्यवहार और ग्रन्थ लेखन के जीवन्त माध्यम के रूप में स्वीकार किया। अपने भक्त और शिष्य राजा

१—ऋग्वेद मं० १ सूक्त ८०।

२—अथर्ववेद का १२ सूक्त १।

३—ऐतरेय ब्राह्मण, ३९।१।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

महाराजाओं को संस्कृत पढ़ने की प्रेरणा दी, संस्कृत शास्त्रों के प्रचार, प्रसार और रक्षण हेतु वैदिक यन्त्रालय की स्थापना की तथा आर्यसमाज के समासदों के लिये संस्कृत भाषा के ज्ञान को वांछनीय बताया।

संस्कृत के साथ-साथ महर्षि लोक भाषा हिन्दी के प्रचार और प्रसार के लिये भी उत्सुक थे। उनकी यह मान्यता थी कि आर्य भाषा हिन्दी ही राष्ट्रभाषा के गौरवास्पद स्थान की अधिकारिणी है। अतः उन्होंने स्वयं गुर्जरभाषी होने तथा गीर्वाण वाणी संस्कृत के अद्वितीय विद्वान् होते हुए भी अपने लेख और वाणी में आर्य भाषा का ही प्रयोग किया। ब्राह्म समाज के नेता केशवचन्द्र सेन को उन्होंने उस समय मीठी फटकार बताई जिस समय केशव ने स्वामी जी के अंग्रेजी से अनभिज्ञ होने के कारण खेद व्यक्त किया था। महर्षि दयानन्द की हिन्दी भाषा के प्रति देन का उल्लेख करते हुए हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान् स्व० प्रो० रामदास गौड़ तथा प्रसिद्ध समालोचक लाला भगवानदीन ने लिखा—"जनता के लाभ की दृष्टि से मातृभाषा गुजराती होने पर भी इस दूरदर्शी और विद्वान् संन्यासी ने राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रचार किया। अपने ग्रन्थ भी हिन्दी में ही लिखे। हिन्दी की उन्नति और प्रचार आर्य समाज का, जिसके प्रवर्त्तक थे, एक विशेष लक्ष्य बनाया। अकेले इन स्वामी जी ने हिन्दी का जितना उपकार किया, हमारा अनुमान है कि अनेक सुसंगठित संस्थाओं ने भी अबतक मिलकर उतना नहीं कर पाया है।"[1] पंजाब जैसे अहिन्दी भाषा-भाषी प्रान्त में हिन्दी का जो अभूतपूर्व प्रचार सम्भव हो सका, उसका एकमात्र कारण महर्षि और आर्यसमाज की हिन्दी विषक नीति ही है।

भारतीय अर्थनीति और गो रक्षा

धर्म, अध्यात्म और संस्कृति के उच्चस्तरीय क्षेत्रों में युगान्तरकारी योगदान करनेवाले महर्षि की दृष्टि देश की दयनीय अर्थ व्यवस्था की ओर भी आकृष्ट हुई थी। उनका यह सुनिश्चित मत था कि स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग से ही देश की अर्थ व्यवस्था को सुधारा जा सकता है। वे देश की औद्योगिक स्थिति में भी आमूल चूल परिवर्तन करना चाहते थे। उनकी यह सुदृढ़ धारणा थी कि जब तक देश के नवयुवकों को उद्योग, कला-कौशल तथा यान्त्रिक व्यवसायों की शिक्षा नहीं दी जायगी, तब तक देश की आर्थिक समृद्धि का स्वप्न अपूर्ण ही रहेगा। इसी दृष्टि से उन्होंने कुछ युवकों को जर्मनी भेजा, ताकि वहां रह कर वे औद्योगिक और तकनीकी शिक्षा प्राप्त कर सकें।

दयानन्द की अर्थ नीति में गो रक्षा का भी महत्वपूर्ण स्थान था। गो रक्षा के प्रश्न को वे देश की आर्थिक समृद्धि से जोड़ते थे। 'गो करुणा निधि' पुस्तक लिख कर इसी आर्थिक पहलू को उन्होंने स्पष्ट किया है। गाय, भैंस और बकरी जैसे दुधारू पशुओं के विकाश से हमारे देश के पशु धन का जिस तीव्र गति से ह्रास हो रहा है, इसे उन्होंने अनुभव किया था। गो रक्षा के लिये उनके प्रयत्न सर्वविदित हैं। तत्कालीन ब्रिटिश साम्राज्ञी विक्टोरिया की सेवा में गोबध बन्द कराते हेतु एक प्रार्थना पत्र प्रेषित करने का उन्होंने महत् उद्योग किया था। 'गो करुणा निधि' के परिशिष्ट रूप में 'गो कृष्यादि रक्षिणी सभा' की योजना और विधान प्रस्तुत कर स्वामी दयानन्द ने कृषि को भारतीय अर्थ व्यवस्था के प्रमुख आधार के रूप में प्रस्तुत किया। कृषक वर्ग के प्रति उनकी सहानुभूति उनके इस कथन से प्रकट है जिसमें उन्हें 'राजा-महाराजाओं का अन्नदाता' कहा गया है। यदि देश के प्रशासक स्वामी जी द्वारा निर्दिष्ट अर्थ व्यवस्था पर ध्यान देकर उसका क्रियान्वयन करते तो हमारा देश आर्थिक दृष्टि से न केवल सम्पन्न ही होता, उसकी समृद्धि में भी वृद्धि होती।

दर्शन के क्षेत्र में दयानन्द की देन

अब तक हमने स्वामी दयानन्द के व्यक्तित्व और उसकी देन का विवेचन विभिन्न दृष्टिकोणों से किया। महर्षि को

---

१ हिन्दी भाषा सार—पृ० ६२ (हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से प्रकाशित)।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

धर्म प्रचारक, समाज संशोधक तथा राष्ट्र निर्माता युग पुरुष के रूप में तो स्वीकार किया गया, परन्तु उनके दार्शनिक दृष्टिकोण पर बहुत कम उहापोह हुआ है। उनके ग्रन्थों का गम्भीर अनुशीलन करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि दयानन्द की देन दर्शन के क्षेत्र में भी कुछ कम नहीं है। दयानन्द के दार्शनिक सिद्धान्त उनके ग्रन्थों में सर्वत्र मणि में सूत्रवत् विद्यमान हैं। दयानन्द ने अपने दार्शनिक मत को 'वैदिक त्रैतवाद' के नाम से अभिहित किया है जिसे उन्होंने ऋग्वेद के 'द्वा सुवर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं' इस मंत्र द्वारा पुष्ट किया। शाङ्कर अद्वैतवाद उन्हें अभीष्ट नहीं। 'वेदान्तिध्वान्त निवारण' शीर्षक ग्रन्थ लिखकर स्वामीजी ने शाङ्कर मत का खण्डन किया और ईश्वर, जीव तथा प्रकृति की तीन अनादि सत्ताओं का प्रतिपादन किया। दयानन्द ने अपने दार्शनिक मन्तव्य को शास्त्रीय प्रमाणों से पुष्ट किया है। वेदान्त के 'अहं ब्रह्मास्मि', 'तत्वमसि', 'अयमात्मा ब्रह्म' तथा 'प्रज्ञानमानन्दं ब्रह्म' जैसे महावाक्यों की जीव ईश्वर भेदपरक व्याख्या पर जोर दिया।

महर्षि षडदर्शनों के समन्वयमूलक अध्ययन पर जोर देते हैं। दर्शनों के अध्ययन के क्षेत्र में उनकी यह देन अभूतपूर्व है। मध्यकालीन भाष्यकारों और दर्शन शास्त्रों के टीकाकारों ने दार्शनिक खण्डन मण्डन का विराट विभ्राट उपस्थित कर एक ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी थी, जिसमें दर्शनों के पारस्परिक समन्वय का सूत्र ढूँढ़ना नितान्त कठिन हो गया था। यद्यपि स्वामी दयानन्द को षडदर्शनों का विस्तृत सामञ्जस्य परक भाष्य लिखने का अवसर नहीं मिला, तथापि वे अपने सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थ में एक ऐसा सूत्र प्रस्तुत कर गये जिसके प्रकाश में षडदर्शनों की समन्वयमूलक व्याख्या हो सकती थी। इस प्रसंग में वे लिखते हैं "छः शास्त्रों में अविरोध इस प्रकार है। मीमांसा में ऐसा कोई कार्य जगत् में नहीं होता कि जिसके बनाने में कर्म चेष्टा न की जाय, वैशेषिक में 'समय लगे बिना बने ही नहीं', न्याय में उपादान कारण न होने से कुछ भी नहीं बन सकता, योग में विद्या, ज्ञान विचार न किया जाय तो नहीं बन सकता। सांख्य में तत्वों का ज्ञान नहीं होने से नहीं बन सकता और वेदान्त में बनाने वाला नहीं बनावे तो कोई भी पदार्थ उत्पन्न नहीं हो सकता। इसलिये सृष्टि छः कारणों से बनी है। इन कारणों की व्याख्या एक एक की एक-एक में है। इसलिये उनमें विरोध कुछ नहीं।"[1] आवश्यकता इस बात की है कि दर्शन के क्षेत्र में दयानन्द की महत्वपूर्ण देन का उसी प्रकार विशद विवेचन किया जाय, जिस प्रकार डा० राधाकृष्णन, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी आदि विद्वानों ने शाङ्कर वेदान्त का विश्लेषण किया है।

उपसंहार

उपर्युक्त पंक्तियों में महर्षि दयानन्द की देन का अत्यन्त संक्षिप्त विवेचन किया गया है। वस्तुतः स्वामी दयानन्द का मानव जाति पर जो उपकार है, उसका यथार्थ मूल्यांकन असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। वेदार्थ के विषय में जो उन्होंने देन दी, उसका प्रमाण इसी बात से दिया जा सकता है कि स्वामीजी के परवर्ती योगी अरविन्द, सत्यव्रत सामश्रमी, स्वामी भगवदाचार्य तथा महामहोपाध्याय मधुसूदन ओझा जैसे वेदज्ञ विद्वानों ने उनके वेद भाष्य से प्रेरणा प्राप्त की है। ये विद्वान भी वेदार्थ की उसी सरणि पर चले हैं जिसका संकेत स्वामी दयानन्द ने किया था। गोखले, तिलक रानाडे आदि देश भक्तों तथा समाज सुधारकों, गांधी, श्रद्धानन्द, लाजपतराय जैसे राष्ट्र नेताओं तथा भगत सिंह और रामप्रसाद 'बिस्मिल' जैसे क्रान्तिकारियों के प्रेरणा स्रोत भी दयानन्द ही थे।

शिक्षा के क्षेत्र में जिस गुरुकुल पद्धति का प्रतिपादन महर्षि ने किया, उसीका अनुकरण सनातनधर्मी लोगों ने ऋषिकुल खोलकर किया। उनके द्वारा प्रचारित स्त्री शिक्षा, अछूतोद्धार, राष्ट्र भाषा प्रचार एवं गोरक्षा आदि के आंदोलन कालान्तर में समस्त देशवासियों द्वारा निर्विरोध रूप से

१ सत्यार्थप्रकाश—अष्टम समुल्लास

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्वीकार कर लिये गये। यह दयानन्द की व्यापक देन का निश्चित प्रमाण है। कवि कुल गुरु रवीन्द्रनाथ ने उस महर्षि के प्रति अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए लिखा—

"My neverence to the great teacher Dayanand, whose vision found unity and truth in India's spiritual history, whose mind luminiously comprehended all departments af India's life—whose call to India is the call of awakening to truth and purity from inertness of unreason and ignorance of the meaning of our past."

मेरा आदर हो उस महान गुरु दयानन्द के प्रति जिसने भारत के आध्यात्मिक इतिहास में एकता और सत्य के दर्शन किये। जिसने भारतीय जीवन की विविधता को अपने मस्तिष्क से देखा, जिसका भारत के प्रति आह्वान सत्य और पवित्रता का आह्वान था क्योंकि इस समय तक भारतवासी मिथ्या विश्वासों की जड़ता तथा अपने गौरवपूर्ण अतीत के प्रति अज्ञान के जाल में फंस चुके थे।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

ग्रन्थ	लेखक
१ महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित्र	देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय।
२ दयानन्द चरित	देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय
३ आदर्श सुधारक दयानन्द	,,
४ श्री मद्दयानन्द प्रकाश	सत्यानन्द सरस्वती
५ सत्यार्थ प्रकाश	दयानन्द सरस्वती
६ संस्कार विधि	,,
७ ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका	,,
८ वेदभाष्य प्रणाली को दयानन्द सरस्वती के देन	(शोध प्रबन्ध) सु० कु० गुप्त
९ राष्ट्रवादी दयानन्द	सत्यदेव विद्यालंकार
१० ऋषि दयानन्द का राष्ट्रवाद	भवानीलाल भारतीय
११ ऋषि दयानन्द और राजा राममोहन राय	,,
१२ ऋषि दयानन्द और अन्य भारतीय धर्माचार्य	,,
१३ हिन्दी भाषा और साहित्य को आर्य समाज की देन—	डा० लक्ष्मीनारायण गुप्त
१४ संस्कृत भाषा और साहित्य को आर्य समाज की देन	डा० भवानीलाल भारतीय
१५ दयानन्द दर्शन	चमूपति एम० ए०

अंग्रेजी ग्रंथ

१—Life of Dayanand Sarasvati By Harvilas Sarda

२ Luther of India By Dr. Sir Gokul Chand Narang.

३ Bankim, Tilak and Dayanand By Shri Arvinda

४ Dayanand, the man and his work By Shri Arvinda

५ Philosophy of Dayanand By Pt. Gangaprasad Upadhyaya

६ Swami Dayanand's contribution to Hindu Solidarity Upadhyaya

७ Swami Dayanand on the formation and function of the state Ganga Prasad Upadhyaya

८ Landmarks of Swami Dayanand's teachings Ganga Pd. Upadhyaya

९ A Critical study of the Philosophy of Dayanand By Dr. S. Prakash

१० The Torch Bearer By Sadhu T. L. Vaswami M. A.

११ Dayanand : A study in Hindusm By Principal Bahadurmal

१२ Dayanand commemoration Volume By Harvilas Sarda

१३ The Ten commandments of Dayanand By Pt. Chamupati

१४ Shankar and Dayanand By Harvilas Sarda

१५ Immortal Saying of Dayanand By Pt. Vishwanath Shastri

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ओ३म्

महर्षि दयानन्द की देन

६

श्री सुमेधामित्र,
वेद महाविद्यालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार

१—अवतरण

यदा यदा ही धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानंसृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

उपरोक्त उद्धरण का भाव यह है कि जब २ धर्मका ह्रास होने लगता है, अधर्म की वृद्धि होती है तब २ कोई न कोई महापुरुष धार्मिक सज्जन पुरुषो की रक्षा, दुष्टों के विनाश और धर्म की पुनः स्थापना के लिये इस पवित्र वसुन्धरा को अपने अवतरण द्वारा अलंकृत करते हैं। जिस समय महर्षि दयानन्द भारत के रंगमञ्च पर आये, उस समय इस देश की ऐसी ही दुरवस्था थी। धर्म का स्थान कुरीतियों ने ले लिया था। ऋषि परम्परा समाप्त हो चुकी थी। चारों ओर दम्भी और पाखण्डियों का बोलबाला था। वेद के स्थान में भ्रष्ट ग्रन्थों का सर्वत्र प्रचार जोरों पर था। वैदिक धर्म एक पुरानी जीर्ण शीर्ण खण्डहर में अपने अज्ञात उद्धारक की प्रतीक्षा में आँसू बहा रहा था। ऐसे ही समय में पश्चिमी भारत में एक महान तेज का प्रादुर्भाव हुआ। उस तेज ने जिस प्रकार मरीचिमाली सूर्य अपनी प्रखर रश्मियों से अन्धकार को नष्ट भ्रष्ट कर देता है, उसी प्रकार समस्त मतमतान्तर रूपी अज्ञानान्धकार को दूर करके सर्वत्र वेदज्ञान रूप अपने प्रचण्ड ज्योति से आलोक प्रदान किया।

२—देन

प्रत्येक महापुरुष संसार को कुछ न कुछ महत्वपूर्ण देन देता है। इस रूप में संसार उनका सदा ऋणी रहता है। जिस समय समाज को जिस तत्त्व की आवश्यकता होती है। महापुरुष उसीके अनुसार समाज में क्रान्ति लाता है। उस क्रान्ति सेसमाज का नये सिरे से पुनर्निर्माण होता है। उनके प्रत्येक क्रिया कलापों से संसार कुछ न कुछ ग्रहण करता ही रहता है। उनका जीवन लोकोत्तर होता है। जब सम्पूर्ण जगत् निद्रा से अभिभूत होता है तब भी वह जागता रहता है। वह सच्चे अर्थों में राष्ट्र, जाति समाज तथा मानवता का प्रहरी होता है। जब अन्य लोग मैदान छोड़कर वहाँ से पलायन कर जाते हैं। तब भी वह अत्यन्त निर्भीक होकर सिंह की भाँति डटा रहता है। वह परिस्थितियों से घबराता नहीं है। परिस्थिति उसकी दासी हो जाती है। दूसरे लोग परिस्थिति से घबराते हैं। उसके समक्ष आत्मसमर्पण कर देते हैं और उसीके अनुसार अपने में परिवर्तन करते हैं। पर महापुरुष

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अपने परिस्थितियों के अनुरूप बना लेते हैं। परिस्थितियों का वह अनुगमन नहीं करता है। परिस्थितियाँ ही उनका अनुगमम करने लग जाती है।

उनका साधारण से साधारण कार्य भी जन सामान्य से भिन्न होता है, जबकि वह उसीका एक अंग होता है। उनके प्रत्येक आचरण से जनता शिक्षा ग्रहण करती है। उनकी कर्म में आसक्ति नहीं होती है। समाज को कर्म में प्रवृत्त कराने के लिये ही वे कर्म करते हैं क्योंकि उनका कर्म लोगों के लिये प्रमाण होता है। मनुष्य उन्हींका अनुसरण करता है। इसी बात को गीता में महर्षि वेदव्यासजी ने योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण के मुख से इस प्रकार कहलाया है—

'यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तद् देवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनु वर्तते॥

गीता ३।२१।

जीवन काल में तो महापुरुष सत्प्रयत्न तथा सदुपदेशों द्वारा महान् उपकार करते ही हैं। अनन्त की ओर चले जाने पर भी वे समाज राष्ट्र तथा सम्पूर्ण जगत् को सतत् आलोक प्रदान करते रहते हैं। वास्तव में वे मरते नहीं है। भौतिक शरीर का त्याग वे भले ही कर देते हैं। अपने पुण्य कर्मों से वे सदा जीवित रहते हैं। उनका नाम अमर हो जाता है। दूरदर्शी युग पुरुष महर्षि दयानन्द भौतिक शरीर से आज इस वसुन्धरा को भले ही शोभायमान नहीं कर रहे हैं, परन्तु उनका यशोमय दिव्य शरीर आज ही हमारे मध्य विराजमान है। उनकी गुणगरिमा प्रचण्ड सूर्य की प्रखर रश्मियों की भाँति चारो ओर फैल रही है। वह ज्योति किसी एक समूह, जाति, समुदाय या एक राष्ट्र का ही महत्त्व नहीं है। उसके लिये, गरीब धनी, काला, गोरा का कोई भेद नहीं है। वह ज्योति सम्पूर्ण जगत में देदीप्यमान हो रही है। कोई दूसरी ज्योति उसके समक्ष ठहर नहीं सकती। विरोधी शक्तियों को वह पूर्णतया भस्मीभूत कर देती है। वह कभी बुझ नहीं सकती। वह प्रकाश प्रोज्वल तथा चिरस्थायी है। उस प्रकाश ने महर्षि को प्रत्येक जनमानस में पहुंचा दिया है। सारा जगत् महर्षि के गुणों का गान कर रहा है। महर्षि की देन से विविध चेष्टाशील प्राणियों से परिपूर्ण जगत् अनेक प्रकार से अपने लक्ष्य की ओर बढ़ रहा है। अनेक क्रान्तियों तथा विचारों का समन्वय-सा कर रहा है। महर्षि का गौरव महान् है। उनकी महती महिमा को सब कोई जान भी नहीं सकते। सच्चा रत्न पारखी ही उसे परख सकता है। महान प्रयास से ही उनकी महिमा जानी जा सकती है। भारतवर्ष में बहुत से महापुरुषों ने पदार्पण कर अपनी महती देन देकर उसे उपकृत किया है। उन सभी महापुरुषों का भारतवर्ष ऋणी है। महर्षि दयानन्द का ऋण इस देश पर सबसे अधिक है। क्योंकि उन्होंने जो देन दी है। वह पाँच हजार वर्षों से आजतक किसी ने नहीं दी है।

३—वेद की देन

वेद मानव जाति का सबसे प्राचीन पवित्र और महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। वह सब विद्याओं तथा ज्ञान विज्ञान का आकार है। परमेश्वर से लेकर तृण तक सभी छोटे बड़े पदार्थों का इसमें विवेचन किया गया है। परम कारुणिक भक्तवत्सल परम पिता परमेश्वर प्राणी मात्र के कल्याण की कामना से सृष्टि के प्रारम्भ में अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा नामक चार महर्षियों को चारों वेद का ज्ञान दिया। उन पवित्रात्मा तपःपूत ऋषियों ने अन्य ऋषियों को उनका ज्ञान कराया। गुरु शिष्य परम्परा उत्तरवर्ती कालों में इसका प्रचार हुआ। इसका ऋग्वेद के दशम मण्डल के एकहत्तर सूक्त में इस प्रकार वर्णन किया है—

'बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रे यत्प्रैरतं मान धेयंदधानाः। यदेषां श्रेष्ठ यदरिप्रमासीत् प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः॥ यज्ञेन वाचं पदवीयमायन् तामन्व विन्दन् ऋषिषु प्रविष्टाम्। नामा-भृत्या व्यदधुः पुरुत्रा तां सप्तरेभा अभिसं न सन्ते" ऋ० १०.७१।१।३॥

इस प्रकार महाभरत काल से अबाध रूप से इस ज्ञान की परम्परा चलती रही है। समय-समय पर जब इसके प्रचार

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

में शिथिलता आने लगी तो ऋषियों ने पुनः अत्यन्त कष्ट सहन कर इस ज्ञान ज्योति के आलोक को सर्वत्र फैला दिया। महाभारत युद्ध के पश्चात वेद के पवित्र ज्ञान का ह्रास हो गया। क्योंकि महाभारतयुद्ध का परिणाम मानव जाति के लिये अच्छा नहीं हुआ। युद्ध के साथ बहुत से विद्या विज्ञानों की भी समाप्ति हो गई। ऋषियों की परम्परा पर भी उसका प्रभाव पड़ा। वेद ज्ञान के ह्रास के कारण भारतवर्ष की जो क्षति पहुँची उसकी पूर्ति सैकड़ों वर्षों में भी नहीं की जा सकती। सब लोग धर्म कर्म से हीन हो गये। अपने गौरव को भी सबों ने भुला दिया। जब अपनी मर्यादा को भूल चुके तब उनके अन्तस्तल में अज्ञान का प्रवेश होना ही था। फिर अपने को सम्भाल भी न सके। अनेक मतमतान्तरों की सृष्टि होने लगी। वर्ण व्यवस्था भंग हो गई। आश्रम व्यवस्था भी जाती रही। समाज अनेक जातियों में विभक्त हो गया। छूआछूत की अत्यन्त भयंकर महामारी ने भी समाज को दबोच लिया। सामाजिक संगठन पर इसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। एकता का सर्वथा अभाव हो गया। एकता के अभाव में समाज तथा देश अत्यन्त दुर्बल हो गया। अनेक कुरीतियाँ भी लोगों में घर कर गईं। परिणाम यह हुआ कि देश कई खण्डों में विभक्त हो गया। दूसरी विरोधी शक्तियों ने देश पर आक्रमण कर दिया। यहाँ का एकता हीन विछृङ्खलित समाज में आक्रमणकारियों का प्रतिरोध करने की शक्ति नहीं थी। परिणाम यह हुआ कि देश चिर काल के लिये दासता की अर्गला में जकड़ गया।

समाज में धर्म के नाम पर अनेक प्रकार के दुराचार होने लगे। वेदों का पठन पाठन लुप्त हो गया। यदि कहीं इसका पठन पाठन था भी तो मन्त्र पाठ तक सीमित रहा। मन्त्रार्थ का परिज्ञान बिल्कुल नहीं था। इसके सम्बन्ध में पण्डितों में यह धारणा व्याप्त हो गयी थी कि वेद के मन्त्रों कर कोई अर्थ नहीं होता। अर्थ की चेष्टा करने से पाप होता है। अतः यज्ञ-वेदी पर बैठकर पाठ कर लेना और उसे बोलकर आहुति दे देना ही पर्याप्त है। उस समय जो भाष्य थे भी वे पूर्ण रूपेण दूषित तथा वेदकी मर्यादा को घटाने में सहायक थे। मध्यकालीन भाष्यकारों ने जो अर्थ किया भी था। उससे वेद की प्रतिष्ठा पर बहुत धक्का पहुँचा। उनका अर्थ केवल यज्ञ परक था। अश्लीलता की कमी नहीं थी। सायण ने यज्ञपरक अर्थकरके अपनी प्रतिज्ञा को नहीं निभाया जो वेद की अपौरुषेयता तथा उसकी महिमा के सम्बन्ध में की थी। महीधर ने अश्लीलता की भरमार कर दी। इन भाष्यकारों ने यज्ञ में पशु बलि तथा मांस भक्षण का भी वर्णन मन्त्रार्थों में किया। जब कि मन्त्र के पदों का उससे कोई सम्बन्ध नहीं और शतपथ, निघण्टू, निरुक्तादि के व्याख्यान के सर्वथा विरुद्ध है। वृक्षादि जड़ वस्तुओं की पूजा का भी विधान इन भाष्यकारों ने अपने अर्थों में किया। इसका वेद पर बहुत बुरा प्रभाव हुआ। कतिपय पाश्चात्य विद्वान तथा उनके चरण चिह्नों पर चलनेवाले उच्छिष्ट भारतीयों ने भी यह राग अलापना प्रारम्भ कर दिया कि वेद गड़रिया के गीत है। इन भाष्यों के आधार पर अल्पबुद्धि पाश्चात्य लोग तथा उनके अनुयायी भारतीय ऐतिहासिक वेद में अनित्य इतिहास की कल्पना करने लगे।

महर्षि दयानन्द ने प्रबल युक्तियों और शास्त्र प्रमाण के आधार इन विचारधाराओं का खण्डन किया। उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि वेद गड़रिया के गीत नहीं सभी विद्या विज्ञानों का भण्डार है। उसका भी उन्होंने खण्डन किया कि वेद के मन्त्रों के कोई अर्थ नहीं होते। ऋषि ने यह भी सिद्ध किया कि वेद में अनित्य इतिहास नहीं है। मन्त्रों में जो व्यक्तियों के नाम के सदृश शब्द दिखाई देते हैं। वे किसी व्यक्ति विशेष के वाचक नहीं है। उन शब्दों का अर्थ होता है। मन्त्रों के त्रिविधार्थ का भी उन्होंने प्रतिपादन प्रकरणानुसार मन्त्रों का आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक अर्थ होते है। महर्षि के पूर्व के भाष्यकारों ने केवल यज्ञ परक अर्थ किया था। महर्षि ने अपने वेद भाष्य में तीनों प्रकार का अर्थ किया है। कहीं पर मन्त्र का एक कहीं दो तथा कहीं तीनों अर्थ होते हैं। उदाहरण स्वरूप

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इन्द्र शब्द का अर्थ ऐश्वर्यशाली है। भौतिक संसार में राजा सबसे अधिक ऐश्वर्यशाली होता है। अतः आधिभौतिक प्रकरण में इन्द्र शब्द का अर्थ राजा और वीर सेनापति होता है। आधिदैविक क्षेत्र में इन्द्र विद्युत और सूर्य का वाचक होता है। आध्यात्मिक क्षेत्र में इन्द्र शब्द से आत्मा और परमात्मा का ग्रहण होता है। इसी प्रकार अग्नि, वरुण, अश्विनौ, रुद्र, विष्णु, अदिति, नहुष, यदु, द्रुह्यु, अनु, तुर्वश, उर्वशी आदि शब्द भी यौगिक है। अनित्य इतिहासवाद का भी उन्होंने खण्डन किया। ऋषि के इस विचार तथा उनकी वेद भाष्य शैली का प्रभाव उत्तरवर्ती भाष्यकारों पर भी पड़ा। जो विद्वान आर्य समाजी नहीं हैं उन्होंने भी, अग्नि इन्द्र वरुण आदि शब्दों का ईश्वर परक अर्थ किया है। अन्य लोगों की भी यह धारणा जाती रही की वेद केवल कर्मकाण्ड परक है। अधिकांश लोगों में वेद सम्बन्धी अनुसन्धान तथा पठन-पाठन की ओर प्रवृत्ति हुई। जिन मन्त्रों का कभी स्वप्न में भी दर्शन या उच्चारण की कल्पना नहीं होती थी। आज बच्चे तक उनसे परिचित हैं।

४ धार्मिक देन

महर्षि दयानन्द के समय तक धर्म क्रम शब्द का अर्थ केवल एक मत या सम्प्रदाय तक सीमित था। सब लोग धर्म की वास्तविकता से दूर हो गये थे। जो कोई साधु या नेता हुआ, अपने नाम पर मत चला दिया। उसी का नाम धर्म रख दिया गया। व्यक्तियों के विचार तक धर्म को सीमित कर दिया गया। बहुत सी ऐसी चीजें धर्म के नाम पर प्रचलित हुई जो समाज को अधः पतन की ओर ले जाने में सहायक सिद्ध हुई। धर्म के ही नाम पर यज्ञों में गाय, घोड़े, बकरी, आदि पशुओं तथा मनुष्य तक की बलि दी जाने लगी। पति के मरने पर स्त्रियों को बलपूर्वक जीवित जला देने की प्रथा का भी प्रचलन प्रारम्भ हो गया। गर्भ हत्या तथा व्यभिचार भी धर्म की आड़ में होने लगे। कुछ लोगों ने धर्म का ठेकेदार बनकर जनता को लूटना खसोटना अपना परम कर्त्तव्य समझ लिया। हजार मत की सृष्टि हो गई। एक के विरोधी नौ सौ निन्यानवे थे। इन मतों का आधार कपोल कल्पित गाथाएँ तथा पुराणादि ग्रन्थ थे। वैदिक धर्म से दूर होकर लोगों ने पाखण्ड का आश्रय लिया। सर्वव्यापक, सर्वज्ञ सर्वनियन्ता, सर्वेश्वर एक मात्र देव परमपिता परमेश्वर को छोड़ कर बहुत से देवी देवताओं भूत, प्रेत और पिशाचों की पूजा होने लगी। महर्षि दयानन्द ने इस धाँधली तथा पाखण्ड के विरुद्ध प्रबल आन्दोलन किया। इस स्थिति से उन्होंने देश को मुक्त करके सत्य को खोज निकाला। पुराण, बाइबिल, कुरान आदि सभी मत मतान्तों के ग्रन्थों का उन्होंने अध्ययन किया। उन पर गम्भीरतापूर्वक विचार कर वेद के मन्तव्य पर जनता को चलने की सम्मति दी। मनु प्रतिपादित धृत्यादि दश लक्षण तथा पतञ्जलि द्वारा वर्णित पाँच यम और पाँच नियम को धर्म का प्रतीक बताया। वेद के द्वारा विहित सत्याचरण पर उन्होंने विशेष बल दिया। महर्षि ने समाज को यह बताया कि धर्म किसी जाति, समुदाय, देश विशेष या समय से बाधित नहीं होता है। उसका क्षेत्र व्यापक है। वेद प्रतिपादित सत्य नियम ही धर्म है। उसके विपरीत इतर अधर्म है। धर्म के नाम पर जितनी बुराइयाँ फैली हुई थी। उन सबका उन्होंने निराकरण किया। जड़ मूर्तिपूजा, जल स्थल तीर्थ में विश्वास इत्यादि अवैदिक मतों का निराकरण कर ऋषि ने जनता में नवीन चेतना ला दी। परिणाम यह हुआ कि लोगों ने धर्म के नाम पर प्रचलित रूढ़िवाद तथा बुराइयों को परे फेंक कर सत्य को ग्रहण किया।

५—राष्ट्रियता की देन

महर्षि दयानन्द के समय भारत में अंग्रेज शासन करते थे। वैसे तो सन् १८५७ में विदेशी राज्य के विरुद्ध देशभक्तों ने सशस्त्र क्रान्ति की। सेनापति तात्याटोपे और महारानी लक्ष्मी बाई ने भारत माता के यश में चार चान्द लगा दिये, परन्तु क्रान्ति की भावना जनमानस में पहुँचाने की

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आवश्यकता थी। कोई भी क्रान्ति तभी सफल हो सकती है जब कि उसे अधिकांश जनता का सहयोग प्राप्त हो। महर्षि दयानन्द इस बात को भलीभांति जानते थे। उन्होंने जहाँ लोगों को धार्मिक उपदेश देकर कृतार्थ किया। वहाँ राष्ट्रीयता का भी उपदेश दिया। राजाओं से मिलने का उनका यही अभिप्राय था कि सब देशी राजा विषयासक्ति और विलासिता आदि दुर्गुणों को त्याग कर सच्चरित्र बने। सब राजाओं की शक्ति संगठित होकर देशको स्वतन्त्रता दिलाने में समर्थ हो सकती है। इसी विचार को हृदय में स्थान देकर महर्षि ने अपना अमूल्य समय इस प्रयास में समर्पित किया। परन्तु यह देश का महान् दुर्भाग्य था कि तत्कालीन राजाओं ने उनके महत्वको नहीं समझा। महर्षि सुराज्य से स्वराज्य को अधिक महत्व देते थे। उनकी दृष्टि में विदेशी शासन अच्छा होने पर भी ठीक नहीं था। इसका आभास हमें सत्यार्थ प्रकाश की निम्न पंक्तियों से प्राप्त होता है — विदेशी राजा यदि पुत्र के समान प्रजा का पालन करते हों तो भी अच्छा नहीं है और स्वदेशी राजा दुष्ट हो तो भी अच्छा है। कितनी उच्चकोटि की राष्ट्रीयता की भावना उनमें विद्यमान थी। महर्षि के अतिरिक्त किसी नेता ने इस प्रकार का विचार जनता के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया। एक बार एक अंग्रेज ने जब उनसे निवेदन किया कि आप ब्रिटिश साम्राज्य के कल्याण के लिये परमेश्वर से प्रार्थना कर दिया करें। उनका उत्तर यही था कि भारत से ब्रिटिश साम्राज्य की समाप्ति के लिये तो मैं प्रतिदिन प्रार्थना कर सकता हूँ, परन्तु उसके कल्याण के लिए कभी नहीं कर सकता। सत्यार्थ प्रकाशादि ग्रन्थों में उन नैतिक नियमों तथा कार्यों के पालन का निर्देश किया है। जो एक महान राष्ट्र भक्त के लिए अत्यन्त आवश्यक है। श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा को देश की स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लक्ष्य से सशस्त्र क्रान्ति की भूमिका तैयार करने के लिए उन्होंने ही इङ्गलैण्ड भेजा था। सत्यार्थ प्रकाश का छठा सम्मुल्लास पूर्ण रूप से राजनीतिक विचार प्रदान करता है। आर्याभिविनय आदि ग्रन्थों में भी स्वराज्य विषय ऋषि उदात्त भावनाओं का दर्शन होता है। ऋषि के विचारों से प्रभावित होकर स्वाधीनता संग्राम में उनके अनुयायी आर्यों ने न केवल सत्याग्रही के रूप में भाग लिया अपितु सरदार अजित सिंह, सरदार भगत सिंह, सरदार करतार सिंह, भाई परमानन्द, राम प्रसाद बिस्मिल, चन्द्रशेखर आजाद आदि नेताओं ने क्रान्तिकारी के रूप में शक्तिप्रयोग द्वारा साम्राज्यवाद को दहला दिया। सरदार अजित सिंह ने इटली में आजाद हिन्दुस्तान लश्कर नामक सैन्यदल की स्थापना करके साम्राज्यवाद के एक महान आश्चर्य पैदा कर दिया। बाद में यही सैन्यदल स्वनाम धन्य नेताजी श्री सुभाष चन्द्र बोस की आजाद हिन्द सेना के रूप में परिणत हो गया। गाँधीजी की परम्परा में भी राष्ट्रिय जागृत का श्री गणेश महर्षि दयानन्द से ही प्रारम्भ हुआ। पूना के प्रसिद्ध लोक नेता न्यायाधीश श्री महादेव गोविन्द रानाडे ने महर्षि को गुरु रूप में प्राप्त कर उनसे राष्ट्रिय विचार ग्रहण किया। कालान्तर में महात्मा गोपाल कृष्ण गोखले ने रानाडे से राष्ट्रियता का पाठ सीखा। सविनय अवज्ञा और असहयोग आन्दोलन के प्रर्वतक महात्मा गाँधी ने राष्ट्रियता का विचार श्री गोखले से प्राप्त किया। इस प्रकार महर्षि के उदात्त राष्ट्रिय विचार ने उत्तरवर्ती कालमें व्यापक रूप से देश में जागृति उत्पन्न की।

६ — राष्ट्रभाषा की देन

प्रत्येक देश में अपनी संस्कृति, वेश-भूषा, रहन सहन और भाषा होती है। तभी वह देश उन्नति के पथ पर अग्रसर हो सकता है। कोई भी राष्ट्र भाषा तभी बन सकती है, जब उसमें यह क्षमता हो कि वह जनमान में सरलता से स्थान पा सके। राष्ट्रभाषी उसका भलीभांति अपने कार्य में उपयोग कर सके। महर्षि दयानन्द ने गम्भीरता के इस बात पर विचार किया और उद्घोषणा की पूरे राष्ट्र की एक भाषा होनी चाहिए। यद्यपि मुसलमानों के शासनकाल में हिन्दी का विकास हो चुका था। कबीर, सूर, तुलसी आदि हिन्दी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

साहित्य के सितारे पैदा हो चुके थे। उन्होंने अपनी रचनायें हिन्दी में की वह प्रयोग कविता के क्षेत्र तक सीमित थी। महर्षि ने राष्ट्र भाषा के पद पर हिन्दी को आसीन किया। सर्वप्रथम महर्षि ने ही यह घोषणा की कि भारत की राष्ट्रभाषा होनी चाहिए और वह हिन्दी हो। उन्होंने अपने सभी ग्रन्थों की रचना हिन्दी में की। संस्कृति के उच्चकोटि के विद्वान तथा मातृभाषा गुजराती होते हुए भी जनमानस तक अपनी आवाज पहुँचाने के विचार भी हिन्दी में ही व्यक्त किया। वेद भाष्य जैसे उच्चकोटि के ग्रंथ का प्रणयन हिन्दी में किया। हिन्दी पर उनका विशेष अधिकार भी नहीं था। महर्षि द्वारा लगाया हुआ राष्ट्रभाषा का पौधा, अनेक झकोरों, आन्धी को सहता हुआ निरन्तर पुष्पित और पल्लवित हो रहा है। यद्यपि कतिपय स्वार्थी और देश द्रोही लोग इसके विरूद्ध षलयन्त्र रच कर इसके विकास में बाधा उपस्थित कर रहे हैं। परन्तु महर्षिका त्याग तप विफल नहीं हो सकता। उनके पावन पद चिह्नों पर चलने वाले आर्य जन हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाने तथा व्यापक रूप में उसका प्रचार करने के लिये दत्तचित हैं।

७— नारी जाति का उत्थन

यद्यपि प्राचीन काल में नारी का स्थान समाज में बहुत ऊँचा रहा है। शिक्षा आदि के क्षेत्र में पुरुष के समान उनका अधिकार माना जाता था। जहाँ वैदिक सूक्तों के द्रष्टा विश्वामित्र, गोतम और मधुच्छन्दा आदि ऋषि थे, वहाँ प्राचीन भारतीय नारियाँ भी पीछे नहीं थी। लोपामुद्रा और शती पौलोमी आदि कई नारियों वैदिक सूक्तों के अर्थों का साक्षात्कार किया था। इसके अतिरिक्त गार्गी, मैत्रीय, सुलभा, शाण्डिली और सुमना आदि नारियाँ ब्रह्मवादिनी थी। यज्ञादि कर्मों में नारी का स्थान इतना अधिक महत्वपूर्ण था कि उसके बिना यज्ञादि कर्म की पूर्ति नहीं हो सकती थी। भारत के प्रसिद्ध विधान निर्माता भगवान मनु ने तो उसी परिवार में सुख शान्ति का साम्राज्य माना है, जहाँ नारियाँ पूजी जाती है—"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता"। परन्तु मध्यकाल में जब वेदों का प्रचार विलुप्त हो गया। तब स्त्रियों की स्थिति में दयनीयता आ गई। मध्यवर्ती आचार्यों ने नारी जाति के साथ घोर अन्याय किया। उन्हें शिक्षा से वंचित कर दिया गया। उसे पुरुष की इच्छा पूर्ति का साधन मात्र समझा गया। यहाँ तक कि आचार्य शंकर जैसे ब्रह्मवादियों ने भी जो सबको ब्रह्म समझते थे, नारी जाति पर दया नहीं की। बल्कि उन्होंने उसे नरक का द्वार तक कह दिया। पुराणों में पदे-पदे उसकी निन्दा की गई। गोस्वामी तुलसी दास ने "ढोल गंवार शुद्र पशु नारी। ये सब ताड़ने के अधिकारी" तथा 'अवगुण आठ सदा उर रहही' कह कर इसकी प्रताड़ना की है। परन्तु सृष्टि का यह नियम है सदा दुःख की ही घड़ी नहीं रहती है। परमेश्वर ने महती अनुकम्पा करके इसकी सुध ली। उन्नीसवीं शताब्दी में एक अत्यन्त तेजस्वी तथा प्रतिभा सम्पन्न महापुरुष का प्रादुर्भाव हुआ। उन्होंने जब देखा की मातृशक्ति का इस प्रकार अपमान हो रहा है तब उनकी आत्मा व्यथित हो उठी। उन्होंने प्रबल युक्तियों तथा वेदादि शास्त्र के प्रमाणों द्वारा मध्यवर्ती आचार्यों तथा पुरानों के मत का खण्डन किया। उन्होंने नारी जाति को पुनः उसी पद पर आसीन किया। जो प्राचीन काल में प्राप्त था। ऋषि ने जहाँ बालकों को शिक्षा दीक्षा के लिये बल दिया है वहीं कन्याओं की शिक्षा के लिए भी विशेष बल दिया है। न केवल बालकों के लिये, विद्यालयों तथा गुरुकुलों की स्थापना पर जोर दिया, अपितु कन्याओं के लिए भी गुरुकुलों की स्थापना का प्रतिपादन किया। यह महर्षि की ही महती कृपा का फल है कि जहाँ नव भारत के युवक गुरुकुलों में सांगोपांग वेदों को पढ़कर स्नातक होते हैं। कन्यायें भी उक्त विद्यायें पढ़ स्नातिका होकर कार्य क्षेत्र में पदार्पण करती है। यद्यपि वर्तमान काल में सरकार ने स्त्री पुरुष का भेद भाव दूर कर स्त्री शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया है, परन्तु वर्तमान शिक्षा ने नारी को भूषित करने के स्थान पर दूषित कर दिया है। महर्षि दयानन्द ने

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जहाँ नारी जाति को शिक्षा दिलाने का प्रयास किया है, वहाँ उसके चारित्रिक विकास पर भी बल दिया है।

८—दलितोद्धार

यद्यपि आजकल सरकार दलित लोगों के उद्धार की बहुत डींग हाँकती है, परन्तु उसके निदान करने में सर्वथा असफल रही है। छूआछूत तथा जातिवाद मिटाना तो दूर रहा। उनके स्थान में एक अलग जाति का निर्माण ही हो गया और उसे लोग त्यागने को तैयार नहीं है। जिस विष को दूर करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। प्राचीन काल में समाज चार वर्णों में विभक्त था। वर्ण व्यवस्था का आधार गुण और कर्म था न कि जन्म। अपनी योग्यता तथा त्याग तप के बल पर भी ब्राह्मण बन सकता था, जो किसी ब्राह्मण के यहाँ उत्पन्न नहीं हुआ। परन्तु मध्यकाल में स्वार्थी लोगों ने वर्ण व्यवस्था जन्म के आधार पर निश्चित कर ली और मनुष्य की जीविका के आधार पर जातिवाद का बवेला खड़ा कर दिया। अपने को ब्राह्मण क्षत्रिय कहलाने वालों ने धर्म तथा सभी व्यवस्थाओं का ठेकेदार मान लिया। वैश्यों से भी इन्होंने समझौता करके अपने साथ उन्हें कर लिया। ये तीनों मिलकर शूद्रों तथा अन्य दलितों पर अत्याचार करने लगे। उनको अपवित्र और अछूत घोषित कर दिया। वे न तो कुएँ से जल ले सकते थे, न गाँव में बस सकते थे, न पढ़-लिख सकते थे। बल्कि उनके पढ़ने पर इतना कठिन प्रतिबन्ध लगा दिया कि अक्षर का ज्ञान करना भी उनके लिये अत्यन्त कठिन हो गया। उनके लिये निम्न दण्ड निर्धारित किया गया। यदि वेद मन्त्रों का श्रवण कर लेवें तो कान में सीसा चुनवा दिया जाय, उच्चारण करने पर जिह्वा का उच्छेद कर दिया जाय। यदि धारण कर लेवे तो अंग-प्रत्यंग का छेदन कर दिया जाय। यदि कोई उच्च वर्ण या जाति का व्यक्ति भूल से अथवा जानकर शूद्र तथा निम्न जाति के हाथ का अन्न या जल ग्रहण कर ले तो उसे समाज से बहिष्कृत कर दिया। मौलवी या ईसाई पादरियों की चरण छाया में उसे शरण मिलता था। उसे शुद्ध कर आत्मसात् करने की शक्ति समाज में नहीं थी। मुस्लिम तथा अंग्रेज शासकों के समय इस प्रकार के बहुत से हिन्दुओं को मुसलमान और ईसाई बना लिया गया। महर्षि दयानन्द ने वेदादि शास्त्रों के आधार तथा युक्ति द्वारा गुण कर्म के अनुसार वर्ण व्यवस्था का प्रतिपादन किया। उन्होंने छूआछूत तथा जातिवाद का घोर विरोध किया। हाँ मांसाहारियों के यहाँ का भोजन निरामिष भोजियों के लिये उनके द्वारा निषिद्ध घोषित किया गया। उन्होंने यह भी लोगों को बताया कि किसी कारणवश जो मुसलमान या ईसाई बन गये हैं। उन्हें शुद्ध करके अपने में आत्मसात् वेदादि शास्त्रों के अनुकूल है। महर्षि का यह विचार उनके स्वनाम धन्य शिष्य अमर हुतात्मा श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी के समय व्यापक रूप फलित हुआ।

९ शिक्षा की देन

जिस प्रकार शरीर की उन्नति के लिये शुद्ध, पवित्र तथा पौष्टिक भोजन की आवश्यकता होती है। उसी प्रकार आत्मिक तथा मानसिक उन्नति के लिये शिक्षा की अत्यन्त आवश्यकता होती है। शिक्षा के ही अनुसार मनुष्य के जीवन का निर्माण होता है। जैसी शिक्षा उसे मिलती है वैसा ही वह बनता है। बुरी शिक्षा मिलने पर मनुष्य बुरा बनता है तथा अच्छी शिक्षाप्राप्त होने पर मनुष्य श्रेष्ठ तथा सच्चरित्र बनता है। महर्षि के समय देश अंग्रेजों की दासता की बेड़ी में जकड़ा था। अंग्रेजों को भारतीयों के चरित्र निर्माण से आवश्यकता ही क्या थी। वे तो चाहते ही थे कि भारतीयों का चरित्र ऊँचा न उठने पावे। वे अपने पूर्वजों के रहन-सहन तथा प्राचीन गौरव को भूल जाय। इसकी पूर्ति के लिये यह आवश्यक था कि उन्हें ऐसी शिक्षा दी जाय कि वे अपने धर्म, संस्कृति तथा साहित्य आदि से घृणा करने लग जाय। पाश्चात्य सभ्यता, संस्कृति, साहित्य तथा विद्वानों के प्रति श्रद्धा की भावना जागृत हो। शरीर मात्र से भारतीय

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हो। वेश भूषा, रहन-सहन, शिक्षा-दीक्षा तथा विचार से पूरा अंग्रेज हो। लार्ड मैकाले ने यह योजना बनाकर यहाँ की शिक्षा पद्धति पर कुठाराघात किया। यहाँ की शिक्षा संस्था को बन्द कराकर पाश्चात्य शिक्षा का श्री गणेश हुआ। साम्राज्यवाद को इसमें आशा से अधिक सफलता प्राप्त हुई। ऐसे समय में महर्षि दयानन्द ने भारतीयों का ध्यान अपनी प्राचीन शिक्षा प्रणाली की ओर आकृष्ट किया। उन्होंने यह सिद्ध करके दिखला दिया कि भारतीय शिक्षा पद्धति ही मानव का निर्माण कर सकती है। इसके निमित्त ऋषि ने गुरुकुल शिक्षा प्रणाली पर बल दिया। जहाँ राजा तथा दरिद्र दोनों का पुत्र समान स्थिति में रहकर ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए विद्याध्ययन करे ऐसा विधान किया। गुरुकुल प्रणाली में जातिवाद छूत छात आदि का कोई भी स्थान नहीं है। गृह त्यागी होकर नगर के वातावरण से दूर रहकर ब्रह्मचारी गुरु के सान्निध्य में अध्ययन के साथ-साथ चरित्र निर्माण भी करता है। ब्रह्मचारी को भोजन सादा और विचार उच्च होता है। गुरुकुल वास में दूर देशीय सहपाठियों के साथ रहकर बन्धुत्व तथा सौहार्द्र की भावना अपने अन्दर पैदा करता है। निरन्तर दीर्घकाल तक प्रवास में रहने के कारण ब्रह्मचारी के मन में अपने पराये का भेद नहीं रह जाता है। वह सभी मनुष्य को अपना भाई तथा सुहृद समझता है। निरन्तर त्याग तप की साधना से तपे होने के कारण किसी के प्रतिपक्ष पात की भावना नहीं रहती है। पापी और स्वार्थी प्रवृत्ति उसके समक्ष टिक नहीं पाती। इस युग में इह पद्धति को पुनर्जीवन दिलाने का श्रेय देव दयानन्द को ही है। यद्यपि महर्षि के समय में गुरुकुलों की स्थापना न हो सकी। परन्तु ऋषि का दिव्य विचार जो अंकुर के रूप में पैदा हुआ प्रतिदिन वृद्धि की ओर अग्रसर होता गया। उनके शिष्य स्वामी श्रद्धानन्दजी और स्वामी ने कई गुरुकुलों की स्थापना की। आगे चलकर इन गुरुकुलों से पढ़कर निकले हुए स्नातकों ने धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक क्रान्ति में महान योगदान दिया। यद्यपि वर्तमान काल में गुरुकुल शिक्षा प्रणाली पहले की भाँति नहीं रही। फिर भी आजकल के अन्य शिक्षणालयों से तो अच्छा ही है। गुरुकुलों में पढ़े हुए छात्रों के मन में माता, पिता, गुरु, आचार्य, समाज तथा देश के प्रति भक्ति भावना तो रहती ही है।

१० शिक्षा पद्धति में आमूल परिवर्तन

महर्षि दयानन्द ने न केवल नवीन पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली का खण्डन गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का प्रतिपादन किया। अपितु पठनपाठन विधि में भी क्रान्ति की आवश्यकता अनुभव की। उस समय नवीन शिक्षण संस्थाओं में तो भारतीय संस्कृति तथा धर्म पर क्या मान दिया जाना था। जो संस्कृत विद्यालय तथा पाठशालाएँ थी। वहाँ भी संस्कृत वाङ्मय तथा भारतीय संस्कृति रो रही थी। गुरुलोग छात्रों को कौमुदी के सूत्र तथा वृत्ति कण्ठस्थ करा देने में ही अपने कर्त्तव्य की इति श्री समझ लेते थे। संस्कृति और धर्म के मूलमूत्र आधार वेद और दर्शन का कोई स्पर्श तक नहीं करता था। फक्किका रटने में ही छात्र अपना सारा जीवन खपा देते थे। महर्षि दयानन्द ने इस अवस्था में महान् परिवर्तन लाने की इच्छा से सिंहनाद किया। उन्होंने प्रबल युक्तियों और तर्कों द्वारा अनार्षग्रन्थों को पढ़ने से निषेध किया। ऋषि ने बताया कि आर्ष पाठ विधि द्वारा ही हम वेदों तक पहुँच सकते हैं। ऋषि प्रणीत ग्रन्थों का पढ़ना ऐसा है जैसे समुद्र में गोता लगाना और बहुमूल्य मोतियों का पाना, अनार्ष का पढ़ना ऐसा है, पहाड़ का खोदना और कौड़ी का लाभ होना। जब कि अनार्ष प्रद्धति से बारह वर्ष में केवल व्याकरण का भी भलीभांति ज्ञान नहीं हो पाता। है। आर्ष पाठ विधि से उससे बहुत अधिक ज्ञान तीन चार वर्षों में हो जाता है। बारह वर्ष में इस विधि से परिश्रमशील छात्र सांगोपांग वेदों को अधिगत कर सकता है? ऋषि की यह कोरी कल्पना नहीं है। उनका प्रत्यक्ष अनुभव है। गुरु विरजानन्दजी के यहाँ उन्होंने तीन वर्ष में सम्पूर्ण व्याकरण

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शास्त्र का अध्ययन पूरा कर लिया था। ऋषि के इस विचार को आगे चलकर और बल मिला। स्वर्गीय आचार्य श्री पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु और पूज्य श्री पं० युधिष्ठिरजी मीमांसक इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। आचार्य जिज्ञासुजी ने आर्ष पाठ विधि से चार वर्ष में व्याकरण शास्त्र का पूरा ज्ञान करा देने के सक्रियात्मक प्रयोग में महती सफलता प्राप्त की। यद्यपि आर्य समाज की शिक्षा संस्थाओं ने ऋषि के इस विचार की पूर्ति के लिये क्रियात्मक पग नहीं उठाया। परन्तु महर्षि की उदात्त भावना विचार की दीवार को भेदकर विद्वानों के अन्तस्तल में जा पहुँची। जो उनके अनुयायी नहीं हैं वे ऋषि की इस उदात्त भावना को पूरा करने के निमित्त प्राण-पण से अपने को निछावर कर दिए हैं।

११ निर्भीकता और आत्महुति की भावना

मनुष्य स्वभाव से ही एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में ही जन्म लेता है और समाज में ही उसका अन्त होता है। सामाजिक प्राणी होने के कारण उसे समाज में रहना पड़ता है। उसके विना वह जीवन यापन नहीं कर सकता है। जीवन सुचारू रूप से चलाने के लिये एक दूसरे की सहायता लेनी पड़ती है। समाज के प्रति उनका कुछ दायित्व तथा कर्त्तव्य भी होता है। उस दायित्व तथा कर्त्तव्य का पालन करने के लिये त्याग, तप और आत्माहुति की भी आवश्यकता होती है। देश के प्रत्येक नागरिक को ऐसी स्थिति आने पर देश की रक्षा के निमित्त आत्म-त्याग करने के लिये वाध्य होना पड़ता है। जिस राष्ट्र या समाज में आत्म-त्यागी हुतात्माओं का अभाव होता है। वह राष्ट्र या समाज अपनी स्वतन्त्रता तथा अस्तित्व को भी खो देता है। आत्म त्याग सब कोई नहीं कर सकता। इसके लिये निर्भीकता की अत्यन्त आवश्यकता होती है। निर्भीकता और आत्मत्याग का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। महर्षि दयानन्द के समय देश में आत्मत्यागी तथा निर्भीक लोगों की अत्यन्त आवश्यकता थी। साम्राज्यवाद के द्वारा दमन चक्र जोरों पर था। उसके समक्ष किसी को शिर उठाने का भी साहस नहीं होता था। सन् १९५७ की प्रथम क्रान्ति विफल कर दी गई थी। ऐसे गम्भीर अवसर पर महर्षि दयानन्दजी ने अपने देशवासियों के समक्ष पूर्व पुरुषों की गौरवपूर्ण गाथा, आत्मत्याग, कष्ट सहिष्णुता, तथा निर्भीकता का ज्वलन्त उदाहरण रखा। इससे देशवासियों में नवीन जागृति और चेतना आ गई। अपने पूर्वजों के त्याग, तप और वीरगाथा को सुनकर उनके खून खौल उठे, भुजाएँ फड़कने लगी। अपने प्राचीन गौरव तथा स्वतन्त्रता को प्राप्त करने के लिये वे आतुर हो उठे। फिर क्या था, भय को एकदम परे फेंक कर जननी जन्म भूमि की रक्षा के लिये महान से महान आत्म त्याग करने के लिये तत्पर हो गये। फिर जिस आत्म-त्याग और निर्भीकता की बढ़ देश में आई उसने साम्राज्य-वाद को जड़ से उखाड़ करके फेंककर दम लिया। आर्य-समाज की प्रगति तथा वैदिक धर्म के प्रचार के लिये आर्यों को अत्यन्त कठिनाइयों तथा विपत्तियों का सामना करना पड़ा। उनका सामना करने में आर्य वीरों ने जिस त्याग, तप, धर्म, आत्म संयम ओर निर्भीकता का परिचय दिया। सब महर्षि के ही तपस्या और त्याग का फल था।

१२ एकता की देन

महर्षि के समय देश में विविधता भयंकर रूप में विद्यमान थी। कई समाज सुधारकों ने उन विविधातओं को मिटाकर देश तथा समाज में एकता स्थापित करने का महान प्रयास किया। परन्तु उनका आदर्श, कार्यशैली तथा उनकी मान्यता का आधार भारतीय नहीं था। पाश्चात्य देशों के धोखा धड़ी पूर्ण नीति को वे श्रेष्ठ समझते थे। उनमें आत्म संयम, त्याग, तप तथा निर्भीकता का भी अभाव था। जिससे भारतीय जनता में वे ऐक्य स्थापित करने में सफल नहीं हुए। जातिवाद तथा जन्म पर आधारित वर्ण व्यवस्था दिन प्रतिदिन देश को गर्त में पहुँचा रही थी। इसका निदान भी सरल नहीं था। वर्तमान सरकार भी एकता

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्थापित करने का दम्भ भरती है, परन्तु अब तक वह एकता स्थापित करने में सर्वथा विफल रही है। किसी एक पक्षको सन्तुष्ट करने की नीति से एकता स्थापित नहीं हो सकती। अपनी संस्कृति, गौरव तथा प्राचीन मान्यताओं को सर्वथा तिलाञ्जलि दे देने से भी एकता की स्थापता सम्भव नहीं हो सकती। महर्षि दयानन्द ने वेदादि शास्त्रों का अवगाहन करके "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" का नारा लगा कर सम्पूर्ण संसार को एकता का सन्देश दिया। इस नारा का सम्बन्ध केवल भारत वर्ष से नहीं, विश्व से है। सब मतमतान्तों का निराकरण करके वैदिक धर्म पर चलने का आदेश दिया। विभिन्न कल्पित देवी देवता की उपावना को त्याग एक मात्र परम आराध्यदेव परमेश्वर की उपासना करने का उपदेश दिया। एक सभा, एक बिचार तथा समान रहन सहन पर बल दिया। जातिवाद का निराकरण कर गुण कर्मानुसार वर्ण व्यवस्था को प्रोत्साहन दिया। एक साथ विचार के निमित्त एक भाषा की आवश्यकता का अनुभव हिन्दी अपनाने पर जोर दिया। एकता के निमित्त एक शिक्षा पद्धति अत्यन्त आवश्यक है अतः एक शिक्षा पद्धति का प्रतिपादन किया। एकता के प्रतिपादक तथा महान योग दाता होते हुये भी उन्होंने किसी से गलत समझौता नहीं किया। एकता के निमित्त एक धर्म एक समान शिक्षा, समान रहन सहन, समान विचार, एक भाषा, एक संस्कृति तथा एक उपास्य का होना अत्यन्त आवश्यक है। महर्षि ने इन सब बातों पर बल दिया है।

१३ —उपसंहार

लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि सब मर जाते हैं, परन्तु वह मर कर भी नहीं मरता है जो देश, धर्म पर बलिदान हो जाते हैं। महर्षि दयानन्द ने न केवल अपने जीवन काल में अपने पवित्र देन से मानव जगत् को उपकृत किया, अपितु आज भी वे सतत अपनी देन से संसार को आलोकित कर रहे हैं। जीवन भर जो नास्तिक और निरीश्वरवादी थे वे भी उनकी अन्तिम यात्रा की घटना का अवलोकन कर महान् आस्तिक और ईश्वर भक्त बन गये। जो पहले संसार के भोग विलास और विषय वासना में रत थे उनको भी महर्षि के पर्यवसान ने झकझोर कर जगा दिया। जीवन पर्यन्त जो अत्यन्त विरोधी रहे उन्हें भी सद्मार्ग पर आनेको विवश होना पड़ा। जो ज्योति उदय काल में कम प्रखरता को धारण कर रही थी अस्त होने के पश्चात् उसकी प्रखरता और प्रचण्ड हो उठी। इसके अतिरिक्त कई अन्य बहुत से क्षेत्र हमसे प्रतिरोधित हो सकते हैं। जिसमें ऋषि की महती देन हो। महर्षि दयानन्द ने जो सार्वभौमि, सार्वजनिक तथा मानव मात्र के लिये ही नहीं प्राणी मात्र के कल्याण के निमित्त जो देन दी है, वह अन्य किसी ने नहीं दिया।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ओ३म्

महर्षि दयानन्द की देन

७

श्री चन्द्रप्रकाश आर्य, एम० ए०
वि० वै० शोध संस्थान—डा० साधु आश्रम, होशिआरपुर (पञ्जाब)

महर्षि दयानन्द को विविध विचारकों ने विभिन्न-विभिन्न दृष्टिकोणों से देखा है, यथा१—एक ईश्वर के उपासक, वेदोद्धारक, वेदवेत्ता, वेद भाष्यकार, भारतीय संस्कृति के पुनरुद्धारक, आर्य जाति के गौरव और उसके

१—महर्षि दयानन्द सरस्वती के समकालीन एवं पश्चाद्-वर्ती मनीषियों ने ऋतुराज वसन्त रूपी महर्षि के विचार, कार्य और प्रभाव को देख कर उनके प्रति जो अपनी श्रद्धा-ञ्जलियां या विचारञ्जलियां प्रस्तुत की हैं। वे महर्षि के उपर्युक्त रूपों को हृदयंगम कराने में विशेष स्थान रखती हैं। उन श्रद्धासुमनों में से प्रसंगानुकूल कुछ प्रस्तुत हैं :—

स्वामी दयानन्द महान् संस्कृतज्ञ और वेदज्ञाता थे, उन्होंने केवल एक ज्योतिर्मय निराकार परमेश्वर की आराधना करने की शिक्षा दी।

—सर सय्यद अहमद खाँ

इस बात का श्रेय दयानन्द को ही प्राप्त होगा कि उसने सर्वप्रथम वेदों की व्याख्या के लिये निर्दोष मार्ग का अव-लम्बन किया था। ऋषि दयानन्द ने उन द्वारों की कुञ्जी प्राप्त की जो युगों से बन्द थे और उन्होंने ढपे हुए झरने का मुख खोल दिया।

—योगी अरविन्द

स्वामी दयानन्द एक विद्वान् थे, उनके धर्म नियमों की नींव ईश्वरकृत वेदों पर थी, उन्हें वेद कण्ठस्थ थे, उनके मन और मस्तिष्क में वेदों ने घर किया हुआ था या, यह कहिये कि वेद उसके हस्तामलक थे।

—मैक्समूलर

जब लोग वेद के आध्यात्मिक अर्थ करने की ओर दृष्टि देते हैं तो सर्वप्रथम स्वामी दयानन्द सरस्वती का ही स्मरण हो आता है, जिन्होंने वेद का ज्ञानपरक अर्थ करके वेद की पूर्ण महत्ता को पुनः इस संसार में प्रख्यापित किया है।

—पं० गोपाल शास्त्री, सभापति पण्डित सभा, काशी

उन्होंने (स्वामी दयानन्द जी ने) आर्य संस्कृति की रक्षा की, वेदों का पुनरुद्धार और आर्ष शैली से प्रचार किया।

—सरदार वल्लभ भाई पटेल

स्वामी दयानन्द उन पुरुषों में से थे, जिन्होंने आधुनिक भारत का निर्माण किया और उसके आचार सम्बन्धी पुनरुत्थान तथा धार्मिक पुनरुद्धार के कारण हुए।

—नेताजी सुभाषचन्द्र बोस

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बोधक, राष्ट्रवादी, समाज सुधारक, नवजागरण के अग्रदूत, भारतीय स्वाधीनता के प्रथम मूलमन्त्र प्रदाता, राष्ट्रिय एकता की सूत्रमयी हिन्दी के प्रसारक, अछूतोद्धारक, अज्ञान-अन्ध-विश्वास-पाखण्डरूपी तम के निवारक, गोरक्षक, विधवा-अनाथ सहायक, नारी जाति के सम्मानी, तदधिकार-पोषक एवं सत्य और मानवता के पुजारी।

स्वामी दयानन्द ही पहिले व्यक्ति थे, जिन्होंने हिन्दुस्थान 'हिन्दुस्थानियों के लिये' का नारा लगाया।

श्रीमती एनी बीसेण्ट

स्वामी दयानन्द ने सर्वप्रथम भारत की स्वतन्त्रता का बीजारोपण किया। भारत के स्वातन्त्र्य इतिहास में सर्वप्रथम उनका नाम लिखा जायेगा।

—कैलाशनाथ काटजू, भूतपूर्व गृहमन्त्री, भारत

जब तक और लोग स्वराज्य का स्वप्न ले रहे थे स्वामी दयानन्द और आर्य समाज अपनी पुस्तकों द्वारा उसका प्रचार करने में लगे हुए थे।

—मौलाना हसरत मुहानी

दयानन्द ने अस्पृश्यता वा अछूतपन के अन्याय को सहन नहीं किया और उससे अधिक उनके व्यपहृत अधिकारों का उत्साही समर्थक दूसरा कोई भी नहीं हुआ। भारत में स्त्रियों की शोचनीय दशा को सुधारने में भी दयानन्द ने बड़ी उदारता व साहस से काम लिया।

महर्षि दयानन्द ने धर्म जागृति बढ़ाई, आर्य संस्कृति का, वेदाभ्यास का, संस्कृत भाषा का, हिन्दी भाषा का प्रेम बढ़ाया। अस्पृश्यता रूपी कलङ्क धोने का प्रयत्न किया।

—महात्मा गान्धी

महान् गुरु दयानन्द को मैं सादर प्रणाम करता हूँ।.... जिसकी घोषणा ने भारत को अविद्या, अन्धकार से मुक्ति दिला कर उसे सत्य और पवित्रता की जागृति दिलाने का शंखनाद किया।

—रवीन्द्रनाथ टैगोर

स्वामी दयानन्द की मृत्यु पर—ऐ खुदा क्या मंजूर न था हम वाहियात रश्मियात के फन्दे से मिज़ात पाएँ। ऐ खुदा क्या मंजूर न था कि हम आपस के निफाक को दूर करें। हम तुम से दूर हो गये थे, वह (दयानन्द) हमको तुम्हे से मिलाना चाहता था।

—वाजिद अली, मन्त्री अंजुमन इस्लामिया, लाहौर

स्वामी दयानन्द की सब से बड़ी विशेषता उनकी दूरदर्शिता थी। यह देख कर आश्चर्य होता है कि विदेशी शासन के विरोध में सक्रिय संघर्ष के समय जिन बातों पर महात्मा गाँधी ने अधिक बल दिया और उन्हें रचनात्मक कार्य की संज्ञा दी, प्रायः वे सभी काम स्वामी दयानन्द के कार्यक्रम में पचास वर्ष पूर्व शामिल थे। देश भर के लिये एक सामान्य भाषा की आवश्यकता स्वामी दयानन्द ने महसूस की और हिन्दी को ही राष्ट्र अथवा आर्य भाषा होने के योग्य माना।

इसके अतिरिक्त अछूतोद्धार, स्त्री शिक्षा, हाथ के बने कपड़े अथवा स्वदेशी का प्रयोग इत्यादि बातों पर उन्होंने काफी बल दिया और वे स्वयं भी जीवन में इन बातों पर पूर्ण अमल करते रहे।

उनकी कृतियों और उपदेशों से यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि वे विचारों से राष्ट्रवादी थे और विदेशी शासन स्थान पर स्वराज्य अथवा भारतीयों के ही राज्य का स्वप्न देखते थे। समाज सेवा के क्षेत्र में स्वामी दयानन्द और आर्य समाज ने जो कार्य किया उसके महत्त्व से इनकार नहीं किया जा सकता। उस कार्य के लिये और देश को जो उससे लाभ हुआ, उसके लिये हम सब उनके ऋणी हैं।

—डा० राजेन्द्र प्रसाद

स्वामी दयानन्द भारतीय संस्कृति, स्वतन्त्रता और क्रान्ति के अग्रदूत थे। वे बड़े दृढ़ व्यक्ति थे, उन जैसा क्रान्तिकारी नेता होना बिरले ही लोगों का काम होता है। उन्होंने ऐसे समय में देश का नेतृत्व किया, जिस समय बुराईयों की ओर संकेत करना भी कठिन काम था।....स्वामी जी ने देश में धार्मिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक क्षेत्रों में जो कार्य किया वह अभूतपूर्व है।

—लालबहादुर शास्त्री

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

महर्षि दयानन्द के इन समस्त रूपों और कार्यों के पीछे एक अलौकिक दृष्टि, एक विचारधारा, एक कसौटी कार्य करती हुई दिखाई देती है। उसीसे ही इन सब कार्यों को शक्ति, नवजीवन, चेतना, प्रकाश, प्रेरणा और स्वारस्य प्राप्त हुआ था। जिसको हम 'महर्षि दयानन्द की एक देन' कह सकते हैं। इसी प्रकाश-ज्ञान दायिनी विशेष देन के कारण महर्षि दयानन्द सब पथ-प्रदर्शकों से अधिक प्रिय प्रतीत होते हैं और वह है महर्षि की विचार क्रान्ति, विचार स्वातन्त्र्य या उन्हीं के शब्दों में इसको ऐसे कह सकते हैं :—

"सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना" चाहे वह सत्य किसी का भी क्यों न हो।

संसार के इतिहास में अनेक धर्म संस्थापक या धर्म सुधारक हुए। किसी भी महापुरुष, धर्माचार्य, गुरु की विचार पद्धति में इतने स्पष्ट शब्दों में ऐसी उल्लेखनीय विचार स्वतन्त्रता और उदारता का परिचय प्राप्त नहीं होता। आज के बौद्धिक स्वतन्त्रता के युग में महात्मा गौतम बुद्ध को विशेष विचार क्रान्ति का मन्त्र प्रदाता माना जाता है। यह मान्यता बहुत अंशों में सत्य भी है, परन्तु वहां भी इतने स्पष्ट शब्दों में महर्षि जैसी विचार स्वातन्त्र्य भावना दिखाई नहीं देती।

आज सर्वत्र समन्वय की प्रशंसा की जाती है कि वह एकमात्र सर्वविध भेद-भावों से उत्पन्न सब रोगों का उपचार है और राष्ट्र समाज को संगठित कर सब के सुख, प्रेम का आधार है। परन्तु समन्वयवाद का इतिहास इस बात का साक्षी है कि अनेक बार विभिन्न महापुरुषों ने विविध वर्गों में समन्वय कराने का सराहनीय प्रयास किया, किन्तु कुछ दिनों के पश्चात् एक पक्ष या वर्ग के स्वार्थ ने वह सारा बना-बनाया आशाओं का महल धूलिसात् कर दिया। समन्वय में प्रायः सत्य और न्याय की उपेक्षा कर एक पक्ष को तिरोहित कर दिया जाता है, जिसके कारण वह चिरस्थायी नहीं होता है। अतः वह आरम्भ में रमणीय और परिणाम में टेसू पुष्पवत् सिद्ध होता है और समन्वय प्रायः सबको खुश करने के लिये किया जाता है।

महर्षि ने अपनी प्रचार-यात्रा के पूर्वार्ध में दिल्ली दरबार के अवसर पर धार्मिक समन्वय का प्रयास किया था, परन्तु अन्त में इस परिणाम पर पहुँचे कि समन्वय केवल ऊपर से रमणीय और कुछ दिनों का अतिथि या मानमती (मान्तमति) का पिटारा ही होता है। अतः महर्षि ने हर क्षेत्र में हर प्रकार से समन्वय की अपेक्षा एकमात्र सत्य का पूर्ण समर्थन किया।

सत्य तो यह है कि गुणग्राहिता, निष्पक्षपात वृत्ति, उदारता, सत्यानुरागिता, निःस्वार्थता और सहिष्णुता के अभाव में समन्वय का सफल होना सर्वथा दुष्कर है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि भारत में चतुर्थ महानिर्वाचनों के बाद एकांगी भावनावश अनेक प्रान्तों में संयुक्त मन्त्रिमण्डल बने। उनमें से बंगाल, बिहार, हरियाणा और पञ्जाब में विफल हो चुके हैं तथा उत्तर प्रदेश में अन्तिम साँस ले रहा है। हाँ, महर्षि एकमात्र सत्य और न्याय पर आधारित समन्वय के पक्षपाती थे। इसी दृष्टिकोण को ही सत्यार्थप्रकाश की भूमिका और एकादश समुल्लास में सब धर्मों की सभा के विवेचन में प्रस्तुत किया है।

यद्यपि आजकल बहुत से विद्वान् प्रत्येक मत में हैं, वे पक्षपात छोड़ सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् जो जो बातें सब के अनुकूल सब में सत्य हैं, उनका ग्रहण औप जो एक दूसरे के विरुद्ध बातें उनका त्याग कर परस्पर प्रीति से बर्तें बर्तावें तो जगत् का पूर्ण हित हो। भूमिका—

मनुष्य जन्म का होना सत्यासत्य के निर्णय करने-कराने के लिए है न कि वाद-विवाद विरोध करने-कराने के लिये। इसी मतमतान्तर के विवाद से जगत् में जो जो अनिष्ट फल हुए, होते हैं और होंगे उनको पक्षपातरहित विद्वज्जन जान सकते हैं। जब तक इस मनुष्य जाति में परस्पर मिथ्या मतमतान्तर का विरुद्धवाद न छूटेगा तब तक अन्योऽन्य को आनन्द न होगा। यदि हम सब मनुष्य और विशेष विद्वज्जन ईर्ष्या, द्वेष छोड़ सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

और असत्य का त्याग करना कराना चाहें तो हमारे लिये यह बात असाध्य नहीं है। अनुभूमिका (१)

जिस बात में ये सहस्र एकमत हों, वह वेद मत ग्राह्य है१ और जिसमें परस्पर विरोध हो वह कल्पित, झूठा, अधर्म, अग्राह्य है।

जिज्ञासु—इसकी परीक्षा कैसे हो ?

आप्त—तू जा कर इन इन बातों को पूछ। सबकी एक सम्मति हो जायगी। तब वह उन सहस्रों की मण्डली के बीच में खड़ा होकर बोला कि सुनों सब लोगों! सत्य भाषण में धर्म है वा मिथ्या में ? सब एक स्वर होकर बोले कि सत्य भाषण में धर्म और असत्य भाषण में अधर्म है। वैसे ही विद्या पढ़ने में, ब्रह्मचर्य करने में, पूर्ण युवावस्था में विवाह, सत्संग, पुरुषार्थ, सत्य व्यवहार आदि में धर्म और अविद्या ग्रहण, ब्रह्मचर्य न करने, व्यभिचार करने, कुसंग, आलस्य, असत्य व्यवहार, छल, कपट, हिंसा, परहानि करने आदि कर्मों में [अधर्म], सबने एक मत हो के कहा कि विद्यादि के ग्रहण

१—इस वाक्य को पढ़कर मन में बारम्बार एक शङ्का उठती है कि सत्य के ग्रहण करने और असत्य के त्याग का अमर घोष करने वाला वेदों का इतना अधिक प्रबल पोषक क्यों है ? तथा कुछ विचारकों ने महर्षि दयानन्द और आर्य समाज की इस दृष्टि से विशेष आलोचना भी की है, उनकी दृष्टि में ये दोनों अन्य मतावलम्बियों की तरह वेद के अन्ध श्रद्धालु मात्र ही हैं तथा उनके लिये स्थान-स्थान पर आदर सहित इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग करना सर्वथा अनुचित है, यथा—वेदोक्त सब बातें विद्या के अविरुद्ध हैं, वेद विद्या विहीन लोगों की कल्पना सर्वथा सत्य क्योंकर हो सकती है, जब सर्व सत्य वेदों से प्राप्त होता है जिसमें असत्य कुछ भी नहीं तो उनका ग्रहण करने में शङ्का करनी अपनी और पराई हानिमात्र कर लेनी है। भला वेदादि सत्य शास्त्रों को माने बिना तुम अपने वचनों की सत्यता और असत्यता की परीक्षा और आर्य्यावर्त की उन्नति भी कभी कर सकते हो ? मनुष्यों में सत्यासत्य का यथावत् निर्णय करने वाली वेद विद्या, बिना कारण विद्या वेदों के अन्य कार्य विद्याओं की प्रवृत्ति मानना सर्वथा असम्भव है। निःसन्देह सर्वशङ्का निवारक वेद मत, वेदोक्त सत्यमत, वेदादि सत्यशास्त्र, वेद तो सब विद्याओं का भण्डार है, वेदों में (जैसा) कहा है उसीको मानो तभी तुम्हारा कल्याण होगा अन्यथा नहीं, सत्य तो वेदों के स्वीकार में गृहीत होता ही है आदि। शेष अग्रे —

इन शब्दों को सामान्य दृष्टि से देखने पर मन में बारम्बार एक विचार आता है कि क्या महर्षि दयानन्द के ये शब्द आग्रह युक्त सम्प्रदायवादियों के शब्दों के सदृश नहीं हैं। परन्तु जब महर्षि के समग्र दृष्टिकोण को समझते हैं तो शंका का समाधान हो जाता है कि महर्षि वेदों को सर्वज्ञ ईश्वर की कृति मानते थे, तभी तो लिखते हैं कि "सर्वज्ञ परमात्मा के वचन का सहाय हम अल्पज्ञों को अवश्य होना चाहिये।" महर्षि ने सत्य विद्या के प्रतिपादक होने से ही वेदों को इतनी मान्यता दी। इस दृष्टि से सत्यार्थप्रकाश का एक विवेचन सर्वथा पाठनीय और माननीय है। प्रश्न—वेद ईश्वर कृत है अन्य कृत नहीं, इसमें क्या प्रमाण है ? उत्तर—जैसा ईश्वर पवित्र, सर्वविद्यावित्, शुद्ध गुण कर्म स्वभाव, न्यायकारी, दयालु आदि गुणवाला है वैसा जिस पुस्तक में ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभभाव के अनुकुल कथन हो वह ईश्वर कृत अन्य नहीं, और जिसमें सृष्टिक्रम प्रत्यक्षादि प्रमाण आप्तों के और पवित्रात्मा के व्यवहार से विरुद्ध कथन न हो वह ईश्वरोक्त। जैसा ईश्वर का निर्भ्रम ज्ञान वैसा जिस पुस्तक में भ्रान्तरहित ज्ञान का प्रतिपादन हो वह ईश्वरोक्त। जैसा परमेश्वर है और जैसा सृष्टि क्रम रक्खा है वैसा ही ईश्वर, सृष्टिकार्य, कारण और जीव का प्रतिपादन जिसमें होवे वह परमेश्वरोक्त पुस्तक होता है और प्रत्यक्षादि प्रमाण विषयों से अविरुद्ध शुद्धात्म के स्वभाव के विरुद्ध न हो, (इस प्रकार वेद हैं) सप्तम समुल्लास॥ उपयुक्त कसौटी के अनुरूप होने और शंका पक्ष में उत्पन्न वचनों से भी यह सिद्ध होता है कि (विद्या, विज्ञान, अविरुद्ध, सत्ययुक्त होने से ही वेद) महर्षि को सर्वथा मान्य एवं प्राणों सम प्रिय थे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

में धर्म और अविद्यादि के ग्रहण में अधर्म। एकादश समुल्लास सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् साम्राज्य सार्वजनिक धर्म जिसको सदा से सब मानते आये, मानते हैं, और मानेंगे भी इसीलिये उसको सनातन नित्य धर्म कहते हैं कि जिसका विरोधी कोई भी न हो सके, यदि अविद्यायुक्त जन अथवा किसी मत वाले के भ्रमाये हुए जन जिसको अन्यथा जानें वा माने उसका स्वीकार कोई भी बुद्धिमान नहीं करते। किन्तु जिसको आप्त अर्थात् सत्यमानी, सत्यवादी, सत्यकारी, परोपकारक पक्षपात रहित विद्वान मानते हैं वही सबको मन्तव्य और जिसको नहीं मानते वह अमन्तव्य होने से प्रमाण के योग्य नहीं होता। स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश।

इन उद्धरणों से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि महर्षि किस प्रकार के समन्वय के पक्षपाती थे। आज प्रायः समन्वय के पक्ष में अविचार रमणीय युक्तियाँ देते हुये कहा जाता है कि दूसरो की बुराइयों को न देखते हुये तथा उनकी निन्दा या खन्डन न कर सब मतों में से अपनी बुद्धि के अनुसार सत्य को ग्रहण कर लेना चाहिये। इस दृष्टि को सामने रख कर ब्रह्म समाज के विषय में किया गया विवेचन सर्वथा पाठनीय है।

प्रश्न—हम कोई पुस्तक ईश्वर प्रणीत वा सर्वांश में सत्य नहीं मानते क्योंकि मनुष्यों की बुद्धि निर्भ्रान्त नहीं होती, इससे उनके बनाये ग्रन्थ सब भ्रान्त होते हैं। इसलिये हम सब से सत्य ग्रहण करते और असत्य को छोड़ देते हैं। चाहे वह सत्य वेद में, बाइबिल में वा कुरान में और अन्य किसी ग्रन्थ में हो हम को ग्राह्य है, असत्य किसी का नहीं।

उत्तर—जिस बात से तुम सत्याग्रही होना चाहते हो उसी बात से असत्याग्रही भी ठहरते हो क्योंकि जब सब मनुष्य भ्रान्तिरहित नहीं हो सकते तो तुम भी मनुष्य होने से भ्रान्ति सहित हो। जब भ्रान्ति सहित के वचन सर्वांश में प्रमाणिक नहीं होते तो तुम्हारे वचन का भी विश्वास नहीं होगा। फिर तुम्हारे वचन पर भी सर्वथा विश्वास न करना चाहिये। जब ऐसा है तो विषयुक्त अन्न के समान त्याग के योग्य है।.....तुम सर्वज्ञ नहीं जैसे कि अन्य मनुष्य सर्वज्ञ नहीं है। कदाचित् भ्रम से असत्य को ग्रहण कर सत्य को छोड़ भी देते होंगे। इसलिये सर्वज्ञ परमात्मा के वचन का सहाय हम अल्पज्ञों को अवश्य होना चाहिये। जब सब सत्य वेदों से प्राप्त होता है, जिसमें असत्य कुछ भी नहीं तो उनका ग्रहण करने में शंका करनी अपनी और पराई हानिमात्र कर लेनी है, इसी बात से तुमको आर्य्यावर्त्तीय लोग अपना नहीं समझते और तुम आर्य्यावर्त्त की उन्नति के कारण भी नहीं हो सके, क्योंकि तुम सब घर के भिक्षुक ठहरे हो। तुम ने समझा है कि इस बात से हम लोग अपना और पराया उपकार कर सकेंगे सो न कर सकोगे। जैसे किसी के दो ही माता पिता सब संसार के लड़कों का पालन करने लगें सबका पालना करना तो असम्भव है किन्तु उस बात से अपने लड़कों को भी नष्ट कर बैठें। वैसे ही आप लोगों की गति है। भला वेदादि सत्य शास्त्रों को माने बिना तुम अपने वचनों की सत्यता और असत्यता की परीक्षा और आर्य्यावर्त्त की उन्नति भी कभी कर सकते हो? एकादश समुल्लास

समन्वय के अभिलाषिनों को महर्षि के ये शब्द सर्वदा स्मरण रखने चाहिए "जो सर्वमान्य सत्य विषय है वे तो सब में एक से हैं, झगड़ा झूठे विषयों में होता है" अनुभूमिका (३) अतः समन्वय, प्रेम, सुख, और शान्ति का आधार महर्षि की दृष्टि में एक मात्र सत्य ही है। इसीलिये सदा महर्षि ने सत्य का समर्थन और प्रतिपादन किया और किसी भी परिस्थिति में झूठ का समर्थन या उसके साथ समझौता नहीं किया महर्षि के इस सिद्धान्त और समीक्षण में भी यही अलौकिक दृष्टि ही कार्य करती हुई दिखाई देती है।

इस "सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग" की दिव्य देन से अनुप्रेरित होकर महर्षि ने अपने अमर ग्रन्थ का नाम "सत्यार्थप्रकाश" रखा जो कि वस्तुतः ही सत्य का प्रकाश है जिसमें जिस भी विषय पर लेखनी उठाई, उसके सम्बन्ध

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तुलनात्मक सापेक्ष अध्ययन सहित तथ्यपूर्ण (१) और वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया।

इसके निर्माण के अभिप्राय को अभिव्यक्त करते हुए भूमिका में लिखा है—मेरा इस ग्रन्थ को बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य सत्य अर्थ का प्रकाश करना है, अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या प्रतिपादन करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है। वह सत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में सत्यका प्रकाश किया जाए। किन्तु जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा ही कहना लिखना और मानना सत्य (२) कहाता है। जो मनुष्य पक्षपाती होता है वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मत वाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है इस लिये वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता। इसीलिये विद्वान् आप्तों का भी यही मुख्य काम है कि उपदेश वा लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित कर दें, पश्चात् वे स्वयं अपना हिताहित समझ कर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थका परित्याग करके सदा आनन्द में रहें। मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने वाला है। तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है। परन्तु इस ग्रन्थ में ऐसी बात नहीं रक्खी है और न किसी का मन दुखाना वा किसी की हानि पर तात्पर्य है। किन्तु जिससे मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो, सत्यासत्य को मनुष्य लोग जानकर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें क्योंकि सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है।

इस ग्रन्थ में जो कहीं कहीं भूल चूक से अथवा शोधने तथा छापने में भूल चूक रह जाय उसको जानने जनाने पर जैसा सत्य होगा वैसा ही कर दिया जायगा। और जो कोई पक्षपात से अन्यथा शङ्का वा खण्डन मण्डन करेगा उस पर ध्यान न दिया जायगा। हाँ जो वह मनुष्य मात्र का हितैषी होकर कुछ जनावेगा उसको सत्य सत्य समझने पर उसका मत संगृहीत होगा। यद्यपि आजकल बहुत से विद्वान् प्रत्येक मतों में हैं वे पक्षपात छोड़ सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् जो जो बातें सबके अनुकूल सब में सत्य है उनका ग्रहण और जो एक दूसरे से विरुद्ध बातें हैं उनका त्याग कर परस्पर प्रीति से वर्त्तें वर्त्तावें तो जगत् का पूर्ण हित होवे।...ऐसी बातों को चित्त में धर के मैंने इस ग्रन्थ को रचा है। श्रोता वा पाठकगण भी प्रथम प्रेम से देख के इस ग्रन्थ का सत्य सत्य तात्पर्य जानकर यथेष्ट करें। इसमें यह अभिप्राय रक्खा गया है कि जो भी सब मतों में सत्य सत्य

१—सत्यार्थप्रकाश में वस्तुतः वैदिक आदर्श की स्थापना करने वाली ऐसी जीवनचर्या है, जिसे अपने जीवन की उन्नति चाहने वाला हर व्यक्ति सहज में अपना सकता है। महर्षि ने व्यक्तिगत और सामूहिक उन्नति का ऐसा कोई भी पहलू नहीं छोड़ा जिस पर उसमें प्रकाश नहीं डाला गया। ... मनुष्य, समाज और राष्ट्र के जीवन का उसमें वह नक्शा खींच दिया है। जिसको सामने रख कर अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों का सम्पादन किया जा सकता है। "राष्ट्रवादी दयानन्द, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार"

सत्यार्थ प्रकाश की उपयोगिता का मूल्यांकन इस बात के भी किया जा सकता है कि महर्षि ने पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न के प्रश्नों का उत्तर देते हुये "भ्रान्ति निवारण" में प्रसंगवश लिखा है "मैं अपने निश्चय और परीक्षा के अनुसार ऋग्वेद से लेके पूर्व मीमांसा पर्यन्त अनुमान से तीन हजार ग्रन्थों के लगभग मानता हूँ" इससे सरलता पूर्वक यह अनुमान किया जा सकता है कि प्रामाण्याप्रमाण्य समीक्षा के लिये कितने सहस्र ग्रन्थ पढ़े होंगे।

२—महर्षि की दृष्टि में सत्य की परिभाषा—सत्य जो पदार्थ जैसा हो उसको वैसा ही समझना, वैसा ही बोलना और वैसा ही करना, अर्थात् जैसा आत्मा में वैसा मन में, जैसा मन में वैसा वाणी में, जैसा वाणी में वैसा कर्म में वर्तना सत्य है। पञ्चम समुल्लास।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बातें हैं वे वे सब में अविरुद्ध होने से उनका स्वीकार जो जो मतमतान्तरों में मिथ्या बातें हैं उनका खण्डन किया है। इसमें यह भी अभिप्राय रक्खा है कि जब मत-मतान्तरों की गुप्त व प्रकट बुरी बातों का प्रकाश कर विद्वान् अविद्वान् सब साधारण मनुष्यों के सामने रक्खा है, जिससे सबसे सबका विचार होकर परस्पर प्रेमी होके एक सत्य मतस्थ होवें।

यद्यपि मैं आर्यावर्त्त देश में उत्पन्न हुआ और बसता हूँ तथापि जैसे इस देश के मत-मतान्तरों की झूठी बातों का पक्षपात न कर याथातथ्य प्रकाश करता हूँ वैसे ही दूसरे देशस्थ वा मतोन्नति वालों के साथ भी बर्तता हूँ, जैसा स्वदेश वालों के साथ मनुष्योन्नति के विषय में बर्त्तता हूँ वैसा विदेशियों के साथ भी तथा सब सज्जनों को भी बर्त्तना योग्य है। क्योंकि मैं भी जो किसी एक का पक्षपाती होता तो जैसा आजकल के स्वमत की स्तुति, मण्डन और प्रचार करते और दूसरे मत की निन्दा, हानि और बन्द करने में तत्पर होते हैं वैसे मैं भी होता, परन्तु ऐसी बातें मनुष्यपन से बाहर हैं।

अब आर्यावर्त्तियों के विषय में विशेष कर ११ ग्यारहवें समुल्लास तक लिखा है। इन समुल्लासों में जो कि सत्यमत प्रकाशित किया वेदोक्त होने से मुझको सर्वथा मन्तव्य है।

बहुत से हठी दुराग्रही मनुष्य होते हैं कि वक्ता के अभिप्राय विरुद्ध कल्पना किया करते हैं, विशेषकर मतवाले लोग। क्योंकि मत के आग्रह से उनकी बुद्धि अन्धकार में फँस के नष्ट हो जाती है। इसलिये जैसा मैं पुराण, जैनियों के ग्रंथ, बायबिल और कुरान को प्रथम ही बुरी दृष्टि से न देख कर उनमें से गुणों का प्रयत्न करता हूँ, वैसा सब को करना योग्य है। इन मतों के थोड़े-थोड़े ही दोष प्रकाशित किये हैं, जिनको देखकर मनुष्य लोग सत्यासत्य मत का निर्णय कर सकें और सत्य का ग्रहण तथा असत्य का त्याग करने-कराने में समर्थ होवें। क्योंकि एक मनुष्य जाति में बहका कर, विरुद्ध कराके, एक दूसरे के शत्रु बना, लड़ा मारना विद्वानों के स्वभाव से बहिः है। और इसी प्रकार पक्षपात न करके सत्यार्थ का प्रकाश करना मेरा वा सब महाशयों का मुख्य कर्तव्य काम है। सर्वात्मा सर्वान्तर्यामी सच्चिदानन्द परमात्मा अपनी कृपा से इस आशय को विस्तृत और चिरस्थायी करे। भूमिका है।

विद्वानों का यही काम है कि सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करके परम आनन्दित होते हैं वे ही गुण ग्राहक पुरुष विद्वान होकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप फलों को प्राप्त होकर प्रसन्न रहते हैं। दशम समुल्लास ॥

पक्षपात छोड़कर इसको देखने से सत्यासत्य मत सबको विदित हो जायगा। पश्चात् सबको अपनी-अपनी समझ के अनुसार सत्य मत का ग्रहण करना और असत्य मत को छोड़ना सहज होगा। मेरा तात्पर्य किसी की हानि वा विरोध करने में नहीं किन्तु सत्यासत्य का निर्णय करने कराने का है। इसी प्रकार सब मनुष्यों को न्याय दृष्टि से वर्त्तना अति उचित है। मनुष्य जन्म का होना सत्यसत्य के निर्णय करने कराने के लिये है, न कि वाद-विवाद विरोध करने कराने के लिये। इसी मत-मतान्तर के विवाद से जगत् में जो-जो अनिष्ट फल हुए, होते हैं और होंगे उनको पक्षपात रहित विद्वज्जन जान सकते हैं। जब तक इस मनुष्य जाति में परस्पर मिथ्या मतमतान्तर का विरुद्ध वाद न छूटेगा तब तक अन्योन्य को आनन्द न होगा। यदि हम सब मनुष्य और विशेष विद्वज्जन ईर्ष्या द्वेष छोड़ सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना करना चाहे तो हमारे लिये यह बात असाध्य नहीं है। अनुभूमिका (१)

इस बारहवें (१२) समुल्लास में जो-जो जैनियों के मत के विषय में लिखा गया है सो-सो उनके ग्रन्थों के पते पूर्वक लिखा है इसमें जैनियों जैनी लोगों को बुरा न मानना चाहिये क्योंकि जो-जो हमने इनके मत विषय में लिखा है वह केवल सत्यासत्य के निर्णयार्थ है न कि विरोध वा हानि करने के अर्थ। इस लेख को जब जैनी बौद्ध वा अन्य लोग देखेंगे तब सबको सत्यासत्य के निर्णय में विचार और लेख

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

करने का समय मिलेगा और बोध भी होगा जब तक वादी प्रतिवादी होकर प्रीति से वाद वा लेख न किया जाय तब तक सत्यासत्य का निर्णय नहीं हो सकता। जब विद्वान् लोगों में सत्यासत्य का निश्चय नहीं होता तभी अविद्वानों को महा-अन्धकार में पड़कर बहुत दुःख उठाना पड़ता है। इसलिये सत्य के जय और असत्य के क्षय के अर्थ मित्रता से वाद वा लेख करना हमारी मनुष्य जाति का मुख्य कर्त्तव्य है। यदि ऐसा न हो तो मनुषों की उन्नति कभी न हो। अनुभूमिका (२)।

यह लेख केवल सत्य की वृद्धि और असत्य के ह्रास होने के लिये न किसी को दुःख देने वा हानि करने अथवा मिथ्या दोष लगाने के अर्थ। इससे यह प्रयोजन सिद्ध होगा कि मनुष्यों को धर्म विषयक ज्ञान बढ़कर यथायोग्य सत्याऽसत्य मत का और कर्तव्य कर्म सम्बन्धी विषय विदित होकर सत्य और कर्तव्य कर्म का स्वीकार, असत्य और अकर्तव्य कर्म का परित्याग करना सहजता से हो सकेगा। जो कोई पक्षपात रूप मानारूढ़ हो के देखते हैं, उनको न अपने और न पराये गुण-दोष विदित हो सकते हैं। मनुष्य का आत्मा यथायोग्य सत्यासत्य के निर्णय करने का सामर्थ्य रखता है जितना अपना पठित वा श्रुत है, उतना निश्चय कर सकता है। यदि एक मत वाले दूसरे मत वाले के विषयों को मानें और अन्य न जाने तो यथावत् संवाद नहीं हो सकता।

जो सर्वमान्य सत्य विषय है, वे तो सबमें एक से हैं. झगड़ा झूठे विषयों में होता है। अथवा एक सच्चा और दूसरा झूठा हो तो भी कुछ थोड़ा विवाद चलता है। यदि वादी प्रतिवादी सत्यासत्य निश्चय के लिये वाद प्रतिवाद करें तो अवश्य निश्चय हो जाय। अनुभूमिका (३)

जो कुरान अर्बी भाषा में है उसपर मौलवियों ने उर्दू में अर्थ लिखा है उस अर्थ का देवनागरी अक्षर और आर्य भाषान्तर कराके पश्चात् अर्बी के बड़े-बड़े विद्वानों से शुद्ध करवा के लिखा गया है, यदि कोई कहे कि यह अर्थ ठीक नहीं है तो उनको उचित है कि खण्डन करे पश्चात् इस विषय पर लिखे क्यों कि लेख केवल मनुष्यों की उन्नति और सत्यासत्य के निर्णय के लिये सब मतों के विषयों का थोड़ा-थोड़ा ज्ञान होवे इससे मनुष्यों को परस्पर विचार करने का समय मिले और एक दूसरे के दोषों का खण्डन कर गुणों का ग्रहण करें न किसी अन्य मत पर न इस मत पर झूठ-मूठ बुराई वा भलाई लगाने का प्रयोजन है, किन्तु जो-जो भलाई है वही भलाई और जो बुराई है वही बुराई सब को विदित होवे न कोई किसी पर झूठ चला सके और न सत्य को रोक सके और सत्यासत्य विषय प्रकाशित किये पर भी जिसकी इच्छा हो वह न माने वा माने किसी पर बलात्कार नहीं किया जाता और यही सज्जनों की रीति है कि अपने वा पराये दोषों को दोष और गुणों को गुण जानकर गुणों का ग्रहण और दोषों का त्याग करें और हठियों का हठ दुराग्रह न्यून करे करावें क्योंकि पक्षपात से क्या-क्या अनर्थ जगत् में न हुये और न होते हैं। सच तो यह है कि इस अनिश्चित क्षण भंगुर जीवन में पराई हानि कर के लाभ से स्वयं रिक्त रहना और अन्यों को रखना मनुष्यपन से बहिः है। इसमें कुछ विरुद्ध लिखा गया हो उसको सज्जन लोग विदित कर देंगे तत्पश्चात् जो उचित होगा तो माना जायगा क्योंकि यह लेख हठ दुराग्रह ईर्ष्या द्वेष, वाद-विवाद और विरोध घटाने के लिये किया है न कि इन को बढ़ाने का अर्थ क्योंकि एक दूसरे की हानि करने से पृथक रह परस्पर को लाभ पहुँचाना हमारा मुख्य कर्म है। ...विचार कर इष्ट का ग्रहण अनिष्ट का परित्याग किजिये। अनुभूमिका (४)

जो कुछ इसमें थोड़ा सा सत्य है वह वेदादि विद्या पुस्तकों के अनुकूल होने से जैसे मुझको ग्राह्य है वैसे अन्य भी मजहब के हठ और पक्षपात रहित विद्वानों और बुद्धिमानों को ग्राह्य है।....परमात्मा सब मनुष्यों पर कृपा करे कि वे सब से प्रीति, परस्पर मेल और एक दूसरे के सुख की उन्नति करने में प्रवृत्त हों। जैसे मैं अपना वा दूसरे मत मतान्तरों का दोष पक्षपात रहित होकर प्रकाशित करता हूँ, उसी प्रकार

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यदि सब विद्वान लोग करें को क्या कठिनता है कि परस्पर विरोध छूट मेल होकर आनन्द में एक मत हो सत्य की प्राप्ति सिद्ध हो। यह थोड़ा सा कुरान के विषय में लिखा, इसको बुद्धिमान धार्मिक लोग ग्रन्थकारके अभिप्राय को समझ लेवें। यदि कभी भ्रम से अन्यथा लिखा गया हो तो उसको शुद्ध कर लेवें। चतुर्दश समुल्लास

मैं अपना मन्तव्य उसीको जानता हूँ कि जो तीन काल में सबको एक सा मानने योग्य है। मेरा कोई नवीन कल्पना वा मतमतान्तर चलाने का लेश मात्र भी अभिप्राय नहीं है किन्तु जो सत्य है उसको मानना मनवाना और जो असत्य है उसको छोड़ना और छुड़वाना मुझ को अभीष्ट है, यदि मैं पक्षपात करता तो आर्यावर्त में प्रचरित मतों में से किसी एक मत का आग्रही होता किन्तु जो जो आर्य्यावर्त वा अन्य देशों में अधर्म युक्त चाल चलन है उनका स्वीकार और धर्मयुक्त बाते हैं उनका त्याग नहीं करता न करना चाहता हूँ क्योंकि ऐसा करना मनुष्य धर्म से बहिः है।

सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः।
येनक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम्।४।
न हि सत्यात् परो धर्मो नानृतात्पातकं परम्।
न हि सत्यात् परं ज्ञानं तस्मात् सत्यं समाचरेत्॥५॥

इन्हीं महाशयों के श्लोकों के अभिप्राय के अनुकूल सब को निश्चय रखना योग्य है।

जो जो बात सबके सामने माननीय है उनको मानता अर्थात् जैसे सत्य बोलना सबके सामने अच्छा और मिथ्या बोलना बुरा है ऐसे सिद्धान्तों को स्वीकार करता हूं, और जो मतमतान्तर के परस्पर विरुद्ध झगड़े हैं उनको मैं प्रसन्न नहीं करता, क्योंकि इन्हीं मतवालों ने अपने मतवालों में अपने मतों का प्रचार कर मनुष्यों को फंसा के परस्पर शत्रु बना दिये हैं। इस बात को काट सर्व सत्य का प्रचार कर, सबको ऐक्य मत में करा, द्वेष छुड़ा, परस्पर में दृढ़ प्रतीयुक्त कराके सब से सबको सुख लाभ पहुँचाने के लिये मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है।

इन विस्तृत उद्धरणों को देखने से यह प्रतीत होगा कि भूमिक, अनुभूमिकाओं और सम्पूर्ण ग्रन्थ में एक ही विचार धारा, एक अलौकिक दृष्टि कार्य करती हुई दृष्टिगोचर होती है। अतएव स्वमन्तव्यामन्तव्य और भूमिका की अन्तिम पंक्तियों में लिखा है – "सर्व सत्य का प्रचार कर...मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है।" "परमात्मा इस आशय को विस्तृत और चिर स्थायी करे।" इसी से ही प्रभावित और प्रेरित होकर इस ग्रन्थ का सृजन किया। इसी अलौकिक दृष्टि, क्रांतिकारी विचारधारा से अनुप्राणित होकर महर्षि ने जिस भी विषय पर लेखनी उठाई वहाँ सर्वत्र तत् तत् विषय सम्बन्धि असत्य-पक्ष का त्याग कर सत्यपक्ष का प्रबल समर्थन किया। इसका साक्षी सत्यार्थ प्रकाश का एक एक शब्द है।

महर्षि दयानन्द ने विविध मतमतान्तरों की मान्यताओं के सम्बन्ध में तुलनात्मक सापेक्ष अध्ययन पूर्वक समालोचना की। इस खण्डन-मण्डनमयी समालोचना में भी अपनी इस अलौकिक दृष्टि को अपने पराये के भेदभाव से ओझल नहीं किया, अपितु निष्पक्षपातपूर्वक सत्य असत्य के निर्णय के लिये दोनों पक्षों पर प्रकाश डाला, तथा विविध वर्गों के सत्य और गुणों की मुक्त कण्ठ से प्रसंसा की। इस दृष्टि से कुछ उद्धरण विशेष दर्शनीय हैं—

प्रश्न—ब्राह्म समाज और प्रार्थना समाज तो अच्छा है वा नहीं?

उत्तर—कुछ कुछ बातें अच्छी और बहुत सी बुरी हैं।

प्रश्न—ब्राह्म समाज और प्रार्थना समाज सबसे अच्छा है क्योंकि इसके नियम बहुत अच्छे हैं।

उत्तर—निमय सर्वांश में अच्छे नहीं क्योंकि वेदविद्या विहीन लोगों की कल्पना सर्वथा सत्य क्यों कर हो सकती है? जो कुछ ब्राह्म समाज और प्रार्थना समाजियों ने ईसाई मत में मिलने से थोड़े मनुष्यों को बचाया और कुछ मूर्ति पाषाणादि मूर्ति पूजा को हटाया अन्य जाल ग्रंथों के फन्दे से भी कुछ बचाये इत्यादि अच्छी बातें हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जो यूरोपियनों में बाल्यावस्था में विवाह न करना, लड़का लड़की को विद्या सुशिक्षा करना कराना, स्वयंवर विवाह होना. बुरे-बुरे आदमियों का उपदेश नहीं होता वे विद्वान होकर जिस किसी के पाखण्ड में नहीं फंसते जो कुछ करते हैं, वह सब परस्पर विचार और सभा से निश्चित करके करते हैं, अपनी स्वजाति की उन्नति के लिये तन मन धन व्यय करते-हैं, आलस्य को छोड़ उद्योग किया करते हैं। देखो! अपने देश के बने हुये जूते को आफिस और कहचरी में जाने देते हैं इस देशी जूते को नहीं। इतने से ही समझ लेओ कि अपने देश के बने जूतों का भी कितना मान प्रतिष्ठा करते हैं उतना भी अन्य देशस्थ मनुष्यों का नहीं करते। देखो! कुछ सौ वर्ष से ऊपर इस देश में आये यूरोपियनों को हुए और आज तक यह लोग मोटे कपड़े आदि पहिनते हैं जैसा कि स्वदेश में पहिरते थे परन्तु अपने देश का चाल चलन नहीं छोड़ा...और जो जिस काम पर रहता है उसको यथोचित करता है। आज्ञानुवर्ती बराबर रहते हैं। अपने देश वालों को व्यापार आदि में सहाय देते हैं. इत्यादि गुणों और अच्छे अच्छे कर्मों से उनकी उन्नति है।

नानक जी का आशाय तो अच्छा था। हाँ भाषा उस देश की जो कि ग्रामों की है उसे जानते थे।...यह सच है कि जिस समय नानक जी पंजाब में हुए थे उस समय पंजाब संस्कृति विद्या से सर्वथा रहित मुसलमानों से पीड़ित था। उस समय उन्होंने कुछ लोगों को बचाया। नानक जी ने कुछ भक्ति विशेष ईश्वर की लिखी थी उसे करते आते तो अच्छा।

इनमें गोविन्द सिंहजी शूरवीर हुए जो मुसलमानों ने उनके पुरुषाओं को बहुत सा दुःख दिया था उनसे वैर लेना चाहते थे।....इनके पञ्च मकार युद्ध के उपयोगी थे।...इसी लिये यह रीति गोविन्द सिंहजी ने अपनी बुद्धिमता से उस के लिये की थी।

इन सबने भोजन का बखेड़ा बहुत सा हटा दिया है जैसे इसको हटाना वैसे विषयासक्ति दुरभिमान को भी हटा कर वेद मत की उन्नति करें तो बहुत अच्छी बात है। एकादश समुल्लास।

जो जैनियों में उत्तम जन हैं उनसे सत्सङ्गादि करने में भी कोई दोष नहीं। जल छान के पीना और सूक्ष्म जीवों पर नाम मात्र दया करना, रात्रि को भोजन न करना ये तीन बातें अच्छी हैं। द्वादश समुल्लास।

इस पुस्तक में थोड़ी सी बात सत्य। आज कल बिशप पादरी आदि श्रेष्ठ। त्रयोदश समुल्लास।

यह बात तो अच्छी है। जो कुछ इसमें थोड़ा सा सत्य है वह वेदादि विद्या पुस्तकों के अनुकुल होने से जैसे मुझको ग्राह्य है वैसे अन्य भी मज़हब के हठ और प्रक्षपात रहित विद्वानों और बुद्धिमानों को भी ग्राह्य है। चर्तुदश स०।

आज तक के विज्ञान और वैज्ञानिकों के इतिहास की एक ही शिक्षा है कि परीक्षणों के आधार पर जो सत्य या तथ्य सिद्ध हो उसको सहर्ष स्वीकार कर पूर्वाग्रह को तिलाञ्जलि दे दी जाय अर्थात् परीक्षणों से निर्णीत तथ्य का प्रकाशन ही विज्ञान [वि=विशेष, निश्चित, तथ्यपूर्ण, अनुसन्धान सिद्ध ज्ञान] है तथा उसका ग्रहण करना ही विज्ञान के प्रति श्रद्धा, विश्वास, निष्ठा और प्रीति का परिचय देना है। विज्ञान और अनुसन्धान में (१) व्यवस्था, सुसम्बद्धता, तथ्यपूर्णता, मौलिकता और दुराग्रह शून्यता आदि गुण होते हैं।

---

१ भौतिक क्षेत्र में जो विज्ञान का महत्त्व है, वही साहित्यिक क्षेत्र में अनुसन्धान का है, पद्धति की समानता से दोनों शब्द पर्यायवाची भी प्रतीत होते हैं। वैज्ञानिक कार्य चार गुणों का होना आवश्यक है। १—व्यवस्था और सुसम्बद्धता। २—पर्यवेक्षण और प्रयोगों के आधार पर हो, केवल कल्पना का विस्तार न हो अर्थात् मौलिक चिन्तन हो। ३ शोध प्रबन्ध और विज्ञान में सत्य का वस्तु निष्ठ रूप से होना चाहिये न कि व्यक्ति निष्ठ। वस्तु के स्वरूप या तथ्यों को ही प्रमुखता दी जाये। ४—विज्ञान का कार्य है, तत्कालिक तथ्यों और सामग्री के आधार पर तत्कालिक अन्तिम निर्णय (सत्य) प्रकाशित कर देना। उसमें हठात्मक आग्रह न हो। कुछ वैज्ञानिक तथ्य केवल तात्कालिक होते हैं और कुछ सार्वकालिक।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

महर्षि के समग्र कार्य कलाप में यही वैज्ञानिक पद्धति कार्य करती हुई, हमें अपनी ओर आकर्षित करती है, इसी लिये ही उनके विचारों में अपूर्व सजीवता, नवीनता, उत्साह और यथार्थ्य अनुभव होता है।

भारत के मध्यकालीन इतिहास पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट होता है कि "यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मं वेद नेतरः" और न्याय दर्शन की तार्किक पद्धति को रखने वाली भारतीय जनता प्रत्येक गुरु के वचन को सत्य वचन महाराज!

वह अनेक परम्परागत तात्कालिक पद्धतियों, की झञ्झावत में भटक विदिशा में बही जा रही थी। इसी का ही तो परिणाम था कि गर्भस्थ या दो चार वर्ष के बच्चों का विवाह बन्धन में बान्धकर पुरोहित जहाँ बाल विवाह की प्रथा को "अष्ट वर्षा भवेद् गौरी नववर्षा चरोहिणी। दशवर्षा भवेत्कन्या तत ऊर्ध्वं रजस्वला॥१॥ माता चैव पिता तस्य ज्येष्ठो भ्राता तथैवच। त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम्॥२॥ इत्यादि प्रमाणों से शास्त्रानुमोदित सिद्ध करने में अहर्निश प्रयत्नशील थे।

—पाराशरी

वहाँ दूसरी ओर वृद्ध विवाहों के परिणाम स्वरूप आए दिन चढ़ती जवानियों की बढ़ती हुई विधवा प्रथा तथा विधवाओं के प्रति किया जाने वाला सती प्रथादि धार्मिक और सामाजिक दुर्व्यवहार मानवता का कलंक बन कर धर्म को अधर्म घोषित करने में तत्पर था। अक्षत योनि और अभिलाषिणी विधवाओं को शास्त्र के नाम पर पुनर्विवाह की अनुमति न देने से काला पहाड़ की घटनायें समाज की प्रगति में पहाड़ बन कर खड़ी हो गईं थीं या आन्तरिक भ्रष्टाचार, अनाचार का मार्ग निकाल कर भ्रूणहत्या और अनाथों की समस्या को समुपस्थित कर रही थी।

मातृ देवो भव, मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद, स्त्री ब्रह्मावभूविथ तथा यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता। यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रिया॥ मनु० ३, ५६ अर्थात् जहाँ नारी की पूजा, मान, सत्कार होता है, वहाँ दिव्य आत्माओं का वास या निर्माण होता है, अन्यथा सब क्रियायें निष्फल हो जाती हैं इत्यादि भारतीय संस्कृति की उज्ज्वल भावनाओं से भरा हुआ भारतीय समाज "स्त्री शूद्रौ नाधीयाताम्" या "ढोल गंवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी" की हवा से प्रभावित हो नारी शिक्षा के द्वार आवृत कर उसको मातृ शक्ति के मान, मर्यादा और यज्ञ सन्ध्या, वेदाध्ययनादि धार्मिक, सामाजिक अधिकारों से वंचित कर उसको केवल भोग विलास की सामग्री, पाकशाला की अधिष्ठात्री, बच्चों की जननी और सेविका एवं पैरों की जूती बना दुर्व्यवहार की बलिवेदी पर चढ़ा रहा था।

गुण कर्म मूलक वर्ण व्यवस्था को शास्त्र सम्मत जन्म मूलक मान धर्मध्वजी-प्रभावित भारतीय समाज ब्राह्मण-अब्राह्मण जन्म ऊँच-नीच के भावों से प्रभावित होकर जहाँ फूट के रोग और फल का शिकार हो रहा था वहाँ अपनी ही सेवा करने वाले व्यक्तियों को घृणा की दृष्टि से अस्पृश्य बना, सामाजिक सुविधाओं और अधिकारों से उनको दूर कर रहा था। इसके परिणाम स्वरूप वे सामाजिक कुएँ, नदियों, सड़कों और धार्मिक स्थानों और वस्तुओं के उपयोग से वंचित कर मनुष्य होते हुए भी पशुओं से बदतर जीवन व्यतीत करने के लिये विवश कर दिए गए थे, शिक्षा, सामाजिकता और प्रगति के अवसर की बात तो दूर रही। आश्चर्य तो यह है कि भारतीय स्मृतिशास्त्रों के प्रायश्चित्ताध्याय में विविध पापों और स्थितियों के निवारणार्थ अनेक प्रायश्चितों का विधान किया गया है, परन्तु उनमें भी अस्पृश्य समझे जाने वालों के किसी कारण विशेष से विधर्मियों के सम्पर्क में आ जाने वालों के लिये किसी प्रायश्चित का विधान नहीं है।

इस दृश्यादृश्य जगत् के निर्माता, पालक, व्यवस्थापक परमेश्वर का स्वरूप जहाँ जितने मुँह उतनी बातों के अनुसार बुद्धि तर्कशून्य, परस्पर विरोध और आश्चर्य जनक माना जा रहा था वहाँ उसके स्थान पर विष्णु, शंकर, गणेश, शिव, [illegible]

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सरस्वती, काली, दुर्गा आदि विविध देवी देवताओं की पृथक् पृथक् कल्पित प्रतिमाओं की विभिन्न विभिन्न मन्दिरों में प्राण प्रतिष्ठा की जा रही थी, तथा तत्सिद्धि के लिये वेदों को बहु देवतावाद का प्रतिपादक मान वेदादि के विविध मन्त्रों का तद् तद् देवता और नवग्रहों के पूजन में विनियोग कर धूप, दीप, नैवेद्य, पुष्प पत्रादि से अर्चन, पूजन होता था। यहीं तक ही नहीं अपितु सर्वव्यापक, सर्वरक्षक, सर्वज्ञ प्रभु के स्थान पर विविध वृक्षों, पशु-पक्षी-सर्पादि जन्तुओं और पाषण रूप मड़ी, मसान एवं कबरादि की पूजा प्रचलित थी और उनकी प्रसन्नता से अभिष्ट सिद्धि के लिये अनेक मूक प्राणियों की बलि के साथ मानव बलि से भी परहेज नहीं किया जाता था। जिसका शिकार होते होते स्वयं महर्षि एक बार मन्दिर की चार दिवारी फान्द और सारा दिन मीलों भाग कर बचे थे।

ब्राह्मण ग्रन्थों और श्रौत सूत्रों के वर्णनानुसार एवं आधार पर एक विशेष स्वर्गलोक की विचित्र, तर्क-बुद्धि विपरीत, असंगत कल्पना कर, उसकी प्राप्ति के लिये याज्ञिक शास्त्रों में वर्णित कर विविध यज्ञों का विस्तृत, जटिल विधि-विधान प्रतिपादित किया गया था। ये यज्ञ कामधेनु, स्वर्ग-प्रापक और दविमुक् देवता के प्रसादक माने जाते थे। इन ऊध्वर नामधारी यज्ञों में गो-अश्व-पुरुषमेध नाम को लेकर बलि के कार्य को वैदिक शास्त्र प्रतिपादित सिद्ध करना एक गौरव की बात थी, तथा सम्मोहन, मारण, उच्चाटन आदि उपचार और जादू टोने की प्रक्रियाएँ यज्ञों में अपना महत्व-पूर्ण स्थान बना चुकी थी। गृह्य सूत्र प्रोक्त विविध पर्व और संस्कार तान्त्रिक एवं वाममार्गियों के प्रभाव से प्रभावित हो, एकता, सामाजिकता, पवित्रता, शोधकता के साधन न बन केवल रूढ़ि का स्थान ले बैठे थे।

भारतीय संस्कृति की पवित्र धरोहर, साहित्य के मूलस्रोत ज्ञानियों के परम चक्षु, आर्यों के प्राण रुप आदि विद्या निधान वेद दर्शनों से ही लुप्त होते जा रहे थे, और उनके मन्त्रों का प्रयोजन केवल विविध देवताओं का स्तवन, आवाहन, आशीर्वाचन तथा याज्ञिक विनियोग ही रह गया था। किसी की दृष्टि में संस्कृत का प्रत्येक शब्द वेद था तो कहीं "मन्त्र ब्राह्मणयो र्वेदनामधेयम्" की मान्यता बलवती थी तथा वेदत्रयी का स्थान हर प्रकार से प्रस्थानत्रयी ले चुकी थी। कोई वेदों को केवल यज्ञीय कर्मकाण्ड के ग्रन्थ मानता था, तो कोई देवी देवताओं की स्तुति-प्रार्थना मन्त्रों का संग्रह कहता था, किसी की दृष्टि में सांसारिक ज्ञान से अस्पृक् आलौकिक ज्ञान-विज्ञान बोधक या गडरियों के गीत थे। तथा ये ऐतिहासिक अर्ध ऐतिहासिक, याज्ञिक पद्धतियों के आधार पर मन माने अर्थ कर अनुपयोगी बना दिए गये थे।

जब सारे धर्म धारणात् की भावना को छोड़ नैतिकता से अस्पृक् हो सम्प्रदाय बन, उसके एक अर्थ परम्परा को चरितार्थ करते हुए लकीर के फकीर होकर हर संस्कृति और गुरु प्रोक्त शब्द को सत्य वचन मान बिना विचारे करने में श्रेय समझते थे। तब सत्यानुरागी, सत्य पथ के पथिक महर्षि दयानन्द ने अपनी ऋषिप्रज्ञा से सारी स्थिति का तत्त्व दर्शन कर विज्ञान और बुद्धि संगत क्रान्तिकारी दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया। अपनी अलौकिक उद्घोषणा के अनुरूप नीर क्षीर विवेक करते हुए कहा कि युवावस्था में स्वस्थ युवक और युवति का गुण कर्मानुसार परस्पर की सहमति, वार्तालाप और साक्षात्कार के पश्चात् स्वयंवर विवाह होना चाहिये। महर्षि ने स्वयंवर विवाह की जिस युक्तियुक्त, सरल, प्रभावकारी पद्धति (१) का समर्थन किया है, वह देखते ही बनता है। क्या ही अच्छा हो आज का प्रगतिशील समाज उस ओर ध्यान दे।

---

१ लड़का के अधीन विवाह होना उत्तम है। जो माता पिता विवाह करना कभी विचारें तो भी लड़का लड़की की प्रसन्नता के बिना न होना चाहिए। विवाह में मुख्य प्रयोजन वर और कन्या है माता पिता का नहीं। जैसी स्वयंवर की रीति आर्य्यावर्त्त में परम्परा से चली आती है वही विवाह उत्तम है।

जब से यह ब्रह्मचर्य से विद्या का न पढ़ना, बाल्यावस्था में पराधीन अर्थात् माता पिता के अधीन विवाह होने लगा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बच्चे विवाह-उद्देश्य की पूर्ति के अयोग्य हैं, बच्चों का विवाह करना पनपते अंकुरों को मसलना एवं सामाजिक प्रगति के विनाश को निमन्त्रण देना है। वृद्ध विवाह का भी यही परिणाम है, तथा इस सामाजिकी दुर्व्यवहार की बलि बनी हुई विधवाओं को हठात् आजीवन वैधव्याग्नि में जलाना आन्तरिक कुरीतियों, दुराचारों को बढ़ावा देना है और अपने समाज की जड़ों को खोखला करना होगा। अतः अक्षत योनि विधवाओं का पुनर्विवाह कर देना चाहिये तथा क्षतयोनि यदि वंश, कुल की रक्षा के लिये संयम का पालन कर सकें तो बहुत अच्छा है अन्यथा नियोग नियम अपनाना चाहिये।

प्रत्येक की प्रगति का मूल कारण शिक्षा है, अतः समाज वा जाति नियम हो कि प्रत्येक बालक, बालिका को अनिवार्य शिक्षा दी जाय। जब तक माता शिक्षित न होगी तब तक सन्तानों का पूर्ण विकास दुष्कर और असम्भव है। अतः पुरुषों की अपेक्षा नारी शिक्षा को प्रमुख स्थान देना चाहिये। वेदाध्ययन, यज्ञ, संस्कार, सन्ध्या आदि धार्मिक और सामाजिक कर्त्तव्यों में नारी का पूर्ण अधिकार है। अतः उसको सहस्र समानता का अवसर मिलना चाहिए।

सब मानव मानवता के नाते सामाजिक समानता और सम्मान के अधिकारी हैं। वर्णव्यवस्था गुण कर्मणा स्वीकार्य है, यह जन्ममूलक वर्णव्यवस्था भारतीयों के लिये महान् कलंक है तथा वर्ण व्यवस्था नहीं मरण व्यवस्था है। यह जन्ममूलक वर्णव्यवस्था वेदादि शास्त्र विरुद्ध और केवल मिथ्या अभिमान, दम्भ एवं पाखण्ड की जननी है। कोई भी मानव जन्म की दृष्टि से अस्पृश्य कहलाने के योग्य नहीं तथा अपनी सेवा करने वाले व्यक्तियों को जीवन की सब सुविधाएं पारिवारिक या सामाजिक सदस्य के रूप में देनी चाहिए। ऋषि की दृष्टि में जिसको पढ़ाने-लिखाने और सिखाने के बाद भी कुछ न आए वह निर्बुद्धि और मूर्ख ही केवल शूद्र कहलाने का अधिकारी है।

इस संसार को बनाने वाला, पालक और नियामक एवं सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, ईश्वर ही है। जिसके गुण, कर्म और स्वभाव के कारण विष्णु, ब्रह्मा, वरुण, रुद्र, शिवादि अनेक नाम हैं, केवल उसी की ही भक्ति, पूजा, उपासना करनी चाहिए। उसके स्थान पर अन्य देवी-देवताओं, जन्तुओं और पदार्थों की कल्पना तथा अर्चना सर्वथा अवैदिक, तर्क-बुद्धि विरुद्ध होने से अनुचित है।१ ऐसा करना वस्तुतः ईश्वर

तब से क्रमशः आर्यावर्त्त देश की हानि होती चली आई है। इससे इस दुष्ट काम को छोड़ के सज्जन लोग पूर्वोक्त प्रकार से स्वयंवर विवाह किया करें। अध्यापक जिस जिस के साथ जिस जिस का विवाह होना योग्य समझें उस उस का पुरुष और कन्या का प्रतिबिम्ब (फोटोग्राफ) और इतिहास कन्या और वर के हाथ में देवें और कहें कि इसमें जो तुम्हारा अभिप्राय हो सो हमको विदित कर देना। जब दोनों का निश्चय परस्पर विवाह करने का हो जाय तब उन दोनों का समावर्तन एक ही समय में होवे। जो वे दोनों अध्यापकों के सामने विवाह करना चाहें तो वहाँ नहीं तो कन्या के माता पिता के घर में विवाह होना योग्य है। जब वे समक्ष हों, तब उन अध्यापकों वा कन्या के माता पितादि भद्र पुरुषों के सामने उन दोनों की आपस में बातचीत, शास्त्रार्थ कराना और कुछ गुप्त व्यवहार पूछें सो भी सभा में लिखके एक दूसरे के हाथ में देकर प्रश्नोत्तर कर लेवें।

१— चेतन स्वरूप परमात्मा की उपासना को छोड़कर जड़ की उपासना कभी न करे, क्योंकि उपासना अर्थात् सेवा किया हुआ पदार्थ हानि-लाभकारक और रक्षा करने हारा नहीं होता। इससे चित्तवान् समस्त जीवों को चेतन स्वरूप जगदीश्वर की उपासना करनी योग्य है अन्य जड़ादि गुण युक्त पदार्थ उपास्य नहीं।

हे मनुष्यो! जिस चेतन स्वरूप जगदीश्वर ने समस्त संसार को उत्पन्न किया है उसकी आराधना उपासना से सत्य विद्यायुक्त उत्तम बुद्धि को तुम लोग प्राप्त हो सकते हो, किन्तु इतर जड़ पदार्थ की आराधना नहीं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अविश्वास प्रकट करना है। ईश्वरका शुद्ध सत्य स्वरूप वेदादि शास्त्रों के आधार पर आर्य समाज के द्वितीय नियम में दर्शाया गया है, जो पूर्ण तर्क और बुद्धि संगत है।

अग्निहोत्र का मुख्य प्रयोजन जलवायु की शुद्धि है, जिनके शुद्ध होने से मानवों के शरीरों का समुचित विकास हो सकता है। जैसा कि महर्षि ने लिखा है—"अग्निहोत्रादि यज्ञों से वायु, वृष्टि, जल की शुद्धि द्वारा आरोग्य का होना उनसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि होती है।

मनुष्यों को इस प्रकार का यज्ञ करना चाहिये कि जिससे पूर्ण लक्ष्मी, सकल आयु, अन्न आदि पदार्थ, रोग नाश और सब सुखों का विस्तार हो उसको कभी नहीं छोड़ना चाहिए, क्योंकि उसके बिना वायु और वृष्टि जल तथा औषधियों की शुद्धि नहीं हो सकती और शुद्धि के बिना किसी प्राणी को अच्छी प्रकार सुख नहीं हो सकता। इसलिये ईश्वर ने यज्ञ करने की आज्ञा सब मनुष्यों को दी है।"

ब्राह्मण ग्रंथों और श्रौत सूत्रों की विविध जटिल याज्ञिक प्रक्रिया से स्थान पर वैदिक शास्त्रों से प्रतिपादित सरल, संक्षिप्त और व्यवहारगम्य पद्धति का निरूपण कर ब्रह्म-देव-पितृ-अतिथि और बलिवैश्वदेव नामधारी पञ्च महायज्ञों के प्रतिदिन अनुष्ठान का सविशेष समर्थन किया।

हे मनुष्यो! जो कभी देहधारी नहीं होता, जिसका कुछ भी परिमाण सीमा का कारण नहीं है, जिसकी आज्ञा पालन ही नाम स्मरण है, जो उपासना किया हुआ अपने उपासकों पर अनुग्रह करता है। वेदों के अनेक स्थानों में जिसका महत्त्व कहा गया है। जो नहीं मरता, न विकृत होता न नष्ट होता, उसीकी उपासना निरन्तर करो, जो इससे भिन्न की उपासना करोगे तो उस महान पाप से युक्त हुए आप लोग दुःख क्लेशों से नष्ट होगे। यजुर्वेद ३२, ३।

किसी स्थल विशेष में स्थित असामान्य स्वर्गलोक और यज्ञों से उसकी प्राप्ति को अवैदिक सिद्ध कर यज्ञीय पशुबलि को अवैदिक, निन्दनीय और घोर अत्याचार कहा। यज्ञ में पशुबलि से विविध दिव्यताओं की प्राप्ति का दावा करने वालों को महर्षि ने सबल शब्दों में कहा वे अपनी बलि से उसकी प्राप्ति क्यों नहीं करते? क्यों मूक प्राणियों की अपने स्वार्थ के लिये वेद के नाम पर बलि देते हो। गोमेध और अश्वमेधादि में प्राणियों के वध का अभिप्राय नहीं है, अपितु गो का अर्थ है इन्द्रिय, ज्ञान, सूर्य, किरण और पृथिवी अतः उसका यथोचित उपयोग ही गोमेध है। अश्व का यहाँ अर्थ है राष्ट्र और उसका सुप्रबन्ध और सुनिर्माण ही अश्वमेध कहाता है।

वेद के सम्बन्ध में महर्षि की यह सुनिश्चित धारणा थी कि मानव जाति के कल्याण के लिये ईश्वर ने सृष्टि के आरम्भ में अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा ऋषियों के हृदय में क्रमशः ऋग्यजुः साम और अथर्व वेद का प्रकाश किया। ये सूर्य, पृथिवी और वायुवत् मानव मात्र की सम्पत्ति है। जिनके शब्द यौगिक हैं अन्यथा वेदों में प्रकरणानुसार एक शब्द के अनेक अर्थ और विशेष्य विशेषण के रूप में आये हुए पर्यायवाची शब्दों का कोई समाधान नहीं हो सकेगा। यतोहि एक पर्यायवाची शब्द एक स्थल पर विशेष्य के साथ विशेषण रूप में प्राप्त होता है तो वही दूसरे स्थल पर उसी अर्थ में विशेष्य रूपेण भी प्राप्त होता है। अतएव वेदों में किसी जाति वर्ग का इतिहास नहीं है। वेदों में आर्य शब्द का नियम, व्रतपालक, श्रेष्ठ सज्जन तथा दस्यु, दास का सामाजिक नियमों, मर्यादाओं, व्यवस्थाओं का भंग करनेवाला, दुष्ट, दुर्जन ही अर्थ है। वे किसी विशेष जाति के वाचक शब्द नहीं हैं। क्योंकि वेदमन्त्रों में आये उनके विशेषण इस मत के पूर्ण समर्थक हैं तथा ऐसा माने बिना "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" आदि शब्दों का सुसंगत अर्थ दुष्कर है।

ऋग्, यजुः, साम और अथर्व संहिताएँ ही वेद हैं तथा ब्राह्मण वेदों के व्याख्यान होने से वेद पद वाच्य नहीं है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ये चार मूल संहिताएँ स्वतः प्रमाण और अन्य सब शाखा, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् और वेदाङ्ग आदि वेदानुकूल होने पर परतः प्रमाण की कोटि में आते हैं। वेद सर्वज्ञ, निर्भ्रान्त प्रभु की दिव्य वाणी होने से सब सत्य विद्याओं के पुस्तक, नित्य पुरुषकृतदोष (भ्रम, प्रमाद, लिप्सा, सीमित और मिथ्याज्ञान) से रहित हैं। अतः वेदों में बुद्धि एवं सृष्टिक्रम से विरुद्ध असम्भव बातें नहीं हैं, वे तो वैशेषिक दर्शनकार महर्षिकणाद के शब्दों में "बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे" ६,१,१ अर्थात् वेदों की वाक्यरचना और तत्गत ज्ञान सर्वथा बुद्धि-संगत है। वेदों में मानव व्यवहार की सिद्धि और उपकारार्थ देवगुणों से युक्त सूर्य, पृथिवी, वायु आदि तेंतीस देवों का वर्णन है, परन्तु देवों का देव होने से उपास्य केवल परमेश्वर ही है। अतः वेदों में बहुदेवतावाद का केवल ज्ञानार्थ ही वर्णन है तथा तदेवाग्निस्तदादित्यः...." यजुः ३२, २ इन्द्रं मित्रं....ऋग् १०, १०३, ४ आदि अनेक मन्त्रों में असंख्य नामों से एक परमेश्वर की ही उपासना का निर्देश है।

महर्षि ने वेदों के सत्य स्वरूप का प्रकाशन करने के लिये ब्राह्म, निरुक्त और व्याकरण आदि शास्त्रों के आधार पर प्राचीन पद्धत्यनुसार वैदिक शास्त्रानुमोदित, बुद्धिगम्य, वैज्ञानिक भाष्य किया। याज्ञिक, ऐतिहासिक, अर्ध ऐतिहासिक और भाव वैज्ञानिक आदि एकांगीण भाष्य पद्धतियों का युक्ति युक्त निराकरण कर वेदों को ज्ञान, कर्म, उपासना और विज्ञान विषयों के प्रतिपादक सिद्ध किया। क्योंकि नौका, विमान, तार, विद्युत्, वैद्यक शास्त्र और धर्म-कर्म में व्यवहृत पदार्थों के ज्ञान से युक्त होने के कारण ज्ञान, ज्ञानकाण्डोक्त पदार्थों की व्यावहारिक विधि का विधान और अस्त्र-शास्त्र चालन, राष्ट्र संरक्षण संवर्धन, शत्रु विमर्दन, गोपालन और अन्नोत्पादन प्रक्रिया के व्याख्याता होने से कर्म, एकमात्र ईश्वर की शुद्ध-सत्य उपासना पद्धति ज्ञापक होने से उपासना और ज्ञान काण्डोक्त विषयों के विशेष विवेचन एवं विश्लेषण पद्धति के निरूपक होने से वेद विज्ञान काण्ड के भी ग्रन्थ हैं। अतः मानवमात्र के कल्याण का पथ एकमात्र वेद प्रदर्शित पथ ही है, क्योंकि वे सब सत्य विद्याओं के पुस्तक हैं।

इस सत्त ग्रहण के उद्घोष की भावना के अनुसार श्री केशवचन्द्र सेन की प्रेरणा से प्रेरित होकर महर्षि दयानन्द ने हिन्दी को राष्ट्रिय एकता का साधन मान उसको राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन करने के लिये अपनी पाणी और लेखनी का व्यावहारिक माध्यम बनाया और इसकी पूर्णता एवं प्रचार-प्रसार के लिये एक आन्दोलनात्मक भावना को जन्म दे हस्ताक्षर अभियान समारम्भ किया। जबकि महर्षि की मातृभाषा गुजराती थी तथा महर्षि की प्रबल इच्छा और सर्व प्रयास था कि सब वैदिक धर्मी बनें। वेदों की भाषा संस्कृत है, पुनः उनका प्रसारक संस्कृत के स्थान पर किसी अन्य भाषा को प्रमुखता दे यह एक रहस्य ही है, जो कि महर्षि की इस देन में ही निगूढ़ है। उधर गोकरुणानिधि में धार्मिक पक्ष की अपेक्षा आर्थिक दृष्टि से गोरक्षा के महत्त्व का निरूपण कर, गोकृष्यादि रक्षिणी सभा, गोहत्या निरोधार्थ हस्ताक्षर आन्दोलन, रेवाड़ी में रचनात्मक गोशाला संस्थापन, वैज्ञानिक और भौतिक शिक्षा की प्राप्ति के लिये श्यामजी कृष्ण वर्मा को जर्मनी भेजना, विज्ञान और अनुसन्धान के आधार पर आर्ष ग्रंथों के पठन-पाठन का विधान आदि विविध कार्य महर्षि की अलौकिक दृष्टि, क्रान्तिकारी विचारधारा एवं इस उद्घोषणा के ही परिणाम कहे जा सकते हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

"सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना" महर्षि दयानन्द का यह उद्घोष हमें वेदकाल से ही घोषित होता हुआ मिलता है—

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः।
अत्रद्धामनृतेऽदधात् श्रद्धां सत्ये प्रजापतिः॥ यजु १९,७७

प्रगति, कल्याण, स्वच्छ स्वस्थ स्वाधीन वायुमण्डल में विचरण के अभिलाषियो! संसार के स्वामी ने देखभाल कर सत्य और असत्य को अलग अलग कर दिया है और उस प्रजापति ने अनृत=झूठ, छल, शास्त्र या विधान विरुद्ध, निन्दनीय, पाप, अन्धकार में अश्रद्धा=अविश्वास, घृणा, निवृत्ति, परहेज़ स्थापित किया है तथा सत्य=ऋत, यथार्थ, नियम, सचाई में श्रद्धा=विश्वास, निष्ठा, अनुराग, प्रेम को संजोया है। इसीलिये ही वेद का मन्ता सब नियमों के नियामक प्रभु से प्रार्थना करता है—

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।
इदहमनृतात् सत्यमुपैमि॥ यजुः १, ५

हे अग्निस्वरूप! व्रतों के स्वामीन्! मैं व्रत करना चाहता हूँ, वह कर सकूं और मेरा वह व्रत पूर्ण हो कि मैं [जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में] अनृत को छोड़ कर सत्य को प्राप्त करूँ।

महर्षि को वेद प्राणसम प्रिय थे, उनके प्रत्येक सिद्धान्त और धर्म नियम का आधार एक मात्र वेद थे। अतः वेद की इन भावनाओं से अनुप्राणित होकर महर्षि ने एक दिव्य देन के रूप में यह [सत्य के ग्रहण] उद्घोषणा की। जिस को हम महर्षि की एक बहुत बड़ी विशेषता कह सकते हैं। केवल सैद्धान्तिक रूप में ही नहीं अपितु उन्होंने अपने जीवन के हर व्यवहार में सर्वतोभावेन सत्य का पालन किया, और वे विषम से विषम विपदाओं में, महान् से महान् प्रलोभनों में एवं बहुविधभयों में भी सत्यपथ से विचलित नहीं हुए। यदि भाव को भर्तृहरि के शब्दों में कहें तो—

निन्दन्तु नीति निपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदन्न धीराः॥

इसके साथ व्यवहारिक दृष्टिकोण से भी इस उद्घोषणा का विशेष मूल्याङ्कन है—संसार में सबसे अधिक अनर्थ, विनाश, अत्याचार, हानि, दुःख, कष्ट क्लेश, धन-जन और सम्पति की बरबादी, खिलवाड़ एवं अपव्यय युद्ध, संघर्ष, वाद-विवाद ईर्ष्या, द्वेष से होता है और किसी भी कारण से इतना नहीं। विश्व के समस्त युद्धों [चाहे वह राम-रावण, कौरव-पाण्डव प्रथम-द्वितीय विश्व युद्ध आदि के रूप में किसी भी देश, जाति, वर्ग द्वारा किसी भी स्थान पर लड़ा गया कोई भी क्यों न हो], चाहे वह गली, मुहल्लों और बाजारों में होने वाला वाग्युद्ध, संघर्ष वाद-विवाद क्यों न हो उन सबका एक मात्र कारण केवल और केवल दोनों पक्षों या एक पक्ष के सत्य का ग्रहण और असत्य के त्यागार्थ उद्यत न होना है अर्थात् सब अनर्थों, विनाशों और अपव्ययों का एक विशेष कारण हैं—युद्ध, संघर्ष और वाद-विवाद, और वह होता तभी है जब कोई सा भी पक्ष सत्य के ग्रहण एवं असत्य के त्याग के लिये तैयार नहीं होता। यदि हम संसार, राष्ट्र और व्यक्ति के जीवन को अनिष्टों से बचाना चाहते हैं तो प्रत्येक क्षेत्र और विषय में महर्षि के इस अमर सन्देश के स्वर्णिमसूत्र

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अलौकिक दृष्टिकोण को अपनाएं अन्यथा नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय यजुः ३१, १८ सुख, शान्ति, प्रेम और प्रगति का और कोई भी मार्ग नहीं है।

प्रत्येक धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक समन्वय तभी असफल होता है जब समन्वय में सम्मिलित सदस्यों में से कोई भी किसी भी कारण से "सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग के लिये तैयार" नहीं होता या इस नियम का भंग करता है। आज के संयुक्त मन्त्रिमण्डलों की विफलता इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

संसार में हर समझौता और पारस्परिक व्यवहार तभी सफल होता है, जब परस्पर प्रेम और विश्वास हो, तथा विश्वास केवल सत्य पर ही टिकता है। अतः पारस्परिक व्यवहार की सिद्धि के आधारभूत विश्वास की सिद्धि भी इसी स्वर्णिम सूत्र पर आधारित है।

यदि आप मुझे लिखने की आज्ञा दें तो मेरे विचार से आज के प्रगति, कल्याण और स्वाधीनता चाहने वालों को "सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये" इसी दिव्य देन को ही स्वजीवन पथ का पाथेय बना चाहिये। यही प्रत्येक क्षेत्र में विकास और सफलता का स्वारस्य है, यही विज्ञान और अनुसन्धान का निष्कर्ष है।

'सर्वदा सत्यस्य ग्रहणम्, असत्यस्य त्यागः कार्यः"

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

নব ভারত-সৃষ্টিতে মহর্ষি দয়ানন্দের দান

৮

শ্রী শান্তি শর্মা
গাজিয়াবাদ

মহর্ষি দয়ানন্দ সরস্বতী ঊনবিংশ শতাব্দীর সর্বশ্রেষ্ঠ বিদ্বান্, ধর্ম প্রচারক, সমাজ সংস্কারক, দেশসেবক ও সর্বতোমুখী প্রতিভা সম্পন্ন ব্যক্তি ছিলেন।

সর্বশ্রেষ্ঠ বিদ্বান্

বেদের শিক্ষা ও প্রচার বিভিন্ন স্থানে বিভিন্ন ঋষি দ্বারা বিভিন্নভাবে বিস্তার লাভ করিয়াছিল। তাহাই শাখা নামে প্রচারিত। ঋষি দয়ানন্দ এইরূপ ১০২৮ শাখার কথা স্বীকার করিয়াছেন। বৌদ্ধ ও জৈন ধর্মের প্রাবল্যে সব শাখাই প্রায় লুপ্ত হইয়াছিল। সংহিতা, মন্ত্র, উপনিষদ, ব্রাহ্মণ বা উপনিষদ যাহা যেখানে পাওয়া যাইত সেগুলি শুধু যজ্ঞে ও বৈদিক কর্মকাণ্ডে ব্যবহারের জন্যই মানিয়া লওয়া হইত। বেদ সাধারণের ধরা-ছুঁয়ার বাহিরে চলিয়া গিয়াছিল। বৌদ্ধ ও জৈন প্লাবনের সম্মুখে যে সব সাহসী ও শক্তিমান পুরুষ বাধা দান করিয়াছিলেন তাঁহাদের মধ্যে শঙ্করাচার্য্য, রামানুজ, কুমারিল ভট্ট, মণ্ডন মিশ্রের নাম উল্লেখযোগ্য। তাঁহারা নাস্তিক-মতের বিরোধিতা করিয়াছেন। জনসাধারণের মধ্যে যাঁহারা বৈদিক ধর্মের প্রচারে অগ্রসর হইলেন তাঁহারা রামায়ণ, মহাভারত ও পুরাণগুলি অবলম্বন করিলেন। মহাভারতকে পঞ্চম বেদ বলিয়া ঘোষণা করা হইল। বেদ লোক-চক্ষুর অন্তরালেই রহিল। উপনিষদ, বেদান্তদর্শন ও গীতাকে প্রস্থানত্রয় ঘোষণা করিয়া ভারতের ধর্মগুরুরা ইহারই প্রচারে মনোনিবেশ করিলেন। বৌদ্ধ যুগ হইতে আরম্ভ করিয়া সপ্তম শতাব্দী পর্য্যন্ত বেদ সাধারণের আলোচনার বাহিরেই রহিল। লোক-চক্ষুর অগোচরে বেদ থাকিলেও ২৭ জন বেদ ভাষ্যকারের নাম পাওয়া যায়। তন্মধ্যে দেবস্বামী খৃষ্টীয় অব্দের পূর্বে জন্মিয়াছিলেন। সায়ণাচার্য্য (১৩৭২-১৪৪৪) চতুর্দশ হইতে পঞ্চদশ শতাব্দীর মধ্যে ঋক্, সাম ও অথর্ব বেদের ভাষা রচনা করেন। ইহার পূর্বে একাদশ শতাব্দীতে উবট ও পরে মহীধর সপ্তদশ শতাব্দীতে যজুর্বেদের ভাষ্য প্রচার করেন। ইঁহারা প্রচলিত প্রথা ও পৌরাণিক কথা ও কাহিনী অবলম্বনে ভাষ্য করেন। এই সব ভাষ্য জনসাধারণের

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ব্যবহারযোগ্য ছিল না। পাশ্চাত্য পণ্ডিতেরা সায়ণের ভাষ্য অবলম্বন করিয়াছিলেন। উনবিংশ শতাব্দীতে মহর্ষি দয়ানন্দ সরস্বতী আর্বিভূত হইয়া যে ভাষ্য (ঋগ্বেদের ও যজুর্বেদের) লিখিয়াছিলেন তাহার বৈশিষ্ট্য সুস্পষ্ট। পৌরাণিক ও প্রচলিত প্রথার উর্দ্ধে বেদের স্থান, পাণিনির ব্যাকরণ ও যাস্কের নিরুক্ত অবলম্বনে বেদের মর্মার্থ বোধগম্য হয়—এই নীতি গ্রহণ করিয়া তিনি ভাষ্য রচনা করিয়াছিলেন। দয়ানন্দের এই প্রচেষ্টা অপরিসীম সাহস ও আশাবাদের পরিচায়ক। তিনিই সর্বপ্রথম ঘোষণা করিলেন যে বেদ আদি ধর্মগ্রন্থ। "সমগ্র মানবজাতির ইহা সাধারণ সম্পদ, বেদ কাহারও একচেটিয়া নহে। বেদের প্রচার, পঠন-পাঠন, শ্রবণ-শ্রাবণ পরম ধর্ম, স্ত্রী-শূদ্রেরও বেদাধিকার আছে।" দয়ানন্দের পূর্বে কেহই এত বড় বিপ্লবের পরিচয় দান করেন নাই, এমন কি শঙ্করাচার্য্য বা কুমারিল ভট্টও করেন নাই। দয়ানন্দ তাঁহার জীবনে সব ব্রাহ্মণ গ্রন্থ, উপনিষদ, প্রাপ্য বেদ ভাষ্যগুলি, ১৮ পুরাণ, উপপুরাণ ১৮, প্রাপ্য বৌদ্ধ ও জৈন গ্রন্থ, আস্তিক ও নাস্তিক দর্শন, বাইবেল ও কোরাণের অনুবাদ, উইলসন ও ম্যাক্স্মুলারের বেদানুবাদ নিজে বা অপরের সহায়তায় অধ্যয়ন করিয়াছিলেন। ইংরেজী, আরবী, পার্শী ও প্রাকৃত ভাষায় লিখিত গ্রন্থও অন্য ব্যক্তির সাহায্য লইয়া তিনি অধ্যয়ন করিয়াছিলেন। তাঁহার গ্রন্থে এই সব গ্রন্থপাঠের উজ্জ্বল প্রমাণ পাওয়া যায়। ইতিহাসে এইরূপ পাণ্ডিত্যের তুলনা পাওয়া যায় না।

ধর্ম-সংস্কারক

ঋষি দয়ানন্দ বেদকে সত্য বিদ্যার গ্রন্থরূপে মনে করিতেন। এই সত্য বিদ্যা হইতে মানব বঞ্চিত ছিল। ইহার পূর্বে শঙ্করাচার্য্য, রামানুজ, মাধবাচার্য, নিম্বার্কাচার্য্য, বল্লভাচার্য্য প্রভৃতি কেহই বেদকে সর্ব-মানবের ধর্মগ্রন্থ বলিয়া ঘোষণা করেন নাই। মহাবীর ও বুদ্ধ তাঁহাদের জৈন ধর্মের ও বৌদ্ধ ধর্মের প্রচারকালে বেদের বিরোধিতাই করিয়াছেন। চৈতন্য, নানক, দাদু, কবির, নামদেব প্রভৃতি বেদ বিষয়ে নীরবই ছিলেন। রাজারামমোহন ব্রাহ্মসমাজে উপনিষদকেই স্থান দিলেন। মহর্ষি দয়ানন্দ সরস্বতীই সর্বপ্রথম পুরুষ-স্ত্রী নির্বিশেষে মানবমাত্রের জন্য বেদের অধিকার ঘোষণা করিলেন। তিনিই সর্বপ্রথমে সংস্কৃত ভাষার সঙ্গে সঙ্গে সর্বসাধারণের জন্য হিন্দী ভাষায় বেদের ভাষ্য প্রচার করেন। তাঁহার মতে ধর্মের সংস্কার কার্য্যে বেদের অবলম্বন অপরিহার্য্য। ইউরোপে উইক্লিফ ও মার্টিন লুথার সর্বসাধারণের ভাষার মাধ্যমে বাইবেল প্রচারে পুরুষার্থ প্রদর্শন করিয়াছিলেন। তাঁহাদের জীবনের সঙ্গে দয়ানন্দ জীবনের তুলনা হইতে পারে। বর্ণ ও আশ্রম ধর্মের সংস্কার, ষোড়শবিধ বৈদিক সংস্কারের পুনঃ প্রচলন, গুরুকুল স্থাপন, বেদ-মন্দির স্থাপন, শুদ্ধি প্রচলন, অস্পৃশ্যতা, জাতিভেদ ও সাম্প্রদায়িক বৈষম্যের দূরীকরণ, বাল্যবিবাহ ও বৃদ্ধ-বিবাহের প্রতিবাদ, সর্ববিধ মাদকদ্রব্যের বর্জনাদি তাঁহার ধর্মগ্রন্থের অন্তর্ভুক্ত বিষয় ছিল। এত বড় ধর্ম-সংস্কার বিষয়ের এই বিরাট পরিকল্পনা অন্যত্র বিরল।

হিন্দী প্রচার

ঋষি দয়ানন্দ কোন ভাষারই বিরোধী ছিলেন না। মাতৃ ভাষাকে অবহেলা করিয়া পার্শি, আরবী বা ইংরেজী ভাষা গ্রহণের তিনি বিরোধী ছিলেন। ভারতীয় জনসাধারণের মধ্যে একটি সাধারণ ভাষার প্রয়োজনীয়তাও তিনি অনুধাবন করিয়াছিলেন। ধর্ম প্রচার ক্ষেত্রে সর্বসাধারণের মধ্যে হিন্দী অবলম্বন করিতে তিনি কেশব সেন ও বিদ্যাসাগরের অনুরোধ সাদরে গ্রহণ করিয়া হিন্দী ভাষাকে তিনি জাতীয় ভাষার রূপদান করিয়াছিলেন। হিন্দী ভাষাকে তিনি ধর্মপ্রচারের ও সর্বসাধারণের সর্বকার্যের ভাষা বলিয়া গ্রহণ করিয়াছিলেন। গ্রন্থাদিতে তিনি হিন্দীকে সর্বোচ্চ স্থান

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

দিয়াছিলেন। ইহার বহুদিন পরে মহাত্মা গান্ধী প্রভৃতি রাজনীতিক নেতারা হিন্দীকে জাতীয় ভাষারূপে ঘোষণা করিয়াছিলেন। আজ হিন্দীর ব্যাপক প্রচারে বহু নেতা আপ্রাণ চেষ্টা করিতেছেন, হিন্দীর মর্য্যাদা সু প্রতিষ্ঠিত করার জন্য যে সর্বতোভাবে ত্যাগ ও কষ্ট বরণ করিতেছেন ইহার মূলে দয়ানন্দের দান স্বীকার্য।

স্বদেশী বস্তুর সমাদর

দয়ানন্দ জন্মিয়াছিলেন ইষ্ট ইণ্ডিয়া কোম্পানীর আমলে। তখন বিদেশের মিহি কাপড় ভারতবর্ষের বাজার ছাইয়া ফেলিয়াছে। "মায়ের দেওয়া মোটা কাপড়" তখন ঘৃণার বস্তু হইয়া দাঁড়াইয়াছে। চরকা ইংরেজের অত্যাচারে লুপ্ত হইতেছিল, যাহা ছিল তাহাও অনাদৃত। এই অবস্থার মধ্যে তিনি স্বদেশী কাপড়, চরকায় কাটা মোটা কাপড়ই পরিধান করিতেন। মহর্ষি দেবেন্দ্রনাথ তাঁহাকে অতি মিহি মানচেষ্টারের একজোড়া ধুতি কাপড় অতি শ্রদ্ধার সহিত উপহার দিলে তাহা তিনি অতি শ্রদ্ধার সহিতই প্রত্যাখ্যান করিয়াছিলেন। যুক্তি দেখাইলেন ইহা দেশের মা-বোনদের হাতে কাটা সূতার নহে। বরাহনগরের নাইনান উদ্যান-ভবনে থাকা কালীন তিনি দেবেন্দ্রনাথ, শৌরীন্দ্রনাথ ও কেশবসেন প্রদত্ত বিদেশী কাপড়ের বিছানা পরিত্যাগ করিয়া সাধারণ মাদুর ও চাটাই ব্যবহার করিয়াছেন। গোরাচাঁদা দত্তের বাড়ীতে সভা গৃহে বিদেশী ছবি অঙ্কিত ছিল তিনি তাহাও অপসারণ করিতে বাধ্য করিয়াছিলেন। স্বদেশী বস্তুর প্রতি এই রূপ অনুরাগ ও বিদেশী বস্তুর প্রতি বিতৃষ্ণা তাঁহার মধ্যে ছিল অত্যধিক। ১৯০৫ খৃষ্টাব্দের বঙ্গ-ভঙ্গ আন্দোলন ও দিদেশী বর্জন আন্দোলনের সময় রবীন্দ্রনাথ দয়ানন্দের স্বদেশী বস্তুর প্রতি অনুরাগের কথা কালীকণ্ঠ কাব্যবিশারদকে বলিয়াছিলেন।

রাজনীতিক সংস্কার

সিপাহী বিদ্রোহের ১১ বৎসর পূর্বে ১৮৪৬ খৃষ্টাব্দে দয়ানন্দ পিতৃগৃহ পরিত্যাগ করেন। দেশের নানা স্থানে যোগবিদ্যার সন্ধানে পরিভ্রমণ করিয়া সিপাহী বিদ্রোহের তিন বৎসর পরে ১৮৬০ খৃষ্টাব্দে দয়ানন্দ মথুরায় স্বামী বিরজানন্দ সরস্বতীর নিকট বেদ বিদ্যা লাভের জন্য উপনীত হন। এই সুদীর্ঘ ১৪ বৎসর কাল তিনি দেশের সর্বত্র পাহাড়ে পর্বতে, বনে জঙ্গলে, নগরে-পল্লীতে, হাটে মাটে ঘাটে পরিভ্রমণ করিয়া ভারতের ধর্ম, সমাজ ও রাষ্ট্রকে প্রত্যক্ষ করিয়াছিলেন। তিনি নানা স্থানে ধর্মের নামে অধর্ম দেখিয়া বিস্মিত হইয়াছিলেন। সামাজিক কুসংস্কারের জঘণ্য স্বরূপ দেখিয়া তিনি ব্যথিত হইয়াছিলেন। অর্থাভাব, কুশাসন, দারিদ্র্য দেখিয়া তিনি দীর্ঘ নিঃশ্বাস পরিত্যাগ করিতেন। এক দিকে ধনাঢ্য ব্যক্তিদের বিলাসিতার প্রাবল্য, অন্য দিকে অন্নাভাব ও রোগের দুঃসহ যন্ত্রণা তিনি স্বচক্ষে দর্শন করিয়াছিলেন। ভারতীয় জনগণের মধ্যে বিদেশীর শৃঙ্খল মোচনের প্রচেষ্টা, শাসনের নামে বিদেশীদের অমানুষিক অত্যাচার, সিপাহী বিদ্রোহের পূর্বাপর ভয়াবহ দৃশ্য ও দেশবাসীর উপরে দুঃসহ অত্যাচারের করুণ দৃশ্য তিনি স্বচক্ষে দর্শন করিয়াছিলেন। তাঁহার স্বচ্ছ হৃদয়ে অতীত ভারতের স্বাধীনতার দৃশ্য প্রতিবিম্বিত হইয়াছিল। তাঁহার বক্তৃতার মধ্যে ও গ্রন্থের মধ্যে তাহার প্রত্যক্ষ পরিচয় পাওয়া যায়। সমগ্র ভারতের পরিভ্রমণের মধ্য দিয়া তিনি প্রকৃত ভারতবর্ষের রূপ দর্শন করিয়াছিলেন। ভারতের ধর্ম, কর্ম, রীতি নীতি, আচার ব্যবহার, প্রজা জনসাধারণের জীবনযাত্রা, ইষ্ট ইণ্ডিয়া কোম্পানির শাসন ও শোষণ, দরিদ্রগণের অসহায় অবস্থা, বিদেশী ফৌজের অবাধ অত্যাচার, জামিদার ও দেশী রাজন্যগণের বিলাসিতা ও অসংযম তাঁহার হৃদয়ে নরকের দৃশ্য অঙ্কিত করিয়াছিল। এই সমস্যার সমাধান কোথায়? তাঁহার মনে আসিল দেশীয় রাজন্যগণ যখন শ্রীকৃষ্ণ ও শ্রীরামচন্দ্রকে পূর্ব পুরুষে বলিয়া ঘোষণা করেন এবং প্রজাশাসন ও রাজ-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

নীতি লইয়াই যখন তাঁহারা জীবন যাত্রা নির্বাহ করেন এবং প্রজা সাধারণ যখন রাজনীতি বুঝিতেই পারেনা তখন এই দেশীয় রাজন্যগণকে শোধন করিতে হইবে। তাঁহাদের মধ্যে পূর্বপুরুষদের প্রতি গৌরব বুদ্ধি জাগাইয়া তুলিতে হইবে। এই ভাব লইয়াই তিনি উদয়পুর, যোধপুর, শাহপুরাদি রাজন্যগণের মধ্যে রাজধর্মের উপদেশ দিতে থাকেন, প্রাচীন রাজনীতির জ্ঞান দিতে থাকেন। পরাধীন ভারতকে স্বাধীনতা লাভের জন্য যাঁহারা বহু পূর্ব হইতেই প্রেরণা জোগাইয়াছেন তাঁহাদের মধ্যে মহাপ্রাণ পুণ্য শ্লোক মহর্ষি দয়ানন্দ সরস্বতীর নাম বিশেষ রূপে উল্লেখ যোগ্য। রাজনীতি ক্ষেত্রে, কি সমাজ সংস্কার ক্ষেত্রে এমন কি ধর্ম সংস্কার ক্ষেত্রে তাঁহাকে অবদানের তুলনা নাই। স্বতন্ত্র ভারতে এখনও সম্পূর্ণ চেতনা ফিরিয়া আসে নাই। যতই দিন যাইবে ততই এই নির্ভীক, ত্যাগী ও বেদজ্ঞ সন্ন্যাসীর দূরদর্শিতা ও ভবিষ্যদ্ বাণীর কথা ভারত বুঝিতে পারিবে।

রাজনীতি-ক্ষেত্রে

১৮৮৫ খৃষ্টাব্দ কংগ্রেসের জন্ম। ইহার ঠিক ২৮ বর্ষ পূর্ব্ব হইতে মহর্ষি দয়ানন্দ তাঁহার মৃত্যু কাল পর্য্যন্ত (১৮৮৩) এই দীর্ঘ কাল তিনি যাহা যাহা উপদেশ ও বক্তৃতার মধ্যে ভারতের প্রধান প্রধান স্থানে প্রচার করিয়া ছিলেন, বারানসীর ডেপুটি ম্যাজিষ্ট্রেট্ ভক্ত রাজা জয়কিষণদাসের সনির্বন্ধ অনুরোধে তাহাই লিপিবদ্ধ করিয়া তিনি সত্যর্থপ্রকাশ গ্রন্থ রচনা করিয়াছিলেন (১৮৭৪)। ১৮৭৫ খৃষ্টাব্দ বারানসীর ষ্টারপ্রেস হইতে এই গ্রন্থের প্রথম সংস্করণ মুদ্রিত হইয়াছিল। সে আজ প্রায় শত বর্ষ পূর্ব্বের কথা। শতাধিক পূর্ব্বেই মহর্ষি দয়ানন্দের হৃদয়ে পরাধীনতার অসহনীয় বেদনা কিরূপ তীব্র হইয়াছিল, পরাধীনতার কারণগুলি কি কি এবং তাহার প্রতীকারের উপায়গুলিই বা কি কি তাঁহার এই অমরগ্রন্থ সত্যার্থপ্রকাশে তাহা সুস্পষ্ট রূপে প্রকাশিত হইয়াছে। ইহার কিয়দংশ নিম্নে প্রদত্ত হইল—

"ইক্ষ্বাকু বংশীয় রাজারা আর্য্যাবর্ত্তে প্রথম রাজ্য করিতেন। তাঁহারাই আর্য্যাবর্ত্ত স্থাপন করিয়াছিলেন। এখন দুর্ভাগ্য বশতঃ আর্য্যগণের আলস্য, প্রমাদ, পরস্পরের বিরোধ হেতু অন্যান্য দেশে রাজ্য করা ত দূরের কথা আর্য্যাবর্ত্তেও আর্য্যগণের অখণ্ড স্বতন্ত্র, স্বাধীন ও নির্ভয় রাজ্য এখন আর নাই। যাহা কিছু কিছু আছে তাহাও বিদেশীদের পদাক্রান্ত হইতেছে। কয়েকটি মাত্র রাজা অবশিষ্ট আছেন যাঁহারা স্বতন্ত্র। যখন দুর্দ্দিন আসে তখন দেশবাসীকে নানা রূপ দুঃখ ভোগ করিতে হয়। যিনি যতই করুন স্বদেশের রাজাই হয় সর্ব্বোত্তম। অপর পক্ষে বিভিন্ন মতমতান্তরে উদাসী, আপন পর পক্ষপাতশূন্য, প্রজাগণের প্রতি মাতাপিতার সমান কৃপা, ন্যায় ও দয়াযুক্ত বিদেশী রাজ্যও পূর্ণরূপে সুখদায়ক নহে।"

(সত্যার্থপ্রকাশ, অষ্টম সমুল্লাস)।

"দেশদেশান্তরে ও দ্বীপদ্বীপান্তরে রাজ্যস্থাপন বা ব্যবসায় না করিলে কি স্বদেশের উন্নতি হইতে পারে? যখন স্বদেশেই মাত্র স্বদেশের লোকেরা কাজকর্ম করে ও বিদেশীরা স্বদেশে কাজ করে বা রাজ্য করে তখন দারিদ্র্য ও দুঃখ ছাড়া আর কিছুই হইতে পারে না।"

"যে পর্য্যন্ত এক-মত, এক হানি-লাভ, এক সুখ-দুঃখ বোধ না জাগিবে সে পর্য্যন্ত উন্নতি হওয়া খুবই কঠিন। পরন্তু কেবল পানাহার এক হইলেই সংস্কার হইতে পারে না। পরন্তু যে পর্য্যন্ত কদভ্যাস পরিত্যাগ না করিবে ও সদভ্যাস গ্রহণ না করিবে তত দিন উন্নতির বদলে অবনতিই হইবে। আর্যাবর্ত্তে বিদেশীদের রাজ্য স্থাপনের ফলে নিজেদের মধ্যে বিভেদ.....ভ্রাতৃবিরোধ যতদিন থাকবে, ততদিন বিদেশী সালিসী করিতে থাকবে। তোমরা কি মহাভারতের কথা ভুলিয়া গিয়াছে? পাঁচ হাজার বর্ষ পূর্বে ইহা ঘটিয়াছিল।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

মহাভারতের যুদ্ধকালে সকলে পরস্পর মিলিয়া পান ভোজন করিত। নিজেদের মধ্যে বিভেদ সৃষ্টি হওয়ার কৌরব, পাণ্ডব ও যাদবগণের সর্বনাশ ঘটিয়াছিল। অতীতে যাহা ঘটিয়াছে, তাহা ঘটিতেছেই। কিন্তু আজ পর্য্যন্ত সেই ব্যাধি আছেই। জানি না এই ভয়ঙ্কর রাক্ষস কখনও ছাড়িবে কি না কিংবা আর্য্যদিগকে সর্বসুখ হইতে বঞ্চিত করিয়া ডুবাইয়া মারিবে। সেই দুষ্ট, স্বজনহন্তা, স্বদেশের সর্বনাশকারী, নীচ দুর্য্যোধনের দুষ্ট পন্থা অনুসরণ করিয়া, আজও আর্য্যগণ দুঃখ বাড়াইয়াই চলিতেছে। ভগবান কৃপা করুন, এই রাজ-রোগ আর্য্যগণের মধ্য হইতে দূরীভূত হওক।"

(সত্যার্থ প্রকাশ, দশম সমুল্লাস)

"এই আর্য্যাবর্ত্ত দেশের ন্যায় ভূমণ্ডলে আর কোন দেশই নাই। এই জন্যই এ দেশের নাম সুবর্ণভূমি। কেননা এখানে সুবর্ণাদি রত্নের উৎপত্তি হয়। এই জন্যই সৃষ্টির আদিতে আর্য্যগণ এই দেশে আসিয়া বসতি স্থাপন করিয়াছিল। আর্য্য ভিন্ন অন্য মনুষের নাম দস্যু। ভূমণ্ডলের সব দেশই এই দেশের প্রশংসা করে ও সাহায্য আশা করে। স্পর্শমণির কথা শুনা যায় কিন্তু তাহা মিথ্যা। আর্য্যাবর্ত্ত দেশই প্রকৃত আদর্শ মণি। ইহার স্পর্শেই লৌহ তুল্য বিদেশী সুবর্ণ অর্থাৎ ধনাঢ্য হইয়া যায়।" "সৃষ্টি হইতে আরম্ভ করিয়া পঞ্চ-সহস্রে বর্ষ পূর্ব পর্য্যন্ত আর্য্যগণের সারভৌম চক্রবর্ত্তী রাজ্য ছিল অর্থাৎ পৃথিবীতে সর্বোপরি একমাত্র রাজ্য ছিল। অন্যান্য দেশে মাণ্ডলিক অর্থাৎ ক্ষুদ্র ক্ষুদ্র রাজ্যের রাজারা ছিল। কুরুপাণ্ডব পর্য্যন্ত এখানের রাজ্যের ও রাজশাসনের অধীনেই পৃথিবীর অন্য সব রাজারা ছিল।"

(সত্যার্থপ্রকাস, একাদশ সমুল্লাস)।

মহর্ষি দয়ানন্দের গ্রন্থের এই সব উদ্ধরণ হইতেই বোধগম্য হয় যে তাঁহার দেশপ্রেম ছিল কত প্রবল। পরাধীনতার জ্বালা তিনি কিভাবে তাঁহার হৃদয়কে ব্যথিত করিয়াছিল। তাঁহার বক্তৃতায় ও গ্রন্থে তিনি একশতাব্দী পূর্বে এই ভাবে জনগণের মধ্যে দেশাত্ম বোধ জাগাইতে চেষ্টা করিয়াছিলেন। দেশীয় রাজন্য গণের মধ্যে মনু, ভর্তৃহরি, বিদুর ও চাণক্যের রাজ-নীতির মর্ম্ম বুঝাইয়াই তিনি কর্ত্তব্যের পরিসমাপ্তি করেন নাই। দেশীয় রাজন্যগণের সঙ্গে জনসাধারণের কোন যোগাযোগ নাই তাহাও তিনি বুঝিয়াছিলেন।

বঙ্গ দেশের সমাজ সংস্কার আন্দোলনকে তিনি শ্রদ্ধার দৃষ্টিতে দেখিয়াছিলেন। কাশী শাস্ত্রবিচারে বিজয় লাভের পর ব্যারিষ্টার চন্দ্রশেখর সেন, পণ্ডিত সত্যব্রত সামশ্রমী ও মহর্ষি দেবেন্দ্রনাথ ঠাকুরের আমন্ত্রণে তিনি কলিকাতায় আসিয়াছিলেন। ধর্মের ভিত্তিতে তিনি কোন প্রতিষ্ঠান গড়িতে চাহিয়াছিলেন। বৈদিক পাঠশালা স্থাপনের উদ্দেশ্য ও তিনি পোষণ করিতেন। বোম্বায়ের প্রার্থনাসমাজ ও কলিকাতার ব্রাহ্মসমাজের দিকে তিনি বহু আশা পোষণ করিয়াই দৃষ্টিপাত করিয়াছিলেন। পৃথক কোন প্রতিষ্ঠান স্থাপন করা তাঁহার উদ্দেশ্য ছিল না। ব্রাহ্মসমাজের মাধ্যমে তিনি ধর্মপ্রচার করিতে ইচ্ছা প্রকাশ করিয়াছিলেন। ব্রাহ্মসমাজও এই রূপ একজন সন্ন্যাসী একেশ্বরবাদী পাইয়া বহু আশা পোষণ করিয়া ছিলেন। কিন্তু পরে আলোচনায় জানা গেল—ব্রাহ্ম সমাজ বেদের অপৌরুষেয় স্বীকার করিবেন না ও জন্মান্তর সম্বন্ধে নিশ্চিত সিদ্ধান্ত গ্রহণ করিবেন না। এই খানেই উভয় পক্ষের আশা বিলীন হইয়া গেল।

ঈশ্বরচন্দ্রবিদ্যাসাগর দয়ানন্দকে পৃথক্ কোন প্রতিষ্ঠান স্থাপন করিতে পরামর্শ দিলেন। তাহারই ফলে নানা স্থান ভ্রমণ করিয়া তিন বৎসর পর তিনি রাজকোটে ও বোম্বাইতে আর্য্যসমাজ স্থাপন করিলেন। ২ বৎসর পরে ১৮৭৭ খৃষ্টাব্দে লাহোরে আর্যসমাজ স্থাপনকালে মহর্ষি দয়ানন্দের নেতৃত্বে আর্য্যসমাজের

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

দশ নিয়ম ও চল্লিশটি উপনিয়ম গৃহীত হয়। ইহাতে অপূর্ব রাজনীতির পরিচয় পাওয়া যায়। রায় বাহাদুর লালা মূলরাজ এম-এ, পি আর-এস লাহোর সভায় প্রথম সভাপতি নির্ধারিত হইয়াছিলেন। প্রায় ছয় বৎসর কাল শুধু আর্য্যসমাজের দশ নিয়ম মানিলেই আর্য্যসমাজ ভুক্ত হওয়া যাইত। মহর্ষি দয়ানন্দ তাঁহার মৃত্যুর পূর্বে পরোপকারিণী সভা স্থাপন করিয়া তাঁহার জীবনের কার্য্য ভার অর্পণ করেন। তাঁহার মৃত্যুর পরে ১৮৮৩ খৃষ্টাব্দের ডিসেম্বরের অধিবেশনে পরোপকারিণী সভায় স্থির হয়—আর্য্য সমাজের সদস্য হইতে গেলে মহর্ষি দয়ানন্দের বেদভাষ্য ও গ্রন্থাবলীকে অভ্রান্ত বলিয়া স্বীকার করিতে হইবে। মহর্ষি দয়ানন্দের জীবনকালে কেবল দশ নিয়ম স্বীকার করিলেই আর্য্য সমাজের সদস্য হইয়া যাইত। এই বিষয় লইয়া আর্য্যসমাজের মধ্যে মত বিরোধের সৃষ্টি হয়। ১৮৮৫ খৃষ্টাব্দে কলিকাতার প্রথম আর্য্য সমাজ স্থাপিত হওয়ার পরেই এই প্রশ্ন উত্থাপিত হইয়াছিল। ইহারই ফলে বহু বাঙ্গালী শিক্ষিত গণ্য মান্য ব্যক্তি আর্য্য সমাজ পরিত্যাগ করেন। আজিও তাহার ফলে বাঙ্গালী আর্য্যসমাজের দয়নীয় স্থিতির মধ্যে উপলব্ধি হয়।

বোম্বাইতে আর্য্যসমাজ স্থাপনের (১৮৭৫) ১০ বৎসর পরেই বোম্বাইতে কংগ্রেসের জন্ম হয়। তখনে আর্যসমাজের অপ্রত্যক্ষ প্রভাব পরিলক্ষিত হইয়া ছিল। স্যর সুরেন্দ্রনাথ তাঁহার স্বদেশী বক্তৃতার মধ্যে এই কথা ব্যক্ত করিয়াছিলেন। আমরা স্বর্গীয় বিপিন চন্দ্রপাল ও স্বর্গীয় রামানন্দ চট্টোপাধ্যায়ের মুখে কলিকাতা আর্য্যসমাজ অনুষ্ঠিত ১৯২৫ খৃষ্টাব্দের জন্মাষ্টমী উৎসবের বক্তৃতায় একথা শুনিয়াছি। তাই মনে হয়—নব ভারতের উন্মেষের ও জাগরণের মূলে মহর্ষি দয়ানন্দের ও আর্য্যসমাজের দান স্বল্প নহে। স্বাধীন ভারতের নরনারী ভবিষ্যতের দিকে যতই অগ্রসর হইবে ততই ইহা বুঝিতে পারিবে, কোন উচ্চ পর্বতের সন্নিকটে দাঁড়াইয়া তাহা বুঝা যায় না। যতই দূরে যাওয়া যাইবে ততই পর্বতের বিরাটত্ব উপলব্ধিতে আসিবে।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

५९५(IV)

जयदेव आर्य्य
एम.ए., वेदाचार्य

OM

PUNISHMENT PRESCRIBED

For

The Unbelievers in the Quran

Compiled by

Shri Pandit Ram Chandra ji Dehlvi

Published by

The Inter-national Aryan League,

DELHI.

April 1945.

Price 3 Annas

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

OM

FOREWORD

In view of the most reprehensible agitation set on foot by some bigoted people, for the proscription of the 14th Chapter of the Satyarth Prakash—the immortal work of the late lamented Maharishi Dayananda Saraswati on the ground, that it contained criticism of Islam and its founder, we place before the impartial readers, the following extracts from the Quran prescribing punishment for the unbelievers in strong language. These extracts from the Quran have been compiled by Shree Pt. Ram Chandraji Dehlawi—a renowned scholar of Arabic and the Quran, with the translation made by Maulana Mohammed Ali, M. A., LL. B.—an eminest Muslim scholar, so that the accuracy of the translation may not be questioned.

Professor Malik Inayatullah of Lahore moving a resolution for the proscription of some chapters of the Satyarth Prakash at the open session of the All-India Muslim League held at Karachi on the 25th of December 1943 said that "Since the beginning of Islam, Muslims had never made offensive remarks against any religion. (Dawn 27-12-1943) Besides one hundred and one passages that can be aptly quoted to refute the truth of this statement, the extracts given here from the Quran, which is the word of God according to the belief of all Muslims, give a direct lie to the above contention of our Muslim friends. Let our Muslim friends dispassionately think over these passages of the Quran and then say whether they have any right to raise a hue and cry against the well-meaning and logical criticism of Islam in the Satyarth Prakash, when their own scripture contains not arguments but threats and curses against all un-believers in Mohammedanism.

Balidan Bhavan,
2—4—1945.

DHARMA DEVA VIDYAVACHASPATI
Asstt. Secretary,
Inter-national Aryan League,
DELHI.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जयदेव आर्य्य
एम ए . वेदाचार्य

Punishment Prescribed for Un-believers in the Quran.

(Translation quoted below is that of Maulavi Mohammed Ali M.A.LL.B.)

(1) God has set a seal upon their hearts and upon their hearing, and over their eyes is a covering, and there is a great chastisement for them. Quran 2-1-7

(2) And when they meet those who believe, they say, we believe; and when they are alone with their devils they say: surely we are with you, we were only mocking. 2-2-14

(3) Deaf, dumb, (and) blind so they do not turn back (repent). 2-2-18

(4) But if you do (it) not—and never shall you do (it)—then be on your guard against the fire of which men and stones are the fuel; it is prepared for the unbelievers. 2-3-24

(5) And (as to) those who disbelieve in and reject our communications, they are the inmates of the fire, in it they shall abide. 2-4-89

(6) And when Moses said unto his people O my people, verily ye have injured your own souls, by your taking the calf for your God; therefore be turned into your creator, and slay those among you who have been guilty of that crime; this will be better for you in the sight of your creator : 2-6-54

(7) Evil is that for which they have sold themselves—that they deny what God revealed, out of envy that God should send down of His grace on whom-soever of His servants He pleases ; so they have made themselves deserving of wrath upon wrath, *and for the unbelievers disgraceful chastisement.* 2-11-40

(8) O you who believe I do not say, listen to us, and say, wait for us, and listen, and for the unbelievers is a painful chastisement. 2-13-104

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(9) And they say: none shall enter the garden except he who is a Jew or the Christian. Those are their vain desires. Say: Bring your proof if you are truthful. 2-13-111

(10) And whoever disbelieves, I will grant him enjoyment for a short while, then I will drive him to the chastisement of the fire; and it is an evil destination. 2-15-126

(11) Those who disbelieve and die while they are disbelievers, there it is on whom is the curse of God and angles and men, all. Quran 2-19-161.

Abiding in it; their chastisement shall not be lightened nor shall they be given respite. Quran 2-19-162.

(12) "And the parable of those who disbelieve is as the parable of one who calls out to that which hears no more than a call or cry; Deaf, dumb (and) blind, so they do not understand." (Quran 2-21-171).

(13) God is the guardian of those who believe; he brings them out of the darkness into the light; and (as to) those who disbelieve, their guardians are the devils who take them out of the light into the darkness; they are the inmates of the fire, in it they shall abide. 2-34-257

(14) Those who disbelieve in the communications of God, shall have a severe chastisement; and God is Mighty, Lord of retribution. 3-1-3.

(15) Those who disbelieve, neither their wealth nor their children shall avail them in the least against God, and these it is who are the fuel of the fire. 3-2-9.

(16) Say to those who disbelieve; You shall be vanquished, and driven together to hell; and evil is the resting place. 3-2-11

(17) Those who disbelieve, neither their wealth nor their children shall avail them in the least against God; and these are the inmates of the fire; they shall abide. 3-12-115

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(18) And that he may purge those who believe and destroy the unbelievers. 3-14-140

(19) We will cast terror into the hearts of those who disbelieve because they set up with God that for which he has sent down no authority, and their abode is the fire; and evil is the abode of the unjust. 3-16-150.

(20) And whoever disobeys God and his apostle and goes beyond his limits, he will cause him to enter fire to abide in it, and he shall have an abasing chastisement. 40-2-14.

(21) Why are ye divided concerning the ungodly into two parties*; since God hath overturned them for what they have committed ?

(22) And indeed he has revealed to you in the Book that when you hear God's communications disbelieved in and mocked at, do not sit with them until they enter into some other discourse; for then you would be like them; surely God will gather together the hypocrites and the unbelieves all in hell; 4-20-140.

(23) And (as for) those who disbelieve and reject our communications, these are the inmates of the flaming fire 5-2-10.

(24) The punishment of those who wage war against God and his apostle and strive to make mischief in the land is only this, that they should be murdered or crucified or their hands and their feet should be cut off on opposite sides, or they should be imprisoned; this shall be as a disgrace for them in this world, and in the hereafter they shall have a grievous chastisement. 5-5-33

* (Sale's foot-note) :—This passage was revealed, according to some, when certain of Mohammed's followers, pretending not to like Medina, desired leave to go elsewhere, and having obtained it, went farther, till they joined the idolators; or as other say, on occasion of some deserters at the battle of Ohod; concerning which the Muslims were divided in opinion *whether they should be slain as infidels or not.*

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(25) And (as for) those who disblieve and reject our communicatians, these are the companions of the flaming fire. 5-11-86

(26) O you who believe ! intoxicants and games of chance and (sacrificing to) stones set up and the (divining) arrows are only an uncleanness, the devils work. 5-12-90

(27) And those who reject our communications are deaf and dumb, in utter darkness, whom God pleases. He leaves in error, and whom he pleases he puts on the right way. 6-4-39

(28) These are they who shall be given up to destruction for what they earned; they shall have a drink of boiling *water and a painful chastisement because they disbelieved.* 6-8-70

(29) Who then is more unjust than he who rejects God's communications and turns away from them ? We will reward those who turn away from our communications with an evil chastisement because they turned away. 6-20-158

(30) We have made the devils to be the guardians of those who do not believe. 7-3-27

(31) And those who reject our communications and turn away from them haughtily—these are the inmates of the fire, they shall abide in it. 7-4-36.

(32) Those who reject our communications and turn away from them haughtily—the doors of heaven shall not be opened for them, nor shall they enter the garden until the camel pass through the eye of the needle; and thus we reward the guilty. They shall have a bed of the hell-fire, and from above them coverings (of it) and thus do we reward the unjust. 7-5-40 and 31

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(33) The idolators have no right to visit the mosques of God while bearing witness to unbelief against themselves; these it is whose doings are null, and in the fire they shall abide. 9-3-17

(34) And if we had pleased, we had surely raised him thereby (unto wisdom); but he inclined unto the earth and followed his own desire, wherefore his likeness is as the likeness of a *dog*, which if thou drive him away, putteth forth his tongue, or, if thou let him alone, putteth forth his tongue also. This is the likeness of the people who accuse our signs of false-hood. Rehearse therefore this history unto them that they may consider. 7-22-176

(35) This—taste it, and (know) that for the unbelievers is the chastisement of the fire. 8-2-14

(36) Verily the worst cattle in the sight of God are those who are obstinate infidels and will not believe. (Sale) The Vilest of animals in God's sight, are the deaf and the dumb, who do not understand (Mohammad Ali). 8-3-22

(37) And those who disbelieve shall be driven together to hell. 8-4-36.

(38) And hadst thou seen when angels will cause to die those who disbelieve, smiting their faces and their backs and (saying). Taste the punishment of burning. 8-7-50

(39) The *Vilest of animals in God's sight are those who disbelieve,* then they would not believe. 8-7-50.

(40) O Prophet ! urge the believers to war; if there are twenty patient ones of you, they shall overcome two hundred, and if there are a hundred of you, they shall overcome a thousand of *those who disbelieve,* because they are people who do not understand. For the present God has made light your burden, and knows that there is weakness in you, so

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

if there are a hundred patient ones of you, they shall overcome two hundred, and if there are a thousand, they shall overcome two thousand by God's permission. 8-9-65 and 66

(41) A declaration of immunity from God and his apostle, unto the idolaters with whom aye have entered into league.* Go to and fro in the earth Securely 4 months and know that age shall not weaken God, and that God will disgrace the unbelievers. And a declaration from God and His apostle unto the people, on the day of greater pilgrimage, that God is clear of the idolaters and his apostle also. Wherefore if ye repent, this will be better for you; but if you turn back, know that ye shall not weaken God: and denounce unto those who believe not, a painful chastisement. 9-1-1, 2 and 3

(42) And when the months (wherein ye are not allowed to attack them) shall be past, Kill the idolaters where soever ye shall find them, and take them (prisoners) and besiege them, and lay wait for them in every convenient place. But if they shall repent, and observe the

---

* Sale says:—Some understand this sentence of the immunity or security therein granted to the infidels for the space of 4 months; but others think that the words properly signify that Mohammed is here declared by God to be absolutely free and discharged from truce or league with them, after the expiration of that time; and this last seems to be the truest interpretation.

Mohammed's thus renouncing all league with those who would not receive him as the apostle of God, or submit to become tributory, was the consequence of the great power to which he was now arrived. But the pretext he made use of was the treachery he had met with among the Jewish and idolatrous Arabs—scarce any keeping faith with him, except Banu Damra, Banu Kenana, and a few others. P. 134.

Deputy Nazir Ahmed Saheb and Shah Rafi Uddin Saheb have stated in the margin of their Urdu translations, that within this period either the idolaters should embrace Islam or be prepared to fight. See Nazir Ahmed's translation P. 300 and Shah Saheb's P. 307.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

appointed times of prayer, and pay the legal alms, dismiss them freely; for God is gracious and merciful. 9-1-5

And if any of the idolators shall demand protection of thee, grant him protection, that he may hear the word of God; and afterwords let him reach the place of his security.* This (shall thou do) because they are people which know not (the excellency of the religion thou preachest).

(43) And the Jews say: Ezra is the son of God; and the Christians say: The Messiah is the son of God. These are the words of their mouths; they imitate the saying of those who disbelieved before; may God curse them; how they are turned away. 9-5-30

(44) Those who hoard up gold and silver and do not open it in God's way, announce to them a painful chastisment. On the day when it shall be heated in the fire of hell, then their foreheads and their sides and their backs shall be branded with it. 9-5-34 and 35

(45) Go forth (to battle) both light and heavy, † and employ your substance and your persons for the advancement of God's religion. This will be better for you, if you know it. 9-6-41

(46) Do they not know that whoever acts in opposition to God and His apostle, he shall have the fire of hell to abide in it ? This is the grievous abasement. 9-8-63

(47) God has promised the hypocritical men and the hypocritical women and the unbelievers the fire of hell to abide therein; it is enough for them; and God has cursed them and they shall have lasting chastisment. 9-9-68

---

* (Sale) That is, you shall give him a safe conduct, that he may return home securely in case he shall not think fit to embrace Mohammedism. P. 135

† (Sale) Whether the expedition be agreeable or not; or whether ye have sufficient arms provision or not; or whether ye be on horse back or on foot etc. P.140

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(48) O, prophet! wage war against the unbelievers and the hypocrites, and be severe into them, for their dwelling shall be hell; on unhappy journey shall it be thither! They swear by God that they said not (what they are charged with): yet they spake the word of infidelity, and became unbelievers, after they had embraced Islam. 9-10-73 and 74

(49) Ask forgiveness for them or do not ask forgiveness for them; even if thou ask forgiveness for them seventy times, God will not forgivs them; this is because they disbelieve in God and his apostle, and God does not guide the trangressing people. 9-10-80

(50) He begins the creation in the first instance, then he reproduces it, that he may with justice recompense those who believe and do good; and those who disbelieve shall have a drink of hot water and painful chastisement because they disbelieved. 10-1-4

(51) Those who do not hope in our meeting (of the last day) and are pleased with this world's life and are content with it, and those who are heedless of our communications—(as for) those, their abode is the fire because of what they earned. 10-1-798

(52) Say: Those who forge a lie against God shall not be successful. (It is only) a provision in this world, then to us shall be their return, then we shall make them taste severe chastisement because they disbelieved 10-7-69 and 70

(53) And Moses said; Our Lord! Thou hast indeed given to Pharaoh, and his chiefs finery and riches in this world's life, our Lord, that they may lead (people) astray from Thy way; our Lord! destroy their riches and harden their hearts so that they believe not until they see the painful chastisement. I0-9-88

(54) And it is not for a soul to believe except by God's permission; and he casts uncleanness on those who do not understand. 10-10-100

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(55) As to those who are (miserable) unhappy, they shall be in the fire; for them shall be sighing and groaning in it, abiding therein so long as the heavens and the earth endure, except as thy Lord please; surely thy Lord is the Mighty, does of what He intends. 11-9-106 and I07

(56) Rather their plans are made to appear fair sceming to those who disbelieve, and they are kept back from the path; and whom God (shall cause to err) (Sale) leaves in error, he shall have no guide. They shall have chastisement in this world's life, and the chastisement of the hereafter is certainly more grievous, and they shall have no protector against God. 11-5-33 and and 34

(57) (Of) God, whose is whatever is in the heavens and whatever is in the earth; and woe to the unbelievers on account of the severe chastisement. 14-1-2

(58) And they set up equals with God that they led people astray from His path. Say : Enjoy yourselves, for surely your return is to the fire. 14-5-30

(59) Then on the resurrection day, He will bring them to disgrace and say; where are those whom you set up with me, for whose sake you became hostile ? Those who are given the knowledge will say: The disgrace and the evil are this day upon the unbelievers. 16-4-27

(60) Those who disbelieve and turn away from God's way, We will add chastisement to their chastisement, because they made mischief. 16-12-88

(61) Only they forge the lie who do not believe in God's communications, and these are the *liars*.

(62) It may be that your Lord may have mercy on you, and if you again return (to disobedience) we too will return (to punishment), and we have made hell a prison for the unbelievers, 17-1-8

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जयदेव आर्य्य
एम.ए. वेदाचार्य

(63) And that those who do not believe in the hereafter, we have prepared for them a painful chastisement. 17-1-10

(64) Do not set up with God any other God, lest thou sit down despised and neglected, 7-2-22

(65) This is of what thy Lord has revealed to thee of wisdom, and do not set up any other God with God lest thou shouldst be thrown into hell, chained, cast away. 17-4-39

(66) And warn those who say: God has taken a son. They have no knowledge of it, nor had their fathers; a grievous word it is that comes out of their mouths; they speak nothing but a *lie*. 18-1-4 and 5

(67) And say: The truth is from your Lord, so let him who please believe, and let him who please disbelieve; we have prepared for the iniquitous a fire, an enclosure of which shall encompass them about; and if they cry for water, they shall be given water like melton brass which will scald their faces; evil the drink and ill the resting-place. 8-4 29.

(68) What! do then those who disbelieve think that they can take my servants to be guardians besides me? We have prepared hell for the entertainment of the unbelievers. 18-12-102

(69) So by thy Lord! we shall certainly gather them together and the devils, then shall we cause them to be present round hell on their knees. Then we will draw forth from every sect of them him who is most exorbitantly rebellious against the Beneficent God. Again we do know best those who deserve most to be burned therein. 19-5-68, 69 & 70

(70) And thus do we recompense him who is extravagant and does not believe in the communications of his Lord; and certainly the chastisement of the hereafter is severe and more lasting. 20-7-127

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(71) Had those who disbelieve but known (of the time) when they shall not be able to ward off the fire from their faces nor from their backs nor shall they be helped. 21-3-39

(72) And whoever of them should say, I am a god besides Him, such a one do we recompense with hell; thus do we recompense the unjust. 24-2-29

(73) Surely you and what you worship besides God are the fire-wood of hell; to it you shall come. 21-7-98

Had these been Gods, they would not have come to it, and all shall abide therein. For them therein shall be groaning and therein they shall not hear. 21-7-99 and 100.

(74) These are two adversaries who dispute about their Lord; so for those who disbelieve are cut out garments of fire; boiling water shall be poured over their heads. 22-2-19

With it shall be melted what is in their bellies and (their) skins as well. And for them are whips of iron. Whenever they will desire to go forth from it, from grief, they shall be turned back into it, and taste the chastisement of burning. 22-2-20, 21 and 22

(75) Those who disbelieve and hinder (men) from God's way and from the sacred mosque which we have made equally for all men, (for) the dweller therein and (for) the Visitor, and whoever shall incline therein to wrong unjustly, we will make him taste a painful chastisement. 22-3-25.

(76) And those who strive to oppose Our communications shall be the inmates of the flaming fire. 22-7-51

And those who disbelieve shall not cease to be in doubt covering it until the hour overtakes them suddenly, or there comes on them the chastisement of a destructive day. 22-7-55

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(77) That is because God is the Truth, and that what they call upon besides Him—that is *false, the falsehood,* and because God is the High, the Great. 22-8-62

And when our clear communications are recited to them, thou wilt find denial on the faces of those who disbelieve; they almost spring upon those who recite to them Our communications. Say: Shall I inform you of what is worse than this ? The fire. God has promised it to those who disbelieve; and how evil the resort ! 22-9-72

(79) And fight in defence of God's true religion, as it behoveth you to fight for the same. 22-10-78

(80) Think not that those who disbelieve shall escape in the earth, and their abode is the fire; and certainly evil is the resort. 24-7-57.

(81) Then we said: Go you both to the people who reject our communications; so we destroyed them with utter destruction. 25-4-36

Or dost thou think that most of them do hear or understand ? They are simply as cattle, nay, they are straying farther off from the path. 25-4-44

(82) If we had pleased, we had sent a preacher unto every City, wherefore do not thou obey the unbelievers; but oppose them herewith, with a strong opposition. 25-5-52

(83) So call not upon another god with God, lest thou be of those who are chastised. 26-11-213

(84) As to those who do not believe in the hereafter, we have made their deeds fair seeming to them, but they blindly wander on. These are they who shall have an evil chastisement, and in the hereafter they shall be the greatest losers. 27-1-4 and 5

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(85) And it will be said: Call your associate-god's. So they will call upon them, but they will not answer them, and they shall see the chastisement; would that they had followed the right way! 28-7-64

(86) And those who disbelieve in the communications of God and His meeting despair of my mercy, and these it is that shall have a painful chastisement. 19-3-23

(87) They ask to hasten on the chastisement, and surely hell encompasses the unbelievers; On the day when the chastisement shall cover them from above them, and from beneath their feet; and He shall say: Taste what you did. 29-6-54 and 55

(88) And who is more unjust than one who forges a lie against God, or gives the lie to the truth when it has come to him? Will not in hell be the abode of the unbelievers? 29-7-68

(89) And as to those who disbelieved and rejected our communications and the meeting of the hereafter, these shall be brought over to the chastisement. 30-2-16

(90) And when our communications are recited to him, he turns back proudly, as if he had not heard them; as though in his ears were a heaviness, so announce to him a painful chastisement. 31-1-7

(91) And whoever disbelieves, let not his disbelief grieve thee; to us is their return, then will we inform them of what they did, for God is the knower of what is in the breasts. We give them to enjoy a little, then will we drive them to a severe chastisement. 31-3-23 and 24

(92) This is because God is the Truth, and that which they call upon besides Him, is the falsehood, and that God is the High, the Great. 31-4-32

(93) And none denies our signs but every perfidious ungrateful one. 31-4-32

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(94) And as for those who transgress, their abode is the fire; whenever they desire to go forth from it, they shall be brought back into it, and it will be said to them : Taste the chastisement of the fire which you called a lie. And certainly we will make them taste of the nearer chastisement before the greater chastisement, that happily they may burn. 32-2-20 & 21

(95) Those who speak evil things of God and His apostle, God has cursed them in this world and the hereafter, and he has prepared for them an abasing chastisement. 33-7-57

(96) So God will chastise the hypocritical men and the hypocritical women and the polytheistic men and the polytheistic women, and God will turn (mercifully) to the believing men and the believing women, and God is Forgiving, merciful. 33-9-73

(97) And those strive hard in apposing our communications, these it is for whom is a painful chastisement of an evil kind. 34-1-5 and 34-5-38

(98) Those who disbelieve shall have a severe chastisement, and those who believe and do good shall have forgiveness and a great reward. 35-1-7

(99) This is the hell with which you were threatened. Enter into it this day because you disbelieved. On that day we will set a seal upon their mouths, and their hands shall speak to us, and their feat shall bear witness of what they earned. And if we please we would put their eyes, then they would strive to get first to the way, but how should they see? And if we please we would transform them in their place, then they would not be able to go on, nor will they return. 36-4-63 to 67

(100) Gather together those who were unjust and their associates, and what they used to worship besides God, then lead them to the way to hell. 37-2-22 and 23

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(101) Aye ! My communications came to thee but thou didst reject them, and thou wert proud and thou wert one of the unbelievers. And on the day of resurrection thou shalt see those who lied against God : their faces shall be blackened. Is there not in hell an abode for the proud. 39-6-59 and 60

(102) And those who disbelieve shall be driven to hell in companies; until, when they come to it, its door shall be opened, and the keepers of it shall say to them : Did not there come to you apostles from among you reciting to you the communicatione of your Lord and warning you of the meeting of this day of yours ? They shall say : Yea. But the sentence of punishment was due against the unbelievers. It shall be said : Enter the gates of hell to abide therein, so evil is the abode of the proud. 39-8-71 and 72

(103) And thus did the word of thy Lord prove true against those who disbelieved that they are the inmates of the fire. 4-1-6

(104) So we will make those who disbelieve taste a severe chastisement, and we will reward them for their evil deeds they used to do. That is the reward of the enemies of God, the fire; for them therein shall be the house of long abiding : a requital for their denying our communications. 41-4-27 and 28

(105) Who hears the communications of God recited to him, then persists proudly as though he had not heard them; so announce to him a painful chastisement and when he comes to know of any of Our communications, he takes it for a jest ; these it is that shall have abasing chastisement.

Before them is hell, and there shall not avail them aught of what they earned, nor those whom they took for guardians besides God, and they shall have a grievous chastisement. 45-1-8 to 10

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(106) And for those who disbelieve, there is destruction. and he has made their deeds ineffective.

That is because they hated what God revealed, so he rendered their deeds null. 47-1-8 and 9

(107) (Are there) like those who abide in the fire and who are made to drink boiling water, so it rends their bowels asunder. 47-2-15

(108) And whoever does not believe in God and his apostle, then surely we have prepared burning fire for the unbelievers 48-2-13.

(109) Mohammad is the apostle of God: and those who are with him are fierce against the unbeliever, (but) compassionate towards one another. 48-4-29

(110) Who sets up another god with God ; so do cast him into severe chastisement. 50-2-26

(111) When the hypocrites come to thee, they say, we bear witness that thou art God's apostle; and God knows that thou art His Apostle, and God bears witness that the hypoerites are liars. They make their oaths a shelter, and thus turn away from God's way ; evil is that which they do. That is because they believed, then disbelieved, so a seal was set upon their hearts and they do not understand. And when thou seest them, their persons will please thee, and if they speak, thou wilt listen to their speech ; (they are) as if they were big pieces of wood clad with garments ; they think every cry to be against them. They are the enemy, so beware of them ; may God destroy them, whence are they turned back. 63-1-1 to 4

(112) And those who disbelieve and reject our communications are the inmates of the fire, abiding therein; and evil is the resort. 64-1-10

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(113) But obey not any who is a common swearer, a despicable fellow, a defamer, going about with slander; who forbiddeth that which is good, who is also a transgressor, a wicked person, cruel, and besides this, of spunious birth : although he be possessed of wealth and many children : when our signs are rehearsed unto him he saith, they are fables of the ancients. We will stigmatize him on the nose.

(114) Lay hold on him, then put a chain on him, then cast him into the burning fire. Then thrust him into a chain the length of which is seventy cubits. For he did not believe in God, the Great. 69-1-30 to 33

(115) (It is) only a delivering (of communications) from God and his messages ; and whoever disobeys God and His Apostle, he shall have the fire of hell, to abide therein for long ages. 72-2-23 and 24

(116) And leave me and the rejecters, the possessors of ease and plenty, and respite them a little. With us as are heavy fetters and a flaming fire, and food that chokes and a painful chastisement, 73-1-11 to 13

(117) What is then the matter with them, that they turn aside from the reminder, as if they were asses taking fright, that had fled from a lion. 74-2-49 and 50

(118) We have prepared for the unbelievers chains and shackles and a burning fire. 76-1-4

(119) They shall not taste any refreshment therein or any drink, except boiling water and fitting corruption a fit recompense (for their deeds) ! For they hoped that they should not be brought to an account and they disbelieved our signs (communications) accusing them of false hood. 78-1-24 to 27

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जयदेव आर्य्य

(120) And on many faces on that day shall be dust ; darkness shall cover them, these are they who are unbelieves, the wicked. 80-1-40 to 42

(121) Nay ! those who disbelieve give the lie to the truth ; and God knows best what they hide ; so announce to them a painful chastisement 84-1-22 and 23

(122) Those who disbelieve from among the followers of the Book and the idolaters shall be in the fire of hell abiding therein ; they are the worst of creatures. 98-1-6

(123) The hands of Abu Laheb shall perish. and he shall perish. His riches shall not profit him, neither that which he hath gained. He shall go down to be burned into the flaming fire; and his wife also, bearing wood, having on her neck a cord of twisted fibres of a palm tree 111 Surat 1 to 5

[Abu Lahab was the uncle of Mohammed Saheb.]

Printed by L. Seva Ram Chawla
at the Chandra Printing Press, Burn Bastion Road, Delhi.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

५९५

Anti-Foreign-Missionary-Conference

DELHI.

(Held on 29-8-54 at Dewan Hall, DELHI.)

Presidential Address

By
Kaviraj Harnam Das B. A.

This thought-provoking address is Published by:—
Sarvadeshik Arya Pratinidhi Sabha, DELHI.
[*2nd Impression*]

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Worthy Chairman Revered Goswami Ji, Ladies and Gentlemen,

I feel greatly honoured by the opportunity you have given me to address this important gathering, the Anti-Foreign-Missionary Conference. In a Secular State like India where there is full freedom of speech and religion, it seems odd for the people to hold such a conference. As a matter of fact, there would have been no need of such a congregation, had the missionaries, who preach their religion, confined themselves to the preaching of their doctrines alone, and that too, without resorting to objectionable and reprehensible means. But the facts are otherwise. Like all the Western nations which have conquered and colonized other countries in order to exploit their wealth under the pretext of discharging their God-appointed mission of civilising the Coloured people (which they term as white-man's burden), these missionaries, too, insinuate themselves into other countries, under the innocent garb of serving humanity and giving the spiritually-blind the glimpse of the Divine Light which, according to them, the Son of God has shown them, but what they actually do is to proselytise the ignorant and simple people by fair or foul means and denationalize them as far as po

Christianity is a very old religion in India, dating back to the second century A. D. It existed in some parts of South India long before the advent of any foreign power. But that was Indian Christianity, harmless and acclimatized. The advent of foreign powers gave it a new turn. History bears testimony to the fact that when the Portuguese missionaries stepped on the soil of India, they repeated the atrocities of Inquisition, desecrated the temples, demolished shrines and broke the holy images, practised forced conversion, molested women, and tortured, killed or burnt alive people who refused to give up their own faith.

In this connection I may cite a few specimens of the Ordinances issued by the Portuguese Government from time to time. They are retranslated from a Hindi translation of the book "Goan Hindus and the Portuguese Republic" by a Chief Justice of Goa named Shree Norovyaji. These Ordinances will give you a glimpse of the *humane* methods which foreign Christians employed in bringing about the conversion of the hearts of people whom they dubbed as heathens and heretics.

(1) Ordinance of 25th March, 1559—

"The temples of the Hindus should be demolished. All the idols should be destroyed. In future the Hindus should not celebrate

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

any idol-festival. The property of one who is guilty of celebrating such a festival would be confiscated and he would be compelled to do menial work on a ship". This last punishment was probably intended to make him an outcaste according to the old superstition of pollution by sea-voyage and thus bring him into the fold of Christianity easily.

(2) Ordinance of 4th December, 1567 —

"Hindus should not keep their holy scriptures in their homes. No Hindu should attend a meeting announcing the exposition of Hindu scriptures by a Brahmana or the holding of Hari-Kirtana (Praise of the Lord). Anyone who attends such a meeting would be severely punished or flogged on the back".

Besides these and other soul-stirring Ordinances, the Christian zealots vied with each other in destroying the scriptures and criminally assaulting the Hindu ladies. In 1548 Frey Zuvaband Albouquerque began in right earnest and full vigour the task of destroying the Hindu scriptures. He burnt thousands of manuscripts. The Christian missionaries captured the Hindu ladies in order to ravish them. And after satisfying their lust they burnt them alive. Their life was spared only if they agreed to embrace Christianity.

The East India Company, however, during the early period of its occupation did not countenance the proselytising activities of the missionaries, for they feared that the converts would become their equals in status and might prove troublesome. But at about the close of the 18th century, Napoleon Bonaparte declared that preaching of Christianity among the subject countries would consolidate the hold of Imperial nations over their Empires. Consequently, in 1813 when the Charter of the East India Company was renewed, missionaries were given permission to preach Christianity and make converts. From that time onwards it became the consistent policy of the British Government in India to encourage the spreading of Christianity and give all sorts of facilities for its propagation. The Governor General was given full power to donate any amount of money to any Christian denomination and that amount was not subject to the vote of the Legislature. Free or half-fare concessions were given to Christian missionaries on the railway but were denied to the missionaries of other religions. The foundation-stones of Y.M.C.A.'s and Y.W.C.A.'s, wherever they were established, were usually laid by Governors or Viceroys and large tracts of land were granted to the missions either free or at a nominal price. During famines and floods the British Government in India officially encouraged, and gave facilities to the Christian missionaries to go to the affected areas and bring the stricken victims to their enclaves and make them Christians under the pretext of giving relief to

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

them. Shree Pranjape, the Principal of Fergusson College, Poona, wrote in his book "The Crux of the Indian Problem" that after the big famine of Bikaner in 1897, the Christian population of India had almost doubled by the conversion of the helpless victims of that calamity by the Christian missionaries who were sent there by the Government for relief work.

The activities of the Christian missionaries did not remain confined to conversion alone. They had begun the study of Sanskrit with the impious motive of reviling and vilifying the Hindu religion and thus bringing it into contempt of its own adherents. Even in the field of scholarship the Christian bigotry could not fail to exhibit itself in the writings of foreign scholars. Prof Max Muller (1860) said "History seems to teach that the whole human race required a gradual education before in the fulness of time, it could be admitted to the truths of Christianity." What check to offer insult to the intelligence of the whole world? In 1879, Monier Williams, who later was appointed Professor of Sanskrit at the University of Oxford, wrote, "When the walls of the mighty fortress of Brahmanism are encircled, undermined, and finally stormed by the soldiers of the Cross, the victory of Christianity must be signal and complete." Even as late as 1914, Prof. Richard Garbe, a German scholar, wrote a book for the missionaries entitled 'Indian Christentum", which gives ample evidence of his religious bias and not of a true scholarly spirit.

Even to this day I clearly remember the words of Rev. Ewing, the then Principal of the Forman Christian College, Lahore, who used to say, "If we are unable to convert the upper-class Hindus to Christianity, we will not allow them to remain Hindus at least.' And his boast has not proved to be vain! Rev. Dr. Forman, the founder of that College used to say to the Hindus, "Tum Hindu hai, tum jahannam men jaega". Only a bigoted foreign Christian missionary could have the audacity of using such impertinent and insulting language.

The climax of hatred against Hinduism is seen in the highly mischievous and provocative remarks in popular and light literature like Ripley's "Believe it or Not". It says, "The curse of India is the Hindu religion. More than 200 million people believe in a monkey mixture of mythology that is strangling the nation. He who yearns for God in India soon loses his head as well as his heart." It is surprising that our National Government does not place a ban on the entry and sale of such revolting trash in this country.

Among other heinous tactics of conversion may be mentioned the time-serving tricks of the missionaries of sometime presenting Christ as the incarnation of the Lord Krishna in order to rouse faith in the hearts

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

of the credulous country people, and at others to depict Lord Krishna in the worst possible colours as the lifter of the clothes of bathing women and thereby create hatred for him in the minds of the simple folk. In schools they had been kidnapping young boys and girls and deporting them to far off places. In hospitals they tell the suffering patients that all the cures are due to the blessings of Christ who is the Son of God and on whom they should bring their faith. In this way they play upon the superstitions and gullibility of the weak-minded patients and make them their easy prey.

Here I may mention in passing, that my remarks do not apply to all the Christian missionaries. There have been some good and noble souls among them who were really inspired by the spirit of service to humanity. One of such exalted personages was the late Rev. C. F. Andrews who worked with Mahatma Gandhi for the freedom of India and welfare of its people. There were others who studied the ancient scriptures of India with genuine interest and true inquisitive spirit, and being impressed by the sublimeness of their teachings and ideals, gave up their missionary calling and zeal, and adopted the Indian faith and way of living. Among them may be mentioned the name of the late Rev. Stokes, who married a hill woman in the beginning in order to propagate Christianity amongst the hill tribes more effectively, but being influenced by the teachings of the Upanishads and enamoured by Indian culture, his mind was converted and he adopted the Indian faith and changed his name to Satyananda.

Now, the question arises (and it is generally overlooked) why the activities of the missionaries are solely concentrated on the depressed classes, Harijans, and backward tribes of the frontier provinces ? Does it mean that the upper and middle classes of educated and urban Indians, Hindus, Sikh or Mohammedans, do not require the saving of their souls ? No, the fact is that the missionaries have not come from thousands of miles abroad merely for 'saving the souls of the people'. Their real motive is to weaken the growing solidarity of India into a strong nation and make it safe for the bodies and souls of the imperialists. The educated and upper classes in India have grown shrewd enough to see through the political game of these *innocent* missionaries and have become too wary to fall an easy prey to their wiles.

I am sure there are Indian Christian missionaries enough to cater to the spiritual needs of Indian Christians. Why should there have been such an extra ordinary influx of foreign missionaries, mostly Americans, especially after the attainment of freedom by India ? Evidently, religious preaching is not their real motive; it is to take undue advantage of our secularism and exploit the freedom of speech and

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

religion granted by our constitution for encouraging fissiparous tendencies and weakening our nationalism. Countries like Egypt, Turkey, Iran and Afghanistan are safe from the mischievous and undermining activities of the Christian missionaries because conversion is out of question there. The most dangerous thing about Christian conversion in India is that it isolates the converts from their national life and from the rest of their countrymen. The missionaries have established their separate Mission Compounds and Christian Colonies in which the new converts are made to live in segregation from their kith and kin. Their names and dress are changed to the European patron and in many cases their language is replaced by English. They are not allowed to mix freely with their former relatives and friends for fear of their relapse into their old faith. In this way the converts become foreigners in their own country; they adopt foreign manner and customs, love foreign culture, and finally, losing their sense of patriotism, begin to have extra-territorial sympathies. This is corroborated by the past behaviour of the Christian community as a whole when it kept aloof from the freedom movement of 1857 and from the movement of boycott of the reception of the Prince of Wales in 1921. The clamour of certain Christian missions and people for the retention of the Portuguese pockets intact on the plea of 'Christianity in danger', is nothing else but an expression of that mentality.

In the last session of the Hindu Maha Sabha, Shri N.C. Chatterjee said in his Presidential address, "We were distressed to know from a venerable Swamijee connected with the Rama Krishna Mission that in the birth-place of Bhagavan Shankaracharya objection has been raised by the Christian missionaries to the establishment of Shankara Vedanta College because the village, in which the Great Shankara was born, had been wholly converted into a Christian village".

It is very disquieting that the subversive and anti-national activities of foreign missionaries have increased manifold during the past few years of our freedom. According to reports received by Gosawmi Ganesh Datta ji, these missionaries wean the ignorant and primitive tribes from their indigenous faith by sophisticating and duping them with dishonest, wicked and vile tricks, unworthy even of a lowly street juggler. For instance, they make a metal-image of Christ and wooden-i mages of Indian gods and put them into the fire. Again, at another time, they make a wooden image of Christ and metal images of Indian gods, and throw them into the water. As the image of Christ survives in the one case and floats in the other and the images of Indian deities are either burnt or drowned, the crooked missionaries declare the Indian gods to be false, and Christ, the Son of God, to be true, because his image had stood the ordeals by its miraculous powers. What a mean sort of idolatory, and with a sinister design at that!

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

They also preach against the Government, and incite the tribal people to rebellion and to demand a separate State. They act as spies of foreign powers and steal important State secrets and documents and convey them to their parent countries. The demand of an independent Naga State and Jhar Khand and the hostile reception of our beloved Prime Minister in Naga territory are the living and eloquent proofs of the extent to which these missionaries have gone in undermining the solidarity of India. The danger becomes all the more alarming when these missionaries come to our country in the garb of technicians, Planning experts, Engineers, Health and Education Advisers, and tourists for, in these capacities, they come in contact with the labourers, workers, artisans and the public in general. They question these unsuspecting people about the relative blessings of the British Raj and the present Government. It is a matter of common knowledge that partition of the country has brought untold misery in its wake to our countrymen, especially to the refugees. In spite of their Herculian efforts to alleviate the distress of the victims of this national calamity, the National Government has not been able to remove all the troubles of all the people and satisfy all their requirements or demancs. It is the common habit of an average man in the street to blame the Government for all his actual or imaginary troubles. These foreign missionaries, open as well as disguised, who enjoy the hospitality of, or receive remuneration for their services from, our National Government, abuse their privileges by exploiting the frustration of the disgruntled people and indirectly creating in their mind, by contrast, a hatred for the present Gvernment and a longing for the return of the foreign rule.

In short, foregin missionaries, malafide technicians and travellers—all serve as fifth-columnists in India and are a real menace to the unity of India and the integrity of its territories. Let it become clear to such people and to the world at large that India is wide awake to their mischievous and subversive activities and would never allow them to succeed in their unholy designs. Our country does not stand in need of their service or spiritual preaching. We have our own religion, our own culture and our own way of life. The Father of the Nation, Mahatma Gandhi, had long ago declared that foreign missionaries cannot serve India. nor do they work in the spirit of service. As they preach and propagate Christianity through colleges and hospitals, the sooner they quit this country, the better for us. My nation and its ancient Aryan culture has no need for a foreign religion. Our culture is perfect in every respect.

It is indeed audacious on the part of America (and for the matter of that of any foregin country) to send its missionaries to the motherland of Swami Vivekananda who, in the Parliament of Reilgions held in Sept. 1893, at Chicago, their own homeland, made, such remark-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ably sublime and spiritually exalted speeches that the Christians felt the foundations of the citadel of Christianity to be shaking under that storm and their souls to be re-born in the New Light from the East. The President of the Science Section of that Parliament, the Hon. Merwin Marie Snell remarked, "One of the chief advantages of this Parliament has been in the great lesson which it has taught the Christian world, especially to the people of United States, namely, that there are other religions more venerable than Christianity which surpass it in philosophical depth, in spiritual intensity, in independent vigour of thought, and in breadth and sincerity of human sympathy." The New York Herald spoke of Swami Vivekananda in these words, viz. "Vivekananda is undoubtedly the greatest figure in the Parliament of Religions. After hearing him we feel how foolish it is to send missionaries to this learned nation." Dr. Anne Besant, who attended that Parliament, overheard somebody saying, "That man a heathen ? and we send missionaries to his people ? It would be more fitting that they should send missionaries to us."

Ladies and Gentlemen ! I have tried to depict a true picture of the activities of foreign missionaries by putting together some stray facts which I could hastily gather in a short time at my disposal. It is not a small and insignificant matter which may be brushed aside with complacence. The danger is real and grave and the enormity of it would only be realized when all of a sudden we are faced with a erisis. Let us therefore be alert and gird up our loins to counteract the mischief that has already been done and check its repetition in the future. Today we have assembled here by the courtesy of the All India Harijan League, which has arranged for this conference.In our present Bharat, under the worthy Premiership of Shri Jawahar Lal Nehru,the Harijans enjoy equal privileges with the other nationals of the country, so much so that there are scores of Harijan Members of the Parliament and hundreds of members in the Provincial legislatures. The Harijans are grateful to the National Government for having removed the time-long invidious distinction of high and low which had separated brother from brother, but much more still remains to be done for them. The facts and figures of the present time reveal that it is the Harijans and other backward classes that are being duped and lured by the wiles of the foreign Christian missionaries and are being alienated from their faith as well as loyalties.This conference, therefore, prays to the Government to take prompt and effective measures by which these anti-national and subversive activities of foreign missionaries are stopped and by which they are made to quit this land immediately. Their infiltration into this country in future should also be stopped.

In the end I request my audience on behalf of this Conference to give us their full support and co-operation in the patriotic and noble task which we have taken into our hand.

—*Kaviraj Harnam Das*

Printed at Sarvadeshik Press, Delhi.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वेदप्रकाश

वर्ष ५ अङ्क ८ [मासिक पत्र विशेषांक] वार्षिक मूल्य २)

फाल्गुन सं० २०१३ मार्च १९५७ विदेशों से ४ शि०

जयदेव आर्य

ईसाई मिशनरी गतिविधि नियोगी जांच समिति

मध्य प्रदेश

की

सरकारी रिपोर्ट

जयदेव आर्य

२० नः पै०

इस अङ्क का मूल्य [redacted]

प्रकाशक [illegible] सत्यानन्द

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

महात्मा आनन्द स्वामी जी की अमृत कथा

पढ़िये मूल्य ॥=) एक प्रति के लिए डाक खर्च सहित ।॥) भेजें। १२ प्रतियों के लिए ६) तथा डाक खर्च १॥=) कुल खर्च ७॥=) भेजें।

महात्मा जी की अन्य पुस्तकें

प्रभुदर्शन २॥) तत्त्वज्ञान ३)
प्रभु भक्ति १।) सजिल्द १॥) गायत्री कथा ॥)

वेद प्रकाश के पिछले दो विशेषांक

बाल्मीकि रामायण (सचित्र)

सम्पादक:—प्रेमचन्द शास्त्री
स्नातक महाविद्यालय, ज्वालापुर
भूमिका लेखक:—श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय
मूल्य १२) रियायती मूल्य ८)

दयानन्द ग्रन्थ संग्रह

महर्षि दयानन्द के २० ग्रन्थों का अद्वितीय संग्रह। साथ में सात असली फोटो।
सजिल्द मूल्य ४॥) रियायती मूल्य ३॥)

यजुर्वेद का सरल भावार्थ

उत्तर प्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा ने यह पुस्तक स्वामी जी के भाष्य के आधार पर २५ विद्वानों की समिति बनाकर सम्पादित करवाया था। दो भागों में सम्पूर्ण। कपड़े की पक्की जिल्द। बढ़िया कागज। सुन्दर छपाई। मूल्य ६) मात्र।

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, देहली

रिपोर्ट का विषय क्रम

भाग १

अध्याय १—प्रस्तावना—— १
अध्याय २—परिस्थितियां जिनके कारण समिति नियुक्त हुई— ३
अध्याय ३—मध्य प्रदेश के आदिवासी तथा अन्य जातियां— ७

भाग २

अध्याय १—मध्य प्रदेश और भारत में मिशन— ९
अध्याय २—पुरानेमध्यप्रदेश तथा विलीन हुए राज्यों में ईसाई मिशन का इतिहास— ९
अध्याय ३—युद्धोपरान्त ईसाइयों की विश्व नीति— १८

भाग ३

अध्याय १—अन्य देशों में धार्मिक स्वतन्त्रता— २०
अध्याय २—भारतीय विधान के अन्तर्गत धार्मिक स्वतन्त्रता— २८
अध्याय ३—मध्यप्रदेश में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद ईसाई मिश्नरियों की हरकतें— ३०

भाग ४

अध्याय १—जांच से प्राप्त निर्णय—४२
अध्याय २—समिति की प्रमाण सहित सिफारिशें— ४३
अध्याय ३—संक्षेप में कमेटी की सिफारिशें— ५०

मध्यप्रदेश की ईसाई मिश्नरी गतिविधि नियोगी जांच समिति की रिपोर्ट

एक प्रति का मूल्य ॥) २५ प्रतियां एक साथ मगाने पर ।=) प्रति। मूल्य अग्रिम आ जाने पर डाक खर्च माफ।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जयदेव आर्य

ईसाई मिश्नरी गतिविधि नियोगी जांच समिति, मध्य प्रदेश की

सरकारी रिपोर्ट

जयदेव आर्य

संक्षिप्त हिन्दी संस्करण

—★—

ईसाई मिश्नरी गतिविधि जांच समिति की नियुक्ति मध्यप्रदेश सरकार के प्रस्ताव संख्या ३१८-७१६ वी० कान०, दिनांक १४ अप्रेल, १९५६ के अनुसार हुई थी।

मध्य प्रदेश सरकार के समक्ष यह बात बार बार रखी गयी कि अशिक्षित आदिवासी तथा अन्य पिछड़ी जातियों के लोग ईसाई मिश्नरियों के द्वारा या तो दबाव से या छल कपट से अथवा आर्थिक प्रलोभनों के द्वारा ईसाई बनाये जा रहे हैं। सरकार को यह भी सूचित किया गया कि गैर-ईसाई लोगों की भावना को इस प्रकार के अनैतिक उपायों से किये गये धर्म-परिवर्तन के कार्यों से, आघात पहुंचा है। ईसाई मिश्नरियों ने अपने ऊपर लगाये गये आरोपों का सरकार के समक्ष प्रतिवाद किया, साथ ही स्थानीय सरकारी कर्मचारियों तथा गैर-ईसाई लोगों के विरुद्ध उन्हें क्षति पहुंचाने का अभियोग लगाया। इस प्रकार मध्य प्रदेश सरकार को जब यह ज्ञात हुआ कि प्रत्येक पक्ष की ओर से एक आन्दोलन चलाया जा रहा है, तो जनता के हित को दृष्टि में रखकर उसने यह निश्चित करना उचित समझा कि इस सम्बन्ध में अच्छी तरह जांच की जाय। अतः उक्त समिति नियुक्त की गयी, जिसके चेयरमैन (अध्यक्ष) डा० म० भवानी शंकर नियोगी, एम० ए०, एल० एल० एम०, एल० एल० डी०, भूतपूर्व चेयरमैन, पब्लिक सर्विस कमीशन, मध्यप्रदेश तथा रिटायर्ड चीफ जस्टिस, हाईकोर्ट आफ जूडिकेचर, नागपुर नियुक्त हुए तथा जिसके सदस्य श्री घनश्याम सिंह गुप्त, बी० एस० सी०, एल० एल० बी० भूतपूर्व स्पीकर, मध्यप्रदेश विधान सभा; श्री एस० के० जार्ज, एम० ए०, बी० डी०, प्रोफेसर, कामर्स कालेज वर्धा; श्री रतनलाल मालवीय, बी० ए०, एल० एल० एल० बी०, एम० पी, मानेन्द्रगढ़; श्री भानुप्रताप सिंह गिरिराज सिंह देव, एम० पी० कोमाखान, तहसील महासमुन्द, जिला रायपुर; श्री बी० पी० पाठक, एम० ए०, एल० एल० बी०, मन्त्री मध्यप्रदेश सरकार, जनस्वास्थ्य-विभाग (पब्लिक हेल्थ डिपार्टमेन्ट) मनोनीत हुए।

उक्त समिति को सारी बातों के सम्बन्ध में भली प्रकार जांच करने का कार्य सौंपा गया तथा ऐतिहासिक तथा अन्य सभी दृष्टियों से इस समस्या का अध्ययन कर इस सम्बन्ध में उचित परामर्श भी देने को कहा गया।

समिति ने निम्नलिखित १४ जिलों का भ्रमण किया :—

१. रायगढ़, २. सरगुजा, ३. रायपुर, ४. बिलासपुर, ५. अमरावती, ६. नीमार, ७. यवतमाल, ८. अकोला, ९. बुलडाना, १०. मांडला, ११. जबलपुर, १२. बैतूल, १३. छिंदवाड़ा और १४. बालाघाट।

समिति द्वारा ७७ ईसाई केन्द्रों का निरीक्षण किया गया और प्रायः ११३६० व्यक्तियों से इस सम्बन्ध में पूछताछ की गयी। ३७५ लिखित वक्तव्य प्राप्त हुए तथा समिति द्वारा प्रत्येक केन्द्र में जाकर वहां का विवरण एकत्र किया गया। मिश्नरियों की अनेक संस्थाओं द्वारा संचालित कार्यों की असन्दिग्ध जानकारी के लिये

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

समिति ने अस्पताल, स्कूल, चर्च, कुष्ठाश्रम, छात्रावास आदि जैसी अनेक संस्थाओं को जाकर देखा, जो मध्य प्रदेश में मिशन द्वारा स्थापित हैं। समिति ने उन व्यक्तियों से तथा उन क्षेत्रों से भी सम्पर्क स्थापित किये जिनके बीच मिश्नरियों का कार्य चल रहा है। उन सभी स्थानों में जहां समिति ने भ्रमण किया, मिश्नरियों द्वारा की गयी शिक्षा तथा चिकित्सा-सम्बन्धी सेवाओं के लिये लोगों के हृदय में कोई दुर्भावना नहीं पायी गयीं। किन्तु अन्य विषयों में गैर ईसाइयों की ओर से ईसाई मिश्नरियों के विरुद्ध यह एक आम शिकायत है कि उन स्कूलों और अस्पतालों का उपयोग गैर-ईसाइयों को ईसाई बनाने में हो रहा है। वे ईसा तथा ईसाइयत के लिये कोई बुरी भावना नहीं रखते। ईसाई धर्म के प्रचार में भी उन्हें कोई आपत्ति नहीं है और न ईसाई धर्म में दीक्षा देने का ही वे विरोध करते हैं। यदि उन्हें कोई आपत्ति है तो अनुचित तरीकों के विरुद्ध है जो पादरी लोग प्रयोग में लाते हैं, जैसे कि बच्चों को निःशुल्क शिक्षा का लालच तथा अन्य सुविधायें देना और उनके भारतीय नामों के आगे ईसाई नाम जोड़ देना, ईसाई लडकियों से उनका विवाह करवा देना, कर्जा देना, अस्पतालों में ईसाई साहित्य का वितरण करना और रोगियों के लिये प्रार्थना करना इत्यादि। यह भी कहा गया है कि किस प्रकार रोमन कैथोलिक पादरी और प्रचारक लोग नवजात शिशु को ईसा के नाम पर आशीस देने जाते हैं, घरेलू झगड़ों में एक पक्ष का दूसरों के विरुद्ध साथ देते हैं, छोटे बच्चे तथा स्त्रियों को अपहृत करते हैं और आसाम के बगीचों तथा अण्डमान में भोलेभाले लोगों में ईसाइयत के प्रचार के लिये मजदूर भर्ती करते हैं। लोगों में वहां यह आम धारणा पायी गयी कि इस प्रकार से ईसाइयत के प्रचार के लिये बाहर से जो रुपया आता है उससे सन्देह उत्पन्न होता है कि अवश्य ही यह रुपया किसी विशेष राजनीतिक और धार्मिक उद्देश्य से आता है। आदिवासी तथा दूर-वर्ती जंगली क्षेत्रों में मिश्नरियों के केन्द्रित कार्यों तथा विदेशी रुपयों के बल पर उन जंगली जातियों का सामूहिक धर्म-परिवर्तन कार्य, पाकिस्तान के ढंग पर एक अलग राज्य बनाने की योजना बतायी गयी। रायगढ़ तथा सरगुजा जिलों में ईसाइयों ने कुछ छोटे सरकारी कर्मचारियों के विरुद्ध शिकायतें कीं, परन्तु अन्य जिलों में जिनमें बरार भी सम्मिलित है, कोई शिकायत नहीं सुनी गयी। रायगढ़, सरगुजा और बिलासपुर में इस समिति की जो बैठकें हुईं उनमें रेवेरेन्ड लकड़ा, रांची रेवेरेन्ड कुजूर (लूथरन मिशन) रेवेरेन्ड गुरुवचन सिंह (अमेरिकन एवेन्जिलिकल मिशन), रेवेरेन्ड मसीह (डिसाइपुल्स आफ क्राइस्ट), श्री मीन्ज (जेनरल सेक्रेटरी, कैथोलिक सभा) जैसे उल्लेखनीय ईसाई प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। श्री मीन्ज ने बोको सरदार, श्री देशपांडे, श्री बैजनाथ मिश्र और ट्राइबल वेलफ़ेयर डिपार्टमेन्ट के कार्यों की कड़ी आलोचना की। श्री जगदीश तिर्की ने जो आदिवासी झारखंड पार्टी के मन्त्री हैं, कहा कि उरावों की एकता सुरक्षित रखने के लिये झारखंड नितान्त आवश्यक है। उन्होंने और रेवेरेन्ड कुजूर ने इस आरोप का खंडन किया कि मिश्नरी स्वतन्त्र राज्य की स्थापना के आन्दोलन को उकसाते हैं। उपरोक्त शिकायतों के अतिरिक्त और कोई विशेष शिकायतें अफसरों तथा गैर-ईसाईयों के विरुद्ध नहीं थीं। परन्तु एक आम शिकायत थी कि मिशन के स्कूलों को मान्यता नहीं दी जाती। खंडवा के रेवेरेन्ड नाथ ने पादरियों की सराहना की कि उन्होंने बलाहियों को हिन्दू समाज में उनकी गिरी हुई अवस्था से उन्नत किया। समिति की बैतूल जिले की बैठक में रेवेरेन्ड इ० रमन ने और बहुत से अमेरिकन पादरियों ने सरकारी अफसर और जनता के विरुद्ध कोई शिकायत नहीं की। मौखिक तथा लिखित रूप में ईसाइयों तथा अन्य लोगों की मौखिक तथा लिखित शिकायतों के आधार पर तथा सरकारी सूत्रों एवं प्रकाशित साहित्य से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर यह आवश्यक समझा गया कि इस समस्या की अच्छी तरह छानबीन की जाय। इसके लिये एक विस्तृत प्रश्नावली प्रसारित की गई जिससे कि दोनों पक्षों को हर सम्भव तरीकों से उक्त समिति को अपना सहयोग प्रदान करने का पूर्ण अवसर मिले।

इस प्रश्नावली का जिस प्रकार स्वागत हुआ वह उत्साह-वर्धक था, जिससे ज्ञात हुआ कि जनता का और प्रोटेस्टेन्ट मिश्नरी संस्थाओं का, जो राज्य के भिन्न २ जिलों में कार्य करती हैं, इससे सहयोग है। समिति के

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कार्यालय में प्रश्नावली के जो ३८५ उत्तर प्राप्त हुए उनमें से ५५ ईसाई व्यक्तियों अथवा संस्थाओं की ओर से थे और ३३० गैर-ईसाइयों की ओर से थे। रोमन कैथोलिक चर्च के अधिकारी तथा सदस्यों ने समिति की रायगढ़, सरगुजा, बिलासपुर, रायपुर और नीमार जिले की प्रारम्भिक जांच में अपना सहयोग दिया, श्री जी एक्स० फ्रैन्सिस, सभापति कैथोलिक रिजनल कौन्सिल और श्री पी० लोब्रो, एडवोकेट, नागपुर हाईकोर्ट, दोनों ने समिति को अपना सहयोग दिया। परन्तु बाद में कैथोलिक चर्च ने अपना सहयोग स्थगित कर दिया और अपनी ओर से न केवल विरोध का वक्तव्य दिया, प्रत्युत हाईकोर्ट में समिति के विरुद्ध "मेन्डामस पिटीशन" भी दायर कर दिया। न्यायधीशों ने उक्त प्रार्थना २२ अप्रैल १९५६ को अस्वीकृत कर दी और यह निर्णय दिया कि राज्य सरकार को यह पूर्ण अधिकार है कि वह एक तथ्य-जांच-समिति नियुक्त करे और सूचना एकत्रित करे। उन्होंने यह भी कहा कि समिति के निर्माण से प्रार्थियों के मौलिक अधिकारों की कोई अवहेलना नहीं हुई है।

———

अध्याय २

परिस्थितियां जिनके कारण समिति नियुक्त हुई

अशान्ति के कारणों और पादरियों की चालों तथा परिस्थितियों का जिनके द्वारा कमेटी की नियुक्ति हुई, उल्लेख करने के पश्चात् रिपोर्ट कहती है:—

अब हम अपना ध्यान पादरियों की उन गतिविधियों की ओर ले जाते हैं जो सरगुजा और उदयपुर इत्यादि राज्यों के एकीकरण के समय और बाद में विद्यमान थीं। पहले उल्लेख हो चुका है कि इन राज्यों के पहले नरेशों ने पोलेटिकल डिपार्टमेन्ट की स्वीकृति से पादरियों का प्रवेश उक्त राज्य में नितान्त वर्जित कर रखा था और ऐन्टी कन्वर्सन ऐक्ट (धर्म-परिवर्तन-निरोध कानून) पास कर रखे थे। इन कानूनों के रहते हुए भी पादरी व्यक्तिगत रूप से, विशेषकर रेवेरेन्ड स्टेनिस्लस टिग्गा, जो एक रोमन कैथोलिक पादरी थे और जिनका हेड क्वार्टर (सदर मुकाम) रांची में था, लुक छिप कर वहां प्रवेश करते रहे और धर्म की आड़ में प्रचार करते रहे। भूमि का वह भाग जिसमें सरगुजा, कोरेया, जशपुर, उदयपुर, चंगभाकर और उड़ीसा के कई छोटे छोटे राज्य सम्मिलित हैं, बिहार और उड़ीसा राज्यों से घिरा हुआ है। इसकी आबादी का अधिक हिस्सा आदिवासियों का है। यह अंचल जंगलों और खनिज पदार्थों से भरपूर है। विदेशी पादरी बेलजियम और जर्मनी से आये और बिहार तथा उड़ीसा में और जशपुर में १८३४ में बस गये। वे बहुत से लोगों को ईसाई धर्म में दीक्षित करने में सफल हुए। अपनी सत्ता को बढ़ाने तथा संगठित करने और संभवतः इस भाग में विदेशियों के पांव जमाने के लिये, यह कहा जाता था कि पादरी लोग आदिवासियों को अन्य जातियों से पृथक रखने के सम्बन्ध में प्रचार किया करते थे और इस प्रकार झारखंड आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। इस आन्दोलन को आदिवासियों स्थानीय ईसाईयों और मुसलमानों का समर्थन प्राप्त था। पादरियों ने इस आन्दोलन को अपने प्रभाव में रखने के लिये इस में राष्ट्रवादी लोगों को सम्मिलित नहीं होने दिया। १९३८ में पाकिस्तान की मांग के साथ साथ आदिवासीस्थान की मांग ने भी जोर पकड़ा। कहा जाता है कि मुस्लिम लीग ने इस प्रचार कार्य के लिये एक लाख रुपया प्रदान किया। जब भारत में स्वतन्त्रता का उदय हुआ तब आदिवासी स्थान आन्दोलन और भी तीव्र कर दिया गया, विशेष कर इस दृष्टि से कि पूर्वी बंगाल को हैदराबाद से संयुक्त करने के लिये एक कोरीडोर (गलियारा) प्राप्त किया जा सके और जिसका उपयोग भारत और पाकिस्तान के बीच युद्ध के समय एक सैनिक अंचल के रूप में किया जाय। ईसाई लोगों ने जिनको रांची जिले के पादरियों की सहायता प्राप्त थी, अपने आप को रैयत वर्ग के रूप में संगठित किया। ऊपर से तो वे सामाजिक सेवा का स्वांग रचते रहे, किन्तु भीतर से वे आदिवासी आन्दोलन का संचालन करते थे। बिहार के पक्ष में यह आन्दोलन, प्रारम्भ में बिहार के रांची जिले के रोमन कैथोलिक लूथरन पादरियों की प्रेरणा से उठाया गया था, परन्तु शीघ्र ही उसको दूसरे ईसाई और गैर-ईसाई आदिवासियों तथा बिहार के कांग्रेसी सदस्यों का भी समर्थन प्राप्त हो गया। यह भी कहा जाता है कि उस समय के बिहार के प्रधान मन्त्री और

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

माल मन्त्री की भी इस में सहानुभूति थी, इसी लिये कुछ बिहार कांग्रेस के सदस्य तथा रेवेरेन्ड लकड़ा जो लूथरन मिशन के मुखिया थे और एक जमीदार, इन लोगों की एक संयुक्त पार्टी ने सन् १९४८ की जनवरी के दूसरे सप्ताह में सरगुजा का निरीक्षण किया, ताकि इन राज्यों को बिहार में सम्मिलित करने के लिये जनता का बहुमत एकत्रित किया जा सके। उक्त पार्टी के दो सदस्यों ने सरगुजा जिले के सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस को सूचना दी कि वे बाकी के सदस्यों के साथ पूर्णतया सहमत नहीं है। उन्होंने सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस को यह भी बताया कि पाकिस्तान और कुछ अमेरिकन तथा जर्मन पादरियों के बीच यह षडयन्त्र रचा गया है कि वे आदिवासियों को इसलिये उकसाएं कि वे अपनी भूमि पर, जो प्रायः झारखंड के नाम से प्रसिद्ध है, जबर्दस्ती अधिकार जमा लें। अक्तूबर १९४८ में सरगुजा के गौंथिया नाम के एक व्यक्ति को उसकी आपत्तिजनक गतिविधियों के कारण पब्लिक सेफ्टी ऐक्ट के अन्तर्गत नजरबन्द कर दिया गया था। उसके घर की तलाशी हुई और उसमें उसके यहाँ से जो चिट्ठियां मिलीं, उनसे पता चला कि वह पादरियों द्वारा संगठित झारखंड आन्दोलन का एक उग्र कार्यकर्ता है। यह आन्दोलन एक अलग आदिवासी राज्य स्थापित करने के लिये चलाया गया था। अन्त में गौंथिया को एक लिखित रूप में यह वचन देने पर कि वह आपत्तिजनक कार्यवाहियों में भाग नहीं लेगा, छोड़ दिया गया।

उदयपुर के पड़ोसी राज्य में ९ जुलाई १९४६ को "ऐन्टी कन्वर्सन ऐक्ट" लागू कर दिया गया। यह उक्त राज्य के नरेश के दिसम्बर १९४४ में सिंहासनारूढ़ होने के डेढ़ साल बाद की बात है। परन्तु रोमन कैथोलिक पादरियों की अनुचित कार्यवाहियों को रोकनें के लिये उस समय के पोलेटिकल एजेन्ट ने २८ फरवरी १९४१ के आर्डर के द्वारा रोमन पादरियों के प्रवेश को केवल विशेष शर्तों पर ही स्वीकृति दी थी।

जो रोक राज्य के पहले शासन से लगी हुई थी, अब भी चालू थी और सरकार के पास यह सूचना थी कि ईसाई पादरी उदयपुर राज्य में आपत्तिजनक राजनैतिक कार्यों में भाग ले रहे हैं, जिससे दो राष्ट्रों की नीति उभड़ रही है, जिसके परिणाम स्वरूप अभी ही भारत के इतिहास में भयानक उपद्रव घटित हुए हैं। यह विचार कर कि ऐसी भयानक गतिविधियां किसी भी उत्तर-दायित्व पूर्ण शासन के लिये सह्य नहीं हैं, सरकार इन रोकों को बिल्कुल ही उठा देने को तैयार न थी। पिछली अर्धशताब्दी में जिस राजनैतिक दृष्टिकोण से ईसाई पादरियों ने धर्म-परिवर्तन कार्य उक्त विलीन राज्यों में किया है और जिस प्रकार उन्होंने भयानक झारखंड आन्दोलन को अपनी सक्रिय सहायता प्रदान की है, उसे को देखते हुए सरकार ने उन गतिविधियों को दबाना उचित समझा। २९ मार्च १९४९ को जो कांफ्रेन्स राज्य के मुख्य मन्त्री ने बुलाई थी, उसमें तीन रोमन कैथोलिक नेता (मेजर ए० वर्नार्ड, एम० एल० ए०, श्री जी० एक्स० फ्रैसिन्स और मेजर ए० डबल्यू० एफ० डकोस्टा) भी थे। मुख्य मन्त्री ने सरकारी नीति को भली प्रकार स्पष्ट करते हुए कहा कि भारत एक धर्म-निरपेक्ष राज्य है और इसमें विचारों तथा धर्म की पूर्ण स्वतन्त्रता है, परन्तु कठिनाई तब उपस्थित होती है जब धार्मिक संस्थायें राजनीति के साथ सम्बन्ध जोड़ लेती हैं। उक्त कान्फ्रेंस में सरकारी वक्ता ने इस ओर इशारा किया कि कई गैर-ईसाइयों ने सरकार से अनुरोध किया है कि विलीन राज्यों में पादरियों का गतिविधियां बढ़ गयी हैं और विशेष रूप से यह कहा कि उनके स्कूलों में धार्मिक शिक्षा दी जाती है। यह इसलिये आवश्यक हो गया था कि जब से "ट्राइबल वेलफेर डिपार्टमेन्ट" ने स्कूल खोले हैं तब से रोमन कैथोलिक पादरियों ने लगातार उन के स्कूलों के विरुद्ध आन्दोलन उठा रखा है और सरकार से शिकायत भी की है। यद्यपि फादर बर्मेरी कहते थे कि उनको कोई आपत्ति नहीं यदि सरकार जशपुर में मिशन स्कूलों के साथ साथ अपने स्कूल खोले, तथापि रांची के कैथोलिक विशप सरकार से यही कहते रहे कि ऐसा नहीं होना चाहिये। हमारे विधान के लागू होते ही सरगुजा और उदयपुर के राज्यों में बेल्जियन जैसुइट्स, लूथरन और दूसरे मिशनों का प्रवेश प्रारम्भ हो गया। पहले ये रांची जिला से कार्य किया करते थे। उरांव में ईसाइयत का प्रचार करने के लिये उक्त मिशनों ने बहुत जोरदार कार्य किया। जशपुर में उस समय वहां के नरेश की अनुमति के विरुद्ध वहां अपने आपको पूर्णतया सुदृढ़ बनाकर तथा उन नरेशों पर सरकारी दबाव डलवा कर जशपुर को, उदयपुर और सरगुजा के क्षेत्रों में कार्य

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बढ़ाने के लिये, एक अड्डा के रूप में बना लिया गया। पादरी लोग पहले ही कार्य प्रारम्भ कर चुके थे। वे देहातों में ऐसे ईसाइयों को भेजते थे जो अपने आपको ईसाई नहीं बतलाते थे और खेतों में श्रमिक के रूप में कार्य करते थे अथवा अपने सम्बन्धियों के पास रहते थे। जब कुछ समय के भीतर पर्याप्त रूप में ऐसे लोग उस क्षेत्र में रहने लग जाते थे। तो वहां प्रचारक जाते थे और उन ईसाइयों में से जो वहां पर रहने के लिये गये हुए थे, सहकारी नियुक्त कर लेते थे और तब सामूहिक रूप में धर्म-परिवर्तन का आन्दोलन प्रारम्भ हो जाता था। सरकार के पास धड़ाधड़ शिकायतें पहुंचने लगीं कि ये प्रचारक और उनके वेतन-भोगी सेवक ईसाइयों के हाथ में कठपुतली हैं। वे लोगों के दैनिक कार्यों में लगातार हस्ताक्षेप करते थे और एक दूसरे की वकालत करते थे। कैथोलिक लूथरन और स्वेडिश चर्चों ने सरगुजा बिहार सीमा और सीमा से लगे हुए स्थानों में केन्द्र स्थापित कर लिये थे। उन्होंने १९५० में अम्बिकापुर और सीतापुर में, जो सरगुजा जिले में हैं, अपनी शाखायें खोली थीं।

स्थानीय अधिकारियों ने सरकार को रिपोर्ट भेजी कि ईसाई पादरी निम्न प्रकार के साधन अपनाते हैं:—

ईसाई मिशन सर्वप्रथम अपने किसी जिम्मेदार सदस्य के द्वारा जो प्रायः विदेशी ही हुआ करता था, एक प्रारम्भिक जांच कराकर, किसी एक छोटे गांव में अड्डा जमा लेता था और वहां गांव वालों का विश्वास प्राप्त करने की चेष्टा की जाती थी। तब शनैः शनैः वे गांव वालों की उनकी स्थानीय समस्याओं में सलाह मशविरा देने लग जाते थे और कई बार उनके लिये प्रार्थनापत्र और शिकायतें, जो अधिकारियों को देनी पड़ती थी, वे लिख देते थे। वे स्वयं अदालत में उनके मुकद्दमों की पैरवी करते थे और इस प्रकार उनका विश्वास प्राप्त करते थे। चुने हुए उरांव लड़कों को दस्तकारी अथवा उच्च शिक्षा के लिये मिश्नरियों के हेडक्वार्टर्स में जो जशपुर (बिहार) में था, भेजा करते थे। साथ साथ जो लोग बिहार में पहले ईसाई हो चुके हाते थे उनको केन्द्रों में लाया जाता था कि वे गांव वालों में घुलमिल जावें और धर्म-परिवर्तन से जो लाभ हुए हैं उनसे उन्हें परिचित करावें। स्थानीय समझदार गांव वाले (प्रायः मुसलमान) चुन लिये जाते थे और उनको लगभग ५०) मासिक वेतन पर प्रचारक के रूप में नियुक्त कर लिया जाता था। ये वैतनिक प्रचारक गांव में घूमते फिरते थे और प्रचार करते थे, जिससे पादरियों के लिये आस पास के गाँवों में जिम्मेदार व्यक्तियों को फंसाने के लिये रास्ता साफ हो जाता था। इसके साथ ही जो ईसाई हाल ही में केन्द्रों में बने होते थे, उन पर विशेष ध्यान दिया जाता था। उनको नये कपड़े दिये जाते थे, उनको कृषि इत्यादि में अपनी व्यक्तिगत सम्मति दी जाती थी और उनको मुफ्त में रासायनिक खाद बांटी जाती थी। उनके घरों को ऐसा नया रूप दिया जाता था कि वे गांव में पृथक दिखलायी दें। वे स्कूल खोलते थे जिन में भविष्य में ईसाई मत में दीक्षित होने वाले ही प्रवेश पा सकते थे। जब बाजार लगते थे तो उनम मुफ्त दवाइयां बांटी जाती थी और भविष्य में ईसाई बनने वालों को दवादारू मुफ्त दी जाती थी, जबकि दूसरों से दाम लिये जाते थे। वे विशेष चुने हुए परिवारों में बीजों के बिना मूल्य वितरण का प्रबन्ध करते थे और कुछ मामलों में ऐसी रिपोर्ट मिली थी कि नकदी सहायता भी दी जाती थी। कर्ज दिये जाते थे और कर्जदार को सीधे अथवा गोलमोल तरीके से कहा जाता था कि यदि वह ईसाई धर्म ग्रहण करले तो उसको कर्ज पाटने की कोई आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार विशेष पक्षपात के वातावरण तथा भौतिक लाभ के लालच से धर्मपरिवर्तन के हित में एक अच्छा खासा क्षेत्र तैयार हो जाता था। कुछ एक मामलों में ऐसी रिपोर्ट भी मिली है जिनसे पता चलता है कि जोर जबर और दबाव के तरीके भी अपनाये गये थे। ज्यों ही सरगुजा जिला में पादरियों की गतिविधियां फैलीं, वहाँ स्थानीय गैर-ईसाई घबरा उठे। १९५२ में जिला के प्रमुख नागरिकों ने जिनमें महाराजा सरगुजा भी सम्मिलित थे, पैम्फलेट बांटें और सभायें की तथा आदिवासियों को प्रेरित किया कि वे आर्थिक लाभ अथवा अन्य तुच्छ प्रलोभनों से अपने धर्म का परित्याग न करें।

यह तनाव विशेष कर मिश्नरियों के उन आपत्तिजनक तरीकों के कारण था, जिनमें से कुछ एक का यहां वर्णन किया जाता है:—

५ मई, १९५१ को लगभग रात के ८ बजे रेवेरेन्ड के० सी० बर्डेट ने, जो एक विदेशी पादरी हैं, चन्दो गांव

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

में एक जलूस निकाला। उनके साथ उनके लगभग २५ अनुयायी थे और वे एक ट्रक में गांव के भीतर घूमे और उत्तेजना पूर्ण गाने हिन्दू धर्म की भर्त्सना करते हुए गाते रहे। इस घटना की पुलिस में रिपोर्ट दे दी गयी और अपराध दर्ज कर लिया गया। श्री वर्डेट ने बिना शर्त की लिखित माफी मांग ली, इस लिये उस पर मुकदमा नहीं चालू किया गया। सलबा गांव में जो वैकुण्ठ पुलिस थाने में है, ७ नवम्बर १९५२ को १६ ईसाई प्रचारक एक चरण उरांव के घर में घुस गये। उसकी रसोई के बर्तनों को फेंक दिया और मारपीट के लिये धमकाया। यह केवल इस लिये कि उसका अपराध यह था कि उसने धर्म-परिवर्तन का विरोध किया था। इन लोगों का चालान हो गया और हरेक को सजा हुई। एक दूसरे अवसर पर इसी गांव में जो ईसाई प्रचारक हाल में ही नियुक्त हुए थे उन्होंने स्थानीय उरांवों के विरुद्ध मारपीट और डराने धमकाने का प्रयोग किया, जिसके लिये उनका धारा ५०६ इन्डियन पेनल कोड के अन्तर्गत चालान हो गया। इसी प्रकार इसी क्षेत्र में एक दूसरे गांव में कुछ प्रचारक नये नये नियुक्त हुये थे जिन्होंने हिंसा का प्रयोग किया था, उनके विरुद्ध रिपोर्ट मिली और उन के विरुद्ध अभियोग चलाये गये। रेवेरेन्ड जे० जे० क्रिस्टी, जो एक मिशन के मुखिया हैं और जिनका सदर मुकाम पलामू जिले में है तथा जो पलामू जिले से सरगुजा जिले में केन्द्र स्थापना की व्यवस्था करते थे, उनको सरकारी आदेश को तोड़ने तथा बिहार में चोरी छिपे चावल भेजने के अपराध में पकड़ लिया गया था। उन्होंने सरकारी व्यक्तियों से जिन्होंने तस्कर व्यापार कार्यों को रोका था, मारपीट की थी। उनके विरुद्ध मुकद्दमे दायर किये गये और उनका चालान हुआ। इन दोनों मुकद्दमों में उन्हें हाल में ही सजा मिली थी। इसी प्रकार एक गांव के मुखिया से जो घटना घटित हुई उसकी रिपोर्ट मिली। इस मुखिया ने शिकायत की कि जब वह आमाडोली गांव में जो मदगुरी के पास है, कुछ पूछताछ के लिये गया हुआ था, तो वहां लटिया और गांव के दूसरे ईसाइयों ने उस मुखिया को पकड़ लिया और उसके कपड़ों को नोचा और उसको पीटा। पुलिस को इस घटना की रिपोर्ट दे दी गयी और पूछताछ आरम्भ हुई। ४ ईसाइयों को इस सम्बन्ध में अदालत से सजा हुई। इस सम्बन्ध में जिस हेड कान्स्टेबल ने छानबीन की उसके विरुद्ध रेवेरेन्ड एफ० एक्का ने जो कैथोलिक आश्रम के हैं, एक झूठी शिकायत कर दी। एक्का द्वारा की गयी और उक्त शिकायत की जांच रामानुजगंज पुलिस के एस० डी० ओ० द्वारा की गयी शिकायत को बिल्कुल झूठी करार दिया गया। संभव है कि यह शिकायत इस लिये की गयी हो कि इससे उन उरांवों की, जो ईसाई हो गये हैं, रेवेरेन्ड एक्का को सहानुभूति प्राप्त हो जाय और दूसरी ओर पुलिस के अधिकारी, जो अपना कर्तव्य पालन करते हैं, हतोत्साहित हो जायं। उक्त फौजदारी के अपराध जो दर्ज हुए और जिनकी जांच पड़ताल हुई उनके अतिरिक्त जिला अम्बिकापुर के जिलाधिकारियों के पास बहुत सी साधारण शिकायतें ग्रामीणों द्वारा ईसाई पादरियों की आपत्तिजनक गतिविधियों के विरुद्ध पहुंची थीं। जिस में से कुछ का उल्लेख यहां किया जाता है।

धज्जी और सूखरी ग्राम पुसिल थाना समरी के अन्तर्गत है, वहां के १३ ग्रामीणों ने रोमन कैथोलिक मिशन से सम्बन्धित पटरास करकट्टा तथा उनके साथी प्रचारकों के विरुद्ध शिकायत की कि उन्हों ने गांव में एक जलसा किया जिसमें कहा कि कांग्रेस राज्य बुरा है। कांग्रेस राज्य ईसाई लोगों के लिये कष्टदायक है और अब ईसाई अपना राज्य स्थापित कर रहे हैं जिससे लोगों को सब प्रकार का आराम मिलेगा। उन्होंने गांव वालों को हिदायत की कि वे सरकार को मालगुजारी न दें, सरकारी जंगल काट लें और अफसरों पर, जो उनको रोकें, धावा बोल दें और जो लोग उनके साथ सम्मिलित न हों उनसे मारपीट करें। श्री पटरास करकट्टा ने उनसे यह भी कहा कि वे सरकार के विरुद्ध इकट्ठे हो जाएं। उसने उनको धमकाया कि जो उनको सहयोग न देंगे उनको ईसाईयों का झारखंड मिल जाने पर गांवों से निकाल देंगे। कई अवसरों पर मंडवा, नवादी कलां करचा, खजुरीडीह, शाहपुर और कांदरी इत्यादि गांवों के ग्रामीणों द्वारा रेवेरेन्ड करकट्टा के विरुद्ध अधिकारियों के पास शिकायतें पहुंची। स्थानीय अधिकारियों के पास यह खबर पहुंची कि पटरास करकट्टा ने उन दो छोटे उरांव शिशुओं को जो अपनी दादी की आँखों में औषधि डलवाने के लिये करकट्टा के पास आये थे, इसाई बना लिया है। रामानुजगंज के एस० डी० ओ० ने शान्ति

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

के भंग होने के डर से तुरन्त स्थल पर ही इन्क्वायरी प्रारम्भ कर दी। उस गांव के लोगों की इच्छा के अनुसार उन दो शिशुओं को पुनः हिन्दू धर्म में दीक्षित कर लिया गया और पटरास करकट्टा ने ए० डी० एम० के सामने एक माफीनामा पेश कर दिया।

अधिकारियों के ध्यान में ऐसे उदाहरण भी आते रहे जिनसे यह प्रगट होता था कि ये पादरी लोग जानबूझ कर झूठी और निराधार शिकायतें सरकारी कर्मचारियों के विरुद्ध भेजते हैं, जिसमें कि पादरियों की गतिविधि बिना उच्च अधिकारियों की दृष्टि में आये हुए जारी रहें। उच्च अधिकारियों ने पादरियों द्वारा की गई उन तमाम शिकायतों पर पूछताछ की और प्रायः उन सब को झूठी और निराधार पाया। सरकार द्वारा पूछ-ताछ करने पर कि कितने लोग ईसाई बन चुके हैं, यह ज्ञात हुआ कि जब केवल ४ उरांव १९४८ में ईसाई हुए थे, १९४९ में कोई नहीं हुआ। १९५० में सिर्फ ५ हुए और १९५१ में ४०। परन्तु १९५२ में ईसाई धर्म में दीक्षित होने वालों की संख्या ४००३ तक पहुंच गयी और १९५३ में जो लोग ईसाई हुए थे उनका जोड़ ८७७ था और १९५४ में २२३। यह देखा गया था कि धर्म-परिवर्तन केवल उरांव तक ही सीमित रहा और बहुत से मामलों में तमाम परिवार के परिवार ही ईसाई बना लिये गये थे। जहां १९५१ से पहले मिशन की गतिविधियां केवल तीन गांवों तक ही सीमित थी, वहां वह बढ़ती-बढ़ती अब सरगुजा जिले के २३ गांवों में फैल चुकी हैं। यहां पर बहुत से लोगों को ईसाई बनाया गया है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जहां एक ओर तो उदयपुर और सरगुजा राज्य में जो विदेशी मिश्नरी धर्म-परिवर्तन का कार्य कर रहे हैं, उन्होंने तमाम भारत वर्ष में यह गलत धारणा फैला रखी थी कि मध्य प्रदेश गवर्नमेंट ईसाईयों और मिश्नरियों के विरुद्ध पक्षपात तथा तंग करने वाली नीति पर चल रही है, तो दूसरी ओर बहुत सी शिकायतें विदेशी मिश्नरी के विरुद्ध और विशेषकर आदिवासियों के बीच उनके आपत्तिजनक कार्यों के विरुद्ध पहुंच रही थी और जनता का रोष दिन प्रति-दिन बढ़ रहा था। नाना प्रकार के लगभग ३० मिशन मध्यप्रदेश में कार्य कर रहे हैं और उनके अन्तर्गत हरेक जिले में बहुत से केन्द्र हैं। प्रायः समस्त मध्य प्रदेश पादरियों के कार्यों से आक्रान्त है और एक भी ऐसा जिला नहीं होगा जहां पर एक मिशन किसी न किसी रूप में कार्य न कर रहा हो। मध्यप्रदेश की आधी से अधिक आबादी (५७·४ प्रतिशत) शिड्यूल्ड कास्ट्स, शिड्यूल्ड ट्राइब्स और दूसरी पिछड़ी हुई जातियों की हैं। इन्हीं में पादरियों का कार्यक्रम विस्तृत रूप से सीमित है। पुराने मध्यप्रदेश और विलीन राज्यों में पादरियों की गतिविधियों की पृष्ठ भूमि को सरकार को ध्यान में बार बार लाया जा चुका था ताकि सरकार इससे सबक लें और इसी प्रकार के जो तरीके रोमन कैथोलिक और दूसरे मिशन सरगुजा, उदयपुर राज्यों के नये क्षेत्रों में अपनाते हैं, उनको दृष्टि में रखें क्योंकि वे बहुत महत्व के हैं। पादरियों ने बहुत जोरदार तरीके से धर्म परिवर्तन के कार्य और राष्ट्रविरोधी गतिविधियों के आरोप का विरोध किया और उन स्थानीय राज्य कर्मचारियों के विरुद्ध आरोप का विरोध किया और उन स्थानीय राज्य कर्मचारियों के विरुद्ध आरोप लगाया, जो उनके बारे में जांच पड़ताल किया करते थे। मध्यप्रदेश के बाहर भी इन पादरियों ने मध्यप्रदेश सरकार के रवैये के विरुद्ध शिकायत की थी और विदेशी समाचार पत्रों में सरकार के विरुद्ध झूठा, गर्हित प्रचार करते थे। ऐसी परिस्थिति में सरकार ने निर्णय किया कि इस बात को एक खुले निष्पक्ष जांच आयोग द्वारा छानबीन की जाय और इसी के फल स्वरूप हमारी इस समिति की नियुक्ति हुई।

अध्याय ३

मध्यप्रदेश के आदिवासी तथा अन्य जातियां

पादरियों का कार्यक्रम मध्यप्रदेश के प्रायः कुछ विशेष जंगली जातियों और सीमा-क्षेत्रों में ही सीमित है, इसलिये यह उचित है कि उन मुख्य जंगली जातियों के व्यवसाय, विशेषतायें, रहनसहन के ढंग और रीति-रिवाज के बारे में कुछ जानकारी प्राप्त की जाय।

हम सबसे पहले उरांव बैगा मरिया और गोंड इन जंगली जातियों का उल्लेख करेंगे। ये आदिवासी कैसे भोले भाले और दूसरों के धोखे में आ जाने वाले हैं यह इन जातियों का विशेषताओं और उनकी रीतिरिवाजों का का अध्ययन करने से स्पष्ट हो जाता है। १९४१ की

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जन-गणना के अनुसार उरांव १६४७३१ थे। यह एक द्रविड़ जाति है जो पहले विलासपुर जिले की कोरवा जमींदारी में तथा रामगढ़ जिले के उदयपुर और जशपुर में तथा सरगुजा में निवास करती है।

उरांवों के बीच कोई उपजातियां नहीं होतीं। उनके बहुत से गोत्र होते हैं जो पेड़-पौधे, पशु-पक्षी आदि के नामों पर होते हैं। उनका एक ही गोत्र में विवाह वर्जित है। विवाह-शादियां तथा दूसरे सामाजिक व्यवहारों और आचार-विचार मे वे हिन्दुओं के परम्परागत आचरणों का अनुकरण करते हैं।

बैगा मांडला जिले की डिंडोरी तहसील, बालाघाट जिले की बेहर तहसील और विलासपुर जिले के कुछ हिस्से में पाये जाते हैं। वह भारत की आमिद जातियों में से एक है। बैगा बहुत अच्छे शिकारी होते हैं। उन्हें अपने तीर कमान पर गर्व है। शिकार के अतिरिक्त उनका दूसरा व्यवसाय जंगली फल एकत्रित करना है। कभी वे टोकरियां और बाँस की चटाईयां भी बनाते हैं।

मरिया एक दूसरी आदिम जाति है। वे चांदा और बस्तर जिले में रहते हैं। उनका विशेष व्यवसाय शिकार है और उस पर वे कभी कभी महीनों खर्च कर देते हैं।

गोंड जो जंगली जातियों में सब से अधिक हैं, दुर्ग जिले के संजरीबलोद और बेमेतारा तहसीलों में, बालाघाट जिले की बैहर तहसील में और समूचे मांडला, रायपुर छिन्दवाड़ा, बैतूल, चान्दा और विलासपुर जिलों में रहते हैं। वे अधिकतर कृषक होते हैं। यद्यपि इसमें कुछ बिना भूमि के श्रमिक भी हैं। एक समय था जब कि वे गोंडवाना के अधिपति थे और इसीलिये गोंडों में एक अभिजात वर्ग भी उत्पन्न हो गया है। विवाह-शादी में तथा होली, दशहरा, दिवाली और शिवरात्रि जैसे त्यौहारों पर वे हिन्दुओं की तरह रीतिरिवाज बर्तते हैं और हिन्दुओं की तरह ही पोशाक पहनते हैं।

आदिम जातियां हिन्दू हैं या नहीं, यह प्रश्न बहुत विवादास्पद रहा है पादरियों ने सदा उनका गैर-हिन्दू कहा है। उनकी संस्थाओं की ओर से लगातार यही चेष्टा रही है कि वे इन जातियों में ऐसी भावना उत्पन्न करें कि वे अपने को हिन्दुओं से अलग मानें। महाभारत काल में व्यास और विदुर जैसे महापुरुष आर्य और आदिवासी जातियों के संयोग से उत्पन्न हुई सन्तान थे। सत्यवती कोली जाति की राजकन्या थी। वह राजा शान्तनु की महारानी बनी। धृतराष्ट्र पांडु और विदुर व्यास की संतति थे। उस काल में आर्य और आदिम जातियों में अन्तर्जातीय विवाह को दूषित नहीं समझा जाता था। भीम का विवाह हिडिम्बा से हुआ और अर्जुन ने एक नागकन्या उलूपी से विवाह किया था। निषाद एक आदिम जाति थी। वह आर्यों के पंच-जनों में भी सम्मिलित की जाती थी।

जब एक जंगली जाति एक विशेष जाति के रूप में परिवर्तित हो जाती थी तब भी वह अपना पूर्व नाम और रीतिरिवाज सुरक्षित रखती थी। परन्तु वे अपनी प्रकृति-पूजा के तरीकों को हिन्दू धर्म के अनुसार बदल लेते थे। समग्र भारतवर्ष में इसके बहुत से उदाहरण मिलते हैं। हम यहां पर एक प्रसिद्ध श्लोक का उद्धरण प्रस्तुत करते हैं जिससे पता चलेगा कि हिन्दू समाज के कई सम्मानित धार्मिक महापुरुषों की उत्पत्ति किस प्रकार जातियों के मिश्रण से हुई थी:—

जातो व्यासस्तु कैवर्त्याः
स्वपाक्याश्च पराशरः
शुक्या शुकः कणादाख्यस्तथोलूक्याः
सुतोऽभवत.....

(भविष्य महापुराण अ० ४२) रामायण के प्रणेता महर्षि बाल्मीकि और हनुमान् आदिम जाति के हो थे।

जिस विधि से यह परिवर्तन होता है, वह इस प्रकार होता है:—आदिम जाति के नेतागण जो येन केन प्रकारेण इस संसार में उन्नति करते रहे और भूमिपति हो गये, वे अपने आपको विशेष सम्मानित जातियों में गिनने लगे। वे प्रायः राजपूत बने। उनका पहला कदम यह होता था कि वे किसी ब्राह्मण से परामर्श करें कि वह उनके लिए विशेष पौराणिक पूर्वजों की कल्पना करे और उनका आपस में विवाह आदि होने लगे। अन्तर्जातीय विवाह आदि के द्वारा वे पूर्णतया उस समाज में खप गये और स्थानीय लोग उनको उच्च हिन्दूवर्गों में गिनने लगे (इम्पीरियल गजेटियर आफ इण्डिया, खण्ड पृष्ठ ३१२)।

आदिवासियों को हिन्दुओं से पृथक् समझने का कोई पुष्ट कारण ढूंढ़ निकालना सरल नहीं है, विशेष करके उस अवस्था में जब कि यह माना जाता है कि प्रकृति

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पूजकों अथवा जंगली जातियों के धर्म और हिन्दू धर्म में कोई विशेष अन्तर नहीं है। आदिवासियों को हिन्दुओं के पृथक् करने का रहस्य तब खुलता है जब हम इन जंगली क्षेत्रों में पादरियों की गतिविधियों का निरीक्षण करते हैं।

सन् ११४१ की जन-गणना सन् १९३१ की जन-गणना से बिल्कुल भिन्न थी। १९४१ में जनगणना जाति के आधार पर हुई और धर्म को आधार नहीं माना गया। उदाहरण के तौर पर एक आदिवासी जो शिड्यूल्ड ट्राइब से सम्बन्धित था उसकी गणना उसकी मूल जाति के आधार पर की गयी, चाहे वह धर्म से ईसाई हो अथवा नहीं। इसका परिणाम यह हुआ कि ऊपर से समस्त भारत में भारतीय ईसाइयों की संख्या उस वर्ष ६०४०६५५ दिखाई गई जो कि १९३१ की जन-गणना में दी हुई ईसाइयों की संख्या से २५६०९८ न्यून हो जाती है। इसका यह अर्थ नहीं कि दश वर्षों में अर्थात् १९३१ और १९४१ के बीच ईसाइयों की वृद्धि नहीं हुई। इस गोरखधन्धे का स्पष्टी करण तब होता है जब हम भारत में उस समय के सेन्सस कमिश्नर मि० यीट्स की लिखी हुई संक्षिप्त टिप्पणी का जो उन्होंने स्पष्ट किया है कि आदिवासियों की कुल आबादी का लगभग १।२० हिस्सा ईसाइयों का है। यदि इस आधार पर जोड़ किया जाय तो पता चलेगा कि ईसाइयों की उक्त दश वर्षों में कम से कम ३४७४१२८ की वृद्धि हुई।

भाग २

अध्याय १

मध्य प्रदेश और भारत में मिशन

इस देश में पादरियों की संस्थाएं इतनी दूर दूर फैली हुई हैं कि ऐसा जान पड़ता है कि मानो राज्य के भीतर एक दूसरा राज्य स्थापित हो। रोमन कैथोलिक चर्च एक बहुत केन्द्रित संस्था है, जो समस्त विश्व में फैली हुई है और जिसकी सत्ता पोप में केन्द्रीभूत है और जिसका वर्णन पोप लिओ १३ वें के शब्दों में इस प्रकार है:— "पोप इस सृष्टि में सर्व शक्तिमान् परमात्मा का स्वरूप है, इसीलिये उसके शिर पर त्रिमुकुट विराजमान है जिससे यह सूचित होता है कि वह देव लोक भूलोक तथा पाताल लोक का राजा है।"

विदेशी मिश्नरियों की संख्या भारत में इस समय ४८७७ है और इसमें सन् १९५१ की गणना से ५०० की वृद्धि हुई है। यह वृद्धि छोटे मिशनों में हुई है, जिनमें से बहुत से अभीतक किसी संगठित चर्चों से सम्बन्धित नहीं हैं।

मध्य प्रदेश में भारतीय पादरी २५१ और विदेशी ४०२ हैं।

अध्याय २

पुराने मध्य प्रदेश तथा विलीन हुये राज्यों में ईसाई मिशन का इतिहास

भिन्न भिन्न ईसाई मिशनों का इतिहास वर्णन करते हुए रिपोर्ट में लिखा है:—

१४९८ में पुर्तगाल के लोग भारत में आये। तभी से भारत में पश्चिमी ईसाई धर्म के प्रचार का कार्य प्रारम्भ हुआ। दूसरे शब्दों में कैथोलिक चर्च की आक्रमणकारी प्रवृत्तियों के युग का सूत्रपात तभी से होता है। १४९८ में वास्कोडीगामा ने कालीकट के पास लंगर डाला। परन्तु उस समय उसने ईसाइयों से कोई सम्पर्क स्थापित नहीं किया। जब १५०२ में वह दूसरी बार भारत में आया, तब वह भारत के पश्चिमी तट पर एक ईसाई जाति को बसी हुई देखकर विस्मित हो गया। इन ईसाइयों ने उनका स्वागत किया और अपने पड़ौसी मुसलमानों के विरुद्ध सहायता के लिए याचना की। पुर्तगाली बेड़े के साथ भारत के लिये बड़ी संख्या में पादरी भेजे गये और गोआ शीघ्र ही एक प्रबल कार्य क्षेत्र बन गया। तब तक पुर्तगालियों की कूटनीति मालाबार तक बसे हुए ईसाइयों को पुर्तगाल के शासक की प्रजा बनाने में सफल हो चुकी थी। यद्यपि पश्चिमीतट पर पुर्तगाली लोग व्यापार के क्षेत्र में पर्याप्त प्रगति कर चुके थे, परन्तु उनकी धर्म—परिवर्तन कार्य में कोई विशेष सफलता नहीं मिल पायी थी। पुर्तगाल के शासक ने इस थोड़ी प्रगति से असन्तुष्ट होकर इग्नैशियस लोपोला से आग्रह किया कि वह भारत के लिये सब जैसुइट पादरियों को रवाना कर दे। भारत पुर्तगाली अध्यवसाय का नारा था—"भगवान की सेवा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

और अपना लाभ।" पुर्तगाल का राजा मैनुयल इस उद्देश्य की पूर्ति में समस्त साधन प्रयोग में लाने को उद्यत था। लोपोला ने इस प्रार्थना को स्वीकृत नहीं किया, परन्तु १५४१ में फैन्सिस क्जेवियर को, जो उच्च कोटि के जैसुइट थे, पूर्व में भेजा गया। जिस दिन भारत में उसने अपना कदम रखा उस दिन को भारत में रोमन कैथोलिक मिशन का जन्म-दिवस कहा जा सकता है। उसने इस देश में केवल साढ़े चार वर्ष व्यतीत किये। परन्तु इस अल्प काल में उसने लगभग ६०००० व्यक्तियों को ईसाई बनाया। इनमें से प्रायः सभी मछुये थे जो भारत के दक्षिणी-पश्चिमी और दक्षिणी-पूर्वी तट पर रहते थे। वे सामूहिक रूप से ईसाई बना लिये गये।

जैसुइट्स का जो सामूहिक रूप में धर्म-परिवर्तन आन्दोलन चल रहा था, उसका मुख्य आकर्षण सांसारिक प्रलोभन था। दक्षिणी-पूर्वी तट पर जो मछुए रहते थे उन्हें लुटेरे बहुत तंग किया करते थे। उनका एक साथी जो गोआ में रहता था और ईसाई हो चुका था, उसने उनको सलाह दी कि उन्हें पुर्तगाली वायसराय के पास सहायता के लिये प्रार्थना करनी चाहिये। इस प्रकार गोआ के लिये एक शिष्ट मंडल भेजा गया। वायसराय ने इस शर्त पर उनको सहायता देने की अनुमति दे दी कि उनकी समस्त जाति ईसाई बन जाय और पुर्तगाल नरेश की प्रजा बन जाय। इस सौदेबाजी को पक्का करने के लिये इस शिष्ट मंडल के सब सदस्यों ने तत्काल ईसाई धर्म ग्रहण किया। तब एक फौजी बेड़ा भेजा गया, लुटेरों को मार भगाया गया और समस्त जाति को कुछ ही सप्ताह में ईसाई बना लिया गया।

क्जेवियर अपने परिश्रम के परिमाण से सन्तुष्ट नहीं हुआ। अतएव उसने पुर्तगाल नरेश को लिखा कि ईसाइयों की संख्या बढ़ाने के लिये केवल यही एक उपाय है कि राज्य की पूरी सत्ता को प्रयोग में लाया जाय। इसके फल-स्वरूप राजा ने आदेश जारी कर दिया कि गोआ और पुर्तगाल की दूसरी बस्तियों में "समस्त मूर्तियों को तलाश किया जाय और उनको नष्ट कर दिया जाय; जो कोई किसी मूर्ति के बनाने का साहस करे उसे कठोर दण्ड दिया जाय और जो कोई किसी ब्राह्मण को छिपाये अथवा उसकी रक्षा करे उसको अपराधी ठहराया जाय (पृष्ठ ५४ हिस्ट्री आफ मिशन्स, रिच्टर) उसने यह आदेश दिया कि ईसाइयों को विशेष सुविधायें प्रदान की जाय ताकि स्थानीय लोगों को ईसाई धर्म में प्रवृत्त होने की भावना बढ़े। इस प्रकार पुर्तगालियों ने "अपने लिये ईशु के नाम पर भारतीयों के लिए एक हाथ में शक्तिशाली तलवार और दूसरे हाथ में सलीब लेकर" अपना कार्यक्रम को जारी रखा।

एक अन्य बड़े जैसुइट पादरी ने १७ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में एक नया ढंग निकाला। वह इटली में रहने वाला था और ऊंचे घराने से सम्बन्धित था। वह कुशाग्रबुद्धि और लगन का आदमी था। वह मदुरा में आया। मदुरा उस समय एक हिन्दू राज्य की राजधानी थी और पुर्तगाल के वायसराय की सीमा से बाहर थी। इस पादरी का नाम राबर्ट डि नोबिली था। उसने देखा कि क्जेबियर तथा दूसरे कैथोलिक पादरियों की नीति जिसके द्वारा राज्य की सत्ता के बलबूते छोटी जातियों में से सामूहिक रूप से लोगों को ईसाई बनाया जाता था, एक खतरनाक नीति थी। उसने स्पष्ट देखा कि जब तक ऊंची जातियों में से ईसाई न बनाये जायेंगे तब तक ईसाइयत की जड़ भारत की भूमि में नहीं जम सकेगी। तब उसने तुरन्त क्जेवियर की नीति का परित्याग किया और एक निजी नीति निर्धारित कर ली।

नोबिली मदुरा में गेरुए वस्त्र धारण किये हुए एक साधु के वेश में, मस्तक पर चन्दन लगाए हुए और शरीर पर यज्ञोपवीत धारण किये हुए प्रकट हुआ। उसके एक ओर क्रास लटका रहता था। ऐसी वेश-भूषा में उसने ब्राह्मणों की बस्ती में रहना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार उसकी ओर बहुत से लोग आकृष्ट हो गये। वह अपने आप को रोम से आया हुआ ब्राह्मण बताने लगा। उसने लिखित प्रमाण भी पेश किये कि उसके पूर्वज पुराने आर्यावर्त से वहां गये। इस प्रकार ऊंची जाति के लोगों को उसने आश्वासन दिया कि कोई व्यक्ति ईसाई बनने से अपनी जाति, रीति-रिवाज अथवा प्रतिष्ठा का परित्याग नहीं करता।" (क्रिश्चियन एण्ड क्रिश्चियनिटी इन इण्डिया एण्ड पाकिस्तान, पृ० ६५–७०) उसने तामिल, तेलगू और संस्कृत सीख ली और ब्राह्मणों की वेशभूषा में रहने लगा। उसने संस्कृत में "क्रिश्चियन सन्ध्यावन्दनम्" नामक पुस्तक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ब्राह्मणों से ईसाई बने हुए लोगों के लिए लिखी। उसने घोषित किया कि वह पुराने भारतीय ऋषियों के संदेश को ही लाया है और उसी की शिक्षा दे रहा है। उसने कहा कि मैं केवल हिन्दुओं के लिये लुप्त हुई धार्मिक पुस्तक पंचम वेद अर्थात यीशुवेद का पुनरुद्धार कर रहा हूं। १८४० तक इस प्रकार धोखाधड़ी का कार्य चलता रहा, जब कि प्रोटैस्टेन्ट पादरियों ने इसका भंडाफोड़ किया (हिस्ट्री आफ मिशन्स, रिच्टर, पृ० ६७) १६०७ से लेकर १६११ तक इन पांच वर्षों में उसने २७ ब्राह्मणों को ईसाई बनाया। रोमन गोत्र का यह ब्राह्मण संन्यासी, फादर डि नोबिली, चालीस वर्ष तक इस छद्म वेश में कार्य करता रहा और १६५६ में ८९ वर्ष की आयु में उग्र काल ने उसको भी ग्रस लिया। यह कहा जाता है कि उसने सगभग १००००० एक लाख व्यक्तियों को ईसाई बनाया, परन्तु वे सब उसकी मृत्यु के बाद फिसल गये। सन् १७०० तक भारत में ६००००० छे लाख कैथोलिक ईसाई बन चुके थे।

प्रोटेस्टैन्ट काल

प्रोटेस्टैन्ट पादरियों का कार्य-क्रम भारत में १७०६ में प्रारम्भ हुआ। डच लोगों के तुरन्त बाद डेन्स लोग भारत में आये और उन्होंने पूर्वी और पश्चिमी तटों पर कई एक कल कारखाने स्थापित कर लिये। १७०६ में जर्मन लूथरन मिश्नरी जिनको डेनमार्क के नरेश फ्रेडरिक चतुर्थ ने भेजा था, ट्रैंकोबार में डेनिस बस्तियों के लिये पादरियों के रूप में पहुंचे। आरम्भ में उसका कार्य-क्षेत्र डेनिस और अंग्रेजी बस्तियों तक ही सीमित रहा। बाद में उन्होंने प्रचार, शिक्षा और बाइबिल के अनुवाद के क्षेत्रों में बहुत कार्य किया।

अंग्रेजों का मिशन

डेन्स ने राजनैतिक सत्ता को अभी बढ़ाना प्रारम्भ ही किया था कि अंग्रेजों ने उनको पछाड़ दिया। बंगाल में बेप्टिस्टों का पहला अंग्रेजी मिशन था जो भारत में स्थापित हुआ। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के १६७० के चार्टर के आधार पर "ईस्ट इण्डिया कम्पनी" की सेवा में समस्त पादरियों को आदेश था कि वे देश की भाषा सीखें ताकि वे गैर-ईसाई नौकर चाकर वर्ग में प्रोटेस्टैन्ट धर्म का भली प्रकार प्रचार कर सकें। सन् १७८९ में एस० पी० सी० के० द्वारा कलकत्ता में रेवेरेन्ड क्लार्क केयरेन्डर के मिशन की नियुक्ति हुई। परन्तु उसने इस पद को १७९१ में छोड़ दिया और ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सेवा में चैप्लिन (पादरी) के रूप में हो गया। नवम्बर १७९३ में विलियम केरी कलकत्ता उतरा और कलकत्ता से पाँच मील उत्तर की ओर श्रीरामपुर में, जो एक डेनिश बस्ती थी, अपना सदर मुकाम बना लिया। १८२१ में लार्ड वेल्सली ने उसको बंगाली, मराठी और संस्कृत पढ़ाने के लिये कलकत्ता के एक कालेज में प्रोफेसर नियुक्त कर दिया, जहां सरकारी नौकरियों के उम्मीदवारों को ट्रेनिंग दी जाती थी। इस तरह से केरी की गतिविधियों का क्षेत्र कलकत्ता तक फैल गया। श्री रामपुर की त्रिमूर्त्ति केरी, मार्समैन और वार्ड एक जबर्दस्त धर्मयुद्ध चला रही थी। वे हिन्दू धर्म और इस्लाम पर भद्दे और गन्दे आक्षेप कर रहे थे। १८३० में जान अलैक्जैण्डर डफ नामक स्काटिश पादरी आया, तब से प्रोटेस्टैन्ट मिशन के इतिहास में एक नया अध्याय प्रारम्भ हुआ।

बंगाल में डफ को उसी परिस्थिति का सामना करना पड़ा जो दो शताब्दी पहले मदुरा में डि नोबिली को करनी पड़ रही थी। केप्टन कनिंघम ने "सिखों के इतिहास" में उस परिस्थिति का, जो पादरियों को गत शताब्दी के मध्य काल में पेश आयी, इन शब्दों में वर्णन किया है:—"वे कोई ऐसी नयी बात नहीं रखते जो उनके श्रोतागण पहले से न जानते हों···पण्डित और मौलवी अब उनकी प्रत्येक बात को अपनी बात से, नैतिक को नैतिकता से और आत्मदर्शन को अपने आत्मदर्शन के ज्ञान से काट सकते थे। हमारे जोशीले प्रचार चाहे अपने आप में कितने वर्ग बनालें, चाहे वे ईसा पर न विश्वास रखने वाले परिवारों के अनाथों को शिक्षा दीक्षा इत्यादि देने के कार्य की कितनी ही प्रशंसा क्यों न कर लें·····परन्तु आशा नहीं दिखाई देती कि वे कभी भारतीय और इस्लामी जगत् को ईसाई बना सकेंगे।" भारतीय ईसाई जो केवल छोटी जातियों में से ही ईसाई बनाये गये थे, घृणा की दृष्टि से देखे जाने लगे। तब डा० डफ ने यह योजना तैयार की कि ब्राह्मणों को अंग्रेजी शिक्षा द्वारा जिसमें ईसाइयत की गन्ध हो सरकारी नौकरियां देने के प्रलोभन में, ईसाई बनाया जावे। दूसरे पादरियों ने डा० डफ का अनुकरण किया और फलस्वरूप अगले ५० वर्षों में सरकारी सहायता से

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तमाम भारतवर्ष में हाई स्कूल और कालेज खड़े कर दिये गये। सरकार ने अपनी १८५४ की घोषणा में कहा कि सरकारी शिक्षणालयों में केवल धर्म-निरपेक्ष शिक्षा प्रदान की जायेगी। केनन मोजले ने गत शताब्दी के पिछले ५० सालों में ईसाई धर्म प्रसार के सम्बन्ध में चर्चा करते हुए सरकार की उक्त धर्म-निरपेक्ष नीति की बड़ी सराहना की है और यह दलील दी है कि इस प्रकार की नास्तिक शिक्षा से भारतीयों के मन में एक रिक्तता पैदा होगी जिसकी पूर्ति के लिये वे लालायित होंगे। १८५३ में पार्लिमेन्टरी कमेटी के आगे जो गवाहियां हुईं उनमें से बहुत से व्यक्तियों ने इस बात को स्वीकार किया कि सरकारी विद्यालय ईसाइयत के प्रचार के लिए एक अग्रदूत का कार्य कर रहे हैं। इस शिक्षा सम्बन्धी नीति की तह में यह स्पष्ट दिखायी देता था कि ईसाई शिक्षणालय खुले तौर से ईसाई धर्म के ज्ञान का प्रचार करते थे और सरकारी शिक्षणालय वही कार्य परोक्ष ढंग से करते थे। इसी उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए मिशन के शिक्षणालयों को व्यक्तिगत संस्थाओं की अपेक्षा पांच गुना अधिक सरकारी सहायता मिलती रही है। शिक्षा-प्रचार पर सरकारी नीति निर्धारित करते समय यही भावना रही है कि सरकारी और ईसाई मिशन के स्वार्थ को एक समझा जावे।..... मिशन वालों ने भारत में ईसाइयत के प्रचार के लिये शिक्षा के अन्तर्गत अनेक प्रकार के तरीकों और साधनों को अपनाया।

गदर के दो साल बाद लार्ड पामर्स्टन ने, जो इंगलैंड के प्रधान मन्त्री थे, जनता के समक्ष यह कहने का साहस किया: "यह केवल हमारा कर्तव्य ही नहीं है वरन यह हमारे हित की बात है कि हम जहाँ तक भी संभव हो, समूचे भारत में ईसाइयत के प्रसार को प्रोत्साहन दें।" लार्ड हेलीफेक्स जो उस समय सेक्रेटरी आफ स्टेट के पद पर थे, उन्होंने उक्त वक्तव्य के साथ यह नोट और जोड़ दिया:—"प्रत्येक नया ईसाई इस देश की एकता की कड़ी में एक नया जोड़ है और साम्राज्य के लिये एक नयी शक्ति का स्रोत है।" १८७६ में लार्ड रे (बम्बई) ने जब प्रिन्स आफ वेल्स के समक्ष भारतीय ईसाइयों का एक शिष्ट-मंडल पेश किया, तब पादरियों के सम्बन्ध में बोलते हुए उन्होंने कहा कि....."वे भारत के लिये उन नागरिकों, सैनिकों, न्यायधीशों और गवर्नरों की अपेक्षा, जिनसे आपकी भेंट हुई है, कहीं अधिक कार्य कर रहे हैं।" इस पर लार्ड रे की सरकार की ओर से बहुत प्रशंसा की गयी।

सर चार्ल्स ईलियट (बंगाल) ने पादरियों की प्रशंसा करते हुए कहा है:—"उस वृहत् आन्दोलन के, जिसके आधार पर अंग्रेजी शासन भारत में विद्यमान है, ये पादरी लोग गैर-सरकारी और छिपे हुए अंग हैं।" सर मैकबर्थ यंग (पंजाब) ने पादरियों को एक महत्वपूर्ण शक्ति बताया है। उन्नसवीं शताब्दी के प्रथमार्ध में भारत में सम्मानित तथा बौद्धिक रूप से सम्पन्न परिवारों में बहुत थोड़े लोग ईसाई हुए। किन्तु उस शताब्दी के उत्तरार्ध में शक्तिशाली आन्दोलन जैसे आर्य समाज, ब्रह्म-समाज और थियोसोफी का प्रारम्भ हुआ। बड़े-बड़े धार्मिक नेता जैसे दयानन्द, रामकृष्ण और विवेकानन्द, मैडम ब्लेवेट्स्की और कर्नल आलकाट भारत में प्रगट हुए। इस धार्मिक उथल-पुथल ने पादरियों की उन तमाम कोशिशों को जो उन्होंने बौद्धिक वर्ग में चला रखी थीं, बेकार कर दिया।

प्रोटेस्टैन्ट चर्च की जो वृद्धि अंग्रेजी शासन-काल में भारत में हुई उसका सब से बड़ा कारण यह था कि चर्च को भारतीय सरकार की सहायता और संरक्षण प्राप्त था। इस बात के कई एक उदाहरण हैं कि सरकार की ओर से भूमिदान और आर्थिक सहायता गिरिजाघर बनाने के लिए तथा मिश्नरी केन्द्र, अस्पताल और विद्यालयों के खोलने के लिए दी गयी। एक्लेजियेस्टिकल विभाग की ओर से जितने भी गिरजाघर विशप को सौंपे गये वे सब सरकारी खजाने से बनाये गये थे। केवल गांवों और नगरों में और ब्रिटिश इण्डिया के सैनिक स्थलों में ही नहीं, वरन भारत के प्रत्येक देशी राज्य में भी बड़े बड़े गिरजाघर और पादरियों के मकान बने हुए मिलते हैं, जो प्रायः सरकारी सहायता से ही बनाये गये थे। ईसाई हुए व्यक्तियों की रक्षा और ब्रिटिश इंडिया में उनकी विरासत के अधिकार को सुरक्षित रखने के लिए १८५० का २१ वां एक्ट पास किया गया। उस समय जो रीति-रिवाज पर निर्धारित कानून स्थित और चालू थे, उनसे हिन्दुओं के अन्य धर्मों में प्रवेश के लिए एक रोक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

थी। लगभग ३५० बड़े केन्द्रों में मिशन वालों को जो जो सुविधायें दी जाती रही हैं उनका विस्तार पूर्वक इस रिपोर्ट में वर्णन आवश्यक नहीं।

प्रत्येक देशी रियासतों के रेजिडेन्सी क्षेत्र में जो बड़े-बड़े गिरजाघर और दूसरी मिशन की इमारतें आज भी खड़ी दिखायी देती हैं, उनके निर्माण में भूमि और प्रायः समस्त धन वहां के शासकों अथवा नरेशों द्वारा उस समय के अंग्रेजी रेजिडेन्ट अथवा पोलेटिकल एजेन्ट के निर्देश से, प्रदान किया गया था। राष्ट्रों के इतिहास में यह एक अद्वितीय उदाहरण है कि इस प्रकार का संरक्षण ईसाइयत के प्रचार के लिए एक गैर-ईसाई देश ने दिया हो।

१९४७ में देशी राज्यों के विलीन होने के पश्चात् सरगुजा जिले में पादरियों की घोर भयानक गतिविधियों को समझने के लिये यह आवश्यक है कि रांची में किस प्रकार पादरियों के प्रचार का प्रारम्भ हुआ उस पर दृष्टि डाली जाय। इसका अनुमान 'हिस्ट्री आफ छोटा नागपुर" के अध्ययन से लगाया जा सकता है। १८४५ की बात है कि जब मिस्टर हैनिग्टन ने, जो वहां डिपुटी कमिश्नर थे, कलकत्ता से चार जर्मन मिश्नरियों को वहां बुलाया और उनका कार्य कुछ अनाथ बच्चों को, जो अकाल के पीड़ित थे, उनके चार्ज में देने पर शुरू हुआ। ईसाई धर्म में दीक्षित होने वालों की संख्या बढ़ने लगी, तब 'गौस्नर एवेन्जेलिकल लूथरन मिशन" ने रांची के इर्द गिर्द अपना कार्य क्षेत्र बढ़ाना शुरु कर दिया। "गौस्नर मिशन" जिस क्षेत्र में ईसाइयत का प्रचार करता है वह पहले जशपुर, सरगुजा, उदयपुर, और रायगढ़ देशी राज्यों से संयुक्त था। अब तक भी उक्त मिशन का सदर मुकाम रांची में है। १८८५ में बाद को रोमन कैथोलिक मिशन ने भी उनके साथ प्रचार शुरु कर दिया।

१९४८ से पूर्व राँची के डायोसिस (पादरी मठ) में जो क्षेत्र सम्मिलित थे वे आठ राज्यों से मिल कर बने थे। उनमे से ७ रांची के डायोसिस में थे और एक नागपुर के डायोसिस में। इन समस्त राज्यों में ईसाई धर्म का प्रचार बिलकुल निषिद्ध था। १९०७ में जशपुर राज्य में धर्म-परिवर्तन आंदोलन हुआ। किन्तु फिर भी ९ वर्ष तक मिशनरी लोग वहां रहने के लिए एक रक्षा-स्थान भी न बना सके। फिर शनैः शनैः मिशन के पांच स्थान स्थापित किये गये। उदयपुर राज्य में १९३५ में एक दूसरा धर्म-परिवर्तन का एक बहुत बड़ा आंदोलन हुआ। १९४१ तक कोई भी पादरी राज्य के भीतर नहीं प्रवेश कर सकता था। १९४१ से १९४९ तक बाहर से आने वाले पादरी को केवल गम्भीर रोग से पीड़ित रोगी को देखने और वर्ष में केवल चार अवसर पर सामूहिक प्रार्थना के लिए आने की आज्ञा थी। परन्तु वह राज्य में ४८ घंटे से अधिक नहीं ठहर सकता था। १९४९ में जब देशी राज्यों का विलय हुआ और १९५० में विधान घोषित हुआ, तब पादरियों को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त हो गयी और उनकी गति-विधियों पर कोई रोक नहीं रही। १३ दिसम्बर १९५१ को रायगढ़ के "डायोसिस" और अम्बिकापुर के "डायोसिस" की स्थापना हुई और अब जो रांची में "आर्च डायोसिस" है उससे उनको अलग रखा गया। रांची डायोसिस अब तक रांची मिशन का भाग चला आ रहा है। (१९५४ कैथोलिक डायरेक्टरी पृष्ठ २६४)

मिशन वालों ने भारत में आदिम जातियों को ईसाईयत के प्रचार के लिये अच्छा खासा क्षेत्र पाया। इसी क्षेत्र में बेल्जियन जेसुइट मिशन १८८५ में आ घुसा, तब से उसको अपने कार्य में काफी सफलता प्राप्त हो रही है। कैथोलिक जैसुइट मिश्नरियों ने आदिवासियों की भूमि सम्बन्धी कष्टों से अनुचित लाभ उठाया। इस बात का, कमिश्नरी की सरकारी रिपोर्ट से जो उन्होंने १८९० में सरकार को भेजी थी, स्पष्ट पता चलता है। उस रिपोर्ट में लिखा था:—"रांची के डिपुटी कमिश्नर ने जैसुइट पादरियों की बड़े-कड़े शब्दों में निन्दा की है और उनपर आक्षेप लगाया है कि आदिवासियों में असन्तोष की भावना को प्रोत्साहन देने में इन्हीं पादरियों का हाथ है। यदि कोई झगड़ा हुआ तो उसकी सब जिम्मेदारी इन्हीं पर होगी।" (पृष्ठ १८, लिजेन्ड आफ दी कोल) यह बात उल्लेखनीय है कि १८९५ में आदि-वासियों द्वारा जो विद्रोह हुआ था। उसका नेतृत्व बिरसा नामक ईसाई ने जो अपने आप को ईशु का भाई कहता था और जिसको जर्मन मिशन ने ईसाई बनाया था,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

किया था। इस आन्दोलन को सैनिक सहायता से ही दबाया जा सका था।

इसी प्रकार का एक और विद्रोह बस्तर राज्य में १९१० में उठ खड़ा हुआ था जिसके पीछे मिस्टर वाड नामक एक मिश्नरी का हाथ था। बस्तर राज्य में उक्त उपद्रव को दबाने के लिए जो फौज भेजी गई थी उसने मिस्टर वाड को उस राज्य में एक खतरनाक व्यक्ति कहा था। मिस्टर वाड को बस्तर राज्य के बाहर किसी अन्यत्र स्थान मे भेज दिया गया था। परन्तु वहां से भी वह बस्तर राज्य में रहने वाले ईसाईयों को चोरी छिपा पत्र भेजता रहा और उन को अपना पुनः बस्तर में तबादला करानें के लिए आन्दोलन जारी रखने के लिये उकसाता रहा। जिन ईसाईयों के घरों की तलाशी ली गयी उनके घरों में से 'राष्ट्रविरोधी और घृणा फैलाने वाले' पत्र-व्यवहार पाये गये। राज्य के दीवान मिस्टर जे० मे० ने मिशन अधिकारियों को लिखा कि जो पूछताछ उसनें की है उससे वह सन्तुष्ट है और यह पता चलता है कि मिस्टर वाड तथा ईसाई ही राज्य में अशान्ति और गद्दारी फैलाने के जिम्मेदार हैं। फल स्वरूप मिस्टर वाड को अमेरिका वापस भेज दिया गया।

१९३६-३७ में जैसुइट मिश्नरियों ने उदयपुर राज्य में ईसाईयत के प्रचार के लिये घुसने की असफल तथा अनाधिकार चेष्टा की। गवर्नर जेनरल के एजेन्ट महोदय ने इस विषय में जांच करवाई तो विदित हुआ कि पादरियों ने तपकारा को जो उदयपुर राज्य के बाहर और जहां उदयपुर राज्य में रहने वाले लोगों का धर्म-परिवर्तन वर्जित है, अपना केन्द्र बना लिया है और वहां से लोगों को कर्ज देना शुरू कर दिया है ताकि धर्मपरिवर्तन के लिए लोग आकृष्ट हों। बिना आज्ञा लिये उन्होंने उदयपुर राज्य में मिशन के स्कूल भी खोले और उन्होंने उदयपुर राज्य के १२० लड़के लडकियों को शिक्षा देनें लिये तपकारा मिशन केन्द्र में भर्ती कर लिया। इस पर गवर्नमेन्ट आफ इंडिया ने जैसुइट मिशनवालों को कड़ी चेतावनी दी कि यदि उन्होंने उदयपुर राज्य में अपने मिश्नरी कार्य को और फैलाया तो वे इसे सहन न करेगी। मिशन को यह भी आदेश दिया गया कि वह एक रजिस्टर रखे जिसमें प्रत्येक नये इसाई हुए व्यक्ति का नाम, उस के पिता का नाम और ऐसा अन्य विवरण लिखा रहना चाहिये। इसके अतिरिक्त उसके धर्म-परिवर्तन पर यदि किसी प्रकार प्रलोभन अथवा आर्थिक सहायता दी गयी हो तो उसका उल्लेख किया जाये। (कर्नल मिक्स रिपोर्ट)।

रेवेरेन्ड लकरा जो रांची के लूथरन मिशन के अध्यक्ष थे, १९४८ में अम्स्टर्डम में वर्ल्ड कौन्सिल आफ चर्चेज की कान्फ्रेन्स में सम्मिलित हुए उस अवसर पर अमेरीका के मिस्टर डलेस भी उपस्थित थे। अमेरीका के यूनाइटेड लूथरन चर्च के ८००० डालर की और १९५३ में ९०००० रु० की जो सहायताएँ प्राप्त हुई उनके द्वारा सरगुजा जिला में सामूहिक रूप में धर्म-परिवर्तन किये गये (घर बन्धु, नवम्बर १९५२, पृष्ठ १३ तथा घरबन्धु, नवम्बर १९५३, पृष्ठ १५ और १६)। मिशन को अमेरीका से ६७५०० रु० भी मिला। इससे उनके खर्च में जो कमी पड़ गई थी, उसको पूरा किया गया (घरबन्धु, दिसम्बर १९५२, पृष्ठ ४ से ७)। यह स्पष्ट है कि भिन्न भिन्न मिशनों में जो आपस में तीव्र प्रतिद्वन्दिता चली उसके फल-स्वरूप यह नितान्त आवश्यक हो गया कि कुछ लोगों को धर्म-परिवर्तन के लिये ३०) रु० प्रलोभन के रूप में अग्रिम दे दिये जांय (घरबन्धु, दिसम्बर १९५२, पृष्ठ २ से ५)। १९५४ में लूथरन नेशनल मिश्नरी सुसाईटी ने एक बहुत बड़ी ग्रान्ट के लिये याचना की, ताकि सामूहिक धर्म-परिवर्तन कार्य के लिये जो उरांव में से कार्य कर्ताओं की आवश्यकता है, उनकी सेवायें ली जा सकें। डाक्टर एफ० ए० स्योज, चेयरमैन लूथरन वर्ल्ड फिडरेशन कमीशन आफ वर्ल्ड मिशन्स और डा० सी० डब्ल्यू० ओवरडोर्फर, फिडरेशन प्रेसिडेन्ट आफ इण्डिया इन दो उच्च व्यक्तियों की प्रेरणा से, पार्टनरशिप इन ओविडियेन्स, के आधार पर १५०० डालर की ग्रान्ट दी गई। (दी नेशनल मिश्नरी इन्टेलिजेन्सर, अप्रैल १९५४, पृष्ठ ५) इस प्रकार सरगुजा राज्य में मिश्नरियों के अध्यवसाय ने जिसको पर्याप्त जन-धन की सहायता प्राप्त थी, एक प्रकार का धावा बोल दिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि वहां ५००० से अधिक लोगों का धर्म-परिवर्तन किया

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

गया। इस अवसर पर हमें यह भी जान लेना आवश्यक होगा कि ये पादरी किस प्रकार मध्य प्रदेश के पूर्वी राज्यों में प्रविष्ट हुए। १८९३ में सर एन्ड्रू फ्रेजर ने जो उस समय छतीसगढ़ के कमिश्नर थे, बिना स्थानीय सरकार को सूचना दिये यह निर्देश जारी कर दिया था कि जो भूमि सरकार के प्रबन्ध में है उसको बस्तर राज्य में मिशन के कार्य के लिये लिया जा सकता है। इस विज्ञप्ति से जो गुल खिला यह प्रत्यक्ष ही है जैसा ऊपर वर्णन किया जा चुका है।

१८५४ में मिश्नरियों ने कवरधा राज्य में भूमि लेने के लिये प्रार्थना की थी जिसको स्थानीय सरकार ने अस्वीकृत कर दिया था। क्योंकि जब एक देशी राज्य सरकार के शासन के अंतर्गत हो, तब मिश्नरियों के लिये प्रचार कार्य के लिये भूमि का हस्तान्तर करना सरकार की स्वामीत्व-शक्ति के अंतर्गत है और इस नियमानुसार भूमि का देना वह अस्वीकार कर सकता है २०वीं शताब्दी के प्रारम्भ में जर्मन लूथरन मिशन ने बिना गंगापुर राज्य के शासक से आज्ञा प्राप्त किये तथा बिना स्थानीय सरकार को सूचना दिये, वहाँ दो केन्द्र खोल दिये। राज्य के शासक ने इस पर विरोध प्रकट किया, तिस पर भी राजनैतिक अधिकारी ने कोई ध्यान न दिया। एक पादरी तो खुले आम बेगार के सम्बन्ध में शासक की आज्ञा की अवहेलना या प्रचार करता रहा, यद्यपि यह बेगार अथवा सेवा कार्य केवल रेन्ट फ्री (बिना कर की) भूमि वालों से ही लिया जाता था। मिश्नरी लोग प्रायः रैयत को यही वचन तथा आश्वासन देते रहते थे कि वे दरबार को कई प्रकार के दिये जाने वाले करों से उन्हें मुक्त करा देगें। ऐसे प्रचार से वहां प्रजा में अवज्ञा की भावना फैलती गयी। इसी हेतु छोटा नागपुर के कमिश्नर ने, जो उस समय पोलेटिकल अफसर के कार्य की देख रेख कर रहे थे, एक पादरी को राज्य से बाहर निकाल दिया। बाद में एक यूरोपियन दीवान आये और उन्होंने देखा कि ईसाई लोग हाथ से बिल्कुल बाहर निकलते जा रहे हैं तब उन्होंने ऐसी स्थिति पर सख्ती से काबू पा लिया। उक्त दीवान की यह धारणा बंध गयी थी कि अधिकतर लोग मिशन में इसलिये सम्मिलित होते हैं कि उनको भौतिक लाभ प्राप्त होने की आशा होती हैं। आध्यात्मिक लाभ के लिये वे कोई चिन्ता नहीं करते।

जिन परिस्थितियों में जशपुर के राजा को गद्दी से उतारा गया। वह बहुत महत्व की हैं और उनके अध्ययन से पता चलता है कि उस समय की सरकार पर मिश्नरियों का कितना दबाव था। १९०६ में देशी ईसाई प्रचारकों के राज्य में प्रवेश के लिये जर्मन लूथरन मिशन ने एक लाइसेन्स के लिये याचना की। राजा प्रचारकों के प्रवेश के लिये आज्ञा प्रदान करने में सहमत नहीं थे। परन्तु मिस्टर लारी जो उस समय पोलीटिकल एजेन्ट थे, उन्होंने राजा पर दबाव डाला कि वे अपने विरोध को वापस ले लें। मि० एम० ब्रेट जो नये पोलेटिकल एजेन्ट थे उनको पता चला कि रोमन कैथोलिक वाले कहते थे कि उनसे ३०००० लोगों ने पूछ ताछ की है और लूथरन मिशन वाले कहते थे कि १५००० लोंगों ने उनसे भी पूछताछ की है और यह सब के सब पूछताछ करने वाले उरांव जाति में से थे। उसने सरकार को रिपोर्ट भेजी कि राजा ने पोलेटिकल एजेन्ट के दबाव के कारण पादरियों की बात मानी थी। परन्तु मध्य प्रदेश की सरकार ने यह ठहराया कि राजा को राज्य में समस्त मिश्नरियों के प्रवेश को रोकने की आम स्वीकृति नहीं दी जा सकती। इसके साथ ही उक्त सरकार ने मिश्नरी संस्थाओं को चेतावनी दी कि यदि उनके प्रचारक राजा के रैयत को वहां के विधान के अनुसार अधिकारों के विरुद्ध उकसाते रहे तब वे सरकार की ओर से किसी प्रकार की सहायता की आशा नहीं रख सकेंगे। राजा और मिश्नरियों के बीच लगातार झगड़ा होता रहा। तब मिस्टर ब्लेक्सले जो उस समय पोलिटीकल एजेन्ट थे, उन्होंने अच्छी तरह जांच की और १९१३ में स्थानीय सरकार के पास अपनी जांच की पूर्ण रिपोर्ट भेज दी। उन्होंने उसमें उल्लेख किया कि जशपुर राज्य में ईसाइयत के आन्दोलन को किसी रूप में भी धार्मिक नहीं कहा जा सकता है। मिश्नरी लोग कर्जा दे दे कर लोगों में अपना काफी प्रभाव जमा चुके हैं। उसने वह भी लिखा कि धर्म-प्रचार के बहाने उन्होंने सारे राज्य में राजनैतिक प्रचार का जाल फैला दिया है। उसने

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सरकार से अनुरोध किया कि राजा को जैसुइट पादरी तथा उनके एजेन्टों को बाहर निकालने का अधिकार दिया जावे। परन्तु सरकार ने उस के सुझाव को मानने से इन्कार कर दिया। मिस्टर ब्लेक्सले ने धर्म-प्रचार के सम्बन्ध में जो पहले उल्लेख किया है उसकी पुष्टि कलकत्ता के आर्चविशप के आत्मोल्लेख से हो जाती है, जो उन्होंने मिस्टर नैपियर, कमिश्नर आफ छत्तीसगढ़, के समक्ष किया था। उसमें उन्होंने कहा था कि सब बातों को छोड़कर वे कह सकते हैं कि आदिम जातियों में से जो बहुत से ईसाई राज्य में हुए हैं उनकी धर्म के प्रति कोई विशेष रुचि नहीं थी। यदि उन्होंने ईसाई धर्म ग्रहण किया था तो केवल इस लिये कि एसा करने पर उनको विशेष भौतिक लाभ होगा। झगड़ा तब हुआ जब १९२२ में जशपुर राज्य में एक "दी यूनिटी समाज" संस्था की स्थापना हुई। इसे रांची के लूथरनों ने स्थापित किया था और राज्य में जो मिशन के प्रचारक कार्य करते थे उनके बारे में रिपोर्ट मिली थी कि वह खतरनाक प्रवृत्तियों में लगे हुए है। कलकत्ता के रोमन कैथोलिक आर्च विशप ने पोलिटकल एजेन्ट के पास एक विवरण भेजा जो उसके एक पादरी ने तैयार किया था कि लूथरन प्रचारक जिस प्रकार झगड़े के बीज बो रहे हैं उनसे एक गदर का सूत्रपात होगा। ऐसी घटना अवश्य घटी और इसका अंतिम परिणाम यह हुआ कि जशपुर के राजा को गद्दी से उतार दिया गया। ऐसी घटनाएं भविष्य में न हों पाएं, इन्हीं की रोक के लिये रायगढ़ दरबार ने १९३६ में कनवर्सन ऐक्ट पास किया था।

१९२८ के स्टैचुटरी कमीशन ने पिछडी जातियों को दो हिस्सों में विभक्त कर दिया—एक पूर्ण बहिष्कृत क्षेत्र तथा दूसरा अंशतः बहिष्कृत क्षेत्र। यह सर्वविदित है कि आदिम जातियों ने जैसे गोंड इत्यादि, १९२०–२१ के असहयोग आन्दोलन में और अन्य राजनैतिक आन्दोलनों में जैसे १९२३ में जो नागपुर झंडा-सत्याग्रह हुआ था उसमें और १९३० में जो जंगल-सत्याग्रह हुआ था, उसमें सहयोग दिया था (पृष्ट ४९ अबोरिजिनल प्रोब्लेम इन दी बालाघाट डिस्ट्रिक्ट)। बृटिश पार्लियामेन्ट को भेजे जाने वाली वार्षिक रिपोर्ट में नव-सत्याग्रह को इस रूप में बताया गया था कि इससे आन्दोलनकारियों का साहस बढ़ा है और वे जंगली जातियों के बीच अशान्ति उत्पन्न करने में सफल हो गये हैं। जब स्टेचुअरी कमीशन की राय पार्लियामेंट के समक्ष रखी गयी तो कर्नल वेजउड ने कहा कि उन्हें भारत से ऐसे बहुत से पत्र मिले हैं जिनमें आग्रह किया गया है कि जंगली जातियों को भारतीयों के ही संरक्षण में रखा जाय। किन्तु उनकी अपनी सम्मति में ऐसा आग्रह इसलिए था कि शिक्षित भारतीय जंगली जातियों का श्रम का शोषण करना चाहते हैं। अफ्रीका का उदाहरण देते हुए उन्होंने यह सम्मति दी कि पिछड़ी जातियों के लिए एक मात्र आशा का केन्द्र ईसाई मिश्नरियां ही हैं।

उक्त प्रकार से जंगली जातियों को पृथक् रखने का यह परिणाम हुआ कि वे मिश्नरियों के प्रचार का शिकार बन गयीं।

डा० एल्विन ने १९४४ में जंगली जातियों को पृथक रखने के कुपरिणाम को स्पष्ट करते हुए कहा था कि ऐसा करने से मिश्नरियों को धर्म-परिवर्तन का बड़ा अच्छा अवसर हाथ लगा है, क्योंकि वे सुदूर भागों में क्या कर रहे हैं, यह जनसाधारण की आंखों से परे हो जाता है। मांडला जिले के सम्बन्ध में डा० वेरियर एल्विन ने लिखा है:—

"मांडला में स्थिति गम्भीर हो चुकी है, क्योंकि वहां जबलपुर के फादर (पादरी) लोगों ने अबाध गति से और ऐसे तरीकों से धर्म-परिवर्तन कार्य आरम्भ कर दिया है, जो अत्यन्त लज्जाजनक हैं।"

इस सम्पूर्ण समस्या का इतिहास की दृष्टि से अध्ययन करने पर यही लगता है कि मिश्नरियों ने एक राज्य के अन्तर्गत एक दूसरा राज्य स्थापित कर रखा है।

झारखण्ड

लूथरन और रोमन कैथोलिक मिशन के प्रभाव द्वारा आदिवासियों में जो पृथक् रहने की भावना का जन्म हुआ, वह बृटिश सरकार तथा मिश्नरियों की संयुक्त नीति का ही परिणाम था। साइमन कमीशन की सिफारिश पर १९३१ की जनगणना में मूल हिन्दू जाति से आदि-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वासियों का विच्छेद कर दिया गया और १९३५ म इसे इंडिया ऐक्ट में परिणत हो जाने पर तो पाकिस्तान के ढ़ंग पर एक अलग झारखण्ड की मांग के लिए एक क्षेत्र ही तैयार हो गया। किस प्रकार 'झारखण्ड की मांग" वर्तमान रूप में उत्पन्न हुई, यह निम्नलिखित बातों से स्पष्ट हो जायेगा।

सन् १९४१ में श्री एम० डी० टिगा ने 'छोटा नागपुर केर पुत्री' नाम की एक पुस्तक लिखी। यह पुस्तक रांची मे छपी थी। इसके १९ वें पृष्ठ पर लिखा है :

"अदिवासी मन के राजनैतिक और आर्थिक पतन के देख के १८९८ के साल में एक सभा खड़ा भेलक उकर शुरू नाम 'छोटा नागपुर खिश्चन अशोसियेशन' रहे। बढ़ते बढ़ते १९१५ साल में ऊ सभा कुछ मजबूत भई गेलख और ऊकर नाम 'छोटा नागपुर उन्नति समाज' रखल गेला। अन्तमा अभी ओहे सभा १९३८ साल में 'आदिवासी महासभा' के केरा नाम से चालू रहे।"

रांची की एक सरकारी रिपोर्ट में टाना भगत द्वारा संचालित राजनैतिक आँदोलन तथा उक्त 'उन्नति समाज' का उल्लेख आया है। टाना भगत का आन्दोलन मूलतः धार्मिक आन्दोलन था और वह उरांवों तक ही सीमित था। इसका उद्देश्य यही था कि उरांव लोग भी अपनी जड़ोपासना के स्थान पर हिन्दुओं जैसे ही धार्मिक आदर्शों का अनुसरण करें। 'उन्नति समाज' का आन्दोलन मुण्डों में ईसाइयों द्वारा उनके नैतिक और सामाजिक उत्थान के लिए चलाया गया था। ये दोनों आन्दोलन आरम्भ में पृथक् पृथक् और गैर-राजनैतिक थे, किन्तु १९२१-२२ में असहयोग आन्दोलन के प्रभाव में आकार इनका रूप जमींदारी और सरकार के प्रति विद्रोहात्मक हो उठा। ज्योंही इस आन्दोलन ने जोर पकड़ा, १९२२ में पुलिस को टाना भगत और उसकी पंचायत के विरुद्ध कड़ी कार्यवाही करनी पड़ी। इसके पश्चात् २२ जनवरी, १९३९ को रांची में प्रथमवार 'आदिवासी सभा' की कान्फरेन्स बुलायी गयी, जिसके सभापति श्री जयपाल सिंह, एम० पी० हुए। अपने अध्यक्षीय भाषण में श्री जयपाल सिंह ने कहा :—

"आज हम सब आदिवासी अपनी स्वतन्त्रता के संघर्ष तथा बहुसंख्यकों के अत्याचार से छुटकारा पाने के लि एक हैं। यह हम लोगों का एक संयुक्त मोर्चा है, जो आदिवासियों के इतिहास में अभूतपूर्व है। सभी मिश्नरी संस्थायें जो यहां कार्य कर रही हैं, हमारे साथ हैं। यहां तक कि बंगाली लोग भी विभाजन की मांग कर रहे हैं। यूरोपियन, एंग्लोइंडियन सभी हमारे साथ खुली सहानुभूति दिखा रहे हैं।"

सन् १९५० में जमशेदपुर में आदिवासी महासभा' के वार्षिक अधिवेशन में श्री जयपाल सिंह ने घोषणा की कि आदिवासी महासमा 'झारखण्ड पार्टी' में विलीन हो गयी और इसके सदस्य अब गैर-आदिवासी भी हो सकते हैं।

समाचार-पत्रों में श्री जयपाल सिंह और उनके मंत्री प्रोफेसर हेवर्ड के बीच इस सम्बन्ध का विवाद प्रकाशित हुआ कि मुस्लिम लीग द्वारा ५००००) रु० किस व्यक्ति ने प्राप्त किया है।

ईसाई लोगों की प्रेरणा पर आदिवासियों ने जो इस प्रकार के प्रयत्न किये हैं, वे उनसे मिलते जुलते हैं जो वर्मा, आसाम और इण्डोचीन में करेन, नागा तथा अम्वा-यनिज लोगों के द्वारा हुए हैं। जो आदिवासी ईसाई बन गये थे उनमें यह भावना उत्पन्न की गयी कि वे धार्मिक रूप से एक अलग राष्ट्र हैं। धर्म परिवर्तन के साथ राष्ट्रीयता भी बदल जाती है, यह भावना मिश्नरियों की प्रेरणा का ही परिणाम है। यह बात निम्नलिखित सन्दर्भ से, जो बर्मा के करेन लोगों के विषय में है, और भी स्पष्ट हो जाती है :—

"मिश्नरियों के आगमन के पूर्व करेन एक छोटी जंगली जाति के रूप में थे और प्रकृति-पूजक थे। मिश्नरियों ने उन्हें शिक्षित किया तथा बाइबिल के अनुवाद द्वारा उन्हें एक लिपिबद्ध भाषा प्रदान की। किन्तु इस प्रकार एक छोटी जाति की एक राष्ट्र के रूप में ला खड़ा करने की उल्लेखनीय सफलता एक दुःखद प्रसंग बन गयी। इसका उत्तरदायित्व मिश्नरियों पर है कि आज करेन अपने को बर्मी कहने से भी कतराते हैं !.....करेनों की आज एक संगठित राष्ट्रसभा है, जिसने एक अलग करेन राष्ट्र के समर्थन के लिये अपना एक शिष्ट-मंडल लंडन में भेजा था।"

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इस प्रकार जब जनगणना के अधिकारी मूल जाति से कुछ लोगों के एक वर्ग को पृथक रखते हैं, तो दूसरी ओर मिश्नरी उन्हें अपने धर्म में दीक्षित कर एक दूसरी राष्ट्रीयता भी प्रदान करते हैं, जिससे कि वे अपने लिये एक पृथक राज्य की मांग कर सकें।

कैथोलिक लोगों की प्रवृत्ति कदाचित झारखण्ड आन्दोलन और विभाजन आन्दोलन के विरुद्ध थी। श्री रामेश्वर प्रसाद शर्मा ने अपनी गवाही में कहा कि वे छिपे रूप से आन्दोलन का समर्थन कर रहे थे। उनके वक्तव्य की पुष्टि 'निष्कलंक' (कैथोलिक लोगों के सरकारी पत्र) के अक्टूबर १९४७ वाले अंक से हो जाती है। इसके मुख्य पृष्ठ पर, मैडोना, (मरियम) एक चित्र प्रकाशित हुआ है जो अपने बच्चे को लिये हुए है और जिसके सम्मुख छोटे नागपुर का मान-चित्र है। पृष्ठ १४८ पर इस चित्र की व्याख्या इस प्रकार की गयी है :

"राँची धर्म प्रान्त कब छोटा नागपुर की रानी माता मरीया के हाथ में अर्पण किया जायगा ?

हे छोटा नागपुर की रानी,

तेरी प्रार्थना द्वारा तेरे पुत्र, ख्रीस्त राजा ने समारोह से हमारे देश में प्रवेश किया है और उसे निवास स्थान बनाया है।

हे महा पुनरागमन की कुंवारी,

इसी घड़ी जब इतने झूठे नबी छोटा नागपुर को हर लेने की चेष्टा कर रहे हैं, अपने राज्य में समारोह से प्रवेश कर और अपने पास और अपने पुत्र पास संवसारों, लूथरनों, अंग्लिकनों और सब दूसरों को बुला।"

अध्याय ३

युद्धोपरान्त ईसाइयों की विश्व-नीति

भारत में ईसाई मिशनों की उग्रतर गतिविधियां ईसाइयों की युद्धोत्तर विश्व-नीति का एक अविभाज्य अंग है। अतः इसके पूर्ण महत्व को समझने के लिये विश्व-परिस्थिति के साथ साथ इसका अध्ययन करना आवश्यक होगा।

सन् १९४१ में द्वितीय विश्व-युद्धकाल में ब्रिटेन ने अन्तर्राष्ट्रीय मैत्री और सामाजिक उत्तरदायित्व के लि चर्चों का एक कमीशन नियुक्त किया। सन् १९४२ कमीशन ने एक विज्ञप्ति प्रकाशित की, जिसमें ईसा दृष्टिकोण से ईसाई चर्च तथा विश्व-शान्ति पर विच किया गया था और जिसमें सामान्य नैतिक उद्देश अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक सम्बन्ध, आर्थिक न्याय, निः शस्त्री करण तथा अल्पसंख्यकों एवं उपनिवेशवासियों के अधिका का उल्लेख था। इसी प्रकार संयुक्त अमरीकी राज्य में १९०८ में स्थापित 'फिडरल कौन्सिल-आफ चर्चेज' ने भी न्याययुक्त स्थायी शान्ति के लिये मि० जान फास्टर डलेस की अध्यक्षता में एक कमीशन नियुक्त किया। जुलाई १९४३ में उक्त कमीशन द्वारा एक गोलमेज कान्फ्रेन्स बुलायी गयी और विश्व-शान्ति पर ईसाइयों की ओर से एक सन्देश प्रकाशित किया गया। इस सन्देश में उक्त कमीशन द्वारा उपस्थित किये गये राजनीतिक प्रस्तावों को शान्ति के ६ स्तम्भों के रूप में सहर्ष स्वीकार किया गया था और उस कान्फ्रेन्स में इस बात पर बल दिया गया था कि यह एक ऐसा अवसर है जब कि ईसाई धर्म का विश्व-व्यापी प्रचार होना चाहिये।

जनवरी १९४५ में क्लीवलैण्ड और ओहियो में स्थायी शान्ति के निमित्त एक संयुक्त राष्ट्र कमीशन बैठा। उसने ९ सिफारिशें उपस्थित कीं। इनका अमेरिकन चर्चों ने बहुत स्वागत किया और सरकारी क्षेत्रों में भी उन्हें महत्व दिया गया। इसी प्रकार १९४५ में 'बृटिश कौन्सिल आफ चर्चेज' ने भी अपनी सरकार के सामने कंपनी सिफारिशें रखीं। इन्हीं सब का परिणाम हुआ कि अप्रेल-जून, १९४५ में संयुक्त राज्यों की एक कांफ्रेंस सेन्फ्रान्सिसकों में बुलाई गई। इसी कांफ्रेंस में मानवीय अधिकारों के लिये एक कमीशन की नियुक्ति पर बल दिया गया।

न्याययुक्त स्थायी शान्ति कमीशन की एक दूसरी बैठक १९४५ के नवम्बर में हुई। इसमें विभिन्न चर्चों के बीच एक सार्वभौम ईसाई संगठन पर बल दिया गया जिससे कि अन्तर्राष्ट्रीय विषयों पर चर्च की ओर से महत्वपूर्ण प्रभाव डाला जा सके उक्त कमीशन ने घोषित किया :—

"अब जबकि युद्ध समाप्त हो गया है, ईसाई चर्चों का एक विश्वव्यापी संगठन बन सकता है, जिसके द्वारा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अनेक देशों में ईसाइयत का प्रचार संगठित रूप से किया जाये।.....ईसाई शक्तियां विश्व में अल्प संख्या में हैं, फिर भी वह उक्त प्रकार से थोड़े ही समय में एक सुसंगठित और प्रबल अल्पसंख्यक समूह का रूप ले सकती है।"

यद्यपि स्वयं यूरोप में ईसाइयत के प्रचार की अवश्यकता थी, क्योंकि वहां मार्क्स के कम्यूनिज्म का प्रचार बढ़ रहा था, फिर भी ईसाइयों ने अपना ध्यान भारत और दूसरे औपनिवेशिक राज्यों की ओर मोड़ लिया। उन्हें हमारे विधान से प्रोत्साहन मिला, क्योंकि उस विधान से भारत में किसी भी धर्म को अपना प्रचार करने की स्वतंत्रता दी गयी है।

भारतीय विधान में धार्मिक स्वतन्त्रता की घोषणा के के बाद भारत में ईसाइयत का प्रचार प्रबल हो गया और मिश्नरियों के लिये तो मानो द्वार ही खुल गया। प्रेस, फिल्म, रेडियो आदि अनेक साधनों के साथ मिश्नरियों के दल के दल भेजे जाने लगे।

वह नवीन ईसाई प्रचार स्टालिनवाद और वैज्ञानिक मानववाद जैसे नये मनः कल्पित धर्म-निरपेक्ष राज्यों को परास्त करने तथा अन्य गैर ईसाई धर्मों की प्रकल्पित संभावनाओं का सामना करने के उद्देश्य से उभड़ा है।

सन् १९५१ से अमेरिकन चारकों तथा अन्य विदेशी मिशनों की संख्या में ५०० की वृद्धि हुई। विशेष कर मिश्नरी जत्थों का आक्रमण सरगुजा जिला में हुआ जहां १९४७ से पूर्व जबकि सरगुजा मध्यप्रदेश में विलीन हुआ, मिश्नरियों का प्रवेश निषिद्ध था।

भारत में ईसाई धर्म-परिवर्तन का जो प्रबल आन्दोलन चला उसने ईसाईयों को यह सोचने को बाध्य किया कि उच्च वर्ग के हिन्दुओं और मध्य श्रेणी के लोगों तथा जंगली जातियों को किस प्रकार ईसाई बनाया जाय। जहां तक उच्च और मध्यम श्रेणियों का सम्बन्ध है, उन पर ईसाई धर्म का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ सकता है। साथ ही हिन्दु संस्कृति की सर्वग्राही शक्ति को दृष्टि में रखते हुए यह नितान्त आवश्यक है कि जहां और जब भी अवसर मिले, ईसाई धर्म को तत्काल प्रसारित किया जाय। देश के भीतर बढ़ते हुए कम्यूनिज्म की प्रगति तभी रोकी जा सकेगी।

दूसरी ओर गैर-ईसाई धर्म जैसे हिन्दु धर्म, बौद्ध, धर्म, और कन्फूसियस धर्म पुनर्जीवन प्राप्त करते हुए ईसाई धर्म को चुनौती दे रहे हैं और ईसाई मत की इस मान्यता को ललकार रहे हैं कि केवल ईसाई धर्म ही सत्य ज्ञान का एकमात्र मार्ग है। उक्त सब धर्मों का यह विश्वास है कि सब धर्म एक ही लक्ष्य की ओर ले जाने वाले हैं। अतः ईसाईयों ने निश्चय किया कि यूनिवर्सल चर्च (सार्वभौम चर्च) का कर्तव्य हो जाता है कि वे अपने प्रभु की आज्ञा का पालन करें, जिसमें सब अन्य धर्मों को जड़ से नेस्त नाबूद करने को कहा गया है।

सन् १९४८ के जून मास मे जो 'फेलोशिप आफ इन्टरनेशनल मिश्नरी सुसाइटी कान्फ्रेन्स' हुई थी, उसमें एलेक्जेन्डर मकलेश ने बोलते हुए कहा था कि अभी हाल में हमारे भारतीय ईसाई नेताओं ने एक योजना बनायी है जिसके अन्तर्गत ६००००० छे लाख भारतीय ग्रामों को अगले दस वर्षों में ईसाई बनाने का संकल्प किया गया है। हमारे पास भौतिक साधनों की कमी नहीं है। इसके अतिरिक्त हमारे आध्यात्मिक साधनों का भी अभाव नहीं है। इनके द्वारा हम धर्म-परिवर्तन कार्य को भली प्रकार सम्पन्न करने में समर्थ होंगे।

अमेरिका में जो टेलीविज़न के द्वारा ब्राडकास्ट होता है उसमें अमेरिकन लोगों से कहा जाता है कि वे दल के दल मिश्नरियों को विश्व के समस्त देशों को भेजें, जिससे कि वहां लाखों पीड़ित व्यक्तियों को ईसा के राज्य में प्रविष्ट किया जा सके। यह धर्म-युद्ध चर्च के इतिहास में सब से बड़ा कार्य होगा। अमेरिका में इस बात पर भी जोर किया जाता रहा है कि ईसा का चर्च विश्व-व्यापी चर्च है। यह राष्ट्रीयता और जातीयता के भेदभाव से ऊपर है। इस प्रकार ईसाई मत लोगों को दूहरी राजभक्ति सिखाता है अर्थात् एक ओर तो ईसा के प्रति और दूसरी ओर राष्ट्र के प्रति। ऐसी परिस्थिति में यदि ईसा और राष्ट्र के बीच टक्कर हो तो सच्चे ईसाई के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि वह ईसा की ही आज्ञा का पालन करे। राष्ट्र के प्रति भक्ति एक राजनैतिक और राष्ट्रीय कर्तव्य है, जबकि चर्च के प्रति निष्ठा एक प्रकार का धार्मिक और आध्यात्मिक कर्तव्य हो जाता है। इसमें कोई संशय नहीं कि दोनों के क्षेत्र अलग अलग हैं और साधारण तौर पर दोनों में कोई झगड़ा दिखाई नहीं

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

देता। यदि संसार में राजनैतिक विभाजनों पर धर्मों का कोई प्रभाव न पड़े, तब उक्त दो प्रकार की निष्ठाओं में किसी प्रकार के झगड़े का कोई अवसर नहीं है। परन्तु आजकल के संसार में कई ऐसे राष्ट्र हैं जो धर्म या मजहब की नींव पर खड़े हैं। हमारे देश का जो विभाजन हुआ उसमें भी मजहब का ही हाथ रहा है। ऐसी दशा में राज्य के प्रति निष्ठा और चर्च के प्रति निष्ठा इन दोनों के बीच संघर्ष की संभावना बनी रहती है। इस दृष्टि से हम देखें तो भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में जो प्रेस, फिल्म तथा रेडियो द्वारा ईसाई धर्म के प्रचार की भयंकर चेष्टा हो रही है। वह देश के लिये खतरे से खाली नहीं है।

इस प्रकार हम इस निश्चय पर पहुंचते हैं कि मिश्नरियों द्वारा धर्म-परिवर्तन का जो प्रबल कार्यक्रम चल रहा है, उसका उद्देश्य निम्न प्रकार है:—

१—स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् औपनिवेशिक राज्यों में राष्ट्रीय एकता की भावना को बढ़ने से रोकना।

२—सह-अस्तित्व के सिद्धान्त के सम्बन्ध में भारत और अमेरिका के बीच भेदभाव पर बल देना। भारत शान्ति पूर्ण सह-अस्तित्व का इच्छुक है जबकि 'वर्ल्ड कौन्सिल आफ चर्चेज' जैसा कि उसकी एक रिपोर्ट से पता चलता है, सह-अस्तित्व की नीति को केवल तुष्टीकरण की नीति मानता है और वर्तमान एकतंत्र राष्ट्रों और स्वतंत्र राष्ट्रों के बीच आर्थिक और राजनैतिक विभिन्नताओं को दृष्टि में रखते हुए, इसका समर्थन नहीं करता।

३—भारतीय संविधान में दी गयी धर्म-प्रचार की स्वतन्त्रता से लाभ उठाना तथा मुस्लिम लीग की भाँति भारतीय गण-तन्त्र में एक क्रिश्चयन पार्टी का संगठन करना, जो अन्त में अपने लिये एक अलग राज्य की माँग कर सके अथवा कम से कम एक प्रबल अल्पसंख्यक समुदाय को खड़ा कर सके।

संक्षेप में परिस्थिति यह है कि कैथोलिक चर्च की पोपशाही और अमरीकी प्रजातन्त्र दोनों कम्यूनिज्म (साम्यवाद) से लोहा लेने के लिये अधिक से अधिक लोगों को ईसाई बनाने पर तुले हुए हैं। कैथोलिक चर्च जहाँ अपने धार्मिक साम्राज्य के लिये लालायित है वहाँ अमेरिका विश्व-नेतृत्व प्राप्त करने के लिये अधीर है।

भाग ३

अध्याय १

अन्य देशों में धार्मिक स्वतन्त्रता

कुछ ईसाई लोगों के द्वारा की गयी धार्मिक-स्वतंत्रता की व्याख्या का उल्लेख करते हुए रिपोर्ट में आगे कहा गया है कि भारत में अनादि काल से धार्मिक स्वतंत्रता रही है। भारत अनेक धर्मों का देश है। हिन्दू धर्म, जो यहाँ के अधिकांश लोगों का धर्म है, स्वयं अनेक मत-मतान्तरों का समवाय है। हिन्दू धर्म अपनी उदारता और दूसरे धर्मों के प्रति अपनी सहृदयता के कारण ही युग-युगन्तरों से अक्षुण्ण चला आ रहा है। हिन्दू समाज में धार्मिक उत्पीड़न या अत्याचार का नाम भी नहीं रहा है।

आदिकाल से हिन्दुओं की धार्मिक सहिष्णुता ने विभिन्न मत-मतान्तरों को एक साथ फलने फूलने का अवसर दिया। जैनमत और बौद्धमत दोनों ही आदिकालीन आर्य-धर्म की कुछ बातों से भिन्नता रखते हुए भी उसी के अन्तर्गत हैं। उनका उदय और विकास, जैन-धर्म का श्रमण-धर्म के रूप में एक अल्पसंख्यक वर्ग तक सीमित रह जाना, बौद्ध धर्म का विकास, इसका बाहर के देशों में प्रचार तथा हिन्दू समाज में इसका ह्रास यह सब शान्ति से घटित हुआ। परिवर्तन आये किन्तु धीरे-धीरे, सामाजिक दबाव और आन्दोलनों तथा पारस्परिक प्रेरणा द्वारा, किन्तु किसी वर्ग-विशेष का दूसरे वर्ग-विशेष के साथ अथवा व्यक्तियों का आपस में कभी कोई संघर्ष धर्म के नाम पर नहीं हुआ।

हिन्दू भारत नें सम्राट अशोक के रूप में, जो पीछे बौद्ध धर्म में दीक्षित हो गये थे, पारस्परिक मैत्री और धार्मिक सहिष्णुता का अभूतपूर्व उदाहरण प्रस्तुत किया है। अशोक के एक प्रसिद्ध शिलालेख पर यह खुदा है:—

"देवताओं के प्रिय राजा प्रियदर्शी (अशोक) सभी मतों का सम्मान करते हैं। वे गृहस्थों और संयासियों का दान तथा पूजा से सत्कार करते हैं। किन्तु देवताओं के प्रिय राजा, इस प्रकार के

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दान तथा सम्मान को उतना महत्व नहीं देते जितना कि वे सदाचार और सद्गुण-सम्पन्न शासन को देते हैं। इन सभी सद्गुणों का मूल स्रोत विनयपूर्ण भाषण है अर्थात् किसी का दूसरे व्यक्तियों के धार्मिक विश्वासों की निन्दा करते हुए अपने धर्म की प्रशंसा नहीं करनी चाहिये। न बिना किसी न्यायसंगत कारण के दूसरे धर्मों का अनादर करना चाहिये। इसके विपरीत यह उचित है कि दूसरे धर्मों को यथायोग्य सम्मान की दृष्टि से देखा जाय।"

कुछ ईसाई लेखकों का कहना है कि धार्मिक असहिष्णुता तो ईसाई धर्म के जन्म के साथ उत्पन्न हुई। प्रोफेसर गीडो डि रूडिरो नामक लेखक ने अपने एक लेख में लिखा है:—

"मानव जाति की धार्मिक स्वतन्त्रता के महासंघर्ष में ईसाई धर्म ही विरोधी रहा है। इसी मे असहिष्णुता के बीज बोये जो इसे यहूदियों की परम्परा से मिले थे। इसने ही सार्वभौम मिशन तथा ईश्वर और मानव के बीच एक मात्र माध्यम के रूप में चर्च की कल्पना उपस्थित की है।"

ईसाई मत अपने प्रथम तीन सौ वर्षों तक स्वयं इस बात के लिये संघर्ष करता रहा कि वह रोमन साम्राज्य के अन्दर गैर-ईसाई के बीच किस प्रकार आगे बढ़े। उस समय इसके असहिष्णु होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता था।

किन्तु पीछे दूसरे धर्मों को ईसाई मत के मुकाबले में अपनी रक्षा करने लिये उद्यत होना पड़ा। बाद को रोम में ऐसे कानून बनाये गये जिन के द्वारा गैर-ईसाइयों को मन्दिर बनाने, धार्मिक कृत्यों के लिये एकत्रित होने और व्यक्तिगत रूप से भी अपने धर्म के प्रचार के लिये वर्जित किया जाने लगा। गैर-ईसाई अनेक नागरिक अधिकारों से भी वंचित कर दिये गये। ईसाई धर्म छोड़ने पर मृत्यु दण्ड निर्धारित किया जाने लगा।

जो ईसाई नहीं थे उनके लिये यह भी नितान्त अनिवार्य कर दिया गया कि वे चर्च में जाकर शिक्षा ग्रहण करें और यदि वे बप्तिस्मा ग्रहण करने से इन्कार करें तो उन्हें देश-निर्वासन का दण्ड दिया जाय अथवा उनकी सम्पत्ति जब्त कर ली जाय। उनके छोटे बच्चों को भी बप्तिस्मा लेना पड़ता था।

ईसा की ५ वीं शताब्दी में ऐसा कानून बनाया गया कि जो भी व्यक्ति ईसाई परम्परा से विमुख होगा उसे राज्य के विरुद्ध अपराधी घोषित किया जायगा और उसे मृत्यु-दण्ड दिया जायगा। नास्तिकता को आम अपराध घोषित कर दिया गया था।

जब ईसाई धर्म स्वयं सत्तारूढ़ हुआ तो यहूदियों के प्रति उसका जो व्यवहार हुआ, वह एक ऐतिहासिक सत्य घटना है।

आरम्भ में यहूदी धर्म रोम में एक स्वीकृत धर्म के रूप में था, यद्यपि उसके साथ कुछ बन्धन भी लगा दिये गये थे। पर बाद को उसे एक घृणित पाखण्ड के रूप में लिया जाने लगा। यहूदी लोग सरकारी नौकरियों के लिये अयोग्य समझे जाने लगे थे। यदि कोई ईसाई यहूदी धर्म अपना लेता था तो उसे उत्तराधिकार से वंचित कर दिया जाता था। यदि कोई यहूदी किसी ईसाई स्त्री से विवाह कर लेता था तो उनके लिये देश निकाला या मृत्यु की सजा होती थी। जो यहूदी ईसाइयों को अपने धर्म में दीक्षित करता था, उसके लिये घोर दण्ड निर्धारित था। ७ वीं शताब्दी में स्पेन, इटली इत्यादि देशों में यहूदियों को निर्देश था कि वे या तो बप्तिस्मा ग्रहण करें या देश से निष्कासित हों।

ईसाई धर्म के आगे के हजार वर्ष में यही क्रम चलता रहा। आक्रान्ता और विजेता लोग चर्च का उपयोग केवल अपनी राजनैतिक विजयों को दृढ़ करने में करते रहे। चर्च और राज्य दोनों के अपवित्र गठजोड़ ने धार्मिक स्वतन्त्रता को कुचल कर रख दिया और जो लोग ईसाइत को अस्वीकार करते थे उनके लिए केवल उत्पीड़न ही शेष रह गया था।

अन्त में प्रतिक्रिया हुई। चर्च और राज्य को पृथक पृथक रखने की आवाज उठी। १५०० ईस्वी से लेकर १७०० ईस्वी तक के युग को "सुधार-युग" के नाम से कहा गया है। ईसाई धर्म के इस सुधार आन्दोलन का नेता जर्मनी का लूथर था। एक बार उसने अपने भाषण में कहा था:—

"जो ईसाई नहीं हैं, उन से झगड़ना बेकार है, उनकी उपेक्षा कर देनी चाहिये, वे स्वयं नष्ट हो जायेंगे। ईसाई मत के विश्वासियों को पाप के स्रोत का पता लगाना

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

चाहिये और पाप के स्रोत कैथौलिक मत के पादरी और पोप हैं। वे अपने रूप में छिपे हुए शैतान हैं। उनके रक्त से अपने हाथ रंगने चाहिये।"

कैथोलिक अथवा प्रोटेस्टैन्ट लोगों के द्वारा प्रदर्शित असहिष्णुता गैर-ईसाइयों अथवा यहूदियों तक ही सीमित नहीं रही, वरन् वे आपस में भी एक दूसरे के प्रति असहिष्णु थे।

यह है धार्मिक स्वतन्त्रता का इतिहास जो पश्चिमी देशों में ईसाइयत प्रस्तुत करता है।

अब आइये, हम अपने देश की ओर मुड़ें और पश्चिम के ईसाई देशों के प्रभुत्व-काल में यहां की धार्मिक स्वतन्त्रता की दशा का अध्ययन करें।

भारत में ज्यों ज्यों पुर्तगाली शासन की जड़ जमती गयी त्यों त्यों वह निरंकुश बनता गया। समय समय पर ऐसी राजकीय घोषणायें विज्ञापित की गयीं जिनके द्वारा ईसाई और गैर-ईसाई लोगों के बीच गहरा भेद-भाव उपस्थित किया गया और गैर ईसाईयों को कितने ही अधिकारों से वंचित कर दिया गया। १५५९ में एक धारा पास करके सभी हिन्दुओं को सरकारी नौकरियों के लिये अयोग्य घोषित कर दिया गया। उसी वर्ष एक दूसरा कानून बनाया गया जिस के द्वारा उन अनाथों की सम्पत्ति, जो ईसाई धर्म स्वीकार करने को तैयार न थे, जब्त कर ली गयी। इतना ही नहीं, ऐसे कानून भी बनाये गये जिनके द्वारा हिन्दू मन्दिरों देव-मूर्तियों को विध्वंश और कर देने की आज्ञा दी गयी तथा उनके सभी धार्मिक उत्सवों को बन्द कर दिया गया। १५६० में सभी ब्राह्मणों और स्वर्णकारों को कहा गया कि या तो वे ईसाई धर्म स्वीकार कर लें अन्यथा वे गोआ छोड़कर बाहर चले जायें। १५६७ के एक कानून द्वारा ब्राह्मण लोग अपने प्रमुख धार्मिक कृत्य जैसे उपनयन संस्कार, विवाह संस्कार, यहां तक कि अन्त्येष्टि क्रिया सम्पन्न करने से भी वर्जित कर दिये गये। हिन्दू धर्म-शास्त्रों को अवैध घोषित कर दिया गया। १५ वर्ष से अधिक आयु के सभी हिन्दू ईसाई शिक्षा ग्रहण करने पर बाध्य किये गये। हिन्दू मन्दिर नष्ट कर दिये गये और उनकी जगह गिरजे खड़े किये गये। १५७५ में एक दूसरा कानून बनाया गया, जिससे हिन्दू नागरिक राज्य की भूमि को कर देकर भी नहीं प्राप्त कर सकते थे। गोआ की जनता को अपनी मातृभाषा के व्यवहार से रोक दिया गया और १६८४ की धारा द्वारा उन्हें आदेश दिया गया कि वे ३ वर्ष के भीतर भीतर पुर्तगाली भाषा सीख लें, नहीं तो उन पर कानूनी कार्यवाही की जायेगी। इन सभी सरकारी कानूनों का उद्देश्य यही था कि या तो लोग ईसाई हो जाये और नहीं तो वे राज्य छोड़ कर निकल जाये। इस प्रकार भारत में १७ वीं शताब्दी के मध्य तक ईसाई मिश्नरियों की गतिविधियों का प्रथम अध्याय समाप्त होता है।

ईसाई मिश्नरियों की गतिविधियों का एक नवीन अध्याय फिर १८१३ में ईस्ट इंडिया कम्पनी की ठेकेदारी की समाप्ति से आरम्भ होता है। तब तक कोई भी यूरोपियन, जो ईस्ट इंडिया कम्पनी का नौकर न था, बिना कम्पनी की आज्ञा के भारत की धरती पर नहीं उतर सकता था। परन्तु जब यह पाबन्दी १८१३ में उठ गयी तो कोई भी यूरोपियन स्वतन्त्रतापूर्वक भारत में आ सकता था और उसे रोकने का कोई कानूनी अधिकार कम्पनी को नहीं रह गया था।

आधुनिक मिशनों का विकास देश में अंग्रेजी शासन के जमने से आरम्भ हुआ। कैथोलिक लोगों का अधिकतर कार्य केवल दक्षिणी क्षेत्रों में ही सीमित था। बात यह थी कि पुर्तगाली प्रभुत्व भारत के एक बहुत ही छोटे भाग में सीमित रहने के कारण ईसाई धर्म भारत के दूसरे भागों में प्रसार पाने में असमर्थ रहा। ईसाई धर्म में दीक्षित लोगों की संख्या और उनका क्षेत्र बहुत ही परिमित रहा। किन्तु भारत में अंग्रेजी शासन के आने पर ईसाई धर्म के प्रसार का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया।

परन्तु उनके सिद्धान्त और कार्य में अंतर था। यद्यपि भारत में ब्रिटिश शासन ने धार्मिक निरपेक्षता की घोषणा की थी, फिर भी शासन के ईसाई अधिकारियों द्वारा ईसाई मिश्नरियों को बहुत प्रोत्साहन और सुविधायें प्राप्त हुईं।

ईसाई आधिपत्य के पूर्व, भारत मुगलों के अधीन था। बाबर और अकबर धर्म के राजनैतिक पहलू के सिवा उसके प्रति प्रायः उदासीन थे। किन्तु अकबर के पोते शाहजहाँ ने १६३३ एक आज्ञा प्रसारित की कि सभी हिन्दू मन्दिर तोड़ दिये जांय, जिन्हें धर्म-परायण हिन्दू

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

लोग उसके बाप दादे के समय से निर्बाध रूप से बनाते आ रहे थे। सर्ले बेट्स नामक लेखक के कथनानुसार इस्लाम के कट्टर हिमायती औरंगजेब ने अत्याचार पर अत्याचार किये। १६६९ में उसने सभी सूबों के सूबेदारों के नाम आदेश जारी किये कि हिन्दुओं के सभी मन्दिरों और विद्यालयों को भूमिसात कर दिया जाय और उनकी शिक्षा तथा धार्मिक कृत्यों को बिल्कुल बन्द कर दिया जाय। परिणाम स्वरूप बहुसंख्यक हिन्दू मन्दिर और बहुत से तीर्थस्थल विध्वंश कर दिये गये। अपनी पुस्तक 'रिलीजस लिबर्टी' नामक पुस्तक में सर्ले बेट्स ने लिखा है कि "पूजास्थलों पर गायों की हत्या की गई, चौराहों पर देव-मूर्तियों को पैरों तले रौंदा गया तथा इसी प्रकार के अनेक अमानुषिक दुष्कृत्य किये गये। १६७९ में उसने गैर-मुस्लिमों पर फिर से जजिया कर लगाया जिस में कि लोग इस्लाम ग्रहण कर लें।" हिन्दू धार्मिक मेलों को बन्द कर दिया गया। इस्लाम धर्म में दीक्षित होने वालों को सहायता, सरकारी नौकरी और यदि वह कैदी हो तो कैद से छूट का प्रलोभन देकर लोगों को इस्लाम स्वीकार करने के लिये प्रेरित किया गया। इन प्रलोभनों का फल यह हुआ कि भारतीय समाज का बहुत सा निर्बल अंग उससे कट कर बाहर से अल्प संख्या में आने वाले मुस्लिमों में जुड़ गया।

इस्लामी विजयों ने भारत में बौद्ध धर्म के टिमटिमाते दीपक को बुझा दिया और जैन धर्म पर भी उसका बड़ा भीषण आघात हुआ। हिन्दुओं में सिख धर्म, जिसका कुछ पीछे से उदय हुआ, अपने सबल संगठन और अदम्य सैन्य शक्ति के सहारे ही रक्षित रह सका।

ऊपर अब हम नें धार्मिक स्वतन्त्रता के इतिहास पर ही दृष्टिपात किया है। अब आइये, हम वर्तमान समय में भारत के अतिरिक्त अन्य देशों में विद्यमान धार्मिक स्वतन्त्रता पर एक दृष्टि डालें।

सर्व-प्रथम इटली को लें जो कैथोलिक चर्च का संचालन-केन्द्र तथा कैथोलिक धर्म के प्रधान पोप का निवास स्थान है। फासिस्ट होने से पूर्व इटली का राष्ट्र कैथोलिक चर्च के आधीन था। पोप राजनैतिक मामलों में सर्वेसर्वा था। जब मुसोलिनी सत्तारूढ़ हुआ तब राज्य और चर्च के बीच क्या संबन्ध हो, इस पर एक समझौता हुआ।

इस समझौते के अनुसार इटली में कैथोलिक धर्म को राज्य का एक मात्र धर्म स्वीकार किया गया। इटली में कैथोलिक धर्म ही एक ऐसा धर्म है जिसको सरकारी सुरक्षा प्राप्त है तथा इटली में जनता के लिए जो शिक्षा-प्रणाली अपनायी गयी है उसका आधार भी कैथोलिक परम्परा के अनुसार ईसाई सिद्धान्तों पर स्थित है। इटली में ऐसी शिक्षा केवल उन्हीं अध्यापकों और पादरियों द्वारा प्रदान की जायगी जो चर्च के अधिकारियों द्वारा प्रमाणित होंगे।

कैथोलिक प्रदेशों में इटली के बाद स्पेन का महत्व है। समय पाकर कैथोलिक चर्च स्पेन में बहुत प्रभावशाली हो गया और राजनैतिक शक्ति उसी के अधीन हो गयी। कैथोलिक चर्च वहां के सामाजिक और आर्थिक जीवन में सर्वे सर्वा हो गया, परन्तु कुछ समय के पश्चात् वहां के लोगों में इसके विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई और इसके फलस्वरूप १९३१-३९ की स्पेनिस राज्य-क्रांति हुई। राजनैतिक स्वतन्त्रता के पुजारियों का गुस्सा स्पेन में चर्च के शासन के विरुद्ध उभड़ पड़ा। स्पेन में चर्च की बहुत दुर्गति हुई। यह कहा जाता है कि २०००० गिरजाघर तोड़े गये। नष्ट किये गये या लूट लिये गये और १६००० पादरियों, ईसाई भिक्षु और भिक्षुणियों को मौत के घाट उतार दिया गया। इस तरह ३००००० प्राणी हताहत हुए। अंत में राज्य और चर्च के बीच इस नर-संहार के बाद शान्ति स्थापित हो गयी। उस समय जो समझौता हुआ उसमें निम्न चार धाराओं को मान्यता दी गयी।

१—कैथोलिक धर्म स्पेन के राष्ट्र का एक मात्र धर्म होगा।

२—स्कूलों में जो शिक्षण होगा वह कैथोलिक धर्म के सिद्धान्तों के अनुसार होगा।

३—समस्त अधिकारियों के लिये यह उचित होगा कि वे बिशप महोदयों और पादरियों को बाइबिल के सिद्धान्तों के अनुसार मान्यता दें और जहां कहीं इन बिशप महोदयों को किसी सुरक्षा विशेष की आवश्यकता होगी, सरकार उनके लिये सुरक्षा प्रदान करेगी। ईसाइयों के विरुद्ध किन्हीं ऐसी पुस्तकों का जो इनके हित के लिये हानिकारक हों, प्रकाशन रोकने में सरकार उनकी सहायता करेगी।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

४—ईसाई धर्म के प्रचार तथा उसकी सुरक्षा और संचालन में विशप महोदयों और पादरियों को पूर्ण स्वतन्त्रता रहेगी।

कैथालिक मिश्नरी प्रायः पुर्तगाल को सब से उत्तम कैथोलिक राज्य कहते हैं। पुर्तगाल में शिक्षा के क्षेत्र में चर्च को जो अधिकार प्राप्त हैं वह निम्न प्रकार हैं:—

'राज्य के स्कूलों में होने वाली शिक्षा देश की परम्परा तथा कैथोलिक धर्म के अनुसार दी जायेगी।"

"जो पाठ्य पुस्तकें कैथोलिक धर्म की शिक्षा के लिये स्वीकृत होंगी वे चर्च के अधिकारियों द्वारा ही चुनी जायेंगी। कोई भी व्यक्ति बिना अधिकारियों की स्वीकृति के धार्मिक शिक्षा किसी और रूप में देने का अधिकारी नहीं होगा।"

पुर्तगाली सरकार अपने उपनिवेशों के सम्बन्ध में जो नीति का अनुसरण करती है उसके अनुसार वहां धार्मिक स्वतन्त्रता नाम तक को भी नहीं है।

पुर्तगाली कैथोलिक चर्च ने अफ्रीका और एशिया के लोगों को आध्यात्मिक शिक्षा देने का ठेका ले रखा है। वहां गैर-कैथोलिक मिशनों पर कई रोकें लगा रखी गयी हैं। जो धार्मिक स्वतन्त्रता के संग्राम में अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियों की अवहेलना करती हैं।

स्वीडन में जो विधान चालू है, उसकी धारा २ में लिखा है कि शासक को सदा शुद्ध पवित्र ईसाई धर्म का अनुयायी ही रहना पड़ेगा। इसी प्रकार शासक के मन्त्री भी इसी धर्मके अनुयायी होंगे। राज्य के मन्त्रियों को छोड़ अन्य पदों पर अन्य मतावलम्बी नियुक्त किये जा सकते हैं, परन्तु कोई भी आदमी जो शुद्ध पवित्र ईसाई धर्म का नहीं मानने वाला होगा, वह न्यायाधीश अथवा ऐसे दूसरे पद पर नहीं नियुक्त किया जायगा।

उन विद्यार्थियों के लिये जिनके माता पिता राज्य के अनुयायी हैं, राज्य प्रारंभिक स्कूलों और दूसरे विद्यालयों अथवा अध्यापकों के ट्रेनिंग स्कूलों में धार्मिक शिक्षण आवश्यकीय है। केवल जो लोग राज्य के चर्च के अनुयायी नहीं हैं उनको अपने बच्चों की शिक्षा के लिये स्कूल खोलने का अधिकार नहीं है। १९ वीं शताब्दी के अन्त तक स्वीडेन पूर्णतया एक लूथरन राज्य था और वहां पर अन्तरात्मा की स्वतन्त्रता का अस्तित्व नहीं था।

शासन-सम्बन्धी और न्याय सम्बन्धी जितने भी पद थे, उनके लिए लूथरन धर्म के अनुयायी होने की अवश्यकता थी। समस्त डाक्टरी पेशे के शिक्षक के लिये लूथरन होना आवश्यक था। यदि लूथरन को अपना धर्म बदलने पर बाध्य किया जाता था तो इसको अपराध ठहराया जाता था और यदि कोई सरकारी धर्म को परित्याग कर देता था तो उसको जीवन पर्यन्त देश-निर्वासन का दण्ड दिया जाता था।

यदि नार्वे के विधान का अध्ययन करें तो पता चलेगा कि इस विधान के अनुसार ईसाई लूथरन धर्म राज्य में जनता का धर्म है और लोगों को अपने बाल-बच्चों को इसी धर्म में शिक्षित करना होगा। परन्तु जैसुइट लोगों को मान्यता नहीं दी जायगी। सरकार राज्य के धर्म के प्रचार के लिये सक्रिय चेष्टा करेगी। शासक सदा ईसाई लूथरन धर्म का अनुयायी रहेगा और इसकी रक्षा करेगा। शासक के आधे से अधिक जो मन्त्री होंगे वे राज्य के चर्च को मानने वाले होंगे। शासक और मन्त्री चर्च की पूजा अथवा रीतिरिवाज इत्यादि के बारे में निर्देश देते रहेंगे और उन्हीं को पादरियों की नियुक्ति तथा अनुशासन की देख रेख का अधिकार होगा।

नार्वे राज्य की शिक्षा-सम्बन्धी नीति के अनुसार बच्चों को ईसाई धर्म की शिक्षा अवश्य लेनी पड़ेगी। इस लिये राज्य के प्रारंभिक स्कूलों अथवा माध्यमिक तथा नार्मल स्कूलों में पढ़ने वाले विद्यार्थियों के लिये धार्मिक शिक्षा आवश्यक है।

केवल जिन लोगों ने राज्य के चर्च को छोड़ दिया है, उन्हीं के बच्चों को छूट मिल सकती है शिक्षकों को धार्मिक शिक्षा दी जाती है और उनकी नियुक्ति विशप की स्वीकृति से होती है। गैर-ईसाई विद्यालयों को किसी प्रकार की सरकारी सहायता नहीं दी जाती।

डेनमार्क में धार्मिक स्वतन्त्रता किस प्रकार विद्यमान है, यदि हम इसका अध्ययन करें तो पता चलेगा कि लूथरन चर्च ही राज्य का चर्च है और शासक को इस चर्च का अनुयायी होना आवश्यक है। राज्य ही चर्च का संचालन करता है और उसको सहायता इत्यादि देता है। ईसाई लूथरन चर्च डेनमार्क देश का राष्ट्रीय और सरकारी चर्च है और इसी हेतु उसे राज्य द्वारा सहायता प्राप्त

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जयदेव आर्य

है। जो विद्यालय सरकार द्वारा संचालित हैं, वहां समस्त बच्चों को बाइबिल का पाठ पढ़ाया जाता है। छोटी श्रेणियों में प्रार्थना इत्यादि कण्ठस्थ करायी जाती हैं और ऊपर की श्रेणियों में चर्च का इतिहास पढ़ाया जाता है।

रूस में १९१७ से ले कर १९३९ तक जो समय है, उसमें चर्च के नेताओं और चर्च पर अनेक प्रकार के कष्ट ढाये गये। अकेले १९३८ में ही बहुत से विशपों को गोली से उड़ा दिया गया और कोई ५० से ऊपर विशपों को कारागार में डाल दिया गया अथवा उन्हें कैम्प जेलों में भेज दिया गया। चर्च के मकानों पर बहुत ऊंचे दर के कर लगा दिये गये जिसके फलस्वरूप १९३७ में ११०० चर्च और सैकड़ों पूजा पाठ के स्थान बन्द कर देने पड़े। रूस के १९४० के आंकड़ों से प्रगट है कि उस समय ४२२५ चर्च सूची पर थे और उनमें ५६६५ पादरी थे, जब कि १९१७ की क्रान्ति के पहले वहां ४६४५७ गिरजे और उनमें ५०९६० पादरी विद्यमान थे १९४० में २८ विशप और ३७ चर्च थे जब कि क्रान्ति के पहले १३० विशप और १०२६ चर्च थे। परन्तु १९४४ से परिस्थिति बदल गयी। रूसी चर्चों का सरकार की ओर से पुनरुत्थान किया गया।

जिन देशों में रूढ़िवादी अथवा कट्टर चर्च हैं उनमें ग्रीस का स्थान दूसरे नम्बर पर है। ग्रीस के विधान की धारा १ में निम्न प्रकार लिखा है:—

"ग्रीस में जो सर्वोपरि धर्म है यह ईसा का पूर्वीय परम्परावादी चर्च है। यहां दूसरे मत-मतान्तरों को नियम के अनुसार संरक्षण प्राप्त है, यदि वे उच्च नैतिक आचार और जनता के अनुशासन के सिद्धान्तों के विरुद्ध न हों। किसी प्रकार का धर्म-परिवर्तन नितान्त वर्जित है।"

धर्म परिवर्तन शब्द की जो सरकारी व्याख्या की गयी है, वह निम्न प्रकार है। उससे न केवल इसके दुरुपयोग की कोई संभावना है वरन इससे प्रलोभन इत्यादि के द्वारा किये गये धर्म-परिवर्तन की भी पूर्ण रोक थाम हो जाती है:—

"यदि कोई दबाव डाल कर या डर दिखाकर अथवा कोई कानूनी तरीके से अथवा किसी आर्थिक सहायता का आश्वासन देकर अथवा अन्य किसी प्रकार की सहायता से अथवा धोखे से या किसी प्रकार का नैतिक और भौतिक सहायता का वचन देकर अथवा दूसरे व्यक्ति की अनुभवहीनता से अनुचित लाभ उठा कर अथवा उसके विश्वास या आवश्यकता का अनुचित लाभ उठा कर अथवा किसी की आध्यात्मिक और मानसिक दुर्बलता और विवेक-हीनता का लाभ उठा कर तथा आम तौर पर कोई भी चेष्टा अथवा प्रयत्न, चाहे वह सफल हुआ हो या असफल, प्रत्यक्ष हो वा परोक्ष, उसके द्वारा किसी व्यक्ति की अन्तरात्मा के धार्मिक विश्वास में, चाहे वह व्यक्ति प्रौढ़ हो अथवा कम आयु का, प्रवेश करने का प्रयास करेगा तथा उसे जानबूझ कर दूसरे धर्म में प्रवृत्त करेगा तथा उसके आन्तरिक धार्मिक विश्वास को बदलने की चेष्टा करेगा, तो इस प्रकार की चेष्टा को धर्म-परिवर्तन में गिना जायगा।"

ग्रेट ब्रिटेन में 'चर्च आफ इंगलैंड' को राष्ट्रीय धर्म की पदवी मिली हुई है और उसके इस ऐतिहासिक महत्व पर ही ग्रेट ब्रिटेन में धार्मिक स्वतन्त्रता का प्रश्न केन्द्रित है। सम्राट और उसका लार्ड चान्सलर इन दोनों को 'चर्च आफ इंगलैंड' का सदस्य होना अनिवार्य है। हाउस आफ लार्डस में २४ पादरी और दो आर्च विशप (बड़े पादरी) सदस्य के रूप में हैं। चर्च अपनी सम्पत्ति तथा देवस्व का स्वामी है।

चर्च आफ इंगलैंड के प्रबन्ध तथा नियन्त्रण में ही प्रारंभिक विद्यालयों अथवा माध्यमिक विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा दी जाती है।

जर्मनी में धार्मिक स्वतन्त्रता के सिद्धान्त का एक प्रकार से उन्मूलन ही हो चुका था। वहां सरकार धार्मिक बातों में केवल हस्तक्षेप ही नहीं करती थी, वरन् धार्मिक स्वतन्त्रता की अवहेलना भी करती थी।

वहां धार्मिक स्वतन्त्रता का भंग हो रहा था और उसके अनुसार पादरियों के कार्यों में अन्धाधुन्ध हस्ताक्षेप होता था। अक्टूबर १९३४ तक १००० से अधिक पादरी पकड़े जा चुके थे अथवा पुलिस के हाथों तंग किये जा चुके थे। केवल एक दिन अर्थात् मार्च ११, १९३५ को ७०० पादरियों को बन्दी बना लिया गया और ५००० लोगों को पुलिस द्वारा पूछताछ के कष्ट सहने पड़े। जर्मनी में यहूदियों पर जो नाना प्रकार के अत्याचार हुए, वह सर्व प्रसिद्ध है। मार्च १९३८ में जितने भी यहूदियों के

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

धार्मिक संप्रदाय थे, उन सबको नागरिक अधिकारों से वंचित कर दिया गया। और यहूदी अफसरों को सिविल सर्विस के पदों पर रखने के अयोग्य घोषित कर दिया गया। उसी वर्ष में ७ नवम्बर को एक युवक यहूदी ने पेरिस में जर्मन दूतावास के मन्त्री पर गोली दाग दी। उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप १२ घटे के भीतर यहूदियों के ४०० से ऊपर प्रार्थना-भवन तथा संघ-स्थानों को गोला बारूद से उड़ा दिया गया। यहूदी दूकानों को नष्ट भ्रष्ट कर दिया गया तथा लूट लिया गया और ६०००० से अधिक यहूदियों को कैम्प जेलों में ठूंस दिया गया। यहूदी समाज पर भयानक कर लगा दिये गये। जर्मनी स्कूलों में जो यहूदी बच्चे पढ़ते थे, उनको स्कूलों से अलग कर दिया गया।

क्या अमरीकी संयुक्त राज्य कानून की दृष्टि में एक ईसाई राज्य है? इसके बारे में बहुत से न्यायालयों ने इस प्रश्न का हां में उत्तर दिया है। इस तथ्य का उक्त देश के न्याय-विधान पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। डाक्टर जोलमैन ने अपनी पुस्तक 'अमेरिकन चर्च ला' में निम्न प्रकार की टिप्पणी की है:—

'यह एक तथ्य है कि अमरिका के संयुक्त राज्य में प्रचलित धर्म ईसाई धर्म है और उसका वहां प्रभाव है, क्योंकि बहुत अधिक संख्या में अमरीकन लोग ईसाई धर्म के अनुयायी हैं। इस लिये हमारे कानून और संस्थाओं का आधार मानव-समाज के उद्धारक ईसा की शिक्षाओं पर अवलम्बित होना चाहिये। ईसाई धर्म हमारे नैतिक सिद्धान्तों का आधार है और यही वह शक्ति है जो हमारी न्याय-प्रणाली को चलाती है। हमारी समस्त राजकीय शासन-प्रणाली तथा राष्ट्रीयता की तह में ईसाई धर्म स्थित है। वह इसके विधान अथवा कानूनों में निहित है और वह सब पर लागू हो सकता है। क्योंकि इसमें धर्म के वे आवश्यक सिद्धान्त निहित हैं जिसके अन्तर्गत सब ईमान रखने वाले प्रवेश पा सकते हैं। ...इस से यह परिणाम निकलता है कि कुछ ऐसे कृत्य जो दूसरे देशों में प्रशंसा के योग्य हो सकते हैं अमरीकनों की परम्पराओं के विरुद्ध होने से अमरीका में बुरे समझे जायेंगे अथवा अपराध के रूप में लिये जायेंगे। इस लिये नहीं कि इससे ईसाई धर्म को किसी प्रकार की सहायता मिलती है, किन्तु इस लिये कि इस प्रकार की त्रुटियों का होना राज्य के विरुद्ध कानूनी अपराधों में समझा जायेगा।

ईसाई धर्म के दश निर्देशों (ten Commandments) में से कम से कम आधे किसी न किसी रूप में अमरीका के विधान में स्थान पाये हुए हैं। इन तथ्यों के होते हुए यह धारणा आम प्रचलित है कि ईसाई धर्म देश के कानून का एक अंग है।"

जापान में सिन्टो धर्म राज्य का धर्म है। एक जापानी लेखक के शब्दों में:—

"यह धर्म जानबूझ कर राज्य ने नहीं अपनाया जैसा कि पश्चिम के देशों के सरकारी धर्म अपनाये जाते हैं। परन्तु उक्त धर्म प्रत्येक जापानी स्त्री, पुरुष, युवा वृद्ध, बड़ा, छोटा, शिक्षित और अशिक्षित इन सब के जीवन और हृदय का धर्म है। इसी कारण एक जापानी सदा सिन्टों धर्म को मानने वाला बना रहता है। यह धर्म उसका सामूहिक धर्म है और इसको वह अपना राष्ट्रीय धर्म समझता है। उसका यह धर्म उसके अपने व्यक्तिगत अथवा निजी धर्म से बिलकुल अलग होगा, चाहे वह बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों को अपनावे और चाहे कन्फ्यूसियस धर्म को। प्रायः ईसाई धर्म भी जापान में इसी प्रकार प्रचलित है और वह भी एक व्यक्तिगत अथवा निजी धर्म के रूप में है वास्तव में इस का यह अर्थ है कि यदि कोई जापानी सिन्टो धर्म का परित्याग करदे तब उसका यह अर्थ निकलेगा कि उस ने जापानी साम्राज्य तथा जापान के सम्राट् से विद्रोह किया।... जापान में सम्राट् को साक्षात भगवान् के रूप में माना जाता है और जापानी धर्म में उसको वही स्थान प्राप्त है जो जेहोवा का यहूदी धर्म में।"

अब हम चीन की ओर आते हैं। चीन को कुछ एक व्यक्ति एक धर्म-निरपेक्ष राज्य कहते हैं और दूसरे लोग इस देश को नाना प्रकार के धर्मों को मानने वाला देश कहते हैं। इसके विधान की धारा १५ में कहा गया है कि प्रत्येक नागरिक धर्म के मामले में स्वतन्त्र है और ऐसी स्वतन्त्रता पर कानून के अनुसार कोई बन्धन नहीं लगाया जा सकता।

अभी तक ऊपर हमने ऐसी धार्मिक स्वतन्त्रता का उल्लेख किया है जो ईसाई और बौद्ध देशों में उनके

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विधान के अनुसार प्रचलित हैं। अब हम थोड़ी सी दृष्टि उस धार्मिक स्वतन्त्रता की ओर ले जाते हैं जो ईस्लामी देशों में पायी जाती है।

"मुसलमानों के समस्त जीवन पर ईस्लाम का अंकुश है। ईस्लामी धारणा के अनुसार मजहब, राज्य और जनता सब एक रूप है।"

सर बेट्स नामक लेखक ने लिखा है कि कट्टर ईस्लाम धार्मिक स्वतन्त्रता के उलटा है और पश्चिमी देशों में जो विचार-धारा इस सम्बन्ध में प्रचलित है उसके लिये ईस्लाम धर्म में कोई स्थान नहीं है। सिद्धान्त रूप से ईस्लाम में धर्म-परिवर्तन एक काफिर का कार्य है और ऐसा करने पर उसमें घोर दण्ड का विधान है। यदि वहां धर्म-परिवर्तन की आज्ञा दी गयी है तो इसलिये कि दूसरे मतावलम्बी ईस्लाम में दीक्षित हो सकें। एक दूसरे अंग्रेज लेखक, एस० ए० मोरीसन ने अपनी पुस्तक "रिलीजस लिबर्टी इन दी नीयर इष्ट" में इस प्रकार लिखा है:—

'मुस्लिम देशों में धार्मिक स्वतन्त्रता का आम तौर पर यह अर्थ लिया जाता है कि पूजा-पाठ करने में स्वतन्त्रता हो अर्थात् हर एक संप्रदाय को अधिकार हो कि वह अपने ढंग से धार्मिक पूजा-पाठ कर सके और उस में सरकार की ओर से किसी प्रकार का हस्तक्षेप न हो। परन्तु वहां धार्मिक स्वतन्त्रता का यह अर्थ नहीं है कि दूसरों को अपने धर्म में दीक्षित करने का अधिकार हो। ऐसे अर्थ में धार्मिक स्वतन्ता वहां कभी नहीं ली गयीं।" आगे चल कर वह लिखता है:—

"मुसलमान अधिकारियों और जनता को इस से अधिक रोष और किसी अन्य बात पर नहीं आता जितना कि ईसाइयों के द्वारा मुसलमानों के धर्म-परिवर्तन पर। दूसरी ओर मुस्लिम और ईस्लाम से सहानुभूति रखने वाले प्रचारकों को प्रत्येक प्रकार की सुविधा प्रदान की जाती है। इस प्रकार यहूदी धर्म और ईसाई धर्म से ईस्लाम धर्म में दीक्षित करने का कार्य सरल हो जाता है। ईस्लाम मत ग्रहण करने के इच्छुक व्यक्तियों को और भी कई प्रकार के आर्थिक अथवा अन्य प्रलोभन दिये जाते हैं। अल्पसंख्यक जातियों से होने वाले नव मुस्लिम लोगों को सरकारी नौकरी और प्राइवेट फर्मों में विशेष रियायतें दी जाती हैं।"

उक्त समस्या का स्पष्टीकरण करते हुए लेखक ने लिखा है कि ईरान देश में धर्म-प्रचार प्रायः वर्जित है और विशेष कर नाबालिग बच्चों के धर्म-परिवर्तन पर तो कड़ी रोक है। देश के कानून ने वैसे तो धार्मिक पूजा-पाठ के लिये स्वतन्त्रता दे रखी है, परन्तु ईसाई लोग केवल गिरजा-घरों में ही सभा, उत्सव आदि मना सकते हैं। वे अपने अपने घरों में व्यक्तिगत रूप से भी कोई धार्मिक सभा, सत्संग नहीं कर सकते।

मिश्र 'ईजिप्ट' देश के विधान में ईस्लाम धर्म को सरकारी धर्म घोषित किया गया है। यदि कोई गिरजा-घर बनाना चाहे तो उसके लिये सरकारी आज्ञा लेनी पड़ती है।

टर्की देश के विधान में धार्मिक पूजा-पाठ इत्यादि की स्वतन्त्रता है और किसी व्यक्ति को उसके व्यक्तिगत धार्मिक आचार-विचार-अथवा रीति-रिवाज के कारण तंग नहीं किया जाता अथवा सताया नहीं जा सकता। टर्की के नागरिक अधिकारों के सम्बन्ध में यह घोषणा की गयी है कि अठारह वर्ष अथवा इससे अधिक आयु वाले लोगों को पूर्ण स्वतन्त्रता है कि वह जिस धर्म को चाहें, उसे ग्रहण कर लें। ऐसा होते हुए भी वहां आम तौर पर धर्म-परिवर्तन को किसी प्रकार का प्रोत्साहन नहीं दिया जाता। यही कारण है कि वहां छोटे बच्चों का धर्म-परिवर्तन करना प्रायः असम्भव बन गया है।

यदि हम अपने समीपवर्ती देशों की ओर आते हैं तो पता चलता है कि अफगानिस्तान और मध्य अरब में जो व्यक्ति ईस्लाम धर्म से पतित हो जाता है, उसको मृत्यु-दण्ड दिया जाता है।

शिक्षा-क्षेत्र में धार्मिक स्वतन्त्रता के बारे में एस० ए० मोरीसन ने अपनी पुस्तक के पृष्ठ ९ पर लिखा है 'कि ईसाई मिश्नरियों के शिक्षा के क्षेत्र में हस्तक्षेप और प्रचार कार्य से मुसलमान लोग बहुत नाराज होते हैं क्योंकि इस्लामी राज्य अपना यह कर्तव्य समझते हैं कि वे मुसलमान बच्चों को अन्य धर्म के शिक्षण के प्रभाव से रक्षा करें। इस प्रकार उनके माता पिता को उनके अधिकार से वंचित रखा जाता है। और वे अपने

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बच्चों के लिये धार्मिक शिक्षण के बारे में निर्णय देने में अशक्त बना दिये गये हैं। समीपवर्ती कई राज्यों ने उक्त सीमा को लांघ कर यह इच्छा प्रगट की है कि समस्त विद्यालयों में मुसलमान विद्यार्थियों के लिये ईस्लामी शिक्षा-प्रबन्ध होना नितान्त आवश्यक है। उदाहरण स्वरूप मिश्र देश में यदि किसी नाबालिग को, जिसकी तर्क-बुद्धि अभी परिपक्व नहीं हुई है, उसके माता पिता के धर्म के विरुद्ध किसी अन्य धर्म की शिक्षा दी जाये तो इस कार्य को न केवल नैतिक और नागरिक अनुशासन के सिद्धान्तों के प्रतिकूल वरन् एक अपराध समझा जायेगा। कोई भी राज्य जो अपनी प्रजा के धार्मिक विश्वास अथवा विचारों की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझता है, उक्त धर्म-परिवर्तन के प्रचार कार्य को उचित न समझेगा। जहां धार्मिक स्वतन्त्रता की छूट है वहां भी उपरोक्त कार्यवाहियों को अच्छा नहीं समझा जाता। जहां शिक्षणालयों में छोटे छोटे बच्चों को उनके निजी धर्म के विरुद्ध अन्य धर्मों की शिक्षा देकर उनके कोमल हृदयों पर प्रतिकूल प्रभाव डालने की चेष्टा की जाती है, वहां स्वतन्त्रता का ह्रास ही समझना चाहिये।

एस० ए० मोरीसन ने अपनी पुस्तक में यह भी लिखा है कि ईसाई मिशन वालों के ऐसे सामाजिक तथा चिकित्सा और शिक्षण सम्बन्धी समस्त कार्यों की प्रायः प्रशंसा की जाती हैं जिसमें किसी प्रकार के धर्म अथवा राजनीति की कोई गन्ध न हो। यदि इस बात का तनिक भी सन्देह हो जाता है कि विदेशी मिशन किसी विदेशी राजनैतिक के शक्ति एजेन्ट हैं अथवा विदेशी सभ्यता के प्रसार में लगे हुए हैं अथवा सक्रिय रूप से ईसाई हैं, तब उनकी स्वतन्त्रता पर रोक लगाने के लिए कदम उठाये जाते हैं। विदेश से आने वाली आर्थिक सहायता तथा विदेशों से आने वाले प्रचारकों पर वीसा (प्रवास-पत्र) के द्वारा नियन्त्रण लगा दिया जाता है।

उसी पुस्तक के ९ वें पृष्ठ पर एस० ए० मोरीसन ने लिखा है कि "एक मुसलमान की दृष्टि में यदि कोई ईस्लाम को छोड़ देता है तो वह अपने धर्म तथा समाज के लिए विश्वास-घाती समझा जाता है। मध्य पूर्व के प्रदेशों में आज जो नवीन राष्ट्रीयता की भावना जागृत हो पायी है उसका कारण है कि प्रगतिशील पश्चिम के देशों में धर्म-निरपेक्षता की जो भावनायें हैं वह वहां फैल गयी है। राष्ट्रीयता की भावना भी इसी बात पर जोर देती है कि राष्ट्र की एकता एक सांझी संस्कृति पर ही निर्भर रह सकती है। ऐसी एकता का आधार एक जाति के रूप में हो सकता है जैसा कि टर्की में है अथवा एक धर्म के रूप में हो सकता है जैसे कि बहुत से दूसरे इस्लामी प्रदेशों में है। यही कारण है कि मुसलमानी देशों की राष्ट्रीयता के ढांचे में ईसाई और यहूदी लोगों की अलग संस्कृति दुर्बलता का अंग गिनी गयी है।"

"आजकल समीपवर्ती पूर्वी देशों में लोगों के हृदय में विदेशी साम्राज्य के बारे में भयंकर सन्देह विद्यमान है और उनका प्रायः यह विश्वास है कि प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष ढंग से मिशनवाले विदेशी सरकारों के एजेन्ट होते हैं। समीपवर्ती पूर्वी देशों की सरकारें विदेशी शिक्षणालयों के सम्बन्ध में विशेष करके बहुत सशंकित हैं और उनको सन्देह है कि उक्त संस्थाओं के द्वारा ईसाइयत अथवा राजनीति का प्रचार किया जाता है।"

भिन्न भिन्न देशों में धार्मिक स्वतन्त्रता, उनके अपने विधान के अनुसार किस प्रकार मानी जाती है, उसका ऊपर संक्षेप में उल्लेख किया गया है। आगामी अध्याय में इस बात पर विचार किया जायगा कि स्वतन्त्र भारत के विधान के अनुसार धार्मिक स्वतन्त्रता की क्या स्थिति है। और उसे क्या स्थान प्राप्त हैं।

अध्याय—२

भारतीय विधान के अन्तर्गत धार्मिक स्वतन्त्रता

मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में जो धारायें विधान में रखी गयी है; उन की चर्चा करने के पश्चात् रिपोर्ट में लिखा है कि यदि हम मूल अधिकारों के बारे में सोचें, जो हमें द्वारा प्राप्त हैं तो हमें विधान में दिये हुए प्राक्कथन को विस्मरण नहीं कर देना चाहिए। साधारण कानूनों में जो प्राक्कथन होते हैं उन से भिन्न हमारे विधान का प्राक्कथन है। इस प्राक्कथन में हमारे विधान का पूर्ण उद्देश्य घोषित किया गया है। वास्तव में यह प्राक्कथन एक बीज के रूप में है जो उग कर एक शक्तिशाली वृक्ष के रूप में फैल गया है और इस में से जो फल फूल निकले

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हैं, वे विधान में दी गयी धाराओं अथवा अध्यायों के रूप में प्रगट होते हैं। उक्त प्राक्कथन में लिखा है कि :—

"हम भारत के वासी अपने आपके लिए यह विधान तैयार करते हैं और इसके द्वारा समस्त नागरिकों को न्याय, स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृभाव की सुरक्षा होगी।"

इस में सन्देह नहीं कि यद्यपि यह विधान प्रायः इसके नागरिकों के लिए बनाया गया है, तथापि इस में इस देश में रहने वाले विदेशियों के लिए भी सुविधा है। परन्तु इस देश के नागरिकों को जो अधिकार प्राप्त हैं वे विदेशियों के लिए जो अधिकार दिये गये हैं, उनसे अलग रखने होंगे। क्यों कि एक विदेशी के और एक भारतीय नागरिक के जो कर्तव्य राष्ट्र के प्रति हैं, वे एक समान नहीं है। इस में सन्देह नहीं कि बहुत सी धारायें भारतीय नागरिकों एवं विदेशियों के लिए एक जैसी हैं। उदाहरणार्थ विधान की १४ वीं धारा में घोषित है कि राज्य के कानून के सामने समस्त व्यक्तियों के साथ समानता का व्यवहार रहेगा और इस देश की सीमा में रहने वाले सब लोगों को कानून के अनुसार समान सुरक्षा प्राप्त होगी। इसी प्रकार विधान की २०, २१, २२ और ३१ धाराओं में समस्त नागरिकों के तथा जो नागरिक नहीं हैं उन के धन-सम्पत्ति और जान की रक्षा का विश्वास दिलाया गया है। इसी प्रकार २५ वीं धारा में समस्त देशवासियों की अन्तरात्मा की स्वतन्त्रता घोषित की गई है। परन्तु इसके साथ-साथ विधान में कुछ एक ऐसी धारायें भी हैं, इसलिए धारा १९ (१) में जो व्यक्ति स्वतन्त्रता के कुछ अधिकार दिये गये हैं वे केवल भारतीय नागरिकों के लिए ही हैं यह धारा नीचे उद्धृत की जाती है :—

१—समस्त नागरिकों को निम्नलिखित अधिकार प्राप्त हैं :—

क—भाषण और विचार प्रगट करने की स्वतन्त्रता

ख—बिना शस्त्र के शान्तिपूर्वक एकत्रित होने की स्वतन्त्रता

ग—सभा समितियां बनाने की स्वतन्त्रता

घ—बिना किसी रोक-टोक के भारत की समस्त सीमा के भीतर आने जाने की स्वतन्त्रता

च—भारत के किसी भी भाग में बसने की स्वतन्त्रता

छ—सम्पत्ति के क्रय विक्रय अथवा उपभोग की स्वतन्त्रता

ज—किसी वाणिज्य व्यवसाय अथवा काम-धन्धा करने की स्वतन्त्रता

ऊपर लिखी हुई जो सात प्रकार की स्वतन्त्रता प्रदान की गयी है उस पर पांच प्रकार की रोकें भी लगा दी गयी हैं। ये रोकें प्रदेशीय विधान सभा द्वारा राज्य की सुरक्षा के हित में, नागरिक अनुशासन और नैतिकता के हित में तथा परिगणित जातियों की रक्षा के लिये लगायी जा सकती हैं।

विधान में नागरिकों और अनागरिकों के बीच में जो भेद रखा गया है और जिसकी व्याख्या की गयी है उसका विदेशियों के अधिकार और कर्तव्य पर विशेष प्रभाव पड़ता है और हमारी जांच के लिये यह बात विशेष महत्व की है।

इस अध्याय में हमने भारत में धार्मिक स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में वैधानिक धाराओं का उल्लेख लिखा है। परन्तु इसके पूर्व अध्याय में हम उल्लेख कर चुके हैं कि अन्य देशों में धार्मिक स्वतन्त्रता का क्या स्वरूप है। इन दोनों के तुलनात्मक अध्ययन से पता चलता है कि धार्मिक स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में विश्व के देश दो बड़ी श्रेणियों में बटे हुए हैं : १—धर्म-सापेक्ष राष्ट्र अर्थात् ऐसे राष्ट्र जहां राज्य द्वारा अनुमोदित धर्म प्रचलित है। २—धर्म-निरपेक्ष राष्ट्र अर्थात् ऐसे राष्ट्र जिन में सरकार का अपना कोई धर्म नहीं है।

यह स्वाभाविक है कि जिन राष्ट्रों में सरकारी धर्म चालू है वहां प्रगट अथवा अप्रगट रूप से सरकार द्वारा अनुमोदित धर्म को विशेषता दी जाती है। ऐसे राष्ट्र ऊपर लिखी हुई पहली श्रेणी में आते हैं। सरकार द्वारा अनुमोदित धर्म के अनुयायियों को जो अधिकार और सुविधाएं मिलती हैं उनसे दूसरे मतावलम्बी वंचित रहते हैं। इसलिये ऐसे राज्यों में समस्त धर्मों की समानता का नियम पूरी तरह से लागू नहीं होता। बहुत से इस्लामी और ईसाई राज्य उक्त श्रेणी के अन्तर्गत हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

धर्म-निरपेक्ष राज्य दो उपश्रेणियों में बांटे जा सकते हैं:—

क—वे राष्ट्र जहां धर्म के नाम से ही चिढ़ है और धर्म को जहां भयानक बात समझ कर परित्याग कर दिया गया है।

ख—वे राष्ट्र जहां धर्म का आदर किया जाता है।

पहले प्रकार के राष्ट्रों में धार्मिक स्वतन्त्रता के लिये कोई स्थान नहीं है। यह बात इसलिये नहीं कि राष्ट्र अपना कोई विशेष धर्म नहीं है वरन् इसलिये कि वहां धर्म मात्र को घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। इसलिये वहां किसी भी धर्म के लिये किसी भी प्रकार की कोई स्वतन्त्रता नहीं है। कम्यूनिस्ट देश इसी श्रेणी के अन्तर्गत हैं।

दूसरी उपश्रेणी के राष्ट्रों में सब धर्मों को एक जैसा सम्मान प्राप्त है और किसी एक धर्म को दूसरे पर विशेषता नहीं दी जाती। सब धर्मों के अनुयायियों को स्वतन्त्रता है कि वे अपनी मर्जी के धर्म को मान सकते हैं परन्तु इस शर्त पर कि वह धर्म नागरिक अनुशासन के प्रतिकूल न हो। यह शर्त बिना किसी भेदभाव के सब धर्मों के अनुयायियों पर समान रूप से लागू होती है।

भारत उपरोक्त दूसरी श्रेणी के अन्तर्गत है। इसमें सन्देह नहीं कि भारत में कई प्रकार के धर्म प्रचलित हैं, परन्तु भारत सदा विभिन्नता में एकता की खोज में रहा है। जब भारतीय विधान तैयार हो रहा था तब उस समय श्री के० सन्थानम्, जो वर्तमान विन्ध्य प्रदेश के उपराज्यपाल रह चुके हैं, विधान का मसौदा बनाने वाली समिति के सदस्य थे। विधान की धारा २५ वीं की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा था: "महोदय, विधान में जो प्रचार शब्द का प्रयोग हुआ है उस पर कुछ वाद-विवाद हो चुका है। अन्ततः प्रचार को एक प्रकार की विचार प्रगट करने की स्वतन्त्रता ही कहनी पड़ेगी। मैं यह उल्लेख कर देना चाहता हूं कि कन्वर्ट (धर्म-परिवर्तन) नाम का शब्द कहीं नहीं है। इस देश में सामूहिक धर्म-परिवर्तन का कार्य ईसाई मिशनरियों की गतिविधियों का एक अंग रहा है और जनता ने इसका कड़ा विरोध किया है। जिन्होंने इस विधान का मसौदा तैयार किया था, उन्होंने इस बात की सावधानी रखी थी कि धर्म-परिवर्तन के सम्बन्ध में कोई असीम अधिकार नहीं दिया जावे। लोगों को अन्तरात्मा की स्वतन्त्रता है। यदि कोई व्यक्ति अन्तरात्मा की स्वतन्त्रता के कारण अपनी मर्जी से धर्म-परिवर्तन कर ले तो ठीक है। ऐसे धर्म-परिवर्तन के विरुद्ध कोई रोक अथवा शर्त नहीं लगायी जा सकती। परन्तु यदि धार्मिक सम्प्रदाय या संस्था दूसरों के सामूहिक धर्म-परिवर्तन की चेष्टा करे और विशेष कर जब यह धर्म-परिवर्तन रुपये पैसे के लोभ से अथवा दबाव दूसरे तरीकों से किया जावे, तब राज्य का अधिकार हो जाता है कि वह ऐसी गतिविधि पर नियन्त्रण रखे।" विधान की इसी धारा की व्याख्या एक अन्य मामले में बम्बई हाई कोर्ट के समक्ष हो चुकी है और यहां उक्त निर्णय का उल्लेख अप्रसांगिक नहीं होगा। उक्त मामले में चीफ जस्टिस चागला ने कहा था:—

"आप यह कह सकते हैं कि विधान की २५ वीं और २६ वीं धारायें धार्मिक स्वतन्त्रता की चर्चा करती हैं, परन्तु मैं अभी आपका ध्यान इस ओर आकृष्ट करूंगा कि हमारे विधान में जो धार्मिक स्वतन्त्रता निर्धारित की गयी है वह बिना रोक की स्वतन्त्रता नहीं है। विधान ने जो धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान की है वह उस धार्मिक स्वतन्त्रता के लिये होगी जिसको एक धर्म-निरपेक्ष राज्य के प्रसंग में उचित समझा जायगा। धर्म के हर पहलू की सुरक्षा की गयी हो ऐसी विधान में कोई बात नहीं है और ना ही विधान में इस बात की स्वीकृति है कि हर एक प्रकार की धार्मिक गतिविधि में हस्ताक्षेप नहीं किया जा सकता।"

अध्याय ३

मध्य प्रदेश में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद ईसाई मिशनरियों की हरकतें

यद्यपि भारत में विदेशी ईसाई मिशनरियों की गतिविधियों के बारे में हमारे अनुभव और संस्मरण कटु हैं; यद्यपि स्वराज्य प्राप्ति के लिए जो स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ी गयी उसमें एक्का दूक्का छोड़ कर ईसाइयों ने नहीं के बराबर भाग लिया था; यद्यपि धर्म के आधार पर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हमारे देश का बंटवारा हुआ जिसका कटु स्मरण हम कभी भुला नहीं सकते; तथापि हमारे प्रधान मन्त्री के मुख से जो शब्द निकलते थे वह हमारे देश की गौरवपूर्ण प्राचीन संस्कृति और सभ्यता के प्रतीक थे। हमारे प्रधान मन्त्री ने उस समय कहा था:—

"जब तक भारत के शासन की बागडोर मेरे हाथ में है, भारत एक हिन्दू राज्य नहीं बन सकता।" अतएव इसके फल स्वरूप एक वास्तविक धर्म-निरपेक्ष गण-तन्त्र राज्य की स्थापना हुई। ३५ करोड़ की आबादी वाले देश में जहां बहुसंख्यकों का धर्म हिन्दू धर्म है, वहां लगभग एक करोड़ की अल्प-संख्यक जाति वालों को प्रतिष्ठा और सम्मान के स्थान का आश्वासन दिया गया।

अतएव भारत के बहुसंख्यक जाति के लोग यदि यह आशा करें कि अल्प संख्यक लोग भारतीय विधान बनाने वालों की इस उदारता सम्मान तथा अभिनन्दन करेंगे, जिसमें कि भारत एक प्रगतिशील और शक्तिशाली राष्ट्र बन सके, तो यह कोई अनुचित बात नहीं हैं। परन्तु अल्पसंख्यकों का विगत काल में व्यवहार कोई सहयोग पूर्ण नहीं रहा है। वे पीछे के दरवाजे से हमारे राष्ट्रीय आन्दोलनों को नष्ट भ्रष्ट करने की चेष्टा करते रहे हैं। परन्तु देश आशा रखता था कि स्वतन्त्रता मिलने के पश्चात् उनका बहुतसंख्यकों के साथ सहयोग होगा और वे उन पर विश्वास रखेंगे। परन्तु खेद की बात है हमारे विधान को घोषित हुए अभी कुछ थोड़ा ही समय बीता था कि भारत के भिन्न भिन्न भागों से विदेश मिश्नरियों की अनुचित कार्यवाहियो के बारे में तरह तरह की सूचनायें आने लगीं।

हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं कि हमारे विधान के पास होने के बाद मिश्नरियों की गतिविधियां तुरन्त बढ़ गयी थीं। हम यहां उन प्रमाणों तथा साक्षियों की चर्चा करेंगे जो हमारे समक्ष रखी गयी हैं और जिनसे पता चलता है कि इन मिशन वालों को विदेशी सहायता कितनी और कहां तक प्राप्त होती रही है।

विदेशों से प्राप्त धन

जनवरी १९५० से लेकर जून १९५४ तक २९·२७ करोड़ रुपये की विशाल राशि भारत में आ चुकी थी। इसका विवरण निम्न प्रकार है:—

संयुक्त राज्य अमेरिका	...	२०६८६३०००)
कनाडा	...	१६७५६०००)
बेलजियम	....	६४७०००)
डेनमार्क	....	३३९१०००)
फ्रान्स	....	७६१०००)
जर्मनी	....	१११६०००)
नार्वे	....	२७९७०००)
स्वेडेन	... .	६४४१०००)
स्विटजरलैण्ड	... .	१५७७०००)
गैर स्टर्लिंग क्षेत्र से प्राप्त धन-राशि		१४७२०००)
योग		२४,१८,२१,०००)
युनाइटेड किंगडम के स्टर्लिंग क्षेत्र से.... ...	४८३८९०००)	५०९१८०००)
अन्य स्टर्लिंग क्षेत्र से....	२५२९०००)	
कुल योग		२९,२७,३९,०००)

उक्त आंकड़े भारत सरकार से प्राप्त हुए थे।

जब हम जांच के सिलसिले भ्रमण कर रहे थे तब पादरी लकरा ने १० जून, १९५४ को कुसमी में हमारे सामने यह स्वीकार किया था कि १९५३ में उन्हें जेनेवा की 'लूथरन वर्ल्ड फेडेरेशन' से ६००००) साठ हजार रुपये की राशि भारत के पांच प्रान्तों में ईसाई धर्म के प्रचार के लिये प्राप्त हुई थी और इसी प्रकार उसके लूथरन मिशन के अमरीकी बोर्ड के द्वारा ९००००) नब्बे हजार रुपया की भारी रकम केवल एक वर्ष के लिये सरगुजा क्षेत्र में ईसाई धर्म के लिये अमेरिका से प्राप्त हुई थी।

जनवरी १९५० में हमारा विधान घोषित हुआ। इसके फल स्वरूप सरगुजा इत्यादि स्थानों में मिश्नरियों के ईसाई धर्म के प्रचार के लिये द्वार खुल गया और वहां धर्म-परिवर्तन कार्य के लिये मिश्नरियों को बड़ी बड़ी रकमें मिलने लगीं। गौसनर लूथरन मिशन ने सरगुजा में एक नया मिशन-कार्य-क्षेत्र स्थापित किया और उस में बहुत से प्रचारक भर्ती किये। ये प्रचारक गांव गांव में धर्म-परिवर्तन कार्य के लिये फैल गये।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मद्रास राज्य में पार्वतीपुरम् स्थान पर ६-७ मार्च १९५३ को एक सभा हुई। उसमें घोषणा की गयी कि सरगुजा क्षेत्र में १२०० बारह सौ व्यक्तियों को ईसाई बनाया गया है और वहां के लिये एक सौ प्रचारक और सात पादरी नियुक्त किये गये। मिशन वालों ने अम्बिकापुर में २३ एकड़ भूमि भी खरीद ली। उक्त सभा में यह भी घोषित किया गया था कि अमरीका से १९५३ में प्रचार कार्य के लिये नब्बे हजार रु० की आर्थिक सहायता स्वीकृत हुई है।

उपरोक्त तथ्य से पता चलता है कि ज्यों ही भारत के विधान की घोषणा हुई, ईसाई मिश्नरियों के लिये सरगुजा का क्षेत्र प्रचार कार्य के लिये खुल गया। तब से उक्त क्षेत्र पर कई एक मिशनों ने जैसे रोमन कैथोलिक, चर्च आफ क्राइस्ट मिशन और लूथरन मिशन इत्यादि ने इकट्ठे होकर धावा बोल दिया है और उनको इस धर्म-परिवर्तन कार्य के लिये लूथरन बोर्ड फेरेडेशन से आर्थिक सहायता प्राप्त होती रही।

यह जानना रुचिकर होगा कि लूथरन ईसाई यहां पर क्यों आगे आये। प्रोटेस्टैन्ट ईसाईयों में से लूथर के अनुयायी बहु संख्या में हैं। जर्मनी में उनका बहुत प्रभाव है। स्केन्डनेवियन देशों में वे दूसरों पर हावी हैं और उत्तरी अमरीका में भी उनकी संख्या अधिक है। अन्य किसी ईसाई संप्रदाय की अपेक्षा लूथरन लोगों ने राज्य को चर्च पर कड़ा नियन्त्रण रखने की अधिक सुविधा दे रखी है। कई अवसरों पर तो ऐसा देखा गया है, कि चर्च ने अपने आप को राजनैतिक दलों और नीतियों के साथ गठजोड़ कर लिया है, जो कि आध्यात्मिक स्वतन्त्रता की दृष्टि से उचित नहीं है।

दुनियां जानती है कि मिश्नरियों का कार्य केवल ईसाई बनाना ही है। इसलिये जो रुपया उनके पास बाहर से आता है। उसको वे बहुत से पादरी और शिक्षक-प्रचारक नियुक्त करने में लगा देते हैं। जब हम अपने पहले दौरे में सरगुजा जिले में गये थे तो लूथरन मिशन के पास ६०-७० प्रचारक थे और प्रत्येक को ४०) रु० मासिक वेतन मिलता था। बसना एक छोटा सा स्थान है। वहां ३६ प्रचारक केवल ३ गांवों में कार्य करने के लिये नियुक्त थे। प्रत्येक प्रचारक को ३५) रु० से लेकर ४०) रु० तक मासिक वेतन मिलता था। विलासपुर जिले में तुलाराम नाम का एक प्रचारक था जिसको ८२) रु० मासिक वेतन मिलता था। उसके कहने के अनुसार वहां ६ मील के घेरे के अन्दर प्रचारक नियुक्त थे। बासीम में हमें बताया गया कि नजरीन चर्च के क्षेत्र में ४८ प्रचारक धर्म-परिवर्तन का कार्य करते थे। हमें यह भी बताया गया कि विदेशी पादरियों की संख्या २४ थी और उसमें स्त्रियां भी सम्मिलित थीं। प्रचार के लिये भ्रमण पर जितना भी खर्च होता था वह सारा मिशन फंड से चुकता किया जाता था। अमरावती जिले में २६ मिश्नरी कार्य करते थे और उनके साथ १२ देशी प्रचारक होते थे, जिनका वेतन ६०) से ९०) तक होता है। यवतमाल में मोजेज डेविड नामक एक प्रचारक था, जिसको १५७) मासिक वेतन दिया जाता था। जान गर्डियों जालकोट गांव का ईसाई पटेल है, उसको प्रचार कार्य के लिये ६०) रु० मासिक वेतन मिलता था। सोलोमन धन्तरी में एक अध्यापक है, उसने हमको बतलाया था कि मैनोनाइट चर्च के अन्तर्गत कुल ६-७ प्रचारक है जो फिल्म, तसवीर अथवा नाटक इत्यादि की सहायता से प्रचार करते हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि विदेशों से जो रुपया यहां आता है, उससे केवल धार्मिक अथवा चिकित्सा सम्बन्धी संस्थाएं ही नहीं चलायी जातीं, बल्कि उसमें से अधिकांश रुपया पेशेवर धर्म-परिवर्तन कार्य करने वाले मिश्नरियों के पास, चाहे वे विदेशी हों वा देशी चला जाता है।

स्वतन्त्रता से पूर्व भारत में विदेशी मिश्नरी कितने थे और उसके बाद कितने हैं, यह नीचे दिये तुलनात्मक आंकड़ों से पता चलेगा।

१९४७ में	५०४० मिश्नरी समस्त भारत में थे जिसमें पाकिस्तान भी सम्मिलित था।
१५९१ में	४३७७ मिश्नरी केवल भारत में थे
१९५५ में	४८७७ मिश्नरी केवल भारत में थे

उपरोक्त आंकड़ों से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि १९५१ से १९५५ तक पांच वर्षों में मिश्नरियों की संख्या में ५०० की वृद्धि हुई है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हमारे पास जो सरकारी सूचना प्राप्त हुई है उसके अनुसार केवल मध्य प्रदेश में ४८० विदेशी मिश्नरी भिन्न-भिन्न मिशनों के अन्तर्गत प्रचार-कार्य कर रहे हैं। इसका विवरण निम्न प्रकार है :—

१—अमेरिकन	२३६	११—आयरिश	३
२—फ्रेन्च	५९	१२—स्काटिश	२
३—ब्रिटिश	५४	१३—ब्रजीलियन	२
४—स्वेडन	३२	१४—आस्ट्रेलियन	१
५—डच	२९	१५—अर्जेन्टाइनी	१
६—जर्मन	१७	१६—फिन	१
७—स्विस	१६	१७—पुर्तगाली	१
८—बेल्जियन	१३	१८—इटेलियन	१
९—स्पेनिश	४	१९—हंगेरियन	१
१०—कनेडियन	६	२०—डैनिश	१
		योग	४८०

धर्म परिवर्तन के साधन

स्कूल, अस्पताल और अनाथालय

जिन साधनों के द्वारा ईसाईयत का प्रचार विशेष होता है वे प्रायः स्कूल, अस्पताल और अनाथालय ही हैं। रिच्टर ने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री आफ क्रिश्चियन मिशन्स' में लिखा है कि भारत के लिए एक नये युग का समारम्भ हुआ है। लोग शिक्षा के लिए लालायित हैं। .....क्या मिशन वाले अपने कार्य को अपने आप तक ही सीमित रखेंगे और इस जागृति से कोई लाभ न उठायेंगे ? अथवा वे इस में अपना स्थान ग्रहण करेंगे और अन्त में इस आंदोलन के नेता बन जायेंगे तथा इसको एक ऐसा साधन बना लेंगे कि जिससे समूचे भारत को ईसाई बनाया जा सके।" इसी पुस्तक में आगे जाकर लिखा है कि मिशन वालों के लिए यह कोई आदेशात्मक अथवा आवश्यक नहीं है कि वे अंग्रेजी साहित्य, इतिहास, गणित अथवा प्राकृतिक विज्ञान इत्यादि की शिक्षा का प्रचार करें। मिशन वालों का मूल कर्तव्य यह है कि वे गैर-ईसाई लोगों में बाइबिल का प्रचार करें। यदि वे ऐसा नहीं कर सकेंगे तो उनके सारे श्रम व्यर्थ हो जायेंगे। एक ही सांस में उक्त लेखक अनाथालयों, वाइ० एम० सी० ए०, चिकित्सा सेवा और कुष्ठाश्रम, इन सबों का उल्लेख करता है अर्थात् यह सब संस्थायें ईसाईयत के प्रचार के साधन बतलायी गयी हैं।

सन् १९३१ में तम्बरम् में अन्तर्राष्ट्रीय मिश्नरी कौन्सिल की एक सार्वभौम कांफ्रेन्स बुलायी गयी थी। उसमें एक रिपोर्ट प्रकाशित की गयी थी जिसका नाम "दी वर्ल्ड मिशन आफ दी चर्च" है। उस रिपार्ट में स्कूलों को धर्म-परिवर्तन-कार्य के लिए एक विशेष महत्व का साधन बताया गया है और इस सम्बन्ध में यह भी लिखा है कि इस बात का विशेष ध्यान रखा जाय कि जो भी चिकित्सा अथवा शिक्षा-सम्बन्धी संस्थायें हैं उनमें प्रधान स्थान ईसाईयत के प्रचार को देना चाहिये।

'घर-बन्धु' नामक ईसाई पत्र के जनवरी, १९५२ के अंक में एक लेख 'स्कूल से लाभ' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। उसके पढ़ने से पता चलता है कि स्कूलों के सम्बन्ध में उक्त नीति अक्षरशः बरती जाती है। उक्त लेख में लिखा है :—

"क्लीसा (चर्च) को स्कूल से क्या फायदा है ?"

"स्कूल क्लीसा (चर्च) के लिए राज्य-वृद्धि का कार्य करता है।....."

इसी विषय में "कैथोलिक धर्म प्रचारक" नामक पत्र में निम्न प्रचार लिखा है :—

"स्कूल में जाने का पहला फल।

स्कूल में लोग भक्त क्रिस्तान बन जाते हैं।....."

लेफ्टिनेन्ट कर्नल एच० डब्ल्यू० सी० राब्सन, ओ० बी० ए० ने, जो पूर्वी स्टेटों में रेजिडेन्ट थे, वायसराय के सचिव को एक पत्र ता० १५ अप्रैल, १९३७ को लिखा था। उससे पता चलता है कि रुकावटों के होते हुए भी सरकार के पास ऐसी रिपोर्ट पहुंच रही थी कि कैथोलिक चर्च के पादरी युवकों तथा बालक-बालिकाओं को ईसाई बनाने के लिए विशेष परिश्रम कर रहे हैं और शिक्षा देने के बहाने लोगों को ईसाई धर्म में परिवर्तन करने के लिए चेष्टा कर रहे हैं। "चर्च आफ दी नजरीन" की एक रिपोर्ट में इसी बात को बड़े जोरदार तरीके से निम्न प्रकार लिखा है :—

"ईसाइयत का प्रचार हमारा ध्येय है। इस बात के लिए न हम कोई क्षमा की याचना करते हैं और न हम ध्येय को छुपाते हैं। ईसा ने हमको आदेश दिया है कि

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हम प्रत्येक व्यक्ति को बाइबिल का पाठ पढ़ावें और हम यह करके रहेंगे। हमारा कार्य चाहे किसी प्रकार का हो, चाहे वह शिक्षा-सम्बन्धी हो वा चिकित्सा-सम्बन्धी हो या केवल ईसाइयत के प्रचार का ही हो, हम हर जगह बाइबिल का प्रचार करेंगे।"

"जाओ प्रचार करो और विजय प्राप्त करो" यह है निर्देश, जिसके अन्तर्गत हम कार्य करते हैं। हम इस ध्येय को कभी ढीला नहीं कर सकते।"

स्कूल

सबसे पहले हम उन प्रमाणों को लेंगे जिनका सम्बन्ध स्कूलों से हैं।

हमारे समक्ष जो बयान आये हैं उनसे यह रहस्योद्घाटन होता है कि स्कूलों में छोटे छोटे बच्चों को प्रभावित करने के लिये कई प्रकार के ऐसे तरीके अपनाये जाते हैं।

रामचन्द्र तिवारी (खंडवा) ने कहा कि जो बलाही बच्चे रोमन कैथोलिक गिरजाघर की ओर आकृष्ट होते हैं वे निःशुल्क भोजन और निवास की सुविधा के कारण ही होते हैं। उनके बड़े बूढ़ों पर अप्रत्यक्ष रूप से दबाव डाला जाता है कि वे गिरजा घर में होने वाली प्रार्थना में उपस्थित हों। श्री सी० डी० मेघश्याम (खंडवा) ने, जो एक वकील हैं और नीमार हरिजन सेवक संघ के प्रधान हैं, बताया कि जब उन्होंने बलाही जाति के हरिजनों के लिये स्कूल खोले तो ईसाई मिशन वालों ने उनके स्कूल के पड़ोस में ही उसके मुकाबले में स्कूल खोल दिये और उसके साथ ही उन्होंने बिना मूल्य की पुस्तकें और अन्य सुविधाओं का भी प्रलोभन दिया।

बाबूलाल (खंडवा) महू में रोमन कैथोलिक स्कूल में रह चुका था। उसने अपने व्यक्तिगत अनुभव से बताया कि बलाही विद्यार्थियों को भोजन, रहने का स्थान और पुस्तकें इत्यादि मुफ्त दिये जाते थे और उनको ईसाईयों की प्रार्थना में उपस्थित होने के लिये कहा जाता था। यह निर्देश सबके लिये आवश्यक था, चाहे वह ईसाई हो वा गैर-ईसाई हो।

उक्त तीनों साक्षियों ने यह भी कहा कि रोमन कैथोलिक स्कूलों में प्रवेश होने के पश्चात् लड़कों के नाम बदल दिये जाते थे। लूथरन मिशन वाले भी इसी प्रकार के ढंग अपनाते रहे हैं जैसा कि 'घर-बन्धु' नामक पत्र के मार्च-अप्रैल, १९५२ वाले अंक से प्रगट होता है। वहां इस प्रकार लिखा है:—

".....स्वराज्य हो जाने से सरगुजा में धर्म-प्रचार का द्वार खुल गया है।...दो लड़के सरगुजा से ईसाकेला स्कूल में लाये।.....उनका नाम पतरस (पीटर) और पावल (पाल) रखा गया।....."

बाबूलाल के निज के उदाहरण से सिद्ध हुआ कि उसके मूल नाम के आगे वाल्टर लगा दिया गया था। देवी पुष्पावती (खंडवा) रोमन कैथोलिक स्कूल में ६ वर्ष तक अध्यापिका थी। उसने भी विद्यार्थियों के नामों को बदलने के सम्बन्ध में बताया। बहुत से बलाही विद्यार्थियों के सम्बन्ध में यह कहा गया कि वहां का कैथोलिक फादर, जो स्कूल का मैनेजर था, उनका अभिभावक बन गया और अपने अभिभावकत्व का लाभ उठा कर उसने उन लड़कों के नाम तथा धर्म बदल दिये। उसने एक विद्यार्थी का उदाहरण दिया कि एक छात्र का पूर्व नाम मुकुन्द था, उसके पीछे निकोलस नाम जोड़ दिया गया, जब वह ५ वीं कक्षा में प्रविष्ट हुआ। वर्धमान बलाही (खंडवा) को उसके मैट्रिकुलेशन के आवेदन-पत्र पर जोजेफ के नाम से दर्ज किया गया। जब उसने इसका विरोध किया तब उसका यह नाम हटा दिया गया। अम्बिकापुर में हीरालाल उरांव ने अपना प्राइमरी का सार्टिफिकेट दिखाया जिस पर उसका नाम जोहन मिन्ज लिखा हुआ था, यद्यपि वह एक हिन्दू था। व्यवहार राजेन्द्र सिंह (जबलपुर) के कथनानुसार ऐसे कितने ही परोक्ष ढंग सिझौरा के नार्मल स्कूल में बरते गये हैं, जिन्हें डा० एल्विन और ठक्कर बापा ने भी उद्घाटित किया है। मध्यप्रदेश विधान सभा में उक्त नार्मल स्कूल के सम्बन्ध में कुछ ऐसे प्रश्न रखे गये जिनसे उक्त स्कूल को मध्यप्रदेश सरकार द्वारा अपने नियन्त्रण में लेना पड़ा।

एजूकेशन मैनुयल (शिक्षण-विधि) में तथा भारतीय विधान में अपनी अन्तरात्मा के विश्वास की स्वतन्त्रता होते हुए भी, ईसाई मिशनरियों द्वारा उचित अनुचित उपायों से लोगों को उनके धार्मिक विश्वास से विचलित करने का प्रयत्न किया जाता है। १४ वर्षीय जनार्दनलाल (जबलपुर) जब १९५३-५४ में क्रिश्चियन मिशन

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्कूल में ७ वीं-८ वीं कक्षा में पढ़ता था, तब वहां ईसाई और गैर-ईसाई सभी छात्रों को बाइबिल पढ़ायी जाती थी और दूसरे दिन उसकी परीक्षा हुआ करती थी। बाइबिल के घंटे में ही सब की उपस्थिति ली जाती थी और उस समय जो छात्र अनुपस्थित रहता था, उसकी सारे दिन की अनुपस्थिति गिनी जाती थी। विद्यावती (गायकवाड़) जोन गर्ल्स स्कूल में प्राइमरी कक्षा से लेकर मैट्रिक कक्षा तक की छात्रा थी। इस अवधि में प्रातःकाल की प्रार्थना सबके लिये अनिवार्य थी और यह ईसाई मत की प्रार्थना थी। मत की छात्रावास में रहने वाले विद्यार्थियों को रविवार के दिन अनिवार्य रूप से चर्च में जाना पड़ता था। १९५४ के १५ अगस्त को स्वतन्त्रता दिवस के उपलक्ष्य में एक नाटक अभिनीत किया था। विश्व के चार भागों के चार प्रतिनिधियों की भूमिका में चार अभिनेता पाकिस्तान, इंग्लैंड, अमेरिका और भारत के राष्ट्रीय झन्डों के साथ मच पर आये। एक स्वल्प वार्तालाप के पश्चात् भारत का ध्वज लहराया गया। इसके बाद पवित्र पुरुष की भूमिका में एक बालक मंच पर अवरित हुआ, जिसने विश्व भर की शान्ति की घोषणा की, और इसके उपरान्त क्रास चिन्ह से अंकित ध्वज लिये हुए बालिकाओं का एक समूह मंच पर आया। यह ध्वज सबसे ऊपर लहराया गया। स्कूल के प्रिन्सिपल ने अपने भाषण में बताया कि इस नाटक का उद्देश्य पाकिस्तान, इंग्लैंड, अमेरिका और भारत में मैत्री स्थापित करना है। जबलपुर के नवभारत (१७ अगस्त,१९५४) के अंक में इस नाटक की कुछ लोगों ने आलोचना की। कुमारी जिल्सा सोले (जबलपुर) ट्रेनिंग कालेज की प्रिन्सिपल हैं। उन्होंने बताया कि बाइबिल क्लास ईसाई छात्रों के लिये भी अनिवार्य नहीं है। फिर भी गैर-ईसाई छात्रायें भी इसमें इसलिये उपस्थित होती हैं कि यह एक सामूहिक उपस्थिति का अवसर होता है और उसी समय दिन भर के कार्य-क्रमों की घोषणा की जाती है। छात्रायें उन घोषणाओं को सुनने के ही लिये उस समय उपस्थित रहती हैं। इसी बात को कुछ घटा बढ़ा कर श्री राबिन्सन, हेडमास्टर, क्राइस्ट चर्च हाई स्कूल, जबलपुर ने भी बताया। एफ० एम० पी० सिंह, हेडमास्टर क्रिश्चियन हाई स्कूल, जबलपुर ने यह स्वीकार किया कि सितम्बर, १९५४ से पूर्व बाइबिल की शिक्षा और ईसाई प्रार्थना सबों के लिये अनिवार्य थी।

महादेव तुकाराम (यवतमाल) मिशन हाई स्कूल, दरव्हा का एक विद्यार्थी है। उसने बताया कि सभी छात्र प्रार्थना में सम्मिलित होते हैं और रविवार को बाइबिल के पवित्र पाठ का श्रवण करते हैं। सुमित्रा गायकवाड़ (यवतमाल) "इन्डियन फ्री मेथोडिस्ट कान्फ्रेन्स स्कूल" उमरी की अध्यापिका हैं। उनके कथनानुसार हिन्दू लड़के प्रार्थना में सम्मिलित होते हैं, क्योंकि वह प्रार्थना ईश्वर के प्रति तथा छात्रों की विद्योन्नति और देश की सुख-शान्ति के लिये होती है। नन्दलाल दूबे, अध्यापक मिशन हाई स्कूल, छोटा पारा (बिलासपुर) ने कहा कि उपस्थिति ले चुकने के बाद प्रार्थना करायी जाती है और जो छात्र अनुपस्थित पाया जाता था, उस पर एक आना दण्ड कर कर दिया जाता था।

रेवेरेन्ड टी० एच० मेजर, सुपरिन्टेन्डेन्ट, 'कोठारा कुष्ठचिकित्सालय' अचलपुर ने अपने लिखित वक्तव्य में बताया कि उनके अस्पताल में २९९ रोगियों में से २९० सरकार की ओर से प्रविष्ट हुए थे और ९ मिशन की ओर से। इनमें से प्रायः १०० रोगी ईसाई बन कर निकले, यद्यपि प्रवेश के समय उनमें से बहुत ही थोड़े ईसाई थे। ८ वर्षों के भीतर १५४ रोगी ईसाई बनाये गये। निश्चय ही ये सरकारी खर्च पर भर्ती होने वाले रोगियों में से बनाये गये थे, जिन पर सरकार २६०००) रु० प्रतिवर्ष व्यय कर रही थी।

महन्त नयनदास एम० एल० ए०, मन्त्री, अखिल भारतीय सतनामी सभा (रायपुर) ने अपने व्यक्तिगत अनुभव से बताया कि किस प्रकार अस्पतालों में रोगियों को ईसाई बनाने के लिये दबाया जाता है। उन्होंने एक उदाहरण दिया कि मोडपा का एक केभा नामक व्यक्ति मुंगेली के अस्पताल में भर्ती था, उससे कहा गया कि यदि वह अच्छा होना चाहता है तो वह ईसाई बन जाय। इसी प्रकार ढवरा बाटा का बोधन सतनामी भी बिलासपुर के अस्पताल में भर्ती था, जिसे ईसाई बनने को बाध्य किया गया और उसे ईसाई बना लिया गया। एक वर्ष बाद जब वह अस्पताल के बाहर आया तो महन्त नयनदास के पास

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आया और सतनामी समाज में फिर वापस आने के लिये प्रार्थना की, जिस पर उसे सतनामी समाज में वापस ले लिया गया। महन्त नयनदास स्वयं टिल्डा के अस्पताल में रोगी थे और उन्होंने स्वयं अस्पताल में इस प्रकार से ईसाई धर्म का प्रचार होते देखा। डा० पिल्ले (सागर) ने कहा कि एक अच्छे डाक्टर का कर्तव्य है कि वह अस्पताल के रोगी के समक्ष ईसा को रखे। रेवेरेन्ड रमन (सागर) ने भी कहा कि बीमारी की अवस्था में रोगी सर्वाधिक ग्रहण करने की मानसिक दशा में होता है। मिस बिजनौर (सागर) ने कहा कि एक ईसाई डाक्टर का कर्तव्य है कि वह न केवल रोगी को शारीरिक रोग से निरोग करे प्रत्युत वह उसके सम्मुख ईसा को भी रखे।

अब ईसाई अनाथालयों को लीजिये। वे तो निसंदेह ईसाईयों की जनसंख्या बढ़ाने के लिये ही खोले गये हैं। अकाल, बाढ़, भूकम्प तथा इसी प्रकार के अन्य प्रकृतिजन्य आपत्तियों के अवसर पर अनाथों को जमा कर ईसाई समाज में मिला लिया गया। कोई आश्चर्य नहीं यदि ईसाई धर्म में दीक्षित होने वालों की सबसे बड़ी संख्या ऐसी पिछड़ी जातियों में से है, जिनका निवास प्रायः मिशन के स्कूलों अथवा अस्पतालों के निकट होता है। बहुत से धर्म-परिवर्तन आर्थिक सेवाओं तथा अन्य भौतिक लाभों की आशा से हुए हैं।

धर्म परिवर्तन के लिये काम में लाये जाने वाले प्रत्येक निन्दनीय उपायों में से कर्जा देना भी एक है जो कैथोलिक मिशन काम में लाते हैं। हमारे जांच संबंधी दौरे में यह शिकायत रामगढ़ सरगुजा जिले में पायी गयी कि ऋण लेने वाला व्यक्ति अपनी चोटी कटा ले इस शर्त पर रोमन कैथोलिक मिशन कर्जा देता है। यदि यह शर्त उसे स्वीकार नहीं है तो उसे सूद समेत ऋण चुकता करना होगा। व्यवहार राजेन्द्र सिंह (जबलपुर) मालगुजारी गांव, जि० मांडला के एक जागीरदार थे, जहां बहुत से गोंड रहते थे। वे महाकौशल के "हरिजन सेवक संघ" के सभापति और वनवासी सेवा मंडल मांडला के उपसभापति भी रहे हैं। उनका दावा है कि इस प्रकार का ऋण देना धर्म-परिवर्तन के साधनों में से एक है। धर्म-देव त्रिपाठी (रायगढ़) हिसामुद्दीन सिद्दी की, (रायगढ़), विद्याधर लूदेग (रायगढ़) घूनू उरांव (रायगढ़), छुटिया उरांव (रायगढ़) और अन्य लोगों ने भी ऋण देने के सम्बन्ध में बताया कि यह धर्म-परिवर्तन का ही एक उपाय है।

कैथोलिक मिशन द्वारा इस प्रकार ऋण का प्रलोभन देने की पुष्टि प्रोफेसर आइ० वी० जौहरी, एम० ए०, बी० डी०, इन्दौर की लिखी पुस्तिका "क्रिस्टी मण्डली का इतिहास" के द्वारा भी हो जाती है:—

"रोमन कैथोलिक मिश्नरी गांव के कृषकों को कुछ रुपये उधार देने लगे और यह नियम ठहराया कि वे कृषक यदि रोमन कैथोलिक रहें तो उनसे उधार जो दिया गया है सो वापिस लिया न जायगा। परिणाम यह हुआ कि अन्य मिशन के बहुत से लोग रोमन कैथोलिक हो गये।"

छोटा नागपुर का उल्लेख करते हुए रेवेरेन्ड पिकेट लिखते हैं:—

"रोमन कैथोलिक मिशन सहकारी समितियों द्वारा द्वारा आर्थिक सहायता के प्रलोभन, ऋण, नौकरी, स्कूल में निःशुल्क शिक्षा और मुकद्दमे में धन की सहायता आदि के द्वारा प्रोटेस्टैन्ट वर्ग के लोगों में से अपने वर्ग में मिलाने की प्रबल चेष्टा कर रहे हैं।"

इन बातों का रहस्य तब खुला जब लेफ्टीनेन्ट कर्नल ए० एस० मीक ने, जो राँची में पूर्वी राज्यों में गवर्नर जेनरल के एजेन्ट थे, जांच प्रारम्भ की। उनकी रिपोर्ट का उल्लेख एक पत्र में मिलता है, जो उन्होंने भारत सरकार के विदेशी राजनीतिक विभाग के मन्त्री के पास पूर्वी राज्यों में ईसाई मिशन के कार्य के विषय में भेजा था।

उदयपुर राज्य में मिश्नरियों के प्रवेश पर रोक लगी हुई थी। उस समय वहां के राजा नावालिग थे और राज्य का प्रबन्ध राजनीतिक विभाग द्वारा ही होता था। जून १९३५ में कर्नल मीक के पास जब यह रिपोर्ट पहुंची कि प्रायः ६००० छे हजार व्यक्तियों ने बप्तिस्मा के लिये याचना की है, तब उन्होंनें राँची के बिशप से भेंट की और उनसे जानना चाहा कि क्या उन लोगों को ऋण आदि का प्रलोभन तो नहीं दिया गया है। इस पर बिशप ने उत्तर दिया कि जिन लोगों को रुपयों की आवश्यकता होती है, उन लोगों को मिशन

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ऋण देता है। ऐसा सुन कर दूसरे लोगों को ईसाई धर्म में प्रविष्ट होने के लिये पर्याप्त प्रोत्साहन मिल जाता है। इस पर कर्नल मर्फी द्वारा एक बाकायदा जांच करायी गयी। कर्नल मर्फी ने इस सम्बन्ध में उदयपुर राज्य के १५ गांवों का दौरा किया और उन्हें पता चला कि उदयपुर राज्य में एक दम से ईसाई बनने की बात निरी झूठी है। यदि लोग ईसाई बनने को उद्यत होते हैं तो केवल इसलिये कि ईसाई बनने पर उन्हें मिशन से रुपया उधार मिल जायेगा। उन्हें उक्त दौरे में यह भी पता चला कि समस्त राज्य में यह समाचार फैलाया जा चुका है कि तपकारा मिशन केन्द्र से, बिना किसी जमानत के केवल हैन्ड नोट लिख देने मात्र से, ऋण मिल जाता है। इसमें केवल एक शर्त होती है कि ऋण लेने वाले को अपनी चोटी कटा लेनी होती है। कुछ लोग जिन्हें ऋण मिला हुआ था नाबालिग थे। इस बात का भी पता चला कि जिस परिवार में से एक भी व्यक्ति कर्ज ले लेता था, उसके परिवार के सारे व्यक्तियों के नाम रजिस्टर में दर्ज कर लिये जाते थे कि ये ईसाई धर्म में दीक्षित हो चुके हैं। जो रकम ऋण में दी जाती थी, उस पर १० प्रतिशत के हिसाब से ब्याज लिया जाता था। ऐसे भी प्रमाण मिले हैं, जिनसे पता चलता है कि ऋण की रकम में से एक वर्ष का ब्याज पेशगी काट लिया जाता था। जब लोगों से पूछा गया तो उन्होंने तुरन्त उत्तर दिया कि मिशन वालों के पास वे इसी लिये जाते हैं कि उन्हें रुपया पैसा मिले, और सब ने एक स्वर से कहा कि बिना रुपया पैसा के प्रलोभन के वे कभी भी ईसाई बनने के लिये तैयार नहीं थे।

उक्त जांच के फल स्वरूप कर्नल मीक ने ईसाई मिश्नरियों की गति-विधियों पर कड़ी पाबन्दी लगा दी और उनके इस कार्य का भारत सरकार ने समर्थन भी किया।

इन पाबन्दियों के होते हुए भी सरकार के पास ऐसी सूचना पहुंचती रही कि नवयुवकों को स्कूलों में शिक्षा देने के बहानें मिशन वाले ईसाई बनाने की चेष्टा करते रहे हैं। इसी प्रकार की परिस्थिति रायगढ़ राज्य में उपस्थित हुई, जब डा० बलदेव प्रसाद मिश्र, जी० लिट० इस राज्य के दीवान थे। १९३६ में रांची के बिशप ने उनसे प्रार्थना की कि हमें एक गिरजाघर निर्माण करने के लिये उस राज्य में कोई स्थान दीजिये, क्योंकि वहां ४००० ईसाई रहते हैं और उनके आध्यात्मिक कल्याण के लिये हम उत्तरदायी हैं। डा० मिश्र ने जब वहां की परिस्थिति की जांच करवायी तो उन्हें पता चला कि रायगढ़ राज्य में रोमन कैथोलिक मिशन वालों ने कर्ज देने का प्रबन्ध कर रखा था। कर्ज लेने वालों के आगे शर्त यह रखी गयी थी कि उन्हें अपनी चोटी कटवानी पड़ेगी। मिशन वालों के रजिस्टर के निरीक्षण करने पर पता चला कि रजिस्टर पर ना केवल परिवार के मुखिया का ही, जिसने ऋण लिया है, नाम लिखा जाता था वरन् उसके परिवार के सभी सदस्यों के नाम ऋण लेने वालों में लिखे जाते थे। जब डा० मिश्र ने राँची के बिशप को इस बात की रिपोर्ट की कि रायगढ़ राज्य में एक भी ईसाई नहीं हैं तो उनको उत्तर मिला है उनके रजिस्टर में कर्ज लेने वालों के नाम ईसाई के रूप में लिखे हुए हैं। यही कारण था कि रायगढ़ राज्य में 'एन्टी कन्वर्शन एक्ट' (धर्म परिवर्तन-निरोध कानून) पास किया गया।

हमारे सामने ऐसे अनेक उरांव गवाह पेश हुए हैं जिन्होंने यह सिद्ध किया कि धर्म-परिवर्तन के लिए ही रुपया कर्ज दिया जाता है। उन्होंने वे रसीदें भी प्रस्तुत कीं जो उनको कर्जे की अदायगी पर तपकारा केन्द्र के मिशन अधिकारियों से प्राप्त हुई थीं।

अन्य प्रलोभन

हमारे सामने बहुत सी गवाहियां गुजरीं जिनसे यह प्रकट होता है कि धर्म-परिवर्तन के समय लोगों को नमक हल-बैल और जमा हुआ दूध इत्यादि के उपहारों का प्रलोभन भी दिया जाता है।

प्रचारकों की नियुक्ति

हमने जब जांच के लिये दौरा किया उस अवसर पर हमारे ध्यान में यह बात लायी गयी कि प्रचारकों के रूप में नियुक्ति के लिये ईसाई धर्म में नव-दीक्षित ईसाइयों को लिया जाता है। अनेक प्रलोभनों में से यह भी एक प्रलोभन है। ऐसे प्रचारक को ४० रु० मासिक वेतन

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दिया जाता है। सरगुजा जिले में ६०) रु० से ७०) रु० मासिक वेतन पर प्रचारक नियुक्त हैं। श्री गुणवन्त तामड़े (अमरावती) ने जो महार जाति में से हैं, अपने बयान में कहा कि जो लोग २०) रु० भी नहीं कमा सकते, उनको प्रचारक बनाने पर १००) रु० तक मासिक वेतन मिल जाता है। रेवेरेन्ड ग्रब (अमरावती) ने स्वीकार किया कि उनके अधीन १२ प्रचारक कार्य करते हैं और उनको ६०) रु० से ९०) रु० तक मासिक वेतन मिलता है। सोनावाजी (यवतमाल) महार जाति से ईसाई धर्म में दीक्षित हुआ और उसे एक ईसाई प्रचारक नियुक्त कर लिया गया और इस रूप में उसे ४५) रु० मासिक मिलने लगा है। साइलस जिगरे (यवतमाल) एक अन्य ईसाई प्रचारक है उसको ६०) रु० मासिक वेतन मिलता है और वह १०० व्यक्तियों को ईसाई बना चुका है। पैस्टर जे० सी० नाथर यवतमाल) को जो ऊमरी के गिरजाघर से सम्बन्धित था, ९८) रु० मासिक वेतन मिलता था। वह उमरी के एक अस्पताल में एक प्रचारक है और वहां उसने १५ व्यक्तियों को ईसाई बनाया है। श्री मोजेज़ डेविड (यवतलाम) १५७) रु० मासिक वेतन प्राप्त करते हैं। १९४७ से लेकर वे २०० व्यक्तियों को ईसाई बना चुके हैं। श्री लक्ष्मण भटकर (बुलडाना) एक एम० पी० हैं और महार जाति के हैं। वह ३५ वर्ष से समाज सेवा का कार्य करते आ रहे हैं। और आजकल चोखमेला में एक छात्रावास चला रहे हैं। १९३८ से लेकर १९४२ तक प्रान्तीय विधान सभा के सदस्य भी रह चुके हैं। उन्होंने अपनी व्यक्तिगत जानकारी के आधार पर कहा है कि बरार में जो ईसाई हुये हैं, वे शत-प्रतिशत हरिजन जाति-में से हुये हैं। जो हरिजन गरीब और अशिक्षित हैं उनको यदि एक प्रचारक अथवा एक अध्यापक के पद का लालच दे दिया जाता है तो वे ईसाई हो जाते हैं। हीरालाल पगारे (बुलडाना) एक पैस्टर (पादरी) हैं, उन्हें ८५) रु० वेतन मिलता है। इसी प्रकार रेवेरेन्ड गोफने (बुलडाना) को ६०) रु० और लूथर मनमोथे को ८१) रु० मासिक वेतन मिलता है। इसी तरह तुलाराम (बिलासपुर) को ८२) रु० प्रतिमास के हिसाब से वेतन मिलता है। उसने यह भी बयान दिया कि ६ मील के घेरे मे ४ प्रचारक कार्य करते हैं।

गांव के अधिकारियों के प्रभाव का उपयोग

ईश्वरी प्रसाद कोतवाल (मांडला) एक सरकारी ग्रामीण अधिकारी हैं। उन से रोमन कैथोलिक चर्च के फादर ने कहा कि वे गांव वालों में पैम्फलेट वितरण किया करें और गांव वालों को प्रति रविवार को गिरजाघर लाया करें। परन्तु गांव वाले उनके कहने पर गिरजाघर में उपस्थित होने को राजी न हुए। इस पर कैथोलिक फादर उक्त देहाती अफसर पर रुष्ट हो गया। भगवान सिंह (मांडला) डिंडोरी जनपद सभा के एक सदस्य हैं। उन्होंने कहा कि रोमन कैथोलिक मिशन वालों के गांव के मुखिया को गांठ लिया और उसके प्रभाव से और लोगों को ईसाई बना लिया। गंजू राम उरांव (रायगढ़) मुदीकेला के पटेल हैं। उनके पास बहुत से ईसाई पहुँचे और उनसे कहा कि उनको पादरी साहेब ने उनके पास भेजा है और आदेश दिया है कि वे गाँव वालों की एक सभा बुलायें और उनको ईसाई बनने के लिए प्रेरित करें। इसी प्रकार का दूसरा बयान श्री काशी राम मिश्र (रायगढ़) ने भी दिया है। वह प्रान्तीय विधान सभा के एक भूतपूर्व सदस्य हैं और उदयपुर जन-पद सभा के अध्यक्ष हैं। उपरोक्त गवाहियों से ऐसा प्रगट होता है कि मिशन वाले प्रायः इस प्रकार के आदेश जारी करते रहे हैं और लोगों को ईसाई बनाने के लिए इस प्रकार के ढंग अपनाते रहे हैं। 'मिशन्स इन मिड इण्डिया' से हिन्दी संस्करण में पृष्ठ १५१–५२ पर निम्न प्रकार के आदेश का उल्लेख है :—

"यहां पर जो ईसाई पुलिस का काम करते हैं या जंगल अफसर हैं या स्कूलों में पाठक का काम करते हैं अगर तीन दिन के लिये इन लोगों के लिए एक सभा लगाई जाये और अन्य धर्मियो के धर्मान्तिर का बोझा उनके कन्धे पर रखा जाय तो बड़ी अच्छी बात होगी।"

ईसाइयों ने अब अपने प्रचार में भजन-कीर्तन की प्रथा भी चालू कर दी है और इन भजनों को 'ईसा भजन' कहते हैं तथा बाइबिल को 'ईसा भागवत' कहते हैं। ईशावास्योपनिषद्' में 'ईशा वास्यमिदं सर्वं' यह वाक्य आता है। इसकी व्याख्या करते हुए एक ईसाई प्रचारक ने

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कहा कि इस वाक्य का अर्थ यह है कि समस्त जगत् ईसाई हो रहा है। इसी प्रकार एक ईसाई प्रचारक बाजार में प्रचार कर रहा था और कह रहा था कि मैं आप लोगों को ईसा भागवत सुना रहा हूं। इस अवसर पर इसने राम और कृष्ण के जीवन पर भी बहुत भद्दे आक्षेप किये मुकन्द चतले एडवोकेट (विलासपुर) तथा जटाशंकर शर्मा (रायपुर) ने अपने बयान में कहा कि महासमन्द में डा० सैमुएल ने अपने प्रचार में कहा था कि मुक्ति केवल ईसा के द्वारा ही प्राप्त हो सकती है। राम जिसकी पत्नी अपहृत कर ली गयी थी वह क्या मुक्ति प्रदान कर सकता है।

तुलसीदास की रामायण में गिरिजापूजन का प्रसंग आया है। ईसाइयों ने लोगों के समक्ष इसकी व्याख्या गिरजाघर अर्थात् चर्च के रूप में की। हरिराम जी ने, जिन्होंने रायपुर में गवाही दी थी, अपने बयान में कहा कि तिलड़ा के अस्पताल में एक प्रचारक रोगियों से कह रहा था कि राम, कृष्ण, शंकर और विश्वामित्र इत्यादि हिन्दुओं के देवता ईसा के जन्म पर उनके दर्शनों के लिये गये थे। 'गुरु परीक्षा' 'राम परीक्षा' 'चन्द्र लीला' और 'सच्चा मजहब कौन सा है' ये ईसाइयों के प्रचार के पर्चे हैं। उनमें न केवल राम पर वरन् ईस्लाम के पैगम्बर मुहम्मद पर भी घातक आक्षेप किये गये हैं। 'गुरु परीक्षा' में यह लिखा है:—

"राम...कृष्ण मुक्तिदाता नहीं हो सकते, क्यों कि सब के सब.. बुराइयों के वश में लिप्त थे।" (पृष्ठ ४)

वह (कृष्ण) चोर था। उसने कंस के निरपराध धोबी का घात किया। ऐसे देवताओं पर आसरा रखना बड़ी मूर्खता है।" (पृष्ठ ५)

"राम...पापी था...आप मर गया और फिर नहीं जी उठा...(पृष्ठ ३४)

इसी प्रकार ईसाइयों के प्रचार की सच्चा मजहब कौनसा है' नामक पुस्तक में हजरत मुहम्मद के बारे में निम्न शब्दों में उल्लेख है :—

"मुहम्मद...दूसरे आदमियों की तरह गुनहगार पैदा हुआ।" (पृष्ठ ९)

"मुहम्मद की छः (६ औरतें थीं....." (पृष्ठ १०)

'वह आदमी जो मस्ती, गुस्सा और कठोरता से भरा हुआ था।" (पृष्ठ ११)

"वह मर गया, गाड़ा गया और उसका बदन कब्र में सड़ गया।".....(पृष्ठ १२)

क्या कोई भी न्यायप्रिय व्यक्ति यह कह सकता है कि भारत में बहुसंख्यक जाति के धर्म पर जो भद्दे आक्षेप किये जाते हैं, वे ईसाई धर्म का अंग है अथवा उनसे सार्वजनिक अनुशासन अथवा नैतिकता को प्रोत्साहन मिलता है ?

हम जानते हैं कि मिशन के अधिकारियों ने ऐसे आक्षेपों को अस्वीकार किया है और सरकार को विश्वास दिलाया है कि ऐसी बातें केवल कुछ एक बिगड़े दिमाग के धर्मान्ध प्रचारकों के द्वारा की गयी हैं। यदि ऐसे उदाहरण एक्का-दुक्का अथवा थोड़े होते तो हम उनकी यह बात मान लेते, परन्तु हमारे सामने तो इतनी सारी मौखिक और लिखित गवाहियां हैं, जिनसे स्पष्ट है कि हिन्दू धर्म और उसके देवी-देवताओं पर जो आक्षेप किये जाते हैं, वे ईसाइयत के प्रचार के एक अभिन्न अंग बन गये हैं। ऐसा प्रचार जानबूझ कर राज्य के सभी भागों में ईसाई प्रचारकों द्वारा किया जाता है। इस पर कुछ हिन्दू संस्थाओं में इसके प्रति रोष उत्पन्न होना सर्वथा स्वाभाविक है। इस बात को प्रगट करने में हमारा उद्देश्य यही है कि एक हिन्दू धर्म-प्रधान देश में इस प्रकार के भद्दे प्रचार से ऐसी समस्यायें उत्पन्न हो जाती हैं जिनसे राज्य की शान्ति और अनुशासन के भंग होने का भय रहता है। हमें आश्चर्य है कि राज्य के बहुत से हिस्सों में बिगड़े हुए दिमाग वाले, असभ्य और अशिक्षित प्रचारकों के इतना व्यापक प्रचार होते हुए भी हिन्दुओं द्वारा शांति भंग करने के बहुत ही कम उदाहरण मिलते हैं। संभव है इसका कारण हमारे ग्रामीण भाइयों की स्वाभाविक सहनशीलता का भाव और अधिकारियों की सतर्कता हो। परन्तु उसमें कोई संशय नहीं कि इस प्रकार के प्रचार से शांति भंग होने का भय बना रहता है और यदि कहीं शांति भंग हो तो उसका उत्तरदायित्व उन पर है जो दूसरे लोगों के धर्म पर आक्षेप करते हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सामूहिक धर्म-परिवर्तन

हमारे सामने जितनी गवाहियाँ गुजरीं, उनसे स्पष्ट होता है कि बहुत से लोग जो अपने धर्म का परित्याग करते हैं और ईसाई बनते हैं, वास्तविक रूप में ईसाई नहीं बनते। यदि धर्म-परिवर्तन एक व्यक्तिगत वस्तु है, तो धर्म-परिवर्तन से पहले उसका गूढ़ और विचारपूर्ण अध्ययन आवश्यक हो जाता है। परन्तु इसके विपरीत हमें विदित हुआ है कि अशिक्षित आदिवासियों के दल के दल, उनके परिवार तथा बच्चे, केवल उनकी चोटी काट कर, ईसाई बना लिये जाते हैं। उनमें से बहुत तो अपने इस नये धर्म का क, ख, ग, भी नहीं जानते। उदाहरण-स्वरूप वेनीमाधव (विलासपुर), जो एक मालगुजार का लड़का था, यह भी न बता सका कि बाइबिल किन वाक्यों से प्रारम्भ होती है और किस प्रकार समाप्त होती है। वह ईसाई मत सम्बन्धी ईश्वर की प्रार्थना से भी अनभिज्ञ पाया गया। सरकार ने हमें विधान बनने के बाद सरगुजा जिले में ईसाई बने लोगों की सूची दी है। उससे पता चलता है कि किस प्रकार ४००० उरांव दो वर्ष के भीतर ईसाई बनाये गये हैं। इस सूची में ६० वर्ष से लेकर १ वर्ष की आयु तक के लोग सम्मिलित हैं, जो ईसाई धर्म में दीक्षित हुए दिखाये गये हैं। 'बहुत से ईसाई लोग तो केवल नाम मात्र के ईसाई हैं, उनके रीति-रिवाज और धार्मिक विश्वास सब हिन्दुओं जैसे हैं। इस का मुख्य कारण यह है कि उनके धर्म-परिवर्तन का उद्देश्य धार्मिक न होकर सामाजिक और आर्थिक हैं।...'' "अब तक केवल वे बलाही ही ईसाई आचार का पालन करते आ रहे हैं जो ईसाई स्कूलों में बहुत समय तक शिक्षित किये गये हैं अथवा जो ईसाई मिश्नरी संस्थाओं की आर्थिक दासता में फंसे हुए हैं। यह विश्वास योग्य बात नहीं है कि उस लोगों ने, ईसाई होने से पहले, ईसाई धर्म की शिक्षा पायी हो या बप्तिस्मा के पूर्व उन्हें परीक्षा के तौर पर कुछ समय दिया हो। उस क्षेत्र के प्रचारकों में से अधिकांश, जिनसे हमने भेंट की, स्वयं अपने धर्म के ज्ञान से वंचित है। वे लोग वेतनभोगी प्रचारक मात्र हैं। हमें विश्वसनीय सूचना मिली है कि मिश्नरी संस्थायें बप्तिस्मा का दैनिक विवरण रखती हैं। अतएव इस में क्या कठिनाई थी कि इस प्रकार का विवरण हमें दिखा दिया जाता और उससे पता चल कि अमुक अमुक व्यक्ति को कुछ समय ईसाई धर्म की शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् ही बप्तिस्मा दिया गया है। अतएव सिद्ध है कि केवल असली सत्य के प्रगट हो जाने के भय से ही रोमन कैथोलिक मिशन की संस्थाओं ने इस प्रकार के प्रमाण नहीं प्रस्तुत किये। दूसरी ओर हमारे सामने सरगुजा जिले के उन ४००० से अधिक लोगों की सूची रखी गयी जो ईसाई बनाये गये और जिन में सभी आयु के लोग तथा परिवार के परिवार सम्मिलित हैं। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि आम तौर पर समुदाय के समुदाय ही ईसाई बनाये गये हैं। केवल अपवाद स्वरूप बहुत थोड़े ऐसे उदाहरण हैं जहां व्यक्तिगत रूप से धर्म-परिवर्तन किया गया है। हम लोगों के सामने व्यक्तिगत धर्म-परिवर्तन के जो मामले आये वे ग्राम के उन अगुओं के थे, जिसके धर्म-परिवर्तन के पश्चात् ही साधारणतया गांव के गांव सामूहिक रूप से ईसाई बन गये थे।

रेवेरेन्ड मकबूल मसीह (विलासपुर) ने स्वीकार किया कि १०० धर्म-परिवर्तन में से, जो उनके द्वारा सम्पन्न हुए हैं, आधे पुनः सतनामी समाज में वापस लौट गये हैं। बरार (विदर्भ) के गवाहों ने भी इसी प्रकार की बातें स्वीकार कीं। मंगल भाई एवेन्जिलिस्ट (अमरावती) ने २०० व्यक्तियों का धर्मान्तर किया था, किन्तु उनमें केवल ५० ही ईसाई बने रहे। नजरीन चर्च की रिपोर्ट में यह लिखा हुआ है कि अंजनी में एक चर्च है, परन्तु कोई गिरजा घर में जाने वाला नहीं है, क्योंकि सब फिर से हिन्दू धर्म में चले गये हैं। उसमें यह भी लिखा गया है कि पिछले साल इंडियन डिस्ट्रिक्ट असेम्बली में जो आंकड़े दिये गये हैं उनमें सदस्यों की संख्या में कमी दिखायी गयी है। इस प्रकार यह निस्सन्देह बात है कि पिछड़े हुए भागों में तथा परिगणित क्षेत्रों में अशिक्षित आदिवासी तथा हरिजन लोग सामूहिक रूप से ईसाई बनाये जा रहे हैं। वे ईसाईयत के प्रति प्रेम के लिये नहीं वरन् भौतिक प्रलोभनों तथा मिश्नरियों द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीति से दिये नाना प्रकार के लोभ लालच के

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वशीभूत होकर ईसाई धर्म ग्रहण कर रहे हैं। इस सामूहिक धर्म-परिवर्तन का नंगा रूप रायगढ़, धर्मजयगढ़ और सरगुजा के क्षेत्रों में देखा जा सकता है। चूंकि अधिकतर धर्म-परिवर्तन आदिवासियों, सतनामियों और हरिजनों में से होता है अतः यह भी दिखाने का प्रयत्न किया जाता है कि ब्राह्मण भी ईसाई बने हैं। धरनी में एक व्यक्ति ने अपने को ब्राह्मण से ईसाई बना बताया और कहा कि मैं रामनारायण दूबे (वा मिश्र) का पुत्र हूँ। किन्तु जिरह करने पर उसे प्रगट करना पड़ा कि वह एक वैरागी है और अब एक वेतनभोगी ईसाई प्रचारक है।

राष्ट्र-विरोधी भावनाओं का प्रचार

मिश्नरियों के सम्बन्ध में एक अत्यन्त गंभीर आरोप यह है कि उनके द्वारा राष्ट्र-विरोधी भावनाओं का प्रचार होता है, यद्यपि ईसाई मिश्नरी इसका घोर विरोध करते हैं। हमारे सामने इस सम्बन्ध में जो कुछ गवाहियां गुजरी वह विचारणीय हैं। गांधी जी ने मिश्नरियों को सम्बोधित करते हुए कहा था कि इसमें कोई अत्युक्ति नहीं कि भारत में अराष्ट्रीयता और पश्चिमी सभ्यता के फैलाव में ईसाइयत का काफी हाथ है। अराष्ट्रीय भावना के प्रचार के सम्बन्ध में सबसे बड़ा उदाहरण हमें "हेरिटेज आफ ऐन इन्डियन क्रिश्चियन" नामक पुस्तक से, जो एक भारतीय की लिखी हुई है, मिलता है। उसमें लेखक ने यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि उसती सभ्यता का का स्रोत यूरोप है। किस प्रकार से लोगों के हृदय में राष्ट्र-विरोधी भावनायें उत्पन्न की जाती है, यह निम्न-लिखित उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा।

जब हम जांच के दौरे में जशपुर क्षेत्र में थे तो वहां हमारे सामने यह आम शिकायत सुनी गयी कि ईसाई प्रचारक ग्रामवासियों को यह कहते फिरते हैं कि "जब से जवाहर राज्य स्थापित हुआ है, सुख का नाम निशान नहीं है, लेकिन हम विश्वास दिलाते हैं कि जवाहर राज्य अब समाप्त होने वाला है और ईसाई राज्य आने को है।" इस बात को वहां उस समय उपस्थित ईसाईयों ने मानने से इन्कार कर दिया, फिर भी इसकी पुष्टि होशंगाबाद जिले के खिरकिया से प्राप्त एक लिखित वक्तव्य द्वारा हो जाती है जिसमें कहा गया है कि 'जय हिन्द' से मिश्नरियों को कष्ट पहुंचता था और वे इसके स्थान पर 'जय ईशु' रखना पसन्द करते थे। 'किंग आफ किंग्स' नामक फिल्म दिखला कर लोगों में ईसा के अद्वितीय राज्य की घोषणा की जाती है। इस फिल्म को देखने का अवसर हमें बुलडाना में मिला। जबलपुर के एक स्कूल में अभिनीत किये जाने वाले एक नाटक में राष्ट्रीय ध्वज के ऊपर ईसाई ध्वज की गुरुता दिखायी गयी।

'घर बन्धु' नामक पत्र के जून, १९५२ के अंक में पृष्ठ १२ पर प्रकाशित एक लेख "निराला राज्य और उसके कर्मचारी" में निम्नलिखित प्रकाशित हुआ था :—

"आज हमारे सामने सरगुजा का विस्तृत राज्य है जिसे मसीह के साम्राज्य में मिलना है।" 'घरबन्धु' नामक पत्र के ८ सितम्बर १९५३ के अंक में निम्नलिखित प्रकाशित हुआ था:—

'गत ७ महीने के अन्दर बपतिस्मा पाये हुओं की संख्या १९५३ जुलाई तक १५७० संख्या से ज्यादा ही है। प्रान्तीय मुख्य मन्त्री मान्यवर आर० एस० शुकला के कुछ विरोधी आरोपन होते हुए भी प्रति माह धर्म की भूखी प्यासी जनता पवित्र बपतिस्मा के जरिये नया जन्म पाके प्रभु की मंडली में ....."

जब एक ग्रामीण को ईसाई बना लिया जाता है तब उनके मस्तिष्क को उसके समाज, देश और राज्य के विमुख बना देना सरल हो जाता है। गुणवन्त तयाडे (अमरावती) ने कहा कि ईसाई धर्म मे दीक्षित व्यक्ति अपनी वेश-भूषा बदल लेते हैं और अपने को यूरोपियन समझने लग जाते हैं। डा० पिकेट ने भी इस सम्बन्ध में लिखा है कि 'यूरोपियन नाम यूरोपियन ढंग के रहन-सहन तथा वेश-भूषा आदि से ईसाई बने लोग अपने उन देशवासियों से घृणा करने लग जाते हैं जो भारतीय परम्परा से अनुराग रखते हैं" (क्रिश्चियन मास मूवमेन्ट इन इन्डिया, पृष्ठ ३३२)।

———

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भाग ४

अध्याय १

जांच से प्राप्त निर्णय

हमारे सम्मुख जो भी सामग्री आयी उसके आधार पर हम इस निश्चय पर पहुचे हैं कि:—

जब से भारतीय संविधान लागू हुआ है, भारत में काम करने वाली मिश्नरी सस्थाओं में अमेरिकन लोगों की संख्या पर्याप्त बढ़ी है। यह संख्या-वृद्धि निश्चय ही 'इन्टरनेशनल मिश्नरी कौन्सिल" की उस नीति का परिणाम है जिसके अनुसार हाल में स्वतन्त्र हुए देशों में, जहां वैधानिक रूप से धार्मिक स्वतन्त्रता की सुविधा हो, ईसाई धर्म के प्रचार के लिये प्रेस, फिल्म, रेडियो और टेलिविजन आदि से सुसज्जित ईसाई प्रचारकों के दल के दल भेजने की योजना बनायी गयी थी (मिश्नरी आब्लिगेशन आफ दी चर्च, पृष्ठ २७ और ३१)।

विदेशों से अपरिमित धनराशि भारत में आ रही है और उसका व्यय मिश्नरियों द्वारा शिक्षा-प्रचार, चिकित्सा तथा ईसाइयत के प्रचार के लिये हो रहा है। इसी धन के बल पर लूथरन और अन्य धर्मान्तर करने वाली ईसाई संस्थाओं ने सरगुजा में ४००० व्यक्तियों को ईसाई बना लिया।

अधिकतर धर्म-परिवर्तन अनुचित प्रभाव द्वारा तथा मिथ्या प्रचार द्वारा किये गये हैं। दूसरे शब्दों में लोगों के अन्तःकरण की प्रेरणा से नहीं वरन् अनेक प्रकार के प्रलोभनों द्वारा ही ईसाई बनाया गया है। छोटे बच्चों को प्राथमिक अथवा माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षा देने के बहाने तथा उन्हें शिक्षा-सम्बन्धी अन्य सुविधायें जैसे बिना मूल्य पुस्तकें और बिना शुल्क पढ़ाई आदि की व्यवस्था करके उन्हें धर्म-परिवर्तन की प्रेरणा की गयी। रुपया उधार देना धर्म-परिवर्तन के लिए काम में लाये जाने वाले अनेकानेक उपायों मे से एक साधारण उपाय है। इस प्रकार के ऋण देने की व्यवस्था रोमन कैथोलिक मिशन में विशेष रूप से पायी गयी जो सरगुजा, रायगढ़ और मांडला आदि जंगली क्षेत्रों में कार्य कर रहे हैं। उन स्थानों पर विशेष दबाव डालने की बात सुनी गयी जहां ईसाई बने व्यक्ति अपने परिवार के अन्य सदस्यों को भी ईसाई धर्म में दीक्षित करना चाहते थे अथवा जहां वे विवाह के लिये स्त्रियां प्राप्त करना चाहते थे।

कुछ स्थानों में मिशन धर्म के अतिरिक्त अन्य विषयों में भी लगे हुए पाये गये। यद्यपि विदेशी और देशी मिश्नरियों की ओर से अधिकारियों को यह विश्वास दिलाया गया था कि वे राजनीति में भाग नहीं लेंगे, तथापि परोक्ष रूप से उन्हें राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेते हुए पाया गया। इसके उदाहरण हमारी कमेटी के सामने लाये गये।

चूँकि धर्म-परिवर्तन होने से धर्मान्तरित होने वाले व्यक्ति को उसके समाज से विच्छेद हो जाता है, इसलिये देश और राज्य के प्रति उसकी निष्ठा सन्दिग्ध हो जाती है।

भारत के बहुसंख्यकों के धर्म के विरुद्ध एक निन्दनीय संगठित और निश्चित प्रयोजन के साथ प्रचार किया जा रहा है, जिससे जनसाधारण की शान्ति भंग हो जाने की आशंका है।

भारत में ईसाई प्रचार ईसाइयों की उस विश्व-नीति का एक अग है, जिस का उद्देश्य संसार में फिर से पश्चिम के प्रभुत्व की स्थापना करना है। यह प्रचार आध्यात्मिक उद्देश्य से प्रेरित नहीं प्रतीत होता। इसका स्पष्ट उद्देश्य स्थान-स्थान पर ईसाई अल्प-संख्यकों का संगठन करना और उसके द्वारा गैर-ईसाई समाजों की एकता को नष्ट करना तथा आदिवासियों के एक विशाल जन-समूह को ईसाई मत धर्मान्तरित कर राष्ट्र के लिये खतरा उपस्थित करना है।

स्कूल, अस्पताल, और अनाथालय धर्म-परिवर्तन के विशेष लक्ष्य हैं। इसका कारण यह है कि उनके क्षेत्र में अस्पताल, स्कूल, अनाथालय तथा अन्य सामाजिक सेवा संस्थाओं की कोई समुचित सुविधा तथा व्यवस्था नहीं है।

मध्य प्रदेश सरकार ने सदा निष्पक्षता की नीति का पालन किया है और धार्मिक मामलों में उसने कभी हस्ताक्षेप नहीं किया। सरकारी कर्मचारियों द्वारा ईसाइयों के प्रति कोई अनुचित व्यवहार हुआ या उन पर कोई अत्याचार हुआ यह आरोप सिद्ध नहीं हुआ। इस प्रकार

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

के आरोप लगाना उस पुरानी नीति का अंग है जिसके अनुसार वे स्थानीय अधिकारियों पर रोब गांठते हैं और फिर विदेशों में यह प्रचार करते हैं कि उन पर अत्याचार हो रहा है।

———

अध्याय २

समिति की प्रमाण सहित सिफारिशें

चर्च अब ईसा की संस्था नहीं, वरन एक राष्ट्रीय संस्था बन गया है अर्थात् अब वह उन राजनीतिज्ञों का साधन मात्र ही रह गया है जो किसी देश की राजनीति का संचालन करते हैं। यही भावना रेवेरेन्ड इमानुएल द्वारा इन शब्दों में प्रगट की गयी है :—"चर्च, आर्चबिशप लोग ईसा के धर्म के संरक्षक नहीं वरन् राजनीतिज्ञों के पीछे चलने वाले बन गये हैं।"

गांधी जी ने स्वयं लोगों को ईसाई बनाये जाने पर घोर विरोध प्रगट किया था। उन्होंने कहा था कि यदि ईसा एक बार फिर इस धरती पर आते तो उन्हें ईसाइयत के नाम पर किये जाने वाले अनेक कामों से लज्जित होना पड़ता।

सर एन्ड्रू फ्रेज़र बंगाल के लेफ्टीनेन्ट गवर्नर थे। उन्होंने सन् १९१२ में एक पुस्तक लिखी थी, जिसका नाम "एमंग राजाज एण्ड रैयत्स" है। उसमें उन्होंने लिखा था कि भारत के लिये यदि कोई आशा है तो इस बात में है कि यहां ईसाई सभ्यता को प्रश्रय दिया जाय। उनकी दृष्टि में भारत को ऐसी सभ्यता प्रदान करना जो ईसाइयत से रहित हो उसे उस चीज से वंचित रखना है जो हमारी सभ्यता की श्रेष्ठतम वस्तु है और जिसके द्वारा ही सभ्यता स्वस्थ और पवित्र रह सकती है।

गांधी जी द्वारा स्वतन्त्रता आंदोलन आरम्भ करने के पश्चात् मुसलमानों ने अपने लिये एक अलग स्वतन्त्र राज्य की मांग रखकर इस आंदोलन को एक धार्मिक रूप दे दिया। मिश्नरियाँ भी हिन्दू जाति की एकता को छिन्न-भिन्न करने की जी तोड़ कोशिश कर रही थी, जिसका परिणाम हम आगे चल कर देख सकेंगे।

साइमन कमीशन की रिपोर्ट १९२९ में छपी। उसने आदिवासियों के क्षेत्रों को राज्यशासन से बहिष्कृत क्षेत्र के रूप में रखने की सिफारिश की। इस में उनका उद्देश्य यह था कि ऐसा करने से उनके हितों की विशेष रक्षा होगी और वे दूसरे लोगों की भांति शीघ्र से शीघ्र उनके स्तर तक आ जायेंगे। मिश्नरियों ने इस से अनुचित लाभ उठाने की चेष्टा की और ग्रामीण तथा आदिवासियों को ईसई बनाने की योजना तैयार की। डा० बटरफील्ड एक ईसाई मिश्नरी थे। उन्होंने मिशन तथा मिशन से संबन्धित संस्थाओं के बीच अच्छे सम्पर्क स्थापित करने तथा संगठित और सरकारी ढंग से कार्य करने पर बल दिया। उन्होंने ईसाइयों को सम्बोधित करते हुये कहा कि भारत में ईसाई धर्म के प्रचार के लिये बहुत विस्तृत क्षेत्र है। ६०००००००० छे करोड़ हरिजनों तथा प्रायः इतनी ही संख्या की पिछड़ी हुई जातियों को ईसाई धर्म में परिवर्तित किया जा सकता है। उन्होंने सुझाव रखा कि भारतीय गांवों की समस्या को अमेरिका की जनता के समक्ष रखा जाय और उन से इसके लिये सहायता और सहानुभूति प्राप्त की जाय। उन्होंने उन शक्तियों की ओर भी संकेत किया जिनका उन्हें इस कार्य में सामना करना होगा। इस सम्बन्ध में उन्होंने इस प्रकार के अर्थ भरे शब्द कहे:—

"भारत में नैतिक और आध्यात्मिक प्रगति के लिये किये जाने वाले प्रयत्नों में ईसाइयों को अन्य देशों की भांति यहां भी धर्म-निरपेक्षता, उत्कट राष्ट्रीयता और संभवतः साम्यवाद तथा भौतिक औद्योगिकवाद का सामना करना होगा।" उन्होंने उक्त योजना को कार्यान्वित करने के लिये यह सुझाव दिया कि ईसाई मत को इसके लिये ईसा को एक प्रभावशाली और आक्रान्ता के रूप में उपस्थित करना होगा।....और प्रत्येक ईसाई का कर्तव्य होगा कि वह अपने व्यक्तित्व को इसा के उत्साह से समन्वित करे।"

सन १९३०-३१ और ३२ में गोलमेज कान्फ्रेन्स की बैठकें हुई। उस अशान्ति और उत्तेजना के समय अमेरिका में एक जांच कमेटी बैठायी गयी जिस का नाम 'लेमैन्स फारेन मिशन्स इन्क्वारी" रखा गया। इसमें अमेरिका के १५ संभ्रान्त नागरिक सम्मिलित थे। डा० हाकिंग इसके

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अध्यक्ष थे। अपनी रिपोर्ट में उन्होंने विश्व-व्यापी चर्च और विश्व-सभ्यता में एकता का स्वप्न देखा, क्योंकि उन के मत में ईसाई धर्म कोई पश्चिम की वस्तु नहीं वरन विश्व मात्र की वस्तु है। उक्त कमेटी में यह निश्चय किया गया कि मिशन का मूल उद्देश्य ईसाई धर्म के द्वारा विश्व को विजय करना है।

सामूहिक धर्म-परिवर्तन

उक्त योजना के अनुसार संगठित रूप से ईसाई धर्म का प्रचार आरम्भ हुआ। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि सामूहिक रूप से अनेक धर्म-परिवर्तन किये गये। डा० पिकेट ने २५००० डालर तो "राकफेलर फाउन्डेशन" से और १०००० डालर डा० माट से प्राप्त किये। इसी के बल पर उन्होंने विस्तृत जांच करके एक रिपोर्ट प्रकाशित की जिसका नाम "क्रिश्चियन मास मूवमेन्ट इन इंडिया" है। डा० माट ने इस रिपोर्ट की भूमिका लिखी है। उसमें गांधी जी के साथ सामूहिक धर्म-परिवर्तन के सम्बन्ध में उनकी जो बात चीत हुई थी, उसका भी उल्लेख है। गांधी जी ने कहा था:—

"इस प्रकार का प्रचार यदि मुसलमानों द्वारा किया जाय तो उसे मैं समझ सकता हूं; किन्तु ईसाई मिशन तो केवल आध्यात्मिक प्रचार करने का दावा करते हैं। यह जानकर मुझे दुःख होता है कि ईसाई संस्थायें मुसलमानों और सिखों की देखा देखी केवल अपने समाज की संख्या-वृद्धि करने में लगी हुई हैं। यह एक गर्हित कार्य है और धर्म का उपहास मात्र है।" जब भारत में ईसाई प्रचार के लिये बाहर से अन्धाधुन्ध रुपया आने लगा तो गांधी जी ने कहा :—केवल कुबेर देवता को सेवा के लिये भारत में भेज दिया गया है, परन्तु भगवान स्वयं पीछे रह गये हैं।" इस पर डा० माट ने व्यंग से कहा:— "रुपया एक संचित व्यक्तित्व है।"

हैदराबाद में १९२१ से १९३१ तक १० वर्ष में ईसाइयों की जन-संख्या में जो वृद्धि हुई वह लगभग १४२ प्रतिशत थी और १९३१ से १९४१ तक ४५ प्रतिशत थी। इसी सम्बन्ध में एक और उल्लेखनीय बात यह है कि बर्मा में वहाँ के ईसाई करेन लोगों ने मुसलमानों की ही तरह एक अलग राज्य की स्थापना की मांग की और अपनी इस मांग को राउन्ड टेबल में बड़े जोरदार शब्दों में रखा। उन का यह आ स्पष्टतया मिशनरियों की प्रेरणा का फल था, "रिथींकिंग मिशन्स" नामक पुस्तक की निम्नलि टिप्पणी से ज्ञात होता है :—

'मिशनरियों ने करेन लोगों को शिक्षित किया और बाइबिल के अनुवाद द्वारा उन्हें एक लिखि भाषा दी। इस प्रकार करेनों में एक राष्ट्रीयता भावना जागृत की गयी, जो आगे चल कर बर्मा के लि घातक सिद्ध हुई। करेनों को अपने राष्ट्र से इस प्र विच्छिन्न करने का उत्तर-दायित्व इन मिशनरियों पर है। आज करेन एक संगठित दल के रूप में हैं, जिन्हों अपने अलग करेन राष्ट्र के समर्थन के लिये अपना ए शिष्टमंडल गोलमेज कान्फ्रेन्स में भेजा था।

१९३० से १९४० के अगले दस वर्षों में ईसाइ की जो गतिविधियां रहीं हैं उसे देखकर हम यह सोच को विवश हुए हैं कि उनकी कार्यवाहियां सदा भारतीय ईसाइयों को पृथक रखने की दिशा में हुई है वे उन्हें अपने लिये विशेष सुविधाओं की मांग कर के लिये भी प्रोत्साहन देते रहे हैं। इस प्रकार उन गतिविधियां स्पष्ट रूप से राजनैतिक रही हैं।

कोई यह न सोचे कि यह बीते हुए युग का इतिहास मात्र है, जो १९४७ में भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद लोप हो गया। नहीं, ऐसा सोचना सच्ची परिस्थिति की ओर से अपनी आंखें बन्द कर लेना है।

सन् १९४५ में न्याययुक्त स्थायी शान्ति कमीशन ईसाई प्रचार के चतुर्मुखी कार्यक्रम पर जोर दिया जिससे कि एक विश्व व्यापी ईसाई संगठन बनाया जा सके और जिससे ईसाई शक्तियां एक प्रबल, अनुशासित और लड़ाकू अल्पसंख्यक जाति का रूप ले लें।

इस प्रकार जो ईसाई आन्दोलन १९३० में प्रारम्भ हुआ था वह बड़े वेग से पनप रहा है। इसे जन-धन का पूरा समर्थन प्राप्त है। 'क्रिश्चियन मिशन्स इन रूरल इंडिया' नामक पुस्तक में यह सुझाव रखा गया है कि धर्म-निरपेक्ष राष्ट्रीयता, कम्यूनिज्म और आर्थिक औद्योगीकरण की शक्तियों को पराभूत करने के लिये भारत के ६०००० छै लाख गाँवों को ईसाई धर्म में धर्मान्तरित

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

करना होगा। रेवेरेन्ड मैक्लीश 'वर्ल्ड डोमिनियन प्रेस' के एक ट्रस्टी हैं, जिसका अन्तर्राष्ट्रीय मिश्नरी कौन्सिल से गहरा सम्पर्क है। उन्होंने यह प्रस्ताव रखा कि भारत के ६००००० छे लाख गांवों को १० वर्ष के भीतर ईसाई बना लिया जाय।

हठीले हिन्दू समाज से लोहा लेने के लिये मिश्नरियों के द्वारा 'हिन्दू-राष्ट्रवाद' गैर-ईसाई धर्मों के हवाई किले' आदि अनेक मुहावरे गढ़े गये। हिन्दू लोगों के इस विश्वास की खिल्ली उड़ाई गयी कि सभी धर्म यदि सच्चाई के साथ आचरित किये जायं तो परमात्मा तक पहुंचने में समर्थ है। इस विश्वास को एक अन्ध मान्यता कहा गया। हिन्दू-धर्म राष्ट्रवाद की भौतिक भावना से सर्वथा मुक्त हैं, किन्तु जब इसे ईसाई धर्म के भीषण आक्रमण का सामना करना पड़ा तो उस में भी कुछ राष्ट्रीय भावना का उदय हुआ। कैन्टरवरी के आर्चबिशप की यह घोषणा थी कि ईसाई धर्म साम्राज्य-वादी धर्म है। हिन्दुओं की उदार भावना को अन्ध मान्यता बताना सहिष्णुता को सहन न करने के समान है। हिन्दुओं को इसलिये तुच्छ समझा जाता है कि वे ईसाइयों की भाँति यह नहीं मानते कि उनके अपने धर्म के अति-रिक्त किसी दूसरे धर्म से मुक्ति नहीं मिल सकती। परन्तु जैसा कि रूसो ने लिखा है, इस प्रकार की धर्मान्धता किसी धर्मान्ध राज्य में ही आदर पा सकती है। रूसो की सम्मति में ऐसे व्यक्ति को, जो यह कहता हो कि ईसाई मत के बाहर मुक्ति का कहीं अस्तित्व नहीं है, राज्य से बाहर निकाल देना चाहिये। इस प्रकार की मिथ्या धारणा एक धर्मान्ध राज्य में ही स्थान पा सकती है, किन्तु दूसरे राज्यों के लिये यह एक भयानक बात है।

एक ध्यान देने योग्य बात यह भी है मिश्नरी लोग अत्यन्त दीनता और असहायावस्था में पड़े हुए लोगों में ही धर्म का प्रचार करते हैं। वे लोगों की आर्थिक विपत्ति का अनुचित लाभ उठा कर उन्हें ईसाई बनाना चाहते हैं। एवेरेट कैटेल नामक लेखक ने लिखा है—"यदि हम किसी व्यक्ति को ईसाई धर्म की शिक्षा देना चाहें तो सर्व प्रथम हमें यह देखना चाहिये कि उसकी आवश्य-कतायें क्या हो सकती हैं और तब उसे ईसा के सम्बन्ध में बतावें।"

हम पहले उल्लेख कर चुके हैं कि सरगुजा जिले में सामूहिक धर्म-परिवर्तन करने के लिए मिश्नरियों द्वारा किस प्रकार अटूट धन पानी की तरह व्यय किया गया। इस सम्बन्ध में ध्यान देने योग्य बात यह है कि ऐसा तब हुआ जब भारतीय संविधान में दी गयी धार्मिक स्वतन्त्रता के अनुसार सरगुजा क्षेत्र मिश्नरियों के प्रचार के लिए बिलकुल खुल गया। अन्तर्राष्ट्रीय मिशन कौंसिल ने १९५२ में चर्च के लिए 'मिश्नरी आब्लीगेशन' नामक की पुस्तक प्रकाशित की थी। उसमें मिश्नरियों के लिये कुछ आदेश दिये गये हैं। उन्हीं आदेशों के अनुसार सामूहिक रूप से लोग ईसाई बनाये गये। इस पुस्तक के २७ वें पृष्ठ पर लिखा है :—"विश्व के अधिकांश भागों में जो समस्या है वह भूख की समस्या है। इस परिस्थिति में चर्च के लिए प्रचार के अच्छे अवसर हैं.....जिन देशों ने अभी हाल मे स्वतन्त्रता पायी है, उनमें से कुछ एक देशों में धर्म-प्रचार के लिए वैधानिक छूट दी गयी है.... उन देशों में प्रेस, फिल्म, रेडियो और टेलीविजन के द्वारा सामूहिक धर्म-परिवर्तन और प्रचार के नवीन क्षेत्र खुल गये हैं।"

हमारे सामने इस बात के अनेक प्रमाण हैं कि ईसाई मिश्नरी पहले विज्ञापन के द्वारा, जिसमें कर्ज आदि देने का प्रलोभन रहता है, लोगों को बुलाते हैं। जब इस प्रकार लोग उन के पास पहुँचते हैं तब दिखावे के तौर पर उनके नाम एक सूची में लिख लिये जाते हैं। पाठक निम्नलिखित आँकड़ों से कल्पना कर सकते हैं कि वह कौन सी धर्म-पिपासा हो सकती है जिसके कारण जनता सामूहिक रूप से अपना धर्म छोड़ कर ईसाई मत ग्रहण करने को एक दम से दौड़ पड़ी।

१ फरवरी १९५२ को ६९ सदस्यों के १० परिवार एक दम से ईसाई बनाये गये।

३ फरवरी १९५२ को १४४ सदस्यों के २८ परिवार एक दम से ईसाई बनाये गये।

५ फरवरी १९५२ को ८५ सदस्यों के १८ परिवार एक दम से ईसाई बनाये गये।

१० फरवरी १९५२ को ६५ सदस्यों के १६ परिवार एक दम से ईसाई बनाये गये।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

('घरबन्धु' मई, १९५२, पृष्ठ ५) उक्त उदाहरण तो नमूने के तौर पर है। कोई भी समझदार व्यक्ति इस बात पर विस्मित हुए न रहेगा कि क्या यही आध्यात्मिक ज्ञान या धर्म के प्रचार का उचित तरीका है ?

राष्ट्रीय कार्यों से ईसाइयों की तटस्थता

राष्ट्र हित के कार्यों में हमने ईसाइयों को भाग लेते हुए नहीं पाया। 'नेशनल क्रिश्चियन कौन्सिल रिव्यू' नामक पत्रिका के अप्रैल १९५५ के अंक में, १५८ पृष्ठ पर, एक ईसाई लेखक ने इस बात को स्वयं स्वीकार किया है कि भारतीय ईसाई सामूहिक रूप से राष्ट्र-निर्माण-कार्यों में भाग लेने से तटस्थ रहे हैं।

संकट के समय विदेशी प्रभुत्व की आशंका

भारत के विशाल जन-समूह से पृथक कर ईसाइयों को मिश्नरियों के शासन में रखने की मनोवृत्ति से यह शंका उत्पन्न होती है कि उन का उपयोग किसी खतरे के समय विदेशी स्वार्थों के लिये किया जा सकता है। इस प्रकार के प्रयत्न मिश्नरियों द्वारा पहले किये जा चुके हैं, जब कि १८५७ में स्वतन्त्रता आन्दोलन के दमन के लिये उन्होंने १०००० सशस्त्र कोलों की सेना देने को कहा। इसी प्रकार उस समय वर्मा से डा० भैसन ने भी ईसाई हुए करेनों की सेना देने की बात कही थी। अभी हाल में करेन, नागा, और अम्बायनीज लोगों की, जो ईसाई हो गये हैं, विद्रोही भावनायें भी इसी मनोवृत्ति का परिचय देती हैं। इसलिये यह आवश्यक है कि जंगली जातियों के क्षेत्रों में मिश्नरियों की गतिविधियों पर कड़ी निगरानी रखी जाये। भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में ईसाई मिशनों की स्थापना का एक मात्र उद्देश्य इसी सामूहिक धर्म-परिवर्तन के लिये सुविधा प्रस्तुत करना है।

संयुक्त राज्य अमेरिका के पास कोई बाहरी क्षेत्र नहीं है, अतः इस कमी को वह अन्य देशों में अपने सैनिक अड्डे बनाकर तथा दूसरे देशों से सैनिक संधि करके पूरा करना चाहता है (पृष्ठ २२, क्रिश्चियन रिवोल्यूशन)। ऐसा प्रतीत होता है कि भारत में इस प्रकार के धर्म-परिवर्तन आन्दोलन के द्वारा यह यहां मनोवैज्ञानिक अड्डा या आधार तैयार करना चाहता है।

जो व्यक्ति हमारे सम्मुख आये उन्होंने अमेरिका के उद्देश्यों के प्रति गहरी आशंका प्रकट की और इस सम्बन्ध में उक्त पुस्तक के २३ वें पृष्ठ पर लिखा भी है:— 'पश्चिम के देश कम्यूनिज्म का खतरा बता कर यह बहाना चाहते हैं, जिससे कि नये स्वतन्त्र हुए देशों में वे फिर से अपना प्रभुत्व जमा सकें।" अमेरिकन मिश्नरियों की गतिविधियां बहुत कुछ कम्यूनिस्ट-विरोधी विश्व-नीति से सम्बन्ध रखती हैं और लोगों की दृष्टि से ओझल हैं। मौरीशन भी अपनी रिपोर्ट 'रिलीजस लिबर्टी इन नीयर ईस्ट' (अर्थात् निकट पूर्व में धार्मिक स्वतन्त्रता) में लिखते हैं कि अनेक देशों में विदेशी मिशनों के सम्बन्ध में यह आशंका की जा रही है कि वे विदेशी राजनीतिक शक्तियों के एजेन्ट हैं। उन्होंने इन शब्दों में अपने मन्तव्य प्रगट किये हैं:—"इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि पिछले वर्षों में मिशनों का उपयोग राजनीतिक स्वार्थों के लिये किया जाता रहा है।"

दुर्भाग्यवश एशिया में ईसाई मिश्नरियों का जो इतिहास है उससे पता चलता है कि उनका उद्योग राजनीतिक ढंग का ही रहा है।

भारत के चर्च स्वतन्त्र नहीं हैं

यह कहा जाता है कि भारत के चर्च स्वतन्त्र हैं। फिर भी हमने देखा है कि मिश्नरियों का अब तक भी चर्च के साथ घनिष्ट सम्बन्ध है और वे उन्हें रुपये पैसे के बल पर अपने प्रभाव में रखते हैं। वे भारतीय चर्चों पर अपना अनुशासन इस आधार पर भी रखते हैं कि वे तथा भारतीय चर्च दोनों ही ईसाई होने के नाते साझेदार हैं। यद्यपि बाहर से आने वाले रुपये को दान का नाम दिया जाता है, परन्तु वास्तव में यह दान उपरोक्त साझेदारी की शर्त पर ही निर्भर है। यह स्वाभाविक है कि जो रुपया पाने वाला है वह उसके प्रति जिम्मेवार हो जिससे उसे रुपया मिलता है। अतएव भारतीय चर्च भी उन विदेशों के प्रति ऋणी और कृतज्ञ रहते हैं जिनसे उन्हें सहायता प्राप्त होती है। रेवेरेन्ड आर० सी० दास ने इस बात को जोरदार शब्दों में कहा है। यह कहना कि 'क', एक विशेष उद्देश्य के 'ख' से रुपया प्राप्त करता

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

है और फिर वह 'ख' का बराबर साझीदार भी है तो यह परस्पर विरोधी बात है और समझ में नहीं आ सकती।

अमेरिकन मिश्नरियों की संख्या में असाधारण वृद्धि

यदि भारत में चर्च सचमुच ही स्वतन्त्र हैं तो उनके सम्बन्ध में यह विश्वास स्थापित होना चाहिये कि वे अपना कार्य स्वयं बिना बाहरी लोगों की सहायता से चला सकते हैं। किन्तु यहां ध्यान देने योग्य बात यह है कि बाहरी मिश्नरियों की संख्या में एक आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है। यह मान भी लिया जाय कि वे भारत में यहां के गरीब और दुःख से पीडित लोगों के प्रति करुणा की भावना से आये है, तो फिर यह समझ में नहीं आता कि वे अपनी सारी चेष्टा केवल कुछ विशेष लोगों के प्रति और वह भी केवल धर्म-परिवर्तन की ही दृष्टि से क्यों केन्द्रित कर रहे हैं। इन बातों से पता चलता है कि विदेशी मिश्नरियों की यह बड़ी संख्या यहां केवल आध्यात्मिकता के उद्देश्य से ही नहीं आयी है। डा० आसीर्वाथम ने इस बात को इन शब्दों में प्रकट किया है :—यदि सयुक्त राज्य अमेरिका में इतना ही हिन्दू मिश्नरियों का प्रवाह चला जाय जितना कि ईसाई मिश्नरियों का प्रवाह अमरीका से भारत में आया है, तब इससे पता चल सकता है कि अमेरिका में कितनी सहनशीलता या सहिष्णुता है।

धर्म और समाज

किसी एक व्यक्ति के लिये एक धर्म को छोड़ कर दूसरे धर्म में जाने का अर्थ यह है कि वह अपनी परम्परागत जीवन-धारा को छोड़ कर तथा जिस वातावरण में वह जन्मा और पला है उसको त्याग कर दूसरी जीवन-धारा और वातावरण में प्रवेश करे। ऐसी दशा में अपने धर्म को छोड़कर जो मनुष्य दूसरे धर्म या मत में प्रवेश करता है, वह स्वयं को अपने समाज से बहिष्कृत करता है। यही कारण है कि आज तक ईसाइयत को भारत में एक विदेशी धर्म समझा जाता है, क्योंकि जो लोग ईसाई बना लिये जाते हैं उन पर विदेशी सभ्यता और संस्कृति अपना प्रभाव जमा लेती है।

यह कहना अत्युक्ति नहीं है कि जिन तरीकों से लोग ईसाई बनाये जाते हैं, वे भारतीय विधान में दी गयी धार्मिक स्वतन्त्रता और छूट का दुरूपयोग है।

सरगुजा जिले में सामूहिक रूप से जिस प्रकार लोगों का धर्म-परिवर्तन कराया गया है उसके सम्बन्ध में यह कभी नहीं कहा जा सकता कि वह धार्मिक स्वतन्त्रता के अन्तर्गत किया गया है। ऐसे सामूहिक धर्म-परिवर्तन की गांधी जी ने बहुत निन्दा की थी। इसे डा० स्टेंनले जोन्स ने भी बुरा माना था, क्योंकि इस प्रकार के धर्म-परिवर्तन से ईसाई बने हुए लोगों में किसी प्रकार का नैतिक अथवा आध्यात्मिक परिवर्तन नहीं दिखायी पड़ता था। डा० निकोल ने भी ऐसे सामूहिक धर्म-परिवर्तन के आन्दोलन को भारतीय चर्च के उत्थान में एक रोड़ा माना है। कई स्थानों पर जिस प्रकार मिश्नरियों का आन्दोलन चल रहा है, उसे देखते हुए यह स्पष्ट विदित होता है। कि यह धर्म-परिवर्तन का आन्दोलन एक राजनीतिक प्रयोजन से किया जा रहा है। यदि कोई कार्यवाही वास्तव में राजनीतिक हो किन्तु उसे धर्म के परदे के भीतर चलाया जावे, तो ऐसी गतिविधि किसी राष्ट्र की रक्षा के लिये खतरे से खाली नहीं कही जा सकती।

हमारी सिफारिश है कि जिन मिश्नरियों का प्राथमिक उद्देश्य धर्म-परिवर्तन है, उनको वापस भेज दिया जाय। विदेशी मिश्नरियों का देश के अन्दर बड़ी सख्या में आना उचित नहीं है। इसको रोकना चाहिये। कई एक देशों में, जैसा कि हम पहले उल्लेख कर चुके हैं, कुछ समय से इस सम्बन्ध में मिश्नरी लोग स्वयं यह सोचने लग गए हैं कि एक न एक दिन उन्हें यहां से वापस जाना ही पड़ेगा।

भारत में जो विदेशो से धन आता है उसके बारे भी विचार करना पड़ेगा। यदि विदेशी मिश्नरियों को वापस भी भेज दिया जाय और यदि चर्च की जो सम्पत्ति है वह भारतीय चर्च के नाम हस्तान्तरित भी कर दी जाय, तब भी समस्या हल नहीं होगी, जब तक कि बाहर से आने वाले धन पर कोई नियन्त्रण अथवा शर्त न लगायी जाये।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

क्योंकि यदि ऐसा नहीं होगा तो भारतीय चर्च सदा विदेशों के इशारे ही पर चलता रहेगा।

अस्पतालों और चिकित्सालयों का दुरुपयोग

जनता के धर्म-परिवर्तन के लिये अस्पताल और चिकित्सालय एक विशेष साधन रहे हैं। इन साधनों को धर्म-परिवर्तन के लिये उपयोग करने के सम्बन्ध में ईसाई लोग यह कहते हैं कि ईसा ने अपने शिष्यों को लोगों को शिक्षा देने तथा उनकी सेवा करने के लिये आदेश दिया था। परन्तु बाइबिल के वाक्यों कि इस प्रकार की व्याख्या न्याय-संगत नहीं है।

बात यह है कि अस्पताल और चिकित्सालय रोगियों को ईसाइ बनाने के लिये एक प्रलोभन का काम देते हैं। डा० थिरुमल्लई (सागर) ने, जो एक ईसाई हैं, कहा कि यदि कोई ईसाई डाक्टर अस्पताल में किसी रोगी के सामने ईसा को रखता है, तो इसमें कोई बुराई नहीं है।

परन्तु कानून की दृष्टि में डाक्टर और रोगी के बीच या वकील और उसके मुवक्किल के बीच या एक अध्यापक और उसके शिष्य के बीच जो सम्बन्ध है वह एक ट्रस्ट और ट्रस्टी का सम्बन्ध है और यदि कोई डाक्टर, वकील या अध्यापक रोगी, मुवक्किल और शिष्य पर प्रभाव या दबाव डालता है तो यह अनुचित करता है। इसलिये अस्पताल और चिकित्सालय के द्वारा ईसाई मत मत का प्रचार सर्वथा निन्दनीय है।

स्वयं गांधी जी ने भी अस्पतालों को धर्म-परिवर्तन के लिये उपयोग में लाने की निन्दा की थी। समाज के निर्बल और असहाय समुदाय की रक्षा करना सरकार का एक कर्तव्य है। इसलिये हम सिफारिश करते हैं कि अस्पताल, औषधालय तथा अन्य सेवा-सम्बन्धी संस्थाओं का धर्म-परिवर्तन के साधन के रूप में उपयोग कानून द्वारा बन्द कर दिया जाय।

स्कूल तथा शिक्षालय

स्कूलों के सम्बन्ध में यह स्पष्ट है कि रोमन कैथोलिक मिश्नरी गांवों में प्राथमिक विद्यालयों के द्वारा धर्म-परिवर्तन का कार्य करते हैं। उनकी योजना अगली पीढ़ी को अपने हाथ में लेने की है। हमारे सामने ऐसी बहुत सी शिकायत रखी गयी कि वे किन भिन्न भिन्न उपायों से प्राइमरी स्कूलों में छोटे छोटे बच्चों को अपने प्रभाव में लाते हैं। लूथरन मिशन स्कूलों का उपयोग केवल छोटे बच्चों को धर्मान्तरित करने में ही करते हैं। 'घरबन्धु' नामक ईसाई पत्र के मार्च १९५३ के अंक में पृष्ठ ८ पर लिखा है:—

"इस मिशन क्षेत्र का उद्देश्य यह है कि स्कूल द्वारा मसीह का प्रचार किया जावे।....."

हमारे विधान में एक स्पष्ट धारा इस आशय की है कि किसी भी विद्यार्थी को बिना उसके माता पिता और संरक्षक की विशेष अनुमति के किसी धर्म की कक्षा में उपस्थित होने के लिये बाध्य नहीं किया जा सकता। हम ने अपनी जांच के बीच यह मालूम किया है कि हमारे उक्त वैधानिक आदेश को सही तरीके से नहीं पालन किया जाता।

हमने यह भी पाया कि रोमन कैथोलिक चर्च श्रमिकों की भर्ती करता है और इसे उसने धर्म-परिवर्तन का साधन बना रक्खा है। हम सिफारिश करते हैं कि धार्मिक संस्थाओं को इस प्रकार के कार्यों से रोका जाय।

अनाथालय अल्प-वयस्कों के धर्मान्तर के लिये एक बहुत उत्तम क्षेत्र है। हम पहले ही लिख चुके हैं धर्म-परिवर्तन से किस प्रकार राजनीतिक उलझन खड़ी हो जाती है। अतः यह सरकार का प्राथमिक कर्तव्य है कि वह स्वयं अनाथालयों का संचालन करे। क्योंकि राज्य ही ऐसे नाबालिग बच्चों का वैधानिक रूप से अभिभावक है जिनके माता पिता, या अभिभावक नहीं हैं।

चूंकि हमारा कर्तव्य सरकार के सम्मुख अपनी सिफारिशें रख देने का है, हम केवल वही सुझाव रखेंगे जिन पर हमारी सरकार हमारे विधान के अन्तर्गत चल सकती है। परन्तु मिश्नरी समस्या से भारत में जो एक विशेष परिस्थिति उत्पन्न हो गयी है उसे दृष्टि में रखते हुए हम यह उचित समझते हैं कि मध्य प्रदेश में जो खास-खास मिशन संस्थायें कार्य कर रही हैं, उनके समक्ष भी कुछ सुझाव रखें।

भारतीय ईसाई बड़े उच्चस्वर से स्वतन्त्र भारत के

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रति अपनी निष्ठा (वफादारी) की घोषणा कर रहे हैं। रोमन कैथोलिक ईसाई इस सम्बन्ध में सबसे आगे हैं। फ़िर भी उनके प्रति सन्देह बना हुआ है। इसका कारण यह है कि भारतीय ईसाई विदेशी प्रभाव में हैं और पश्चिमी देश भारत को साम्यवाद से बचाने की चेष्टा में हैं। यदि रोमन कैथोलिक मिशन कांग्रेस सरकार का समर्थन करते हैं तो केवल इसलिये कि यह सरकार कम्यूनिस्ट-विरोधी है। ऐसा प्रतीत होता है कि भारत को कम्यूनिज्म से बचाये रखने के लिये रोमन कैथोलिक मिशन और अमरीकी धन के बीच एक अपवित्र सन्धि सी हो गयी है। हमारे राष्ट्रीय प्रयत्नों का जैसे हरिजन सेवक संघ द्वारा किये गये हरिजनों के प्रति सामाजिक और आर्थिक अन्याय को दूर करने के आन्दोलन का, कस्तूरबा ट्रस्ट के द्वारा स्त्री जाति की सेवा का, तथा राष्ट्रीय सरकार द्वारा समाज-कल्याण जैसे कार्यों की, मिशनरियों तथा भारतीय ईसाईयों द्वारा, उपेक्षा तथा विरोध यह संकेत करता है कि वे लोक कल्याण में रुचि नहीं रखते। उनका मुख्य प्रयोजन लोगों को ईसाई बनाना है। वर्तमान धर्म-निरपेक्ष भारत में अल्पसंख्यकों के लिये सबसे बड़ी सुरक्षा इसमें है कि वे बहुसंख्यकों की उदारता तथा शुभेच्छा में विश्वास तथा भरोसा करें। ऐसा करने में ईसाइयों की कोई भी क्षति की संभावना नहीं है। मध्य-प्रदेश में ईसाइयों के प्रति कोई भेद भाव नहीं है। वास्तविकता तो यह है कि वहां उन्हें अपनी संख्या के अनुपात से कहीं अधिक स्थान और नौकरियां आदि मिली हुई हैं। ईसाईस्थान या मसीहीस्थान की पुकार सर्वथा अविवेकपूर्ण और भयानक है। धर्म के नाम पर भारत का जो विभाजन हुआ और विभाजन के समय जो भयानक मारकाट हुई वह हमें अभी स्मरण है। अतएव देश की सुरक्षा और संगठन को जिस बात से धक्का पहुंचे, वह स्वतन्त्र भारत को सह्य न होगी। आज एक भारतीय चाहे वह उच्च वर्ण का हो अथवा आदिवासी, हिन्दू हो वा ईसाई, जिस का हृदय उन्नति की ओर अग्रसर होते हुए अपने देश के प्रति प्रेम और श्रद्धा से रहित है, वह अपने आप के प्रति ईमानदार नहीं है और देश-द्रोही है। हम ईसाइयत को भारत में सच्चे भारतीय रूप में और सच्चे ईसाई रूपमें देखना चाहते हैं। हम चाहते हैं कि भारत के सभी धर्म एक दूसरे के साथ सहयोग करते हुए राष्ट्र को उन्नति के मार्ग पर आगे ले चलें।

हम अपनी सरकार से सिफारिश करते हैं कि वह ईसाई मिशनरियों द्वारा संचालित संस्थाओं के अधिकारियों और प्रतिनिधियों के नाम तथा सर्व साधारण ईसाइयों के नाम एक अपील प्रकाशित कर उनसे कहे कि वे सब एकत्र होकर अपनी एक उत्तरदायी संस्था बनायें, जो सरकार को ईसाई धर्म-प्रचार के सम्बन्ध में अपनायी जाने वाली नीति तथा धर्म-परिवर्तन के लिये उपयोग में लाने वाले साधनों और उन प्रयत्नों को स्पष्ट करें, जो नागरिक अनुशासन, नैतिकता और स्वास्थ्य की दृष्टि से अनुचित न हों।

हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं कि कुछ लोगों में यह धारणा फैली हुई है कि भारतीय विधान की २५ वीं धारा के अन्तर्गत कोई भी व्यक्ति, चाहे वह विदेशी क्यों न हो और अस्थायी रूप से ही भारत में क्यों न रह रहा हो, उसको अपने धर्म के प्रचार का पूर्ण अधिकार है और इस अधिकार के अन्तर्गत उसको दूसरे लोगों को अपने धर्म में दीक्षित करने का अधिकार भी सम्मिलित है। यह बहुत विवादास्पद बात है कि धर्म प्रचार की जो सुविधा अथवा अधिकार दिया गया है उसमें दूसरे को धर्मान्तरिक करने का भी अधिकार सम्मिलित है या नहीं। हम यह आवश्यक समझते हैं कि इस बात को इस प्रकार अस्पष्ट या सन्दिग्ध नहीं छोड़ देना चाहिये। हमारी राय में विधान में संशोधन करके यह स्पष्ट कर देना चाहिये कि धर्म-प्रचार का अधिकार केवल भारतीय नागरिकों को दिया गया है। दूसरा संशोधन यह होना चाहिये कि दबाव, छलकपट या किसी अनुचित उपाय द्वारा किये गये धर्मान्तर को मान्यता नहीं दी जावेगी।

यह बात सदा से विवाद का विषय बनी हुई है कि ईसाई मत में धर्मान्तरित करने के लिये जो तरीके अपनाये जाते हैं, वे अनुचित हैं। हमें अपनी जांच से पता चला है कि ऐसे अनुचित तरीके व्यापक रूप से अपनाये गये हैं और ऐसे धर्म-परिवर्तन के उदाहरण तो बहुत ही कम हैं जो विश्वास और आत्म-प्रेरणा से हुए हैं। पहले

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

५९५ जयदेव आर्य

जो कुछ भी हुआ हो परन्तु हम नहीं चाहते कि इस सम्बन्ध का यह विवाद भविष्य में भी ऐसा ही बना रहे। इसलिये हमारी सिफारिश है कि जो धर्म-परिवर्तन अनुचित ढंग से होते हैं, उन पर उचित नियन्त्रण रखा जाय और यदि इसके लिये कानून का आवश्यकता हो तो कानून भी बनाये जांय। हमारी सम्मति में इस प्रकार के जो कानून बनें, उनके द्वारा उन समस्त धार्मिक संस्थाओं का रजिस्ट्रेशन अनिवार्य हो जाना चाहिये, जो धर्म परिवर्तन का कार्य करती हैं अथवा दूसरे धर्म के लोगों की सामाजिक सेवा के कार्य में लगी हुई हैं। ऐसी संस्थाओं की समस्त सम्पत्ति को एक पब्लिक ट्रस्ट के अधीन रखना उचित होगा और ऐसे ट्रस्टों को आदेश होगा कि वे अपना हिसाब-किताब एक नियमित ढंग से से रखें और उसकी बाकायदा जांच सरकार द्वारा नियुक्त चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट से करायें। उन्हें अपने आय-व्यय का हिसाब जनसाधारण की जानकारी के लिये भी प्रकाशित कर देना चाहिये। इसी प्रकार कानून द्वारा ऐसी भी व्यवस्था होनी चाहिये कि ऐसे गैर ईसाइयों की जो ईसाई धर्म के सम्बन्ध में जिज्ञासा रखते हैं अथवा जो ईसाई धर्म में दीक्षित हुए हैं, उनकी एक सूची उनके नाम पता सहित प्रति मास या तीन तीन मास पर सरकार के पास पहुँचनी चाहिये।

हम यह भी सिफारिश करते हैं कि किसी व्यक्ति को भी बपतिस्मा लेने अथवा देने की आज्ञा तब तक नहीं होनी चाहिये जब तक कि इसके बारे में स्थानीय तथा जिला बोर्ड ने सिफारिश न की हो और उस सिफारिश को प्रान्तीय बोर्ड का अनुमोदन न प्राप्त हो गया हो। इसी प्रकार बिना सरकारी बोर्ड की आज्ञा के कोई स्कूल और कोई अस्पताल इत्यादि भी नहीं खोला जाना चाहिये।

जितना शीघ्र हमारी सरकार अपना यह उत्तरदायित्व समझ लेगी कि परिगणित क्षेत्रों में बसने वाले लोगों में शिक्षा, स्वास्थ्य और औषधि आदि की व्यवस्था करना उसका ही कर्तव्य है, उतना ही शीघ्र अशिक्षित आदिवासी धर्मान्तर से बचाये जा सकेंगे। हम सिफारिश करते हैं कि सरकार एक ऐसी नीति निर्धारित करे कि जिससे इन क्षेत्रों में सामाजिक सेवाओं का उत्तरदायित्व स्वयं सरकार पर ही हो और ऐसी सेवायें शीघ्र से शीघ्र चालू की जांय। गैर-सरकारी संस्थाओं को केवल अपने धर्म के लोगों के लिये ही सामाजिक सेवा-संस्थाओं को चलाने की अनुमति दी जाय।

हम निम्नलिखित कुछ और भी सिफारिश करते हैं:—

१—किसी भी गैर-सरकारी एजेन्सी को यह आज्ञा नहीं होनी चाहिये कि वह बिना सरकारी अनुमति के बाहर विदेश से सहायता प्राप्त करे। विशेषज्ञ और प्रबन्धक के रूप में भी किसी विदेशी की नियुक्ति को विदेश से आने वाली सहायता का ही अंग समझा जाना चाहिये।

२—किसी भी विदेशी को स्वतन्त्र रूप से अथवा परिगणित क्षेत्र में कार्य करने का अधिकार नहीं मिलना चाहिए जब तब कि वह इस बात का लिखित रूप में आश्वासन न दे दे कि वह राजनीति में भाग नहीं लेगा।

——

अध्याय—३

संक्षेप में कमेटी की सिफारिशें

पिछले अध्याय में हमने जो सिफारशें की हैं, संक्षेप से निम्न प्रकार हैं:—

१—जिन मिश्नरियों का मुख्य उद्देश्य केवल धर्म-परिवर्तन ही है उन्हें वापस जाने के लिए कहा जाय। देश के भीतर विदेशी मिश्नरियों का बहुत संख्या में आना अवांछनीय है और इसकी रोक थाम होनी चाहिए।

२—भारतीय चर्च के लिये सबसे प्रथम मार्ग यह है कि वे भारत में एक संयुक्त स्वतन्त्र ईसाई चर्च की स्थापना करें, जो विदेश से आने वाली सहायता पर निर्भर न रहे।

३—ऐसी चिकित्सा-सम्बन्धी सेवाओं अथवा अन्य सेवाओं को, जो धर्म-परिवर्तन कार्य के लिये काम में लायी जाती हों, कानून द्वारा वर्जित कर देना चाहिये।

४—भारतीय विधान में बच्चों के लिये धार्मिक शिक्षा सम्बन्धी भी कुछ धारायें हैं, जिनके अनुसार बिना

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

माता, पिता अथवा संरक्षक की मर्जी के उनके बच्चों को धार्मिक शिक्षा देना वर्जित है। उन धाराओं को कार्यान्वित करनें के लिये शिक्षा विभाग को चाहिये कि वह तत्सम्बन्धी फार्म, इत्यादि तैयार करे और उनको सब स्कूलों में वितरण करें।

५—कोई भी ऐसी चेष्टा या प्रयत्न जिसके द्वारा दबाव से, छल-कपट से या अनुचित भय दिखा कर अथवा आर्थिक या दूसरी प्रकार की सहायता का आश्वासन देकर अथवा धोखा से या किसी प्रकार की साधारण या भौतिक सहायता का वचन देकर अथवा दूसरे व्यक्ति की अनुभव-हीनता या उसके विश्वास का अनुचित लाभ उठाकर अथवा किसी व्यक्ति की आवश्यकताओं, उसकी मानसिक दुर्बलता और मूर्खता का लाभ उठाकर और आम तौर से कोई भी ऐंसी चेष्टा और प्रयत्न चाहे वह सफल हुए हों वा असफल, प्रत्यक्ष रूप में हों अथवा अप्रत्यक्ष रूप में, जिनके द्वारा अन्य धर्म के किसी व्यक्ति के धार्मिक अन्धः विश्वास को (चाहे वह व्यक्ति प्रौढ़ हो वा कम आयुका) प्रभावित करने के लिये जानबूझ कर प्रयास किया जाय जिस से कि दूसरे धार्मिक विश्वास बदल जाय और जिससे कि उसकी धार्मिक मान्यतायें बदल कर धर्मान्तर करने वाले की ही भांति बन जायें, तो ऐसी चेष्टाओं को सर्वथा रोक देना चाहिए।

६—धार्मिक संस्थाओं को यह छूट नहीं होनी चाहिये कि वह चाय के बगीचों के लिये तथा अन्य कार्यों के लिये श्रमिकों की भर्ती कर सकें।

७—सरकार का यह प्रथम कर्तव्य है कि वह अनाथालयों का स्वयं संचालन करे, क्योंकि जिन नाबालिगों के माता, पिता या संरक्षक नहीं है, उनकी वैधानिक संरक्षक सरकार ही है।

८—सरकार को चाहिये कि वह बड़ी-बड़ी और प्रतिनिधि मिश्नरी संस्थाओं तथा समस्त ईसाइयों के लिए एक अपील निकाले कि वे सब एकत्र होकर अपनी एक उत्तरदायी संस्था स्थापित कर लें, जिनका कर्तव्य यह हो कि वह सरकार की सूचना के लिये अपनी नीति स्पष्ट शब्दों में निर्धारित करे कि मिशन और ईसाई लोगों को अपने धर्म के प्रचार में किस प्रकार कार्य करना उचित होगा, धर्म-परिवर्तन के लिये वे क्या क्या साधन काम में लायेंगे और अपनी धर्म-प्रचार सम्बन्धी गतिविधियां, नागरिक अनुशासन, नैतिकता और स्वास्थ्य को किसी प्रकार की हानि पहुंचाये बिना किस सीमा तक विस्तृत करना चाहेंगे।

९—भारतीय विधान में संशोधन की चेष्टा होनी चाहिये ताकि यह बात स्पष्ट हो जाय कि विधान में जो धर्म-प्रचार का अधिकार दिया गया है, वह केवल भारतीय नागरिकों के लिये ही है। परन्तु इसके अन्तर्गत धर्म-परिवर्तन के ऐसे मामले नहीं आते जहां धर्म-परिवर्तन दबाव, धोखा, छल-कपट अथवा दूसरे अनुचित उपायों से किया जाता है।

१०—जो धर्म-परिवर्तन अनुचित ढंग से किये जाते हैं, उन पर उचित नियन्त्रण रखा जाय और इसके लिये यदि कानून बनाने की आवश्यकता हो तो कानून बनाया जाय।

११—ऐसे गैर-सरकारी सलाहकारी बोर्ड प्रान्तीय स्तर पर, स्थानीय स्तर पर तथा जिला के स्तर पर स्थापित किये जांय, जिनमें अल्पसंख्यकों का जैसे आदिवासियों तथा हरिजनों का, प्रतिनिधित्व बहुसंख्या में हो।

१२—डाक्टर, नर्स तथा दूसरे व्यक्ति जो अस्पतालों में कार्य करते हैं उनके रजिस्ट्रेशन के सम्बन्ध में जो नियम कानून इत्यादि हैं उनका संशोधन हो जाना चाहिये और उनमें यह शर्त रख देनी चाहिये कि वे जब तक उक्त सेवा-कार्य के लिये वहां नियुक्त हैं, तक तक धर्म-प्रचार सम्बन्धी कार्यों में भाग नहीं ले सकते।

१३—धर्म-प्रचार के लिये जो भी साहित्य हो, वह बिना सरकार की अनुमति के वितरण नहीं किया जाना चाहिये।

१४—जिन संस्थाओं को सरकार की ओर से सहायता मिलती है अथवा जिन्हें सरकारी मान्यता प्राप्त है, उनका मासिक निरीक्षण सरकारी अफसरों द्वारा अवश्य होना चाहिये।

१५—सरकार एक ऐसी नीति निर्धारित करे कि

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आदिवासियों तथा परिगणित जाति के लोगों तथा पिछड़ी हुई जातियों के लिये समाज-सेवा सम्बन्धी कार्य जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा इत्यादि को सरकार स्वयं अपना उत्तर-दायित्व मानकर उक्त प्रकार की सेवायें वहां शीघ्र से शीघ्र चालू करे। उन क्षेत्रों में ऐसी जो गैर-सरकारी संस्थायें हों उन्हें केवल अपने धर्म के लोगों के बीच ही सेवाकार्य करने की अनुमति दी जाय।

१६—राजकीय स्तर पर सांस्कृतिक तथा धर्म-सम्बन्धी कामों के लिये सरकार की ओर से एक पृथक् विभाग स्थापित होना चाहिये, जिसका सम्बन्ध उपरोक्त बातों से हो। ऐसा विभाग एक मन्त्री के आधीन होना चाहिये और वह मन्त्री परगणित जाति अथवा दूसरी पिछड़ी जातियों में से हो तथा उसके आधीन कार्य करने वाले विशेष रूप से इस कार्य के लिये शिक्षा-प्राप्त व्यक्ति होने चाहियें।

१७—किसी गैर-सरकारी सस्था को यह आज्ञा नहीं होनी चाहिये कि वह बिना सरकारी स्वीकृति के विदेश से किसी प्रकार की सहायता प्राप्त करे।

१८—किसी भी विदेशी को स्वतन्त्र रूप से अथवा किसी धार्मिक संस्था के सदस्य होने के नाते, परिगणित अथवा वहिष्कृत क्षेत्र में कार्य करने की अनुमति नहीं दी जाय जबतक कि वह लिखित रूप से यह आश्वासन न दे दे कि वह राजनीति में भाग नहीं लेगा।

१९—गैर सरकारी अथवा धार्मिक संस्थाओं के पास यदि कोई सामाजिक और आर्थिक उत्थान का कार्य-क्रम हो तो उसको सब से पहले सरकारी अनुमोदन मिलना चाहिये।

पढ़ने एवं प्रचार योग्य ट्रैक्ट

मूल्य -) प्रति, ४) सैकड़ा

१ मनुष्य बन
२ गायत्री माता
३ ईश्वर सिद्धि
४ आस्तिक ना० संवाद
५ पितृ श्राद्ध विचार
६ सुख का साधन
७ ईश्वरोपासना
८ कल्याणी बन
९ आर्यों का आदि देश
१० धर्म और अधर्म
११ स्वामी श्रद्धानन्द
१२ तत्ववेत्ता दयानन्द
१३ पण्डित लेखराम
१४ सीता माता
१५ गो माता
१६ दयानन्द दिग्विजय
१७ चोटी का महत्व
१८ गुरु बिरजानन्द
१९ मांस खाना छोड़ दो
२० मर्यादा पुरुषोत्तम राम
२१ देश सुधार होली
२२ मूर्ति पूजा विचार
२३ भक्ति के लाभ
२४ आर्यसमाज के उद्देश्य
२५ वेद माता
२६ श्रद्धा माता
२७ धरती माता
२८ धर्म की रक्षा करो
२९ मनुष्य के कर्तव्य
३० भजन सत्संग
३१ वेदभाष्य का महत्व
३२ गोपाल दयानन्द
३३ भक्तिवाद की रूपरेखा
३४ वैदिक भक्तिवाद
३५ अंग्रेजी शिक्षा से हानि
३६ सत्य की महिमा
३७ आ.स. उन्नति साधन
३८ श्यामाप्रसाद मुखर्जी
३९ वैदिक काल में बंदूक
४० पतिव्रत धर्म
४१ ब्राह्मण समाज मूर्तिपूजा
४२ ईश्वरोपासक दयानन्द
४३ ईश्वरावतार
४४ कर्मयोगी कृष्ण
४५ ईसाईयों का षड़यन्त्र
४६ सामाजिक व्यवहार
४७ शिक्षा का उद्देश्य
४८ ब्रह्मचर्य
४९ वर्ण व्यवस्था
५० कर्म व्यवस्था
५१ वेद ज्ञान
५२ तुलसीरामायण आस.
५३ ईश्वरावतार
५४ मुर्दा क्यों जलावें
५५ दयानन्द का उद्देश्य
५६ दयानन्द का लक्ष्य
५७ ब्राह्मण समाज मृतक श्राद्ध
५८ श्रेय और प्रेय
५९ सच्ची पूजा
६० झांसीवाली रानी
६१ महर्षि दयनन्द के सिद्धांत
६२ जीवन की समस्याओं का समाधान
६३ देवताओं की कहानी
६४ रोटी और कपड़ा
६५ धूम्रपान
६६ सिनेमा और हम
६७ दयानन्द कौन
६८ कृण्वन्तों स्वयमार्यम
६९ चाय भयंकर विष
७० मुझे मेरा धर्म क्यों प्यारा है
७१ ईश्वर में अविश्वास क्यों
७२ चरित्र निर्माण
७३ नास्तिकों को सन्देश

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अष्टाध्यायी के सूत्रों की व्याख्या

अष्टाध्यायी प्रकाशिका

ले०—श्री ब्रह्मदत्त जिज्ञासु के शिष्य श्री देवप्रकाश पातञ्जल शास्त्री एम० ए०

सूत्रों की व्याख्या करके इस प्रकार समझाया है कि वेद, उपनिषद् गीता रामायण आदि धार्मिक ग्रन्थों के पढ़ने के अभिलाषी व्यक्तियों को प्रतिदिन एक घंटा मात्र परिश्रम से ६ मास में व्याकरण का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त होता है। अष्टाध्यायी के सूत्रों के पढ़ने के प्रकार पर हिन्दी में २० व्याख्यान हैं जिनमे ४ व्याख्यान साधारण संस्कृत सीखने के लिए हैं। मूल्य ५।।।) डाक खर्च १।=) अलग।

हिन्दू संगठन क्यों और कैसे ?

ले०—अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी

भूमिका ले०—प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति

हिन्दू संगठन के बिना देश जाति और धर्म की रक्षा करना कठिन ही नहीं असम्भव है। जब देश के चारों ओर विरोधियों का मोर्चा लगा हुआ है, ऐसे समय में संगठन का रूप क्या हो, अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द के विचार पढ़िये और प्रचार करिये। १२० पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य २) से घटा कर प्रचारार्थ १) कर दिया है, शीघ्र मंगावें। ५ प्रतियों से अधिक मंगाने पर डाक खर्च मांफ।

उपनिषद् आर्य भाष्य

ले० स्व० पं० आर्यमुनि महामहोपाध्याय

इस उपनिषद में आरम्भ के आठ उपनिषदों का भाष्य है। मन्त्रों का पद पदार्थ तथा भावार्थ दिया गया है। सजिल्द ७०० पृष्ठों का ग्रन्थ मूल्य ६) मात्र।

संस्कार विधि विमर्श

ले०—अत्रिदेव गुप्त भिषगरत्न

चिकित्सा प्रजनन और प्रजाशास्त्र के आधार पर संस्कार विधि की व्याख्या। मूल्य ३)।

स्त्रियों का स्वास्थ्य और रोग

ले०—अत्रिदेव गुप्त भिषगरत्न

संतति नियमन आदि विषयोंके साथ साथ दैनिक शारीरिक शिकायतों की रोग और चिकित्सा के रुप में सरल और प्रामाणिक पुस्तक मूल्य ३)।

कर्तव्य दर्पण

ले०—स्वा० महात्मा नारायण स्वामी

इस में आदर्श चर्या क्या हो, ब्रह्मचर्य का महत्व एवं स्वास्थ्य पालन के नियम प्राणायाम विधि, नैमित्तिक पाठ योग्य सन्ध्या और हवन मन्त्र अर्थ सहित महर्षि दयानन्द जी की जीवनी, आर्य समाज का जन्म, विस्तार, कार्य एवं नियमोपनियम ईश्वर भक्ति के भजन आदि ५० विषयों का समावेश है, सजिल्द जेबी साइज मूल्य ।।।=)
सुनहरी जिल्द १।)

लेखक की अन्य पुस्तकें

आर्य समाज क्या है	।।)
प्राणायामविधि	।)
सन्ध्या रहस्य	।=)
यज्ञ रहस्य	।=)
पाप पुण्य	।।)
विद्यार्थी जीवन रहस्य	।।=)

बहिनों की बातें

ले०—श्री सिद्धगोपाल साहित्य वाचस्पति

इस में वैदिक सिद्धान्तों से सम्बन्ध रखने वाले अनेक विषयों पर वार्तालाप के रुप में सरल रीति से सब के समझने योग्य बातें हैं। मूल्य १।)

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क, दिल्ली।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्वाध्याय योग्य उत्तम साहित्य

गायत्री रहस्य [महात्मा प्रभु आश्रित]	२)	दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह पूर्वार्द्ध	२॥)
ओंकार निर्णय [शिवशंकर काव्य-तीर्थ]	१॥)	दर्शनानन्द ग्रन्थ सं० उत्तरार्द्ध	२॥)
योगासन [गणेशदत्त इन्द्र]	१॥)	विश्व विज्ञान परमात्म बोध [स्वामी ब्रह्ममुनि]	=)
वैदिक प्रार्थना [प्र० ले० स्वामी वेदानन्द]	१॥)	यवन मत समीक्षा [पं० लेखराम]	१॥)
बहनों की बातें [पं० सिद्धगोपाल]	१।)	अनुराग रत्न [नाथूराम शंकर शर्मा]	२॥)
ईश्वरीयनियम मनुष्य धर्म	॥=)	यज्ञोपवीत मीमांसा [विश्वनाथ शास्त्री]	॥।)
सन्ध्या विनय [पं० नित्यानन्द वेदालंकार]	॥)	आर्यसमाज का इतिहास [पं० हरिश्चन्द्र विद्या०]	१।=)
प्रार्थना प्रदीप [पं० नित्यानन्द वेदालंकार]	॥)	वैदिक आर्य पर्व पद्धति	।=)
दयानन्द चित्रावली	२।)	वैदिक भक्ति स्तोत्र	१।)
भारतीय संस्कृति के तीन प्रतीक	॥)	अखंड भारत [चन्द्रगुप्त वेदालंकार]	॥।)
वेद परिचय [स्वामी वेदानन्द]	।=)	स्वास्थ्य विज्ञान [चन्द्रभानु शर्मा]	।-)

स्वामी दयानन्द	।=)	आर्य सिद्धान्त दीप	१।)
स्वामी श्रद्धानन्द	।=)	गीत श्रद्धांजलि	१)
पं० लेखराम	।=)	ब्रह्मचर्य जीवन	।=)
म० हंसराज	।=)	नास्तिक वाद	॥)
गुरुधाम एकांकी	॥)	सामवेद शतक	॥=)
बाल शिक्षक	।=)	विदुर धर्मोपदेश	=)
गृहस्थाश्रम	॥=)	विचारमाला उर्दू	॥)
वैदिक धर्म शिक्षा	=)	मांस मदिरा निषेध	=)
सामाजिक पद्धति	।=)		
सत्य हरिश्चन्द्र	१)		
गीता वचनामृत	=)		
गायत्री व्याख्या	।)		

विवाह और विवाहित जीवन

लेखक—गंगा प्रसाद उपाध्याय

आधुनिकता के रंग में रंगा हुआ व्यक्ति विवाह के उद्देश्य के सम्बन्ध में घने अन्धकार में भटक रहा है। उसे प्रकाश दिखाने व शंकाओं का निवारण के लिए प्रस्तुत पुस्तक लिखी गई है। विवाह और विवाहित जीवन के जितने पहलू हैं उन सबका ही इस पुस्तक में समावेश है। आधुनिक तथा प्राचीन दोनों ही दृष्टिकोणों से उन पर विचार करते हुए बड़े बड़े पाश्चात्य एवं पौर्वात्य ग्रन्थकारों की सम्मितियों के प्रकाश में विषय का प्रतिपादन किया है। पुस्तक विवाह आदि अवसरों पर भेंट देने योग्य है। —मूल्य २)

ऋग्वेद रहस्य

ले०—अलगुराय शास्त्री

वेद ज्ञान प्राप्त करने के लिए अपूर्व पुस्तक मू० ५)

सत्यार्थप्रकाश शंका समाधान		।)
दयानन्द और वेद [अरविन्द घोष]		।)
गोरक्षा परम कर्तव्य [पं धर्मदेव]		॥)
आदर्श सुधारक दयानन्द [देवेन्द्रनाथ]		॥=)
वीर बच्चों की कहानियां [नन्दकुमार देव]		॥।)
आर्य सत्संग गुटका	।-)	२५) सैं०
दैनिक यज्ञ प्रकाश	-)॥	६) सैं०
वैदिक सन्ध्या जपजी	=)	८) सैं०

स्वा० दयानन्द कृत लघु पुस्तकें

आत्म कथा ।=) व्यवहार भानु ।) पंच महायज्ञ विधि ।) स्वीकार पत्र -)॥ आर्योद्देश्यरत्न माला -) भ्रमोच्छेदन ।) स्वमन्तव्य प्रकाश -)॥ आर्याभिविनय ॥) भ्रान्ति निवारण ।=) हुगली शास्त्रार्थ ।) वेद विरुद्धमत खंडन ।=) वेदान्ति ध्वान्त निवारण =) शिक्षा पत्री ध्वान्त निवारण ।=) ऋग्वेद के प्रथम सूक्त का भाष्य ।

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क, दिल्ली। जयदेव आर्य

श्री गोविन्दराम हासानन्द सम्पादक मुद्रक और प्रकाशक ने जयदेव शर्मा प्रेस देहली में छपवाकर 'वेदप्रकाश' कार्यालय नई सड़क देहली से प्रकाशित किया।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

५९५. (VI)

OM

The Universality of the SATYARTH PRAKASH

WHY WAS SATYARTH PRAKASH WRITTEN?

In Maharshi Dayanand's own words rendered into English by Dr. Chiranjiva Bharadwaj.

"My Chief aim in writing this book is to unfold truth, which consists in expounding truth as truth and error as error. The exposition of error in place of truth and of truth in place of error does not constitute the unfolding of truth"

"To speak of, to write about and to believe in a thing as it is constitutes truth. He that is prejudiced tries to prove that even his error is truth, while the truth of his religious opponent is error. He can not therefore know what true religion is. Hence this alone is the bounden duty of truthful and learned men to unfold the right nature of truth and error before all men, by writing or by lecturing, who after having ascertained what promotes their welfare and what is prejudicial to their interests, should embrace what is true and reject what is false and thereby enjoy happiness. Though the human soul possesses the capacity for ascertaining truth, yet through self interest, obstinacy, wrong headedness, ignorance and the like, it renounces truth and inclines towards untruth. But I have not done such a thing in writing this book, nor has it been my object to hurt any one's susceptibities or harm any one. On the other hand, my aim has been to further the advancement and good of mankind; and to help (all) men in the ascertainment of truth whereby they could embrace the truth and reject falsehood, because there is certainly no other way of elevating the human race."

"I have incorporated into this book whatever is true in all religions and is in harmony with their teaching, but I have refuted whatever is false in them. I have exposed to the view of all men learned

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

or otherwise, all evil practices whether resorted to secretly or openly. This will help them all to mutually discuss these things and lovingly embrace the one true religion. Though I am born in Aryavarta (India) and still live in it, yet just as I do not defend the evil doctrines and practices of the religions prevailing in the country, on the other hand, I expose them properly, in like manner, I deal with the alien religions. I treat the foreigners in the same way as my own countrymen as far as the elevation of the human race is concerned. It behoves all men to act likewise. Had I taken up the advocacy of one of the prevailing religions of India, I would have done the same as the sectaries of the present day do viz; praise and defend and preach their own religion and decry refute and check the progress of that of others. But such things are beneath the dignity of man.

The perusal of this book will help men to sift truth from error and to embrace the former and renounce the latter. It does not become wise men to mislead people. I place this work before all men in the hope that they will embrace the truth and make my labour fruitful. I consider it the first and the foremost duty of men to publish the truth without fear or favour. May the Omniscient, Omnipresent, Supreme Spirit through his Grace diffuse this spirit and give it permanency".

(Satyarth Prakash or the Light of Truth-Introduction.)

"The object aimed at by this criticism is to contribute to the elevation of the human race and to enable all men to sift truth from falsehood, by giving them some idea of the teachings of the various prevalent religions, as this will afford them opportunities for friendly discussions—so useful in helping men to point out their defects and to appreciate their merits.

It is not our purpose to falsely condemn this (Mohammedanism) or any other religion. On the contrary, what we aim at is that whatever is true should be recognised as such and what ever is false should be condemned as such, so that no one should be in a position to palm off untruth for truth or hinder the progress of truth. One is of course free to accept truth or for the matter of that even refuse to do so after it has been published; compulsion being impossible in such matters. Good men will, as a rule, after they have realised their merits and demerits, imbibe good qualities and reject bad ones and eradicate bigotry

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

and prejudice whereever found. Who does not know something of the prodigious amount of evil that has been wrought by bigotry? The truth is, that it is unworthy of a human being to injure others and throw away his own chance of happiness in this uncertain and transient life. In case the good reader comes across, in this criticism, anything contrary to facts, it is hoped, he will point it out and we shall make the suggested changes, if called for, since this criticism is designed to diminish bigotry, obstinacy, jealousy, malice, hatred and love of useless wrangling and not to promote them. It is our first and foremost duty to avoid injuring others and to further the well-being of each other. We lay this criticism on the Mohammedan religion before all lovers of truth, in the hope that they, after having gone carefully through it, accept what appeals to their reason and common sense and discard what is repugnant to them.

(Satyarth Prakash—Chapter XIV. Introduction.)

POPULARITY OF THE SATYARATH PRAKASH.

Immortal Work of Maharshi Dayanand Saraswati.

Tables showing its translation in various languages

Original Satyarth Prakash in Hindi.

Edition	When Published	Publisher	No of Copies.
No. 1	1875	Raja Jai Kishana Das at Star Press Benares.	1000
,, 2	1884	Paropakarini Sabha, Vedic Press Allahabad.	2000
,, 3	1887	,,	3000
,, 4	1892	Vedic Press Ajmer.	5000
,, 5	1897	,,	5000
,, 6	1902	,,	5000
,, 7	1905	,,	5000
,, 8	1908	,,	5000
,, 9	1909	,,	6000
,, 10	1911	,,	6000
,, 11	1913	,,	6000
,, 12	1914	,,	6000
,, 13	1916	,,	4000
,, 14	1917	,,	6000
,, 15	1922	,,	5000
,, 16	1924	,,	5000

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Edition	When Published	Publisher	No of Copies.
„ 17	1924	Vedic Press Ajmer.	10000
„ 18	1925	„	5000
„ 19	1926	„	15000
„ 20	1926	„	20000
In Special edition of Rishi Dayanand's Works			10000
„ 21	1927	„	20000
No. 22	1928	„	25000
„ 23	1933	„	20000
„ 24	1934	„	20000
„ 25	1935	„	20000
„ 26	1943	„	20000
„ 27	1944	„	20000
„ 1	1924	Shri Govinda Ram Hasananda ji	6000
„ 2	1932	„	5000
„ 3	1934	„	2100
„ 4	1936	„	2100
„ 5	1937	„	2100
„ 6	1939	„	2200
„ 7	1941	„	2200

Language	Edition	When Published	Publishers	No of Copies.
Hindi	No. 1	1933	Arya Sahitya Mandal Ajmer	25000
„	„ 2	1937	„	21000
„	„ 3	1939	„	21000
„	„ 1	1936	Sarvadeshik A. P. Sabha, Delhi	10000
			Total No. of copies Published in Hindi.	388700
Sanskrit	1	1925	Translated by Pt. Shankar Devaji and Published by the Sarvadeshik Sabha	3000
English translation (The Light of Truth.)				
English	1	1906	Translator The late Dr. Chiranjivaji Bharadwaj	1000
„	2	1915	Published by U. P Arya Pratinidhi Sabha,	5000

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Language	Edition	When Published	Publishers	No of Copies.
English	3	1915	Published by Shri Satya Vratji & Dr. Satya Kamji Bharadwaj	5000
,,	4	1927		2000
,,	4	1932	Arya Samaj Madras	2000
,,	1	1908	Master Durga Prasad ji Ed. Harbinger Lahore	1800
				16800

Urdu Translation

Urdu	1	1899	Punjab Arya Pratinidhi Sabha Lahore	7000
	2	1901	,,	5000
	3	1907	,,	5000
	4		Master Lakshman ji	10000
	5	1923	M. Rajpal ji	5000
	6	1925	,,	5000
	7	1927	,,	5000
	8	1928	,,	5000
	9	1929	,,	10000
	10	1930	,,	10000
	11	1939	Punjab Arya Pratinidhi Sabha	2000
	12	1943	,,	5000
				74000

Urdu translations of the Satyarth Parkash Published by L. Jivan Das ji Pensioner, B. Naunihal ji, Shri Lajpat Rai Sahni and Mehta Radha Krishna ji. 25000

Urdu	1943	Published by Arya Pradeshik Sabha Lahore	5000
	1944	,, ,,	5000
			109000

Bengali Translation.

	Translator	Publisher	
Bengali 1	A Bengali resident of Ajmer	Paropakarini Sabha Ajmer	2000

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Language	Edition	When Published		Publishers	No of Copies.
Bengali	2	1911		Pt. Shankarnath ji President Arya Samaj Calcutta Bharat Sinha Press.	1000
"	3	1926		Arya Samaj Calcutta Shri Dhar Press	3000
"	4	1934	Shri Din Bandhu ji Veda Shastri	Shri Govinda Ram ji	1500
					7500
			Sindhi Translation		
Sindhi	1	1912	Shri Jivan Lal Arya		2000
	2	1937		Sindh Arya Pratinidhi Sabha, Karachi	3000
					5000
			Marathi Translation		
Marathi	1	1904	Pt. Shri Pad Damodar ji Satavalekar		2000
"	2	1925		Aryasamaj Kolhapur	2000
"	3	1933		"	5000
"	4	1937		"	7500
					16500
			Gujrati Translation		
Gujrat	1		Pt. Maya Shankar ji Sharma		1000
"	2		"	Arya Pratinidhi Sabha Bombay	1000
"	3	1926		" "	5000
"	4	1927		" "	5000
"	5	1928		" "	1000
"	6	1937		" "	5000
"	7	1937		" "	20000
				" "	1000
					39000
			Kanarese Translation.		
Kanarese		1932	Pt. Bhaskar Pant Subba Narsimha Shastri	Arya Samaj Bangalore City	2000

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Language	Edition	When Published	Publishers	No of Copies
Malayalam	1933		Published by Arya Samaj Calicut	2000
		Tamil Translation		
1	1925		Translated by Shri Jambu Nathan	2000
Tamil 2	1935		Published by Arya Samaj Madras	2000
				4000
	1915	Telegu Translation.		
1	1932		Translated by Pt. Soma Nath Rao ji and Published by Arya Samaj Sultan Bazar, Hyderabad (Deccan)	1000
				3000
2	1945		,, ,,	3000
				7000
		Uriya Translation.		
1	1927			2000
2	1937			2000
				4000
		Gurumukhi Translation.		
1	1898		Published by Arya Pratinidhi Sabha Punjab, Lahore	2000
2	1912		,, ,,	2500
				4500
1	1936	Nepali Translation		1500
		French Translation.		
1	1938		Published by Punjab Arya Pratinidhi Sabha Lahore. Under the supervision of Dr. Satya Ketu ji Vidyalankar	2000
		German Translation.		
1	1930		Published by the Punjab Arya Pratinidhi Sabha Under the supervision of Dr. Daulat Ram Deva	2000

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Language	Edition	When Published	Publishers	No. of Copies.
Satya Sagar		Translation in Hindi Poetry by Shri Gada Dhar Prasad ji Vaidya.		
1	1926	,,		2000
2	1928	,,		2000
3	1980	,,		2000
4	1938	,,		4000
			Total	10000
			Grand Total	624500

Enlightened Muslims on the 'Satyarth Prakash'.

The late Moulana Mohammad Ali M.A.:—

The following are extracts from the article written by the late Maulana Mohammad Ali M.A. in his paper 'Hamdard' of 29-2-1925 in connection with the agitation set on foot by Abdul Gaffoor for the proscription of the Satyarth Prakash.

"The Satyarth Prakash is the master piece of Swami Dayananda who is regarded as a great Guru (Preceptor) of the Aryas. No man is held by Aryas in such great esteem as Swami Dayananda. They have the highest regard for him in the whole world. Similarly they have the greatest respeet for his masterpiece—the Satyarth Prakash and regard it as a holy scripture. No Government can proscribe it and face the disastrous consequences that would follow such an un-wise step. Why should the Government turn such a powerful organisation as that of Aryas into their enemies without any just cause ?

In this way by giving expression to an unreasonable, and unnecessary desire, the Hindu Press has been practically invited to carry on similar agitation for the proscription of the Holy Quran.

Accordingly a Hindu journalist has written recently that it is not the Satyarth Prakash but the Quran which has brought with its advent an era of Roits and bloodshed in India."

(Maulana Mohammad Ali's article in the Hamdard dated 9th February 1925).

Mirza yakub Beg ex-Secretary Anjumane Ahmedia Ishayat Islam wrote as follows in the Arya Gazette Lahore in February 1920.

"Swami Dayananda was indeed a kind friend of the Musalmans, for he alone is a true friend who tries to bring his friend to the right path by pointing out his weaknesses and short comings.

Maulana Morad Ali Ajmeri gave expression to his ideas about Swami Dayananda and the Satyarth Prakash in the following glowing terms :—

Great personalities like Swami Dayananda are not born in the world again and again. Their memory will ever remain green, in the hearts, and books not only of the Aryas, but of Englishmen, Jews and Mohammedans alike till the the day of Judgement. Besides the Aryas, all nations will continue to be irrigated by this fountain of benevolence (Satyarth Prakash) till eternity."

(Kohinoor 3-11-1883).

Chandra Printing Press Delhi.

Price One Anna.

Publisher: International Aryan League, Burn Bastion Road, Delhi.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

५१५

विश्व हिन्दू परिषद् हरियाणा

(१९७५ ई० तक ईसाई मिशनरी का काम भारत भर में)

विदेशी ईसाई देशों के पादरी देशों की सं० ५४ देशों के

विदेशी पादरी संख्या	९७२७
भारतीय पादरी संख्या	५४००० पुरुष
भारतीय पादरी संख्या	२५००० महिला
भारत में गिरजे	२४४९४
प्राथमिक विद्यालय	७३७९
माध्यामिक स्कूल	१७४०
उच्चतर मा० स्कूल	१२३४
कालेज	१०८
छात्रावास	६५२
हस्पताल	११९६
अनाथालय	६८८
सन १९७२ तक ईसाई जनसंख्या	७५ लाख
सन १९७२	दो करोड़

२६००० वर्गमील क्षेत्र ईसाई प्रभाव में है।

संयुक्त राष्ट्र के अनुसार भारत में सन् २००० ई० तक हिन्दु अल्प संख्यक हो जायें गे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विश्व हिन्दू परिषद्

स्थापना

विश्व हिन्दू परिषद् की स्थापना विक्रम संवत् २०२१ में कृष्ण जन्माष्टमी के पवित्र सुअवसर पर ३० अगस्त १९६४ को बम्बई में हुई।

उद्देश्य

हिन्दू समाज को संगठित तथा शक्तिशाली बनाने का प्रयत्न करना आध्यात्मिक और नैतिक हिन्दू जीवन मूल्यों का संरक्षण संवर्धन तथा प्रसार करना। अन्य देशों में रहने वाले हिन्दू बान्धवों के साथ सम्पर्क स्थापित करना, उनको सुदृढ़ बनाना तथा उनकी सहायता करना।

सदस्यता

भारत में उत्पन्न हुए आध्यात्मिक और नैतिक सिद्धान्तों पर विश्वास करने वाले अथवा उनके प्रति आदर रखने वाले अथवा उन का अनुसरण करने वाले सभी व्यक्ति हिन्दू हैं तथा वे सदस्य बन सकते हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विश्व हिन्दू परिषद् हरियाणा

(१९७५ ई० तक ईसाई मिशनरी का काम भारत भर में)

विदेशी ईसाई देशों के पादरी देशों की सं० ५४ देशों के

विदेशी पादरी संख्या	९७२७
भारतीय पादरी संख्या	५४००० पुरुष
भारतीय पादरी संख्या	२५००० महिला
भारत में गिरजे	२४४९४
प्राथमिक विद्यालय	७३७९
माध्यामिक स्कूल	१७४०
उच्चतर मा० स्कूल	१२३४
कालेज	१०८
छात्रावास	६५२
हस्पताल	११९६
अनाथालय	६८८
सन १९७२ तक ईसाई जनसंख्या	७५ लाख
सन १९७२	दो करोड़

२६००० वर्गमील क्षेत्र ईसाई प्रभाव में है।

संयुक्त राष्ट्र के अनुसार भारत में सन् २००० ई० तक हिन्दु अल्प संख्यक हो जायें गे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विश्व हिन्दू परिषद्

स्थापना

विश्व हिन्दू परिषद् की स्थापना विक्रम संवत् २०२१ में कृष्ण जन्माष्टमी के पवित्र सुअवसर पर ३० अगस्त १९६४ को बम्बई में हुई।

उद्देश्य

हिन्दू समाज को संगठित तथा शक्तिशाली बनाने का प्रयत्न करना आध्यात्मिक और नैतिक हिन्दू जीवन मूल्यों का संरक्षण संवर्धन तथा प्रसार करना। अन्य देशों में रहने वाले हिन्दू बान्धवों के साथ सम्पर्क स्थापित करना, उनको सुदृढ़ बनाना तथा उनकी सहायता करना।

सदस्यता

भारत में उत्पन्न हुए आध्यात्मिक और नैतिक सिद्धान्तों पर विश्वास करने वाले अथवा उनके प्रति आदर रखने वाले अथवा उन का अनुसरण करने वाले सभी व्यक्ति हिन्दू हैं तथा वे सदस्य बन सकते हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

492

Bharat Kalyan
Vartta

Monthly bulletin July 1978

The Government of Andhra Pradesh is reputed to be very much friendly towards the Christians than many of the other Indian State Governments.

Catholic India Yesterday & Today

(Page 56)

By:-Fr. F. A. Plattner, S. J.

A Village Social Worker Slain by Fanatic Christians

Garu (Bihar)

Fanatic Christian missionaries are becoming violent day by day in this region and are retaliating mercilessly against the peace loving Hindus. Some shocking incidents have unearthed recently in this behalf, which can speak well for the prevalent situation there.

At the Village Ahirpurva of Mahuatand block of the Palamau district, 42 Christian families returned to Hindu fold in Nov.1977. Local missionaries did not like it and caused murder of Shri Ram Krishan Gupta, a leading social worker of that area on 19-1-1978 at 8 A.M. as he was instrumental in the above home coming ceremony. His family members including womenfolk were beaten mercilessly and his property looted. Now the murderers are threatening the life of the deceased's son, Shri Balicharan. One local Roman Catholic Missionary Shri Godencius Kangari warned the deceased prior to the attack that they (Roman Catholic Missionaries) would turn this land into another Nagaland and whosoever might come in their way would be wiped out.

Again on 26th January, 1978 when local patriotic citizens objected to the display of the tricolour, our national flag with faint colours, by the local Roman Catholic Missionaries, one local worker Shri Uma Shanker Mishra, who strongly objected to such unpatriotic act, was attacked by a missionary named Shri Lawrence at 2 P. M. at the local playground even in the presence of local government officials.

Similarly, after home coming ceremony, Hindus in the village Ahirpurva, constructed a small worshipping pedestal, with a red flag of Lord Hanuman installed over it. But on 6th February, 1978, the local Christians demolished the worshipping Place and snatched away the flag.

The absence of timely action by our Government against the offenders belonging to minority community due to the secular Government policies, also sometimes abet such Christian misdeeds and in future, precautionary steps must be taken by the local authorities to stop their recurrence.

We pay our homage to the martyrdom of Late Shri Ram Krishan Gupta, who sacrified his life for the cause of *Dharma*.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

It is the wealth of Hari Nama,
And the wealth of loving Service,
Grow ye in the service of love,
And share all you have with those in need!

Guru Nanak.

"Give, Give, I have only one tongue; but if I had a million tongues, with every one of those million tongues, I would still utter the one word. Give! Give!

Your treasure, sons of the sages of the East is not your bank accounts or cash certificates, not your silver, nor your gold. Your treasure is the treasure of your heart. Give! Give! Give! the wealth of your heart, your loving service, the wealth of your dedicated life—For in agony is the world."

—Sadhu T. L. Vaswani.

Doing anything to promote the well-being of the Nation is serving the Cosmic vowers, Devas or gods. The kind of sacrifice or Yagna is to be offered to the diety, India (Bharat Mata). It is to this kind of Yagna that the following verse of the GITA applies in these days :—

"The righteous, who eat only the remains of the sacrifice, are freed from all sins but the impious, who dress food for their own sake, they verily eat sin."

Swami Ram Tirtha.

Gandhi spoke to the people in their own language—in the language of the Bhagavad Gita and the Ramayana.

—Subhash Chandra Bose.

If Vivekananda is the name of your Society, you dare not neglect India's teeming millions. What vain gods shall we go after and yet cannot worship the God that we see all-around the Virat? The first of all worship is the worship of Virat, of those all around us. These are our gods—men and animals—and the first gods we have to worship are our countrymen.

—Mahatma Gandhi.

M/s. Punjabi Chandu Halwai Karachiwala

Head Office : 185, Walkeshwar Road, Teenbatti, Bombay—400 006.
Grams : Chandumewa.

Established 1896.

BRANCHES.

1. Zaveri Bazar
2. Grant Road
3. Colaba
4. Dadar T.T.
5. Worli
6. Sion Circle
7. Thakurdwar
8. Akbarally's Fort
9. Suryodaya Stores, Churchgate,
10. Ghatkoper (West)
11. Linking Road, Bandra
12. Opposite Railway Station Santa Cruz (West)

Factory . "Chandu Bhavan", Grant Road, Bombay - 400 007

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Editorial

Hindus in Kashmir Valley

Why should poor Hindus be dragged from their houses, and beaten brutally by fanatic Muslims apparently demonstrating against the Death-sentence passed against Mr. Bhutto of Pakistan?

This is what actually happened at Dacca on 12th, 19th and 23rd March. It is stated that police and other authorities watched this inhuman and unwarranted attack on helpless Hindus as amused witnesses.

It is also further stated that the Muslim goondas did not stop at that, and also threw stones at schools of Bhadrawah, and threatened and abused the Hindu teachers.

The indifference of District bureaucracy in protecting the lives and property of Hindus of Bhadrawah was truly shocking. May we request the authorities concerned to take suitable action against the guilty officials immediately, so that the local Hindus may feel secure and the secular image of our country remains untarnished?

The day is not far off when Hindus throughout the country will have to resort to direct action, in case the higher authorities also remain pathetically indifferent to the sufferings of the innocent Hindus.

* * *

Congratulations!

We Congratulate the Government of Arunachal Pradesh for its courageous step for enacting the law to ban forcible conversions. It has acted rightly and in time to save the age old tribal faith of its citizens.

Editor's mail

Sir,

I am distressed to bring to the notice of the all concerned, the plight of a dedicated worker, our Com-patriot.

Shri. Ajit Kumar Harshedrai Mehta, who has a Master's degree in Engineering & who hails from a jain family of Vasad in Kaire Distt, Gujarat, was Converted to Christianity through the efforts of Shri Maharaj Singh, Ex–Governor of Bombay. He received the Bachelor of Divinity in U. S. A. was hosted as a Bishop in Fiji, Newzealand & Phillipines etc. He worked for 15 years with the church but later on renowned christianity in utter frustration.

Today he is living in a Zopadpatti in Bombay. He has been attacked twice by Christian Missionaries, as he declined to hand over them the secret documents about the role of the Church. In Calcutta, he was burnt & his wife, who was pregnant. was manhandled & miscarried.

A muslim gentlemen from Delhi ridiculed Shri. Mehta for becoming a Hindu and he lured him to Join Islam brotherhood, so that the world realise the beauty of Islam.

Mr. Mehta was in railway service, but he was thrown out of it due to Christian Missionaries propaganda. It appears that fanatic Christians are after his life.

Hindu Society, owes a duty to Shri. Mehta. We should save him and promote the cause, which he is fighting incessantly.

Yours etc.

Anandpriya
Hindu Dharma Rekshak
Prasarek Mandal, Vadodara.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

In the main stream

Forced Conversions Condemned

"The Christians of India are the children of Mother India, and they are certainly not wanting in patriotism.

I condemn forced conversions. Such conversions were done by the Portuguese, particularly by their merchants. There were an unpardonable injustice."

—Fr. F. C. S. Monis of Roman Catholic Church of Kerala

Symbol of harmony

A shrine of Shri Durga Parmeshwari at Bapanad (Mulki) in the District of South Kanara in Karnatak State has lived to the test of time as a symbol of communal harmony. Hindus & Muslims worship the temple alike. This temple was constructed 8 centuries ago by a mulsim trader and muslims are still cooperating in its management.

Nagaland :

India is our Country & Nagaland our state . We stand for building a prosperous Nagaland within the great India

Aliba Imti, Chief of
United Democratic Front

Catholics For National Integration

Over 20 national minded Roman Catholic Religious and Priests have founded a new association Bombay at named "Catholics for National Integration" in order to bridge the gap between Catholics and Non-Catholics.

History Testifies

The invasion of Islam into India

Maharaja Dahir was the ruler of Sindh when Mohammed Ibne Kasim moved to attack during 7th Century. He had recruited into his army some Mohammedins who had fled from their country and had taken refuge in his kingdom. Raja Dahir commanded Mohammed Varis, the army chief to fight a battle against Mohammed Ibne Kasim. But he refused to fight against him since he had secret allegiance to Mohd. Ibne Kasim. He told the king that there was no need to encounter the movement of Mohammedins. Let them reach the capital town then we will wage an attack and kill them. Raja Dahir believed his army chief and neglected to take proper measures against Mohammedins invasion.

In the meantime, the Mohammedins approached the capital without any hindrance. Raja Dahir again commanded the army chief to counter the attack of Mohammedins atleast then but he refused to do so and said that his religion did not allow to attack on them because they too were Mohammedins. After that he went and joined Mohammed Ibne Kasim alongwith all Mohammedin soldiers shouting the slogan of Allah-ho-akbar. This joint army waged an attack on the fort and captured it. Though Raja Dahir had lost his hands and legs, owing to the betrayal of his army chiefs, even then, he came out of the fort to fight out Mohammedins with 10 thousand cavalry, 20 thousand soldiers and good number of wild elephants, despite of his old age. But he could not succeed and was killed. Afterwards, the Sumra Rajput fought bravely and drove the Mohammedins our of Sindh.

From the Book—"KHOONI ITIHAS"

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

FOCUS

Recently Bombay Christian Society arranged a function to felicitate George Fernandes, The Union Industries Minister & Shri. F. M. Pinto, the Janata Party M.L.A. of Maharashtra. In his presidential speech Cardinal Gracias cautioned them to remember that they were Christians first & foremost and any thing else afterwards.

* * *

Mr. Mukhtar Ahmed, General Secretary of the U. P. State Muslim League has demanded Vatican Status for Aligarh Muslim University.

* * *

The German Catholic funding agency MISEREOR distributed 155.9 million DM in 1976 in third world, out of this huge sum, 52.9 million DM were received by it from govt. assistance. German govt. appears alert to its duty to promote its national religion even with Govt. money.

* * *

A survey report says that the States of Madhya Pradesh, Uttar Pradesh, Bihar and Maharashtra have given a lead in crimes in the country.

* * *

Shri. E.M.S. Nambudiripad, General Secretary, C.P.M. says that Nirankari set has contacts with foreign elements.

* * *

Mr. Abdussattar Y. Shaikh, Secretary of the All India Muslim Personal Law Board said in Bombay on 6-7-78 that any attempt to interfere with Muslim personal Law would be difinitely opposed by these who professed Islam in this country and abroad.

* * *

Five offenders who looted the pilgrims near Laxman Jhoola on May 29, have been released by the police, even though, all the culprits had been identified by the victims.

* * *

The Catholics of Pune have resented over the resolution of congratulation passed by Pune Municipal Corporation in favour of Brahmachari Vishwanathji of Masurashram, Bombay, who caused reconversion of 225 people to Hindu fold.

(What a childish instance for their intolerance)

* * *

Mr. V.R. Krishna Iyer, Supreme Court judge has expressed his views to amend Muslim personal law for abolishing polygamy that leads to easy divorce. He says that Prophet neither permitted polygamy nor sudden divorce. The learned Judge proves that in the Koran there are no direct and logical sanctions to divorce. It can be sought on some reasonable grounds. He suggests to hold Parliamentary lobby for amending Muslim Personal law.

Truth Unmasked :

Smt. Indira Gandhi, Ex. Prime Minister remarked on 23-12-1977 during a New Delhi function that Christianity could flourish in India because Indians always showed their traditional tolerance and large hearted attitude towards it.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

The Burning Question

Alarming Facts about Present day Kerala.

1. According to the census report of India, 1971, Hindus formed only 59.45% of the State population, while the combined number of Muslims and Christians was 40.55% at that time. Today after seven years the Hindu population may not be more than 55% and by the end of the next decade, Hindu may be completely in minority in that land of Jagadguru Adi Shankaracharya.
2. Muslims registered a growth rate of 37.49% during the last decade while Hindus could increase @ 23.35% only in Kerala.
3. Out of the eleven districts, following four districts are already having Hindus in minority :—

Mallapuram	34.08%
Ernakulam	46.13%
Kottayam	48.64%
Iddikki	40.00%

4. The Muslim majority district of Mallapuram was carved out of *amalgamation* of the border areas of the adjoining Kozhikode and Palghat Districts in the year 1969.
5. Similarly Christian Majority district of Iddikki was formed by merging the border areas of Kottayam and Ernakulam districts four years back.
6. In all these districts, Hindus have to depend upon the mercy of their Muslim and Christian employers, thus leading a life of humiliation.
7. In 1954, Roman Catholic Church had only eleven diocese in Kerala, but today they are having 19 and in Kottayam District alone, they have 5 such dioceses. This is very alarming.
8. Today Christians have 12617 preachers, 4192 Churches or Missions and 3292 Institutions, there. Similarly Muslims have 13840 full timers 12840 mosques (big and small) and 3680 Institutions.
9. Muslims and Christians have been categorised as "backward classes" and as such they are consuming 90% quota, while Hindus have to be contented with remaining 10% seats and jobs.
10. 6000 Arabic teachers, having no adequate qualifications have been drafted into the Government jobs. They are all working for the promotion of Islam.
11. The funds, granted by the Government of India to the State Government for the promotion of oriental studies etc. are diverted towards Arabic and Persian at the cost of Sanskrit studies.
12. Nearly 20 poor Hindu servants have been pressurised to accept Islam by their Muslim employers during one year in Mallapuram District. Exploiting the poverty of Hindus, girls, widows, mothers and children are being duped and converted by Muslims.
13. Huge foreign funds from Muslim and Christian countries are pouring into Kerala to convert it into their stronghold. Today Northern Kerala is under Muslim influence while southern Kerala is dominated by Christian influence.
14. Three Dewasom Boards, nominated by the State Government, are controlled by Non-believer politicians, hence the State controlled Hindu Temples do not contribute to the promotion of Hindu Dharma, which is the primary function of Temples everywhere.
15. Land belonging to Temples are taken over by the Government and subsequently it is utilised for non religious purposes.
16. Since Communists, Muslims or Christians yield influences in the State Government, it does not promote studies in Sanskrit and Indology etc., as they consider them against their ideology.

(*Continued on page* 8)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Their view Point

The Hindu elite

The attack on Hinduism by the foreign missionaries went on right through the British rule and created a class of Indians who began to hate and ridicule Hinduism with all their heart. The rapid spread of the so-called "English" education encouraged the growth of missionary educational Institutions which enticed the Hindus to educate their children in these schools and colleges. The psychological effect of these Institutions on educated Hindus was disastrous. Students emerging from them were more than seventy five per cent Christians and were Hindus only in name. They became totally ignorant of their religion and were apologetic, if not positively ashamed of even calling themselves Hindus. All they knew of Hinduism were some meaningless rituals performed at the time of marriage, birth and death. No wonder this growing class of rootless Hindus who manned the top echelons of administration, political power and other positions of authority in India attacked their own Hinduism and favoured Christians and their Institutions.

Young India weekly, Shillong.

Nation of hypocrites

What a nation of hypocrites we are ! So many high-sounding and noble sentiments about Ahimsa & the sanctity of all life—and underneath so much callous indifference to suffering. A great deal of militant noise has been made through the years by ban-the-cow-slaughter groups on religious, moral and ethical grounds. State after State has brought in legislation prohibiting the killing of cows and the eating of beef.

The Perspective

The majority of people are lopsided in their mental development. An all-rounder is rare to be found.

An all-round development of man constitutes three factors. Efficiency is the first factor. Man must be able to translate into action what he finds good. He must love all beings since they are of the same origion. This is the second factor. He must be able to understand the truth governing existence. This is the third and final factor.

—Swami Chidbhavanand.

And yet what do we find in actual fact? When we are not simply turning out all our surplus cattle to die slowly of starvation on the streets, we are exporting them in large numbers to countries in West Asia, where they are butchered and converted into beef. If this is not the height of sophistry I should like to know what it is? Have we heard slogans against the exporting of cattle to other countries? Has a single voice been raised —apart from animal welfare organisations—to stop this cruelty? And cruelty it undoubtedly is.

—Opinion weekly, Bombay.

HINDU PROCESSION

Uptil now musalmans were taking objection to Hindu processions with music before the mosques. Now they are opposing Hindu processions through public streets in the muslim locality. To what extent the communal spirit and anti Hindu bias has developed in the muslim minds can be ascertained from the incident, occurred at varanasi on October, 23, 1977. When the immersion procession of Goddess Durga was attacked by Muslims while it was passing through the public streets of their locality.

Hindu Sabha Vaarta Weekly, Delhi.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

B. K. M. March

Bharat Kalyan Manch has completed one year of its existence. The annual report is under compilation.

In April 78, Bhai Des Raj, Org. Secretary of B.K.M. led a delegation consisting of Rev. Fr. C. Rodrigues, Rev. Dr. Diniz (Representing Fr. Agnel Ashram), Dr M. Menezes, (General Secretary of Christian Freedom Fighters Forum) to the Capital, New Delhi.

The delegation met all the top parlimentarians and acquainted them with the latest developments regarding the harassment to a group of over 20 national minded priests and religious by the Church hierarchy.

In May 78, Shri Sadajiwatlal, Honorary Treasurer of B. K. M. addressed one all India gathering of workers at Delhi and exhorted them to unearth the fanatic activities in this ancient land.

In June 78, Shri Bhai Des Raj, the organising secretary of B. K. M. paid a visit to Punjab, Haryana & Himachal Pradesh & addressed a number of meetings at various places. He also met Ministers, M.Ps. & M. L. A.s & solicited their cooperation for the B. K. M. cause.

B. K. M. has issued an appeal to all M. L. A. s of our various states to safeguard the fundamental right of freedom of conscience of our illiterate masses through the enactments in the light of the latest supreme court's Judgement.

B. K. M. has also published a 10 page brochure in English on the above subject, which contains full information & history of this vital issue of national importance.

Edited, Printed & Published by :
Sadajivatlal Chandulal Bahl, For Bharat Kalyan Manch
185, Walkeshwar Road, Teenbatti, Bombay 400006.

Printed at : Vijay Corporation, Ideal Industrial Estate
Lower Parel, Bombay 400 013.

(*Contd. from Page* 6)

Similarly other Government benefits are taken away by so called minorities, while Hindus suffer badly.

17. Education and Cultural Affairs Departments of the State are always administered by Muslim or Christian Ministers. So the cause of Indian culture is always neglected in these fields.

18. National leaders like Jagadguru Adi Shankaracharya do not find any place in State policies due to Government's apathy to Hindu cause. Kaladi, the birth place of this Great Acharya, can be the meeting ground of followers of Vedant from the whole world. But it is being neglected.

19. All the three Universities of the State may be freed from the influence of the State Education Minister who acts as Pro-Chancellor of all these Universities, resulting into the negation of freedom, from the clutches of the State Government, which all the Universities in our country enjoy today.

20. Unless our Union Government does something hurriedly to restore confidence among Hindus in Kerala, the very existence of Hindus is in danger there.

To.....

.....

.....

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

५९५

Bharat Kalyan Vritta

Official Organ of Bharat Kalyan Manch, Bombay

Vol. 1 April, 1978 No. 4

In this issue :

§ They Want Christianistan 1
§ Sacrifice of cows (H. H. Agakhan) 3
§ Screen Foreign Missionaries in India 4-5
§ Conversions through Faith-cure 7
§ Gandhiji & a Christian Missionary 8

They Want 'CHRISTIANISTAN' from NAGALAND to NAGPUR via chhota Nagpur

•

CIA–TRAINED FOREIGN MISSIONARIES ON WARPATH

•

When will the authorities wake up from their deep Slumber ?

•

Bhai Desraj

An On—the—spot and revealing study by Bhai Des Raj, Org. Secretary, Bharat Kalyan Manch, Bombay.

•

It is shocking; yet it is true ! The notorious CIA has now ganged up with Foreign Missionaries operating in Central and Eastern India to cast the menacing shadow of the CIA-CROSS over Central and Eastern India. The are doing their worst to make their sinister dream of creating a CHRISTIANISTAN in the heart of India, from 'Nagaland to Nagpur via Chhota Nagpur' come true in the near future.

The ramificatons of the secret link of the CIA with Foreign Missionartes were revealed to the auther when he recently went on a tour of Sitagarha (Hazaribagh) in Bihar on the invitation of the terrified inhabitants of Sitagarha and the adjoining areas.

This revealing eye–witness report is being published in the hope that it would help open the eyes of Janata Govt. who claims to rule the country according to the precepts of Gandhiji, who had once said, "If Jesus come to Earth again, He would discover many wrong things that are being done in the name of Christianity." —Editor

(Continued on Page 6)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Don't falsify the scriptures of Vedas etc. The liar is he who does not ponder over the writings contained therein. If you profess that God is omnipresent, why do you kill a hen ?

— Guru Nanak, Holy Granth (pp. 1350)

You slaughter the creatures and you say that you have performed a religious deed, then what will the definition of aum be ? And if you consider yourself a saint who will be the butcher ?

— Guru Nanak, Holy Granth (pp. No. 3)

On account of their mutual opposition the Hindus and Mohammedans began to fight. The former killed the swine whereas the latter slaughtered kine. Both of them were guilty of sacrilege, as the slaughtered animals could not be revivied. In the court of God both are suffering severe punishment.

— Guru Nanak Devji.

In after putting this sacred thread on, one performs irreligious deeds, if he perform violence only for sake of money should he be called a Brahman or butcher ?

—Guru Nanak Devaji.

Don't cut the throat of others so mercilessly; because one day, your own neck will also be cut by the Divine sword.

—Guru Gobind Singhji

Why should you call me to account for eating decently ? If I fattened on the scorched corpses of innocent beings, you might well ask me why I did that ?

I need say nothing about my having been a vegetarian for over 70 years. The results are before the public.

— George Bernard Shaw.

To a man whose mind is free, there is something even more intolerable in the suffering of animals than in the suffering of men. For with the latter, it is least admitted that suffering is evil and that the man who causes it is a criminal. But thousands of animals are uselessly butchered every day without a shadow of remorse.

If any man were to refer to it, he would be thought ridiculous. And that is the unpardonable crime. That alone is the justification of all that is the men may suffer. It cries vengeance upon the whole human race.

—Romain Rolland

'He prayeth best who loveth best
Birth man and bird and beast.....
For the dear God who loveth us
He made and loveth all."

—— Samuel Taylor Coleridge, English Poet (1772—1834)

"Among the noblest in the land—
Though he may count himself least
That man I honour and rever
who without favour, without fear
In the great city dares to stand
The friend of every friendless beast."

—— Henry Wordsworth Longfellow, American (Poet : 1810-82)

PUNJABI CHANDU HALWAI Karachiwala

Head Office :— 185, Walkeshwar Road, Teenbatti, Bombay-400 006.

Grams : "CHANDUMEWA"

Established : 1896.

BRANCHES.

1. *Zaveri Bazar*
2. *Grant Road*
3. *Colaba*
4. *Dadar T. T.*
5. *Worli*
6. *Sion Circle;*
7. *Thakurdwar;*
8. *Akbarally's, Fort;*
9. *Survodaya Stores, Churchgate:*
10. *Ghatkopar West;*
11. *Linking Road, Bandra;*
12. *Opp: Railway Station; Santacruz west.*

Factory :— "Chandu Bhavan;" Grant Road; Bombay—400007.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Sacrifice of Cows is not enjoined in Muslim Religion

The late H. H. The Aga Khan

Cow killing has unfortunately been a perpetual source of bitter feeling between Hindus and Muslims. It is incumbent of us all to find a remedy. It may help us to do this if we trace the origin of sacrificial rites. We are all agreed that we celebrate the historical sacrifice by Ibrahim. But it must be remembered that Ibrahim, one of our great prophets, did not sacrifice a cow. Nor is the sacrifice of a bovine especially enjoined in our religious books. How many of our Hajis have sacrificed cows in Arabia, the house of Islam, and if they have not done so, have they disregarded any injunctiing of their religion ?

All of you, I am sure, will give an emphatically negative answer to this query. Then why do we view the question from a different angle in India ?

The Emperar Babar who was the greatest monarch of his age enjoined his son Humayun to respect the religious sentiments and even the prejudices of the Hindus and he specifically mentioned the cow as an animal venerated in India. The Ameer Habibullahkhan who was a good Muslim, discontinued the sacrifice of cow. If other Muslim leaders share their views they will certainly not be acting against the Islamic injuction.

The Kashmiri Muslim adheres tenaciously to the injunction of Islam and he knows that killing is not one of the tenets of our religion. You no doubt know our religious dictum that the flesh and blood of animals do not reach God. This is a humanitarism view entirely in accord with our conception of the duty and his creation.

I am open to be enlightened on this point by our ulemas, but I am certain that not one of them will countenance the parade of sacrificial rites in public places. There are many other communities who eat beef but they do not hurt the susceptibilities of their neighbours by parading the sacred and adored animals for slaughter.

In the light of these facts, which I have mentioned, it is a matter for your serious consideration when we should re-examine our views on this particular form of sacrifice and test its true significance. If by doing so we can re-adjust our relations with our Hindu friends, we shall indirectly render a service of incalculable value and importanc to the cause of peace and prosperity and even perhaps satisfactory political re-adjustment.

(*Courtesy: The Agakhan and his Ancestors; A Biographical and Historical Sketch by Nooroji M. Aumasia, Bombay. Times of India Press 1930 editon; Page* 108—109.)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

SCREEN FOREIGN

Bharat Kalyan Manch depreciates the order

BHARAT KALYAN MANCH depreciates the order issued by the Archbishop of Bombay, Valerian Cardinal Gracias to Rev. Fr. C. Rodrigues, Fr. J. Pereira, Fr. F. X. Diniz, Fr. Proto Rodrigues and seven other nationalist priests, withdrawing their priestly faculties.

The order is clearly meant to punish them, not for any religious lapse, but for the courage with which they have espoused national interests in the struggle of Liberation of Goa from colonial rule and in the issue of pre–notification in the appointment of Bishops through foreign influence. There were proposals for a long time for a new agreement with the Vatican, to replace the Concordat between the Vatican and Portugal that regulated matters relating to the Church in India.

Vocal nationalist sections in the Church have been demanding such an Agreement in order to ensure that the important posts in the Church should be held by Indian Nationals and to screen the Church personnal coming to India, in view of the CIA disclosure that American and local missionaries have been used for intelligence gathering. It is also necessary that the Government of India should clear bishops before their appointment by the Vatican, since with large amounts of foreign money coming in, they could be capable of great mischief.

The Catholics are the only minority, today, with the exception of the Orthodox Syrian Christians, whose Church appointments are made abroad.

Even under the draft agreement, suggested by the nationalist Catholic priests, the appointment will continue to be made by the head of the Church, while the Government reserves to itself the sovereign right of an independent Nation to prevent the appointment of any Church leader known to have acted against the interests of the nation or of holding anti—national sentiments.

SECULAR FUNCTIONING OF THE CHURCH

The "pre – notification" that the nationalist priests have demanded is only in respect of Church appointments and such other matters not directly connected with faith and morals. i. e. purely secular functions of the Church. According to the latest norms laid down by the Church for the selection of candidates, even lay people and lay organizations are being consulted in the matter of appointment of Bishops.

Such exercise of power by the State is also essential in view of the extensive contacts with the people, the Church has built up through educational and charitable institutions and also its links with Christian countries of Europe and America and the immense resources that are channelised through them.

The hierarchy and heads of Catholic Institutions today, have a tendency to

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

MISSIONARIES IN INDIA

issued by the Archbishop of Bombay.

the line of western interests. The agreement seeks to put an end to foreign interference in the affairs of the Church in the guise of religion.

Every important country, Catholic and Protestant and even non—Christian and communist countries like Tunisia, Jugoslavia etc. have agreements with the Vatrian.

Fr. C. Rodrigues has a commendable record as a nationalist and freedom fighter in Goa. He was hounded out of Goa by the Portuguese in 1954 and had to seek shelter in Bombay. He established in 1957, the Fr. Agnel Ashram at Bandra, a big complex of welfare and educational activities, comprising an orphanage and technical institutions and a Junior Technical College. He is the Re–Organizer of the Society of Pilar, This is one of the few Indian Orders both in origin and ideals and with headquarters in this country.

UNDUE FOREIGN ECCLOSIASTICAL INFLUENCE

Many important members of this Society including Fr. C. Rodrigues have played a a significant role in rescuing the Indian Church organisations from undue foreign ecclesiastical influence.

A section in the Church recently sought to dislodge him and his colleagucs from the Fr. Agnel Ashram. The Charity Commissioner over ruled such attempts by the "pro—Western" section in the Church to oust Fr. Rodrigues, on December 20, 1977.

The members of the Society were recently banned by the Superior of the society of Pilar, from meeting any civil authorities directly or indirectly, or any intermediary or official. Fr. Rodrigues himself was transferred to Goa and the General Chapter of the Society inflicted on him a penal precept under threat of severe canonical penalties and even dismissal from the Society in September 1977, for exercising his patriotic duties.

The present order issued by the Archbishop of Bombay, attempting to virtually suspend Fr. Rodrigues his collegues from priestly functions is an outragous affront to human dignity and independence of thought in the Church. It is equally an affront to the sovereign State of India that a section of Churchmen who demand the independence of the Indian Church from undue foreign influence, without of course, snapping its ties with the Universal Church, and from foreign money should be so subjected to indignities and haressment.

PROVIDE ALL PROTECTION TO FR. RODRIGUES

BHARAT KALYAN MANCH therefore calls upon the Government of India and the Government of Maharastra to provide all protection to Fr. Rodrigues and his colleagues, and to ensure that they are not victimised under foreign influence, for exercising their fundamental patriotic duties and that the Government of India should assert its inherent sovereign right to screen the activities of foreign missionries in India.

The Manch throws its weight in suppor of Fr. Rodrigues and calls upon all like—minded individuals and organisations to support the nationalist priests in the Church.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Religious training Centre or a Centre for molesting poor and helpless girls?

(Contd. from Page 1)

What I saw and witnessed in Sitagarha and Garu with my own eyes, during my recent study-tour, can only be described as an highly explosive and dangerous situation, which, I am sure if not tackled urgently and effectively, will have dangerous repurcusions for our beloved country —Bharat.

Make no mistake about it. The nation can ignore the growing menace of these missionaries entirely at its own peril. Let the glaring and sordid facts speak for themselves.

Sitagarha (Hazaribagh) in Bihar has been a big centre for the conversion activities of the Foreign Missionaries since 1934. About 200 christians are trained here in four centres every year.

Strangely, there are 4 training centres, two for males and two for females. There is lot of corruption in these centres. One of the centres run by males, where only girls between the ages 16 and 20 are recruited, has become a centre for molesting these poor and helpless girls. Many cases of rape and kidnapping have been reported.

One Padari, Rev. Martin Khalkho of this centre ran away with a working girl named Mamun Nisha on 19th November, 1977. Similiar activities of other 'Missionaries' like Rector Francis Mathias, Vincent Bara and Brother Yunus have already come to light, but, unfortunately, no action against them has been taken so far.

The centre has grabbed 200 acres of fertile land belonging to poor villagers, with the connivance of local authorities. Our secular Govt., who believes in withdrawing the facilities of poor Harijans, after they become christians, extends such facilities to Adivasis after they have embraced Christianity.

Hundreds of neo-Christians of Sitagarha Daltonganj, Mahuatand and Garu and other places, who again wish to become Hindus are threatened with the attack of 10,000 Adivasis using deadly arrows from their bows. They are also beaten mercilessly, their houses are looted and womenfolk raped. Many such persons have recently been mercilessly killed, looted and beaten at Garu Village Palamau Distt. in Bihar

FRAUD

The foreign missionaries beg for free money, medicines, clothes, wheat and other articles from different western countries for the avowed purpose of distributing them among the starving Indians, after mis—appropriating a considerable percentage of such money and articles, distributed them only to such persons as are willing to become Christians. Hundred of such examples were narrated to me.

They also misguide the innocent and illiterate people by naming their conversion centre as "Ashrams" and "Gyanmata Sadans" etc.

On behalf of Bharat Kalyan Manch, Bombay. I demand that :

1 The Govt. should acquire all the centres of the christians and hand them over to the Agriculture Dept.

2 The Govt. should distribute all the money and other articles received gratis from the foreigners though Govt. or through such private agencies as really believe in humanitarian work.

3 The Govt. should expel all foreign missionaries forthwith, as they have also started harassing a group of over 25 nationalist priests, as is proved by the treatment meted out by them to the Fathers of Fr. Agnel Ashram, Bandra, Bombay.

THERE IS NO TIME TO LOSE: THE NATION IS IN SERIOUS PERIL.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Continuing the old game of Conversions to Christianity by fraud

CONVERSION through FAITH—CURE

□ K. P. R. Nair

(Courtesy : Charity)

The slowly-steadily increasing crowd of bishops who have spread throughout the world as Faith cure masters and psychic surgery specialists, the recruitment of leading members of the medical profession from all over the world to testify to the miraculous faith cures and surgeries, the enrolment of authors, journalists and writers to tell blatant lies about these activities, the selection of camera men, Philipanian television programmers, film producers and the like to fake impressive pictures to convince people, the multitude of books and plethora of articles in the world press respectively, projecting the image of the crucifix and its wonders, the spirit of Jesus and its miracles, the production of movies like "The Road" and "The Exorcist" and others with similar themes and all other propaganda machinary set in motion just before and after World War II—all these are the net results of the machivella an machinations of the billionaire church.

BUNGLE IN INDIA

The attempt to bring Rev. Taylo to Bombay and arrange for his programmes throughout the country, however, misfired. Rev. Taylo, of course, was brought at an alleged cost of Rs. 40,000 to Bombay, went to Gujarat, but his further programmes had to be scrapped in panic-stricken hurry. Why ?

That Dr. Datey was caught on the wrong foot was because of the bungling of Bro. Parmar and company, including one Dr. Bhosle and his man Friday B. B. Jayakar.

It happeed this way: After minting fortunes for more than 25 days with hocuspocus demonstrations Rev. Taylo was than taken to Maharashtra Chief Minister Vasantrao Patil.

He was some how relieved, albeit warily, but the spectacular publicity which followed about the "miraculous surgery" on the C. M. Shri Vasantrao Patil created a situation which brought into the picture thousands upon thosands of suffering people with stack of currency notes in their pockets, and also investigative reporters including this writer. Then the racket was unmasked and everything ended. And incidentally where is Rev. Taylo now ?

WHY ALL THIS ?

Why did the billionaire church under take the Himalayan task ? Catholic religion with its dogmas, and Christianity as a whole, was losing its entrenched positions in the West. Writings of rebel priests and Jesuits, the furore about celibacy and birth control and above all the questioning of the very base of the religion by uncompromising philosophers like Bertrand Russel and others of his eminence, the birth of the Beatles and later on the Hippies, the work of Indian Yogis, Hare Krishna Movement, the preachings of the Ramakrishna Missions throughout the world, "blasphemous films" on Jesus Christ like "Jesus Chris Super-star" where Jesus was portrayed as a befuddled mystic, "Godspell" in which Jesus was depicted as a crucified clown, and the film "Passover Plot" wherein he was painted as a charlatan — all these were responsible for the rapid decline of Christianity in the West.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

GANDHIJI AND A CHRISTIAN MISSIONARY

"The greatest trouble with us is", said Gandhiji, "not that a Christian missionary should rely on his own experience, but that he should dispute the evidence of a Hindu devotee's life. Just as he has his spiritual experience and the joy communion, even so has a Hindu."

The Missionary said, "The Church at home would be happy if through our hospital more people would be led to Christian lives."

Gandhiji "But whilst you give the medical help you expect the reward in the shape of your patients becoming Christians."

The Missionary, "Yes, the reward is expected. Otherwise there are many other places in the world which need our serv But instead of going there, we come here India)."

Gandhiji, "There is the kink. At the b of your mind there is not pure service for sake, bnt the result of service in shape many people coming to the Christian fold. The kink in the Church thinking that there people in whom certain things are lacking, a that you must supply them whether they wa them or not. When you say to your patie "How nice it would be if you had the sa faith in Christianity as I have,' you do make of your medicine a free gift."

SHUDDHI MOVEMENT OPEN THE DOORS

The ever spreading Shuddhi of moveme has already opened the doors. Hinduism every convert to Christianity.

Subscription Rates

INLAND

Single Copy	Rs.	00–50
Annual	Rs.	5–00
5 years	Rs.	22–00
Life	Rs.	111–00

FOREIGN (by Air Mail)

Annual	$ 2	15s
5 years	$ 14	£ 4
Life	$ 70	£ 17

Edited, Printed & Published by: Sadajivatlal Bahl, 185, Walkeshwar Road, Teenbatti, Bombay 400 006.

Printed at Dnyanmudra, Royal Industrial Estate, Wadala, Bomcay 400 031.

BHARAT KALYAN VRITTA

If undelivered please return to:

BHARAT KALYAN MANCH

185, Walkeshwar Road, Teenbatti, Bombay 6

To.....

.....

.....

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

५१५

भारत कल्याण

भारत कल्याण मंच का मासिक बुलेटिन

अप्रैल, १९७८

—इस अंक में—

* गोहत्या का कलंक १
* नागालैण्ड से नागपुर तक 'क्रिश्चियानिस्तान' की स्थापना (भाई देशराज) ३
* कुमारजीव ४
* 'आमेन' ॐ का ही अपभ्रंश ५
* भारत मेरा शरीर है! (स्वामी रामतीर्थ) ७

गोहत्या का यह कलंक कब दूर होगा ?

गोधरा की सैंडका पर दुधारु गायों की निर्भय हत्या का एक दृश्य ! गोहत्या के कलंक को स्थायी रूप से मिटाने के लिए प्रत्येक देश प्रेमी को सहयोग देना चाहिए ताकि जनता की भावनाओं को ठेस पहुंचाने वाले ऐसे दृश्यों की पुनरावृत्ति न हो पाये ।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

देश को दुश्मनों से नहीं, आज गद्दारों से खतरा हो रहा है ।
खजाने को चोरों से नहीं – पहरेदारों से खतरा हो रहा है ॥
धर्म की सुरक्षा के लिए आज बहुत सावधानी की जरूरत है ।
उसे नास्तिकों से नहीं – ठेकेदारों से खतरा हो रहा है ॥
आदमी की शक्ल से – अब डर रहा है आदमी ।
आदमी को लूट कर – घर भर रहा है आदमी ।
आदमी ही मारता है – मर रहा है आदमी ।
समझ कुछ आता नहीं – क्या कर रहा है आदमी ॥
मैं यह नहीं पूछता कि – आपने राम का नाम कितने बार लिया है ।
और यह भी नहीं पूछता कि – आपने दान पुण्य कितना किया है ।
मुझे तो यह बताइए कि – आपने धर्म और भगवान के नाम पर ।
आज तक भोले इन्सान को – धोखा कितनी बार दिया है ॥
आदमी अब जानवर की – सरल परिभाषा बना है ।
भस्म करने विश्वको वह – आज दुर्वासा बना है ॥
क्या जरूरत राक्षसों की – चूसनेको इन्सान जब ।
आदमी ही आदमी के – खून का प्यासा बना है ॥
आप कहीं भी जायें आज – सब जगह मिलावट का बाजार है
दोस्ती में राजनीति है सभ्यता के नाम पर नकली व्यवहार है ।
लेकिन खून उबल उबल जाता है मेरा – जब मैं देखता हूँ ।
राजनीति में मिलावट है – धर्म में भी भ्रष्टाचार है
यदि सितारों ने बगावत कर दी – तो अम्बर का क्या होगा ।
यदि किनारों ने बगावत कर दी – तो समन्दर का क्या होगा ॥
धर्म की आड़ लेकर गरीबों को दीन – दहाडे ठगनेवालों ।
यदि इन्सान ने बगावत कर दी – तो पैगम्बर का क्या होगा ?
धर्म की प्राण प्रतिष्ठा के लिए – सबसे पहिले बिछुडे दिलों को जोड़ना होगा ।
जाति सम्प्रदाय और ऊँच–नीच के – इन झूठे घरों को तोड़ना होगा ॥
सत्य की हानि से सचमुच ही – दिलों में दर्द है यदि धर्म के ठेकेदारों को ।
तो सामन्तशाही ठाटबाट को – और मठों मन्दिरों के मोहको छोडना होगा ।
मुझे इसकी चिन्ता नहीं कि धर्म का महल अब ढहा जा रहा है ।
इसका भी गम नहीं – धर्म को अफीम या जहर कहा जा रहा है ॥
रंज तो यह है कि – आज के पढे, लिखे समझदार समाज के द्वारा भी ।
धर्म के नाम पर चलनेवाली ठगाई और पोंगापन कैसे सहा जा रहा है ?
खुले दिमाग वाले इन्सान को ही सत्य का दर्शन हो सकता है ।
जैसे खुली छतवाले मकान पर ही – सूर्य का दर्शन हो सकता है ॥

— मुनि रूपचन्द जी.

पंजाबी चन्दू हलवाई कराचीवाला

प्रधान कार्यालय : १८५, बालकेश्वर मार्ग, तीनबत्ती, बम्बई–४०० ००६.

शाखाएँ :– १. जवेरी बाजार, २. ग्रान्ट रोड, ३. कोलाबा, ४. दादर, टी. टी. ५. वरली नाका, ६. सायन सर्कल, ७. ठाकुरद्वार, ८. अकबर अली- फोर्ट, ९. सूर्योदय स्टोर्स- चर्चगेट, १०. घाट-कोपर (पश्चिम) ११. लिंकिंग रोड- बान्दरा, १२. सांताक्रुझ रेल्वे स्टेशन (पश्चिम) के सामने.

कारखाना : चन्दू भवन, ग्रान्टरोड, बम्बई–४०००००७.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नागालैण्ड से नागपुर तक 'क्रिश्चियानिस्तान' की स्थापना की कुटिल योजना

* भाई देशराज

सी० आई० ए० के साथ कपट-संधि करके, बिहार में सक्रिय विदेशी मिशनरियों ने नागालैण्ड से छोटा नागपुर होकर, नागपुर तक 'क्रिश्चियानिस्तान' की स्थापना की जो कुटिल योजना बनायी है, उसे साकार करने के लिए वे गैर-ईसाइयों पर जो जुल्म कर रहे हैं, उनका वर्णन थर्रा देने वाला है। ईसाई-धर्म के नाम पर कलंक-साक्षात शैतान की मूर्ति ये विदेशी मिशनरी भोलीभाली, अशिक्षित जनता पर जो अमानवीय अत्याचार कर रहे हैं, उनका ब्योरा राज्य-सरकार तथा भारत सरकार को बार-बार दिया जा चुका है, पर संबंधित अधिकारियों के कानों पर आज तक जूं भी नहीं रेंगी। इस छोटे से लेख द्वारा हम पुनः देश के जागरूक नेतागण तथा सजग जनता का ध्यान इस विस्फोटक स्थिति के प्रति आकर्षित कर रहे हैं, ताकि वे समय रहते, इस विध्वंसक और देश को गंभीर रूप से अशक्त बनाने वाली योजना को समूल नष्ट कर सकें। —संपादक

आँखों देखी, रोंगटे खड़े कर देने वाली रपट

अब समय आ गया है कि देश की जनता जाने कि ईसाई धर्म के प्रसार के नाम पर, विदेशी मिशनरी किस प्रकार उत्तर भारत और विशेष रूप से बिहार में खुले आम बलात्कारों, निर्मम हत्याओं के जरिये भोली-भाली और अशिक्षित जनता को जबरन ईसाई बनने पर कैसे मजबूर कर रहे हैं।

* सी. आई. ए. के. एजेन्ट विदेशी मिशनरी हिंसात्मक संघर्ष पर उतारु

* अधिकारीगण कब तक आँखें मूँदे सोते रहेंगे ?

•

सीतागढ़ (हजारीबाग) बिहार में, १९३४ से ईसाई धर्म के प्रचार का एक केन्द्र खुला हुआ है, जहाँ प्रति वर्ष २०० प्रशिक्षार्थी प्रशिक्षण पाते हैं। पर वास्तव में धर्म-शिक्षा की आड़ में, प्रशिक्षक पादरी निर्धन महिलाओं की इज्जत लूटते हैं। इसी उद्देश्य से लडके-लडकियों के लिए अलग-अलग प्रशिक्षण-केंद्र बनाये गये हैं, और लड़कियों के केन्द्र में सिर्फ १६ से २० वर्ष की आयु तक की लडकियों को ही रखा जाता है।

१९ नवम्बर, १९७७ की रात को इस केंद्र के मार्टिन खत्खी, वहाँ काम करने वाली मेमन नीशा को लेकर न जाने कहाँ चम्पत हो गये। उसके अलावा रेक्टर फरांसिस मैलाइस, ब्रा. यूनुस, विंसेंट वारा आदि के 'कारनामे' भी जगजाहिर हो चुके हैं।

इन साधन-सम्पन्न और प्रभावशाली विदेशी मिशनरियों में स्थानीय अधिकारियों से सौंठ-गाँठ करके निर्धन और असहाय ग्रामीण लोगों की २०० एकड़ कृषि-योग्य भमि हड़प ली है। यह 'अल्प-संख्यकों' को सहायता देने के नाम पर किया गया।

सरकार की रहस्यमयी नीति के कारण जो हरिजन ईसाई धर्म स्वीकार कर लेते हैं, उन्हें हरिजनों को दी जाने वाली सुविधाओं से वंचित कर दिया जाता है, पर जो आदिवासी इन मिशनरियों द्वारा छल-कपट, प्रलोभन या जोर-जबरदस्ती से ईसाई बनाये जाते हैं, उन्हें ये सुविधायें निरंतर मिलती रहती हैं।

सीतागढ़, महुआटांड, डाल्टनगंज आदि स्थानों यह सूचना पाकर कि इन स्थानों के नव-ईसाईयों को, जो पुनः हिन्दू धर्म में प्रवेश पाना चाहते है, और हिंदुओं को तरह-तरह से परेशान करके ईसाई बनने पर विवश किया जा रहा है, मैं स्थिति का अध्ययन करने के लिए वहां पहुंचा।

(शेष पृष्ठ ६ पर)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हिन्दू मिशनरी बनाम विदेशी मिशनरी

कुमारजीव

–जिन्होंने भारतीय संस्कृति की पताका विदेशों में फहरायी

हमारे स्कूलों और कालेजों में नयी पीढी को जो इतिहास पढ़ाया जाता है, उसमें ज्यादातर मार्को पोलो, कोलम्बस आदि पश्चिमी यात्रियों के यात्रा–वर्णन ही भरे होते हैं, और उन भारतीय मनीषियों के बारे में कुछ भी नहीं रहता, जो भारतीय संस्कृति, सभ्यता और ज्ञान की पताका लेकर विश्व के कोने–कोने में पहुँचे थे।

भारत के इस गौरवमय अतीत का, जो आज दुर्भेद्य पर्दों में ढँका है, उज्ज्वल चित्र पुनः आपके सामने प्रस्तुत करने के उद्देश्य से हम इस नियमित स्तंभ में प्रति माह, उन अनेक प्राचीन अज्ञात, मृत्युंजयी भारतीय विदेशी – यात्रिकों के साहसिक जीवन वृत्त प्रस्तुत करेंगे, जिन्होंने भारत माता के मस्तक पर विश्व प्रतिष्ठा का मुकुट सजाया। इन्हीं भारतीय संस्कृति के दूतों के साहसपूर्ण अभियानों के फलस्वरूप ही, हमारे देश ी अपूर्व प्राचीन सभ्यता–संस्कृति के नाना निदर्शन आज भी विश्व के कोने–कोने में पाये जाते हैं।

इन जीवन वृत्तों को पढ़कर आप जान सकेंगे कि भारत के इन संस्कृति–दूतों के यात्राभियानों का उद्देश्य किसी निजी अथवा राजकीय पार्थिव स्वार्थ अथवा धर्म–प्रचार से युक्त न था। उन्होंने ये यात्राएँ विशुद्ध परमार्थ, ज्ञान–प्रसार और लोक–कल्याण की उच्च भावनाओं से प्रेरित होकर की थीं। इस अर्थ में वे अन्य धर्मों के उन विदेशी यात्रियों से सर्वथा भिन्न थे, जो महज अपने धर्म का बलपूर्वक प्रचार करने के उद्देश्य से अपने देशों को छोड़कर भारत आये थे।

इस लेखमाला में हम सबसे पहले प्रस्तुत कर रहे हैं — कुमार जीव का संक्षिप्त जीवन परिचय।

–सम्पादक

विदेशों की कष्टसाध्य यात्राएँ करके उन देशों में फैले अज्ञान के अंधकार को मिटाने में आजीवन प्रयत्नशील प्रतिभाशाली कुमारजीव, जिनके पिता के जन्म का नाम कुमारायण था, का जन्म चौथी सदी में एक प्रतिष्ठित और सम्पन्न ब्राह्मण–परिवार में भारत के उत्तर–पश्चिम सीमान्त के एक हिन्दू राज्य में हुआ था। इस परिवार के लोगों को राजदरबार में उच्च स्थान प्राप्त था।

ईर्ष्यालु और दुष्ट लोगों के दिन–ब–दिन बढ़ने वाले अत्याचारों से तंग आकर, कुमारायण ने संसार का त्याग करके भगवान बुद्ध की शरण में जाने का निश्चय किया। वे भिक्षु बन गये।

उन दिनों प्रत्येक भिक्षु के लिए नियमित रूप से निवास–स्थान बदलते रहना अनिवार्य था। कुमारायण का जीवन भी एक चिर–यात्री का जीवन बन गया। पर, भारत के स्थानों में उनकी रुचि न थी।

वे विदेशों में बौद्ध धर्म की ज्ञान–पताका फहराने के इच्छुक थे। अपनी इस इच्छा की पूर्ति के उद्देश्य से ही. वे हिमालय लाँघ कर मध्य एशिया के कुची राज्य में पहुँचे।

कुची राज्य भारत में भले ही न था पर वहाँ की प्रजा बौद्ध धर्म की अनुयायी थी और संस्कृत को देवभाषा के रूप में पूजती थी। वहाँ के राजा कुमारायण की ख्याति से सुपरिचित थे और कुमारायण का स्वागत उन्होंने बडी श्रद्धा और धूमधाम से किया। बाद में उन्हें अपना राजगुरु भी बना लिया।

जीना नाम था कुची के राजा की बहन का जो परम सुन्दरी होने के अलावा सुशीला भी थी वह कुमारायण पर अनुरक्त हो गयी। कुमारायण भी जीना से प्रेम करने लगे थे। उन्होंने जीवा से विवाह कर लिया और भिक्षु–जीवन का परित्याग कर पुनः गृहस्थ बन गये। कुछ समय पश्चात, वे दो पुत्रों के पिता बने। ज्येष्ठ पुत्रों का नाम पिता कुमारायण और माता जीना को जोड़कर 'कुमारजीव' रखा गया।

कुमारजीव के बडे होने पर उसकी माता भिक्षुणी बन गयी और उसकी शिक्षादीक्षा के लिये

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कुची के बौद्ध विहार में रहने लगे। कुछ वर्षों बाद बौद्ध-धर्म-शास्त्रों में पारंगत होने के बाद कुमारजीव अपनी भिक्षुणी माँ के साथी कुची से कश्मीर, जो उस काल में धार्मिक शिक्षा का एक महान केंद्र था, आये। यहाँ बन्धुदत्त नामक गुरु के शिष्यत्व में कुछ समय तक रहकर वे हीनयान सम्प्रदाय के प्रकाण्ड पंडित माने जाने लगे।

उस काल में कुची मध्य एशिया में बौद्ध धर्म और संस्कृति का एक महान केन्द्र था। कुमारजीवने कुची के प्रधान विहार को महायान-सम्प्रदाय का प्रचार केन्द्र भी बना लिया। इस केन्द्र के माध्यम से कुमारजीव द्वारा हीनयान-सम्प्रदाय का प्रचार आसपास के देशों, जैसे कोकून आदि में तेजी से होने लगा।

सन् ३५३ में, जब उत्तर भारत में चन्द्रगुप्त (द्वितीय) विक्रमादित्य का राज्य था, चीनियों नें कुची पर आक्रमण किया। इस युद्ध में कुची के राजा की पराजय हुई। कुची में काफी लूटमार करने के बाद चीनी आक्रामक अपने साथ जो युद्ध-बंदी ले गये थे, उनमें कुमारजीव भी थे। पर जब चीनी शासकों को उनकी प्रतिभा तथा पांडित्य के बारे में पता चला तो उन्हें मुक्त कर दिया। बाद में चीनी सम्राट 'फू-चिएन' ने कुमारजीव को अपने पास बुलाकर उन्हें राज पुरोहित के पद पर प्रतिष्ठित किया।

चीन के राज-पुरोहित बनने के बाद, कुमारजीव ने भारतीय धर्म और दर्शन के प्रचार-प्रसार में अपने को लगा दिया। चीन में बौद्ध धर्म का विस्तार करने में जिन भारतीयों ने सबसे अधिक सहयोग प्रदान किया, उनमें कुमारजीव का नामस्मरण सर्वप्रथम होता है। उन्होंने ५०० विद्वानों की एक समिति का गठन किया था, जो वर्षों तक संस्कृत ग्रंथों के चीनी भाषा में अनुवाद करने में व्यस्त रही।

'आमेन' ॐ का ही अपभ्रंश है

".....सारी दुनिया के आध्यात्मिक प्रवाह गहरे में इस मुल्क से सम्बंधित हैं, क्योंकि उनका मौलिक मूल स्रोत इसी मुल्क से पैदा हुआ, और सारी खबरें इस मुल्क से फैलनी शुरू हुई। लेकिन खबर ले जाने वाले आदमियों के पास तथा जिनको उन्होंने खबर दी जाकर, उनकी भाषा दूसरी थी। उनको कुछ स्पष्ट पता न था कि वह क्या खबर दे रहे हैं।

अब किसी ईसाई को, पादरी को यह ख्याल नहीं हो सकता कि वह गले में जो लटकाए हुए है, वह स्वस्तिक का टूटा हुआ हिस्सा है, जो 'क्रॉस' बन गया।

कुछ केथोलिक शास्त्रज्ञों के अनुसार 'आमेन' 'ओम्' (ॐ) का ही अपभ्रंश है। लगभग सभी ईश प्रार्थनाओं के अंत में, ईश-अभिवादन हेतु 'आमीन' शब्द का प्रचुर मात्रा में प्रयोग होता है। खोज करने वालों का मत है कि 'ओम' वही शब्द है जिसको बाइबिल में कहा गया है कि 'वह सृष्टि के आरंभ में था, ईश्वर के साथ था, ईश्वर था।' (योहन १:१)। 'अमित'' प्रकाशन – ग्रंथ के अध्याय १, स्तोत्र ५ में 'अल्फा और ओमेगा' (आदि और अन्त) नाम से निरूपित किया गया है। यह भी बताया जाता है कि ईसा मसीह ने संत योहन से कहा था, "मैं ही ओमेन हूँ"। आगे आमेन का प्रयोग 'तथास्तु' तथा 'पूर्ण सत्य' के अर्थ में हुआ है।

कैथोलिक पूजन-विधि में लेटिन सापा के अनेक शब्द प्रयोग में आते रहे हैं, उन सब में ओम् का अपभ्रंश रूप उपस्थित है। जैसे, ओमनीप्रेजेन्ट, ओम्नीशिएन्ट्, ओमनीपोटेन्ट, पेर ओमनीया सेकुला सेकुलोरुम आदि।

आजकल तो भारत के अनेक गिरजाघरों में प्रार्थनाओं में तथा सलीब के बीचोबीच 'ओम्' (ॐ) का प्रयोग आरंभ हो चुका है। उदाहरण के लिए सन्त मेरी कॉलिज करसियांग, दार्जिलिंग के आराधन। मंदिर की प्रमुख वाचन-पीठिका पर ॐ (ओम्) अंकित किया गया है।" —आचार्य रजनीश

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(पृष्ठ ३ का शेषांश)

जांच-कार्य के दौरान, मुझे इन मिशनरियों के एजेन्टों ने तरह-तरह से परेशान किया। मैंने उनकी इन हरकतों की सूचना स्थानीय अधिकारियों को दी, पर उन्होंने आजतक इस पर ध्यान नहीं दिया। फिर भी, जिन कुछ चौंका देने वाले तथ्यों के बारे में मुझे पता चला, वे इस प्रकार हैं :-

१. इस क्षेत्र के उन नव-ईसाईयों को जो पुनः हिन्दू धर्म में दीक्षित होना चाहते हैं, यह धमकी दी जाती है कि 'हमारे दस हजार के करीब धनुष-बाणधारी लोग तुम्हें मौत के घाट पहुंचाने के लिए कभी भी बुलाये जा सकते हैं।' इस धमकी से भय-भीत लोगों को जब तक उचित संरक्षण नहीं मिलेगा, वे पुनः हिन्दू नहीं बनेंगे।

२. मिशनरियों ने ऐसे कुछ निर्दोष नव-ईसाइयों को हत्या भी की हैं। इससे स्थिति और गंभीर और विस्फोटक बन गयी है।

३. ये विदेशी मिशनरी भारत में भूख से मर रहे लोगों को मदद पहुंचाने के घोषित उद्देश्य से विदेशों से धन, अनाज, दवाएँ आदि जमा करते हैं, और उन्हें सिर्फ ऐसे लोगों को ही देते हैं, जो अपना धर्म छोड़कर ईसाई बनने को तैयार हों।

४. मुफ्त धन, अनाज और दवाओं की 'रिश्वत' देकर, जिन लोगों को ईसाई बनने के लिए मजबूर किया जाता है, उन्हें बाद में इस बात पर भी मजबूर किया जाता है कि वे डरा-धमका कर, सब्ज बाग दिखाकर, मारपीट द्वारा गर्ज किसी भी तरीके से अन्य लोगों को भी ईसाई बनायें।

५. अपने प्रचार-केन्द्रों को 'ज्ञानमाता सदन' 'आश्रम' आदि नाम देकर तथा उनमें ॐ, धूप आदि का प्रयोग करके अशिक्षित लोगों को गुमराह किया जा रहा है।

६. छोटा नागपुर क्षेत्र में अनेक भवनों, जिनमें सरकारी भवन भी शामिल हैं, की दीवारों पर 'मन्दिर, मस्जिद तोड़ दो, झारखंड छोड दो' जैसे उत्तेजक नारे, बडे-बडे अक्षरों में लिखे दिखायी देते हैं। इन नारों के पीछे उन विदेशी मिशनरियों का ही हाथ है, जो नागालैण्ड से छोटा नागपुर होते हुए नागपुर तक के क्षेत्र को 'ईसाई-देश' बनाने के अपने सपने को साकार करने के लिए हर संभव प्रयास कर रहे हैं।

७. इन विदेशी मिशनरियों का देशी पादरियों के साथ व्यवहार बड़ा अपमानजनक होता है। प्रमाण के लिए, बान्दरा बैंडस्टैण्ड स्थित फादर एग्नेल आश्रम का उदाहरण प्रस्तुत किया जा सकता है, जहां विदेशी मिशनरी और उनके एजेन्ट, राष्ट्रप्रेमी और स्वाभिमानी हिन्दुस्तानी पादरियों पर भांति-भांति के अत्याचार कर रहे हैं।

अन्त में, मैं भारत कल्याण मंच बम्बई की ओर से बिहार-सरकार तथा भारत सरकार दोनों से जोरदार मांग करता हूँ कि :

१. इस क्षेत्र के सब ईसाई प्रशिक्षण केन्द्रों को सरकार अपने कब्जे में ले ले, और कृषि विभाग को सौंप दे।

२. विदेशों से प्राप्त धन, अनाज, दवाएँ तथा अन्य सामग्री का वितरण सरकारी या ऐसी गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा किया जाये, जो इन साधनों का उपयोग धर्मान्तरण-कार्यों में न करने में विश्वास करती हैं।

३. विदेशी मिशनरियों को, जो वास्तव में सी० आई० ए० के एजेन्ट, स्मगलर और षडयंत्रकारी ही हैं, और भारत का नमक खाते हुए भी, भारत के हितों के विरूद्ध कार्य करते हैं, भारत छोड़ने पर विवश किया जाये।

इस सम्बन्ध में जरा सी भी देरी, देश के हितों के लिए घातक सिद्ध हो सकती है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भारत मेरा शरीर है !

श्री स्वामी रामतीर्थ, आधुनिक युग में, भारत के एक महान पुरुष हो चुके हैं। इनका जन्म पंजाब प्रान्त में हुआ था। आपने अपनी साधना और उत्कट प्रेमपूर्ण भक्ति द्वारा अलौकिक सिद्धियों को प्राप्त किया था, दूसरे शब्दों में ईश्वर का साक्षात्कार किया था।

स्वामी राम—मन को जीतने वाले स्वामी राम। उनसा मनविजेता इस युग में, इस धरती पर कदाचित् ही कोई उत्पन्न हुआ हो। वे मन के बादशाह थे, इंद्रियों के सम्राट थे। उनकी आत्मा ने 'राम' का साक्षात्कार किया था। वे 'राम' मय थे। उन्होंने अन्दर और बाहर के भेद को समझकर, मिटा दिया था। उन्होंने उस पर्दे को चीर कर फेंक दिया था, जो आत्मा और परमात्मा के मध्य में रहता था, और जिसे लोग 'माया' कहते हैं। 'राम' मय होने के कारण वे अपने को 'राम' बादशाह कहते थे। सचमुच वे बादशाह थे—मन के, हृदय के और संपूर्ण मानव प्रकृति के।

स्वामी राम के हृदय में प्रगाढ़ देश—भक्ति थी। उनके देश—भक्ति—सम्बन्धी निम्नांकित उद्गार कितने अमूल्य है !

—सम्पादक

भारत मेरा शरीर है। कोमोरिन मेरे पैर, और हिमालय मेरा सिर है। मेरी जटाओं से गंगा बहती है और मेरे सिर से ब्रह्मपुत्र और सिन्ध निकली हैं। विंध्याचल मेरी ही कमर की पेटी है। कारोमंडल मेरी बायीं और मालाबार मेरी दाहिनी टांग है। मैं संपूर्ण — समूचा भारत हूँ। उसका पूर्व और पश्चिम मेरी बाहें हैं, जिन्हें मैंने मानव—समाज का आलिंगन करने को फैला रखा है। मेरा प्रेम सार्वभौमिक है। ओह, मेरे शरीर की आकृति कैसी है! मेरी अंतरात्मा विश्वात्मा है। जब मैं चलता हूँ, मैं सोचता हूँ कि भारत चल रहा है। जब बोलता हूँ तब सोचता हूँ, कि भारत बोल रहा है। जब श्वास लेता हूँ, तब भारत भी श्वास लेता है। मैं भारत हूँ, मैं शंकर हूँ, मैं शिव हूँ। यही देश भक्ति का सर्वोत्तम साक्षात्कार है, यही व्यावहारिक वेदान्त है।

ओ अस्ताचलगामी सूर्य, क्या तू भारत में उदय होने जा रहा है? क्या तू दया करके 'राम' का संदेश उस पुण्य और प्रताप की भूमि तक न पहुँचा देगा? मेरे प्रेम के ये अश्रु—बिन्दु मेरे भारत के खेतों में प्रातःकालीन ओसकण बन जायें। जैसे शैव शिव को पूजता है, वैष्णव विष्णु को, बौद्ध बुद्ध को जैन महावीर को, ईसाई ईसा को, मुसलमान मुहम्मद को; उसी प्रकार जलते हुए हृदय की लौ के साथ मैं अपने भारत को एक शैव, वैष्णव, बौद्ध, जैन, ईसाई, मुसलमान, पारसी, संन्यासी, शूद्र अथवा किसी भी भारतवासी की स्थिति में देखना और पूजना चाहता हूँ। हे भारत माता! मैं तेरे सभी रूपों, सभी प्रादुर्भावों का उपासक हूँ।

तू ही मेरी गंगा, मेरी काली, मेरा इष्टदेव और मेरा शालिग्राम है। उपासना के बारे में उपदेश करते हुए वे भगवान, जिन्हें इस पुण्य भूमि की मिट्टी से बड़ा प्रेम था, कहते हैं, "जो अपना मन अव्यक्त परमात्मा में लगाते हैं, उनका मार्ग बड़ा दुष्कर होता है; क्योंकि सचमुच शरीरधारी को निराकार, अव्यक्त के पथ पर चलना बड़ा कठिन है।" हे मनमोहन श्रीकृष्ण! तुम्हारी आज्ञा शिरोधार्य। मुझे भगवान के उस साकार रूप ही की पूजा का मार्ग ग्रहण करने दो, जिसकी संपत्ति के बारे में कहा जाता है कि एक बूढ़े बैल, एक टूटी खाट, एक पुरानी कुल्हाडी, धूनी की भस्म, सर्प और नर मुंडमाला के अतिरिक्त उनकी गृहस्थी में कुछ था ही नहीं। पर केवल मौखिक अधूरे मन वाली प्रशंसा से काम नहीं चलेगा। 'राम' तो भारत के प्रत्येक बच्चे से सक्रिय सहयोग चाहता है कि वह राष्ट्रीयता के इस गतिशील धर्म को फैलाने के लिए कटिबद्ध हो जाये।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हर परिवार का प्रिय

स्वादिष्ट भोजन के लिए
मालती वनस्पति

स्वच्छ सफाई के लिए
मालती साबुन

अन्य उत्पादन

तेल रहित खली * कपासिया तेल * ऑक्सीजन गैस

— निर्माता —

दि मालवा वनस्पति एण्ड केमिकल कंपनी लि.

मोहता नगर इन्दौर (म. प्र.)

फोन : ६३५३ टेलक्स : ०७३५-२२८ तार : मालतीब्राण्ड

धर्मों में टकराव क्यों?

"धर्म का उन नियत बौद्धिक धारणाओं के साथ घपला नहीं किया जाना चाहिए, जो सबकी सब मन द्वारा निर्मित हैं। जो भी कोई धर्म अंतिम और परम होने का दावा करता है, वह अपने मतों को शेष संसार पर थोपना चाहता है और दूसरे लोगों को अपने प्रमाणों (स्टैंडर्डों) के अनुसार सभ्य बनाना चाहता है। वह धर्म नहीं। जब दो-तीन विश्वास प्रणालियाँ (धर्म) सब लोगों को अपने ढाँचे के अंदर ले जाने की कोशिश करती हैं तो उनमें टकराव अनिवार्य हो जाता है, क्योंकि संसार में केवल एक ही परम धर्म की गुंजाइश है।"

♣ डॉ. राधाकृष्णमन्

भारत कल्याण

पानेवाला न मिले, तो कृपया इस पते पर लौटायें :

भारत कल्याण मंच

१८५, वाल्केश्वर मार्ग, तीन बत्ती, बम्बई-४०० ००६

(दूरभाष : ३६३६२५)

सेवा में :

भारत कल्याण मंच, १८५, वाल्केश्वर मार्ग, बम्बई-४०० ००६ की ओर से
सम्पादक, प्रकाशक और मुद्रक सदाजीवतलाल बहल द्वारा
ज्ञानमुद्रा, रॉयल इंडस्ट्रियल एस्टेट, वडाला, बम्बई-४०००३१ में मुद्रित

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

492

ॐ

Bharat Kalyan Manch

185, Walkeshwar Road,
Teen Batti,
Bombay-400 006.
Phones : 813625, 814795

An Appeal to all M.L.A's for a national Cause

Dear Sir,

You are already aware of ever increasing proselitysing activities of Christian missionaries in our country.

Consequent upon the recommendations of Christian Missionary Activities Equiry Committee, headed by Mr. Justice, Dr. Bhawani Shankar Niyogi, who had retired as Chief justice of Nagpur High Court, Madhya Pradesh Govt. enacted a law named "Freedom of Religion Act 1968" to curb forcible conversions. Similar act was also enacted by Orissa State Legislature. Both these acts, which were challenged by missionaries in the Supreme Court, **have been declared valid by our** highest Court in January, 1977.

Similar acts were also proposed by Rajasthan and Gujarat Govts. Their statement of objects are also given here for your information..

Other relevent documents including the jist of Supreme Court's Judgement are also appended for ready reference.

We will request you to press your state Govt. to enact such law immediately for the benefit of our Co-citizens, residing within the territory of your state, so as to fall in line in this behalf with rest of the states, who have shown courage to protect the fundamental right of freedom of conscience of their illiterate citizens.

Now, since the Supreme Court has adjudged in favour of these acts, there should not be any pretext for your Govt. to refuse such enactment in the name of Secular Character of our nation.

We hope, you will lend your support for this national cause and will act as true representative of the people to safeguard their interests.

Yours etc.
In the service of Motherland,

Sd/– Sadajiwat Lal Chandu Lal Bahl,
Hon. Treasurer
Bharat Kalyan Manch.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

No Fundamental Right to Convert

Statesman daily of 18-1-1977

"From Our Legal Correspondent"

New Delhi, 17 Jan., 1971—The Constitution Bench of the Supreme Court, presided over by the Chief Justice, Mr. A. N. Ray, today declared that there was no Fundamental Right to "Convert" another person to one's own religion.

The Bench also ruled that ——If a thing disturbs the current of life or the community and does not me.ely affect an individual, it would amount to disturbance of the public order. Thus if an attempt is made to raise communal passions, e.g., on the ground that someone has been "forcibly" converted to another religion, It would, in all probability, give rise to an apprehension of a breach of the public order, affecting the community at large. The impugned Acts (M. P. Act. 27 of 1968) and Orissa Act. 2 of 1968, prohibiting forcible conversion) therefore fall within the purview of Entry (i) of List (ii) of the Seventh Schedule as they are meant to avoid disturbances to the public order by prohibiting conversion from one religion to another in a manner reprehensible to the conscience of the community.

The court, therefore, upheld the constitutional validity of Orissa Freedom of Religion Act 1967 and the Madhya Pradesh Dharma Swatantrya Adhinayam (Act), 1968 and reversed a judgement of the Orissa High Court which had struck down the Orissa Act both as contravening the freedom under Act 25(1) of the Constitution to "profess" practice and propagate religion" and on the ground of legislative incompetence. Orissa State's appeals against that High Court's judgement were allowed, while another group of appeals filed by the Rev. Stanislaus against the decision of the Madhya Pradesh High Court's decision, which had declared the M. P. legislation valid, were dismissed.

It was not in controversy before the Supreme Court that the two Acts had the similar provisions prohibiting forcible conversions and providing punishment, the court held.

Delivering the judgement on behalf of the Constitution Bench, Mr. Justice Ray emphasized that Act 25 (1) of the Constitution not only guaranteed freedom of religion but also "Freedom of Conscience". This postulated, he said, that there was no Fundamental Right of "Converting" people from one religion to another, because if a person undertook the conversion of another person as distinguished from any effort to transmit or spread the tenets of his religion" it would imping on the "freedom of conscience" guaranteed to all citizens of the country.

The word "propagate" had been used in. Act 25 (1) of the Constitution in the sense of "carry forward or onward, diffuse, extend or spread from one person to another. "What Act 25 (1) guaranteed was the right to transmit or spread one's religion by an exposition of its tenets and not the right to "convert", because what was freedom for one, was freedom for another in an equal measure, the judgement said.

The Chief Justice pointed out that while the Orissa Act prohibiting conversion by the

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

use of force or by inducement or by any fraudulent means, the Madhya Pradesh Act prohibited conversion "by use of force or allurement or fraud". All these expressions had been defined in the Act. The object of both the legislations was "clearly to provide for the maintenance of public order" by prohibiting forcible conversions, Mr. Justice Ray said.

Public order "had long been held by the Supreme Court to be an expression with wide cannotations" and to signify a state of tranquility which prevails among members of a society as a result of internal regulations enforced by the Government. A law creating an offence relating religion could be enacted in the interests of public order since Acts 25 and 26 of the constitution contemplate that restrictions may be imposed on the right guaranteed by them. in the interests of public order", the judgement held.

The Court also rejected the contention advanced during the arguments that the impugned laws "regulated religion", and it was only Parliament, if at all, which could enact such legislation under Entry 97 of list. 1. of Schedule vii. **The judges declared that the States had the legislative competence to enact the laws in controversy under Entry 1. of List (ii) in Schedule (vii) of Constitution.**

The four other judges who composed the Constitution Bench were Mr. Justice M. H. Beg, Mr. Justice R. S. Sarkaria, Mr. P. N. Singhal and Mr. Justice Jashwant the Singh.

CHRISTIAN MISSIONARY ACTIVITIES ENQUIRY Committee, Madhya pradesh

The recommendations

Those missionaries whose primary object is proselityzation should be asked to withdraw. The large influx of foreign Missionaries is undesirable and should be checked.

The best course for the Indian Churches to follow is to establish a United Independent Church in India without being dependent on foreign support.

The use of Medical or other professional services as a direct means of making conversions, should be prohibited by law.

To implement the provision in the constitution of India, prohibiting the imparting of Religious education to children without the explicit consent of parents and guardians, the Department of Education should see the proper forms are prescribed and made available to all schools.

Any attempt by force or fraud, or threats or illicit means or grants of financial or other aid or by fraudulent means or promises, or by normal and material assistance or by taking advantage of any person's in experience or confidence, or by exploiting any person's necessity, spiritual (mental) weakness or thoughtlessness, or in general, any attempt or effort (whether successful or not), directly or indirectly to penetrate into the religious conscience of persons (whether of age or underage) of another faith, for the purpose of consciously altering their religious conscience or faith, so as to agree with the ideas or convictions of the proselytising party, should be absolutely prohibited.

Religious institutions should not be permitted to engage in occupations like recruitment of labour for tea gardens.

It is the primary duty of Government to conduct orphanages, as the state is the legal guardian of all minors who have no parent or natural guardians.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Government should issue an appeal to authoritative and representative Christian Missionary Organisations and to Christians in general to come together and to form an authoritative organisation which should lay down and inform Government in clear terms the policy which the missions and Christians in general will follow in respect of propagating their religion, the methods to be followed in conversions, the type of propaganda which will be promoted and the attempts which will be made to confine their evangelistic activities within the limits of public order, morality and health.

An amendment of the Constitution of India may be sought, firstly to clarify that the right of propaganda has been given only to the citizens of India and secondly that it does not include conversion brought about by force, fraud or other illicit means.

Suitable control on conversions, brought about through illigal means, should be imposed. If necessary, Legislative measures should be enacted.

Advisory Boards at State level, regional level and district level, should be constituted of non-officials, minority communities like Tribals and Harijans being in a majority on these boards.

Rules relating to the registration of Doctors, Nurses and other personnel, employed in Hospitals, should be suitably amended to provide a condition against evangelistic activities during professional services.

Govt. should lay down a policy that the responsibility of providing social services like education, health, medicine, etc. to members of scheduled tribes, castes and other backward classes will be solely of the State Government, and adequate services should be provided as early as possible. Non-official organisations being permitted to run only for members of their own religious faith.

A separate department of Cultural and Religious affairs should be constituted at the state level to deal with these matters which should be in charge of a Minister, belonging to a scheduled caste, tribe or other backward classes and should have specially trained personnel at the various levels.

No non-official agency should be permitted to secure foreign assistance, accept through Government channels.

No foreigner should be allowed to function in a scheduled or specified area, either independently or as a member of a religious institution, unless he has given a declaration in writing that he will not take part in politics.

Programmes of social and economic uplift by non-official or religious body should receive prior approval of the state.

—Dr. Bhawani Shankar Niyogi
Chairman.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ORISSA ACT 2 OF 1968

The Orissa Freedom of Religion Act, 1967

(Assented to by the Governor on the 9th January, 1968)

An act to provide for prohibition of conversion from one Religion to another by the use of force or inducement or by fraudulent means and for matters incidental thereto.

Be it enacted by the by Legislature of the State of Orissa in the Eighteenth year of the Republic of India, as follows :—

1. Short title extent and commencement :—
   1—This Act may be called the Orissa Freedom of Religion Act, 1967.
   2—It shall extend to the whole of the state of Orissa.
   3—It shall come into force at once.

2—Definition :—In this Act unless the context otherwise requires :—
   (a) 'Conversion' means renouncing one Religion and adopting another ;
   (b) Force, shall include a show of force or a threat of injury of any kind including threat of divine displeasure or social ex-communication.
   (c) "Fraud–shall include misrepresentation or any other fraudulent contrivance;
   (d) "Inducement" shall include the offer of any gift or gratification, either in cash or in kind and shall also include the grant of any benefit, either pecuniary or otherwise.
   (e) "Minor" means a person under eighteen years of age.

3—Prohibition of forcible conversion :— No person shall convert or attempt to convert, either directly or otherwise any person from one religious faith to another by the use of force or by inducement or by any fraudulent means nor shall any person abet any such conversion.

4—Punishment for contravention of the provision of section 3 :— Any person contravening the provisions contained in section 3 shall, without prejudice to any civil liability, be punishable with imprisonment of either description which may extend to one year or with fine which may extend to five thousand rupees or with both;

Provided that in case the offence is committed in respect of minor, a woman or a person belonging to the Scheduled Caste or Scheduled Tribes the punishment shall be imprisonment to the extent of two years and fine up to ten thousand rupees.

5—Offence to be cognizable —An offence under this Act shall be cognizable and shall not be investigated by an officer below the rank of an Inspector of Police.

6—Prosecution to be made with the sanction of District Magistrate—No prosecution for an offence under this Act shall be made without the sanction of the Magistrate of the District or such other authority, not below the rank of a Subdivisional officer, as may be authorised by him in that behalf.

7—Power to make rules :—The State Government may make rules for the purpose of carrying out the provision of this Act.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Attempts by various States to Safeguard the Citizens' fundamental right of Freedom of Conscience as enshrined in our sacred Constitution.

Madhya Pradesh

It enacted the desired law in the year 1968. The statement of objects and reasons, as given in Madhya Pradesh Dharma Swatantrya Vidheyak, which was introduced by Shri Govind Narain Singh, the then Chief Minister of M. P. in M. P., state legislature on 24-8-1968, observed as under :—

" It is observed that large scale conversions are taking place mostly among the Adivasis and reason belonging to other backward classes of the State. The illiteracy and poverty of the people is exploited and promises of monetary, medical and other aid are given to allure them to renounce their religion and adopt another religion . The Bill seeks to prohibit such conversions by use of force or by allurement or by any fraudulent means."

Orissa

It enacted the desired law in the year 1967. The preamble of "the orrissa freedom of religion Act" says :—

An Act to provide for prohibition of Conversion from one religion to another by the use of force or inducement or by fraudulent means.

Bihar

Shri Gouri Shankar Dalmia, M. L. A. introduced similar bill in Bihar legislature in the year 1969, but he could not succeed. Such bill must be introduced again in View of the alarming situation prevailing in the tribal belt in the state.

Rajasthan

Shri B. N. Joshi, the minister-in-charge introduced a bill in this behalf in Rajasthan state legislature in the year 1970, whose statement of objects & reasons observed as under :—

" Complaints have been received during the recent years regarding coversions of poor and uneducated people, specially those belonging to the scheduled castes and scheduled tribes, from one religion to another by means of fraud, allurement and coarcion. In order to impose an effective curb on such undesirable activities, It is proposed to undertake suitable legislative measures."

Unfortunately this bill named "Rajasthan Freedom of Religion Bill", lapsed with the dissolution of the House. Therefore fresh attempts are required to enact the desired law.

Gujarat

Shri Kantilal Phoolchand Ghiya, the minister-in-charge introduced a bill named "Gujarat Dharma Swatantrya Bill 1972" on 23-6-1972 in Gujarat State Assembly. Its statement of

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

objects and reasons observed that "one fifth of the total population of Gujarat state comprises of harijans & tribals. The poverty and illiteracy among these tribals, harijans & other backward classes, is being exploited for their forcible, or fraudulent conversions to other religion. It is considered desirable to curb such irregular activities in the State."

But this bill also lapsed with the dissolution of the house. Therefore fresh attempts are required in Gujarat also.

Attempts in Lok Sabha

This issue, being of vital national importance, also figured twice in Lok Sabha.

Shri Jethalal Harikrishna, M. P. introduced "The Indian Converts (Regulation & Registration) Bill in Lok Sabha in the year 1954. Its statement of objects & reasons stated :—

"Religious conversion is often resorted to, to achieve objects which are improper. There is at present no machinery available to furnish correct statistical information on this subject. Religious conversion is resorted to by persons who have really nothing to do with the true practics of religion. Such activities lead to the social and economic ruination of a large number of persons and the wreck of families. Women and children, whose protection is the vital role of a Welfare State, are the special objects and the worst victims of the activities of such persons who carry on their activities in the name of religion but without having anything to do with religion properly so called. The object of the present Bill is to regulate the subject of conversion by providing for the machinery of registration or licensing."

Similar attempt was also made by Shri Prakashveer Shastri, M. P. in the year 1959, when he introduced his bill named "the Backward Communities (Religions & Protection) Bill" in Lok Sabha. Its statement of objects and reasons also observed as under :—

"The object of the Bill is to protect the members of Scheduled Castes, Scheduled Tribes and Backward Communities from proselytising activities of foreign Christian Missinaries in this country. Religious conversions are often resorted to in order to achieve objectives which are improper. The activities of these missions have been the subject matter of enquiry by two Committees called Niyogi Committee and Rege Committee appointed by the Governments of old Madhya Pradesh and Madhya Bharat respectively and presided over by eminent ex-judges of the High Court. The findings of the Committees have been agitating public mind and have been a cause of public tension also."

As the backward sections of the society have to be afforded protection from all kinds of exploitation and as religious exploitation is no less dangerous than economic exploitation this Bill is intended to protect them from such exploitation.

But unfortunately both these attempts failed and forcible conversions of poor & illiterate masses continued.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Now, the Judgement of Supreme Court has cleared the way to the passage of such enactment by various States and the Union Govt. It has quelled once for all, the oft-repeated argument that a secular state can not enact such law.

* * *

It is a well known fact that all Christian Social institutions are used as means to prepare a fertile ground for their proselitysing activities.

"Mahatama Ghandhiji also reprehended the use of Hospitals for proselitysation, by stigmating it as commercialisation of medical aid (Page 227, Christian Mission. Navjivan Press)" As this is not a matter of pure Ethics and as the duty of Govt. is to protect weaker sections of society, we recommend that the use of medical or other professional services as a direct means of making converts should be prohibited. So is the case with schools in the villages. They are used to catch the second generation. They are meant to influence the mind of tender pupils. In Gharbandhu, March 1953. p. 8 there is a clear statement."

—Extract from Dr. Niyogi's report.

ROMAN CATHOLIC CHURCH

Institutional Statistics

Schools	1972.	1969.	1964.
Primary Schools	4957	5367	4877
Mid./High Schools	2918	1854	2127
University Colleges	112	96	89
Tech/Sch/Colleges	211	172	**not available**
Hostels	615	602	467
Orphanages	603	637	554
Hospitals	310	not available	not available
Missionaries Male	11,443	10,816	9,728
Missionaries Female	33,595	30,305	23,673

At present, there are little above 13,000 Priests/Religious and diocesan and about 46,000 Female Missionaries (Nuns) working in India to help their 109 Bishops and 3 Cardinals.

PROTESTANT CHURCH

There are more or less similar number of Protestant Missionaries and Institutions working on the same line.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Question No. 1521
To be discussed in Lok Sabha
on 1/8/1973.

Statewise number of Foreign Missionaries registered upto 1/1/1973.

S. No.	Name of the State	Number of Foreign Missionaries
1.	Andhra Pradesh	371
2.	Assam	72
3.	Bihar	379
4.	Gujarat	157
5.	Hariyana	10
6.	Himachal Pradesh	33
7.	Jammu & Kashmir	40
8.	Kerala	149
9.	Madhya Pradesh	213
10.	Maharashtra	666
11.	Mysore (Karnataka)	463
12.	Meghalaya	81
13.	Nagaland	3
14.	Orissa	102
15.	Punjab	85
16.	Rajasthan	15
17.	Tamilnadu	816
18.	Uttar Pradesh	403
19.	West Bengal	415
20.	Manipur	6
21.	Delhi	145
22.	Goa—Daman—Diu	2
23.	Pondecherry	20

N. B.
Statistics concerning Jammu, Kashmir, Bihar and Punjab are available upto 1st. January, 1972.

The nationality-wise break-up of the Foreign Missionaries as follows :—

Americans : 896
Spanish : 297
W. Germany : 238
Italians : 441
Belgians : 258
French : 227

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Bharat Kalyan Manch

Bharat Kalyan Manch is a national forum of patriotic intellectuals, for safeguarding our national interests all around. This vital organisation was established at Bombay in May 1977 and since then, it has championed various national issues, which have created greater awareness in our society for various dangers from unforseen quarters.

Bharat Kalyan Manch keeps a regular vigil over nefarious activities of the fanatic citizens and cautions public life about the impending dangers; resulting from their indiscreet actions.

B. K. M. also publishes two monthly bulletins in English & Hindi Separately

NATIONAL COMMITTEE

President	: Brahmachari Vishwanathji, Religious Preceptor
Vice President	: Shri Brijratan Mohotta, Industrialist
	Shri Sampatkumar Gajadhar Somani, Industrialist
Treasurer	: Shri Sadajiwatlal Chandulal Bahl, Industrialist
Secretary	: Pt. Dwarka Prasad Patodia, Social Worker
Organising Secretary	: Shri Bhai Des Raj, Social Worker
Members	: Shri M. V. Jayakar, Solicitor
	" B. M. Kamdar, Industrialist
	" M. P. Degwekar, Social Worker
	" Dr. C. S. Aggarwal, Physician
	" Vinod Gupta, M. L. C., Social Worker
	" Gopal Hingorani, Industrialist
	" Sitaram Saboo, Businessman
	Smt. Usha Rani, Social Worker

CENTRAL OFFICE :

185, Walkeshwar Road, Teen Batti, Bombay-400 006.

Phones : 813625, 814795

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(i) 444.

BOOKS

g Plans
d
all Plans

S AND PLANNED ECO-
: H. V. R. Iengar; Vora
: Rs 15.
IN PUBLIC ENTER-
: K. R. Gupta; Chand
s; Rs 25.

rst book under review, llection of essays, writ- who has been a the administration vernor of the Reserve India, is bound to attract from the ecoonmic es- t of our country. All s in the volume reflect r's varied background, g, in administration and industry. There is much rned from his comments nking sector, particular- relations between the Bank, the Government mmercial banks. Fur- essays on plan imple- and the impact of n the private sector, author's awareness of ms faced by both the tor and private busi- his plea for a reduction hostility is timely.

ost collections of es- is a common theme rough most of the es- lation between econo- th and inflation. Put argument put forward ined investment ex- savings, the conse- t to deficit financing o inflation, which is n, to lead to political evidence cited in sup- analysis, particularly ation between inflation instability, is drawn t-1962 period, parti- the two drought

suggested is equal- the planned in- targets to 'realistic' consequence of this, of a lower planned The author is well implication, but endorses this alterna- least of the evils face- ntry. To mitigate the cut in investment, crease the effeciency mainly by remov- the controls on pri- are proposed. in spite of the clarity some doubts about at least, in this mind. How much we give to the characterised by two ive years of un-

Alexander in Asia

FLAMES OVER PERSEPOLIS: Mortimer Wheeler; Weidenfeld & Nicholson; 55s.

MUCH care has gone into the preparation of this attractive and engagingly written volume: it can only further enhance Sir Mortimer's high reputation as Britain's most eminent archaeologist. The book is certainly more important than the title suggests, for starting at Persepolis the author deals essentially with the long-term sequel of Alexander's transit in Asia in the 4th century B.C. And the story,

Persianizing Capital of Pataliputra; 3rd Century B.C.

touching on far-reaching revolutions in thinking and expression, in town-planning and art, makes exciting reading.

Wheeler detects an underplot of paradox common to what happened in Persepolis and to what took place, a century and a half earlier, in Greece, when the Persians led by Xerxes attacked Attica in 480 B.C. The Persian withdrew after burning her town and temples including the Acropolis at Athens. Three decades of gloom followed. Then Pericles and Pheidias took up the challenge of rebuilding Athens from her blackened ruins They spear-headed a massive effort to bring together all that was best in their past, and it was only then that Greek art was brought to its peak of fulfilment.

In the winter of 331 B.C. Alexander, then twenty-five, captured Persepolis, the rich and famed capital of the Persians. He camped there for a restless four months, till spring came and [illegible] pursue the fleeing Darius. Co-

continuum through a chain of nations from the Mediterranean to the Ganges."

The basis of Alexander's colonial policy was the building or reshaping of towns after the Greek pattern. He conquered by sowing 'Alexandrias' as he went. The growth and development, politically and culturally, of these towns under Alexander's successors in the following centuries, made them vital centres for the planting out and diffusion of Hellenistic humanism and the Greek fashion in urban planning. Wheeler presents fresh discoveries made at mounds in Ai Kanum, Begram, Pushkalavati-Shaikhan, and Taxila-Sirkap.

The burning of Persepolis marked the end of Empire for Achaemenid Persia, and the swarming artistry found themselves out of work. By 332 B.C. these unemployed craftsmen had found ready-made patronage in the Indian empire of Chandragupt Maurya, which had been waiting hungrily to celebrate its religious and secular aspirations. The predominantly folk-art of the India of that time now took on adult proportions worthy of the growing maturity of Hindu speculation. Persian and Indian architects were attacking similar problems with the same materials and under similar conditions; they involved themselves in the translation of timber and brick forms into stone masonary. The story of

sure of success, the Indian, Ir nian and Greeco-Roman elemen of this alluringly eclectic sty But the argument gets out of ha after this, for Wheeler races to complicate the issue with rather peculiar theory, based very skimy evidence. And th reviewer cannot see how t particular quotations from Sop Rostovtzeff and Rowland he the author either. The leit-mot of his argument seems to be th the vitality of Gandhara art, was spired totally by the Kushan vasions of the 2nd century A.D.

Would Sir Mortimer have believe that the devout and pro perous people of this region out the two centuries separati Menander's death in 140 B.C. a Kanishka's reign in 128 A.D. wit out expressing their new Mah yana creed in art? If not, the i plication seems to be that the folk were 'culturally' recepti to the very first savage Kusha in the middle of the1st century B Either Wheeler has over-estima ed the sensibilities of those fir Kushans as they swept throu Persia, or a lot of history mig have to be re-written. If Wheel accepts Daniel Schlumberge thesis that a significant Greec Bactrian art parental to that Gandhara existed in what is no Afghanistan, he should be in position to explain why, if at a the classical and Persia elemen of that are could not have tr velled to the Gandhara regi independent of the Kushans.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

were my problem...

Now they're gone!

New **Clearasil** opens, cleans, clears up pimples

o pimples cause you embarrassment? se Clearasil. Skin specialists recommend e active medication of Clearasil. It opens imples, fights bacteria, absorbs excess ls which clog skin pores and can cause mples...softens and loosens blackheads nany float out with normal washing). And learasil is skin-coloured, hides while it orks to keep you looking your best, always.

See how Clearasil works

Opens pimples
Keratolytic action helps peel away the pimple cap, so medication can get inside.

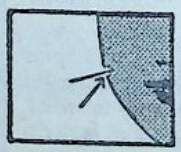

Fights bacteria
Antiseptic action helps stop growth of skin bacteria.

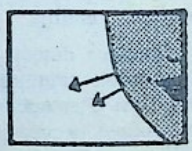

Clears up pimples
Oil-absorbing action helps remove excess oil that can clog pores and cause pimples.

America's No. 1 pimple cream

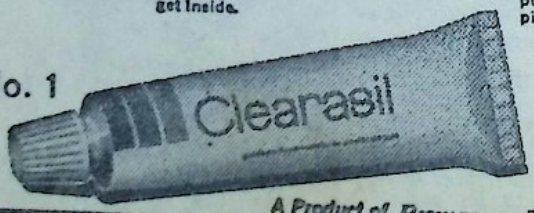

A Product of RICHARDSON HINDUSTAN LIMITED

GANG

RIVERS play a ... ant part in ... country than we ... the early civilizat... in lands bordering ...

The Babylonians ... to the oldest know... lived on the banks ... and Euphrates, the ... on the banks of the ... (Yellow River), the ... along the Nile and ... India on the banks ...

"Men may come ... go, but I go on for ever." Lord Tennyson's ... true as we can see ... of the cities that ... one time and are ... more than crumbling ... may be due to ... war, famine, outbre... or, more often, ... their course.

A river has its ... mountains where ... heavy. On reaching ... some sinks into ... some runs off in ... the Brook) that ... mountain side joins ... form a river.

Today, we start ... the Ganga, one of ... in many ways the ... of India's rivers—... an important part ... economic and relig... country, and with ... new industry becom... portant will con... vital role.

The Ganga is ... under this name. ... of two head streams ... yag. The smaller ... is considered the ... flows from an ... Gangotri Glacier ... greater head ... nanda, rises about ... of Nanda Devi ... Tibet border and ...

Bird'

WHEN we say ... bird's eye-... really that we ... ramic view — ... of the whole ... phrase "Bird's ... been used in the ... guage since time ... it is not correct ... bird's eye ...

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

श्रीरामलाल कपूर ट्रस्ट ग्रन्थमाला सं०—२८

ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापनों के परिशिष्ट

संकलयिता

श्री पं० युधिष्ठिरजी मीमांसक

प्रकाशक

मंत्री—श्रीरामलाल कपूर ट्रस्ट

गुरु बाजार, अमृतसर

प्रथम वार ५००

माघ सं० २०१४ वि०
दयानन्दाब्द १३३
फरवरी १९५८ ई०

मूल्य ।।।) या ·७५ नये पैसे

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

श्री रामलालकपूर ट्रस्ट के समस्त प्रकाशनों का

प्राप्ति स्थान—

(१) श्री रामलाल कपूर एण्ड सन्ज़ लिमिटिड गुरु बाजार अमृतसर
(२) ,, ,, ,, ,, ,, ,, नई सड़क देहली
(३) ,, ,, ,, ,, ,, ,, बिरहाना रोड कानपुर
(४) ,, ,, ,, ,, ,, ,, ५१ सुतार चौल बम्बई
(५) ,, ,, ,, ट्रस्ट मोतीझील बनारस नं० ६
(६) वेदवाणी कार्यालय, पो० अजमतगढ़ पैलेस, वाराणसी (बनारस नं० ६)

ट्रस्ट के उद्देश्य

प्राचीन वैदिक साहित्य का अन्वेषण, रक्षा तथा प्रचार,
तथा भारतीय संस्कृति, भारतीय शिक्षा,
भारतीय विज्ञान और चिकित्सा
द्वारा जनता की सेवा

मुद्रक—
रा. गो. महाडकर,
चन्द्रशेखर मुद्रणालय, विश्वेश्वरगंज वाराणसी (बनारस)।

Delhi Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

—:ओ३म्:—

प्राक्कथन

"ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन" के परिशिष्ट

विदित रहे कि–श्री० रामलाल कपूर ट्रस्ट ने "ऋषिदयानन्द के पत्र और विज्ञापन" नामक बृहद् ग्रन्थ पहिले लाहौर में सन् १९४६ में छापा था। पाकिस्तान बनने पर १३ अगस्त १९४७ को इस ग्रन्थ की लगभग ८०० प्रतियाँ (सारे मकान तथा सब स्टाक के साथ) जला दी गई थीं। अब पुनः बड़े प्रयत्न और व्यय से इसका परिवर्द्धित तथा परिशोधित संस्करण $\frac{२०}{८}\times\frac{३०}{}$ साइज के लगभग ६०० पृष्ठों में छप चुका है। जिसमें केवल उन पत्रों का संग्रह है जो ऋषि ने अन्य लोगों को लिखे, और जितने कि बड़ी कठिनाई से प्राप्त हो सके। पत्र विज्ञापनादि सब मिलाकर इस द्वितीय संस्करण में ८४४ तक हैं, जो प्रथम संस्करण में ५०० तक ही छपे थे॥

द्वितीय संस्करण की विशेषता

द्वितीय संस्करण में जहाँ बहुत सी टिप्पणियाँ नई दी गई हैं, तथा पूर्व टिप्पणियों में भी कुछ अंश यत्र तत्र बढ़ाये गये हैं, वहाँ इसमें ८ नये परिशिष्ट भी जोड़े गये हैं, जो प्रथम संस्करण में नहीं थे। इन ८ परिशिष्टों का परिचय निम्न प्रकार है—

(१) **परिशिष्ट १**—मूल ग्रन्थ के अन्त में पृ० ४८५ से ५३४ तक छप चुका है। पाठक यह परिशिष्ट मूल ग्रन्थ में देख सकते हैं। उसमें मूल ग्रन्थ मुद्रण के अनन्तर संगृहीत पत्र–विज्ञापन–पारसल–सूचनादि सं० ६०५ से ८४४ तक जोड़े गये हैं। प्रकृत संग्रह में नं० २ से ८ तक सात परिशिष्ट और हैं जो निम्न प्रकार हैं।

(२) **परिशिष्ट २**—इसमें मूल पाठ पर अवशिष्ट टिप्पणियाँ हैं। इस परिशिष्ट में अत्यन्त उपादेय और विचारणीय विषयों पर बहुत उपयोगी जानकारी दी गई है। कई स्थलों पर तो बहुत उत्तम प्रकाश पड़ता है।

(३) **परिशिष्ट ३**—इसमें मुख्यतया वेदभाष्य के विषय में अपूर्व आवश्यक सामग्री है। मुंशी इन्द्रमणि मुरादाबाद निवासी के मुकद्दमे का वृत्तान्त है–उदयपुराधीश महाराणा सज्जनसिंह द्वारा समर्पित–मानपत्र, ब्रह्मचारी रामानन्द का वेदभाष्य सम्बन्धी आवश्यक पत्र आदि हैं, जो अत्यन्त उपादेय हैं।

(४) **परिशिष्ट ४**—में आर्यभाषा को राजकीय कार्यों में प्रचलित करने के लिये ऋषि दयानन्द की प्रेरणा से आर्यसमाज मेरठ तथा कानपुर भेजे गये मैमोरियलों के नमूने।

(५) **परिशिष्ट ५**—में ऋषिदयानन्द के वास्तविक चित्रों का वर्णन है जो संवत् १९२४ सं०, १९२५, सं० १९३१ में जबलपुर–राजकोट–गिरगांव बम्बई में, सं० १९३२, सं० १९३६ को मेरठादि में, सं० १९३७, सं० १९३९, सं० १९४० में लिये गये जिनकी संख्या १४ है, उनका इतिहास दिया गया है।

(६) **परिशिष्ट ६**—ऋषिदयानन्द सरस्वती के स्थानान्तर में आगमन–प्रतिगमन की तिथि और तारीख। इस पर स्वर्गीय प्रो० पं० महेश प्रसाद जी मौलवी काशी ने लिखा था। जिसमें पं० युधिष्ठिर मीमांसक ने परिशोधन किया।

(७) **परिशिष्ट ७**—ऋषिदयानन्द के निर्वाण के समय विद्यमान पुस्तकों की सूची। यह बहुत उपयोगी संग्रह परोपकारिणी सभा अजमेर के सन् १८८५ के आवेदन पत्र में छपा था।

(८) **परिशिष्ट ८**—ऋषिदयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन में स्मृत कतिपय व्यक्तियों का संक्षिप्त परिचय।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ये परिशिष्ट पृथक् क्यों छापे गये

ये उपर्युक्त आठों परिशिष्ट हम "ऋषिदयानन्द के पत्र और विज्ञापन" ग्रन्थ के अन्त में ही छाप रहे थे। पहिला परिशिष्ट छाप भी दिया गया था कि ट्रस्ट के संचालकों ने यह विचार कर कि पुस्तक का दाम बहुत न बढ़ जावे, इनको पृथक् ही प्रकाशित किया है।

परिशिष्टों का महत्त्व

इन परिशिष्टों का अपना अपना महत्त्व पृथक् पृथक् है। ऋषिदयानन्द और उनके कार्य के विषय में गम्भीरता से विचार करने वालों के लिये ये परिशिष्ट बड़े ही महत्त्व के हैं। जहाँ "ऋषिदयानन्द के पत्र और विज्ञापन" अत्यन्त उपादेय हैं वहाँ ये आठों परिशिष्ट भी पाठकों को गहरी जानकारी प्राप्त कराने वाले हैं।

हमारी दृष्टि में पं० युधिष्ठिर मीमांसक ने इन परिशिष्टों को तय्यार करने में गम्भीर ऋषिभक्ति का परिचय दिया है, जिसके लिये वे ट्रस्ट तथा आर्य जगत् के धन्यवाद के पात्र हैं॥

आशा है देशवासी इनसे लाभ उठावेंगे।

निवेदक
ब्रह्मदत्त जिज्ञासु
प्रधान श्री० रामलाल कपूर ट्रस्ट सोसाइटी,
(गुरु बाजार), अमृतसर

मोतीझील—वाराणसी (बनारस) नं० ०
१३ फाल्गुन सं० २०१४
१४ फरवरी १९५८ ई०

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विषय सूची

१—परिशिष्ट २

पृष्ठ

मूलपाठ पर अवशिष्ट टिप्पणियां १

२—परिशिष्ट ३

ऋषिदयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन से सम्बद्ध आवश्यक सामग्री का संकलन १४

३—परिशिष्ट ४

आर्य भाषा को राजकीय कार्यों में प्रचलित करने के लिये ऋषिदयानन्द की प्रेरणा से भेजे गये मेमोरियलों के नमूने २२

४—परिशिष्ट ५

ऋषिदयानन्द के वास्तविक चित्रों का वर्णन ३१

५—परिशिष्ट ६

ऋषिदयानन्द सरस्वती के स्थानान्तर में आगमन-प्रतिगमन की तिथि और तारीख ३६

बङ्गाल में ऋषि दयानन्द के चार मास ५१

६—परिशिष्ट ७

ऋषिदयानन्द के निर्वाण के समय विद्यमान पुस्तकों की सूची ५६

—परिशिष्ट ८

ऋषिदयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन में स्मृत कतिपय व्यक्तियों का संक्षिप्त परिचय ६५

	पृष्ठ		पृष्ठ
१—राजा जय कृष्णदास	६६	१४—मोहन लाल विष्णु लाल पण्ड्या	७०
२—महात्मा कालूराम योगी	,,	१५—बारहट किशनसिंह	,,
३—कर्नल आल्काट और मेडम-ब्लेवेस्तकी	,,	१६—फतेह करण उज्ज्वल	,,
४—पं० श्याम जी कृष्ण वर्मा एम. ए. बैरिस्टर	,,	१७—रावराज तेजसिंह (जोधपुर)	,,
५—मनीषी समर्थदान बारहट	६७	१८—महाराजा सर प्रतापसिंह (जोधपुर)	७१
६—राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द	६८	१९—मुंशी दामोदर दास	,,
७—पं० भीमसेन शर्मा (इटावा)	,,	२०—महाराजा जसवन्तसिंह (जोधपुर)	,,
८—राय बहादुर लाला मूलराज एम० ए०	६९	२१—नन्ही भगतन (जोधपुर)	,,
९—कविराज श्यामलदास महामहोपाध्याय	,,	२२—मेहता विजयसिंह	७२
१०—राजाधिराज नाहरसिंह, (शाहपुरा)	,,	२३—गणेश पुरी	,,
११—ठा० नन्दकिशोरसिंह मेंबर स्टेट कौंसिल जयपुर	,,	२४—कविवर अमरदान	
१२—राव बहादुरसिंह (मसूदा-अजमेर)	७०	२५—झालावाड़ नरेश	,,
१३—महाराणा सज्जनसिंह (उदयपुर)	,,	२६—लोंग साहब	,,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

श्रीरामलाल कपूर ट्रस्ट का सस्ता और सुन्दर प्रकाशन

१—सन्ध्योपासनविधि—ऋषि दयानन्दकृत भाषार्थ, भजनों के सहित। यह अब तक ३०५००० तीन लाख पाँच हजार छप चुकी है। मूल्य -)

२—व्यवहारभानु—ऋषि दयानन्दकृत। बालकों को व्यवहार की उचित शिक्षा देनेवाला अपूर्व ग्रन्थ। यह ग्रन्थ प्रत्येक आर्य बालक-बालिकाओं के विद्यालयों में पाठ्य पुस्तक रखने योग्य है। मू० =)॥

३—ऋषि दयानन्द सरस्वती का स्वलिखित और स्वकथित आत्मचरित्र—ऋषि दयानन्द ने अमेरिका निवासी आल्काट महोदय की प्रेरणा से अपना कुछ वृत्तान्त लिखकर उन्हें भेजा था, जिसका अंग्रेजी अनुवाद उन्होंने थियोसोफिकल नामक अपने पत्र में छापा था। आर्यसमाज के उद्भट विद्वान श्री पं० भगवद्दत्तजी ने इस ग्रन्थ का सम्पादन किया है। ऋषि दयानन्द के प्रसिद्धि में आने से पूर्व की घटनाओं का यही एकमात्र प्रामाणिक लेख है। मूल्य ।=)

४—हवन-मन्त्र—प्रार्थना, स्वस्तिवाचन, शान्तिप्रकरण, बृहद् हवन और भजनों से युक्त। मू०-)

५—आर्याभिविनय—ऋषि दयानन्दकृत (प्रथम और द्वितीय संस्करण से मिलाकर अत्यन्त शुद्ध और सुन्दर छापा गया है। संदिग्ध स्थलों पर टिप्पणियाँ दी गई हैं)। मूल्य ।=)

६—आर्योद्देश्यरत्नमाला—ऋषि दयानन्दकृत। शुद्ध, सुन्दर तथा सटिप्पण संस्करण मूल्य -)

७—पञ्चमहायज्ञविधि—ऋषि दयानन्दकृत। ,, ,, ,, ,, ,, मूल्य =)

८—उरुज्योति अर्थात् वैदिक अध्यात्म-सुधा—श्री डा० वासुदेवशरणजी अग्रवाल लिखित। वैदिक अध्यात्म-विषयक उच्चकोटि का श्रेष्ठ ग्रन्थ। कागज छपाई श्रेष्ठ और सुन्दर। मूल्य सजिल्द ३) मात्र

९—ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास—लेखक-श्री पं. युधिष्ठिर जी मीमांसक। ऋषि दयानन्दके सभी मुद्रित और अमुद्रित ग्रन्थों के विषय में पूर्ण जानकारी देनेवाला अपूर्व ग्रन्थ। प्रचारार्थ मूल्य में भारी कमी की गई है। घटाया हुआ मूल्य बढ़िया सं० सजिल्द ४), साधारण सं० अजिल्द ३) मात्र

१०—अष्टाध्यायी मूल (सूत्रपाठ) अत्यन्त शुद्ध पाठ, २ सं० (डाक व्यय =) पृथक्) मूल्य ॥=)

११—ऋग्वेद-भाषाभाष्य-प्रथम भाग मूल्य २॥)

१२—वैदिक ईश्वरोपासना—ऋषि दयानन्द कृत। मूल्य १ प्रति =), सैकड़ा १५)

१३—संस्कृतपठनपाठन की अनुभूतसरलतमविधि—ले० पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु—दूसरा सं० १।)

१४—वैदिक वाङ्मय का इतिहास-प्रथम भाग, वेदों की शाखाएँ—द्वितीय परिवर्धित संस्करण—लेखक—श्री पं० भगवद्दत्त जी बी० ए० रिसर्च स्कालर। मूल्य १०)

१५—ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन—सम्पादक श्री० पं० भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कालर-द्वितीय संस्करण के सम्पादक श्री पं० युधिष्ठिर जीमीमांसक। इस नये संस्करण में पहिले के ऋषि के ५०० पत्रों विज्ञापनों से अतिरिक्त नये ३४४ पत्र और विज्ञापन, और छापे गये हैं। ऋषि का एक असली चित्र और उनके ३ असली पत्रों की फोटो भी छापी गई है॥ $\frac{२०\times३०}{८}$ के ६०० पृष्ठों का मूल्य ७)
वेदवाणी के ग्राहकों से ६) रु०

१६—क्षीरतरंगिणी—धातु पाठ की सबसे प्राचीन व्याख्या। मूल्य १२)

डाक व्यय सबका पृथक् होगा। बड़ा सूचीपत्र बिना मूल्य मंगवावें।

रामलाल कपूर एण्ड सन्स लि० पेपर मर्चेण्ट

गुरु बाजार, अमृतसर। नई सड़क, देहली। ५१ सुतार चॉल, बम्बई। बिरहाना रोड, कानपुर।
वेदवाणी कार्यालय पो० अजमतगढ़ पैलेस (मोतीझील) बनारस नं० ६।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन

परिशिष्ट (२)

मूल पाठ पर अवशिष्ट टिप्पणियां

[लेखक—युधिष्ठिर मीमांसक]

पृष्ठ १ पंक्ति १२—शिक्षा वेदस्था—यहां शिक्षा से अभिप्राय पाणिनीय शिक्षा से है। पाणिनीय शिक्षा के नाम से श्लोकबद्ध एक शिक्षा प्राप्त होती है। इस श्लोकबद्ध शिक्षा के दो पाठान्तर हैं। एक ऋग्वेदीय, दूसरा यजुर्वेदीय। ऋग्वेदीय पाठ में ६० श्लोक हैं और यजुर्वेदीय में ३५ श्लोक। कई लेखकों के मतानुसार पाणिनि के अनुज पिंगल ने किसी पाणिनीय शिक्षा के आधार पर इसे श्लोकबद्ध किया है। यह शिक्षा वस्तुतः पाणिनीय नहीं है। वास्तविक पाणिनीय शिक्षा सूत्रबद्ध थी। उस के अनेक सूत्र व्याकरण के प्राचीन ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं। इस सूत्रबद्ध शिक्षा का एक मात्र खण्डित हस्तलेख ऋषि दयानन्द को सं० १९३६ को प्राप्त हुआ था और उसे उन्होंने आर्यभाषा व्याख्या सहित वर्णोच्चारणशिक्षा के नाम से प्रसिद्ध किया था[1]। देखो हमारा "ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास" पृष्ठ १५५–१५८, "संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास" पृष्ठ १६०–१६१ तथा "शिक्षा शास्त्र का इतिहास" (यह अभी अप्रकाशित है)।

यतः वास्तविक पाणिनीय शिक्षा ऋषि दयानन्द को सं० १९३६ में प्राप्त हुई, अतः यहां (सं० १९२७ के इस विज्ञापन में) ऋषि को श्लोकबद्ध पाणिनीय शिक्षा के नाम से जो ग्रन्थ प्रसिद्ध है, वही अभिप्रेत रहा होगा। अष्टाध्यायीभाष्य जिस की रचना ऋषि दयानन्द ने श्रावण वदी २ सं० १९३५ (१५ अगस्त १८७८) से कुछ पूर्व की थी (देखो ऋ० द० ग्रन्थेतिहास पृष्ठ ११४–१२०) उस के प्रारम्भिक भाग में भी इसी श्लोकबद्ध पाणिनीय शिक्षा के वचन उद्धृत हैं। सौवर की भूमिका में याज्ञवल्क्य शिक्षा का श्लोक भी उद्धृत है। अतः यहां यह भी सम्भव है कि किसी ग्रन्थविशेष की ओर संकेत न होकर सामान्य शिक्षा-शास्त्र की ओर संकेत हो।

पृष्ठ १ टिप्पणी २ पर—इस विषय पर विशेष विचार हमने "वेदार्थ की विविध प्रक्रियाओं का ऐतिहासिक अनुशीलन" नामक महत्त्वपूर्ण निबन्ध में किया है। देखो 'वेदवाणी' (मासिक-काशी) वर्ष ६ अंक ४ पृष्ठ १९ टि० ४।

पृष्ठ २ पंक्ति ५—द्वादश-उपनिषदः—पृष्ठ ३६ पं० २, ३ में दश उपनिषदें गिनाई हैं, उन में ईश श्वेताश्वेतर और कैवल्य की गणना नहीं है। दश संख्या की पूर्ति के लिए 'मैत्रेयी' को सम्मिलित किया है। पृष्ठ १९ पं० १९ में ईश की गणना करके १० संख्या बताई है, वहां मैत्रेयी नहीं गिनी गई। सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों में इन्हीं दश उपनिषदों को प्रामाणिक माना है।

पृ० २ पंक्ति ६—तत्रोपनिषन्मन्त्राणां व्याख्यानमस्ति—वेदान्तसूत्रों की रचना प्रधानतया औपनिषद वाक्यविवेचना के लिए हुई है। अत एव ऋषि दयानन्द ने वेदान्त सूत्रों के अध्ययन से पूर्व दश उपनिषदों का अध्ययन आवश्यक माना है। देखो सत्यार्थप्रकाश समु० ३, पठनपाठनविधि।

---

१ प्रो० मनोमोहन घोष ने श्लोकात्मक पाणिनीय शिक्षा के विविध पाठों और व्याख्याओं का सम्पादन करके 'पाणिनीयशिक्षा' नामक ग्रन्थ 'कलकत्ता यूनिवर्सिटी' से प्रकाशित किया है। उसकी भूमिका में कल्पित श्लोकात्मक शिक्षा को वास्तविक और ऋषि दयानन्द द्वारा प्रकाशित असली सूत्रात्मक पाणिनीय शिक्षा को दयानन्द-रचित सिद्ध करने की धृष्टता की है। हमने उसकी समालोचना 'वेदवाणी' सं० २०१२ माघ, वर्ष ८ अंक ४, में प्रकाशित की है। देखो पृष्ठ १८॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पृष्ठ २ पंक्ति ७—कात्यायनादीनि सूत्राणि—इन से अभिप्राय वेदाङ्गान्तर्गत कल्प-शास्त्र से है। कल्प शास्त्र के तीन भेद हैं—श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र और धर्मसूत्र।

पृष्ठ २ पंक्ति ९—वेदानुकूला तर्कविद्यास्ति—नामिक की भूमिका में महाभाष्य से उद्धृत पाठ के 'वाकोवाक्य' पद का अर्थ भाषा में "दर्शनशास्त्र" किया है। हमारा विचार है वहाँ भी ऋषि दयानन्द का अभिप्राय तर्कशास्त्र=न्यायदर्शन से ही होगा।

पृष्ठ २ पंक्ति ११—शिष्टानां जनानां.....—सम्भव है यहाँ पर उद्योगपर्वान्तर्गत विदुरनीति में निर्दिष्ट पण्डितों और मूर्खों के लक्षण अभिप्रेत हों।

पृष्ठ २ पंक्ति १२—एकविंशति शास्त्राणि—यह सामान्य गणना है। पूर्ण संख्या ४ पृष्ठ ७ पंक्ति ४, ५ में २६ ग्रन्थ गिनाए हैं। इसी लेख में पृष्ठ १० पं० ५ में २० ऋषियों के बनाए और ४ "वेद" इस प्रकार २४ ग्रन्थ लिखे हैं। सम्भव है यहां २२ के स्थान में २० लेखक प्रमाद से हो गया होगा।

पृष्ठ २ टिप्पणी २ पर—चौदह विद्याओं का निर्देश वायुपुराण अ० ६१ श्लोक ७८ में भी है।

पृष्ठ ३ पंक्ति ६—चौरी—संस्कृत भाषा में 'चौरी' पद चोर की स्त्री और चोरी दोनों अर्थों में प्रयुक्त होता है। चोरी अर्थवाला चौरी पद 'चोरस्य भावः चौर्यम्–ष्यञ् प्रत्ययः (अ० ५।१।१२४) स्त्रियां षित्त्वात् ङीष्' से बनता है।

पृष्ठ ४ पंक्ति ३—श्रेष्ठोपमायोग्यस्य गङ्गादत्तशर्मणे—कुशलार्थक स्वस्ति पद के योग में अष्टाध्यायी २।३।७३ से षष्ठी और चतुर्थी विभक्ति होती है। परन्तु महाभाष्यकार ने कहा है—**एकस्याकृतेश्चरितः प्रयोगो द्वितीयस्यास्तृतीयस्याश्च न भवति। तद्यथा गोषु स्वामी अश्वेषु च** (महा० ३।१।४०) अर्थात् किसी एक शब्द के योग में दो तीन विभक्तियों का विधान किया भी हो, तब भी एक वाक्य में विभिन्न विभक्तियों का प्रयोग नहीं हो सकता। यथा अष्टा० २।३।३९ से स्वामी शब्द के योग में षष्ठी और सप्तमी का सामान्य विधान होने पर भी एक वाक्य में 'गवां स्वामी अश्वेषु च' ऐसा प्रयोग नहीं होता। ऋषि दयानन्द महाभाष्यकार के इस नियम को नहीं मानते। वे प्रायः एक से अधिक विभक्तियों का विधान होने पर एक ही वाक्य में विभिन्न विभक्तियों का प्रयोग करते हैं। यथा—**सर्वज्ञत्वेन**.....**श्रोतृत्वेन सर्वाधारकत्वेनान्तर्यामितया**.....**शोधकत्वेन सर्वस्य मित्रत्वाच्च** (ऋग्भाष्य १।१०।९ भावार्थ, इसी प्रकार देखो यजुर्वेद भाष्य २।७॥३।२५ का संस्कृतभावार्थ) यहां हेतु में एक ही वाक्य में तृतीया और पञ्चमी का निर्देश किया है (पाणिनीय लक्षणानुसार हेतु में पञ्चमी प्राप्त नहीं है, परन्तु प्राचीन आर्ष ग्रन्थों में हेतु में पञ्चमी का प्रयोग प्रायः देखा जाता है)। ऋषि दयानन्द का एक वाक्य में विभिन्न विभक्तियों का प्रयोग करना महाभाष्यकार के मतानुसार युक्त न होने पर भी प्राचीन आर्ष ग्रन्थों के अनुकूल होने से शुद्ध है। यथा—शतपथ ब्रा० १।१।२।७ में लिखा है—**अनस एव यजूंषि सन्ति, न कौष्ठस्य न कुम्भ्यै**। इस वाक्य में **चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि** (अष्टा० २।३।६१) सूत्र से विहित षष्ठी और चतुर्थी दोनों का एक साथ प्रयोग हुआ है। अतः ऋषि दयानन्द की संस्कृत भाषा को समझने के लिये पाणिनीय व्याकरण और उस की व्याख्याओं के अतिरिक्त अति प्राचीन आर्ष वाङ्मय का भी गहरा अनुशीलन करना चाहिये। पाणिनीय व्याकरण तो अपने समय का सबसे अन्तिम आर्ष व्याकरण है और वह भी प्राचीन व्याकरणों की अपेक्षा पर्याप्त संक्षिप्त है (देखो हमारा "संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास" प्रथम भाग अ० १ पृष्ठ १–४१)। अथवा यह भी सम्भव हो सकता है कि महाभाष्यकार का उक्त वचन एकदेशी हो।

पृष्ठ ५२ विज्ञापनपत्रमिदम्—यह विज्ञापन पत्र मूल रूप से ऋषि दयानन्द ने संस्कृतभाषा में लिखा होगा, क्योंकि इस काल तक ऋषि दयानन्द भाषण तथा शास्त्रार्थ संस्कृत में ही किया करते थे। यह संवाद निश्चय ही संस्कृत भाषा में हुआ था, यह बात इस विज्ञापन में संस्कृत भाषा में उद्धृत वाक्यों और पद प्रयोगों पर किये गये विचार से

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दृढ़ होती है (देखो पृ० ८ पं० ५ में संस्कृत के वाक्य में ३ बार लिखे 'एव' शब्द के विषय में)। यह मूल विज्ञापन ऋषि का अपना लिखा हुआ है, किसी दूसरे ने इस शास्त्रार्थ को लेख बद्ध नहीं किया। यह बात इसमें स्थान स्थान पर प्रयुक्त 'मैं' 'मैंने' (पृष्ठ ६) 'मुझ से' (पृष्ठ ७) आदि प्रयोगों से स्पष्ट है। यह भाषानुवाद किसका किया है, यहां अज्ञात है।

पृष्ठ १० पंक्ति ५, ६—वेदादिक २० बीस सनातन ऋषि मुनियों·····तथा परमेश्वर के किये ४ वेद·····—यहां २४ ग्रन्थ कहे हैं, परन्तु इसी विज्ञापनपत्र में पृष्ठ ७ पं० ४, ५ में २६ ग्रन्थ गिनाए हैं। सम्भव है, यहां २२ के स्थान में २० भूल से लिखा गया होगा। पृष्ठ १, २ में एकविंशति (२१) शास्त्र गिनाए हैं।

पृष्ठ १३ पं० २—सब नष्ट हैं—यहां 'सब भ्रष्ट हैं' पाठ चाहिये।

पृष्ठ १३ पं० २३, २४—परन्तु जहां जहां·····अन्यत्र नहीं—तुलना करो सत्यार्थप्रकाश समु० १ तथा आर्याभिविनय उपोद्घात प्रकरण।

पृष्ठ १३ पं २७,२८—निरुक्त में भी यह लिखा है कि (यत्र देवतोच्यते तत्र तल्लिङ्गो मन्त्रः·····—यह निरुक्त का वचन नहीं है, मीमांसा के 'अपि वा शब्दपूर्वत्वात् यज्ञकर्म प्रधानं स्याद्, गुणत्वे देवताश्रुतिः (९।१।९) सूत्र के अनुसार मीमांसकों का सिद्धान्त है। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पृष्ठ ६० संस्क० ४ (वेदविषयविचार) में 'अथातो दैवतम्·····तद्दैवतः स मन्त्रो भवति' (नि० ७।१) के व्याख्यान में लिखा है—"अतः किं विज्ञेयम्—यत्र यत्र देवतोच्यते तत्र तत्र तल्लिङ्गो मन्त्रो ग्राह्य इति"। इससे यह भी सम्भव है कि यहां भी ऋषि दयानन्द ने निरुक्त के उक्त वचन का स्वशब्दों में अनुवाद किया हो।

पृष्ठ १६ पं० ३२—जब चित्त प्रत्येक चेतन से ही·····—यहां 'जब चित्त प्रत्यैकतानता से ही·····ऐसा पाठ चाहिये।

पृष्ठ १९ पं० १९—दश उपनिषद्—यहां पूर्व पृष्ठ २ सम्बन्धी 'द्वादश उपनिषदः' की टिप्पणी देखें (पृष्ठ १ पर)।

पृष्ठ २१ पं० १२—जिन को दूर छोड़ने को कहा कि न इन को पढ़े न पढ़ावें—यह संकेत सत्यार्थप्रकाश समु० ३ में लिखित पठनपाठनविधि की ओर है।

पृष्ठ २३ पं० १९—दो जिल्द ऋग्वेद के—सम्भवतः यह मैक्समूलर सम्पादित पदपाठयुक्त मूल ऋग्वेद के पुस्तक रहे होंगे।

पृष्ठ २३ पं० २४—कितने अध्याय तक—अर्थात् कितने समुल्लास तक।

पृष्ठ २४ पं०—१२ श्रीरस्तु—श्री शब्द का प्रयोग अगले पूर्ण संख्या १४, १५, १६, १७ में भी है। यह श्री शब्द से पौराणिक मङ्गलाचरण अभिप्रेत नहीं है। क्योंकि मङ्गलाचरण रूप में प्रयुक्त 'श्री' शब्द का खण्डन इस पत्र लिखने से पूर्व रचे गये सत्यार्थप्रकाश (प्र० सं०) के प्रथम समुल्लास में ऋषि दयानन्द कर चुके थे। इस बात की पुष्टि श्री शब्द के साथ प्रयुक्त 'अस्तु' पद से भी होती है। पूर्ण संख्या १८ में 'श्रीयुक्ताः सन्तु' पाठ भी इसी अभिप्राय की ओर संकेत करता है। यदि यहां पौराणिक मङ्गलाचरण अभिप्रेत होता तो केवल 'श्री' शब्द का प्रयोग होना चाहिये था।

पृष्ठ २५ पं० ५—संस्कार की चोपड़ी—अर्थात् संस्कारविधि। गुजरात में पुस्तक को चोपड़ी कहते हैं।

पृष्ठ २५ पं० ५—और नियमों की भी—आर्यसमाज के नियमों की पुस्तक। इसका उल्लेख पूर्ण सं० १५ (पृ० २७) के पत्र में भी है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पृष्ठ २५ पं० ९—सत्यार्थप्रकाश का भाग अभी एक एक रुपये मिलता है—वेदान्तिध्वान्तनिवारण प्रथम संस्करण के अन्त में छपी पुस्तक विक्रय सूचना में सत्यार्थप्रकाश दूसरे भाग का मूल्य भी १) रु० लिखा है। देखो 'हमारा ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास' परिशिष्ट ७ पृष्ठ ९०।

पृष्ठ २६ पं० २—'आकृष्णेनेति' मन्त्र के अर्थ हमारा—यह मन्त्रार्थ 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' परिशिष्ट १ में पूर्ण संख्या ६०६ (पृष्ठ ४८५) पर छपा है।

पृष्ठ २६ पं० २७, २८—मुम्बई में चैत्र शुद्ध ५ शनिवार के दिन·····समाज का····· आरम्भ हुआ—इस विषय में 'वेदवाणी' वर्ष ६ अङ्क ५, ८, ११ में हमारे लेख दर्शनीय हैं।

पृष्ठ० २८ पं० ७—आर्याभिविनय के दो अध्याय—आर्याभिविनिय में अध्याय नहीं हैं, प्रकाश हैं। इस पत्र से यह भी ज्ञात होता है कि आर्याभिविनय ६ अध्यायों या प्रकाशों में पूर्ण होने वाला था, परन्तु किन्हीं कारणों से २ ही अध्याय या प्रकाश बन कर रह गये। इस बात की सूचना आर्याभिविनय की उपक्रमणिका के पांचवें श्लोक की भाषा से भी मिलती है। आर्याभिविनय के विषय में अनेक ज्ञातव्य विषयों का उल्लेख हमने 'ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास' नामक ग्रन्थ में (पृष्ठ ६९–७९ तक) किया है। आर्याभिविनय का जो संस्करण रामलाल कपूर ट्रस्ट से प्रकाशित हुआ है, वही प्रामाणिक और शुद्ध है। अजमेर मुद्रित संस्करणों के पाठ अनेक स्थानों पर भ्रष्ट तथा त्रुटित हैं।

पृष्ठ २९ पं० १ लश्कर में—अर्थात् छावनी (पूना छावनी) में।

पृष्ठ ३१ पं० ७—श्रीयुत लालजी—यह व्यासोपनाम पं० बैजनाथ शर्मा का पुत्र था। इसी के उद्योग से आर्याभिविनय और संस्कारविधि के प्रथम संस्करण छपे थे। देखो ऋ० द० ग्रन्थेतिहास, परिशिष्ट २ पृष्ठ ३०, ३२।

पृष्ठ ३१ पं० ७—लक्ष्मणशास्त्री—यह व्यक्ति संस्कारविधि और आर्याभिविनय के प्रथम संस्करणों का संशोधक था। देखो ऋ० द० के ग्रन्थों का इतिहास, परिशिष्ट २, पृष्ठ ३०, ३२।

पृष्ठ ३४ पं० २३—यथाशक्त्या—अव्ययीभावश्च (अष्टा० २।४।१८) सूत्र के अनुसार नपुंसकलिङ्ग और **अव्ययीभावश्च** (अष्टा० १।१।५१) से अव्यय संज्ञा होने से 'यथाशक्ति' प्रयोग होना चाहिये, परन्तु ये दोनों नियम प्रायिक हैं। महाभाष्य १।१।२६ के **'यथाप्राप्तश्चेक् श्रूयेत'** वाक्य में 'यथाप्राप्तः' पद का प्रयोग इनके प्रायिकत्व में ज्ञापक है। काशिका ३।३।१३५ में प्रयुक्त 'यथाप्राप्तस्य' के व्याख्यान में हरदत्त ने 'यथा येन प्रकारेण प्राप्तं प्राप्तिर्यस्येति बहुव्रीहिः, अव्ययीभावे त्वम्भावः स्यात्' लिखा है, वह सब आधुनिक लक्षणैकचक्षु वैयाकरणों की क्लिष्ट कल्पना मात्र है।

पृष्ठ ३६ पं० २, ३—·····केन ये दश उपनिषद्—यहां सबसे मुख्य ईश उपनिषद् को छोड़ दिया है। इसका कारण यह है कि मूल ईशोपनिषद् माध्यन्दिनी मूल यजुःसंहिता के अन्तर्गत है, अतः उसका वेद में ही अन्तर्भाव हो जाता है। उसकी पृथक् गणना की आवश्यकता नहीं रहती। इस बात का संकेत ऋषि दयानन्द ने राजा शिवप्रसादजी के नाम लिखे पत्र (पूर्ण संख्या २३० के पृष्ठ १८६) में किया है—**"मैं वेदों में एक ईशावास्य को छोड़ कर अन्य उपनिषदों को नहीं मानता"**। इस विषय में पृष्ठ १८६ की टि० १ भी देखें।

पृष्ठ ३८ पं० २१—यास्कमुनिकृतनिघण्टोः—निघण्टु यास्क-मुनिकृत है, यह बात ऋषि दयानन्द ने निघण्टु की भूमिका में भी लिखी है। आधुनिक विद्वान् निघण्टु को यास्क की कृति नहीं मानते। श्री पं० भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर ने आधुनिक विद्वानों के इस मत का खण्डन और ऋषि दयानन्द के मत का मण्डन अनेक अकाट्य प्रमाणों से किया है। देखो वैदिक वाङ्मय का इतिहास—'वेदों के भाष्यकार' नामक भाग, पृष्ठ १८१–१९५।

पृष्ठ ३८ पं० २६—सर्वत एवापोभिः—वैदिकवाङ्मय में 'अप्, अप, अपस्' ये समानार्थक तीन शब्द प्रयुक्त होते हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पृष्ठ ३९ पं० ५—इन्द्र नाम है सूर्य का, सो निघण्टु में लिखे हैं—यह भाषा की पंक्ति संस्कृत पाठ के विपरीत है। संस्कृतपाठानुसार यहां 'वराह अहि वृत्र असुर ये चार मेघ के नाम निघण्टु में लिखे हैं' ऐसा पाठ होना चाहिये।

पृ० ३९ पं० ६—जब त्वष्टा जो सूर्य है अर्थात् मेघ—यहां 'अर्थात्' के स्थान में 'वह' पद चाहिये।

पृ० ३९ पं० १४—इस से मेघ का नाम त्वष्टा है—यहां 'त्वष्टा' के स्थान में 'त्वाष्ट्र' पद चाहिये।

पृ० ३९ पं० २५—इत्यादि बहुत कथा—अर्थात् विषय।

पृ० ४० पं० १४—अद्यतन शब्द से—अद्यतन (आज) शब्द की व्याख्या प्राचीन ग्रन्थों में दो प्रकार की देखी जाती है। एक **'आन्याय्यादुत्थानादान्याय्याच्च संवेशनादेषोऽद्यतनः कालः'**। अर्थात् न्याय्य प्रातः काल उठने के समय (ब्राह्ममुहूर्त) से न्याय्य सोने के समय तक का काल अद्यतन कहाता है। इस लक्षण में प्रायः रात्रि के १० से प्रातः ४ बजे तक के काल की गिनती अद्यतन में नहीं होती। दूसरा लक्षण—**'अहरुभयतोऽर्धरात्रमेषोऽद्यतनः कालः'** है। तदनुसार अर्धरात्रि पर्यन्त काल अद्यतन कहाता है (ये दोनों लक्षण काशिकावृत्ति १।२।५७ में लिखे हैं)। आजकल के पाश्चात्य विद्वान् भी द्वितीय लक्षण को मानते हैं, रात्रि के १२ बजने के उत्तर क्षण से वे तारीख बदलते हैं। भारतीय ज्योतिषी सूर्योदय क्षण से लेकर अगले सूर्योदय के पूर्व क्षण तक अद्यतन काल मानते हैं। यद्यपि यहां ऋषि दयानन्द ने अद्यतन की व्याख्या द्वितीय लक्षणानुसार की है, परन्तु अनेक पत्रों में भारतीय ज्योतिषियों के व्यवहारानुसार भी निर्देश किया है। (देखो पूर्ण संख्या ४२३ (पृष्ठ ३४१ "अब इन्दोर से आज दो बजे रात्री की गाड़ी·····"।

पृष्ठ ४० पं० २८—आर्य धर्म में श्रद्धावान् हुए—भारतसुदशाप्रवर्तक मई १८८३ के अंक में पं० कालूराम जी के विषय में लिखा है—"वर्तमान में आठ सहस्र मनुष्य इन के उपदेश पर पूर्ण प्रीति रखते हैं"।

पृष्ठ ५६ पं० १०—उव्वट और रावण के भाष्य—यह रावण दाक्षिणात्य पण्डित था, लंकेश नहीं। रावणकृत ऋग्वेद के पदपाठ का सम्पूर्ण हस्तलेख फर्रुखाबाद निवासी पं० केशवदेव निर्मल के घर में विद्यमान था। उसमें से ७ वें अष्टक का पदपाठ, जिसके अन्त में साक्षात् रावण का नाम निर्दिष्ट था, ३ मार्च सन् १९२७ को महाशय मामराजजी ले आये थे। वह श्री पं० भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर, तात्कालिक अध्यक्ष लाहौर दयानन्द कालेजस्थ लालचन्द पुस्तकालय, के पास रहा। तत्पश्चात् डा० लक्ष्मणस्वरूप जी अध्यक्ष ओरियण्टल कालेज लाहौर को फोटो कराने के लिये दिया गया। उन्होंने उसका फोटो कराकर पञ्जाब विश्वविद्यालय लाहौर के पुस्तकालय में रख दिया, परन्तु मूल हस्तलेख उनसे खोया गया। उक्त फोटो भी विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के सहस्रों हस्तलेखों के साथ लाहौर (पाकिस्तान) में ही रह गया। उसकी कोई भी प्रति अब अन्यत्र नहीं है।

सायण, महीधर, उव्वट और रावण कृत वेदभाष्यों के लिये श्री पं० भगवद्दत्त जी कृत 'वैदिक वाङ्मय का इतिहास' का 'वेदों के भाष्यकार' नामक भाग देखना चाहिये।

पृष्ठ ५८ पं० २५—वेदभाष्य में शब्दों के इतिहास को खोलता है—अमुक शब्द का अमुक अर्थ क्यों है? इस रहस्य को ऋषि दयानन्द ने शब्दों के यौगिक अर्थ करके दर्शाया है। उसी की ओर यह संकेत है। अति प्राचीन काल में संस्कृत के समस्त नाम पद यौगिक अर्थात् क्रियानिमित्तक ही माने जाते थे। शब्दों को रूढ मानने की कल्पना बहुत उत्तरकालीन है। विक्रम से कई शताब्दी पूर्व के कातन्त्र व्याकरण के रचयिता ने संस्कृत के पाचक याजक आदि सभी कृदन्त शब्दों को वृक्ष आदि के समान रूढ मान कर उनका प्रकृति प्रत्यय विभाग ही नहीं दर्शाया। देखो हमारा "वेदार्थ की विविध प्रक्रियाओं का ऐतिहासिक अनुशीलन" नामक लेख, 'वेदवाणी' वर्ष ६ अंक ७ पृष्ठ १९, २०।

पृष्ठ ६६ पं० २४—वेदभाष्यभूमिका अब लगभग समाप्ति को आ रही है—यहां भूमिका की छपाई से अभिप्राय है, लेखन बहुत काल पूर्व ही समाप्त हो चुका था।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पृष्ठ ६७ पं० २८—पहुँचना लिखा है—इससे आगे जोड़ें —"जालन्धर के शास्त्रार्थ में भी १३ सितम्बर को ही जालन्धर पहुँचने का उल्लेख है।"

पृष्ठ ६९ पं० ५—विज्ञापन पौष या माघ मास में दिया जायगा—यह विज्ञापन पूर्ण संख्या ६७ पृष्ठ ८४, ८५ पर छपा है।

पृष्ठ ७२ पं० १—अल्प ज्ञान वाले बच्चे भी बिना किसी सहायता के समझ सकेंगे—इस से स्पष्ट है कि ऋषि दयानन्द ने अपना वेदभाष्य सीधी और सरल भाषा में रचा है, रहस्यमयी भाषा में नहीं रचा। अतः 'ऋषि दयानन्द के वेदभाष्य को समझना साधारण व्यक्ति का कार्य नहीं' इत्यादि कहकर उसे मध्यकालीन साम्प्रदायिक आचार्यों के ग्रन्थों के समान रहस्यमय बनाना ऋषि दयानन्द के अभिप्राय के विरुद्ध है। परन्तु यह भी ध्यान रहे, जब तक ऋषि दयानन्द की वेदार्थशैली और भाव को हृदयंगम न कर लिया जायेगा, तब तक सरल शब्दों में प्रतिपादित वेदार्थ भी समझ में कदापि न आवेगा।

पृष्ठ ७२ पं० १०—अगले मास में प्रकाशित की जायेगी—यह सूचना (विज्ञापन) पूर्ण संख्या ६७ पृष्ठ ८४, ८५ पर छपी है।

पृष्ठ ७८ पं० ९—मेरे दूसरे पत्र—अर्थात् पूर्ण संख्या ५७, ५८ के।

पृष्ठ ७९ पं० ७—पौष कृष्ण ७ का—अर्थात् २६ दिसम्बर बुधवार सन् १८७८ का।

पृष्ठ ८१ पं० ५—एक विज्ञापन दिया जायगा—यह पूर्ण संख्या ६७ पर छपा है।

पृष्ठ ८६ पं० २४—नोटिस दिया था—यह संकेत पूर्ण संख्या ६७ के विज्ञापन की ओर है।

पृष्ठ ८९ पं० २१—वेद ईश्वर की सब सत्यविद्याओं का कोश—कई लोग आर्यसमाज के तृतीय नियम **"वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है"** इसमें **'सब'** पद को प्रक्षिप्त मानते हैं, वे वस्तुतः भ्रान्त हैं, यह इस वाक्य से तथा पूर्ण संख्या ८६ (पृष्ठ ९६ पं० ३) के **'सर्वसत्यविद्याकोशेषु वेदेषु'** वाक्य से स्पष्ट है। अतः तृतीय नियम में उल्लिखित 'सब' पद ऋषि दयानन्द का ही रखा हुआ है, यह निश्चित है।

पृष्ठ ९९ पं० ११—प्रश्नोत्तर हलधर—यह पुस्तक हमें उपलब्ध नहीं हुई। इस विषय में हमारे 'ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास' नामक ग्रन्थ में पृष्ठ १७५, १७६ देखें।

पृष्ठ ९० पं० २३,२४—दयानन्दसरस्वतिस्वामिनः—यहां **'ङ्यापोः संज्ञाछन्दसोर्बहुलम्'** (६।३।६३) इस पाणिनीय सूत्र से ह्रस्वत्व जानना चाहिये।

पृष्ठ ९६ पं० ३—सर्वसत्यविद्याकोशेषु—तुलना करो **'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है'** आ० स० नि० ३। इसी पृष्ठ की पूर्व पृष्ठ ८९ पं० २१ पर लिखी टिप्पणी देखें।

पृष्ठ ९७ पं० ५—स्वाहया—स्वाहा शब्द निपातों में गिना जाता है। परन्तु यह नाम और निपात दोनों प्रकार का है। तुलना करो—**'स्वाहयेव हविर्भुजम्'** (रघु० १।५६)। इस प्रकार के अन्य भी अनेक उभयविध शब्द संस्कृत भाषा में देखने में आते हैं।

पृष्ठ ९७ पं० २२—मान्यकर्त्री—ऋषि दयानन्द सर्वत्र (यथा यजुर्वेदभाष्य २।१०,११ के संस्कृत भावार्थ में) (संस्कृत तथा भाषा में भी) मान शब्द के स्थान में **'मान्य'** शब्द का व्यवहार करते हैं। यह **'मन ज्ञाने'** से भाव में ण्यत् प्रत्यय होकर बनता है। इसका गुजराती और राजस्थानी भाषा में प्रयोग इसी प्रकार होता है। **'मानमर्हति मान्यः'** तद्धित प्रत्ययान्त **'मान्य'** शब्द ण्यत् प्रत्ययान्त मान्य से पृथक् है।

पृष्ठ ९७ पं० २५—अश्वेष्वग्न्यादिवेगवत्सु पदार्थेषु—यहां अश्व शब्द का अर्थ वेगवान् पदार्थ किया है। यह अर्थ **'अश्व शीघ्रगतौ'** धातु से **'अश्नुते वेगेन गच्छति इत्यश्वः'** निष्पन्न होता है। अश्व वस्तुतः मूल धातु

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

है। इस प्रकार की वृक्ष पुष्प आदि अनेक मूल धातुएं काशकृत्स्न और पाणिनीय धातु पाठ में उपलब्ध होती हैं। महाभाष्यकार ने भी अनेक नाम-धातुओं को पक्षान्तर में मूल धातु ही माना है। देखो महाभाष्य अ० ३ पाद १ सूत्र ८, ११। 'अश्व इवाचरति अश्वति' बनाने में लक्षणारूपी महादोष उपस्थित होता है। अतः ऐसे प्रयोगों की सिद्धि के लिये इन्हें मूल धातु मानना ही युक्त है।

पृष्ठ ९९ पं० ११-१२—मया···वेदविरुद्धमतखण्डनवेदान्तिध्वान्तनिवारण···ग्रन्था निर्मिताः—इस वाक्य से स्पष्ट है कि वेदविरुद्धमतखण्डन और वेदान्तिध्वान्तनिवारण ग्रन्थ ऋषि दयानन्द के रचे हुये हैं। इस विषय में विशेष हमारे ऋ० दयानन्द ग्रन्थेतिहास में देखो।

पृष्ठ १०१ पं० १४—तद्यथा सेयं—ये 'तद्यथा' पद अस्थान में पढ़े हैं। अगली पंक्ति के 'संक्षेपतो लिख्यते' पद से परे पढ़ने चाहियें।

पृष्ठ १०१ पं० १६—सुगन्धियुक्तैर्नवीनैः शुद्धैर्वस्त्रैः—यद्यपि पाणिनीय व्याकरण ५।४।१३५ के अनुसार 'सुगन्धि' पद सुगन्धयुक्त द्रव्य के लिये व्यवहृत होना चाहिये, तथापि सुपूर्वक चौरादिक णिजन्त गन्ध धातुसे 'अच इः' (उ० ४।१४८) से भाव में इ प्रत्यय होकर सुगन्धि शब्द सुगन्ध के अर्थ में उत्पन्न होता है। यह आज भी हिन्दी भाषा में इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है। ऋषि दयानन्द ने अन्यत्र भी सुगन्ध अर्थ में 'सुगन्धि' शब्द का प्रयोग किया है। यथा—सुगन्धि--पुष्टि-मिष्ट-बुद्धिवृद्धि-शौर्य-धैर्य-बल-रोगनाशकरैर्गुणैर्युक्तानां द्रव्याणाम् (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पृष्ठ २६६ सं० ४, पञ्चमहायज्ञविधि देवयज्ञ के अन्त में)।

पृष्ठ १०१ पं० २४—यजुर्वेदस्यैकोनचत्वारिंशाध्यायस्थं प्रतिमन्त्रमुच्चार्य—यजुर्वेद के ३९ वें अध्याय में १३ मन्त्र हैं। परन्तु संस्कारविधि में ५-९ तक ५ मन्त्रों को छोड़कर शेष ८ मन्त्रों के प्रतिवाक्य भेद करके ६३ आहुतियां देने का विधान किया है। इससे स्पष्ट है कि यजुर्वेद के मूल पाठ में जितने भाग पर एक संख्या दी जाती है, वह पूरा भाग भी एक मन्त्र माना जाता है और यज्ञकर्म में उसके अवान्तर वाक्यों के लिये भी मन्त्र शब्द का व्यवहार होता है। इसी प्रकार यजुर्वेद अ० ३ मं० ९-१० के अवान्तर ७ विभाग करके, उनके पृथक् पृथक् अंश के लिये मन्त्र शब्द का व्यवहार संस्कारविधि आदि के अग्निहोत्र प्रकरण में किया है।

इन प्रकरणों से एक बात और भी स्पष्ट होती है कि जिन मन्त्रों वा मन्त्रांशों से आहुति देनी हो, उनमें यदि 'स्वाहा' पद पठित न हो तो आहुति देते समय स्वाहा पद पढ़ा जाता है, परन्तु यदि मन्त्र या मन्त्रांश में स्वाहा पद पठित हो, तो पुनः स्वाहा पद का उच्चारण नहीं किया जाता। देखो संस्कारविधि अग्निहोत्र प्रकरण—**विश्वानि देव, अग्ने नय सुपथा** मन्त्रों के मूल पाठ में स्वाहा पद नहीं था, जोड़ा गया। **यां मेधां** मन्त्र तथा **सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा** आदि मन्त्रांशों में जहां मूल पाठ में स्वाहा पद विद्यमान था, वहां उसी से आहुति प्रदान को गतार्थ मान लिया गया, पुनः स्वाहा पद नहीं जोड़ा। इसलिये ब्रह्मपरायण आदि यज्ञों के समय स्वाहान्त मन्त्रों में दुबारा स्वाहा लगाने की जो परिपाटी चल रही है, वह ऋषि दयानन्द और याज्ञिक परम्परा के विरुद्ध है, यह स्पष्ट है।

पृष्ठ १०९ पं० २३—मेरी समझ में—यहां मेरी से अभिप्राय स्वामी जी का अपने से है। इसलिये इस विज्ञापन पर स्वामी जी के हस्ताक्षर न होने पर भी यहां छापा गया है।

पृष्ठ १३२ पं० १५—संसेधनीयानि—कई लोग इसे अपपाठ समझते हैं उनके मत में 'संसाधनीयानि' पाठ होना चाहिये। परन्तु यह बात अयुक्त है। ऋषि दयानन्द ने यजुर्वेद भाष्य २।१७ तथा ३।१६ के भावार्थ में भी 'संसेधनीयः' पद का प्रयोग किया है। यजुर्वेद भाष्य के तीनों हस्तलेखों में दोनों स्थानों पर यह पाठ है। इससे यह सुनिश्चित है कि यह प्रमाद पाठ नहीं है। श्री स्वामी जी महाराज ने यह प्रयोग 'षिधु शास्त्रे माङ्गल्ये च' भौवादिक धातु से बनाया है।

पृष्ठ १३२ पं० १७—प्रीति—नपुंसक लिङ्ग में प्रयोग माना है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पृष्ठ १३२ पं० १७—स्थानभृत्यप्रबन्धं च—प्रबन्ध शब्द घञ्प्रत्ययान्त पुल्लिङ्ग माना जाता है, परन्तु महाभाष्यकार के अनेकत्र प्रयुक्त **'सम्बन्धमनुवर्तिष्यते'** प्रयोग के अनुसार इसे भी नपुंसक लिङ्ग में साधु समझना चाहिये। आगे **'कार्यः'** क्रिया का निर्देश है। ऐसा विलिंग निर्देश इसलिये किया है कि ऋषि दयानन्द प्रबन्ध शब्द को पुल्लिंग और नपुंसक लिंग दोनों प्रकार का मानते हैं। यद्यपि आधुनिक वैयाकरणों के मतानुसार एक वाक्य में विलिंग प्रयोग नहीं होना चाहिये, तथापि प्राचीन ग्रन्थों में ऐसे प्रयोग बहुत से उपलब्ध होते हैं। **'वेदाः प्रमाणम्'** यह इस विषय का प्रधान वाक्य है। इसमें लिङ्ग और विभक्ति दोनों की भिन्नता है। **'प्रमाणं परमं श्रुतिः'** (मनु० २।१३) में भी यही विलिंगता है। प्रमाण शब्द नित्य नपुंसक लिंग है, ऐसा मत भी युक्त नहीं, क्योंकि मीमांसा भाष्य (१।३।३) में **'प्रमाणायां स्मृतौ'** प्रत्यक्ष स्त्रीलिंग का पाठ उपलब्ध होता है। इसलिए लिंग के विषय में **'लिङ्गमशिष्यं लोकाश्रयत्वाल्लिंगस्य'** महाभाष्यकार का यह वचन ही शरण है।

पृष्ठ १४२ टि० २ के अनन्तर—हमें उपर्युक्त पूर्ण संख्या १६५ का अधिकार पत्र नकली प्रतीत होता है। उसके तीन कारण हैं। प्रथम स्वामी जी ने पूर्ण संख्या २९९ (पृष्ठ २५६) में लिखा है—**"मेरठ में मूल जी ठाकरसी के सामने जहां आप भी सामने बैठी थीं, एच० एस० करनैल ओल्काट साहब को मैंने कहा कि आप ने बंबई की कौंसिल में मेरा नाम सभासदों में क्यों लिखा"**। इसी बात की ओर पूर्ण संख्या ४०० पृष्ठ ३२० पर किया है। इनसे स्पष्ट है कि स्वामी जी ने थियोसोफिकल सोसाइटी का साधारण सभासद होना भी स्वीकार नहीं किया था, फिर भला वे प्रधानाध्यक्ष कैसे बन सकते थे। **दूसरा**—इस अधिकार पत्र पर २ मई १८७९ तारीख दी है, परन्तु पूर्ण संख्या २९९ तथा ४०० के पत्रों में जिस घटना का उल्लेख है, वह मेरठ की है। मेरठ स्वामी जी महाराज ३ मई ७९ को पहुँचे थे। आल्काट और मैडम ब्लेवेस्तकी दोनों ४ दिन स्वामी जी के साथ रहे थे। इसलिये यदि स्वामी जी ने मेरठ में ही थियोसोफिकल सोसाइटी का सभासद बनने का प्रतिवाद किया था, तो भला एक दिन पूर्व उनका थियो० सोसा० का प्रधान बनना कैसे सम्भव हो सकता है? स्वामी जी महाराज ने पूर्ण सं० २९९ तथा ४०० में मेरठ की जिस घटना का उल्लेख किया है, उसका संकेत उक्त अधिकार पत्र के तीन दिन पश्चात् अर्थात् ५ मई १८७९ (पूर्ण संख्या १६७) को लिखे पत्र में भी है—**"थियोसोफिकल सोसाइटी में जो हमारा नाम लिखा गया है, यदि तुम उस पत्र को (जिसमें नाम लिखने का उल्लेख है) भेज देते तो हम साहब को दिखा देते। परन्तु जुबानी जो साहब से कहा गया तो उन्हों ने उत्तर दिया·····'आगे ऐसा न होगा'·····इस वृत्तान्त को जब मूल जी भाई आवेंगे तब तुमको समझा देंगे।"** **तीसरा**—यदि यह अधिकार पत्र वास्तविक होता तो उसी समय प्रकाशित किया जाता। २८ मार्च १८८२ में जब कि स्वामी जी ने कर्नल ओल्काट आदि की धूर्तता के कारण उनसे, सम्बन्ध विच्छेद की घोषणा कर दी, तो उसके बाद इसे क्यों छपवाया गया। इस अधिकार पत्र के ऊपर जो नोट दिया है उसमें लिखा है—'मूल जी ठाकरसी ने कहा है कि उन्होंने स्वामी जी को इस पत्र का अनुवाद सुनाया था, तब उनके सम्मुख ही स्वामी जी ने अपने हस्ताक्षर कर दिये थे। यह लेख भी नितान्त मिथ्या है, क्योंकि जब स्वामी जी महाराज ने अपने लिखने की पुष्टि में (पू० सं० १६७ का पत्र) मूलजी ठाकरसी के नाम का उल्लेख किया, तब करनैल ओल्काट ने भी मूलजी ठाकरसी की झूठी गवाही झूठे पत्र में छाप दी।

पृष्ठ १४६ पं० ५—लेक्चर छपवाकर—कर्नल आलकाट ने मेरठ में अंग्रेजी में एक व्याख्यान दिया था, उसे बंबई जाकर छपवाकर भेजने के लिये बा० छेदीलाल को कह गये थे। उसी की ओर यह संकेत है। यजुर्वेद-भाष्य अङ्क १५ (आषाढ़ १९३६) के अन्त में पुस्तकों का जो विज्ञापन छपा है उसमें संख्या २१ पर 'अमेरिका वालों का लेक्चर' का उल्लेख है। यह मेरठ में दिया गया उक्त लेक्चर ही प्रतीत होता है।

पृष्ठ १६४ पं० २, ३—६ अङ्क में विज्ञापन दिया था—यह विज्ञापन पूर्ण संख्या १७४ पर छपा है।

पृष्ठ १७१ पं० २४—सपुत्रो भूत्वा—यहां **'तत्पुत्रो भूत्वा'**—पाठ चाहिये। भाषा में भी ऐसा ही अनुवाद है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पृष्ठ १७७ पं० ८—शनीवारे—यह शनिवार के अर्थ में दीर्घ ईकारवान् स्वतन्त्र शब्द है। छन्दोनुरोध से यहां दीर्घ नहीं हुआ है। अन्यथा कवि की काव्यशक्ति की हीनता-द्योतन के साथ साथ इसे अपशब्द भी मानना पड़ेगा। अमरकोश (२।६।१) में पुरुष समानार्थक दीर्घ ऊकारवान् पूरुष को स्वतन्त्र शब्द माना है। अष्टाध्यायी की प्राचीन अनुपलब्ध भागवृत्ति में लिखा है कि जिन पूरुष नारक आदि शब्दों में काशिकाकार 'अन्येषामपि दृश्यते' (६।३।१३७) से दीर्घत्व मानता है, वे वस्तुतः स्वतन्त्र दीर्घोपदेश संज्ञा शब्द हैं, क्योंकि उक्त सूत्र उत्तरपद परे रहने पर दीर्घत्व का विधान करता है। 'पूरुषः, नारकः' में उत्तरपद परे नहीं है (अनेनोत्तरपदे विधानादप्राप्तिरिति पूरुषादयो दीर्घोपदेशा एव संज्ञाशब्द इति भागवृत्तिः) देखो हमारा "भागवृत्ति-संकलनम्" (६।३।१३७)।

पृष्ठ १७९ पं० ११—प्रतिवाद के रूप में भेजा था—मिस्टर बाल के नाम का उक्त पत्र पूर्ण संख्या २०७ पर छपा है।

पृष्ठ १८३ पं० ८—लाट साहब ने·····उत्तर नहीं है—देखो पूर्ण संख्या २१५ की पत्र-सूचना।

पृष्ठ १९७ पं० २४, २५—अनुवाद सन् १८८० या ८१ में—पं० गोपालराव हरि देशमुख के ३ दिसम्बर १८८० के पत्र से ज्ञात होता है कि इस पत्र का अंग्रेजी अनुवाद ३ दिसम्बर १८८० से पूर्व प्रकाशित हो गया था, देखो म० मुंशीराम सम्पा० पत्रव्यवहार पृष्ठ २५०।

पृष्ठ १९८ पं० २२—इस वास्ते·····सलाह है—इस बात का उल्लेख मुंशी बख्तावरसिंह ने ऋग्वेद और यजुर्वेद (दोनों) के अङ्क १५ के आवरण पत्र पृष्ठ ३ के निवेदन में किया है। वह लिखता है—'स्वामी जी ने लिखा है कि पहिले अङ्क बहुत दिनों के पश्चात् निकला था, इसलिये अब के एक ही शीघ्र भेज दिया जाए तो अच्छा है"।

पृष्ठ १९९ पं० ९—रसीद अढ़ाई सौ की छापी है—देखो यजुर्वेदभाष्य अङ्क १४, आवरण पृष्ठ २।

पृष्ठ १९९ पं० १०—पन्द्रहवें अङ्क में तीन सौ का अङ्क लिखकर·····भूल से लिख दिया—बख्तावरसिंह ने यह शुद्धीकरण ऋग्वेदभाष्य और यजुर्वेद भाष्य के अङ्क १५ आवरण पत्र पृष्ठ २ पर किया है।

पृष्ठ २०१ पं० ३०—५०० वेदभाष्य बनवाने·····—इस पत्र में अनेक व्यक्तियों द्वारा वेदभाष्य बनवाने के लिए चन्दा देने का उल्लेख है। यह सब चन्दा आर्य समाज फर्रुखाबाद के मन्त्री बा० कालीचरण के ५ जून १८८० के विज्ञापन के अनुसार प्राप्त हुआ था। कालीचरण जी का विज्ञापन यजुर्वेदभाष्य तथा ऋग्वेद के १४ वें अङ्क के आवरण पत्र पृष्ठ ३ पर छपा था। हम उसे परिशिष्ट ३ पृष्ठ १५ पर दे रहे हैं, वहां देखें।

पृष्ठ २०६ पं० २१—उसके उत्तर में·····लिखा—यह प्रथम पत्र पृष्ठ ९० पर छपा है।

पृष्ठ २०६ पं० २२—डिपलोमा·····—इसका निर्देश पूर्ण संख्या ८६ के (पृष्ठ ९६ पं० ६) तथा पूर्ण संख्या ८८ पृष्ठ १०२ के पत्र में है।

पृष्ठ २०६ पं० २८—इस पर मैंने पत्र लिखा—यह पत्र पूर्ण संख्या ८६ पृष्ठ ९५ पर छपा है।

पृष्ठ २०७ पं० १६—तीसरे पत्र में—यह पत्र हमें प्राप्त नहीं हुआ। उसका सारांश इसी विज्ञापन में पृष्ठ २०६ पं० २८ से पृष्ठ २०७ पं० ३ तक छपा है। यह सारांश हम ने परिशिष्ट १ में पूर्ण संख्या ६२४ पर दिया है।

पृष्ठ २१५ पं० ३—छाप दो सतरहवें अङ्क के अन्त में कि "जिस का·····जायगा"—यह " " संकेतबद्ध अंश, सतरहवें अङ्क के अन्त में जो विज्ञापन छपा है, उसमें नहीं छपा।

पृष्ठ २१५ पं ८—ये बात तीन बार लिख चुके हैं—प्रथम बार जिस पत्र में यह बात मुं० बख्तावरसिंह को लिखी थी, वह पूर्ण संख्या २५१ पर छपा है। उसके बाद श्रावण वदी १ (२२ जुलाई) से श्रा० वा० ३० (५ अगस्त) के मध्य में दो बार जिन पत्रों में लिखी गई, वे पत्र हमें प्राप्त नहीं हुए।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पृष्ठ २३४ पं० २—हमने कई बखत लिखा है—इस विषय का एक पत्र पूर्ण संख्या २७२ पर छपा है। वह भाद्र सुदी ४ अर्थात् इस पत्र से चार दिन पूर्व का है। श्री बा० दुर्गाप्रसाद के नाम लिखे जितने पत्र इस संग्रह में छपे हैं, उनमें पूर्ण संख्या २७२ का पत्र प्रथम है। परन्तु इस लेख से अनुमान होता है कि इससे पूर्व भी कुछ पत्र स्वामी जी ने श्री बा० दुर्गाप्रसाद के नाम लिखे थे, जो हमें प्राप्त नहीं हुए।

पृष्ठ २४० पं० १७ से आगे—यहां पूर्ण संख्या २८१ से आगे पूर्ण संख्या २८७ का पत्र छपना चाहिए। विशेष विचार पृष्ठ ३४४ की टिप्पणी में देखें।

पृष्ठ २४२ पूर्ण संख्या २८३—यह पत्र सूचना अस्थान में जुड़ गई है, और इस पर अनुमान से जो ५, ६ अक्टूबर तारीख दी है, वह भी अशुद्ध है। इस पत्र की सूचना सेवकलाल के १२ अक्टूबर के पत्र में मिलती है (देखो म० मुंशीराम सम्पा० पत्र० व्यवहार पृ० २४५)। यह पत्र मेरठ से डाला गया है, परन्तु पत्र पहुँचने का पता (मुंशीपत्र पृ० २४८ पर) मुजफ्फरनगर का लिखा गया है, अतः निश्चय ही यह पत्र मेरठ से उस समय डाला गया होगा, जब वहाँ से मुजफ्फरपुर जाना निश्चित हो गया होगा। मेरठ में स्वामी जी ८ जुलाई से १५ सितम्बर १८८० तक रहे, तत्पश्चात् १५ सितम्बर से २ अक्टूबर तक मुजफ्फरनगर रहे, तत्पश्चात् पुनः २ अक्टूबर को मेरठ पहुँचे, परन्तु उसके अनन्तर वे मेरठ से सीधे सहारनपुर गये। इस यात्रा क्रम से यही निश्चय होता है कि यह पत्र १५ सितम्बर से पूर्व भेजा गया होगा। भाद्र सुदी ८ रविवार १९३७ (१२ सितम्बर १८८०) को बा० दुर्गाप्रसाद फर्रुखाबाद को लिखे गये पूर्ण संख्या २७६ के पत्र में लिखा है—'मुम्बई में पण्डित के विषय में हमने पत्र लिखा। वहाँ से रुपये आ गये वा नहीं। सेवकलाल के इस पत्र में भी शीघ्र २४१ रु० फर्रुखाबाद भेजने का उल्लेख है (पृष्ठ २४७)। अतः यह पत्र निश्चय ही १२ सितम्बर से पूर्व का है। अतः इसे पूर्ण संख्या २४७ के आगे जोड़ना चाहिये। सेवकलाल कृष्णदास के पत्र पर 'आश्विन शुक्लपक्ष भौमवार सं० १९३६ = १२ अक्टूबर १८९०' छपा है (पृ० २४५) यहां आश्विन शुक्ल ९ चाहिये। सं० १९३६ गुजराती पञ्चाङ्ग के अनुसार है, उत्तर भारतीय पञ्चाङ्गानुसार १९३७ है, सन् १८८० चाहिये।

पृष्ठ २४४ पं० १५—से आगे—पूर्ण संख्या २८६ के आगे पूर्ण संख्या ३१६ पर छपा पत्र छपना चाहिये था, परन्तु पूर्ण संख्या ३१६ के पत्र पर तिथि न होने से कापी तैयार करते समय यह बात हमारे ध्यान में नहीं आई। मुद्रण काल में पूर्ण संख्या ३१६ के नीचे टिप्पणी में हमने इसकी सूचना दे दी है। देखो पृष्ठ २६५ टि० २ का कोष्ठान्तर्गत हमारा परिवर्धित पाठ।

पूर्ण संख्या ३१६ के पत्रानुसार ला० रामशरणदास के नाम का एक पत्राशय बनाकर परिशिष्ट १ पूर्ण संख्या ६६५ पर दिया है, उसे पूर्ण संख्या ३१६ वाले पत्र से पूर्व जोड़ना चाहिये।

इसी पृष्ठ में पं० १६ से पूर्ण संख्या २८७ का जो पत्र छपा है, उसे पृष्ठ २५० पर पूर्ण संख्या २२१ के आगे ले जाना चाहिये, क्योंकि हमें उक्त पत्र आश्विन वदी १४ सं० १९६७ (३ अक्टूबर १८८०) का प्रतीत होता है, आश्विन शुक्ल १४ (१७ अक्टूबर) का नहीं।

पृष्ठ २४५ पं० ४—७—पूर्ण संख्या २८८। यह पत्राशय दयानन्दमुखचपेटिका पृष्ठ २६ पर भी छपा है।

पृष्ठ २४५ पं० २०—पं० गोपालराव हरि को हम अलहदे पत्र लिखेंगे—यह पत्र लिखा गया वा नहीं, इसकी कोई सूचना उपलब्ध नहीं होती।

पृष्ठ २४७ पं० २६—कृपाराम मन्त्री·····—यह पत्र स्वामी जी का लिखवाया हुआ है, देखो ऋषि दयानन्द का पूर्ण संख्या २९२ पृष्ठ २५० पं० २० का "मैं इसका उत्तर इससे पहले पत्र में लिखा चुका हूँ" लेख। इसीलिये यह पत्र इस संग्रह में छापा गया है।

पृष्ठ २६२ पं० २३—कल एक पत्र भेजा था—देखो पूर्ण संख्या ३१० का पत्र।

पृष्ठ २६३ पं० ६—कई बार लिखा—इस विषय का ऋषि दयानन्द का कोई पत्र उपलब्ध नहीं हुआ।

१ देखो परिशिष्ट संख्या ६।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पृष्ठ २८२ पं० ९, १०—पूर्ण सं० ३४३—यह पत्रसूचना अस्थान में जुड़ी है। ८ मार्च १८८१ के सेवकलाल कृष्णदास के पत्र से ज्ञात होता है कि यह रजिस्टर्ड पत्र उन्हें ७ मार्च को मिल गया था। (देखो म० मुंशी० सं० पत्रव्यव० पृष्ठ २५१)। अतः यह पत्र सम्भवतः ४ मार्च को भेजा गया होगा। इसलिये इसे पूर्ण संख्या ३४० के आगे जोड़ना चाहिये।

पृष्ठ २८५ पं० १०—दांत की ओषधी—इस ओषधी का उल्लेख पूर्ण संख्या ६०० के ओषधिपत्र में संख्या ३० पर भी है। वहाँ 'पपरिया कत्था' के स्थान में 'सफेद कत्था' लिखा है।

पृष्ठ २९० पं० ४—उपसभा में—इस उपसभा और इसके सभासदों का उल्लेख पूर्ण संख्या २३९ के पत्र (पृ० १९३) में है।

पृष्ठ २९३ पं० ६—आप के पास भेजते हैं—ये हिसाब के कागजात अगली पूर्ण संख्या ३६० पर पृष्ठ २९५—२९८ तक छपे हैं।

पृष्ठ २९८ पं० १०—तुम्हारी सोसाइटी के सभासद हैं—या तो इस पत्रांश के मुद्रण में कुछ अशुद्धि हो गई है, या यह पत्रांश भाई जवाहरसिंह का कल्पित है (उन का ऐसा एक पत्र पूर्ण संख्या ५७८ पर छपा है), क्योंकि ऋषि दयानन्द के पूर्ण संख्या २९९ के पत्र (पृष्ठ २५६) तथा ४०० के विज्ञापन (पृष्ठ ३२०) से स्पष्ट है कि वे थियोसोफिकल सोसाइटी के कभी सभासद नहीं बने। इतना ही नहीं, जब उन्हें बिना स्वीकृति के सोसाइटी का सभासद बना लिया, तब उन्होंने कई बार नाम काटने को लिखा, यह भी पूर्ण संख्या २९९ के पत्र और ४०० के विज्ञापन से स्पष्ट है। इस परिशिष्ट के पृष्ठ ८ पर पृष्ठ १४२ के विषय में लिखी गई टिप्पणी भी देखें।

पृष्ठ ३१७ पं० २१, २२—(आर्य का) जैसा नोटिस लिख भेजें छाप देना—इसी आशय का निर्देश पूर्ण सं० ४४३ (पृ० ३५९ पं० ३०, ३१) में भी है।

पृष्ठ ३१८ पं० ४—पूर्व पत्रों में उत्तर माँगा है—यह संकेत किन पत्रों की ओर है, यह अज्ञात है। सुन्दरलाल जी के नाम दो पत्र पूर्ण संख्या ३७९, ३८६ पर छपे है। प्रतीत ऐसा होता है कि इन मुद्रित पत्रों के अतिरिक्त भी कुछ पत्र स्वामी जी ने पं० सुन्दरलाल जी को भेजे होंगे, वे हमें प्राप्त नहीं हुए।

पृष्ठ ३२२ पं० २५-२६—कोट हूमीलाल·····गोत्र कोटहूमीसिंह—कूतूहूमीलालसिंह के वर्णन के लिए देखो म० मुंशीराम सम्पा० पत्रव्यवहार (पृष्ठ १२१)। इस ने लाहौर आर्यसमाज में योगविद्या का अचम्भा दिखलाने के लिए अपनी अंगुली कटवा ली थी।

पृ० ३३३ पं० ३—नाटक—इस विषय में पूर्ण संख्या ४५४, ४६१ के पत्र तथा पृष्ठ ३६६ की टिप्पणी ३ भी देखें।

पृ० ३४० पं० १०—श्रीयुतमहाराजाधिराजभ्यो·····—यहां 'राजाहस्सखिभ्यष्टच्' (अष्टा० ५।४।९१) से समासान्त टच् प्रत्यय प्राप्त है, परन्तु 'विभाषा समासन्तो भवति' (महाभाष्य ६।२।१९७) इस परिभाषा से नहीं हुआ। महाभारत आदि प्राचीन ग्रन्थों में टच् प्रत्यय रहित नकारान्त राजन् शब्द के प्रयोग प्रायः उपलब्ध होते हैं। देखो हमारा 'संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास' पृष्ठ ३१।

पृ० ३४० पं १२—गोकरुणायुक्त रजिस्ट्री पत्र—इस पत्र में महाराजा शाहपुराधीश द्वारा ४०००० चालीस हजार मनुष्यों की सही कराई गई थी। देखो पूर्ण संख्या ४२३, ४३५ का पत्र।

पृ० ३५९ पं० ३०, ३१—आर्य पत्र लाहौर और देशहितैषी का·····नोटिस·····एक बार छाप देना—इस आज्ञा के अनुसार आर्य पत्र लाहौर का विज्ञापन ऋग्वेदभाष्य के ४८, ४९ (सम्मिलित) अंक के आवरण पत्र पृष्ठ ४ पर छापा गया था। देशहितैषी का नहीं छपा। सम्भव है सम्पादक ने भेजा ही न हो। पृष्ठ ३१७

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पं० २१, २२ पर भी आर्य का नोटिस छापने का उल्लेख है। प्रतीत होता है, उस समय उक्त नोटिस छपने के लिये नहीं आया।

पृ० ३६२ पूर्ण संख्या ४४७ के विषय में—इसे पूर्ण संख्या ४४४ के आगे जोड़ें। भूल से अस्थान में जुड़ गया है।

पृ० ३८३ पूर्ण संख्या ४७०—इस पत्र की सूचना २० फरवरी १८८३ के पत्र में है। देखो म० मुंशीराम सम्पा० पत्रव्यवहार पृष्ठ ३२६—३२८। यह पत्र अस्थान में जुड़ा है, इसे पूर्ण सं० ४७४ के अनन्तर जोड़ना चाहिये। यह सम्भवतः १५, १७ फरवरी को लिखा गया होगा।

पृ० ३८५ पूर्ण संख्या ४७७—यह पत्र २० फरवरी १८८३ के उत्तर में लिखा गया है (देखो म० मुंशी० पत्रव्यवहार पृष्ठ ३२६—३२८)। अतः इसे पूर्ण संख्या ४७५ के आगे जोड़ना चाहिये।

पृ० ३८५ पं० २१—रामनाथ कौन है·····हमारे साथ कब रहा—इस रामनाथ को बा० दुर्गाप्रसाद जी ने फर्रुखाबाद से श्री स्वामी जी महाराज के पास लेखक के रूप में भेजा था। यह स्वामी जी महाराज के पास भाद्र शु० ७ शनिवार सं० १९३७ (११ सितम्बर १८८०) को मेरठ पहुँचा था। देखो पूर्ण संख्या २७६ का पत्र पृष्ठ २३३, २३४।

पृ० ३९४ पं० ८—जैसा इस को शोध के भेजते हैं ·····—यजुर्वेद अ० १३ मन्त्र ४७-५१ तक के भाष्य को पुनः संशोधन के लिए शाहपुरा भेजने से विलम्ब होने के कारण यजुर्वेद भाष्य का ४६-४७ (सम्मिलित) अंक कुछ देर से प्रकाशित हुआ था। इस की सूचना मुं० समर्थदान ने इसी अंक के आवरण पत्र पृष्ठ ४ पर इस प्रकार दी थी—वेदभाष्य के प्रिय ग्राहकों से निवेदन है कि कई कारणों से श्री स्वामी जी महाराज के पास से वेदभाष्य के पत्रों के आने में देर हो गई, इससे यह अंक समय पर न निकल सका। और इस के निकलने में देर होने के कारण से ऋग्वेद का अंक भी १ अप्रेल को नहीं निकल सकेगा, कुछ पीछे से निकलेगा·····।"

पृ० ४१३ पं० १८, १९—हमने पहले ही लिखा था·····बन्द कर देंगे—देखो पूर्ण संख्या ४४५ का पत्र, पृष्ठ ३६१।

पृष्ठ ४१६ पं० १४, १५—लिखा था·····बन्द कर देंगे—देखो पूर्ण संख्या ४४५ का पत्र पृष्ठ ३६१।

पृ० ४१६ पं २२—समर्थदान को हमने लिखा है—देखो पूर्ण संख्या पूर्ण ५१० का पत्र पृष्ठ ४१३।

पृ० ४१७ तं० ३—चिट्ठी भी हमारी इसी के पास होगी—अर्थात् पूर्ण संख्या ४४५ का पृष्ठ ३६१ पर छपा पत्र।

पृ० ४१८ पं० १—पहिले पत्र में लिखा था—देखो पूर्ण संख्या ५०७ का पत्र।

पृ० ४२४ पं० ४ वेदभाष्य के टाइटल पेज पर जोधपुर का नोटिस—यह नोटिस यजुर्वेद भाष्य के ४८, ४९ (सम्मिलित) अंक पर इस प्रकार छपा है—"विदित हो कि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी इन दिनों में मारवाड़ देश के जोधपुर नगर में विराजमान हैं।"

पृ० ४२४ पं० ८—निम्नलिखित समाचार वेदभाष्य से टाइटल पर छाप देना—यह समाचार ऋग्वेद भाष्य के ५०, ५१ (सम्मि०) अंक के आवरण पृष्ठ ४ पर छपा है।

पृ० ४२५ पं० २-५——इन पंक्तियों में जो पत्र छपा। वह शाहपुरा नहीं भेजा गया था, क्योंकि महाराजा नाहरसिंह ने ज्येष्ठ कृष्ण [३०] सं० १९४० [५ जून १८८३] के पत्र में लिखा है—"जिस आदमी के विषय में आपने फरमाया था वो अभी तक नहीं आया, आय पर उसके विषय का हाल लिखुंगा।"

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इसी प्रकार ऋषि दयानन्द के ज्येष्ठ सुदी ५ सं० १९४७ [१० जून १८८३] के पत्र से प्रतीत होता है कि उक्त तिथि तक जवाहरसिंह के शाहपुरा पहुँचने की उनको सूचना नहीं थी। स्वयं जवाहरसिंह ने भी ५ जून १८८३ को रूपाहेली स्टेशन (जहां से शाहपुरा जाना होता था) पर पहुँचना लिखा है (देखो म० मुंशी० सम्पा० पत्रव्य० पृ० १३७)। अतः उक्त पत्र या तो लाहौर भेजा गया था, या जवाहरसिंह ने इसे स्वयं बनाया है। आगे के कुछ पत्रों के विषय में भी हमें यही सन्देह है, क्योंकि जवाहरसिंह ने स्वयं कई नकली पत्र बना लिये थे [देखो पृष्ठ ४६३ टि० २]।

पृ० ४३२ पं० २०-२२—यह समझो·····छापना ठीक नहीं—इसी पत्र के अनुसार मुंशी समर्थदान ने इसी आशय का उक्त विज्ञापन ऋग्वेदभाष्य ५०, ५१ (सम्मिलित) अंक के आवरण पत्र पृष्ठ ४ पर छापा था।

पृ० ४३९ पं० ४—घड़ी एक आई, या दो—पुरोहित उदयलाल को घड़ी भेजने के लिये सेवकलाल कृष्णदास को भी लिखा था और गोपालराव हरि देशमुख जब जोधपुर में स्वामी जी से मिलकर (जून ३।४ १८८३) बम्बई लौटे, तब उनसे भी घड़ी भेजने को कहा था। दोनों ने घड़ी भेजने की सूचना अपने अपने पत्रों में दी। देखो म० मुंशीराम सम्पा० पत्रव्यवहार (पृ० २४२, २४३, २७४) अतः स्वामी जी महाराज को सन्देह हुआ कि घड़ी एक भेजी गई और दोनों ने उसकी सूचना दी, या दोनों ने अलग अलग घड़ी भेजी।

पृ० ४४० पं० २७, ३३—कुतुहूबीलालसिंह·····लाहौर में अपनी अंगुली कटवा के अंग भंग हो गया—इन दोनों के वर्णन के लिये देखो मुंशीराम सम्पा० पत्रव्यवहार पृ० १२१।

पृ० ४४४ पं० १—प्रधाना·····महाभाष्य—यही पाठ महाभाष्य के नाम से ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका वेदविषयविचार प्रकरण (पृष्ठ ४४ संस्क० ४) में उद्धृत है।

पृ० ४४५ पं० १६—मेरे भेजे पत्र को—यह संकेत पूर्ण संख्या ५५२ की ओर है।

पृ० ४५५ पं० १०—मान्य-पत्र की नकल—शाहपुराधीश ने ऋषि दयानन्द को जो मान्य-पत्र दिया था, उसकी ओर यह संकेत है। यह पत्र परिशिष्ट ३ पृष्ठ २० पर छापा।

पृ० ४५५ पं० १२—निज पत्र के विषय में लिखा था—इसका संकेत पूर्ण संख्या ५६४ के पत्र के अन्त में भी है।

पृ० ४६० पं० २४—लिखितव्य—आधुनिक वैयाकरण लिख धातु में गुणनिषेध करने के लिये गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन् ङित्" (अष्टा० १।२।१) सूत्र में 'कुटस्य आदिः कुटादिः' ऐसा भी समास मानते हैं।

॥ इति युधिष्ठिरमीमांसकसंकलितं द्वितीयं परिशिष्टं समाप्तम् ॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

परिशिष्ट ३

ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन से संबद्ध आवश्यक सामग्री का संकलन

[संकलयिता—युधिष्ठिर मीमांसक]

पृष्ठ ५३, पूर्ण संख्या ३९ के पत्र और टिप्पणी ३ पर—

प्रतीत होता है, श्री देवेन्द्र बाबू ने दीनानाथ गांगोली को ऋषि दयानन्द के पत्रों के विषय में कोई पत्र लिखा था। दीनानाथ के पास ऋषि दयानन्द का पूर्ण संख्या ३९ वाला अंग्रेजी का एक पत्र था, उसे श्री देवेन्द्र बाबू को भेजते समय उसी अंग्रेजी के पत्र पर दीनानाथ ने निम्न पंक्तियां बंगला भाषा में लिखी थीं—

श्री श्री दुर्गाशरणम्
नमस्कारं ते निवेदनमिदम्

दयानन्द सरस्वती महोदयेर एक खनि मात्रो पत्रो पाइयासी ताह पठैलम् अवश्य तिनि अन्यो कोनो व्यक्तिर द्वारा यह इंग्रेजी ते लिखइया लौइआ छीलैन य ते ताहार साखोर आछे आशाकरी अपनी भला आछन

बसम्बद्ध

श्री दीनानाथ गांगोली
हालीशहर बंगाला
२४ पौष १३०२[1]

[भाषानुवाद]

हमारा नमस्कार, निवेदन है कि दयानन्दसरस्वती महोदय का एक मात्र पत्र हमको मिला, वह आपको भेजता हूं। यह पत्र किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा अंग्रेजी में लिखा है और उसमें उसके हस्ताक्षर हैं आप अच्छे होंगे।

पृष्ठ २०१ पूर्ण संख्या २५१ पत्र संख्या १९५—इस पत्र में वेदभाष्य के सहायतार्थ दो पण्डित रखने के लिये विभिन्न व्यक्तियों से प्राप्त हुए चन्दे का उल्लेख है। इस पत्र को समझने के लिये इसकी पृष्ठभूमि जाननी आवश्यक है। वह पृष्ठभूमि इस प्रकार है—

ऋषि दयानन्द २० मई १८८० = वैशाख शु० ११ सं० १९३७ को सातवीं (फर्रुखाबाद के इतिहासानुसार पृष्ठ १३५, वस्तुतः ९ नवमी) बार जब फर्रुखाबाद पधारे थे, तब उन्होंने २७ जून के व्याख्यान के अन्त में —"वेदों का महीधरादिकों ने अशुद्ध अनर्गल अर्थ करके देश में भ्रान्ति फैलाई। वेदों का शुद्ध व सत्यार्थ शीघ्र होना आवश्यक है" इत्यादि कहकर वेदभाष्य के कार्य को शीघ्र संपादन के लिये प्रबन्ध करने को कहा (फर्रुखाबाद का इतिहास पृष्ठ १३९)। इसके उपरान्त ही तत्काल १३५०) रु० एकत्रित हो गये (फर्रु० का इति० पृष्ठ १४०) और इस कार्य की पूर्ति के लिये श्री कालीचरण मन्त्री आर्यसमाज फर्रुखाबाद ने ५ जून १८८० को एक विज्ञापन प्रकाशित किया, जो ऋग्वेद और यजुर्वेदभाष्य के अंक १४ के आवरण पत्र पृष्ठ ३ पर इस प्रकार छपा था—

१ वि० सं० १९५२, सन् १८९५। श्री महाशय मामराज जी द्वारा प्राप्त।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विज्ञापन

आर्य समाज फर्रुखाबाद की ओर से

"सब आर्यसमाजों और २ सज्जनों को विदित किया जाता है कि जो वेदभाष्य श्रीयुत स्वामी जी महाराज हम लोगों के परम उपकार के वास्ते कर रहे हैं और जिसके सत्य अर्थ का प्रकाश शीघ्र ही हो जाना अवश्य है और यह बड़ाभारी काम है एक के पूरा करने का कभी सम्भव मालूम नहीं होता। देखिये अकेले स्वामी जी ने गत वर्षों में अतिपरिश्रम किया कि जिससे महा दारुण रोग उनको हुआ कि जिससे शरीर बचना भी असम्भव होगया[1], परन्तु ईश्वर की कृपा से वे सब रोग निवृत्त हो गये अब हम सब लोगों की यह सम्मति है कि प्रशंसित महाराज के पास दो पण्डित ऐसे योग्य और विद्वान् सब समाजों की ओर से नियत किये जावें कि वे भी वेदभाष्य के श्रम का कुछ बोझ उठा लेवें, जिससे स्वामी जी का भार हलका हो जावे अर्थात् कम श्रम करना पड़े, और वेदभाष्य शीघ्र ही बन जावे। क्योंकि उसके न होने से अंधकार मनुष्य के हृदय में छा रहा है और नाना प्रकार के परस्पर विरोधी मतों में स्थित होकर महाहानि सुखों की करली और करते जाते हैं वह कभी न छूट सकेगी। अर्थात् एक मन्त्र का भी भाष्य रह जावेगा तो सम्भव है कि अविद्वान् लोग उसी का उल्टा सूधा अर्थ समझाकर मनुष्यों को बहकावेंगें और अपना मतलब साधेंगे। इस वास्ते सब आर्यसमाजों को निवेदन किया जाता है कि यथाशक्ति इस काम में सहायता करनी उचित है। दो पण्डित विद्वान् १००) रु० मासिक व्यय से कम पर नहीं मिल सकते और सम्भव है कि जो उसकी सामग्री शीघ्र जुड़ जाये तो छः वर्ष में सम्पूर्ण चारों वेदों का भाष्य हो जा सकता है। तो इतने व्यय का भार हम सब समाजों और २ लोगों को उठा लेना अशक्य नहीं है। इस समाज से भी यथाशक्ति द्रव्य का प्रबन्ध किया जायेगा। और जिस २ समाज या मनुष्य ने जो कुछ भेजना हो वह निम्नलिखित नियमानुसार पत्र द्वारा इस समाज को अथवा श्री स्वामी जी महाराज को एक मास के भीतर उत्तर भेज दें।

हम आशा करते हैं कि इस परम उपकारक विषय में कोई भी सज्जन यथाशक्ति प्रयत्न करने में आलस्य न करेगा। जो यह काम इस समय में भी पूरा न हुआ तो फिर इसका होना अतिदुर्लभ है, क्योंकि ऐसा परोपकारी श्रेष्ठ गुणयुक्त विद्वान् और दयालु दूसरा कौन है जो इसको पूरा करे। इससे यह सर्व हितकारी कार्य अवश्य कर्तव्य है।

१—एक वर्ष का व्यय प्रथम ही देना होगा फिर इसी क्रम से प्रतिवर्ष छठे वर्ष पर्यन्त लिया जावेगा।

२—यदि कोई पांच वर्ष का व्यय एकबार भेज देवेगा तो उससे छठे वर्ष की याचना न की जावेगी, किन्तु उसके व्याज से पूरा हो जावेगा।

३—जो समाज वा मनुष्य जितना देवे वह एक वर्ष से कम न देवे अर्थात् जितना महावारी देवे उसका १२ गुणा करके वर्ष के आदि में भेज दिया करे। यह चन्दा छः वर्ष के पीछे नहीं लिया जावे।

---

१. यह महादारुण रोग भयानक अतिसार था। यह कष्ट लगातार कई मास तक रहा। इसका उल्लेख ऋषि दयानन्द ने स्वयं पूर्ण संख्या १५३–१८३ तक के कई पत्रों में किया है। सम्भव है इस रोग से शरीर बचने की असंभावना देखकर ही ऋषि दयानन्द ने अत्यन्त भयानक अवस्था में अलीगढ़ जाकर ठा० मुकुन्दसिंह आदिके नाम मुख्तियारनामा रजिस्ट्री करवाया। यह मुखतियारनामा पूर्ण संख्या १७३ पर छपा है। रजिस्ट्री कराने के लिये ऋषि दयानन्द रोगकी अधिकता के कारण कचहरी में न जा सके। रजिस्ट्रार ने अपना आदमी उनके स्थान पर भेजकर उनका बयान लिया। इसका उल्लेख उक्त मुख्तियारनामे की रजिस्ट्री-पत्र के अन्त में रजिस्ट्रार के लेख में किया है। देखो यही पत्रव्यवहार पृष्ठ १४८। शरीर की अचानक ऐसी दुरवस्था को देखकर ही ऋषि दयानन्द ने इसके कुछ काल के अनन्तर ही १६ अगस्त १८८० को मेरठ में अपने "स्वीकारपत्र" (वसीयतनामा) की भी रजिष्ट्री करवा दी। यह स्वीकारपत्र इसी ग्रन्थ में पूर्ण संख्या २६४ (पृ० २१७) पर छपा है। जीवनचरित्रों में इस दारुण रोग का साधारण सा उल्लेख तो है, परन्तु मुखियानामे का उल्लेख ही नहीं है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

४—इसके धन व्यय का हिसाब वर्ष २ के अन्त में आर्यसमाज फर्रुखाबाद भेज दिया करेगा। छठे वर्ष के अन्त में जो व्यय करके बच रहेगा वह यथासंख्य सब देने वालों का अंश लौटा दिया जायेगा

५—इस व्यय में जिस किसी देने वाले को कभी शंका पड़े तो आर्यसमाज फर्रुखाबाद से प्रत्युत्तर मंगवा सकते हैं।

६—इस पत्र का उत्तर वा धन प्रदान जो कुछ जिसको भेजना हो वह बाबू दुर्गाप्रसाद कोशाध्यक्ष आर्यसमाज फर्रुखाबाद के पास एक मास के भीतर भेज देवे।

ह० कालीचरण मन्त्री आर्यसमाज फर्रुखाबाद, ५ जून १८८०।

पृष्ठ २०८ पं० २०, २१—चारों वर्षों के पृथक् २ चन्दा का विज्ञापन ·····भेज दे। यह विज्ञापन यजुर्वेदभाष्य अंक १६, १७ (सम्मिलित) के आवरण पत्र पृष्ठ ४ पर निम्नप्रकार छपा था—

बड़ाभारी विज्ञापन

(अवश्य देखने योग्य)

१—सब सज्जनों को विदित हो कि अब वेदभाष्य के छपने और प्रकाश करने का प्रबन्ध अच्छे प्रकार हो गया है, सो अब प्रतिमास अंगरेजी की पहली तारीख को यहां से डाक में डाला जाया करेगा।

२—जिन महाशयों के पास पहिली तारीख से १० दिन के भीतर वेदभाष्य न पहुँचे तुरन्त हमको पत्र लिखें, नहीं तो फिर आगे को कोई दोष हम पर न लगा सकेगा।

३—ईश्वर की कृपा से इन दो १६,१७ अंकों के साथ तीसरा वर्ष सम्पूर्ण हो गया, अब १८ अंक से नये चौथे वर्ष का आरम्भ होगा, सब सज्जनों को उचित है कि इस अगले वर्ष का चन्दा ८) रु० दोनों वेदों का हमारे पास भेज दें। पिछले तीन वर्षों का चन्दा १७) रु० होता है, सो जिन्होंने कुछ नहीं दिया वे १७) रु० और जिन्होंने कुछ दे दिया है वे १७) रु० में से जितना दिया है उतना निकालकर बाकी का चन्दा हमारे पास शीघ्र भेजदें।

४—जो ग्राहक इस मास सितम्बर में ही अपना पिछला हिसाब दाम[1] २ भेजकर न चुका देंगे, तो हमको उनके नाम नादिहंदों[2] में लिख कर वेदभाष्य में छापकर प्रकाशित करने पड़ेंगे।

इसलिये उचित है कि जैसे सभ्यता पूर्वक हम सब ग्राहकों के पास ३ वर्ष से बराबर वेदभाष्य भेज रहें हैं, वैसे ही वे भी शीघ्र दाम भेज कर हिसाब चुका दें।

५—अब चौथे वर्ष का हम नया रजिस्टर बना रहे हैं कि जिसके अनुसार सब ग्राहकों के नाम छापे जावेंगे, यदि किसी को वेदभाष्य न लेना हो तो १५ सितम्बर तक हमको लिखें नहीं, तो फिर बराबर एक वर्ष तक लेना और दाम देना पड़ेगा।

हस्ताक्षर बख्तावरसिंह, मैनेजर वेदभाष्य, बनारस।

पृष्ठ २२७ पं० १६–१९; पृष्ठ २३१ पं० ९–१० में उल्लिखित—मुंशी इन्द्रमणि के मुकद्दमे का वृत्तान्त[3] जो ऋग्वेदभाष्य अंक १६, १७ (सम्मिलित) के आवरण पत्र २, ३,४ पर छपा था। वह इस प्रकार है—

मुंशी इन्द्रमणि जी के मुकद्दमे का वृत्तान्त

तीस वर्ष हुए होंगे एक किसी मुसलमान ने हिन्दूओं के खण्डन में एक किताब "बद्द हिन्दू" बनाकर छपवाई थी, उसमें देवता अवतार आदि की निन्दा सर्वथा प्रमाण शून्य लिखी थी उसके उत्तर में किसी हिन्दू ने एक

१ अर्थात् दमड़ी दमड़ी २ अर्थात् न देने वालों की सूची में।
३ इस विषय में इस ग्रन्थ के पृष्ठ १९६ पं०८–१४ तथा पृष्ठ २३७ पं० ३८ श्लोक ११–१७ भी द्रष्टव्य हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

किताब "रद्द मुसलमा" बनाई फिर उबेदुल्ला नामी मुसलमान ने एक किताब "तोफेतुलहिन्द" बनाकर छपवाई उसमें देवता आदि की अतीव निन्दा भरी है, मुसलमानों ने इस किताब के अनुसार जगह २ हिन्दुओं के सम्मुख देवता आदि और हिन्दू मत की निन्दा करनी आरंभ की। इससे बहुधा मूर्ख हिन्दू मुसलमान हो गये, तब मुंशी इन्द्रमणि ने अपने मतानुयायियों की रक्षा के लिये उस किताब के उत्तर में एक किताब "तोफेतुलइसलाम" बनाई और वह आगरा लाहौर, गुजरांवाला, बुलन्दशहर, मुरादाबाद आदि में छपकर प्रसिद्ध हुई। फिर मुरादाबाद के मुसलमानों ने "एजाज़ मुहम्मदी" और "हिदयेतुलइइसना" दो किताब बनाईं। इनमें हिन्दुओं के देवताओं की बहुत बुराई प्रमाण शून्य लिखी और छापकर प्रसिद्ध की। इनके उत्तर में मुंशी इन्द्रमणि ने "हमलः हिन्द" और "समसाम हिन्द" दो किताब बनाईं। वे १६ वर्ष हुए मेरठ में, फिर १२ वर्ष हुए मुरादाबाद में मुद्रित हुईं। इन किताबों के छपने से आज तक कहीं हिन्दू मुसलमानों में कोई उपद्रव नहीं हुआ फिर मुसलमानों की ओर से मौलवी मुहम्मदअली तहसीलदार बिस्तारी जिला मुरादाबाद ने इन दोनों किताबों के उत्तर में "सीतुल्लाजब्बार" नामी एक किताब बनाकर बरेली में छपवाई। इसमें हिन्दुओं के देवता और मुंशी इन्द्रमणि को निरी गालियां ही भरी हैं। फिर मुसलमानों ने और भी कई किताब "लज्ज़तुलहिन्द, तेग़ फकीर बर गरदन शरीर, हक़गोई शरह, सलोई" आदि बनाई। जिनमें हजारों गालियाँ देवता और अवतारों को लिखी हैं। मुंशी इन्द्रमणि ने इन किताबों का उत्तर तो नहीं लिखा केवल अपनी पहिली दो बार की छपी हुई हमलः इन्द समसाम हिन्द को तीसरी बार छपवाया। मुरादाबाद के एक मुसलमान ने द्वेष करके अपने अखबार जामशमशैद १६ मई सन् ८० में लिखा कि इन किताबों के छपने से यहां के मुसलमान बिगड़ रहे हैं कोई इन्द्रमणि को मार डालेगा। सरकार इन किताबों को जलवा दे। इस पर गवर्नमेण्ट से एक चिट्ठी सत्य निर्णयको साहब मजिस्ट्रेट के नाम आई। उन्होंने वह चिट्ठी डिपटी इमादअली को सौंपी। डिपटी इमादअली तो मुंशी इन्द्रमणि के जानी शत्रु और अपने मत के अतीव पक्षपाती हैं। साहब बहादुर को इस विषय में खूब ही समझाया और इन्द्रमणि की ओर अपने निर्णयपत्र में पूर्ण दोष आरोपण किये। अब तो प्रायः मुसलमानों ने नगर में कहना प्रारम्भ किया कि इन्द्रमणि को कठिन होगा। अभी साहब बहादुर ने गवर्नमेण्ट की चिट्ठी का उत्तर नहीं लिख था कि मुंशी इन्द्रमणि ने एक अरजी डाक के द्वारा साहब मजिस्ट्रेट के पास भेजी कि इस विषय में मुझको बुलाकर निर्णय किया जाय।

२१ जुलाई साहब बहादुर किसी कारण से रयासत रामपुर को पधारे, वहां के राज्याधिकारी पुरुषों ने साहब बहादुर से इन्द्रमणि के विषय में बहुत कुछ कहा और उन्हें महा कोपित कर दिया, साहब उसी दिन रामपुर से लौट आये, २२ तारीख कचहरी में जाते ही मुंशी इन्द्रमणि को दफ़ा २९२ और २९३ ताज़िरात हिन्द का दोष लगाकर वारण्ट के द्वारा कचहरी में बुलाया। हम नहीं जानते जब कि मुंशी जी आप अरजी दे चुके थे कि मुझे बुलाया जाय, फिर साहब बहादुर ने प्रथम ही वारण्ट की क्या आवश्यकता समझी। क्या साहब बहादुर को मुसलमानों की प्रसन्नता और मुंशी साहब की जो कि हिन्दुस्तान भर में एक प्रतिष्ठित पुरुष हैं उनकी अप्रतिष्ठा ही करनी स्वीकार थी परन्तु कोर्ट इंस्पेक्टर साहब जो वारण्ट लाये थे मुंशी साहब को अपनी सज्जनता के कारण प्रतिष्ठा सहित ही साहब की कचहरी में ले गये और मुंशी साहब के पहुँचते ही बाबू नरेन्द्रचन्द्र और बाबू बैजनाथ वकील भी अदालत में पधारे। साहब बहादुर ने मुंशी साहब से कहा कि तुमने "हमलः हिन्द वा समसाम हिन्द" में अमुक २ बातें कहां से लिखीं? उत्तर दिया कि अमुक २ किताब से लिखी हैं और मैंने ये किताबें मुसलमानों की बनाई हुई किताबों के उत्तर में लिखी हैं, कुछ दिन का अवकाश मिले तो सबका प्रमाण दूंगा, वकील भी अवकाश ही की प्रार्थना करते थे, परन्तु साहब ने इस पर कुछ ध्यान न किया और यह आज्ञा दी कि हम २५ को सरकारी गवाही सुनेंगे और २६ को मुकदमा करेंगे एक घण्टे के भीतर १०००) रु० जमानत के दो। एक घण्टे में १०००) रु० जमानत की आज्ञा भी मुंशी साहब को बेदीग्रह भेजने की सूचक है, क्योंकि मुंशी साहब धनाढ्य तो हैं नहीं, केवल विद्या में प्रसिद्ध हैं, परन्तु ईश्वर को मुंशी साहब की बात रखनी थी, किसी पुरुष ने अपने पास से १०००) रु० जमानत का दे दिया।

२३ जुलाई को तातील थी २४ को मुकदमा पेश हुआ। साहब बहादुर ने कहा कि हमने "हमलः हिन्द व समसाम हिन्द" पर ३ आक्षेप रक्खे, इनका उत्तर दो—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(१) "मेहर" को ख़र्ची क्यों लिखा ?
(२) मरियम के विषय में जो लिखा है कहां से लिखा ?
(३) आईशा और संग असबद की कथा कहां से लिखी ?

प्रथम बाबू बैजनाथ ने "शरह मुहम्मदी" का तरजुमा बाबू श्यामाचरण का किया हुआ जो क़ानून सरकारी है दिखाया कि इसमें भी 'मेहर' को ख़र्ची लिखा है, फिर मुंशीजी ने दूसरे प्रश्न का उत्तर कुरान के "सूरह तहरीम" में में दिखा दिया, इस पर अंग्रेजी कुरान भी देखा गया उसमें भी वही अभिप्राय निकला। तीसरे आक्षेप के विषय में मुंशीजी ने निवेदन किया कि "हिन्दयेतुल इसनाम" वालों ने एक कथा शिव पारवती की महा निन्दित लिखी है वह "रद्द हिन्दू" में से लिखी है उसके उत्तर में जो कुछ "रद्दमुसलमा" वाले ने लिखा था वही "रद्दमुसलमां" में से मैंने लिखा है। फिर मुंशीजी की ओर से दरख़ास्त गुज़री कि हमारे पास इस समय कुरान के सिवाय और किताब नहीं है और हमलः हिन्द समसाम हिन्द में मुसलमानों की किताबों से लिखा है। १५ दिन का अवकाश मिले तो सब किताब तलाश करके प्रमाण दिया जाय और गवाहों के नाम सम्मन जारी कराये जायं। यह दरख़ास्त नामंजूर हुई। फिर बाबू बैजनाथ ने दूसरी दरख़ास्त गुजारी कि हुक्म नामंजूरी दरख़ास्त की नक़ल मिले कि हम अपील करें और मुकदमा मुलतवी रहे। यह भी नामंजूर हुई और जो कुछ मुशी साहब तथा वकीलों ने निवेदन किया साहब ने कुछ न सुना और ५००) रुपये मुंशी इन्द्रमणि पर जुरमाना कर दिया और सम्पूर्ण 'हमलः हिन्द व समसाम हिन्द' मकान मुंशी साहब के से कोर्ट इंस्पेक्टर को भेजकर मंगाली और फड़वा डालीं।

महान् शोक है कि यह वादानुवाद मुसलमान और हिन्दुओं में ३० वर्ष से हो रहा था और प्रथम मुसलमानों ने ही हिन्दुओं के खण्डन प्रमाण शून्य किताबें लिखी थीं, जिनसे हिन्दू मत की बड़ी निन्दा और हानि हुई कि बहुधा हिन्दू उनकी मिथ्या बातें सुन कर मुसलमान हो गये। उनको तो आज तक कहीं सरकार ने कुछ नहीं कहा और मुंशी इन्द्रमणि ने अपने मत की रक्षा के लिये उन किताबों का उत्तर प्रमाण सहित लिखा और अब केवल वह किताबें जो पहले दो बार मुद्रित होकर प्रसिद्ध हो चुकी है और जिनसे आज तक कहीं कोई उपद्रव भी नहीं हुआ तीसरी बार छपवाई तो ५००) रु० जुरमाना हुआ और किताबें फाड़ी गईं। इस मुकदमें में साक्षात् मुसलमानों का पक्ष हुआ। इस मुकदमे को सुनकर नगर २ के हिन्दुओं में हाहाकार हो रहा है। हिन्दू मुसलमानों में यहां विरोध हो गया। हम न्यायशील गवर्नमेण्ट से प्रार्थना करते हैं कि यह शास्त्रार्थ जिस प्रकार ३० वर्ष से हो रहा है और हिन्दू ईसाई मुसलमान आज तक जैसे अपने मत के प्रतिपादन और परमत के खण्डन की किताबें लिखने में स्वतन्त्र हैं उसी प्रकार हिन्दुओं को रक्खें। नहीं तो जिन २ मुसलमानों ने हिन्दुओं के खण्डन में किताबें लिखी हैं और देवता अवतार आदि की वृथा निन्दा की है उनको भी दण्ड दे।

पृष्ठ ३९२ पं०, २१—एक मान्य-पत्र मुझको दिया—

पृष्ठ ४१७ पं० ११-१३—जो मुंशी समर्थदान ने मान्य-पत्र के साथ छापा है, सो अच्छा है। क्योंकि इतने लेख के बिना मान्य-पत्र का अर्थ लोगों की समझ में नहीं आता। इतना लेख अवश्य होना था।

मुंशी समर्थदान का प्रारम्भिक लेख और मान्यपत्र यजुर्वेदभाष्य अंक ४७, ४९ (सम्मिलित) के आवरण पत्र ३ पर इस प्रकार छपा था—

विज्ञापन

सब सज्जनों को प्रकट हो कि श्री स्वामी जी महाराज श्री महाराणा जी के उदयपुर में ७ मास तक विराजमान रहे। उस समय श्रीमान् उदयपुराधीशों ने स्वामी जी महाराज को मान-पत्र दिया, सो सब लोगों के अवलोकनार्थ प्रगट किया जाता है—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मान-पत्र की प्रति

श्रीमदेकलिङ्गेश्वरो जयति ॥

स्वस्ति श्री सर्वोपकारार्थकारुणिकपरमहंसपरिव्राजकाचार्यवर्यश्री ५ श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीयतिवर्येषु इतः महाराणा सज्जनसिंहस्य नतिततयः समुल्लसन्तु उदन्तस्तु। आप का अठै सात मास का निवास सूं चित्त अत्यन्त आनंद मैं रह्यो क्योंकि आपकी शिक्षा को प्रकार श्रेष्ठ और उन्नतिदायक है और आपका संयोग सूं के ही न्याय धर्मादि शारीरिक कार्यों[1] मैं निस्सन्देह प्राप्त होवा की म्हाँ का सभ्य जना सहित दृढाशा हुई कारण कि शिक्षा और उपदेश वाँ श्रेष्ठ पुरुषाँ दृढ होवै है ज्यो स्वकीय आचरण भी प्रतिकूल नहीं राखै सो यो आप मैं यथार्थ मिल्यो अब म्हें आपका वियोग को संयोग तो नहीं चावाँहा परन्तु आपको शरीर अनेक मनुष्यां कै उपकारक है जी सूं अवरोध करणों अनुचित है तथापि पुनरागमन सूं आप भी म्हाका चित्तनैं शीघ्र अनुमोदित करेगा इत्यलम्।

सं० १९३९ फाल्गुन कृष्ण ५ भौमे
हस्ताक्षर
महाराणा
सज्जनसिंहस्य

पृष्ठ ४१६ पं० ४—तेरे लिखे प्रमाणे प्रतिकृति भेजी जाती है।

यह प्रतिकृति इस पत्रव्यवहार में भी दी है। ऋषि दयानन्द के फोटो कई स्थानों में खींचे गये थे। उनकी एक सूची श्री महाशय मामराजसिंह जी ने भेजी है, जिसे उन्होंने महान् परिश्रम और अन्वेषण कर के तैयार की है उसे हम आगे परिशिष्ट ५ में दे रहे हैं। पाठक वहां देखें।

पृष्ठ ४२४ पं० ८—ये निम्नलिखित समाचार वेदभाष्य के टाइटल पेज पर छाप देना।

समर्थदान ने उक्त समाचार ऋग्वेदभाष्य अंक ५०, ५१ (सम्मिलित) के आवरण पत्र पृष्ठ ४ पर इस प्रकार छापा था—

उदारता !!!

हम अत्यन्त धन्यवादपूर्वक प्रगट करते हैं कि शाहपुरेश श्रीमान् महाराज राजाधिराज श्री नाहरसिंह जी वर्मा ने वेदभाष्य की सहायता में २००) रु० चित्तोड़ी (जिनके १५० रु० कलदार होते हैं) दिये और ३०) रु० मासिक मिति जेष्ठ कृष्ण ४ सं० १९४० से वैदिक धर्म्मोपदेशक मण्डली के व्यय के लिये देना स्वीकार किये हैं।

समर्थदान
प्रबन्धकर्त्ता
वैदिक मन्त्रालय
प्रयाग

श्री पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जी० च० पृष्ठ ६९२ पर लिखा है—"विदा के समय शाहपुराधीश ने २५०) रु० वेदभाष्य की सहायतार्थ दिये·····।" यहाँ भूल से १५० कलदार के स्थान में २५०) छप गया प्रतीत होता है।

शाहपुराधीश ने ऋषि दयानन्द को एक मान्य-पत्र भी दिया था। वह इस प्रकार है—

---

१ न्याय धर्म और शरीर की उन्नति के लिये ऋषि दयानन्द ने महाराणा सज्जनसिंह को "दिनचर्या के नियम" लिख कर दिये थे। वे नियम पूर्ण संख्या ४५९ पर पृष्ठ ३६९—३७४ तक छपे हैं। उन्हीं की ओर यह संकेत प्रतीत होता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्वस्ति श्री सर्वोपकारकारणार्थ कारुणिक परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री मद्दयानन्द सरस्वती जी महराज के चरणारविन्दों में महाराजाधिराज शाहपुरेश की बारंबार नमस्तेऽस्तु।

अपरं च, यहाँ आप का विराजना सार्धद्वयमास हुआ, तथापि आप के सत्यधर्मोपदेश के श्रवण से मेरी आत्मा तृप्त न हुई। आशा थी कि आप ग्रीष्मान्त अत्र स्थित होते परन्तु जोधपुराधीशों की ओर से दर्शनों की और वेदोक्तधर्म उपदेश ग्रहण, पुनः सत्याचरण, असत्य त्याग और आप के मुखारविन्द से श्रवण की अभिलाषा देख के आपने वहाँ पधारना स्वीकार किया और भवच्छरीर भी करोड़ों मनुष्यों के उपकारार्थ प्रकट हुआ है, मेरी भी सम्मति यही हुई कि आप का पधारना ही उत्तम है। यही समझ कर यहाँ विराजने की प्रार्थना नहीं की। आशा है कि कृतकृत्य करने के निमित्त पुनरागमन करेंगे।

सं० १९४० मिति ज्येष्ठ कृष्णा ४ हस्ताक्षर नाहरसिंहस्य।

पृष्ठ ४५६ पङ्क्ति २९, ३०—ऋग्वेद का चौथा अष्टक भी पूरा हो गया। पाँचवें अष्टक का एक एक अध्याय कल होगा। और छठा मण्डल आज पूरा हो गया। परमेश्वर की कृपा से १ वर्ष में ऋग्वेद-भाष्य पूरा हो जायेगा।

यह पत्र ऋषि दयानन्द ने भाद्र बदी ५ सं० १९४० = २३ अगस्त १८२३ को लिखा था। इसके पश्चात् ऋषि दयानन्द केवल दो मास ७ दिन ही जीवित रहे। उसमें भी २७ सितम्बर से अन्त तक रुग्ण ही रहे। इस बीच के १ मास ४ दिन में ऋषि दयानन्द ने सातवें मण्डल के ६२ वें सूक्त के दूसरे मन्त्र तक का भाष्य किया।

ऋषि दयानन्द ने ऋग्वेद और यजुर्वेद का भाष्य कहाँ तक किया, तथा उनके सामने कितना छपा, कितने भाग की प्रेसकापी बनी और कितने भाग तक हिन्दी बन गई थी। इन सब बातों के सूचनार्थ श्रीमती परोपकारिणी सभा के तात्कालिक मन्त्री श्री पं० मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्या ने ऋषि दयानन्द के अनन्य सेवक और लेखक ब्र० रामानन्द को नियत किया। रामानन्द ने इन विषयों का जो लिखित उत्तर पाण्ड्या जी को दिया वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस पत्र को श्री महाशय मामराज जी ब्र० रामानन्द के घर से खोज कर लाये थे।

ब्र० रामानन्द का पत्र

श्रीयुक्त माननीयानेक शुभगुणगणाऽलंकृत ब्रह्मकर्मसमर्थ श्रीमत्पंडितवर्य मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्याऽभिधेयेष्वितो रामानन्दब्रह्मचारिणोऽनेकधा प्रणतयः समुल्लसन्तुतरामिति।

भगवन् आपने जो मुझे श्रीयुत परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ श्रीमद्दयानन्द सरस्वती स्वामी जी कृत ऋग्वेदादि भाष्य के विषयों को परीक्षा कर के श्रीमती परोपकारिणी सभा में निवेदन करने के लिये (एक सारांश) बनाने को प्रेरणा की थी सो आप की आज्ञानुसार उसको बनाकर आप की सेवा में समर्पित कर्त्ता हूँ, अवलोकन कीजियेगा।

इत्यलं प्रशंसनीय बुद्धिमद्वर्येषु

मिति पौषकृष्ण ३ शुभ चिन्तक
रवि सम्वत् १९४० रामानन्द ब्रह्मचारी

ऋग्वेदभाष्य

श्रीयुत परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ मद्दयानन्द सरस्वती जी कृत ऋग्वेदादिभाष्य की व्यवस्था निम्नलिखित प्रमाणे जानना चाहिये—अर्थात्

ऋग्वेद का भाष्य १ मण्डल के आरम्भ से ७ वें मण्डल के ६२ वें सूक्त के २ मन्त्र तक रचा गया।

१ मण्डल के आरम्भ से ८६ सूक्त के ५ मंत्र तक मुद्रित हो चुका अर्थात् ५० + ५१ अङ्क तक।

यजुर्वेदभाष्य

यजुर्वेद का भाष्य सम्पूर्ण हो गया अर्थात् ४० वें अध्याय की समाप्ति पर्यन्त रचा। १५ वें अध्याय के ११ मन्त्र तक का भाष्य मुद्रित हो गया अर्थात् ५० और ५१ अंक तक।

१५ वें अध्याय के १२ वें मन्त्र से लेकर २१ वें मन्त्र तक की शुद्ध प्रति छपने में शेष मुन्शी समर्थदान जी के पास वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

१ मण्डल ८६ सूक्त के ६ मंत्र से ९१ सूक्त के ३ मंत्र तक की शुद्ध प्रति छपने में शेष मुन्शी समर्थदान जी के पास वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में है ।

१ प्रथ[म] मंडल के ९१ सूक्त के ४ मंत्र से १ प्रथम मण्डल ११४ वें सूक्त के ५ वें मन्त्र तक की शुद्ध प्रति लिखी हुई छापने योग्य है ।

१ प्रथम मंडल के ११४ सूक्त के ६ मंत्रसे १ मंडल के १२४ वें सूक्त के १२ वें मन्त्र तक की भाषा बनी हुई है ।

१ मण्डल के [१२४ वें सूक्त के १३ वें] मन्त्र से १ मण्डल के [१४३ वें] सूक्त की समाप्ति पर्यन्त का भाष्य पं० ज्वालादत्त जी[के पा]स भाषा बनाने के लिए वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में है ।

१ मंडल १४४ वें सूक्त से मंडल ७ के ६२ वें सूक्त के २ मन्त्र तक का भाष्य अशुद्ध संस्कृत में बना हुआ है ।

१ मण्डल के ६१ वें सूक्त के ५ वें मन्त्र से १ मण्डल के ११४ वें सूक्त के पूर्व मन्त्र के ऋग्वेद भाष्य के रद्दी पत्रे अर्थात् शुद्ध प्रति हो गई ।

१५ वें अध्याय के २२ वें मन्त्र से २३ वें अध्याय के ४९ मन्त्र तक छपने योग्य शुद्ध प्रति लिखी हुई है ।

२३ वें अध्याय के ५० वें मन्त्र की भाषा बनी हुई शुद्ध प्रति में लिखने योग्य है ।

२३ वें अध्याय के ५१ वें मन्त्र से ६५ मन्त्र तक अर्थात् अध्याय की समाप्ति पर्यन्त की भाषा नहीं बनी ।

२४ वें अध्याय [२६वें] अध्याय तक का भाष्य भाषा बनाने के लिये पं० ज्वालादत्त जी के पास वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में है ।

२७ वें अध्याय के आरम्भ से ४० वें अध्याय की समाप्ति पर्यन्त का अशुद्ध संस्कृत भाष्य बना हुआ है अर्थात् बिना शुधी संस्कृत है ।

१३ वें अध्याय के २१ वें मन्त्र से २३ वें अध्याय के ४९ वें मन्त्र तक के रद्दी पत्रे है अर्थात् शुद्धप्रति हो गई ।

मिती पौष कृष्ण ३ रवि सं० १९४०

इस पत्र में ऋग्वेद और यजुर्वेद भाष्य के कुछ भागों के लिये "अशुद्ध संस्कृत" शब्द का प्रयोग हुआ है । उसका तात्पर्य रफ कापी से है अर्थात् उस भाग की 'फेयर कापी' = 'मुद्रण योग्य' प्रतिलिपि तैयार नहीं हुई थी ।

ब्र० रामानन्द का यह पत्र परोपकारिणी सभा के २८ दिसम्बर १८८३ के प्रथम अधिवेशन में पढ़ा गया था और इस विषय में निम्न प्रस्ताव पास हुआ था—

"प्रस्ताव सं० ५ एक पत्र इस विषय पर पढ़ा गया कि स्वर्गवासी स्वामी जी ऋग् और यजुर्वेद भाष्य का कौन कौन सा भाग समाप्त और असमाप्त छोड़ गये हैं । प्रतीत होता है कि समग्र यजुर्वेद का भाष्य स्वामी जी पूर्ण कर गये परन्तु बहुत थोड़ा भाग उसका अब तक मुद्रित हुआ है और ऋग्वेद का सप्तम मण्डल तक ।

सबकी सम्मति से यह स्वीकृत हुआ कि पण्डित भीमसेन तथा ज्वालादत्त प्रूफ के शोधने और संस्कृत भाष्य का हिन्दी अनुवाद करने के कार्य पर नियत किये जायँ और प्रति व्यक्ति को २५) पचीस मुद्रा मासिक वेतन मिले·····।"

परोपकारिणी सभा के अधिवेशनों का रिपोर्ट संग्रह (सन् १९२७)पृष्ठ ३ ॥

पं० मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्या ने २८ दिसम्बर १८८३ के अधिवेशन के प्रस्ताव संख्या ७ के अनुसार २८ दिसम्बर १८८८ के अधिवेशन में एक आवेदन पत्र (६ दिसम्बर १८८५ का छपा) उपस्थित किया, जिसमें ऋषि दयानन्द के लिखित तथा उनके संगृहीत लिखित और मुद्रित पुस्तकों का विवरण दिया है । उस आवेदन पत्र में ऋग्वेद और यजुर्वेद भाष्य के सम्बन्ध में निम्न लेख है—

वेष्टन नं० १८–श्री स्वामी जी कृत ऋग्वेद और यजुर्वेदभाष्य का अशुद्ध लेख अर्थात् संस्कृत शोधकर भाषा बनाने का ।

वेष्टन नं० १९–श्री स्वामी जी कृत ऋग्वेद और यजुर्वेद भाष्य का शुद्ध लेख भाषा सहित, जो छापने योग्य ।

वेष्टन नं० २०–श्री स्वामी जी कृत ऋग्वेदभाष्य भाषा सहित, इसकी शुद्ध प्रति लिखी जाकर वेष्टन संख्या १९ में रखनी ।

इस उद्धरण में भी "शुद्ध" शब्द प्रेस कापी के लिये और 'अशुद्ध लेख' रफ कापी के लिये प्रयुक्त हुआ है ।

इति युधिष्ठिरमीमांसकसंकलितं तृतीयं परिशिष्टं समाप्तम् ॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

परिशिष्ट ४

आर्यभाषा को राजकीय कार्यों में प्रचलित करने लिए ऋषि दयानन्द की प्रेरणा से भेजे गये मेमोरियलों के नमूने

पृष्ठ ३५३ पंक्ति १९, २०—इस समय (आर्यभाषा के) राजकार्य में प्रवृत्त होने के अर्थ जो मेमोरियल छपे हैं, सो शीघ्र भेजना।

ऋषि दयानन्द की प्रेरणा से आर्यभाषा के राजकार्य में प्रवृत्त कराने के लिए अनेक स्थानों से राज्याधिकारियों के पास मेमोरियल भेजे गए थे[1]। उनमें से हम एक मेमोरियल और एक निवेदन पत्र की प्रतिलिपि नीचे देते हैं। जिससे यह स्पष्ट ज्ञात हो जाएगा कि राजकार्य में आर्यभाषा हिन्दी को प्रवृत्त कराने में आर्यसमाज तथा उसके प्रवर्तक ने (उस काल में जब कि इस ओर किसी का ध्यान भी नहीं गया था) कितना महान् कार्य किया था। आज हिन्दी के इतिहास में आर्यसमाज और उसके प्रवर्तक के हिन्दी प्रचार के कार्य का उल्लेख केवल ३।४ पङ्क्तियों में लिख कर समाप्त कर दिया जाता है। हमारे विचार में इसका प्रधान कारण आर्य विद्वानों का इस क्षेत्र (इतिहास लेखन) से उदासीन रहना ही है, अन्यथा किसी भी हिन्दी के इतिहास लेखक को ऐसी धृष्टता करने का साहस ही न होता। अस्तु—

आर्यसमाज मेरठ द्वारा प्रेषित मेमोरियल[2]

(मुख पत्र)

ओ३म्

मेमोरियल

अर्थात् श्रीयुत् डाक्टर हंटर साहिब बहादुर की सेवा में
नागरी प्रचारक निवेदन पत्र
जिसको आर्यसमाज मेरठ की आज्ञानुसार एक सभासद ने लिखा

मिति माघ बदी १२ रविवार
सम्वत् १९३९
विद्या दर्पण यन्त्रालय में छपा

---

१ अगले निवेदन-पत्र के पैरा ३ से व्यक्त होता है कि दो सौ मेमोरियल शिक्षा कमीशन के पास भेजे गये थे।

२ यह मेमोरियल २० × २६ अठपेजी आकार के १६ पृष्ठों पर लीथो में छपा है। यह हमें महाशय मामराज जी द्वारा प्राप्त हुआ। मूल उनके संग्रह में सुरक्षित है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ओ३म्

मेमोरियल

अर्थात् नागरी प्रचारक निवेदन पत्र

श्रीयुत विज्ञातिविज्ञ महामान्यवर एज्यूकेशनल कमीशन के प्रधानाध्यक्ष श्रीमान् डाक्टर हंटर साहिब की सेवा में अति विनय पूर्वक प्रार्थना ॥

यद्यपि आज तक जितने देवनागरी प्रचारक प्रार्थना पत्र अर्थात् (मेमोरियल) आपकी सेवा में भेजे गये हैं सम्भव है कि उनकी अपेक्षा यह निवेदन पत्र अति ही तुच्छ हो, परन्तु न्यायाधीश महाशयों के लिये संकेत मात्र ही बहुत होता है इस लिये आशा है कि इस छोटे से निवेदन पत्र पर अवश्य ध्यान होगा और विचारपूर्वक यथार्थ और प्रजाहित सम्मति दी जायेगी।

प्रश्न—जिस देश में जिस भाषा के द्वारा शिक्षा दी जाती है क्या वह वहां के सब लोगों को शिक्षा देने के लिये उपयोगी है ॥

उत्तर—जिस देश में जिस भाषा के द्वारा वहां के लोगों को शिक्षा दी जाये वह वहाँ के लोगों की प्राकृत और स्वाभाविक भाषा हो अर्थात् सब स्त्री पुरुष उसको बाहर भीतर बिना सोचे विचारे रात दिन बोलते चालते हों, क्योंकि उस भाषा के केवल अक्षराभ्यास हो जाने पर क्या बालक और युवा सब स्त्री पुरुष शीघ्र शब्द निकालने और पढ़ने लगेंगे। कारण इसका यह है कि बोली तो वही है जो माता पिता, भाई बन्धु और संगियों से सुनी सुनाई और बोली हुई है, केवल अक्षरों के सीखने और उनके जोड़ तोड़ में श्रम करना रह जायगा। परन्तु वह मातृभाषा आपस की बोल-चाल और लेख का निर्वाह मात्र ही न हो किन्तु उसमें आगे बढ़ने और विद्वान् बन्ने के लिये कविता और विद्या के विस्तृत मार्ग भी हों। अब रहे अक्षर उस मातृभाषा के ऐसे होने चाहियें जो सुलभ हों और उनमें सब प्रकार के शब्द लिखे जा सकें और पढ़ने में ज्यों के त्यों आवें और एक के लेख को दूसरा निर्भ्रम और शुद्ध पढ़ ले। रहा यह विचार करना कि इस देश की कौन सी प्राकृत भाषा है—यों तो इस आर्यावर्त में बंगाली, गुजराती, मरहटी आदि बहुतेरी भाषा जो क्रम से बंगाल, गुजरात और महाराष्ट्र आदि देशों में बोली जाती हैं, परन्तु हमारे पश्चिमोत्तर देश में मुख्य नागरी भाषा जिसे अब लोग हिन्दी कहने लगे हैं बोली चाली जाती है और इसको छोड़ अवध, पंजाब और मारवाड़ आदि प्रदेशों में भी यही भाषा किसी २ शब्द की उलट-पलट और ऊँचे-नीचे स्वरों के भेद से बोली जाती है और इसी लिये एक की बोल चाल को दूसरा भली भाँति समझ लेता है। और यह मातृभाषा ऐसी सुगम है कि कहे प्रदेशों के अनन्तर और प्रदेशों के लोग भी बंगाली दक्षिणी आदि बिना पढ़े और सीखे समझ लेते हैं और केवल मेल मिलाप से ही स्पष्ट बोलने लगते हैं। यह तो इसकी सुगमता सरलता का थोड़ा सा वर्णन हुआ अब इसके पूरे होने का व्याख्यान सुनिये कि इसमें कैसी २ कविता सीधी २ बोल चाल में है कि बड़ी २ प्रसिद्ध भाषाओं की कविता लगा नहीं खातीं। टुक सूर, तुलसी, केशव और बिहारी आदि कवियों की कविता पर ध्यान दीजिये कि कैसे २ अद्भुत अलंकार और गूढ़ आशय इस भाषा में बधे और समाये हैं। गद्य भी इस ललित भाषा की बहुत रोचक है प्रेमसागर, राजनीति, शकुन्तला आदि ग्रन्थों के देखने से उसकी उत्तमता और उत्कृष्टता भलीभांति सिद्ध होती है।

गणित, भूगोल, इतिहास और वैद्यक आदि विद्याओं की अनगिनत पुस्तकें बन गईं और प्रति दिन बनती जाती हैं निदान यह प्राकृत भाषा सर्वथा सबके पढ़ने और लिखने के योग्य है।

अब रहे वह अक्षर कौन से हैं जिनमें इस भाषा और अन्य भाषा के शब्दों का पूरा २ निर्वाह हो सके और वह यथावत् लिखे पढ़े जायें और लिखने और पढ़ने वाला कहीं रुके और अटके नहीं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वह अनुपम और अपूर्व अक्षर संस्कृतभाषा के जो पृथिवी मात्र के सम्पूर्ण अक्षरों से उत्तम और सुन्दर हैं। सबसे बढ़कर उनमें यह बात है कि अक्षर २ का रूप निराला है। पढ़ने लिखने में भ्रम कभी नाम को भी नहीं पड़ता और ऐसे सीधे और सुगम हैं कि दो चार दिन के अभ्यास से आ जाते हैं। यों तो संस्कृत भाषा के तेरसट अक्षर हैं जिनमें बाईस स्वर, तेंतीस व्यंजन, चार अयोगवाह और चार यम हैं[1]। परन्तु हमारी प्राकृत नागरी भाषा में बहुधा बारह स्वर, तेंतीस व्यंजन, दो अयोगवाह विसर्जनीय और अनुस्वार और एक यम सानुनासिक[1] अर्थात् सब अड़तालीस अक्षर काम आते हैं और इन्हीं से इस भाषा और अन्य शब्दों का यथोचित निर्वाह हो सकता है और इन मनोहर अक्षरों में सर्वोपरि यह गुण है कि इनमें घटा बढ़ा कर कुछ का कुछ नहीं बना सकते।

मुसलमानों के इस देश में आने और हेल मेल से जो अरबी फ़ारसी के शब्द नागरी भाषा में मिल गये हैं उसी को लोग उर्दू कहने लगे हैं, परन्तु यह उर्दू बहुधा दिल्ली लखनऊ आदि दो चार बड़े २ नगरों में जहाँ पहिले बादशाह लोग रहते थे बोली जाती है। सो उनमें भी फ़ारसी पढ़े लिखे लोग, शेष सब स्त्री पुरुष वही अपनी मातृभाषा बोलते हैं। हमारी भाषा में आपस के मेल जोल से जो कोई अरबी फ़ारसी का तथा अंगरेजी का कोई शब्द मिल गया और सब लोगों में प्रचार पा गया, उसका बोलना और लिखना कोई ऐसी बुराई की बात नहीं जिस से कुछ हानि हो। पर हाँ, बुराई और हानि की बात तो यह है कि लोगों के जी में जो यह बात समा रही है कि फ़ारसी आरसी है उसके पढ़े लिखे बिना मनुष्य की बोल चाल और शील ही नहीं सुधरता और सँवरता है इसलिये वह लोग फ़ारसी पढ़ २ कर अपने लेख में निरे अरबी फ़ारसी के शब्द कूट २ कर भरते हैं और जहां तक हो सकता है अपनी भाषा के सीधे २ शब्दों की जगह ढूँडभाल कर अरबी फ़ारसी के टेढ़े २ शब्द बोलते और लिखते हैं यहां तक कि इज़ाफ़त और तरकीब आदि भी अरबी फ़ारसी ही की लाते हैं।

यह फारसी के नाम पर उधार खाने वाले अपनी बोल चाल में तो बड़े २ लुग़त ही अरबी फ़ारसी के बोलते हैं जिनको साधारण लोग नहीं समझते और बहुधा कह देते हैं कि यह तेरी फारसी तो हमारी समझ में नहीं आती, ढ़ब-सिर कहें तो समझें। परन्तु उनका लेख जुलैख़ा बहार दानिश और माधोराम से कम नहीं होता जिसका समझना तो क्या और लोग मौज को भी नहीं पाते, फिर कहिये यह नाम की उर्दू जो सचमुच फ़ारसी का घूंघट काढ़ रही है, लोग कैसे उसको सुगम सुलभ देख सकते हैं ? कदापि नहीं ॥

भला जब आदमी की सारी उमर अकेली उर्दू के लिए फ़ारसी पढ़ते २ बीत गई तो आगे और क्या करेगा और वह फारसी भी कैसी जिसमें ऊपरी और मुंह देखी बात बनाना, लल्लो पत्तो, चापलूसी और रसिक बातों के सिवाय और कुछ न हो ॥

इसका फल जो कुछ यहाँ के लोगों पर हुआ है उसको निश्चय चतुर मनुष्य जान्ते होंगे। कदाचित् यह उर्दू जिससे बहुत बड़ी हानि हुई और हो रही है सर्कारी दफ़्तरों में लिखी पढ़ी न जाती तो कभी प्रचार न पाती और जैसे अब लोग नौकरी के लालच से पढ़ते हैं, नाम भी न लेते। इस पर भी तो उर्दू जान्ने वाले नागरी जान्ने वालों का मसां करके सवाँ (सौवां) भाग भी नहीं। कारण इसका वही ठेठ बोल-चाल और अक्षरों की सुगमता का है। इस उर्दू भाषा का दफ़्तरों में प्रचार होने से बड़ी भारी हानि तो यह है कि साधारण लोग अपने मुआमले और मुक-द्दिमे के मध्ये की लिखत पढ़त सुनकर गूँगे बहरों के समान मुँह तकते रह जाते हैं बहुतेरा कान लगाते हैं, पर समझते नहीं, जो कहीं पढ़ने लिखने वाले ने किसी कारण और प्रयोजन से अपना और उसका सिर खपाया और सैकड़ों दृष्टान्त दिये तो जाकर कहीं औंधा सीधा मतलब समझे तो समझे, नहीं तो नहीं, हारकर जैसा कि किसी ने कहा

१. वर्णों का यह वर्णन वर्णोच्चारण-शिक्षा के अनुसार किया गया है। वस्तुतः सानुनासिक यम वर्ण नहीं है वह तो स्वरों का एक उच्चारण विशेष है। उसे द्योतित करने के लिये स्वर के ऊपर ँ ऐसा चिह्न किया जाता है। जो कि किसी स्वतन्त्र वर्ण का चिह्न नहीं है। यम स्वतंत्र वर्ण हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वैसा मान लिया। जो पक्षपात को काम में न लावें तो वकील, मुख्तार इसकी साक्षी दे सकते हैं। साधारण लोगों के पास जब कोई सर्कारी काग़ज़ वा ख़त पत्र जाता है तो बेचारे उसको लिये मारे २ फिरते हैं। जो दैव से फ़ारसी पढ़ा मिल गया तो मिल गया, नहीं तो दस २ पाँच २ कोस जाकर पढ़वाते हैं और वह भी खाली हाथ नहीं, किन्तु दे लेकर अपना काम साध लेते हैं। यह फ़ारसी पढ़े जैसा रात दिन बोलते हैं वैसा भी नहीं लिखते। लिखने के समय निरी फ़ारसी छौंकते हैं (मानो इनकी जन्म घुट्टी फ़ारसी ही है) और क्यों न फ़ारसी बघारें, इसी में तो उनकी बड़ी जीत है। बात २ में लोगों को मूँडते और ज़रा २ से लिखने पढ़ने का बहुत कुछ माँग लेते हैं जो यहाँ की ठेठ बोल चाल में लिखें तो ओलट ही क्या रहे और किस मिष से लोगों को ठगें। निदान कहाँ तक लिखा जाय, इस उर्दू का दफ्तरों [में] प्रचार होने से बड़ी २ बुराइयाँ और लोगों की हानि हुई और होती हैं। उदाहरण एक नहीं हजारों दे सकते हैं। इसलिये यह तीन काल में पढ़ने और दफ्तरों में प्रचार पाने योग्य नहीं।

और यह भाषा तो जो कुछ है सो है ही, परन्तु इसके अक्षर, जिनमें वह आजकल लिखी जाती है बहुत ही निषिद्ध है। उन्होंने रहा सहा लोगों का मठ मारा है।

इन फारसी अक्षरों की लिखत को पढ़ने वाले केवल अंधे की लाठी के समान टटोलते चलते हैं और जो कुछ पढ़ते हैं उसको प्रसंग से निकालते हैं और प्रसंग के विना कोई किसी के लेख को निर्भ्रम और ठीक नहीं पढ़ सकता। और दूसरी भाषा के शब्दों का लिखना पढ़ना तो मानों असम्भव ही है और जो किसी ने टूटा फूटा लिख भी लिया तो पढ़ने में कदापि शुद्ध नहीं आता, कुछ का कुछ मुँह से निकल जाता है। बहुतेरे नागरी, संस्कृत और अंगरेजी के शब्द इनही अक्षरों के प्रताप से बिगड़ गये, जिनको सुनकर हँसी आती है। यह कुछ लिखने पढ़ने वालों का दोष नहीं है, किन्तु अक्षर ही ऐसे हैं कि फ़ारसी के अनंतर और किसी भाषा के शब्द उनमें शुद्ध नहीं लिखे जा सक्ते। और जो सच पूछो तो फ़ारसी का भी निर्वाह यथावत् नहीं होता, क्योंकि प्रथम तो साकिन्, मुतहर्रिक आदि का भेद पढ़ने के समय और अलिफ़, अैन और ते, तोय ت ط और से, सीन स्वाद ث س ص और हे, हे ه ھ और ज़ाल, ज़े, ज़्वाद, ज़ोय ذ ز ض का भेद लिखने के समय पूर्वस्मरण और लुग़त की क़िताब के विना स्पष्ट नहीं हो सकता॥

दूसरे इन अक्षरों में अलिफ, अैन, वाव, ये ا ع و ی ये चार स्वर हैं, जिनमें से अैन ع अरबी में ही आता है और वाव, ये و ی व्यञ्जन का भी काम देते हैं और ज़ेर, ज़बर, पेश ये ِ َ ُ चार स्वरों के संकेत और उनकी मात्रा हैं जो बहुधा लगाई नहीं जाती। इनही स्वर और संकेतों से सारे स्वरों का खेंच तानकर उच्चारण करते हैं।

तीसरे इनकी बनावट और मिलावा भी बहुत ही भ्रमणीक है। जैसे बे, पे, ते, से ب پ ت ث और जीम, चे, हे, ख़े, ج چ ح خ और दाल, ज़ाल د ذ और रे, जे ر ز और सीन शीन س ش और स्वाद, ज़्वाद ص ض और तोय, ज़ोय ط ظ और ऐन, ग़ैन ع غ और काफ़, गाफ़ ک گ की बनावट और मिलावट में और क़े, काफ़ ق ف और बे, पे, ते, से, नून, ये ب پ ت ث ن ی की केवल बनावट में नुक्तों और शोशों के सिवाय कुछ अन्तर नहीं अर्थात् जब ये दूसरे अक्षरों से मिलाये जाते हैं तब सब का रूप एक सा दिखाई देता है, जो चाहो सो पढ़ लो। यदि पढ़ने वाले के भाग्य से नस्तालीक़ ख़त (जिसमें पूरे २ अक्षर और नुक़्ते और शोशे लगे हुए होते हैं) हाथ का लिखा हुआ वा छपा हुआ तो उसने पढ़ लिया, नहीं तो माथा पकड़ कर रह गया, परंतु हरकात के विना उच्चारण तब भी ठीक न होगा॥

इस नस्तालीक़ ख़त में प्रायः पुस्तकें लिखी जाती हैं और वह मनमानी घसीट जिसमें रात दिन लोग चिट्ठी, पत्री आदि निज के और सर्कारी काम करते हैं, उसका पढ़ना अलबत्तह कुछ काम रखता है। ऐसे वैसे का काम नहीं जो पढ़ सके, बैठा सिर धुना करता है। उसके बांचने में अभ्यास करने के लिये लोग पढ़ने पढ़ाने से भी अधिक श्रम करते हैं। तब भी यह लिखत बहुत सोच विचार और पूर्वापर के सम्बन्ध से जों तों कर पढ़ने में आती है और

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यथार्थ में वह अक्षर और लिखित तो ऐसी नहीं कि जिसको कोई पढ़ सके, केवल पढ़ने वाले के अभ्यास की बात है। ऐसी लिखत को पढ़ कर सुनाने के लिए लोग पहले से देखभाल रखते हैं और फिर भी जो शब्द पढ़ने में नहीं आते उनकी जगह और का और सुना देते हैं। इन अक्षरों में जब फ़ारसी ही की यह दुर्दशा है तो और भाषा की तो क्या कथा, जो लिखने में ही नहीं आती। यद्यपि फारसी वालों ने यहां की बोल चाल के लिये टे, डाल, ड़े ; ; ; नये अक्षर घड़े तो भी यहां की भाषा का यथोचित निर्वाह नहीं हो सकता। इस लिये उन्होंने बहुतेरे यहां की बोली के शब्दों को अपने ढंग पर बना लिया। जैसे ब्राह्मण को बिरहमन और दक्षिण दकन आदि। निदान इस शिकस्त खत में वही शब्द पढ़ने में आते हैं जो ज़बान पर चढ़े रहते हैं और उनमें भी जो बहुधा एक ही प्रकार से लिखे जाते हैं दुब्धा में डालते हैं और जहां इतर भाषा का शब्द आया और मुँह से कुछ का कुछ निकला, देखो जैसे नांव, गांव, ठांव कभी ठीक नहीं पढ़े जाते हैं॥

निदान इन फारसी अक्षरों और उनकी लिखत की कहां तक बुराइयां लिखी जायं, उनसे इस देश के लोगों की बड़ी भारी हानि है। नित नये जाल बनते हैं, रात दिन लोग धोके खाते हैं। जरा २ से लिखवाने पढ़वाने के लिये गिड़गिड़ाते फिरते हैं। सर नामह उठवाई और कलम पकड़वाई के लिये नित उठ लुटते हैं। पृथिवी भर के लोगों की यही परिपाटी है कि जहां बालक पांच सात वर्ष का हुआ और उन्होंने उसको पहिले मातृभाषा लिखानी पढ़ानी आरम्भ की और जब वह उसमें प्रवीण हो गया और गणित, भूगोल इतिहास आदि विद्या सीख चुका तब उस की रुचि के अनुसार इतर भाषा और विद्या सिखाते हैं। यहां कुछ काल से एक निराली ही चाल पड़ गई है अर्थात् जब तक बालक मां बाप की गोद में खेलता और तुतलाता रहा तब तक तो मातृभाषा सीखता रहा और जब पढ़ने लिखने के योग्य हुआ तब ही मुल्ला और मियां जी को सौंप दिया गया और यह गीत कि

करीमा बबख़्शाय बर हालमा। कि हस्तम असीरे कमंदे हवा॥

गाने लगा और यह राग केवल जीभ तोड़ने और गला फाड़ने के लिये होती है, क्योंकि वह अवस्था तो ऐसी है ही नहीं कि दूसरी भाषा सीख सकें और उसके भार को उठा सकें, परवश विचारे शिथिल और मन्द होकर अधम रह जाते हैं। न अपनी भाषा जैसी चाहिये आई, न दूसरी जो मारपीट करके। बहुत हुआ तो दोनों भाषा का सार यह याद रहा कि

अय अकरीम बख़शीश कर ऊपर हाल हमारे के। कि हूँ मैं कैदी हवा और हविस का॥

बस यही मुंशी लोगों की सारी ऊमर की मेहनत का निचोड़ है, जिसको उन्होंने अदालतों और दफ्तरों में फैला रक्खा है और केवल इतनी ही करतूत पर आपे को बड़ा मान्ते हैं और जान्ते हैं कि इल्म है तो फारसी और सदा घमड से यह पढ़ते हैं कि

क़लम गोयद कि मन शाहे जहानम। क़लम कस रा बदौलत मे रसानम॥

और कौतुक यह कि जरा २ से लड़के छाती पर हाथ रख कर रसिक शेर पढ़ते हैं और ठंडी सांसे लेते हैं और आपे को संवारने और वेश बनाने में वेश्या को मात करते हैं। विचार करने का स्थान है कि जिस भाषा का ऐसा बुरा गुण हो, वह क्या शिक्षा देने और प्रचार पाने योग्य है? कभी नहीं॥

निस्संदेह यहां तक हो सकता है कि जो भाषा ऐसी क्लेश साध्य हो और उसमें निरे अवगुण भरे हों उसको लोग पढ़ते पढ़ाते ही क्यों हैं? तो इसका समाधान यह है कि न उसमें सर्कारी काम काज होते, न लोग उसको अंगीकार करते। कदाचित् प्रतीत न हो तो देख लीजिए, जो लोग अपनी लड़कियों की शिक्षा चाहते हैं, वह सब नागरी पढ़वाते हैं। और कोई उनसे कहे भी कि अजी आप तो उर्दू फारसी जानते हैं, लड़कियों को क्यों नहीं सिखाते तो तुरन्त उसके उत्तर में यही कहते हैं कि उनको कौन सी नौकरी चाकरी करनी रह गई। और जी में यह भी जान्ते हैं कि उर्दू, फारसी पढ़ कर लड़कों की क्या दशा हुई जो लड़कियों की होगी। वास्तव में पेट ऐसा ही है जो कुछ नहीं करना है, उसके लिये करना पड़ता है। इससे स्पष्ट है कि उर्दू, फारसी वही लोग पढ़ते पढ़ाते हैं जो अदालतों से संबंध और प्रयोजन रखते हैं। शेष सब गुणग्राही पहले अपनी मातृभाषा सीखते हैं। देखिये इस देश

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

में हजारों चटशाला और पाठशाला हैं, जिनमें लाखों लड़के नागरी पढ़ते हैं। यदि अपनी मातृभाषा में रुचि न होती तो कौन पढ़ता ॥

इस लेख से हमारा यह प्रयजन नहीं है कि अपनी मातृभाषा के सिवा कोई कुछ न पढ़े, किंतु बड़ा मनोरथ यह है कि प्राथमिक शिक्षा हमारी मुख्य नागरी में हो, तदनन्तर जिसकी जो रुचि हो उसके अनुसार संस्कृत, अंगरेजी और अरबी आदि पढ़े, और जब तक अपनी भाषा में निपुण न हो ले तब तक दूसरी भाषा में शिक्षा न दी जाय। इस नियम के विना जो कुछ हानि हुई, उसकी साक्षी बहुधा फारसी और अंगरेजी वालों की बोल चाल और उनके अनुवाद दे रहे हैं। हां रहा, इसका वर्त्ताव, वह तबही हो सकता है जब सर्कारी दफ्तरों में नागरी का प्रचार हो। निदान कहां तक वर्णन किया जाय, नागरी भाषा और उसके अक्षरों से जो कुछ प्रजा का लाभ है उसको सब जान्ते हैं। यहां तक कि विदेशी लोग भी सराहते और उसके पढ़ने में उद्यत हैं। तथा च अभी इंगलिस्तान के कमिश्नरों ने सिविल सर्विस की परीक्षा में उर्दू की जगह नागरी को आवश्य [क] और प्रधान ठहराया है। इसलिये आशा है कि हमारी प्रार्थना भी अवश्य सफल होगी ॥

अलमिति

आर्य समाज मेरठ के एक सभासद ने लिखा मिति माघ वदि १२ रविवार सम्वत् १९३९ विक्र०

कानपुर निवासियों द्वारा प्रेषित निवेदन-पत्र[1]

अशेषगुण सम्पन्न महामान्य महामहिम श्रील श्रीयुक्त सरऐलफ्रेड कामिन्स लायक के, सी, बी, सी, आई, ई पश्चिमोत्तर प्रदेश तथा अवध के लफ्टिनेण्टगवर्नर महाशय प्रबल प्रतापेषु।

सविनय निवेदन मिदम्।

हम रईस प्रार्थी जिला कानपुर के आप से विनय करते हैं कि हम लोगों की दीन दुर्दशा पर ध्यान दीजिये! न्यायशीला सर्कार की यह इच्छा है कि प्रजा को कष्ट किसी प्रकार से न हो। हम लोगों को मूर्ख न रहने देना और हमारी साधारण भाषा में शिक्षा देना यही न्यायशीला सरकार अंग्रेज का मत चला आया है। हमलोगों को बहुत आनन्द हुवा कि जब सर्कार से शिक्षा कमीशन के बैठने की आज्ञा हुई। यह सोचकर कि अब हमलोगों की दीन दशा पर शिक्षा कमीशन अपना मत आप तक यथोचित प्रकाश करेगी। पर बड़े शोक की बात है कि हमलोगों के विषय में अर्थात् जो जो हम आपके प्रार्थियों ने पुकारा था कुछ ध्यान न दिया गया। यहां पर हिन्दी उर्दू की जगह याने देवनागरी अक्षर फ़ारसी अक्षरों की जगह सब सरकार के दफ्तरों में हो जाते, यही हमलोगों की पुकार थी। जो जो बुराइयां उर्दू के जारी रहने से होती जाती हैं उनके वर्णन करने का आपके सामने जो खुद भलीभांति जानते हैं, कुछ प्रयोजन न था। पर हमलोगों को उर्दू से बहुत दिक्कत उठानी पड़ती है। इससे आपसे, जो हमारे पिता सदृश हैं, संक्षेप में कहते हैं।

---

१ यह निवेदनपत्र नीले रंग के फुल्सकेप कागज पर ४ पृष्ठों में ग्रेट टाइप में छपा है। यह श्री महाशय भामराजजी द्वारा हमें प्राप्त हुआ। मूल उनके संग्रह में सुरक्षित है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(१) १८५४ ई० के डिस्पैच में इस बात पर बड़ा जोर दिया गया था कि लोगों को साधारण शिक्षा उनकी अपनी बोली में देनी चाहिये। उर्दू कि जिसमें आज तक उत्तर हिन्दुस्तान में शिक्षा दी जाती है लोगों की बोली नहीं है। हमारी मातृभाषा और देशी बोली जो हमारे घरों में स्त्री पुरुष लड़के बाले नित्य प्रति बोलते चालते हैं, हिन्दी है, किन्तु उर्दू नहीं है। हम लोगों को हमारी मातृभाषा में शिक्षा नहीं दी जाती है। हमारी प्रथम शिक्षा हिन्दी ही के द्वारा उचित है और सर्व साधारण मनुष्यों में हिन्दी ही के द्वारा शिक्षा फैल सकती है।

(२) हिन्दी याने जो हम लोगों की बोली है और देवनागरी अक्षरों में लिखी जाती है बंगाली गुजराती मरहटी की तरह संस्कृत की एक शाखा है। पर बेंगाल, गुजरात और महाराष्ट्र देशों में उनकी प्रत्येक भाषा दफ्तरों में प्रचलित हैं और सर्वसाधारण को शिक्षा इन्हीं में दी जाती है। इस लिये हम आप से प्रार्थना करते हैं कि उसी तरह यहाँ पर भी दफ्तरों में देवनागरी अक्षरों में लिखा पढ़ी होवे।

(३) शिक्षा कमीशन की रिपोर्ट से यह प्रत्यक्ष प्रकट होता है कि हिन्दी के द्वारा प्रथम शिक्षा चाहने वाले अधिक मनुष्य हैं, क्योंकि दो लाख मनुष्यों के अनुमान से दो सौ मेमोरियल इसी प्रयोजन से शिक्षा कमीशन की सेवा में पहुँचे। और उर्दू को केवल लाचार होकर इस कारण सीखते हैं कि देश के दफ्तरों में उर्दू लिखी पढ़ी जाती है और उर्दू का जो कुछ प्रचार हुआ वह तभी से हुआ है जब से यह दफ्तरों की बोली ठहराई गयी है।

(४) हिन्दी में बहुत सुगम शब्द जो सबको समझ पड़ते हैं, होते हैं और देवनागरी अक्षरों में लिखी जाती है। उर्दू में आधे से अधिक फारसी और अरबी के शब्द बोले जाते हैं, जो सबकी समझ में नहीं आते। केवल फारसी और अरबी पढ़े मनुष्य समझते हैं और यह फारसी और अरबी अक्षरों में लिखी जाती है।

(५) मुसल्मानों के राज्य के पहिले यहाँ पर इन्हीं देवनागरी अक्षरों में काम होता था।

(६) यद्यपि मुसल्मान और सर्कार अंग्रेजी ने उर्दू को दफ्तर की भाषा बनाकर इसकी पाठशाला बिठा कर इसके फैलाने के बड़े २ उपाय किये तथापि सर्वसाधारण मनुष्यों ने इसको अङ्गीकार न किया और न करना चाहते हैं। केवल बड़े २ नगरों में कुछ लोग उर्दू बोलते हैं शेष सब हिन्दू मुसल्मान गाँवों और कसबों में हिन्दी ही बोलते चालते हैं। जब कभी कोई सर्कारी कागज उर्दू में लिखा हुआ उनके पास पहुँचता है तो उसके पढ़ाने को गाँव गाँव भटकते फिरते हैं। हिन्दी में यह कष्ट कभी नहीं देखने में आ सकता, क्योंकि हर एक गाँव और कसबे में एक दो आदमी हिन्दी पढ़े लिखे होते ही हैं।

(७) शिक्षा विषयक डैरक्टर साहब की रिपोर्ट से और मर्दुमशुमारी की किताबों से यह साफ निश्चय हो जायेगा कि अब भी लाखों हिन्दू मुसल्मान सहस्रों ईसाई हिन्दी पढ़े हुए हैं। बड़े २ नगरों में उर्दू पढ़े केवल वही मनुष्य हैं जो कचहरियों में नौकरी चाहते हैं वा जिनका काम कचहरी में पड़ता है।

(८) ईसाई लोगों की पुस्तकें इन्हीं देवनागरी अक्षरों में उपदेश के लिये बनी हैं। इससे साफ प्रकाश पाया जाता है कि हिन्दी जानने वाले लोग बहुत हैं।

(९) प्रेसिडेण्ट शिक्षा कमिशन श्रीमान् हण्टर साहब ने लाहौर में अपनी बक्तृता में कहा था कि मेमोरियल अधिकतर हिन्दी के लिये दिये गये हैं और विपक्ष में बहुत कम। और जिन्होंने हिन्दी के वास्ते दिया है वह सर्व-साधारण लोग हैं और जिन्होंने उर्दू के लिये दिया है वह सर्कारी नौकर हैं। और जिनको सर्कार अमला क्लास कहती है। इस से भी साफ जाहिर है कि हम सब लोग हिन्दी ही चाहते हैं।

(१०) मुफस्सिल में जो तहसीली और हलका बन्दी पाठशाला जारी हैं उनमें अधिकतर हिन्दी ही पढ़ाई और लिखाई जाती है। इस विषय में इंस्पेक्टरों और डैरेक्टर स्कूल से पूछ लिया जाय और नार्मल स्कूलों में भी ज्यादा हिन्दी में ही शिक्षा दी जाती है। इसलिये आप से प्रार्थना करते हैं कि सर्कार का बड़ा लाभ होगा यदि दफ्तरों में हिन्दी जारी करने की आज्ञा दी जावे, नहीं तो इतना रुपया जो इन मदसों में खर्च होता है व्यर्थ जाता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(११) जो सर्कार यह चाहती है कि सर्कार की शिक्षा सर्वसाधारण मनुष्यों में फैल जाय, सर्कार की प्रजा सभी लिखी पढ़ी हो जावे, गाँव का गँवार कचहरी का कागज ऐसा ही पढ़ ले जैसा अब कचहरी का कागज कचहरी वाला पढ़ सकता है तो सर्कार का यह प्रयोजन हिन्दी को सर्वसाधारण के लिये प्रथम शिक्षा बनाकर अंग्रेजी के साथ इसको दूसरी भाषा नियत करने में सिद्ध हो सकता है। साधारण शिक्षा का प्रचार उर्दू के द्वारा कभी नहीं हो सकता।

(१२) दफ्तरों में फारसी और अरबी अक्षरों के स्थान में देवनागरी अक्षर कर देने की जितनी आवश्यकता समझी गई है उनमें बड़ी आवश्यकता यह है कि जब दफ्तरों में देवनागरी अक्षरों का प्रचार हो जायेगा, सर्वसाधारण में शिक्षा फैल जाने का आप ही एक कारण हो जायगा। और दफ्तरों में देवनागरी अक्षरों का प्रचार बड़ी सुगमता के साथ हो सक्ता है। वही नौकर, वही परवाना, वही रूबकार हिन्दी में लिखे हुए को छः महिने का समय पाकर सीख सक्ता है, क्योंकि देवनागरी अक्षर बड़े सुगम हैं और बड़ी जल्दी आ सक्ते हैं।

(१३) हम लोग आपसे प्रार्थना करते हैं कि सेण्ट्रल प्राविन्सेज़ अर्थात् मध्यदेश में और बिहार में जहाँ कि अभी हाल ही में हिन्दी जारी हुई है और जिला तराई और राज्य रीवां वहाँ भी हिन्दी का प्रचार कर दिया गया है आप सब रिपोर्ट इस संक्षेप से देखें।

(१४) देवनागरी अक्षर ऐसे सुगम हैं कि हिन्दू मुसलमान ईसाई तीन दिन में ४८ अक्षर और १२ मात्रा सीख कर लिखने पढ़ने लगते हैं और ६ महीने में तो इतना अभ्यास हो सक्ता है जैसा अब कचहरी वालों को उर्दू अक्षरों के लिखने पढ़ने में छः वर्ष लगते हैं।

(१५) सब हिन्दू मुसल्मान अपनी बही खाता देवनागरी व उसी के अदल-बदल के अक्षरों में लिखते हैं।

(१६) पटवारियों के कागज अधिकतर इन्हीं देवनागरी अक्षरों में लिखे जाते हैं।

(१७) उर्दू अक्षरों में बड़े २ दोष हैं। अलग २ अक्षरों का जो उच्चारण होता है वह उनको शब्द में मिलाने से और का और हो जाता है। लिखा कुछ जाता और पढ़ा कुछ जाता है। एक बिंदु के छोड़ने वा जोड़ देने से इधर का जगत् उधर हो जाता है। अब उर्दू में जाल तो बड़ी सुगमता से होता है और सर्कार कुछ बंन्दोबस्त नहीं कर सकती। इस लिये आप से प्रार्थना करते हैं कि जड़ ही को काट डालिये ताकि फिर पेड़ अर्थात् उर्दू ही नहीं रहेगी तब जाल काहे को होगा और सर्कार का एक बड़ा भारी उपकार होगा। उर्दू अक्षरों में बहुतों का उच्चारण एकसा और सूरत भिन्न २ होती है।

(१८) उर्दू अक्षरों में तीन मात्रा और ३३ व्यंजन हैं। देवनागरी अक्षरों में १२ मात्रा और ३३ व्यंजन हैं, मात्राओं में तीन भेद ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत। यही कारण है कि अरबी तुर्की अंग्रेजी किसी बोली का शब्द हो जैसा उच्चारण होता है वैसा ही देवनागरी में लिखा जाता है, तैसा ही पढ़ा जाता है। उर्दू में एक शब्द कई २ प्रकार पढ़ा जाता है। आप से प्रार्थना करते हैं कि नकशा देखिये, जिसमें यह थोड़ा सा प्रकाश किया गया है कि किस तरह उर्दू कई तरह से पढ़ी लिखी जाती है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शब्द।	उर्दू में कितने तरह से पढ़ा जा सक्ता है।
१—निरंजन	निरञ्जन, ब्रिरहमन
२—प्यारेलाल	प्यारेलाल, ब्रिहारीलाल
३—वचन	थम्मन, भम्मन, वचन
४—साहेब दर्या पार होंगे किश्ती मौजूद रहे	कसबी मौजूद रहै।
५—नवात सुफेद	बनात सुफेद।
६—मुरैथा	मुड़ैना, मुरनिया, मुरंथा, मुरंतिया, मुरटा, मुहना, मरहटा।
७—आलू बुखारा	उल्लू विचारा।
८—बेनी ने मारा	नबी ने मारा, तैंने मारा।
९—पारबती	नारायनी।
१०—तमस्सुक	नमक, तमक।
११—होली फुकवा दो	होली फिकवा दो
१२—एक साहब 'छतमरा पट्टी दनका' को	'जमराही डंका' पढ़ते थे
१३—और 'खुगौर कुहनह' को	चुकर घंट

(१९) जब शिक्षा कमीशन इलाहाबाद में मयोहाल में बैठी थी तब प्रेसीडेन्ट ओनेरेबिल डाक्टर हण्टर साहेब को कहना पड़ा था कि हिन्दी की पश्चिमोत्तर प्रदेश में बड़ी चाह है।

(२०) उसी समय ओनेरेबिल जस्टिस् सय्यद महमूद ने भी कहा था कि यद्यपि मैं मुसल्मान हूँ लेकिन यहां के लोगों की राय प्रकाश करता हूँ वह सब लोग यही चाहते हैं कि हिन्दी सब जगह प्रचलित होवे और उर्दू जो टेढ़ी-मेढ़ी लिखी जाती है मेरी राय में न रहनी चाहिये।

(२१) आपसे प्रार्थना करते हैं कि हिन्दी के जारी होने के लिये कमिशनर मेजिस्ट्रेट और सेशन्स जजों की राय ली जावे।

(२२) शिक्षा कमीशन के साम्हने लगभग ४० आदमियों ने पञ्जाब से शिक्षा विषय साक्षी दी थी और उसमें से आधे से ज्यादह पुरुषों ने उर्दू के स्थान में हिन्दी प्रचलित करने के लिये जोर दिया था, विशेष कर पञ्जाब के लार्ड पादरी ने भी इस पर अच्छी तरह साक्षी दी थी।

(२३) अब आप से हम लोगों की यही प्रार्थना है कि आप ऊपर की लिखी हुई बातों और शिक्षा कमीशन की रिपोर्ट पर विचार करते समय हिन्दी पर पूरा २ ध्यान दीजिये और हिन्दी और देवनागरी अक्षरों को कचहरियों में बर्तने की आज्ञा दे दीजिये। और हम सब लोग आप की प्रजा आपके चिरंजीवी होने की विनय करते हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

परिशिष्ट ५

ऋषि दयानन्द के वास्तविक चित्रों का वर्णन

[श्री महाशय मामराज जी आर्य, (खतौली जि० मुजफ्फर नगर) द्वारा संकलित]

ऋषि दयानन्द के पत्र विज्ञापन के पृष्ठ ४१६ तथा जीवन-चरितों से स्पष्ट है कि ऋषि दयानन्द के चित्र (फोटो) कई स्थानों पर लिये गये थे। हमारे २० जुलाई सन् १९२६ से फरवरी १९५३ तक के लगभग २७ वर्ष के अन्वेषण में ऋषि दयानन्द के जो वास्तविक (असली) चित्र हमारी दृष्टि में आये, उन का वर्णन नीचे किया जाता है—

१—छाती के नीचे वस्त्र लपेटे हुए आसन से बैठे—ऋषि दयानन्द संवत् १९२४ (= सन् १८६७) के कुम्भ के मेले में हरिद्वार जाते हुए मेरठ में ठहरे थे। उसी समय उनका यह चित्र लिया गया था। चित्र से भी ऋषि दयानन्द की आयु ३५–४० के मध्य की प्रतीत होती है, और मुखमण्डल बड़ा तेजस्वी है। मुझे यह चित्र सन् १९२६ में ऋषि दयानन्द के पत्रों का अन्वेषण करते हुए मेरठ से मिला था।

इसकी प्रतिकृति 'आर्यगजट' (उर्दू लाहौर) सं० १९८३ के ऋष्यङ्क में प्रकाशित हुई थी। श्रावणी सं० २०१० के 'वेदप्रकाश' देहली के 'श्रीमद्दयानन्द-ग्रन्थ-संग्रह' नामक विशेषाङ्क में भी मैंने ऋषि के अन्य ५ असली चित्रों के साथ छपवा दिया है।

२—सर्वस्व त्यागी दण्डधारी खड़े हुए—ऋषि दयानन्द का यह चित्र विक्रम सं० १९२४ (= सन् १८६७ ई०) में हरिद्वार के कुम्भ (जहाँ कुटिया पर पाखण्ड-खण्डनी पताका लगी हुई थी) के अन्तिम समय में लिया गया था, ऐसा पुराने आर्य व्यक्तियों से ज्ञात हुआ है। इसी चित्र के आधार पर चित्रशाला पूना द्वारा एक बड़ा चित्र छपा था। यह मैंने २५ दिसम्बर १९२६ को फर्रुखाबाद के महाशय झुन्नीलाल जी आर्य (वृद्ध) के पास देखा था। इसकी रंगीन बड़ी पूना की छपी हुई प्रति मेरे पास भी है। इसी प्रकार का चित्र बा० रामविलास शारदा ने "आर्य धर्मेन्द्र जीवन में प्रकाशित किया था। आर्य समाज लखनऊ के इतिहास में भी ऐसा चित्र लगा हुआ है।

इसी प्रकार का छोटा सा पुराना असली प्लेट से उतारा गया चित्र २१ सितम्बर १९२६ को मैंने मेरठ सदर में बाबू आनन्दीलाल जी मास्टर (मन्त्री आर्यसमाज सन् १८८०) के पुत्र बाबू जीवनलाल जी के पास देखा था। उसे वे वास्तविक बताते थे। माँगने पर उन्होंने वह चित्र नहीं दिया। तत्पश्चात् जीवनलालजी के पुत्र से सन् १९४५ई० में मैंने उसे प्राप्त किया *। इसी मेरठ वाले छोटे चित्र जैसा ही एक पुराना चित्र श्री पं० शीतलाप्रसाद जी पुस्तकाध्यक्ष आर्यसमाज फर्रुखाबाद के पास सुरक्षित था। उसे मैंने १३ जनवरी सन् १९२७ को देखा था।

---

१. इसी विशेषाङ्क में श्री० स्वामी विरजानन्द सरस्वती का भी एक चित्र प्रकाशित हुआ है। इसे मेरे जोधपुर निवासी मित्र प्रसिद्ध इतिहासज्ञ ठाकुर जगदीशसिंह जी गहलोत (क्यूरेटर म्यूजियम जयपुर) ने अलवर राज्य के प्राचीन चित्र संग्रहसे प्राप्त किया था। मूल चित्र पर श्री स्वा० विरजानन्द सरस्वती का नाम अङ्कित नहीं है। अलवर नरेश के यहाँ श्री स्वामी विरजानन्द जी कुछ समय रहे थे, अतः उन्होंने इस चित्र को श्री स्वा० विरजानन्द जी का समझा है। वस्तुतः यह चित्र उनका नहीं है। इसमें 'यज्ञोपवीत' का चिह्न अत्यन्त स्पष्ट है। सन्यासी शिखा सूत्र से विहीन होते हैं। चित्र को गहराई से देखने पर विदित होता है कि यह जटा जूट लम्बी डाढ़ी वाले यज्ञोपवीतधारी किसी ब्रह्मचारी का है। सन्यासी का नहीं। यु० मी०।

* इस चित्र को मैंने 'मुरारी फाइन आर्टप्रेस दिल्ली को १५ मार्च १९५३ को अनेक चित्रों के साथ 'एलबम' बनाने के लिये दिया है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

३—समाधि दशा में कौपीन मात्र धारण किये—यह चित्र लगभग सं० १९२५ (=सन् १८६८) का है। इसमें ऋषि दयानन्द चौकी पर समाधि मुद्रा में कौपीनमात्रधारी नग्न बैठे हुए हैं, पास में दण्ड रक्खा हुआ है। छोटे बालों की डाढ़ी पर भस्म लगी हुई है। यह चित्र फर्रुखाबाद में गंगा के तट पर लाला श्यामलाल सिद्धगोपाल जगन्नाथ की बड़ी विश्रान्त पर लिया गया था, ऐसा कहा जाता है। यह चित्र मुझे ऋषि दयानन्द के पत्रों का अन्वेषण करते हुए ३१ जनवरी १९२७ को रायबहादुर लाला दुर्गाप्रसाद † के पुत्र बा० चन्द्रप्रकाश जी से (उनके चित्रों वाली पुरानी एलबम में से) मिला था।

४—कुरसी पर वस्त्र पहन कर बैठे हुए—यह चित्र आश्विन सं० १९३१ (=अक्टूबर सन् १८७४) में श्रीमान् कृष्णराव जी गोलवलकर एक्स्ट्रा असिस्टेण्ट कमिश्नर जबलपुर ने ऋषि दयानन्द को अपने स्थान पर ले जा कर और अपने यहां से वस्त्र पहना तथा कुरसी पर बैठाकर खिंचवाया था*। इस चित्र में पास में टेबुल के सहारे मुड़ी मूठ की बेंत रक्खी है। इस चित्र को श्री देवेन्द्र बाबू ने स्वयं वहां जाकर देखा था। देखो उनके द्वारा संकलित और आर्य साहित्यमण्डल अजमेर द्वारा प्रकाशित जीवन चरित पृष्ठ २८१। इस चित्र का वास्तविक कांच का प्लेट उनके पुत्र मनोहरकृष्ण गोलवलकर ने आर्य समाज जबलपुर को सौंप दिया है। उसी प्लेट से उतारा हुआ चित्र मैंने ३० जनवरी १९४४ को बा० दीनानाथ चड्ढा (इछरा—लाहौर निवासी) जबलपुर वालों से रत्नपुर (महा कोशल की प्राचीन ऐतिहासिक राजधानी) जि० बिलासपुर सी. पी. से विष्णु महायज्ञ तथा हिन्दू महासभा के अधिवेशन के अवसर पर प्राप्त किया था। इसी चित्र से बना हुआ चित्र 'दयानन्द स्मृतिग्रन्थ' में वैदिक यन्त्रालय अजमेर ने लगाया है।

५—राजकोट (सौराष्ट्र) में उतारा गया—ऋषि दयानन्द का एक चित्र पौष शुक्ला ५ मंगलवार सं० १९३१ (=१२ जनवरी १८७५) को राजकोट (सौराष्ट्र) में लिया गया था। देखो श्री देवेन्द्र बाबू सं० जी० च० पृष्ठ ३२१। यह हमारे देखने में नहीं आया।

६—कुरसी पर बैठे हुए सामने के भाग का—यह चित्र सं० १९३१ (=सन् १८७५) में गिरगांव बम्बई में उतारा गया था। इसमें ऋषि दयानन्द कपड़े पहने हुए कुरसी पर बैठे हैं, सिर पर साफा बंधा हुआ है और साथ में मुड़ी हुई बेंत भी है। इसे श्री स्वा० सत्यानन्द जी ने बम्बई से खोजा था। इस चित्र के फट जाने से पैर का कुछ भाग नष्ट हो गया है। इसी चित्र से श्री स्वामी सत्यानन्द जी ने ब्लाक तैयार कराकर श्रीमद्दयानन्द-प्रकाश के प्रथम संस्करण में लगवाया था। यह पुस्तक लाहौर के दयानन्द कालेज अन्तर्गत लालचन्द पुस्तकालय में थी। वहां से श्री पं० भगवद्दत्तजी की कोठी सी ब्लाक नं०९ माडल टाऊन में लाई गई और देश विभाजन कालमें वहीं नष्ट हो गई।

७—पगड़ी बांधे, वस्त्र पहने, कुरसी पर बैठे हुए—यह चित्र सं० १९३२ (=सन् १८७५) में दूसरी बार बम्बई गमन के अवसर पर बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि ने तैयार किया था। इसका उल्लेख श्री देवेन्द्र बाबू सं० जी० च० पृष्ठ ३३६ में मिलता है। हरिश्चन्द्र चिन्तामणि ऋषि दयानन्द के वेदभाष्य के प्रबन्धकर्त्ता थे (रकम उड़ा लेने के कारण स्वामी जी ने उन्हें हटा दिया तो वे विद्रोही बन गये)। इस चित्र में ऋषि दयानन्द एक ओर मुँह किये पगड़ी आदि वस्त्र धारण किये हुए कुरसी पर बैठे हैं। इस से दूसरा चित्र बनाकर श्री देवेन्द्र बाबू ने अपने 'दयानन्द चरित' (संक्षिप्त जी० च०) में जो जालन्धर से सन् १९१२ में छपा था, लगाया था। उसी बम्बई वाले चित्र से अमरीका की "वाटर बरी कम्पनी' ने 'वस्ट' (छाती तक का) चित्र टीन पर छपवाया था। उस 'वस्ट' चित्र को डा० गोकुलचन्द्र नारङ्ग (लाहौर) ने सन् १९१० के लगभग अपनी छोटी अंग्रेजी पुस्तक 'लूथर आफ इण्डिया'

† ये ऋषि दयानन्द के अनन्य भक्त थे। ऋषि दयानन्द का इनके साथ बराबर पत्रव्यवहार रहता था। इस पत्र और विज्ञापन संग्रह में इनके नाम लिखे हुए ऋषि दयानन्द के अनेक पत्र छपे हैं।

* गोलवलकर जी के जिस स्थान पर यह चित्र खींचा गया था, उसे मैंने ऋषि दयानन्द के पत्रों तथा चित्रों का अनुसंधान करते हुए सन् १९४५ में जबलपुर जाकर देखा था।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(स्वामी जी का जी० च०) में लगाया था। इसी चित्र का 'बस्ट' चित्र बहुत सुन्दर छोटा गोल आकार का लन्दन का बना हुआ है। इसे मैंने बरेली के साहुकारे मोहल्ले वाले कुंवर गंगाचरण जी के पास २८ नवम्बर १९२६ को देखा था। उनका कहना था कि इसे हमारे पिता कुंवर हरचरण जी ने लन्दन से बनवा कर मंगवाया था। इनके यहां ऋषि दयानन्द के कुछ पत्र भी थे, परन्तु अभी तक मिल नहीं सके। इसी चित्र की प्रतिकृति लाला लाजपतराय जी ने अपनी 'दि आर्य समाज' नामक अंग्रेजी पुस्तक (सन् १९१४) में लगाई थी। यह पुस्तक भी लन्दन में छपी थी। इसकी एक प्रति मेरे पास सुरक्षित है।

८—पगड़ी बांधे, बैठे हुए, सामने पुस्तक खुली हुई—इस चित्र में ऋषि दयानन्द फुन्दे वाली पगड़ी बांधे हुए बैठे हैं, सामने पुस्तक खुली हुई है और चांदी की मूठ वाला दण्डा पास में रक्खा है। अतिसार रोग के कारण शरीर कुछ दुर्बल हो रहा है। यह सं० १९३६ (=सन् १८७९) में लिया गया था। इसका छोटा सा चित्र महात्मा हंसराज जी ने रा० ब० संसारचन्द्र जी से प्राप्त करके श्री पं० भगवद्दत्त जी को दिया था, उसी से उन्होंने बड़ा चित्र बनवा कर दयानन्द कालेज के लालचन्द पुस्तकालय में लगवाया था। इसी का बड़ा चित्र पूने का छपा हुआ पत्रों का अन्वेषण करते हुए ७ जनवरी १९२७ को बा० रामचन्द्र जी (पुत्र—बा० सूर्यप्रसाद जी) मन्त्री आर्यसमाज फर्रुखाबाद वालों के यहां से मिला था। यह चित्र श्री पं० भगवद्दत्त जी के संग्रह के साथ लाहौर में नष्ट हो गया।

९—समाधि-मुद्रा में—यह चित्र सं० १९३६ (=सन् १८७९) में मेरठ में खींचा गया था। इसकी प्रतिलिपि महात्मा मुंशीराम जी (पश्चात्—श्री स्वा० श्रद्धानन्द जी) कृत कल्याण-मार्ग का पथिक पुस्तक में लगी है। इसकी एक प्रति मुझे पत्रों का अनुसंधान करते हुए ८ मार्च १९२७ को ऋषि भक्त रा० ब० बाबू छेदीलाल (पूर्व—ठेकेदार कमसरयट मेरठ) कानपुर वालों के भतीजे बा० जगतनारायण जी ने दूसरे चित्रों (रमा बाई, करनल आल्काट, मेडम ब्लेवेस्तकी) के साथ पुरानी एलबम में से निकाल कर दिया था।

इसकी एक छोटी सी प्रति ठाकुर नन्दकिशोरसिंह मैंबर कौंसिल राज्य जयपुर (जिनके पास ऋषि दयानन्द के अनेक पत्र सुरक्षित थे) से वहाँ जाने पर ता० ६ दिसम्बर १९३३ को प्राप्त हुई। इसी चित्र पर से सब बड़े छोटे समाधिवाले चित्र आगे बने।

सम्भवतः इसी चित्र का उल्लेख ऋषि दयानन्द ने १७ जनवरी १८७९ को श्याम जी कृष्ण वर्मा को मेरठ से लिखे पत्र-संख्या ९४२ में किया है। देखो 'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन' पूर्णसंख्या १३९ की अन्तिम पङ्क्ति (पृष्ठ १२६)।

१०—छतरी लगाये हुए—मैडम ब्लेवेस्तकी ने अपनी 'केव्ज़ एण्ड जंगल्स्' नामक अंग्रेजी पुस्तक में इस चित्र की प्रतिलिपि दी है, ऐसा मुझे श्री स्वा० भूमानन्द जी एम० ए० ने लाहौर में बताया था। यह चित्र सम्भवतः मेरठ में मई सन् १८७९ में उस समय लिया गया होगा, जब कर्नल आलकाट और मैडम ब्लेवेस्तकी उनसे मिलने अमेरिका से आये थे।

११—वस्त्र पहने कुरसी पर बैठे हुए, हाथ में चांदी की मूठ का दण्डा—इस चित्र में ऋषि दयानन्द सारे वस्त्र पहने हुए हैं, हाथ में चांदी की मूठ का दण्ड लिये हुए हैं। यह देहरादून में कार्तिक या मार्गशीर्ष सं० १९३७ (=नवम्बर १८८०) में लिया गया था ऐसा कहा जाता है। श्री देवेन्द्र बाबू सं जी० च० पृष्ठ ६२४ से इतना तो स्पष्ट है कि सं० १९३७ (=सन् १८८०) में देहरादून में ऋषि दयानन्द का एक चित्र लिया गया था। यह चित्र 'आर्य धर्मेन्द्र जीवन' में भी लगा हुआ है। इसका 'बस्ट' (छाती तक का आधा) चित्र सादे कागज पर छपा हुआ मुझे १८ नवम्बर १९२६ को शाहजहांपुर में मुंशी बख्तावर सिंह आदि के यहाँ पत्रों का अन्वेषण करते हुए श्री बांकेलाल जी अख्तर से रसीद लिखकर मिला था। यह माडलटौन लाहौर में श्री पं० भगवद्दत्त जी की कोठी में अन्य बहुत सी बहुमूल्य सामग्री के साथ नष्ट हो गया।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

१२—कुरसी पर बैठे हुए, पास में गोलमेज पर वेद की पुस्तकें—यह चित्र संख्या १२ के चित्र से बहुत साम्य रखता है। कुरसी और पास वाली मेज इसमें भिन्न है। इसमें मेज के ऊपर जो चारों वेदों की पुस्तकें दिखाई गई हैं वह अंश कल्पित है।[1] यह चित्र 'रामलाल कपूर ट्रस्ट अमृतसर' द्वारा प्रकाशित यजुर्वेद भाष्य विवरण तथा वेदवाणी सं० २००९ के वेदाङ्क में भी लगा है।

१३—कुरसी पर बैठे हुए मेज पर पुस्तकें तथा गुलदस्ता—यह चित्र शाहपुरा में सं १९४० के पूर्वार्ध में लिया था। श्री स्व० महाराजा नाहरसिंहजी ने मथुरा शताब्दी के अवसर पर आर्य चित्रावली में प्रकाशनार्थ महाशय गोविन्दराम हासानन्द को दिया था। यह चित्र 'वेदप्रकाश' देहली के सं० २०१० के 'दयानन्दग्रन्थ संग्रह' नामक विशेषाङ्क में छपा है।

१४—कुरसी पर बैठे हुए ब्र० रामानन्द के साथ—इस चित्र में ऋषि दयानन्द कुरसी पर बैठे हैं, पैर में खड़ाऊँ पहने हुए हैं, पास में एक ओर ब्र० रामानन्द खड़ा है, तथा दूसरी ओर मेज पर तीन पुस्तकें रक्खी हैं। यह चित्र सम्भवतः शाहपुरे में सं० १९४० के प्रारम्भ में लिया गया होगा। इसी चित्र को रामानन्द के पास भेजने का उल्लेख ऋषि दयानन्द के वैशाख शु० ४ सं० १९४० (१० मई १८८३) के रामानन्द के नाम लिखे पत्र में मिलता है। देखो यही ग्रन्थ पूर्ण संख्या ५१३, ५१४ तथा पृष्ठ ४१५, ४१६। श्री देवेन्द्र बाबू सं० जी० च० पृष्ठ ६९३ पर इस पत्र की प्रतिकृति (फोटो) छपी है।

मैंने इस चित्र का वर्णन 'भारत सुदशा प्रवर्तक' पत्र के नवम्बर १८९० के अंक के अन्तिम पृष्ठ पर पढ़ तथा सन् १८८४ के 'सत्यार्थप्रकाश' जो दयानन्द कालेज लाहौर अन्तर्गत लालचन्द पुस्तकालय में सुरक्षित था में छोटा सा २२ अक्टूबर १९२६ में देखा था। उसी पर से इसका अन्वेषण आरम्भ किया। तदनन्तर फर्रुखाबाद समाज मन्दिर में उससे कुछ बड़ा अतिजीर्ण चित्र लगा देखा और ३ फरवरी १९२७ को रा० ब० राजा दुर्गादास जी की पुरानी चित्रों की एलबम से उनके पुत्र श्री चन्द्रप्रकाश जी रईस से असली छोटा सा चित्र प्राप्त किया और उसी चित्र के वर्णन वाला ऋषि दयानन्द का (पूर्वनिर्दिष्ट) ब्र० रामानन्द के नाम शाहपुरा से लिखा हुआ पत्र आर्यसमाज के संग्रह में से ढूंढ निकाला। इसी की लाहौर में प्लेट तैयार कराकर असली चित्र परोपकारिणी सभा अजमेर को सन् १९३३ में भेजा था, वह वापस प्राप्त हो गया। इसका एक रंगीन बड़ा ब्लाक म० राजपाल लाहौर को उनके पुस्तकालय के लिये भी बनवा कर दिया था। यह कैलेण्डर में भी छपा था। इसी का एक बड़ा चित्र म० चिरञ्जीलाल प्रेम को बनवाकर दिया था। इस चित्र की प्रतिलिपि आर्य साहित्य मण्डल अजमेर से प्रकाशित ऋषि के जीवन चरित पृष्ठ ३७१ तथा इस ग्रन्थ में भी लगाई है। इस चित्र से बनवाई हुई एक प्रतिलिपि मेरठ शहर के सप्तम सार्वदेशिक आर्य महासम्मेलन (सन् १९५१) की दयानन्द प्रदर्शनी में रक्खे हुए अपने संग्रह में से ला० हरशरण जी रईस गाजियाबाद को ता० ३० दिसम्बर १९५१ को दी थी। इसी चित्र से ब्लाक बनवाकर आर्य सार्वदेशिक सभा ने स्वप्रकाशित महर्षि द० स० के जीवनचरित तथा सत्यार्थप्रकाश के सं० २०१० के संस्करण में छपवाया था।

इस प्रकार ऋषि दयानन्द के मूल पत्रों का अन्वेषण करते हुए सन् १९२६ से आजतक जिन १४ वास्तविक चित्रों का उल्लेख या प्रतिलिपि मिली उनका वर्णन मैंने ऊपर संक्षेप से किया है। इनके अतिरिक्त भी ऋषि दयानन्द

१—मेरे मित्र राजस्थान-इतिहास के विशेषज्ञ श्री ठा० जगदीशसिंह जी गहलोत ने इस चित्र को देख कर कहा था कि इस चित्र में मेज पर पड़ी हुई वेदों की पुस्तकें कल्पित हैं, परन्तु जिस कुरसी पर बैठे हुए ऋषि दयानन्द का यह चित्र लिया गया है, वह उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंह की है। इसी कुरसी पर बैठे हुए महाराणा सज्जनसिंह का एक चित्र उदयपुर में वर्तमान है। इस कथन के अनुसार यह चित्र उदयपुर में सं० १९३९ के उत्तरार्ध में लिया गया होगा। वेदों की पुस्तकों वाला अंश तो निश्चित ही कल्पित है; क्योंकि इस चित्र में चारों वेदों की मोटाई बराबर दिखाई है जो कि ठीक नहीं है। यु० मी०।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

के अनेक स्थानों में चित्र लिये गये होंगे, जो इस समय अप्राप्य तथा अज्ञात हैं। इनका अनुसन्धान परमावश्यक है। ऋषि दयानन्द की रुग्णावस्था के समय का जोधपुर में किसी ने हाथ से रंगीन चित्र बनाया था, इसकी प्रतिलिपि श्री पं० राजेन्द्र जी (देहली) के पास है।

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य–श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनां प्रप्रशिष्येण
श्रीयोगिप्रवर-लक्ष्मणानन्दस्वामिनां प्रशिष्येण
इतिहासवित्पण्डित-भगवद्दत्तमहोदयानां शिष्येण
श्री शंकरलालात्मजेन मुजफ्फरनगरमण्डलान्तर्वर्तिखतौलीग्रामवासिना मामराजार्येण
संकलितं पञ्चमं परिशिष्टं समाप्तम्

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

परिशिष्ट (६)

ऋषि दयानन्द सरस्वती के स्थानान्तर में आगमन-प्रतिगमन की तिथि और तारीख

[मूललेखक—स्व० श्री पं० महेशप्रसाद जी मौलवी आलिमफाजिल]

(संशोधक तथा परिवर्धक—युधिष्ठिर मीमांसक)

स्थान नाम	आगमन		प्रतिगमन	
	तिथि	तारीख	तिथि	तारीख
टंकारा	संवत् १८८१	सन् १८२४	सं० १९०३	सन् १८४६
सायला (शैला)	१९०३	१८४६	१९०३ श्रावण	१८४६ जु० अग०
कोट गंगारा (कोट कांगढ़)	" श्रावण	" जु० अग०	" आश्विन	" सि० अक्टू०
सिद्धपुर	" आश्विन	" सि० अक्टू०	" कार्तिक	" अक्टू० न०
१ अहमदाबाद[२]	" कार्तिक	" अक्टू० न०	" "	" " "
१ बड़ौदा	" पौष	" दिस०	१९०४	१८४७
१ चाणोद कर्णाली	१९०४	१८४७	"	"
व्यासाश्रम	"	"	१९०५	१८४८
सिनोर (छिनूर)	१९०५	१८४८	१९०६	१८४९
२ चाणोद कर्णाली	१९०६	१८४९	१९०७	१८५०
२ अहमदाबाद	१९०७	१८५०	१९०८	१८५१
१ आबू	१९०९	१८५२	१९११	१८५४
१ हरिद्वार	१९११ अन्त	१८५५ आदि	१९१२ आरम्भ	१८५५ मध्य
१ हृषीकेश	१९१२	"	"	"
१ देहरादून	"	"	"	"

१. स्वर्गीय श्री० पं० महेशप्रसादजी मौलवी आलिम फाजिल, प्रो० हिन्दु विश्वविद्यालय काशी ने "स्वामी दयानन्द सरस्वती कहां और कब" नामक एक पुस्तक प्रकाशित की थी, उसी का संशोधन परिवर्धन तथा तिथियों के साथ अंग्रेजी तारीखों का उल्लेख करके हम यहां दे रहे हैं। इससे ऋषि दयानन्द के जीवन-चरित की अनेक भूलों का निराकरण होगा।

२. जिस स्थान पर ऋषि दयानन्द एक से अधिक बार गये, उसके नाम के पूर्व आगमन की संख्या दी गई है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्थान नाम	आगमन		प्रतिगमन	
	तिथि	तारीख	तिथि	तारीख
टिहरी	संवत् १९१२ वैशाख	सन् १८५५ अप्रे० मई	सं० १९१२ वैशाख	सन् १८५५ अप्रे० मई
१ श्रीनगर (गढ़वाल)	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,,
रुद्रप्रयाग	,, ज्येष्ठ	,, मई	,, ज्येष्ठ	,, मई
अगस्त्य मुनि की समाधि	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,,
शिवपुरी	,, अषाढ (प्र.)	,, जु०	,, भाद्र	,, अग० सि०
२ श्रीनगर (गढ़वाल)	,, भाद्र	,, सि०	,, ,,	,, सित०
१ गुप्तकाशी	,, भाद्र	,, सित०	,, ,,	,, सित०
गौरीकुण्ड	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,,
भीम गुफा	,, आश्विन	,, सित० अक्टू०	,, अश्विन	,, सि० अक्टू०
त्रियुगीनारायण	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, अक्टू०
३ श्रीनगर (गढ़वाल)	,, ,,	,, अक्टू०	,, ,,	,, ,,
तुंगनाथ	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,,
१ ऊखीमठ	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,,
२ गुप्तकाशी	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,,
२ ऊखीमठ	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,,
जोशीमठ	,, कार्तिक	,, अक्टू० नव०	,, कार्तिक	,, अक्टू० नव०
१ बद्रीनाथ	,, ,,	,, नव०	,, ,,	,, नव०
अलखनन्दा का स्रोत	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,,
वसुधारा	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,,
माना ग्राम के निकट	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,,
२ बद्रीनाथ	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,,
चिलकिया घाटी	,, अगहन	,, नव० दिस०	,, अगहन	,, नव० दिस०
रामपुर	,, ,,	,, दिस०	,, ,,	,, दिस०
काशीपुर	,, ,,	,, ,,	,, फाल्गुन	१८५६ फर० मार्च
१ मुरादाबाद	,, फाल्गुन	१८५६ फर० मार्च	,, ,,	,, ,, ,,
सम्भल	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
१ गढ़मुक्तेश्वर	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
१ फर्रुखाबाद	,, चैत्र कृष्ण[2] पक्ष	,, मार्च अप्रे०	,, चैत्र कृ०	,, मार्च अप्रे०
१ शृङ्गीरामपुर	,, ,, ,,	,, ,, ,,	,, ,, ,,	,, ,, ,,
१ कानपुर	१९१३ ,, शुक्ल[2] पक्ष	,, अप्रे०	१९१३ ,, शुक्ल	,, अप्रे०
१ प्रयाग	,, श्रावण	,, जुला० अग०	,, श्रावण	,, जुला० अग०
१ मिर्जापुर	,, भाद्र	,, अग०	,, भाद्र	,, सित०
विन्ध्याचल	,, ,,	,, सित०	,, ,,	,, ,,

१. जिस वर्ष मलमास के कारण एक नाम के दो महीने होंगे वहां (प्र) से प्रथम और (द्वि) से द्वितीय मास समझें।
२. आगे सर्वत्र 'कृ' से कृष्ण पक्ष और 'शु' से शुद्ध पक्ष समझें।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्थान नाम	आगमन		प्रतिगमन	
	तिथि	तारीख	तिथि	तारीख
१ काशी	सं० १९१३ आश्विन कृ०	सन् १८५६ सितम्बर	सं० १९१३ आश्विन शुक्ल	सन् १८५६ सितम्बर
१ चर्णारगढ़ चण्डालगढ़ चुनार (गढ़)	” ” शु० २	” अक्टू० १	१९१४ चैत	१८५७ मार्च अप्रे०
नर्मदा का स्रोत	१९१४ ज्येष्ठ	१८५७ मई जून	१९१६	१८५९
१ हाथरस	१९१७ कार्तिक	१८६० अक्टू० न०	१९१७ कार्तिक	१८६० नव०
१ मुरसान	” ”	” नवम्बर	” ”	” ”
१ मथुरा	१९१७ कार्तिक	१८६० नव०	१९२० वैशाख	१८६३ अप्रे० मई
१ आगरा	१९२० वैशाख	१८६३ अप्रे० मई	१९२१ आश्विन	१८६४ सि० अक्टू०
धौलपुर	१९२१ कार्तिक	१८६४ अक्टू० नव०	” कार्तिक	” अक्टू० नव०
१ ग्वालियर	” ”	” ” ”	” ”	” ” ”
२ आबू[1]	” ”	” ” ”	” ”	” ” ”
२ ग्वालियर	” माघ कृ० १२	१८६५ जन०२५ मं०	१९२२ वै० शु०१२,१३	१८६५ मई७,८ र.सो.
करौली	१९२२ ज्येष्ठ	” मई जून	” आश्विन	” सि० अक्टू०
खुशहालगढ़	” कार्तिक	” अक्टू० नव०	” कार्तिक	” अक्टू० नव०
१ जयपुर	” ”	” ” ”	” चैत्र कृ० ५	१८६६ मार्च ६ मं०
१ बगरू	” चैत्र कृ०	१८६६ मार्च	” ” कृ०	” मार्च
१ दूदू	” ”	” ”	” ” ”	” ”
१ कृष्णगढ़ (किशनगढ़)	” ”	” ”	१९२३ ” शु०	” ”
१ अजमेर	१९२३ ” शु०	” ”	” ” ”	” ”
१ पुष्कर	” ” ”	” ”	” ज्येष्ठ (द्वि०)	” मई जून
२ अजमेर	” ज्येष्ठ (द्वि०)	” मई जून	” ” ”	” ” ”
२ कृष्णगढ़	” ” ”	” ” ”	” ” ”	” ” ”
२ दूदू	” ” ”	” ” ”	” ” ”	” ” ”
२ बगरू	” ” ”	” ” ”	” ” ”	” ” ”
२ जयपुर	” ” ”	” ” ”	” आश्विन	” सित० अक्टू०
२ आगरा	” कार्तिक कृ०	” अक्टू०	” मार्गशीर्ष	” नव० दिस०
२ मथुरा	” मार्गशीर्ष	” नव० दिस०	” ”	” ” ”
१ मेरठ	” ”	” ” ”	” फाल्गुन	१८६७ फर० मार्च
२ हरिद्वार	” फाल्गुन शु० १	१८६७ मार्च १	१९२४ वैशाख	” अप्रे० मई
२ हृषीकेश	१९२४ वैशाख	” अप्रे० मई	” ”	” ” ”
३ हरिद्वार	” ”	” ” ”	“ ”	” ” ”
कनखल	” ”	” ” ”	” ”	” ” ”
लण्ढौरा	” ”	” ” “	” ”	” ” ”
शुकताल	” ”	” ” ”	” ”	” ” ”
मीरांपुर	” ”	” ” ”	” ”	” ” ”

[1] आबू जाना सन्दिग्ध है। यु० मी०।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्थान नाम	आगमन तिथि	आगमन तारीख	प्रतिगमन तिथि	प्रतिगमन तारीख
मुहम्मदपुर	सं० १९२४ वैशाख	सन् १८६७ अप्रे० मई	सं० १९२४ वैशाख	सन् १८६७ अप्रे० मई
परीक्षितगढ़	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
२ गढ़मुक्तेश्वर	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
१ चासी	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
१ कर्णघाट	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
१ रामघाट	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
१ सोरों	,, ज्येष्ठ	,, मई जून	,, ज्येष्ठ	,, मई जून
पटियाली	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
१ कम्पिल	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
१ कायमगंज	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
शमसाबाद	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
२ फर्रुखाबाद	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
१ अनूप शहर	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
१ गढ़मुक्तेश्वर (की ओर)	,, ,,	,, ,, ,,	,, आषाढ़ (आरंभ)	,, ,, ,,
२ अनूपशहर	,, आषाढ़	,, जून जुलाई	,, ,,	,, जून जुलाई
२ चासी	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
१ ताहीरपुर	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
२ कर्णवास	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
२ रामघाट	,, ,, शु० ५	,, जुलाई ६ शनि	,, ,, शु०	,, जुलाई
३ कर्णवास	,, ,, शु०	,, जुलाई	,, भाद्र	,, अग० सित०
३ रामघाट	,, भाद्र	,, अग० सि०	,, ,,	,, ,, ,,
४ कर्णवास	,, ,,	,, ,, ,,	,, आश्विन	,, सित० अक्टू०
अहार	,, कार्तिक	,, अक्टू० नव०	,, कार्तिक	,, अक्टू० नव०
३ चासी	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
२ ताहीरपुर	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ९ ,,
३ अनूपशहर	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,, (अन्त)	,, नव०
५ कर्णवास	,, ,, (अन्त)	,, नव०	० मार्गशीर्ष	,, नव० दि०
४ रामघाट	,, मार्गशीर्ष	,, नव० दिस०	,, ,,	,, ,, ,,
१ अतरौली	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
५ रामघाट	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
वेलोन	८ ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
६ कर्णवास	,, ,,	,, ,, ,,	,, फाल्गुन कृष्ण	१८६८ फर०
४ अनूपशहर	,, फाल्गुन कृ०	१८६८ फर०	,, फाल्गुन शुक्ल	,, मार्च
६ रामघाट	,, ,, शुक्ल	,, मार्च	,, ,, ,,	,, ,
कछिलाघाट	,, ,, ,,	,, ,,	,, चैत कृष्ण	,, ,,
गढ़ियाघाट	१९२५ चैत शु०	,, अप्रेल	१९२५ ,, शुक्ल	,, अप्रेल

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्थान नाम	आगमन		प्रतिगमन	
	तिथि	तारीख	तिथि	तारीख
२ सोरों	सं० १९२५ चैत्र शु०	सन् १८६८ अप्रेल	सं० १९२५ वैशाख	सन् १८६८ अप्रे० मई
(अम्बागढ़)	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
७ कर्णवास	,, ज्येष्ठ कृष्ण	,, मई	,, कार्तिक	,, अक्टूबर
३ सोरों	,, कार्तिक	,, अक्टू०	,, ,,	,, ,,
(अम्बागढ़)	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,,
सरावल	,, कार्तिक	,, अक्टू०	,, कार्तिक	,, अक्टूबर
शाहबाजपुर	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,,
कादिरगंज	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,,
१ नरदौली	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,,
ककोड़ा	,, ,, शु० १३	,, अक्टू० २९ गुरु	,, मार्ग० कृ० १०	,, नव० ९ सोम
२ नरदौली	,, मार्ग० कृ० १०	,, नव० ९ सोम	,, ,, ,, ११	७ ,, १० मं०
२ कायमगंज	,, ,, ,, ११	,, ,, १० मं०	,, ,, शु०	,, नव०
२ कम्पिल	,, ,, शु०	,, नव०	,, पौष	,, दिस०
शुकरुल्लापुर	,, पौष	,, दिस०	,, ,,	,, ,,
३ फरुखाबाद	,, ,,	,, ,,	१९२६ ज्येष्ठ	१८६९ मई जून
२ शृङ्गीरामपुर	१९२६ ज्येष्ठ	१८६९ मई जून	,, ,,	,, ,, ,,
जलालाबाद	,, ,,	,, जून	,, ,,	,, जून
कन्नौज	,, आषाढ़	,, जून जुला०	,, आषाढ़	,, जून जुलाई
बिठूर	,, ,,	,, जुलाई	,, ,,	,, जुलाई
मदारपुर	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,,
२ कानपुर	,, ,,	,, ,,	,, आश्विन	,, सित० अक्टू०
शिवराजपुर	,, आश्विन	,, सित० अक्टू०	,, ,,	,, ,, ,,
२ प्रयाग	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
रामनगर	,, ,,	,, ,, ,,	,, कार्ति०कृ०२,३ (?)	,, अक्टू०२२,२३(?)
२ काशी	,, कार्तिक कृ० २,३	,, कक्टू० २२,२३	,, मार्गशीर्ष	,, नव० दिस०
२ मिर्जापुर	,, मार्गशीर्ष	,, नव० दिस०	,, माघ	१८७० जन० फरवरी
३ प्रयाग	,, माघ शु० ५	१८७० फर० ५ शनि	,, फाल्गुन	,, फरवरी मार्च
३ मिर्जापुर	,, फाल्गुन	,, फर० मार्च	१९२७ चैत शु०	,, अप्रैल*
{ मथुरा*	... ...	... ...	... ...	... ...
{ काशी*	... ...	... ...	... ...	... ...
३ काशी	१९२७ चैत शु०	१८७० अप्रैल	१९२७ ज्येष्ठ	१८७० मई जून
४ सोरों	,, ज्येष्ठ	,, मई जून	,, ,,	,, ,, ,,
१ कासगंज	,, ,,	,, ,, ,,	,, अश्विन †	,, सित० अक्टू०

* इसी काल के मध्य में पाठशाला में पढ़ाने के लिये मथुरा जाकर पं० युगलकिशोर को लाने तथा काशी जाकर आवश्यक ग्रन्थ लाने का वर्णन श्री पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृष्ठ १९३ पर मिलता है।

† इसी बीच में ऋषि दयानन्द कुछ दिनों के लिये फर्रुखाबाद भी गये थे। देखो अगले पृष्ठ की पहली टिप्पणी।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्थान नाम	आगमन तिथि	आगमन तारीख	प्रतिगमन तिथि	प्रतिगमन तारीख
[४ फर्रुखाबाद ‡	सं१९२७ भाद्र	सन् १८७० अग० सित०	सं० १९२७ भाद्र	सन् १८७० अग० सित०]
बिलराम	,, आश्विन	,, सित० अक्टू०	,, आश्विन	,, सित० अक्टू०
चक्केरी (के निकट)	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
हरनोट	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
७ रामघाट	,, ,,	,, सि० अक्टू०	,, ,,	,, सि० अक्टू०
५ अनूपशहर	,, ,,	,, ,, ,,	,, कार्तिक	,, अक्टू० नव०
८ रामघाट	,, कार्तिक पूर्णिमा	,, नव० ८ मं०	,, मार्गशीर्ष	,, नव०
४ चासी	,, मार्ग०	,, नव०	,, ,,	,, ,,
९ रामघाट	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,,
१ छलेसर	,, ,, कृ० ४,५	,, नव०१२,१३श.र.	,, पौष कृ० १	,, दिस० ९ शुक्र
२ अतरौली	,, पौष	,, दिस०	,, पौष	,, दिस०
बिजौली	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,,
५ सोरों	,, ,,	,, ,,	,, चैत्र कृ०	१८७१ मार्च
२ कासगंज	,, चैत्र कृ०	१८७१ मार्च	१९२८ चैत्र शु०	,, अप्रैल
* [... ...	... ...	... ...	... ...	...]
... ...	... ...	... ...	... ...	...
१० रामघाट	१९२८ ज्येष्ठ	१८७१ मई जून	१९२८ आषाढ़	१८७१ जून जुलाई
† [... ...	... ...	... ...	... ...	...]
... ...	... ...	... ...	... ...	...
८ कर्णवास	१९२८ भाद्र (द्वि०)	१८७१ सित०	१९२८ भाद्र (द्वि०)	१८७१ सित०

‡ फर्रुखाबाद के इतिहास पृष्ठ १२२ पर सं० १९२८ के भाद्र मास में फर्रुखाबाद जाने का उल्लेख है। उसी वर्णन में मिर्जापुर की पाठशाला से पं० युगलकिशोर को बुलाने का वर्णन भी है। ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन पूर्ण सं० २ पृ० ४ के पत्र से स्पष्ट है कि ऋषि दयानन्द ने पं० गंगादत्त को फर्रुखाबाद बुलाने के लिये सं० १९२७ भाद्र शु० ६ बृहस्पतिवार को पत्र लिखा था। ऋ० द० के जीवन चरित (पं० देवेन्द्र सं० पृ० १९६) में लिखा है कि कासगंज की पाठशाला के लिये फर्रुखाबाद की पाठशाला के अध्यापक दुलाराम (दिनेशराम) को बुलाया था। इससे स्पष्ट है कि जब फर्रुखाबाद की पाठशाला में कोई अध्यापक नहीं रहा और मथुरा से गंगादत्त शर्मा भी नहीं आये, तब उसी समय (भाद्र सं० १९२७) पं० युगलकिशोर को मिर्जापुर से बुलाया होगा। अतः फर्रुखाबाद के इतिहास में सं० १९२७ के स्थान में १९२८ भूल से छपा है, यह विस्पष्ट है। पाठक सुधार लें। फर्रुखाबाद के इतिहास के आधार पर ही पं० देवेन्द्रनाथ सकलित जी० च० पृ० २०६ पर पं० घासीराम जी एम० ए० से भी यही भूल हुई है। ऋषि दयानन्द सं० १९२८ के मार्गशीर्ष में पुनः फर्रुखाबाद पधारे थे, इसका वर्णन फर्रुखाबाद के इतिहास में नहीं है। इसी प्रकार सं० १९१२ चैत कृष्ण में फर्रुखाबाद पधारने का उल्लेख भी उक्त इतिहास में नहीं है। इन दोनों वारों का वर्णन जोड़ने पर ऋ० द० फर्रुखाबाद ९ बार पधारे, अगले चरित लेखक भूल ठीक करें।

* कासगंज से चैत्र शु० १९२८ में प्रस्थान किया, तत्पश्चात् ज्येष्ठ में रामघाट पहुंचने का उल्लेख है। इस बीच में श्री स्वामी जी महाराज कहां २ रहे, यह अज्ञात है।

† रामघाट से आषाढ़ में प्रस्थान किया, तत्पश्चात् कर्णवास भाद्र (द्वितीय) में पहुंचे। इस बीच में तीन मास कहां कहां भ्रमण किया, यह अज्ञात है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्थान नाम	आगमन तिथि	आगमन तारीख	प्रतिगमन तिथि	प्रतिगमन तारीख
६ अनूपशहर	सं० १९२८ भाद्र (द्वि०) शु०१४	सन्१८७१सि०२७ बु०	सं०१९२८ कार्तिक	सन् १८७१ नव०
९ कर्णवास	" कार्तिक	" नव०	" मार्गशीर्ष	" दिस०
५ फर्रुखाबाद‡	" मार्गशीर्ष	" दिस०	" माघ	१८७२ जनवरी फर०
४ काशी	" फाल्गुन	१८७२ फर० मार्च	१९२९ चैत्र शु० ९	" अप्रैल १६ मं०
मुगलसराय	१९२९ चैत्र शु० ९	" अप्रैल १६मं०	" वैशाख कृ०❀	" अप्रैल❀
१ डुमरांव	" वैशाख कृ०❀	" अप्रैल❀	" भाद्र कृ०	" अग०
१ आरा	" भाद्र कृ०	" अगस्त	" " शु० ३,४	" सि० ६,७शु०श०
१ पटना	" " शु० ३,४	" सि० ६,७शु०श०	" आश्विन कृ० ३०	" अक्टू० २ बुध
मुंगेर	" आश्विन शु० १	" अक्टू० ३ गु०	" कार्तिक कृ० २§	" अक्टू० १८ शु०
१ भागलपुर	" कार्तिक कृ० ४§	" अक्टू० २० र०	" पौष कृ० १	" दिस० १५ र०
कलकत्ता	" पौष कृ० २	" दिस० १६ सो०	" " ✿	१८७३ जन० ३१शु०§
मुर्शिदाबाद बालूचा	" " ✿	१८७३ फर० १ श०	" " ✿	" फरवरी २१ शु०
कलकत्ता	" " ✿	" फरवरी २२ श०	" " ✿	" मार्च १२ बु०
नवद्वीप	" " ✿	" मार्च १३ बृ०	" " ✿	" मार्च१९ बु०
वराह नगर (कलकत्ता का उपनगर)	" " ✿	" मार्च १९ बु०	१९३० चैत शु० ४	" अप्रैल १ मं०
हुगली	१९३० चैत शु० ४	" अप्रैल १ मं०	" " शु० १४¶	" अप्रैल १२ शनि
बर्दमान	" " शु० १५	" " १३ र०	" वैशाख कृ० ४	" " १६ बुध
२ भागलपुर	" वैशाख कृ० ५	" " १७ गु०	" ज्येष्ठ कृ० ५	" मई १७ शनिवार
२ पटना	" ज्येष्ठ कृ० ६	" मई १८ रवि	" " कृ०	" मई
छपरा	" " कृ० १४	" " २५ रवि०	" " शु० १५	" जून १० मंगल
२ आरा	" आषाढ़ कृ० १	" जून ११ बुध	" श्रावण शु० २	" जुला०२६ श०

‡ इस बार फर्रुखाबाद पधारने का उल्लेख फर्रुखाबाद के इतिहास में नहीं है। देखो पूर्व पृष्ठ४१ टिप्पणी पहली।

❀ पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृष्ठ २१० के अनुसार मुगलसराय में केवल १० दिन रहे। तदनुसार २६ अप्रैल को डुमरांव गये होंगे।

§ यहां कुछ भूल प्रतीत होती है। मुंगेर से भागलपुर का मार्ग थोड़े समय का है, दो दिन का नहीं। अथवा मार्ग में कहीं अन्यत्र रुके होंगे।

✿ इस समय हमारे पास संवत् १९२९ का पञ्चाङ्ग नहीं है। इसलिए तारीख के अनुसार तिथि नहीं देसके।

§ जीवनचरितों में इस दिन कलकत्ता छोड़ने का तथा पुनः कलकत्ता आने का कोई उल्लेख नहीं मिलता। इसी प्रकार मुर्शिदाबाद-बालूचा आदि जाने का भी उल्लेख नहीं है। हुगली से रवाना होने तथा वर्दमान पहुंचने की भी कोई तारीख नहीं लिखी है। इन ४-५ मास की तारीखों का उल्लेख हमने श्री हेमचन्द्र जी चक्रवर्ती (प्रचारक आदि-ब्रह्म समाज) की डायरी के अनुसार किया है। डायरी का वह अंश जो ऋषि के जीवन-चरित से संबन्ध रखता है, ज्येष्ठ सं० २०१२ की वेदवाणी में छप चुका है। परन्तु उसके बहुत महत्त्वपूर्ण होने से हम उसे इस परिशिष्ट के अन्त में भी छाप रहे हैं।

¶ चैत शु० ११ तदनुसार ८ अप्रैल मंगलवार को पं० तारार्चन्द्र से शास्त्रार्थ हुआ था। देखो ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन (द्वि० संस्क०) पृष्ठ६ पं० २४ तथा उसकी टिप्पणी २।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्थान नाम	आगमन तिथि	आगमन तारीख	प्रतिगमन तिथि	प्रतिगमन तारीख
२डुमरांव	सं० १९३० श्रावण शु० २	सन् १८७३ जुला० २६ श०	सं० १९३० आ० शु० १५	सन् १८७३ अग० ८ शु०
५ मिर्जापुर	” ” शु० १५	” अग० ८ शु०	” कार्तिक कृ०	” अक्टूबर
५ प्रयाग	” कार्तिक कृ०	” अक्टूबर	” ” ”	” ”
३ कानपुर	” ” कृ० १४	” अक्टू० २० सो०	” मार्गशीर्ष कृ०	” नव०
१ लखनऊ	” मार्गशीर्ष कृ०	” नव०	” ” कृ० १४	” नव० १९ बुध
४ कानपुर	” ” कृ० ३०	” नव० २० बृ०	” ” कृ० ३०	” नव० २० बृ०
५ फर्रुखाबाद	” ” शु० १	” ” २१ शु०	” पौष कृ०	” दिसम्बर
३ कासगञ्ज	” पौष कृ० ६	” दिस० १२ बु०	” ” ”	” ”
३ अतरौली	” ” कृ० ३०	” दिस० १९ शु०	” ” कृ० ३०	” दिस० १९ शु०
२ छलेसर	” ” शु० १	” दिस० २० श०	” ” शु० ७	” दिस० २६ शु०
१ अलीगढ़	” ” शु० ७	” दिस० २६ शु०	” माघ शु० ५	१९७४ जन० २२ बृ०
२ हाथरस	” माघ शु० ५	१९७४ जन० २२ बृ०	” ” शु०	” जन०
३ मथुरा	” ” शु०	” जन०	” फाल्गुन शु० ११	” फर० २७ शु०
वृन्दवान	” फाल्गुन शु० ११	” फर० २७ शु०	” चैत्र कृ० ११	” मार्च १४ श०
४ मथुरा	” चैत्र कृ० ११	” मार्च १४ श०	१९३१ ” शु० २	” मार्च २० शु०
२ मुरसान	१९३१ चैत्र शु० २	” मार्च २० शु०	” ज्येष्ठ	” मई
६ प्रयाग	” ज्येष्ठ	” मई	” ”	” ”
५ काशी	” ”	” ”	” आषाढ़ (द्वितीय)	” जून
७ प्रयाग	” आषाढ़ (द्वि०) कृ० २	” जुलाई १ बु०	” आश्विन	” अक्टू०
जबलपुर	” आश्विन	” अक्टू०	” ”	” ”
नासिक (पंचवटी)	” ” शु०	” ”	” ” शु०	” ”
१ बम्बई	” कार्तिक कृ० १	” ” २० सो०	” मार्गशीर्ष कृ० ८	” दिस० १ मं०
१ सूरत	” मार्गशीर्ष कृ० ८	” दिस० १ मं०	” मार्गशीर्ष	” दिस०
१ भड़ौंच	” मार्गशीर्ष	” दिस०	” ”	” ”
३ अहमदाबाद	” ” शु० ३	” दिस० ११ श०	” पौष कृ० ५	” दिस० २८ सो०
निम्राद (नडियाद)	” पौष कृ०	” दिस०	” पौष कृ०	” दिस०
राजकोट	” पौष कृ० ८	” दिस० ३१ बृ०	” ” शु० १२	१८७५ जन० १८ सो०
चोटिला*	” ” कृ० १२ की रात	१८७५ जन० १८ सो०	” ” ” १३ प्रातः	” ” १९ मं० प्रातः
बड़ोयान	” पौष शु० १३	” जन० १९ मं०	” पौष शु० १४	” जनवरी २० बुध
४ अहमदाबाद	” ” ” १५ †	” जन० २१ शु०	” माघ कृ० ८	” जनवरी २९ श० ‡

* चोटिला, राजकोट और बड़ोयान के मध्य में राजकोट से १३,१४ मील पर है, वहां जाने का उल्लेख राजकोट के वर्णन के आस पास किसी जीवनचरित में नहीं मिलता, परन्तु पं० देवेन्द्रनाथ ने (प्रारम्भिक चार अध्याय उनके ही लिखे हुए हैं) राजकोट से बड़ोयान जाते हुए मार्ग में १ रात चोटिला ठहरने का उल्लेख किया है। देखो— पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जी० चरित्र पृष्ठ १३। † किसी किसी पंचांग में इस दिन माघ कृष्ण १ भी लिखा है।

‡ पं० देवेन्द्रनाथ सं० जीवन चरित पृष्ठ २२१ में २१ जनवरी को अहमदाबाद आने का उल्लेख है। पुनः पृष्ठ ३२२ पर २७ जनवरी को अहमदाबाद में होने वाली विशेष सभा का उल्लेख किया है। तदनन्तर पृष्ठ ३२६

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्थान नाम	आगमन तिथि	आगमन तारीख	प्रतिगमन तिथि	प्रतिगमन तारीख
१ बम्बई	सं० १९३१ माघ कृ० ८	सन् १८७५ जन० २९ शु०	सं० १९३२ आषाढ़कृ०	सन्१८७५ जून
२ पूना	१९३२ आषाढ़ कृ०	,, जून	,, भाद्र शु०†	,, सित०†
सातारा	,, भाद्र शु०❀	,, सित०❀	,, आश्विन‡ शु०	,, अक्टू० ‡
२ पूना []	,, आश्विन शु०‡	,, अक्टू०‡	,, कार्तिक कृ०()	,, अक्टू० ()
३ बम्बई	,, कार्तिक कृ०()	,, अक्टू०()	,, पौष	१८७५ दिसम्बर १८७६ जनवरी
२ बड़ौदा	,, पौष	१८७५ दिसम्बर १८७६ जनवरी	,, फाल्गुन	१८७६ फर० मार्च
५ अहमदाबाद	,, फाल्गुन	१८७६ फर० मार्च	,, ,,	,, ,, ,,
२ भड़ौंच	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
२ सूरत	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
बलासार	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
बसीनरोड	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
४ बम्बई	,, ,,	,, ,, ,,	१९३३ वैशाख	,, अप्रेल

पर अहमदाबाद से दुबारा सूरत आने और १ व्याख्यान देने का वर्णन है। तत्पश्चात् इसी पृष्ठ पर सूरत से बालसर जाने तथा पृष्ठ ३२७ में बालसर से बसीनरोड जाने और ४ चार दिन वहाँ ठहरने का कथन करके पृ० ३२८ पर २९ जनवरी को बम्बई पहुँचने का वर्णन किया है। २७ जनवरी तक अहमदाबाद रहना और २९ जन० को बम्बई पहुँचने से पूर्व सूरत बालसर तथा ४ दिन बसीनरोड ठहरना किसी प्रकार सम्भव नहीं। इस वर्णन में कुछ भूल अवश्य है। अगले चरित-लेखक इस पर ध्यान देवें। सम्भव है वह अगली बार अहमदाबाद से लौटते समय का वर्णन हो।

† पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृ० ३५७ पर इतना ही उल्लेख है—"पूना से स्वामीजी सितम्बर १८७५ की किसी तारीख को सतारा चले गये।" इसी जी० च० में पृ० ३५१ पर पूना से विदाई के उपलक्ष में ५ सितम्बर १८७५ रविवार तदनुसार भाद्र शु० ५ सं० १९३२ को समारोह तथा सभा करने का उल्लेख है। इससे विदित होता है कि ऋ० द० ५ सितम्बर के एक दो दिन के भीतर ही सातारा चले गये होंगे।

❀ इस विषय में इसी पृष्ठ की † चिह्नित पूर्व टिप्पणी देखें।

‡ पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृ० ३५७ पर २३ अक्टूबर तदनुसार कार्तिक कृ० १ को सातारा से पूना लौटने का वर्णन है, वह अशुद्ध है, क्योंकि गुजराती पंचाङ्गानुसार आश्विन वदी २ (उत्तरभारतीय पंचाङ्गानुसार—कार्तिक वदि २) तदनुसार १६ अक्टूबर को लिखे गये पूर्ण संख्या १८ के पत्र में सातारा से लौट आने का निर्देश है। यह पत्र पूना से लिखा गया या बम्बई से, यह पत्र से स्पष्ट नहीं है। हमारे विचार में यह पत्र पूना से लिखा गया है और २३ अक्टूबर तारीख पूना से बम्बई जाने की प्रतीत होती है। ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन द्वितीय संस्क० पृष्ठ ३० की टिप्पणी २ भी देखें।

[] पं देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृ० ३५६ में प्रथम बार के पूना वर्णन के प्रसंग में आर्य-समाज की स्थापना का उल्लेख है। परन्तु पूर्ण संख्या १८ के पत्रानुसार द्वितीय बार पूना निवास काल में समाज की स्थापना हुई थी। देखो ऋ० द० पत्र वि० पृष्ठ ३०।

() यहां इसी पृष्ठ की ‡ चिह्न से चिह्नित पूर्व टिप्पणी देखें।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्थान नाम	आगमन		प्रतिगमन	
	तिथि	तारीख	तिथि	तारीख
१ इन्दौर	१९३३ वैशाख	सन् १८७६ अप्रेल	सं० १९३३ वैशा०शु० ७	सन् १८७६ अप्रेल ३० र०
७ फर्रुखाबाद	" ज्येष्ठ कृ० १	" मई ९ मंगल	" ज्येष्ठ शु० १	" मई २४ बुध
६ काशी	" " शु० ४	" मई २७ श०	" भाद्र कृ० १०, ११	"अग०१४, १५सो.मं.
जौनपुर	" भाद्र कृ० ११	" अग० १५ मं०	" " कृ० १४	" अग०१८ शु०
अयोध्या	" " कृ० १४	" अग० १८ शु०	" आश्विन शु० ९	" सित०२७ बु०
२ लखनऊ	" आश्विन शु० ९	" सित० २७ बु०	" कार्तिक शु० १५	" नव० १ बुध
१ शाहजहांपुर	" कार्तिक शु० १५	" नव० १ बु०	" मार्गशीर्ष कृ० ५	" नव० ६ सोम
१ बरेली	" मार्गशीर्ष कृ० ५	" नव० ६ सोम	" " शु० ❋	" नव०
२ मुरादाबाद	" " शु०	" नव०	" " "	" "
२ बरेली	" " "	" "	" पौष कृ० १	" दिस० २ श०
राजघाट	" पौष कृ० १	" दिस० २ शनि	" " कृ०	" " "
१० कर्णवास	" " "	" " "	" " कृ० ३	" दिस० ४ सो०
३ छलेसर	" " कृ० ३	" दिस० ४ सो०	" " कृ०	" दिस०
२ अलीगढ़	" " कृ०	" दिस०	" पौष शु० २	" दिस० १७ र०
१ दिल्ली	" " शु० २	" दिस० १७ र०	" माघ शु० २	१८७७ जन० १६ मं०
२ मेरठ	" माघ शु० २	१८७७ जन० १६ मं०	" फाल्गुन शु० २	" फर० १५ बृ०
१ सहारनपुर	" फाल्गुन शु० २	" फरवरी १५ बृ०	" चैत्र कृ० १२	" मार्च ११ र०
२ शाहजहांपुर	" चैत्र कृ० १४	" फरवरी १३ मं०	" " कृ० ३०	" मार्च १५ बृ०
चांदापुर	" चैत्र कृ० ३०	" मार्च १५ बृ०	१९३४ चैत्र शु० ८	" मार्च २२ बृ०
३ शाहजहाँपुर	१९३४ चैत्र शु० ८	" मार्च २२ बृ०	" शु० ९	" मार्च २३ शु०
२ सहारनपुर	" " शु०	" मार्च	" वैशाख कृ० २	" मार्च ३१ श०
१ लुधियाना	" वैशाख कृ० २	" मार्च ३१ श०	" " शु० ५V	" अप्रैल १८ बु०V
१ जालन्धर	" " शु० ५(रात)	" अप्रै० १८ बु०	" " शु० ६ (प्रातः)	" " १९ बृ०
१ लाहौर	" " शु० ६	" अप्रैल १९ बृ०	" आषाढ़ शु० २S	" जुलाई १२S बृ०
१ अमृतसर	" आषा० शु० २S	" जुलाई १२ बृ०S	" श्रावण शु० ९	" अग० १७ शु०

❋ १८ नव० मार्ग० शु० २ का बरेली से भेजा हुआ पत्र ऋ० द० पत्र वि० पूर्ण सं० २४पृ० ३२ पर छपा है।

V यद्यपि जीवनों चरितों में वैशाख शु० ६ बृहस्पतिवार १९ अप्रैल को लुधियाना से लाहौर पधारना लिखा है, तथापि पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृ० ४३७ में जालन्धर के वर्णन प्रसंग में लिखा है—'लुधियाना से लाहौर जाते हुए एक रात के लिए जालन्धर ठहरे थे और सरदार सुचेतसिंह का आतिथ्य ग्रहण किया था। तदनुसार स्वामी जी लुधियाना से वैशाख शु० ५ अप्रैल १८ बुधवार को रवाना हुए होंगे।

S पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृ० ४२९ में ५ जुलाई १८७७ = आषाढ़ कृष्ण ९ को अमृतसर पहुंचना लिखा है, परन्तु ऋ० द० के २१ जुलाई के पत्र (पूर्ण सख्या ३९ पृ० ५३) से स्पष्ट है कि वे १२ जुलाई = आषाढ़ शु० २ को अमृतसर पहुंचे थे। पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृ० ४३० पर लिखा है—"१२ जुलाई सन् १८७७ रविवार को महाराज लाहौर गये और सन्ध्या समय अनारकली में आर्य-समाज में "धर्म की आवश्यकता" और "आर्य-समाज से लाभ" पर व्याख्यान देकर अमृतसर लौट आये।" यहाँ '१२ जुलाई रविवार' को लाहौर जाना अशुद्ध है, क्योंकि १२ जुलाई को बृहस्पतिवार था, रविवार १५ जुलाई और २२ जुलाई को था। अतः प्रतीत होता है, २२ जुलाई का यहां १२ जुलाई बन गया है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्थान नाम	आगमन तिथि	आगमन तारीख	प्रतिगमन तिथि	प्रतिगमन तारीख
[लाहौर H	सं०१९३४ आषा०शु.१२(साय)	सन् १८७७ जु० २२ र०	सं०१९३४आ०शु०१३(प्रातः)	सन्१८७७जु०२३सो०]
गुरुदासपुर	" श्रावण शु० ९	" अग० १७ शु०	" भाद्र कृ० २	" अग० २८ र०
[बटाला K	" भाद्र कृ० २	" " २८ र०	" " " "	" " " "
२ अमृतसर	" " " "	" " " "	" " शु० ६	" सित० १३ बृ०
२ जालन्धर	" " शु० ६P	" सित० १३ बृ०P	" आश्विन शु० ८Z	" अक्टू० १५ सो०Z
३ अमृतसर Z	" आश्विन शु० ९	" अक्टू० १५ सो०	" आश्विन शु० ११	" अक्टू० १ बु०
२ लाहौर	" आश्विन शु० ११	" अक्टू० १७ बु०	" कार्तिक कृ० ४	" अक्टू० २६ शु०
फिरोजपुर	" कार्तिक कृ० ४	" अक्टू० २६ शु०	" " कृ० १४	" नव० ४ रवि
३ लाहौर	" " कृ० ३०	" नव० ५ सो०	" " शु० २	" नव० ७ बुध
रावलपिण्डी	" " शु० ३	" नव० ८ बृ०	" पौष कृ० ७T	" दिस० २६ बु०
झेलम	" पौष कृ० ८T	" दिस० २७ बृ०	" " शु ९	१८७८ जन० १३ र०
गुजरात	" " शु० ९	१८७८ जन० १३ र०	" माघ कृ० ३०	" फर० २ श०
वजीराबाद	" माघ कृ० ३०	" फर० २ श०	" " शु० ५	" फर० ७ बृ०
गुजरांवाला	" " शु० ५	" फर० ७ बृ०	" फाल्गुन कृ० १४	" मार्च ३ श०
४ लाहौर	" फाल्गुन कृ० १४	" मार्च ३ श०	" " शु० ८	" मार्च १२ मं०
मुलतान	" " शु० ८	" मार्च १२ मं०	१९३५ चैत्र शु० १४	" अप्रैल १६ मं०
५ लाहौर	१९३५ चैत्र शु० १५	" अप्रैल १७ बु०	" वैशाख शु० १४	" मई १५ बु०
४ अमृतसर	" वैशाख शु० १४	" मई १५ बु०	" श्रावण कृ०	" जुलाई
३ जालन्धर	" श्रावण कृ०	" जुलाई	" " "O	" "O

H इस विषय में पृष्ठ ४५ की S चिह्नित टिप्पणी देखो।

K बटाला ठहरने का निर्देश पं० देवेन्द्रनाथ सं० जीवन चरित पृ० ४३६ पर है।

P ऋ०द०के पत्र और विज्ञापन पूर्ण संख्या ४८(पृष्ठ६७)के पत्रसारांश में १२ सितम्बर को जालन्धर पहुंचना लिखा है, वह भूल से लिखा गया प्रतीत होता है। क्योंकि इसी पत्रव्यवहार के पूर्णसंख्या ४३ (पृ० ६४) के पत्र में १३ सितम्बर को प्रातः ९½ बजे की गाड़ी से जालन्धर जाने का निर्देश है। यही तारीख सभी जीवनचरितों में तथा शास्त्रार्थजालन्धर में छपी है। शास्त्रार्थ जालन्धर श्री पं० लेखराम जी सं० जीवन चरित्र में अक्षरशः छपा है।

Z ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन के पूर्ण संख्या ४९ (पृ० ६७) से स्पष्ट है कि ऋषि दयानन्द १५ अक्टूबर सोमवार को प्रातः जालन्धर से अमृतसर के लिए रवाना हुए, वहां से १७ अक्टूबर बुधवार की प्रातः लाहौर के लिए प्रस्थान किया। इस प्रकार १५ का आधा दिन, १६ और १७ की प्रातः तक अमृतसर रहे। ऋ० द० के किसी भी जी० च० में अमृतसर के इस निवास का उल्लेख नहीं है।

T श्री पं० लेखरामजी ने ३० दिसम्बरको झेलम पहुंचना लिखा है। श्री पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृ० ४५० पर "३० दिसम्बर को महाराज रावलपिण्डी से गुजरात जाने के विचार से शिकरम पर सवार होकर ३१ दिसम्बर को झेलम रेलवे स्टेशन पर पहुंचे" ऐसा लिखा है। ये दोनों लेख अशुद्ध हैं। ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन के पूर्ण सं० ५७ के पत्र में ऋ० दयानन्द ने २७ दिसम्बर को झेलम पहुंचना लिखा है। देखो पृष्ठ ७५ तथा टि० २।

O यहां से आगे की रुड़की पहुंचने तक की वास्तविक तिथियां अज्ञात हैं। श्री पं० लेखराम जी और श्री पं० देवेन्द्रनाथ जी सं० जीवनचरितों में ११ जुलाई = आषाढ़ शु० १२ तक अमृतसर में निवास करने का उल्लेख है, परन्तु ऋ०द० के पत्र और विज्ञापन के पूर्णसंख्या ८२(पृ० ९३) के पत्र से १५ जुलाई तक अमृतसर रहना निश्चित है। इसी प्रकार पूर्णसंख्या ८५ (पृ०९५) के पत्र से स्पष्ट है कि वे २५ जुलाई को या उससे पूर्व वे रुड़की पहुंच गये थे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्थान नाम	आगमन तिथि	आगमन तारीख	प्रतिगमन तिथि	प्रतिगमन तारीख
२ लुधियाना	सं० १९३५ श्रावण कृ०	सन् १८७८ जुलाई	सं० १९३५ श्रावण कृ०	सन् १८७० जुलाई
अम्बाला	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,	,, ,,
१ रुड़की	,, ,, ,,	,, ,,	,, भाद्र कृ० ८	,, अग० २१ बु०
३ अलीगढ़	,, भाद्र कृ० ९	,, अग० २२ बृ०	,, भाद्र कृ० १३	,, अग० २८ सो०
३ मेरठ	,, भाद्र कृ० १३	,, अग० २६ सो०	,, आश्विन शु० ८	,, अक्टू० ३ बृ०
२ दिल्ली	,, अश्विन शु० ८[]	,, अक्टू० ३ बृ०[]	,, कार्तिक शु० १२	,, नव० ६ बु०
३ अजमेर	,, कार्तिक शु० १३	,, नव० ७ बृ०	,, ,, शु० १३	,, नव० ७ बृ०
२ पुष्कर	,, ,, ,, ,,	,, ,, ,,	,, मार्गशीर्ष कृ० ४	,, नव० १४ बृ०
४ अजमेर	,, मार्गशीर्ष कृ० ४	,, नव० १४ बृ०	,, ,, शु० ८	,, दिस० २ सो०
१ मसूदा	,, ,, शु० ८	,, दिस० २ सो०	,, पौष कृ० १	,, दिस० १० मं०
१ नसीराबाद	,, पौष कृ० १	,, दिस० १० मं०	,, ,, कृ० ५	,, दिस० १४ श०
५ अजमेर ‡	,, ,, कृ० ५	,, दिस० १४ श०	,, ,, कृ० ६	,, दिस० १५ र०
३ जयपुर	,, ,, कृ० ६	,, दिस० १५ र०	,, ,, शु० १	,, दिस० २४ मं०
रिवाड़ी	,, ,, शु० २	,, दिस० २५ बु०	,, माघ कृ० १	१८७९ जन० ९ बृ०
३ दिल्ली	,, माघ कृ० १	१८७९ जन० ९ बृ०	,, ,, कृ० ९	,, जन० १६ बृ०
४ मेरठ	,, ,, कृ० ९	,, जन० १६ बृ०	,, ,, शु०	,, जन० फर० ❀
खतौली †	,, ,, शु०	,, जन० फर०	,, ,, ,,	,, जन० फर०
३ सहारनपुर	,, ,, शु० ❀	,, जन० फर० ❀	,, ,, शु० १५	,, फर० ६ बृ० ❀
२ रुड़की	,, ,, शु० १५()	,, फर० ६ बृ०()	,, फाल्गुन कृ० १४(]	,, फर० २० बृ०(]

[] श्री पं० लेखराम जी तथा श्री पं० देवेन्द्रनाथ जी सं० जी० च० में ९ अक्टूबर को देहली पहुँचना लिखा है, वह अशुद्ध है। क्योंकि ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन के पूर्णसंख्या १०९ (पृष्ठ १११ पं० ६) के पत्र में ऋ० द० ने 'हम ३ अक्टूबरको दिल्ली आ गये हैं' ऐसी स्पष्ट निर्देश किया है।

‡ इस बार अजमेर ठहरने का उल्लेख किसी जी० च० में नहीं है। परन्तु सभी जीवन चरितों में १४ दिस० को नसीराबाद से चलना और १५ दिन को जयपुर पहुँचना लिखा है। ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन के पूर्णसंख्या १३७ (पृ० १२४) में लिखा है 'हम अजमेर से जयपुर आये थे'। इससे स्पष्ट है कि १४ दिन को अजमेर पहुंचे और १५ की किसी गाड़ी से जयपुर को रवाना हुए।

† हरिद्वार के कुम्भ में जाते हुए मार्ग में खतौली के 'मजहर हसन उर्फ मजवां' के बाग में कुछ घण्टों के लिये ठहरे थे। यह अनुसन्धान श्री मामराज जी खतौली निवासी ने किया है।

❀ ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन पूर्णसंख्या १४३ (पृ० १३०) के अनुसार २ फरवरी को स्वामी जी सहारनपुर में विद्यमान थे। क्योंकि उक्त २ फरवरी का पत्र सहारनपुर से लिखा गया है, यह पत्र से स्पष्ट है। पं० देवेन्द्रनाथ सं० जीवन चरित पृ० ५१९ में सहारनपुर में 'केवल दो ही दिन ठहरे' लिखा है, यह भी अशुद्ध। उक्त पत्रानुसार फरवरी २ से ६ तक सहारनपुर अवश्य रहे थे।

() देखो इसी पृष्ठ की ❀ संकेतित सहारनपुर की टिप्पणी।

(] पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृ० ५१९ में रुड़की में केवल १ दिन ठहरना लिखा है, परन्तु पूर्ण संख्या १४३ के २ फरवरी को सहारनपुर से लिखे गये पत्र में रुड़की में ८ वा १५ दिन रहने का उल्लेख है। इसी प्रकार उक्त जीवन चरित पृ० ५१९ में फाल्गुन शु० ६ अर्थात् २० फरवरी को ज्वालापुर पहुँचने का निर्देश किया है। २० फरवरी को फा० कृ० १४ थी।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्थान नाम	आगमन तिथि	आगमन तारीख	प्रतिगमन तिथि	प्रतिगमन तारीख
ज्वालापुर	सं० १९३५ फाल्गुन कृ० १४	सन् १८७९ फर० २० बृ०	सं० १९३५ फा० शु० ६	सन् १८७९ फर० २७ बृ०
४ हरिद्वार	" " शु० ६	" फर० २७ बृ०	१९३६ वैशाख कृ० ८	" अप्रैल १४ सो०
२ देहरादून	१९३६ वैशाख कृ० ८	" अप्रैल १४ सो०	" " शु० ९	" अप्रैल ३० बु०
४ सहारनपुर	" " शु० १०	" मई १ बृ०	" " शु० १२	" मई ३ श०
५ मेरठ	" " शु० १२	" मई ३ श०	" ज्येष्ठ शु० २	" मई २३ शु०
४ अलीगढ़	" ज्येष्ठ शु० २	" मई २३ शु०	" " शु० ७	" मई २८ बुध
४ छलेसर	" " " ७	" मई २८ बु०	" आषाढ़ शु० १५	" जुलाई ३ बृ०
३ मुरादाबाद	" आषाढ़ शु० १५	" जुलाई ३ बृ०	" श्रावण शु० १३ ❀	" " ३१ बृ० ❀
बदायूँ	" श्रावण शु० १४	" अग० १ शु०	" भाद्र कृ० १२	" अग० १४ बृ०
३ बरेली	" भाद्र कृ० १२	" " १४ बृ०	" आश्विन कृ० ४	" सित० ४ बृ०
४ शाहजहाँपुर	" आश्विन कृ० ४	" सित० ४ बृ०	" " शु० १	" सित० १७ बु०
३ लखनऊ	" " शु० २	" सित० १८ बृ०	" " शु० ९	" सित० २४ बु०
५ कानपुर	" " " ९	" सित० २४ बु०	" " शु० ९	" सित० २४ बु०
८ फर्रुखाबाद	" आश्विन शु० १०	" सि० २५ बृ०	" आ० (द्वि०) कृ० ८	" अक्टू० ८ बु०
६ कानपुर	" " (द्वि०) कृ० ८	" अक्टू० ८ बु०	" " " शु० २	" " १७ शु०
८ प्रयाग	" " " शु० २ ❀	" " १७ शु० ❀	" " " शु० ९	" " २३ बृ०
६ मिर्जापुर	" " " शु० ९	" " २३ बृ०	" " " शु० १५	" " ३० बृ०
दानापुर	" " " शु० १५	" " ३० बृ०	" कार्तिक शु० ७ †	" नव० २० † बृ०
७ काशी	" कार्तिक शु० ७ †	" नव० २० † बृ०	१९३७ वैशाख कृ० ११	१८८० मई ५ बु०
४ लखनऊ	१९३७ वैशाख कृ० ११	१८८० मई ५ बु०	" " शु० १०	" मई १९ बु०
८ कानपुर	" " शु० १०	" मई १९ बु०	" " शु० ११	" मई २० बृ०
९ फर्रुखाबाद	" " शु० ११	" मई २० बृ०	" आषाढ़ कृ० ८	" जून ३० बु०
मैनपुरी	" आषाढ़ कृ० ९	" जु० १ बृ०	" " कृ० १४	" जु० ६ मं०
भारौल	" " कृ० १४	" जु० ६ मं०	" " कृ० ३०	" जु० ७ बु०

❀ पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृ० ५५० में ३० जुलाई को मुरादाबाद से प्रस्थान करने का उल्लेख किया है और ३१ की रात के ३ बजे बदायूँ पहुँचना लिखा है। ३१ की रात के १२ बजे के बाद १ अगस्त प्रारम्भ हो जाता है। ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन के पूर्ण संख्या १८० के अनुसार ३१ जुलाई को मुरादाबात से प्रस्थान किया था।

❀ पूर्णसंख्या १९३ ता० १२ अक्टू० १८७९ के पत्र (पृ० १६६) में १६ अक्टूबर को प्रयाग जाने का उल्लेख ऋ० द० ने किया है। सम्भव है १६ को न जाकर १७ को गये हों।

† पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृष्ठ ५९२ पर १९ सितम्बर को दानापुर से प्रस्थान करना लिखा है, वहाँ २० सितम्बर होना चाहिये। भ्रमोच्छेदन ग्रन्थ के आरम्भ में ऋ० द० ने "कार्तिक सुदि १४ गुरुवार सं० १९३६ (= २७ नवम्बर १८७९) को काशी पहुँचना लिखा है, वह ठीक नहीं है, क्योंकि पत्र व्यवहार में पूर्णसंख्या १९८ पृष्ठ १६९ पर २० नवम्बर (कार्तिक शु० ७) का, पूर्णसंख्या १९९ पृष्ठ १७० पर कातिक शु० ८ (= २१ नवम्बर) का तथा पूर्णसंख्या २०० पृ० १७०, १७१ पर २४ नवम्बर (कार्तिक शु० ११) के काशी से भेजे गए पत्र छपे हुए हैं। अतः कार्तिक शु० ७ = २० नवम्बर (या उससे एक दिन पूर्व) काशी पहुँचना ही उचित है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्थान नाम	आगमन तिथि	आगमन तारीख	प्रतिगमन तिथि	प्रतिगमन तारीख
६ मेरठ	सं० १९३७ आषा० शु० १	सन्१९८० जु० ८ बृ०	सं० १९३७ भाद्र शु० १३	() सन्१९८० सि० १६() बृ०
मुजफ्फरनगर	” भाद्र शु० १३()	” सि० १६() बृ०	” आश्विन कृ० १३	” अक्टू० २ श०
७ मेरठ	” आश्विन कृ० १३	” अक्टू० २ श०	” ” शु० ३	” अक्टू० ६ बु०
५ सहारनपुर	” ” शु० ३	” ” ६ बु०	” ” ” ३	” ” ६ बु०
३ देहरादून	” ” शु० ४	” ” ७ बृ०	” मार्ग० कृ० ४	” नव० २१ र०
अलीगढ़ (कोयल)][	” मार्ग० कृ० ५	” नव० २२ सोम	” ” कृ० ५,६	” ” २२,२३
मेरठ	” ” कृ० ५,६ []	” ” २२,२३ []	” ” कृ० ९	” ” २३ शु०
३ आगरा	” ” कृ० १०	” ” २७ श०	” फाल्गुन शु० १०	१८८१ मार्च १० बृ०
भरतपुर	” फाल्गुन शु० १०	१८८१ मार्च १० बृ०	” चैत कृ० ५	” मार्च २० र०
जयपुर	” चैत कृ० ५	” मार्च २० र०	१९३८ वैशाख शु० ६	” मई ४ बु०
६ अजमेर	१९३८ वैशाख शु० ७	” मई ५ बृ०	” आषाढ़ कृ० १२	” जून २३ बृ०
२ नसीराबाद	” आषाढ़ कृ० १२	” जून २३ बृ०	” ” ”	” ” ”
२ मसूदा	” ” ” ”	” ” ” ”	” भाद्र कृ० ९	” अगस्त १८ बृ०
१ ब्यावर	” भाद्र कृ० ९	” अगस्त १८ बृ०	” ” ”	” ” ” ”
१ हरीपुर स्टेशन	” ” ” १०	” ” १९ शु०	” ” ” १०	” ” १९ शु०
रायपुर	” ” ” ”	” ” ” ”	” ” शु० १५	” सित० ८ बृ०
२ हरिपुर स्टेशन	” ” शु० १५	” सित० ८ बृ०	” ” ” ”	” ” ” ”
२ ब्यावर	” ” शु० १५†	” ” ९†	” आश्विन कृ० १३	” नव० २१ बुध
३ मसूदा	” आश्विन कृ० १३	” सित० २१ बु०	” ” शु० १४	” अक्टू० ६ बृ०

() जीवनचरितों में १५ सितम्बर को मुजफ्फरनगर पहुँचना लिखा है, परन्तु भाद्र सुदी १२ बुधवार तदनुसार १५ सितम्बर के पत्र में (पूर्ण संख्या २७८ पृष्ठ २३५) ऋ० द० ने हम कल ४ बजे की रेल में बैठकर मुजफ्फरनगर जायेंगे, ऐसा स्पष्ट निर्देश किया है। अतः १६ सितम्बर को ही मेरठ से चलना और मुजफ्फरनगर पहुँचना ठीक है।

][जीवनचरितों में अलीगढ़ (कोयल) जाने का कोई उल्लेख नहीं मिलता, परन्तु ऋ० द० ने पूर्ण संख्या ३३४ (पृष्ठ २७६) के पत्र में 'हमने अलीगढ़ पहुँच कर.....२२ नवम्बर १८८० को रजिष्टरी चिट्ठी इस विषय की भिजवाई'' स्पष्ट लिखा है। अतः पत्रानुसार हमने यहां अलीगढ़ का निर्देश किया है। जी० चरितों में २१-२६ नवम्बर तक मेरठ निवास करना लिखा है, वह अशुद्ध है। अथवा यह भी सम्भव है कि देहरादून से २० नवम्बर को चलकर २१ को पहुँचे हों और २२ को कुछ काल के लिये अलीगढ़ आकर उक्त रजिस्टर्ड पत्र भिजवा दिया हो। उभयथा भी अलीगढ़ का निर्देश होना आवश्यक है।

[] देखो इसी पृष्ठ की पूर्व][संकेतित टिप्पणी का उत्तरार्ध।

† जी० च० के अनुसार हरिपुर स्टेशन से १० बजे चलकर १२ बजे के पश्चात् ब्यावर स्टेशन पर पहुँचे। भारतीय ज्योतिष के अनुसार १२ बजे रात्रि के बाद भी पूर्व तिथि ही मानी जाती है, अतः हमने तिथि का निर्देश पञ्चाङ्गों के अनुसार किया है, परन्तु तारीख १२ बजे रात के बाद बदल जाती है, अतः तारीख का निर्देश अंग्रेजी ढंग पर ८ सितम्बर के बदले ९ सितम्बर किया है। वार का निर्देश हमने यहां नहीं किया, क्योंकि पंचाङ्ग के अनुसार बृहस्पति ही था, परन्तु अंग्रेजी तारीख के अनुसार शुक्र प्रारम्भ हो गया था।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्थान नाम	आगमन तिथि	आगमन तारीख	प्रतिगमन तिथि	प्रतिगमन तारीख
हुरड़ा	सं० १९३८ आश्विन शु० १४	सन् १८८१ अक्टू० ६ बृ०	सं० १९३८ आ० शु० १५	सन् १८८१ अक्टू० ७ शु०
रूपाहेली	” ” शु० १५	” ” ७ शु०	” कार्तिक कृ० १	” ” ८ श०
रायला (राटेरा)	” कार्तिक कृ० १	” ” ८ श०	” ” कृ० ३	” ” १० सो०
बनेड़ा	” ” कृ० ३	” ” १० सो०	” ” शु० ४	” ” २६ बु०
भीलवाड़ा	” ” शु० ४	” ” २६ बु०	” ” ”	” ” ”
सोनियाना	” ” ”	” ” ”	” ” शु० ५	” ” २७ बृ०
१ चित्तौड़	” ” शु० ५	” ” २७ बृ०	” पौष कृ० ३०	” दिस० ३१ बु०
२ इन्दौर	” पौष कृ० ३०	” दिस० २१ बु०	” ” शु० ६	” ” २७ मं०
[❀	” ” शु०	” दिस०	” ” शु०	” दिस०
५ बम्बई	” ” शु० १०	” ” ३० शु०	१९३९ आषाढ़ शु० ८	१८८२ जून २४ श०
खण्डवा	१९३९ आषाढ़ शु० ८	१८८२ जून २४ श०	” श्रावण कृ० ४	” जुलाई ४ मं०
३ इन्दौर	” श्रावण कृ० ४	” जुलाई ४ मं०	” ” कृ० ५‡	” ” ६‡
रतलाम	” ” कृ० ६	” ” ६ बृ०	” ” कृ० ८	” ” ८ श०
जावरा	” ” कृ० ८	” ” ८ श०	” ” शु० ९()	” ” २४() सो०
२ चित्तौड़	” ” शु० १०	” ” २५ मं०	” ” (द्वि०) कृ० ११	” अग० ९ बु०
१ निम्बाहेड़ा	” ” (द्वि०) कृ० ११	” अग० ९ बु०	” ” ” ”	” ” ”
उदयपुर	” ” ” कृ. १२, १३ ❀	” ” १०, ११ ❀ बृ. शु.	” फाल्गुन कृ० ६	१८८३ फर० २८ बु०
२ निम्बाहेड़ा	” फाल्गुन कृ० ७	१८८३ मार्च १ बृ०	” ” कृ० ७	” मार्च १ बृ०
३ चित्तौड़	” ” ”	” ” ”	” ” कृ० १३	” ” ७ बु०
२ रूपाहेली	” ” कृ० १४	” ” ८ बृ०	” ” कृ० १४	” ” ८ बृ०
शाहपुरा	” ” कृ० १४]	” ” ८[] बृ०	१९४० ज्येष्ठ कृ० ४	” मई २६ श०

❀ इन्दौर से २७ सितम्बर को रवाना होकर ३० सितम्बर को बम्बई पहुचने का उल्लेख जीवनचरितों में मिलता है। इन्दौर से बम्बई का मार्ग उस समय लगभग ३० घण्टे का रहा होगा। अतः मार्ग में एक या डेढ़ दिन ऋषि दयानन्द कहां ठहरे, यह अज्ञात है।

‡ ऋषि दयानन्द रात की दो बजे की गाड़ी से रतलाम के लिए रवाना हुए थे पञ्चाङ्ग के अनुसार ता० ६ के सूर्योदय से पूर्व तक पञ्चमी का निर्देश, और तारीख के निर्देश में अंग्रेजी पद्धति के अनुसार ६ का निर्देश किया है। पृष्ठ ४९ की]संकेतित टिप्पणी प्रथम पंक्ति भी देखें।

() जावरा से चित्तौड़गढ़ समीप ही है। अतः हमारे विचार में जावरा से ऋ० द० श्रावण शु० १० जुलाई २५ मंगल को रवाना होकर उसी दिन किसी समय चित्तौड़ पहुँच गये होंगे। हमारे विचार की पुष्टि पूर्ण संख्या ४३१ के पत्र की अन्तिम पंक्ति और पूर्ण संख्या ४३२ के पत्र से भी होती है।

❀ जीवनचरितों में श्रावण द्वितीय कृष्णा १३ अगस्त ११ शुक्र को उदयपुर पहुँचना लिखा है, परन्तु पूर्ण संख्या ४३४ के पत्र से प्रतीत होता है कि वे सम्भवतः श्रा० द्वि० कृ० १२ अगस्त १० को ही उदयपुर पहुँच गये थे।

[] जीवनचरितों में फाल्गुन कृष्ण ३० = ९ मार्च को शाहपुरा पहुँचना लिखा है, परन्तु पूर्ण संख्या ४८४ के पत्रानुसार फा० कृ० १४ = ८ मार्च को शाहपुरा पहुँचे होंगे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्थान नाम	आगमन तिथि	आगमन तारीख	प्रतिगमन तिथि	प्रतिगमन तारीख
७ अजमेर	सं १९४० जेष्ठ कृ० ५ †	सन् १८८३ मई २७	सं० १९४० ज्येष्ठ कृ० ६,७	सन् १८८३ मई २८ सो०
१ पाली	" " कृ० ८	" " २९ मं०	" " कृ० ९	" " ३० बु०
१ रोपट	" " कृ० ९	" " ३० बु०	" " कृ० ९	" " ३० बु०
जोधपुर	" " कृ० १०	" " ३१ वृ०	" आश्विन शु० १५	" अक्टू० १६ मं०
२ रोपट	" कार्तिक कृ० १	" अक्टू० १७ बु०	" " कार्ति० कृ० २,३	" अक्टू० १८ वृ०
२ पाली	" " कृ० २,३	" " १८ वृ०	" " कृ० ५	" अक्टू० २० श०
३ आबू	" " कृ० ६	" " २१ र०	" " कृ० ११	" " २६ शु०
८ अजमेर	" " कृ० १२	" " २७ श०	" " कृ० ३०	" " ३० मं०

बङ्गाल में ऋषि दयानन्द के चार मास

[महर्षि दयानन्द बङ्गाल में ५ महीने तक रहे थे। इस अवसर पर आदिब्रह्मसमाज के प्रचारक श्री हेमचन्द्र चक्रवर्ती प्रायः निरन्तर उनके पास रहे। वे अपनी डायरी में महर्षि के विषय में कुछ लिखते रहे। आदिब्रह्म समाज में पुराने कागजों में पड़ी उनके हाथ की लिखी हुई डायरी पर सहसा आचार्य क्षितीन्द्र मोहन ठाकुर की दृष्टि पड़ गई। वह डायरी उन्होंने पं० दीनबन्धु जी को दिखाई। उन्होंने इस डायरी की प्रतिलिपि कर ली और उसका अनुवाद श्री स्व० स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज ने किया है। इसमें ऋषि दयानन्द का चार मास का मितिवार वृत्त विद्यमान है—सम्पादक।]

१६ दिसम्बर सन् १८७२

काशी में शास्त्रार्थ जीतने वाले दयानन्द सरस्वती भागलपुर से कलकत्ता पहुँचे। बैरिस्टर चन्द्रशेखर सेन, पं० सत्यव्रत सामश्रमी, बैरिस्टर उमेशचन्द्र वन्द्योपाध्याय आदि कईयों ने "पथरियाघाट" के राजभवन में संन्यासी के भोजन और निवास का प्रबन्ध किया।

टिप्पणी—बै० चन्द्रशेखर सेन ब्रह्मसमाज के नेता थे। आप काशी शास्त्रार्थ के समय वहाँ उपस्थित थे। पं० सत्यव्रत सामश्रमी "बङ्गाल एशियाटिक सोसायटी" के वेदज्ञ पण्डित थे। आप काशी शास्त्रार्थ के उभयवादी सम्मत लेखक थे।

१७ से २० दिसम्बर १८७२

दयानन्द संन्यासी के देखने के लिये 'नाईनान' में जनता का आश्चर्यजनक समूह एकत्र हुआ। उनके साथ बात-चीत करने का अवसर नहीं मिला।

† पं० देवेन्द्रनाथ सं० जीवनचरित के अनुसार २८ मार्च को अजमेर पहुँचने और २९ को १२ बजे की गाड़ी से रवाना होने का उल्लेख है (पृष्ठ ६९३,६९४), परन्तु वह अशुद्ध है। पूर्ण संख्या ५२१ के पत्र में ऋ० द० ने ज्येष्ठ वदी ६ = २८ मार्च के पत्र में "कल (= २७ मार्च) संध्या के समय में अजमेर पहुँच गये', ऐसा स्पष्ट लिखा है और उसी दिन आधी रात की गाड़ी से पाली जाने का निर्देश किया है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

२१ दिसम्बर १८७२

संन्यासी के साथ विचार विमर्श का अवसर मिला। मैं सन्तुष्ट हो गया। केशवचन्द्र सेन को भी देखा।

२२ दिसम्बर १८७२

द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर, समुद्रनाथ ठाकुर और त्रिदेव भट्टाचार्य के साथ मैं संन्यासी से मिला। यज्ञोपवीत, वर्णभेद, यज्ञ, आत्मा और छः दर्शनों के विषय में अगणित प्रश्नों के उत्तर प्राप्त किये। आत्मा सन्तुष्ट हुआ।

टि०—द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के बड़े पुत्र और समुन्द्र (?) उनके तीसरे पुत्र थे।

२३ से २८ दिसम्बर १८७२

ब्रह्मसमाज के कार्य में व्यस्त रहने के कारण संन्यासी के दर्शन नहीं कर पाया।

२९ दिसम्बर १८७२

संन्यासी से नये रूप में उपनिषद् की व्याख्या सुनी। केशवचन्द्र सेन के साथ उनका प्रेम हो गया है। आपने ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की बात पूछी।

३० से ३१ दिसम्बर १८७२

नाईनान मैं नहीं जा सका। मैंने सुना कि अक्षयकुमार दत्त और राजनारायण वासु ने इन दो दिनों में वेद और होम की आलोचना की थी।

टि०—अक्षयकुमार दत्त ब्रह्मसमाज की पत्रिका "तत्वबोधिनी" के सम्पादक थे। राजनारायण वासु योगी अरविन्द के नाना और ब्रह्मसमाज के नेता थे।

१ जनवरी १८७३

केशवचन्द्र सेन ने दयानन्द सरस्वती को साथ लेकर कलकत्ते के विभिन्न स्थानों का भ्रमण किया।

टि०—केशवचन्द्र सेन नई ब्रह्मसमाज के प्रवर्तक थे।

२ जनवरी १८७३

संन्यासी के पास मैं ने उपनिषद् पढ़ना आरम्भ किया। कृष्णदास पाल ने 'नाईनान' में संन्यासी का दर्शन किया और वार्तालाप किया। वेदविद्यालय की स्थापना के विचार पर कृष्णदास पाल ने प्रसन्नता प्रकट की।

टि०—कृष्णदास पाल कलकत्ता नगरपालिका के सदस्य और वायसराय के मण्डल (कैबिनेट) के सदस्य थे।

३ जनवरी १८७३

केशवचन्द्र सेन के साथ संन्यासी का ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के 'बदोड़ा बागान' में स्थित घर पर आगमन। विधवाविवाह, नियोग, बालविवाह जातपात, वृद्धविवाह के विषय में दोनों में विचार विनिमय। विद्यासागर रुग्ण थे। संन्यासी के वेदविद्यालय स्थापित करने के विचार पर प्रसन्नता प्रकाश।

४ जनवरी १८७३

राजा राजेन्द्रनाथ मलिक के मकान पर केशव सेन के द्वारा वेदविद्यालय की स्थापना के लिये बैठक बुलायी गयी। महाराज जितेन्द्रनाथ ठाकुर, उत्तरपाड़ा के जमींदार जयकृष्ण मुखोपाध्याय, कृष्णदास पाल, द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, केशवचन्द्र सेन, भूदेव मुखोपाध्याय आदि बैठक में उपस्थित थे। निर्णय हुआ कि यदि संस्कृत कालेज में वेद पढ़ाना सम्भव न हो तो पृथक् विद्यालय स्थापित किया जाय।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

५ जनवरी १८७३

संन्यासी ने मुझे यम नियम का उपदेश किया और लघु प्राणायाम की विधि सिखायी। केशवचन्द्र और राजा राजेन्द्रलाल मित्र ने संन्यासी के दर्शन किये। आर्य जाति के प्राचीन इतिहास के विषय में राजेन्द्रलाल की बातचीत हुई।

टि०—सर जितेन्द्रनाथ ठाकुर सी० एस० आई वायसराय की कौंसिल के सदस्य थे। जयकृष्ण मुखोपाध्याय उत्तर पाड़ा (हुगली) के जमींदार थे। भूदेव मुखोपाध्याय 'एजूकेशन गजट' के प्रबन्धक और गवर्नर की कौंसिल के सदस्य थे।

८ जनवरी १८७३

संन्यासी से योग विद्या का उपदेश लिया। राजनारायण वसु, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और रामतनु लाहरी नाईनान में उनसे मिले। वार्तालाप भी हुआ। ईश्वरचन्द्र जी के साथ समाज संस्कार के विषय में विचार विमर्श हुआ। संन्यासी ने ईश्वरचन्द्र पर बङ्गाल में वेद प्रचार करने के लिये बल दिया। "इस जन्म में और नहीं होगा, अगले जन्म में देखा जायेगा"—ईश्वरचन्द्र ने यह उत्तर दिया। रामतनु लाहरी ने प्राचीन शिक्षा और पाश्चात्य शिक्षा की तुलना की।

टि०—रामतनु लाहरी समाज सुधारक ईश्वरचन्द्र के मित्र थे।

९ जनवरी १८७३

केशवचन्द्र सेन के मकान 'लिली काटेज' में संन्यासी दयानन्द का संस्कृत में भाषण सम्भ्रान्त व्यक्तियों ने सुना और वे अत्यन्त प्रभावित हुवे। राजनारायण वासु ने संन्यासी को 'हिन्दु धर्म की श्रेष्ठता' नाम की एक पुस्तक भेंट की और उस पुस्तक के कुछ सन्दर्भ उनको हिन्दी में सुनाये गये। लिली काटेज में आने से पहले आपने 'एशियाटिक म्यूजियम' (एशियायी संग्रहालय) देखा और वेद, उपनिषद् के कई खण्ड उन्होंने खरीदे[1]।

१० जनवरी १८७३

संन्यासी के निर्देशानुसार मैंने मौनव्रत धारण किया। रमेशचन्द्र दत्त आई० सी० एस० और उमेशचन्द्र मित्र वकील ने उनके साथ मिल कर वेदभाष्य और भारत के प्राचीन इतिहास के विषय में बातचीत की। रमेशचन्द्र दत्त संन्यासी के वेद विषयक ज्ञान को देख कर आश्चर्यचकित रह गये।

टि०—रमेशचन्द्र दत्त आई० सी० एस० विभिन्न जिलों के मैजिस्ट्रेट, तत्पश्चात् उड़ीसा के कमिश्नर और बड़ोदा राज्य के वित्तमन्त्री रहे थे। रामायण का अंग्रेजी और ऋग्वेद का बङ्गला में अनुवाद किया था। उमेशचन्द्र मित्र हाईकोर्ट के रीडर थे।

११ से १८ जनवरी १८७३

संन्यासी के आदेशानुसार पुनः आठ दिन के लिये मौन व्रत धारण किया गया। प्रतिदिन ब्रह्ममुहूर्त में आप योग विद्या की शिक्षा देते थे। मैंने देखा कि कई दिन में सूर्यकान्त आचार्य चौधरी, रजनीकान्त गुप्त, यतीन्द्रमोहन ठाकुर, डा० महेन्द्रलाल सरकार, प्रतापचन्द्र मजूमदार, द्वारकानाथ गङ्गोली, गङ्गाधर कविराज आदि प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने आपके दर्शन किये।

टि०—महाराज सूर्यकान्त चौधरी जिला मैमन सिंह के जमींदार थे। रजनीकान्त गुप्त साहित्यिक व्यक्ति थे। "पाणिनि विचार" और "आर्य कीर्त्ति" इत्यादि पुस्तकों के प्रणेता थे। डा० महेन्द्रलाल सरकार "साइंटिफिक सोसाइटी" (वैज्ञानिक समाज) के प्रवर्त्तक, विश्वविद्यालय के फैलो, प्रान्तीय राज्यसभा के सदस्य थे। प्रतापचन्द्र

---

१. पता नहीं ये महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ श्रीमती परोपकारिणी सभा के पुस्तकालय में सुरक्षित हैं, अथवा नष्ट हो गये। ऋषि दयानन्द के निर्वाण-काल में कौन कौन से ग्रन्थ उनके पास विद्यमान थे, इसकी सूची हम अगले परिशिष्ट संख्या ७ में दे रहे हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मजूमदार शिकागो की "रिलीजस सोसाइटी" (धार्मिक समाज) में आप ब्रह्म-समाज के प्रतिनिधि रह चुके थे। द्वारकानाथ गङ्गोली ब्रह्मसमाज के नेता, स्त्रीशिक्षा के समर्थक, "हिन्दु महवा सभा" और "भारत सभा" के प्रतिष्ठित सदस्य थे। गङ्गाधर कविराज मुग्धबोध व्याकरण और चरक संहिता के अनुवादक थे।

१९ से २१ जनवरी १८७३

ब्रह्मसमाज के उत्सव में सम्मिलित रहा। २१ जनवरी को महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के बुलावे पर मैं दयानन्द संन्यासी को साथ लेकर द्विजेन्द्रनाथ के जोलासां के राजभवन में गया। ब्रह्मसमाज के सब नेता वहाँ उपस्थित थे। ब्रह्मसमाज और वेद के विषय में सब के साथ संन्यासी का विचार विनिमय हुआ। देवेन्द्रनाथ के पुत्रों के मुख से वेद मन्त्र सुन कर आप प्रसन्न हुवे। आप से राजभवन में ठहरने के लिये आग्रह किया गया, परन्तु आपने स्वीकार नहीं किया।

टि०—महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर—प्रिंस द्वारकानाथ ठाकुर बड़े पुत्र—आदि ब्रह्म समाज के नेता।

२२ से ३० जनवरी १८७३

संन्यासी ने मुझे एकान्त में योगाभ्यास के लिये कहा। इसलिये मैंने "बहाला" की एक निर्जन झोपड़ी में नौ दिन तक डेरा लगाया। उन दिनों गुरुदेव के सत्सङ्ग से मैं वञ्चित रहा। मैंने सुना—ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, राजनारायण वासु, अक्षयकुमार दत्त, केशवचन्द्र आदि इनके साथ विचारविमर्श और बातचीत के लिये गये थे।

३१ जनवरी १८७३

गुरुदेव संन्यासी दयानन्द ने मुर्शिदाबाद को प्रस्थान किया। साथ उनके एक परिचित भक्त गया।

१ से २१ फरवरी १८७३

संन्यासी दयानन्द ने बालूचा में किसी परिचित व्यक्ति के बाग में एकान्त में वास किया। कलकत्ता की जनता से पृथक् रह कर कुछ दिन विश्राम करना ही उनका मुख्य उद्देश्य था।

२२ फरवरी १८७३

स्वामी दयानन्द सरस्वती का कलकत्ते में पुनरागमन तथा विश्राम।

२३ फरवरी १८७३

गोराचान्द दत्त के घर पर संन्यासी का "ईश्वर और धर्म" के विषय पर व्याख्यान हुवा। केशवसेन सभापति थे। बहुत से प्रतिष्ठित व्यक्ति उपस्थित थे। संस्कृत कालेज के बहुत से विद्यार्थियों को साथ लेकर महेशचन्द्र न्यायरत्न सभा में सम्मिलित हुवे। संन्यासी के संस्कृत व्याख्यान का हिन्दी अनुवाद सुनाया। विद्यार्थियों ने आपत्ति की कि अनुवाद में गड़बड़ी की जा रही है। न्यायरत्न अप्रसन्न होकर बाहर चले गये।

२४ से २८ फरवरी १८७३

केशवचन्द्र सेन के कल्लू टोला वाले मकान में, ब्रह्मसमाज में, महालय में, खिदरपुर में और शीपुर में केशवचन्द्र सेन के प्रयत्नों से संन्यासी का व्याख्यान और धर्मचर्चा।

१ से ११ मार्च १८७३

योगसाधना के लिये बहाला में एकान्तवास। स्वामी जी के साथ कलकत्ते के अनेक लब्धप्रतिष्ठ व्यक्तियों का विचारविनिमय-विमर्श।

१३ मार्च १८७३

लक्ष्मीनारायण गोस्वामी के साथ स्वामी जी की नवद्वीप में उपस्थिति।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

१४ मार्च १८७३

१५ को नवद्वीप बाजार में और १६ को गङ्गातीर में सभा हुई। झूठा प्रचार हुआ कि मैक्समूलर साहब संन्यासी के वेश में नवद्वीप के लोगों को ईसाई बनाने के लिये आये हैं। सैकड़ों हजारों की संख्या में स्त्री पुरुष उनको देखने के लिये टूट पड़े। लक्ष्मीनारायण लोगों के सामने लज्जित हो गया। शास्त्रार्थ के लिये आगे नहीं आया। नवद्वीप में जाकर स्वामी जी से मिला।

१९ से २१ मार्च १८७३

स्वामी जी को साथ लेकर वराह नगर में वापसी।

२२ से ३१ मार्च १८७३

स्वामी जी एकान्त में ग्रन्थ रचना[1] में संलग्न रहे। अवकाश के समय उनका उपदेश हुआ।

१ अप्रेल १८७३

दयानन्द का वराह नगर छोड़ना और भूदेव मुखोपाध्याय के साथ हुगली में स्थित वृन्दावन चिदामण्डल के बाग में भोजन और निवास का प्रबन्ध। रिवरण्ड (पादरी) लाल बिहारी के साथ स्वामी जी के प्रश्नोत्तर। पादरी की पराजय।

२ से ५ अप्रेल १८७३

हुगली में उनको देखने के लिये सभा, उपदेश और प्रश्नोत्तर।

६ अप्रेल १८७३

वृन्दा बाबू के मकान पर स्वामी जी का संस्कृत में भाषण। अक्षयचन्द्र सरकार, भूदेव मुखोपाध्याय और भटपली के पण्डित संस्कृत व्याख्यान सुनकर अत्यन्त प्रभावित हुवे।

७–८ अप्रेल १८७३

८ अप्रेल को भटपली के पण्डित ताराचरण तर्करत्न के साथ मूर्त्तिपूजा के विषय पर शास्त्रार्थ। ताराचरण की पराजय।

९ अप्रेल १८७३

मुखोपाध्याय के साथ हुगली के विभिन्न स्थानों पर स्वामी जी का धर्मोपदेश।

१३ अप्रेल १८७३

स्वामी जी की बरद्वान में उपस्थिति। राजा बनवारी कपूर ने राजभवन में भोजन और निवास का प्रबन्ध किया।

१४–१५ अप्रेल १८७३

बरद्वान राजभवन में स्वामी जी का उपदेश। भारी समारोह। राजा बहादुर की धर्मोपदेश में सविधि उपस्थिति, परन्तु उपेक्षा।

१६ अप्रेल १८७३

स्वामी जी का बरद्वान से भागलपुर को प्रस्थान।

*** इति श्रीपण्डितमहेशप्रसाद-मौलवी-आलिम-फाजिल-संकलितं युधिष्ठिरमीमांसकेन संशोधितं परिबृंहितं टिप्पणीभिः समलंकृतं च षष्ठं परिशिष्टं समाप्तम् ***

---

१. ऋषि दयानन्द इन दिनों किस ग्रन्थ की रचना में संलग्न रहे, यह ज्ञात नहीं हो सका। इन दिनों किसी ग्रन्थ लिखने का वर्णन जीवन चरितों में उपलब्ध नहीं होता।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

परिशिष्ट (७)

ऋषि दयानन्द के निर्वाण के समय विद्यमान पुस्तकों की सूची

ऋषि दयानन्द के निर्वाण के समय उनके पास किन किन पुस्तकों का संग्रह था और वह कहाँ कहाँ रक्खी हुई थीं, इसका एक लेखा श्रीमती परोपकारिणी सभा के तात्कालिक उपमन्त्री श्री पं० मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्या ने तैयार कराकर सन् १८८५ के सभा के अधिवेशन में आवेदन-पत्र के रूप में उपस्थित किया था। वह सं० १९४२ सन् १८८५ में वैदिक यन्त्रालय में छप कर प्रकाशित हुआ था। उसकी हमने सन् १९४४ में प्रतिलिपि की थी। उसके अनुसार हम ऋषि दयानन्द के द्वारा छोड़ी गई पुस्तकों की सूची नीचे दे रहे हैं।

आवेदन पत्र के मुख्य पृष्ठ पर निम्न लेख है—

वार्षिक आवेदन

पण्डित श्री मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्या
उपमन्त्री श्रीमती परोपकारिणी सभा निवेदित

श्रीमद्दयानन्दस्वामीकृत स्वीकारपत्र संबन्धिनी
श्रीमती परोपकारिणी सभा कार्यालय उदयपुर

ता० ६ दिसम्बर सन् १८८५ ई०

इस आवेदन पत्र के पृष्ठ २ पर निम्न लेख छपा है—

(१) पुस्तकों की एक फैरिस्त इसके साथ पेश करता हूँ कि जिसपर (क) चिह्न है यह सब पुस्तकें मेरे पास उदयपुर में धरी हैं और इसी के साथ दूसरी पुस्तकों की एक फैरिस्त (ख) चिह्न की जो मुंशी समर्थदान जी ने मेरे पास भेजी है पेश करता हूँ उसमें लिखी सब पुस्तकें वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में हैं।

(क) पुस्तकों की फैरिस्त जो उदयपुर में उपस्थित हैं[1]

सं०	नाम वेष्टन	पुस्तक का नाम	अजमेर के संभाले के अनुसार	उदयपुर के संभाले के अनुसार	वृत्तान्त
१	वेष्टन १ ऋग्वेद	ऋग्वेद संहिता मूल जिल्द १ छपी	१		प्रयाग भेजे गये
२	विषयक पुस्तकानि	,, ,, पदपाठ जिल्द १ छपी	१		तथा
३		ऋग्वेद सभाष्य जिल्द २ छपी भाग ३ और ४ या २	२		,,
४		वेदार्थयत्न पुस्तक १ छपी अंक १	१		,,
५	वेष्टन २ यजुर्वेद	संहिता मूल १ छपी	१		,,
६	विषयक पुस्तकानि	यजुर्वेद संहिता पदपाठ पुस्तक १ लिखी	१		,,

1. यह फैरिस्त आवेदन पत्र के पृष्ठ ७–१६ तक छपी है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सं०	नाम वेष्टन	पुस्तक का नाम	अजमेर के संभाले के अनुसार	उदयपुर के संभाले के अनुसार	वृत्तान्त
७		यजुर्वेद संहिता सभाष्य पुस्तक १ छपी	१		तथा
८		यजुर्वेद अनुक्रमणिका पुस्तक १ लिखी	१		"
९	वेष्टन ३ सामवेद	सामवेद संहिता मूल पुस्तक १ छपी	१		"
१०	विषयक पुस्तकानि	" " " " " लिखी हुई	१		"
११	वेष्टन ४ अथर्ववेद	" " " पदपाठ लिखित	१		"
१२	विषयक पुस्तकानि	अथर्ववेद संहिता मूल पुस्तक २ छपी	२		"
१३		† " " " पदपाठ आठवें काण्ड तक लिखित	१		"
१४		† अथर्ववेद की अनुक्रमणिका पुस्तक १ लिखित		१	"
१५		† अथर्ववेद संहिता मूल पुस्तक १ प्राचीन लिखित सं० १८४१ की पण्डित मोहनलाल जी विष्णुलाल जी पण्ड्या को भेंट करी हुई		१	"
१६		† अथर्ववेद संहिता मूल पुस्तक १ प्राचीन १३ काण्ड से १७ काण्ड तक सं० १८२२ की लिखित पण्डित मोहनलाल जी विष्णुलाल जी पण्ड्या को भेंट करी हुई		१	"
१७		† अथर्ववेद संहिता मूल पुस्तक १ प्रथम काण्ड से ६ काण्ड के २७ सूक्त के पहिले मन्त्र तक पण्डित मोहनलाल जी विष्णुलाल जी पण्ड्या को भेंट करी हुई		१	"
१८		† अथर्ववेद संहिता मूल ११ वें काण्ड से १९ काण्ड तक प्राचीन पण्डित मोहनलाल जी विष्णुलाल जी पण्ड्या को भेंट करी हुई		१	"
१९		† अथर्ववेद संहिता मूल पदपाठ १ दूसरे काण्ड के पहिले सूक्त के चौथे मन्त्र से चौथे काण्ड के पन्दरहवें सूक्त के दूसरे मन्त्र तक प्राचीन पण्डित मोहनलाल जी विष्णुलाल जी पण्ड्या को भेंट करी हुई।		१	"

† राथ और ह्विटनी ने शौनकीय अथर्वसंहिता का सम्पादन सन् १८५६ (सं० १९१३) में किया था। सम्भवतः उसके पाठ में ऋषि दयानन्द को कुछ सन्देह था। अतः उन्होंने सन् १८८२ के उत्तरार्ध में बम्बई आर्य-समाज के मन्त्री श्री सेवकलाल कृष्णदास को अथर्ववेद की टीका, ऋषि, छन्द और मूल ग्रन्थ की हस्तलिखित पुस्तक ढूंढने के लिये लिखा था। इसका निर्देश सेवकलाल कृष्णदास के २० जनवरी सन् १८८३ के पत्र में मिलता है। (देखो श्री म० मुशीराम सं० पत्रव्यव० पृष्ठ २६९, २७०) इसके लिये सेवकलाल कृष्णदास ने प्रयत्न भी किया था। अतः सम्भव है, अथर्ववेद के उक्त हस्तलिखित ग्रन्थ सेवकलाल कृष्णदास के सहयोग से श्री स्वामी जी ने प्राप्त किये होंगे (जैनियों के भी बहुत से हस्तलिखित ग्रन्थ सेवकलाल कृष्णदास ने ही संग्रह करके ऋ० द० को भेजे थे।)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सं०	नाम वेष्टन	पुस्तक का नाम	अजमेर के संभाले के अनुसार	उदयपुर के संभाले के अनुसार	वृत्तान्त
२०	वेष्टन ५ ब्राह्मण	शतपथ ब्राह्मण १ छपी	१		प्रयाग भेजे
२१	पुस्तकानि	ऐतरेय ब्राह्मण १ छपी	१		"
२२		आर्षेय ब्राह्मण १ छपी	१		"
२३		तथा तथा १ लिखित	१		"
२४		संहितोपनिषद् ब्राह्मण १ छपी	१		
२५		वंशब्राह्मण १ छपी	१		"
२६		षड्विंशब्राह्मण १ छपी	१		
२७		कौषीतकी ब्राह्मण १ छपी	१		
२८		गोपथ ब्राह्मण १ छपी	१		
२९	वेष्टन ६ वेदाङ्ग	वेदाङ्ग की पुस्तक १ प्राचीन लिखित सं० १६६२ जिसमें शिक्षादि	१		
३०	पुस्तकानि	अष्टाध्यायी की पुस्तक १ लिखित सं १६६२	१		
३१		निरुक्त पुस्तक १ प्राचीन लिखित सं० १६६२	१		
३२		तथा एक तथा सं० १७९९	१		
३३		तथा तथा १ सभाष्य १ छपी कलकत्ते की अंक ६	१		
३४		निघण्टु मूल पुस्तक १ प्राचीन लिखित सं० १८५३	१		
३५		निघण्टु और निरुक्त की पुस्तक १ छपी	१		प्रयाग भेजे
३६		पाणिनीय शिक्षा सभाष्य १ छपी	१		
३७		अष्टाध्यायी मूल १ छपी	१		
३८		तथा तथा १ काशिका सहित छपी २	१		
३९		तथा तथा १ छपी	१		
४०		धातुपाठ मूल १ लिखित सं० १९२७	१		
४१		उणादिपाठ १ लिखित	१		
४२		तथा तथा सवृत्ति १ छपी	१		
४३		पाणिनीय लिङ्गानुशासन १ छपी	१		
४४		वार्तिकपाठ सभाष्य १ स्वामी जी का बड़े भाष्य से छंटाया लिखी	१		
४५		पिङ्गलसूत्र सभाष्य १ छपी	१		
४६		परिभाषेन्दुशेखर १ छपी	१		

अथर्ववेद के इन हस्तलेखों में से एक भी हस्तलेख श्रीमती परोपकारिणी सभा के संग्रह में विद्यमान नहीं है। आवेदन पत्र में इन हस्तलेखों के विषय में "पण्डित मोहनलाल जी विष्णुलाल जी पण्ड्या को भेंट करी हुई" लेख कुछ सन्देह प्रकट करता है कि कहीं पण्ड्या जी ने इन्हें दबाने के लिये ही ये शब्द नहीं लिख दिए ? सेवकलाल कृष्णदास ने राथ ह्विटनी द्वारा प्रकाशित अथर्ववेद की प्रतिलिपि सन् १८८४ में लीथो प्रेस में छपवाई थी।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सं०	नाम वेष्टन	पुस्तक का नाम	अजमेर के संभाले के अनुसार	उदयपुर के संभाले के अनुसार	वृत्तान्त
४७		महाभाष्य कैयटविवरण सहित भाग ५ छपी	१		प्रयाग भेजी
४८		चरणव्यूह १ लिखी	१		
४९		कात्यायन प्रातिशाख्य १ छपी	१		
५०		सोपसर्ग धात्वादर्श पुस्तक १ छपी	१		
५१	वेष्टन ७ षट्शास्त्र	न्यायदर्शन सभाष्य १ छपी	१		
५२	पुस्तकानि	वैशेषिक दर्शन १ छपी	१		
५३		वैशेषिक प्रशस्तपादभाष्य १ लिखी	१		
५४		पूर्वमीमांसा दर्शन १ छपी	१		
५५		उत्तरमीमांसा १ छपी	१		
५६		तथा तथा अंक १ छपी	१		
५७		सांख्यदर्शन १ छपी सूत्र	१		
५८		वेदान्त सभाष्य १ छपी	१		
५९		योग पातञ्जल सभाष्य १ छपी	१		
६०		वेदान्त तत्त्वसार रामानुज कृत १ लिखित	१		
६१		सर्वदर्शन संग्रह १ छपी	१		
६२		षड्दर्शन चिन्तामणिका अंक	१		
६३	वेष्टन ८ उपनिषद्	ईशावास्यादिक उपनिषद् सभाष्य १ छपी	१		
६४	पुस्तकानि	मैत्र्युपनिषद् १ छपी	१		
६५		छान्दोग्य उपनिषद् १ छपी	१		प्रयाग भेजे
६६		मन्त्रोपनिषद् पाठ मूल १ लिखित	१		
६७		तैत्तिरीय आरण्यक १ छपी	१		प्रयाग भेजे
६८	वेष्टन ९ धर्मशास्त्र	मनुस्मृति भाषाटीका सहित १ छपी	१		
६९	पुस्तकानि	तथा मूल १ छपी	१		
७०		शुक्रनीति १ छपी	१		
७१		संन्यास पद्धति १ लिखित	१		
७२		संस्कारविधि गुजराती टीका सहित १ छपी	१		प्रयाग भेज
७३		मनुस्मृति के उपयोगी श्लोकों का संग्रह १ पुस्तक १ लिखी	१		
७४		विदुर प्रजागर के उपयोगी श्लोकों का संग्रह पुस्तक १ लिखी	१		
७५		अग्निहोत्र १ लिखी			प्रयाग भेजी
७६	वेष्टन १० कोश	अमरकोश भाषाटीका सहित १ छपी	१		,, ,,
७७	पुस्तकानि	नानार्थाभिधान कोश १	१		
७८	वेष्टन ११ वैद्यक	अमृतसागर १ छपी	१		
७९	पुस्तकानि	वैद्यक कोश १ छपी	१		

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सं० नाम वेष्टन	पुस्तक का नाम	अजमेर के संभाले के अनुसार	उदयपुर के संभाले के अनुसार	वृत्तान्त
८०	निघण्टुभाषा १ छपी			
	नाडीतत्त्व बोधिनी १ छपी	२		
८१	ओषधियों का यादीपत्र—स्वामी जी के लिखे हुए †	१		
८२ वेष्टन १२ कुरान	कुरान अरबी भाषा का १ छपी	१		प्रयाग भेजी
८३ पुस्तकानि	तथा हिन्दीभाषा में अनुवाद स्वामी जी का बनाया हुआ लिखी ‡	१		प्रयाग भेजी
८४ वेष्टन १३ ईसाई	बाईबल जिल्द ३	१		
८५ मतकी	भट्टमोक्षमूलर कृत अंग्रेजी में ऋग्वेदभाष्य	१		
८६	तथा तथा कृत व्याख्यान अंग्रेजी	१		
८७ वेष्टन १४ जैनीमत	जिनपूजा संग्रह १ छपी	१		
८८ की पुस्तकें	रत्नसार भाग १ छपी	१		
८९	विवेकसार १ छपी	१		
९०	जैनप्रभाकर १ छपी	१		
९१	कल्पभाष्य १ छपी	१		
९२	तत्त्वविवेक १ छपी	१		
९३	श्राद्धदिन कृत्य १, छपी पार्श्वजिनवर महिमन स्तोत्र १	२		
९४	प्राकृत भाषा का संस्कृत शब्दों के साथ अनुवाद		१	
	अस्तव्यस्त स्वामी जी का बनाया, लिखित पुस्तक		१	
९५	जैन फुटकर श्लोकों का संग्रह स्वामी जी कृत लिखी		१	
९६ वेष्टन १५ पदार्थ	रामस्नेही मत गुटका १ लिखी	१		
९७ विद्यादि विषयक	चन्द्रालोक काव्य १ संस्कृत छपी	१		
९८ सर्वभाषा के पुस्तक	भोजप्रबन्ध १ छपी	१		
९९	पदार्थविद्या की पुस्तक १ हिन्दी छपी	१		
१००	भूविद्या की पुस्तक हिन्दी १ छपी	१		
१०१	प्रार्थनासमाज की प्रार्थनादि पुस्तक ३ छपी	१		
१०२	ब्राह्मसमाज की पुस्तक १ छपी			
१०३	दयानन्द दिग्वजयार्क अंक ३ छपी		१	
१०४	अहिंसाधर्मप्रकाश १ छपी	१		
			१	

† सम्भव है ऋ० द० का लिखा हुआ ओषधियों का यह यादी-पत्र वही होगा, जो हमने पूर्ण संख्या ६०० पर ३४ ओषधियों का खरड़ा छापा है।

‡ इसके विषय में विशेष देखिए हमारा 'ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास' पृष्ठ १९२–१९४ तथा 'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन' पूर्ण संख्या १६४ का पत्र तथा पृष्ठ १४१ की टिप्पणी २।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सं०	नाम वेष्टन	पुस्तक का नाम	अजमेर के संभाले के अनुसार	उदयपुर के संभाले के अनुसार	वृत्तान्त
		भाषाभास्कर १ हिन्दी छपी		१	
१०५		इतिहासतिमिरनाशक खण्ड ३ के ७ छपी		१	
१०६		नीलदेवी १ छपी		१	
१०७		कुटुम्बवत्सल १ छपी		१	
१०८		विजयनीविजयवैजयन्ती १ छपी		१	
१०९		भारत जननी १ छपी		१	
११०		गोमहिमा १ छपी		१	
१११		दुःखिनी बाला १ छपी		१	
११२		स्वामी जी कृत ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका उर्दू अनुवाद †	१		
११३		वेदविरुद्धमतखण्डन		१	
११४		दयानन्द सरस्वती मुखचपेटका १ जैनियों की		१	
११५		थियोसोफिकल सोसाइटी के दोषों का स्वामी जी का उत्तर ‡		१	
११६		अंग्रेजी में आर्य प्रश्नोत्तर १ छपी		१	
११७		चारों वेदों का अकारादि क्रम से सूची ‖ १ लिखी	१		
११८	वेष्टन १६ दयानन्द स्वामी सरस्वती कृत सर्व-	ऋग्वेद सूचीपत्र १ लिखी	१		
११९		अथर्ववेद के मन्त्रों का सूची १ लिखी	१		
१२०	सूचीपत्र	उपनिषदों की सूची १ लिखी	१		
१२१		अकारादि क्रम से चार वेद और ब्राह्मणों की सूची ९ लिखी	९		
१२२		ऐतरेय ब्राह्मण की सूची १	१		
१२३		शतपथब्राह्मण की सूची १	१		
१२४					

† इसके विषय में विशेष देखिए "ऋ० द० के ग्रन्थों का इतिहास" पृष्ठ १००, १०१। तथा म०मुंशीराम जी सं० पत्रव्यवहार पृष्ठ ३०५।

‡ सम्भव है, यह उत्तर वही विशिष्ट विज्ञापन हो जो ऋषि दयानन्द ने "थियोसोफिष्टों की गोलमाल पोलपाल" नाम से बम्बई में छपवाया था। वह इसी पत्र-व्यवहार में पूर्ण संख्या ४०० पृष्ठ २१९–३२३ पर छपा है।

‖ यह वही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है, जिसमें ऋषि दयानन्द ने वेदभाष्य का आरम्भ करने से पूर्व चारों वेदों का पूर्ण मन्थन करके सूक्त-अध्याय-मन्त्र के अनुसार चारों वेदों के विषयों का संकलन किया है। ऋषि दयानन्द द्वारा रचे गए चतुर्विध भाष्य में से यह प्रथम कोटि का अति संक्षिप्त भाष्य चारों वेदों का उपलब्ध है। श्रीमती परोपकारिणी सभा की कार्यकारिणी ने २३–३–५७ की मीटिङ्ग में इतने महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का कुछ भी मूल्याङ्कन न करके इसे 'न छापने' का अविवेकपूर्ण निश्चय किया है। भगवान् सभा के अधिकारियों को सुमति प्रदान करें जिससे वह ऋषि का यह ऐतिहासिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ तथा अगली अन्य उपयोगी सूचियाँ प्रकाशित करके ऋषि लेखों को सुरक्षित करें।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सं०	नाम वेष्टन	पुस्तक का नाम	अजमेर के संभाले के अनुसार	उदयपुर के संभाले के अनुसार	वृत्तान्त
१२५		निरुक्त सूची	३		
१२६		निरुक्त और शतपथ अमूल (?) सूची	१		
१२७		निघण्टु सूची ३	३		
१२८		धातुपाठ सूची २ अकारादि क्रम से	२		
१२९		उणादि सूची २	२		
१३०		वार्तिक सूची ३	३		
१३१		ऋग्वेद के विषयों की यादी के लिये सूची २	३	१	
१३२		कुरान की सूची १		१	
१३३		बाइबल की सूची १		१	
१३४		जैनियों की सूची १		१	
१३५	वेष्टन १७ स्वामी	ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका			
१३६	जी कृत और	ऋग्वेदभाष्य ३ अंक १ + ४८ + ५० + ५१ तक		१	
१३७	मुद्रित पुस्तकें	यजुर्वेदभाष्य पुस्तक ३ अंक १ + ४८ + ५० + ५१ तक		१	
१३८		सत्यार्थप्रकाश पुराने छापे का			
१३९		वेदाङ्गप्रकाश व्यवहारभानु	१		
१४०		तथा सन्धिविषय	१		
१४१		तथा नामिक	१		
१४२		तथा कारकीय	१		
१४३		तथा सामासिक	१		
१४४		तथा स्त्रैणतद्धित १	१		
१४५		तथा अव्ययार्थ	१		
१४६		तथा आख्यातिक	१		
१४७		तथा सौवर	१		
१४८		तथा पारिभाषिक	१		
१४९		तथा गणपाठ	१		
१५०		सन्ध्योपासनादि ¹	१		
१५१		पञ्चमहायज्ञविधि	१		
१५२		वेदान्तिध्वान्तनिवारण	१		
१५३		आर्योद्देश्यरत्नमाला	१	१	
		गोकरुणानिधि	१	१	
		भ्रमोच्छेदन	१	१	
		अनुभ्रमोच्छेदन	१	१	
		काशी शास्त्रार्थ	१	१	
		महेशचन्द्र न्यायरत्न के किये वेदभाष्य पर			

¹ यह सं १९३१ की छपी पंचमहायज्ञविधि है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

	दोषों का उत्तर❀	१	१
वेष्टन १८	श्री स्वामी जी कृत ऋग्वेद और यजुर्वेद भाष्य का अशुद्ध लेख + अर्थात् संस्कृत शोधकर भाषा बनाने का	१	प्रयाग भेजा
वेष्टन १९	श्री स्वामी जी कृत ऋग्वेद और यजुर्वेद भाष्य का शुद्ध ÷ लेख भाषा सहित छापने योग्य	१	तथा
वेष्टन २० छोटा	श्री स्वामी जी कृत ऋग्वेदभाष्य भाषा सहित, इसकी शुद्ध प्रति लिखी जाकर वेष्टन संख्या १९ में रखनी चाहिये और इसी में संस्कारविधि के पत्रे हैं अर्थात् उनकी शुद्ध प्रति करके छपवानी होगी	१	तथा
वेष्टन २१	ऋग्वेद यजुर्वेद सौवर पारिभाषिक उणादि कुछेक अष्टाध्यायी की संख्या और संस्कारविधि के रद्दी कागज	१	तथा
वेष्टन २२	स्वामी जी कृत और मुद्रित विक्री पुस्तक की फैरिस्त	१	
वेष्टन २३	मूल्य सहित जुदी है जिसमें हिसाब की बही ४ और नोटबुक २		
वेष्टन २४	गोरक्षार्थ हस्ताक्षरी पत्र विना छाँटे बहुत गड़बड़ §	१	

ह० मोहनलाल विष्णुलाल पण्डया
उपमन्त्री

(ख) श्री स्वामी जी महाराज की पुस्तकें जो वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में हैं जिसकी फैरिस्त❀

संख्या	नाम पुस्तक	संख्या पुस्तक	संख्या	नाम पुस्तक	संख्या पुस्तक
१	महाभारत सम्पूर्ण जिल्द ४ में	१	११	इङ्गलेण्डीय व्याकरण भाग २	२
१	तथा सूची जिल्द ४ में	१	१२	भिक्षुक	१
३	सामवेद संहिता ३७ जिल्द × में	१	१३	जातिभेद	१
४	शतपथ ब्राह्मण लिखा	१	१४	धातुरूपावली	१
५	विक्रमोर्वशी नाटक	१	१५	शब्दरूपावली	१
६	रेखागणित भाग २	२	१६	गणपाठ	१
७	बीजगणित जिल्द १	१	१७	वार्तिकपाठ	१
८	क्षेत्रमिति	१	१८	परिभाषापाठ	१
९	पाटीगणित भाग ९	४	१९	गुरुमुखी की पुस्तक	१
१०	ऐतरेय ब्राह्मण	१	२०	कविरहस्य	१

❀ अर्थात् 'भ्रान्तिनिवारण' नामक पुस्तक।

+ 'अशुद्ध लेख' का अर्थ है पाण्डुलिपि (रफ कापी), यही अर्थ आगे ही स्पष्ट कर दिया है और यही अर्थ ब्र० रामानन्द के पत्र में प्रयुक्त 'अशुद्ध संस्कृत' का है। देखो ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास परिशिष्ट १ पृ० ६॥

÷ 'शुद्ध' का अर्थ है मुद्रणयोग्य प्रतिलिपि (प्रेसकापी)। यही अर्थ आगे स्पष्ट कर दिया है।

§ यदि ये पत्रे सुरक्षित रहते तो इनसे ऋ० द० के गोरक्षा संबन्धी महान् कार्यपर अद्भुत प्रकाश पड़ता। परोपकारिणी सभा को पुराने कागजों के ढेर में इन्हें ढुंढवाना चाहिए।

❀ यह फैरिस्त आवेदन पत्र के पृष्ठ १७–१८ तक छपी है।

× यहां जिल्द से अभिप्राय है खण्ड से, यह ऐशियाटिक सोसाइटी बंगाल से सौ सौ पृष्ठों के खण्डों में छपा था।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

संख्या	नाम पुस्तक	संख्या पुस्तक
२१	सन्मार्गदर्शन	१
२२	षड्दर्शनचिन्तनिका	२
२३	बृहदारण्यक भाष्य	१
२४	धर्मरक्षा	१
२५	मसीह इवन अल्लाह	१
२६	दीनहक की इतफाल	१
२७	रिसाले पादास इसलाम	१
२८	सत्यनिरूपण	१
२९	तोफेतुल इसलाम	१
३०	शलभसूत्र +	१
३१	बाइबल अंग्रेजी	१
३२	हैईलीज ग्रामर बड़ी	१
३३	,, ,, छोटी	१
३४	मथुराप्रसाद की डिक्सनरी अंग्रेजी	१
३५	गुरुतेग बहादुरसिंह का वृत्तान्त	१
३६	ऐतरेय ब्राह्मण अंग्रेजी में भाग	१
३७	ऋग्वेदसंहिता अंग्रेजी में भाग ४	१
३८	❀,,	
३९	सैक्रेट एन्थालोजी	१
४०	वेदोक्तधर्मप्रकाश	१
४१	सर्वशास्त्र का सूचीपत्र	१
४२	व्यामोहविद्रावण	१

संख्या	नाम पुस्तक	संख्या पुस्तक
४३	जागदीशी	१
४४	दीधिती जागदीशी की व्याख्या	१
४५	विषयवाद	१
४६	मुक्तावली आदि	१
४७	न्यायपदार्थ तत्व	१
४८	सुश्रुत भाग ३	३
४९	चरकसंहिता खण्डित	१
५०	गोभिलसूत्र	१
५१	प्रतिष्ठामयूख	१
५२	मेदिनीकोश	१
५३	वेदार्थयत्न अंक ७०	७०
५४	सूचीपत्र	१
५५	वेदमन्त्र सूचीपत्र	१
५६	भाषाभा (?)	१
५७	सिद्धान्त	१
५८	प्रकरणरत्नाकर भाग १ छपा	१
५९	प्राकृत बालभाषा व्याकरण १ छपा	१
६०	पिण्डनिर्युक्तवृत्ति लिखी	
६१	भगवतीसूत्रवृत्ति लिखी	१
६२	आवश्यकनिर्युक्तिटीका छपी	१
६३	संस्कृत बाइबल छपी	१

ह० मोहनलाल विष्णुलाल पण्डया
उपमन्त्री

इति युधिष्ठिर-मीमांसकसंकलितं
सप्तमं परिशिष्टं समाप्तम् ॥

+ सम्भवतः शुल्व सूत्र ?

❀ प्रतिलिपि करते समय नाम लिखना रह गया। यु० मी०।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

परिशिष्ट (८)

ऋषिदयानन्दसरस्वती के पत्र और विज्ञापन में स्मृत कतिपय व्यक्तियों का संक्षिप्त परिचय

[लेखक—राजपूताने के प्रसिद्ध इतिहासज्ञ श्री० ठा० जगदीशसिंह जी गहलोत, अध्यक्ष पुरातत्त्व विभाग, जयपुर राजस्थान]

ऋषिदयानन्द के पत्र और विज्ञापन में स्मृत व्यक्ति

संख्या नाम	पृष्ठ
१—राजा जय कृष्णदास	२३
२—महात्मा कालूराम योगी	४०
३—कर्नल आल्काट और मेडम-ब्लेवेस्तकी	९०
४—पं० श्याम जी कृष्ण वर्मा एम. ए. बैरिस्टर	९३
५—मनीषी समर्थदान बारहट	११४
६—राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द	१८५
७—पं० भीमसेन शर्मा (इटावा)	२०३
८—राय बहादुर मूलराज एम० ए०	२११
९—कविराज श्यामलदास महामहोपाध्याय	३०७
१०—राजाधिराज नाहरसिंह, (शाहपुरा)	३१६
११—ठा० नन्दकिशोरसिंह मेंबर स्टेट कौंसिल जयपुर	३२३
१२—राव बहादुरसिंह (मसूदा-अजमेर)	३५७
१३—महाराणा सज्जनसिंह (उदयपुर)	३६९
१४—मोहन लाल विष्णु लाल पण्ड्या	३९७
१५—बारहट किशनसिंह	३९९
१६—फतेह करण उज्ज्वल	३९९
१७—रावराज तेजसिंह (जोधपुर)	४१०
१८—महाराजा सर प्रतापसिंह (जोधपुर)	४१०
१९—मुंशी दामोदर दास	४१०
२०—महाराजा जसवन्तसिंह (जोधपुर)	४४३
२१—नन्हीं भगतन (जोधपुर)	४६४
२२—मेहता विजयसिंह	४६४
२३—गणेश पुरी	४६५
२४—कविवर अमरदान	४७७
२५—झालावाड़ नरेश	४७४
२६—लोंग साहब	४७४

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

१—राजा जयकृष्णदास सी. एस. आई.

ये मुरादाबाद के माथुर चतुर्वेदी (चोबे) ब्राह्मण थे। आपने बिजनौर और मुरादाबाद में डिप्टी कलेक्टर के पद पर काफी समय तक काम किया। ये ऋषि दयानन्द के परमभक्त थे। इन्होंने ही ऋषि के सिद्धान्तों को पुस्तक रूप "सत्यार्थप्रकाश" नाम से तैयार करा कर निज व्यय से सन् १८७५ ई० में प्रथमवार काशी में छपवाया था। ये बड़े उदार व दानी सज्जन थे। आगरा कालेज और अलीगढ़ के महामेडन कालेज को टूटने से इन्होंने बचाया था। इनके पौत्र आनरेबल राजा सर जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी के० सी० एस० आई०, आई० सी० एस०, हैं जो पहले वाईसराय की कोसिल के सदस्य थे ॥

२—महात्मा कालूराम योगी

ये जयपुर राज्य के ठिकाने सीकर के रामगढ स्थान के गौड़ ब्राह्मण थे। इनका जन्म सं० १८९३ वि० ज्येष्ठ बदी ६ शुक्रवार (६ मई १८३६ ई०) को और देहांत सं० १९५७ ज्येष्ठ सु० १० (ता० ७-६-१९०० ई०) को हुआ। ऋष दयानन्द से इनका पत्र व्यवहार वि० सं० १९३३ से था। इनके उपदेश से ही शेखावाटी मे वैदिक धर्म का प्रचार हुआ तथा रामगढ में वार्षिक धर्म मेला इनके स्थान पर भरने लगा जो आज तक चालू है। ऋषि के समय में ही रामगढ में आर्य समाज स्थापित हो गया। ऐसे ही महात्मा कालूरामजी के उपदेश से ही वि० सं० १९३८ चैत्र सुदी २ गुरुवार (३१ मार्च १८८१ ई०) को जयपुर (राजपूताना) में "वेदधर्म सभा" (आर्य समाज) स्थापित हुई ॥

३—कर्नल आल्काट तथा मैडम ब्लेवेस्तकी

इनका जन्म अमेरिका के आरेज नगर में ई० सन् १८३२ में हुआ। आप वहाँ कृषि विभाग के अफसर थे। फिर वकालत शुरू की। उसी समय रूसी महिला काउन्टेस मेडम ब्लैवैटस्की से उनकी भेंट हो गई। दोनों ने मिलकर करामात की चर्चा फैलाई कि वे स्वर्ग से चीजें मँगा देते हैं और भूत प्रेत उनके हाथ में है। वहाँ न्यूयार्क शहर में इन्होंने ८ सितम्बर १८७५ ई० को अपने नये मत "थियोसौफिकल सोसाईटी" की नींव डाली और आर्य्यसमाज से अपना सम्बन्ध जोड़ने व ऋषि दयानन्द के दर्शनार्थ १६-२-१८७९ ई० को भारत में आये। इनकी संस्था को आर्य समाज की शाखा घोषित करने के कुछ दिन बाद जब दयानन्द को ज्ञात हुआ कि ये ईश्वर को नहीं मानते हैं, और झाड़े जपटे की बातें भी इनमें हैं, तब इनसे कोई सम्बन्ध न रक्खा। तब सन् १८८२ ई० में इस युगल जोड़ी ने मदरास के अडियार स्थान में थियोसौफिकल सोसाईटी की इमारत बनवाई। १८९१ ई० मे मेडम ब्लैवैटस्की मर गई। कर्नल अल्काट भी १७ फरवरी १९०७ ई० को इस संसार से चल बसे। कर्नल के शव का अग्नि संस्कार हुआ। भस्मी आधी तो समुद्र में डाली व आधी काशी में गंगा में प्रवाहित हुई। यह बात हिन्दू धर्मानुकूल हुई। इन्होंने ३१ वर्ष में अपनी सभा की लगभग १ हजार शाखाएं खोलीं ॥

४—पंडित श्यामजी कृष्ण वर्म्मा

इनका जन्म सौराष्ट्र (काठियावाड़) के कच्छ भुज राज्य के मांडवी नामक गाँव में वि० सं० १९१४ कार्तिक बदी २ सोमवार (५ अक्टूबर १८५७ ई०) को गुजरात की भंसाली जाति में हुआ था। यह भंसाली जाति अधिकांश में खेतीबाड़ी तथा मेहनत मजदूरी करती है और अपने को सूर्यवंशी क्षत्रिय वंश से बताती है। सन् १८७४ ई० के अक्टूबर में श्याम जी का बम्बई की भाटिया धर्मशाला में ऋषि दयानन्द सरस्वती से प्रथमवार साक्षात्कार हुआ। ऋष ऐसे कुशाग्र बुद्धि मेधावी बालक को देखकर बड़े प्रसन्न हुए और उसकी संस्कृत शिक्षा का विशेष प्रबन्ध कर दिया और सन् १८७५ ई० में ऋषि की कृपा से श्याम जी जैसे निर्धन अनाथ व्यक्ति का विवाह सेठ छबीलदास (लल्लुभाई) द्वारकादास भंसाली की पुत्री कुमारी भानुमती से हो गया। श्यामजी ऋषि के साथ काफी समय तक रहे। जिससे इनके राजनीतिक विचारों को नई प्रेरणा मिली और इन्होंने देश की आवाज को विदेशों तक पहुँचाने

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

का दृढ़ निश्चय कर मार्च सन् १८७९ के अंतिम सप्ताह में ये विलायत को रवाना हो गये। बाद में ऋषि की कृपा से कच्छभुज राज्य से श्याम जी को छात्रवृत्ति भी मिल गई। श्याम जी जैसे देशभक्त को लन्दन भेजना और भारतीय स्वाधीनता के आन्दोलन का नया रूप छेड़ना उनकी अपूर्व सूझ का परिचायक है। वहाँ से आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी में संस्कृत प्रोफेसर हो गये और साथ ही अंग्रेजी की उच्च शिक्षा पाते रहे। जिससे ये आक्सफार्ड के प्रथम भारतीय पोस्ट ग्रेजुवेट (एम० ए०) बने। सन् १८८५ ई० में ये बैरिस्टर होकर भारत लौटे। फिर रतलाम (मालवा), उदयपुर (मेवाड़) और जूनागढ़ (काठियावाड़) राज्यों में कई वर्ष तक प्रधान मंत्री (दीवान) रहे। सन् १८९७ में प्लेग कमिश्नर श्री रैण्ड का हत्या बालकृष्ण छायंकर द्वारा पूना में हो गई। इस सम्बन्ध में श्याम जी को अपने पकड़े जाने का समाचार भी सम्भवतः मिला। पुलिस को इन पर संदेह था। इससे वे मय धर्मपत्नी के पुनः लण्डन को चले गये और वहाँ भारतीय स्वतंत्रता का कार्य शुरू कर दिया। ८ दिसम्बर १९०४ ई० को श्याम जी ने प्रसिद्ध भारत हितैषी फिलास्फर हर्बर्ट स्पेनसर व ऋषि दयानन्द की स्मृति में दो दो हजार की ६ छात्रवृत्तियें अपने निजी धन से तथा ऐसी ही तीन छात्र वृत्तियें अपने मित्र पेरिस प्रवासी देशभक्त श्री सरदार सिंह राणा (धर्मपुर राज्य) की ओर से "राणा प्रताप" छत्रपति शिवाजी और एक किसी मुसलमान नरेश के नाम से योग्य भारतीयों को विदेश भ्रमण के लिये देने की घोषणा की। इन छात्रवृत्तियों के सहारे श्याम जी ने लन्दन में कुछ रंगरूट जमा कर लिये। उनमें विनायक सावरकर, लाला हंसराज, भाई परमानन्द, सेनापति बापट मुख्य थे। सन् १९०५ की १८ फरवरी को श्यामजी ने लण्डन में "इण्डिया होमरूल सोसायटी" (भारत स्वराज्य सभा) स्थापित की और सभा की मुख्य मासिक पत्रिका "इण्डियन सोशियालोजिस्ट" का जनवरी १९०५ ई० से प्रकाशन शुरू किया। और उसका मूल्य एक आना मासिक रखा। यही नहीं भारती विद्यार्थियों के रहने के लिये १ लाख रुपया से "इण्डिया हाउस" नामक भवन स्थापित किया। ये इण्डिया हाउस सन् १९०६–७ ई० में विद्रोहियों का नामी केन्द्र बन गया। सन् १९०८ की १० मई को प्रथम भारतीय स्वतन्त्रता युद्ध (सन् १८५७ ई०) को पूरे ५० वर्ष हो रहे थे। गर्मागर्म खबर थी कि भारत में पंजाब केसरी लाला लाजपतराय १ लाख आर्य समाजियों की सेना संगठित कर गदर (विद्रोह) की वर्षी मनायेंगे। इन सब कारणों से लाला जी को तथा सरदार अजीतसिंह (अमर शहीद भगतसिंह के चाचा) को भारत सरकार ने माण्डले दुर्ग में बन्द कर दिया। इससे इंग्लैण्ड के नेता बौखला गये और सावरकर ने लण्डन के इण्डिया हाउस (भारत भवन) में बड़ी धूमधाम से सत्तावन के गदर का पचास वर्षीय उत्सव मनाया। इन क्रान्तिकारियों के नेता श्री श्याम जी ने वहाँ बड़े २ कष्ट उठाये और आयु भर निर्वासित ही रहे। इनकी मृत्यु स्विटजरलैण्ड के जिनेवा नगर में ३१ मार्च १९३० को हुई।

याद रहे कि स्वराज्य शब्द का उच्चारण सर्व प्रथम कांग्रेस के रंगमंच से दादाभाई नौरोजी ने दिसम्बर १९०६ में कलकत्ता में किया था और लोकमान्य तिलक ने २२ जुलाई १९०८ ई० को "स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है" की घोषणा की थी। परन्तु ऋषि दयानन्द के शिष्य श्यामजी ने "स्वराज्य" का बिगुल इनसे पहले ही बजा दिया था।

५—मनीषी समर्थदान

ये सिढायच गोत्र के चारण थे और जयपुर राज्य के ठिकाने (जागीर) सीकर के नेठवा गाँव में इनका जन्म हुआ था। इनके पिता का नाम मंगलदान था। ये उर्दू, फारसी, हिन्दी, संस्कृत और कुछ अंग्रेजी भी जानते थे। लगभग वि० सं० १९३५ में ये ऋषि दयानन्द सरस्वती के संसर्ग में आये। ऋषि के साथ ये उनके वैदिक यंत्रालय (प्रेस) के प्रबन्धकर्त्ता होकर काशी, प्रयाग, बम्बई और अजमेर में रहे। ऋषि ने इन्हें धार्मिक, निष्कपटी, सच्चा, उद्योगी, परिश्रमी, चतुर, सभ्य, सुशील और चाल चलन का बहुत अच्छा और श्रेष्ठ लिखा है। ऋषि की मृत्यु के पश्चात् ये अजमेर में बस गये। और दौलतबाग के पास एक सुन्दर स्थान में भवन बनाकर इन्होंने "राजस्थान यंत्रालय" (प्रेस) और सं० १९४५ वि० के फागुण में "राजस्थान समाचार" नामक साप्ताहिक पत्र सफेद चिकने

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

चौपेज रायल साइज के १२ पृष्ठों में हिन्दी में शुरू किया जो हर गुरुवार को छपता था। और उसका वार्षिक मूल्य रक्खा था केवल ३॥) रु०। राजपूताना प्रांत में उच्चभावों का यह प्रथम ही पत्र था। वह कई बातों में अपने ढंग का एक ही था। इससे धीरे-धीरे इनका मान और प्रभाव खूब बढ़ा। जोधपुर के प्रधानमंत्री लेफ्टिनेन्ट जेनरल महाराजा सर प्रतापसिंह, उदयपुर व बीकानेर के नरेश तथा अनेक जागीरदार इनका आदर करते और इनकी सम्मतियों पर ध्यान देते थे। चीफ कमिश्नर व ए० जी० जी० आदि उच्च अधिकारी मिलते और इनसे परामर्श लेते। सं० १९५९ वि० में महाराजा काश्मीर ने इन्हें अपना पोलपात (प्रतोलीपात्र = प्रधान दान-अधिकारी चारण) बनाया और कविराज उपाधि व पैर में पहनने को सोने का कड़ा (देशी राज्यों में ताजीम का चिह्न) दिया। बाद में ये पत्र अर्द्ध साप्ताहिक हो गया। ८ फरवरी १९०४ ई० को जब रूस जापान युद्ध छिड़ा तब यह "दैनिक" हो गया। सच कहा जाय तो हिन्दी का पहला व्यवसाय यही दैनिक था। १९ मास के युद्ध के बाद घाटे के कारण यह साप्ताहिक होकर सिस्का और सन् १९०७ में सदा के लिये बुझ गया।

इन्होंने कई पुस्तकें स्वयं लिखीं और बहुत सी प्रकाशित कीं। उन्हें लाख रुपये के व्यय से कई भागों में भारतवर्ष का विस्तृत इतिहास निकालने का बड़ा उत्साह था। संवत् १९४० के बाद में इन्होंने मुंशी के स्थान में अपनी उपाधि "मनीषी" कर ली थी। इनके अंतिम दिन बड़े निराशात्मक थे। माता और पत्नी मर चुकी थी। साथ ही तंदरुस्ती भी गिर गई। घर में केवल ८ वर्ष की एक अबोध कन्या थी। मुकदमे और ऋण के बादल शिर पर मंडरा रहे थे। पचास वर्ष की आयु में तीस वर्ष के कार्यभार से थके दिमाग को संस्कृत के द्वारा शास्त्रीय वैद्यक के पढ़ने में लगाना इन्हीं की प्रतिभा का काम था। इन्होंने चरक, सुश्रुत पढ़ा और वैद्यक से जीवन निर्वाह का उपाय निकाला। चतुर वैद्य बन गये पर दशा न सुधरी। अन्त में खटिया पर पड़ गये और १७ जून १९१४ ई० को अजमेर में कोई ५६ वर्ष की आयु में इनका जीवन समाप्त हुआ। राजनीति, समाजनीति के ये बड़े ज्ञाता और बड़े अच्छे सलाहकार थे॥

६—राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द

इनके पूर्वज दिल्ली में जौहरी थे। नादिरशाह के समय वे मुर्शिदाबाद (बंगाल) में जा बसे। परन्तु बाद में काशी में आ गये। राजा साहब का जन्म मारवाडी ओसवाल वैश्य जाति के गोखरू गोत्र में वि० सं० १८८० की माघ सुदी २ को हुआ। शिक्षा समाप्त कर चुकने पर ये मामा की सहायता से भरतपुर (राजपूताना) राज्य में नौकर हो गये। वहाँ जाते ही आपने सर्वप्रथम स्टेट के दीवान जानी बैजनाथ को, जो कि महाराजा बलवंतसिंह को अपने हाथ की कठपुतली बनाकर राज्यपर अपना पूर्ण प्रभुत्व जमाए हुए था, अंग्रेज सरकार की राय से ८० कायस्थों सहित जेल भिजवाया और राजा को स्वतन्त्र किया। इससे महाराजा ने इन्हें अपना राज-वकील नियुक्त किया। सं० १९०२ वि० में इन्होंने काशी से "बनारस अखबार" नाम से हिन्दी साप्ताहिक भी निकलवाया। इसी वर्ष इन्होंने अंग्रेज सरकार की फौजी सेवा स्वीकार की। बाद में काशी में ही कमिश्नर के मीरमुंशी हो गये। परन्तु विद्या-रसिक होने से सरकार ने इन्हें स्कूलों का इन्स्पेक्टर नियत कर दिया। इन्होंने कोई ३५ पुस्तकें हिन्दी व अंग्रेजी में लिखीं। ये भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के विद्यागुरु थे। सन् १८७२ में उन्हें व्यक्तिगत रूप से सी० एस० आई० (सितारे हिन्द) की और सन् १८८७ ई० में वंशपरम्परा के लिये "राजा" की उपाधि मिली। इनका देहान्त २३ मई सन् १८९५ ई० को काशी में हुआ॥

७—पण्डित भीमसेन शर्मा

इनका जन्म सं० १९११ कार्तिक सुदी ५ को हुआ। इनकी शिक्षा १७ वर्ष की आयु में सं० १९२९ वि० से ऋषि दयानन्द की स्थापित पाठशाला फर्रुखाबाद में हुई। बाद में ऋषि ने इन्हें २५) रु० मासिक पर अपने लेखन कार्य में लगा दिया। ऋषि की मृत्यु पश्चात् सं० १९४२ वि० में इन्होंने प्रयाग से "आर्य्य सिद्धान्त" नामक मासिक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पत्र निकाला और वि० सं० १९५२ में अपना प्रेस अपने घर इटावा ले आये। इन्होंने आर्यसमाज की वि० सं० १९५५ तक बड़ी सेवा की। परन्तु बाद में चुरू (बीकानेर) के सेठ माधवप्रसाद खेमका (कलकत्ता) ने पांच हजार रुपये के संकल्प से इनसे बृहद् यज्ञ कराना चाहा। यहाँ यज्ञ विषयक मतभेद होकर आर्यसमाज ने इनका बहिष्कार कर दिया तब ये सनातन-धर्म-सभा में जुट गये। सं० १९७२ ई० (वि० सं० १९५९) से ये "ब्राह्मण सर्वस्व" नाम का मासिक पत्र प्रकाशित करने लगे। जुलाई १९१२ ई० से सन् १९१७ ई० तक इन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय में २५०) रु० मासिक पर "वेद व्याख्याता" पद पर कार्य किया। सं० १९७४ चैत्र बदि १२ को ६४ वर्ष की आयु में इनका देहांत हुआ॥

८—रायबहादुर लाला मूलराज एम. ए.

इनका देहांत १ जून १९४५ ई० की रात को लाहौर में ९२ वर्ष की आयु में हुआ। आर्यसमाज के संगठन और उसके प्रारम्भिक विकास में इनका योग बड़े महत्व का और अत्यधिक साहसपूर्ण था। ऋषि दयानन्द इनका जैसे-जैसे अधिक आदर करते गये मूलराजजी की प्रतिष्ठा लाहौर के आर्यसमाज में वैसे-वैसे बढ़ती गई। ये पंजाब में एसिस्टेन्ट कमिश्नर आदि कई उच्च पदों पर रहे। ऋषि की मृत्यु के बाद ये लाहौर समाज के प्रधान हो गये। इस मानवृद्धि ने उनके अनेक विरोधी भी उत्पन्न कर दिये। उनके द्वेषियों ने उनके विरुद्ध जो अफवाहें उड़ाई और जैसी-जैसी झूठी कहानियाँ गढ़ीं उनका ज्यादा उल्लेख करना व्यर्थ है, लेकिन यह कहना काफी होगा कि उन पर "पंजाब सरकार के हाथ का औजार" आदि होने तक का दोष लगाया गया था। "बंगभंग" (सन् १९०४ ई०) की घटना के १०-१५ साल पूर्व ही जो कोई उनसे मिलने जाता था उसे वे पंजाब के ही बुने स्वदेशी वस्त्र पहनने का उपदेश देते थे॥

९—कविराजा श्यामलदास

इनका जन्म वि० सं० १८९३ द्वि० आषाढ़ बदि ७ को चारण जाति के दधवाडिया गोत्र में हुआ। ये संस्कृत, हिन्दी व राजस्थानी भाषा के बड़े विद्वान् थे। इन्हें उदयपुर महाराणा साहब से सं० १९३५ पौष सुदि २ को "कविराज" तथा अंग्रेज सरकार से "महामहोपाध्याय" की पदवी १ जनवरी १८८८ (वि० सं० १९४५) को मिली। इन्होंने "वीर विनोद" नाम से उदयपुर राज्य का बृहद् इतिहास कोई ३ हजार पृष्ठों में सं० १९४३ वि० में सम्पादन किया। इनका देहान्त वि० सं० १९५१ ज्येष्ठ बदि ३० को उदयपुर (मेवाड़) में हुआ॥

१०—राजाधिराज सर नाहरसिंह के० सी० आई० ई०

इनका जन्म सं० १९१२ वि० कार्तिक बदि १३ को ठिकाना धनोप के ठाकुर धीरतसिंह के यहाँ हुआ। शाहपुरा राज्य की गद्दी पर गोद आकर ये सं० १९२६ ज्येष्ठ सुदि १३ शनिवार को बैठे। इन्होंने ३ मास तक ऋषि दयानन्द से राजनीति व धर्म का उपदेश लिया था। इनका देहान्त ७८ वर्ष की आयु में सं० १९८९ आषाढ़ बदि ६ शुक्रवार के सुबह हुआ। इन्होंने ६२ वर्ष तक योग्यता से राज किया। इन्हें ९ तोप की सलामी वंशपरम्परागत और फांसी व आजन्म कैद करने के अधिकार थे॥

११—ठाकुर नन्दकिशोरसिंह

आपका शुभजन्म ३१ अगस्त सन् १८५६ तदनुसार वि० सं० १९१३ भादों सुदी १ रविवार को कासगंज (जिला एटा) यू० पी० के मोहन मौहल्ला के एक प्रतिष्ठित गौड़ राजपूत कुल में हुआ था। आपके पिता को जयपुर दरबार ने भारत गवर्नमेन्ट से माँग लिया था। इससे आपकी शिक्षा महाराजा कालेज जयपुर में हुई और सन् १८७९ ई० में इन्हें लार्ड नार्थब्रुक मेडल भी मिला। सन् १८८१ ई० में ये महाराजा पब्लिक लाइब्रेरी जयपुर (राजस्थान) के लाइब्रेरियन (पुस्तकाध्यक्ष) नियुक्त हुए और इन्हीं के उद्योग से ३१ मार्च १८८१ ई० (चैत्र सुदि २ सं० १९३८ वि०) को जयपुर में आर्यसमाज (वैदिक धर्म सभा) की स्थापना हुई। सन् १८८६ ई० में ये

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जयपुर रेजिडेन्सी में राजवकील, सन् १८८९ में स्टेटकौंसिल के सेक्रेटरी और सन् १९०५ ई० में स्टेट कौंसिल के न्यायमंत्री (जुडिशियल मेम्बर) नियुक्त हुए। इस प्रकार सन् १९२२ ई० तक वे कौंसिल के मेम्बर रहे। पश्चात् पेंशन ले ली। इनका देहांत २५ नवम्बर १९३४ ई० (मगसर बदि ४ सं० १९९१ वि०) रविवार को ७८ वर्ष की आयु में हो गया ॥

१२—राव बहादुरसिंह, मसूदा

ये अजमेर जिला के ठिकाने मसूदा के २६ गाँवों के इस्तमरारदार थे। इनके पूर्वज ठाकुर हनवंतसिंह राठोड़ मेड़तिया को यह जागीर सम्राट् अकबर से वीरता के सम्मान में मिला थी। ये आनरेरी मेजिस्ट्रेट व मुंसिफ थे और इन्हें सरकार की ओर से "राव" (१८७७ ई०) तथा सी० आई० ई० (१८९३ ई०) की उपाधियाँ मिली थी। इनका देहान्त १० जुलाई १९०३ ई० को हुआ ॥

१३—महाराणा सज्जनसिंह जी० सी० एस० आई०

इनका जन्म वि० सं० १९१६ आषाढ़ सुदि ९ को हुआ और उदयपुर मेवाड़ के राजसिंहासन पर सं० १९३१ आसोज बदि १३ को बैठे। इनका देहांत २५ वर्ष की आयु में सं० १९४१ पौष सुदि ६ को हुआ। यह महाराणा बड़े ही सुधारक, विद्यारसिक, मिलनसार और शान्तिप्रिय थे ॥

१४—पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या

इनके पूर्वज गुजरात से आकर दिल्ली में बसे और फिर मथुरा में। इनका जन्म सं० १९०७ अगहन बदि ३ मंगलवार को और देहांत ४ दिसम्बर १९१२ ई० को ६२ वर्ष की आयु में मथुरा में हुआ। सन् १८८७ ई० में इन्होंने उदयपुर-मेवाड़ राज्य में नौकरी कर ली। यहाँ कुछ समय तक सदर अदालत की दीवानी का काम किया और बाद में इन्हें स्टेट कौंसिल के मेम्बर और सेक्रेटरी का पद मिला। सन् १९०० ई० में ये प्रतापगढ़ (देवलिया) के दीवान हुए। वहां से पेन्शन लेकर मथुरा में जा रहे। इन्होंने १२ पुस्तकें रची। इन्हें इतिहास व पुरातत्व से बड़ा प्रेम था ॥

१५—बारहट किशनसिंह

ये शाहपुरा (राजस्थान) के बारहट सोदा अनाड़जी के पुत्र थे। इनका जन्म वि० सं० १९०६ फाल्गुन सुदि १ को चारण जाति में हुआ। ये उदयपुर के प्रसिद्ध इतिहासकार महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदास के सगे भानजे थे। ये बड़े राजनीतिज्ञ थे और राजा महाराजाओं में इनका बड़ा प्रभाव था। इन किसनजी बारहट के सुपुत्र राजस्थान केसरी श्री केसरीसिंह बारहट व जोरावरसिंह तथा पौत्र प्रतापसिंह राजपूताने के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी थे, जिन्होंने देश के लिये नानाप्रकार की यातनाएँ सही व बलि हुए ॥

१६—फतेहकर्ण उज्ज्वल उर्फ विजयकरण (जयकर्ण)

ये जोधपुर जिला के उजला गाँव के चारण नाथूराम सींढायच (उज्ज्वल) के तृतीय पुत्र थे। इनका जन्म वि० सं० १९०९ भादों बदि ८ को तथा निधन वि० सं० १९७८ वैशाख बदि २ को हुआ। यह बड़े कवि थे। ऋषि ने इनका नाम फतेहकर्ण के बजाय "विजयकर्ण" ("जयकर्ण") रक्खा था। ये महाराणा सज्जनसिंह के समय उदयपुर चले गये थे।

१७—रावराजा तेजसिंह

ये जोधपुर नरेश हिजहाईनेस महाराजा तख्तसिंह राठोड़ के अनौरस पुत्र थे। इनका जन्म वि० सं० १९१३ फाल्गुन बदि ७ (ता० १६-२-१८५७ ई०) को और देहांत १६ नवम्बर सन् १९२५ ई० को ६९ वर्ष की आयु में जोधपुर में हार्टफेल से हुआ। आप ऋषि दयानन्द व आर्य समाज के बड़े भक्त थे। जोधपुर राज्य में इन्होंने कई उच्च पदों पर कार्य किया था। इस समय इनके पौत्र रावराजा मोहनसिंह बी० ए०, एल० एल० बी० न्यायधीश हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

१८—लेफ्टिनेन्ट जेनरल हिजहाईनेस महाराजा सर प्रतापसिंह जी० सी० एस० आई०

ये जोधपुर नरेश हिजहाईनेस महाराजा तख्तसिंह बहादुर राठोड़ के तीसरे राजकुमार थे। इनका जन्म सं० १९०२ कार्तिक बदि ६ मंगलवार (२१-१०-१८४५ ई०) को हुआ। ये बड़े होनहार व वीर थे। सन् १८७६ से १९०२ तक ये जोधपुर राज्य के प्रधानमंत्री (मुसाहिब आला) रहे। पश्चात् ईडर (गुजरात) राज्य के हिजहाईनेस महाराजा हो गये। आपने अपनी आत्मकथा में ऋषि दयानन्द व आर्य समाज की बड़ी प्रशंसा की और यह भी कहा करते थे कि यदि मैं ऋषि के सत्संग के प्रभाव में सं० १९४० वि० में न आता तो मैं ईसाई हो जाता। आपके ही प्रयत्न से सं० १९४० की श्रावण बदि १० को जोधपुर नरेश की संरक्षकता में जोधपुर में आर्यसमाज की शाखा स्थापित हुई। और १२ अगस्त १८८३ ई० को भारत के देशी राज्यों में सबसे प्रथम हिन्दी (देवनागरी लिपि) को राजभाषा का स्थान दिया गया। ऐसे ही सं० १९४१ वि० ज्येष्ठ बदि ४ को आपने आर्डर जारी कर दिया कि सर्व राज कर्मचारी खादी ही पहना करें। इस आज्ञा का पालन उस समय प्रजा ने भी किया। फरवरी १८८८ ई० में जोधपुर राज्य के खर्च से आर्यसमाज का प्रचार करने के लिये आपने स्वामी भास्करानन्द (संयुक्तप्रान्त) को विलायत व अमेरिका भेजा। २३ अप्रेल सन् १९०५ ई० को सरप्रताप ने ही लाहौर के डी० ए० वी० कालेज के विशाल भवन की नींव रक्खी। ता० ४ सितम्बर १९२२ ई० को इनका देहांत ७७ वर्ष की आयु में जोधपुर में हो गया॥

१९—मुंशी दामोदरदास जोधपुर

ये नारनोलीये गांधी गोत्र के अग्रवाल वैश्य थे। ये राज्य में कानून मास्टर थे। इनके बड़े भाई बाबू घनश्यामदास जोधपुर रेल्वे के प्रसिद्ध ट्रेन-गार्ड थे। घनश्यामजी के पुत्र व पौत्र आज राजस्थान के प्रसिद्ध मोटर व्योपारी व धनामानी सेठ हैं। दामोदर जी का देहांत लगभग ६० वर्ष की आयु में सन् १९३२ ई० के करीब हुआ था॥

२०—महाराजा सर जसवंतसिंह जी० सी० एस० आई०

आप जोधपुर राज्य के हिजहाईनेस महाराजा थे और इनका जन्म वि० सं० १८९४ आश्विन सुदि ८ को हुआ तथा सं० १९२९ फाल्गुन सुदि ३ को जोधपुर के राजसिंहासन पर बैठे। ये बड़े उदारचित, मिलनसार और बुद्धिमान् नरेश थे। इन्होंने ही ऋषि दयानन्द को निमन्त्रित कर अपने यहाँ वैदिक धर्म का प्रचार कराया। यही नहीं वि० सं० १९४४ में राज्य के खर्चे से स्वामी भास्करानन्द सरस्वती को वेदप्रचारार्थ लंदन व अमेरिका भेजा। सं० १९५२ कार्तिक बदि ८ को इस नरेश का देहांत हुआ॥

२१—नन्ही भगतन

ऋषि दयानन्द के चरित्र सम्बन्धी अब तक की खोज करने वाले प्रत्येक चरित लेखक का यही विचार है कि इसी नन्ही भगतन (नन्हीजी) के षडयंत्र से ऋषि का परलोकवास हुआ। यह जोधपुर नरेश हिजहाईनेस महाराजा जसवंतसिंह बहादुर की रखेली थी। राजपूताने में 'भगतन" एक जाति का नाम है। इनकी उत्पत्ति रामावत साधुओं (वैष्णव) से कही जाती है। सं० १८२२ वि० में कई गृहस्थ रामावत साधुओं की कन्याओं ने गाना बजाना सीख कर वेश्या का धंधा शुरू किया था। कहावत है—"जाई कसब कमावैं और आई नहीं कमावे।" भगतनों की गणना भारत के अन्य प्रान्तों की तवायफों में है। जिस प्रकार पातुरों के पिता भाई "जागरी" कहलाते हैं और उनके विवाह सम्बन्ध दरोगा (विदुर) जाति में होते हैं उसी प्रकार भगतनों के पिता भाई "भगत" कहलाते हैं और गृहस्थ रामावत व निम्बावत साधु जाति में विवाह करते हैं। ये भगत लोग उनके साथ तबला, सारंगी बजाया करते हैं। ये मुसलमानों से भी सम्बन्ध रखती हैं किन्तु पातुरें मुसलमानों से संसर्ग नहीं करतीं। भगतनें मांस, मदिरा, शलगम, गाजर, कांदा (प्याज) और लहसुन से परहेज करती हैं।

नन्ही की माँ का नाम था "छोटी भगतन"। कहते हैं कि जब नन्ही २०-२१ वर्ष की थी तब उसको एक पुत्री हुई थी वह उस समय जुनागढ़ (काठियावाड़) राज्य के किसी मुसलमान शाहजादे के पास थी। जब ये

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

२२-२३ वर्ष की थी तब जोधपुर नरेश ने इसे अपने पास रख लिया। और अपनी मृत्यु पर्यन्त (सं० १९५२ वि०) तक रक्खा। वह पर्दा नहीं करती थी। उसके हुक्म नूरजहां की तरह जोधपुर में चलते थे। उसके शिर के बाल धोने में प्रतिबार १५००) रु० खर्च होते थे। कस्तूरी का भी काफी उपयोग होता था। इसकी मृत्यु के बाद में इसकी सब जायदाद राज्य में जब्त की गई तो ६०० जोड़े तो रेशमी जूतों के ही मिले। ८०० के करीब रेशमी घाघरे थे। और भी कई लाख का मूल्यवान सामान था। जो इधर उधर हो गया। पब्लिक नीलाम में राज्य में केवल १,०४,१३८॥)॥ रु० जमा हुए। उसमें से १ लाख रु० तो नई दिल्ली के लेडी हार्डिंग मेडिकल कालेज को दान में दिया और बाकी औसवाल जाति के सरदार हाई स्कूल को दे दिया। नन्ही ने जोधपुर शहर में एक विशाल देव मंदिर भी मेड़ती दरवाजा के बाहर बनवाया जिसकी प्रतिष्ठा सं० १९४२ पौष बदि ५ को हुई। इसका देहान्त २३ अगस्त सन् १९०९ ई० को ६०-६१ वर्ष की आयु में हुआ॥

२२—रायबहादुर मेहता विजयसिंह

इनका जन्म वि० सं० १८७३ पौष बदि ५ सोमवार को ओसवाल वैश्य जाति के मोहणोत गोत्र में हुआ और देहांत वि० सं० १९४९ भादों बदि १२ की रात को २ बजे जोधपुर में हुआ। आप किशनगढ़ राज्य से आकर सं० १८८७ वि० में जोधपुर राज्य की सेवा में नियुक्त हुए। आप कई पदों पर रहकर अंत में राज्य के अर्थमंत्री (देश दीवान) रहे। आप वैष्णव रामानुज सम्प्रदाय के थे।

२३—स्वामी गणेश पुरी

ये राजपूताने के प्रसिद्ध चारण कवि थे। और गाँव चारणवास (जि० मेड़ता मारवाड़) के बारहठ पातावत पदमजी जगरामोत के पुत्र थे। इनका नाम गुलाबदान (गुलजी) था परन्तु दसनामी (गुंसाईं) सन्यासी होने पर "गणेशपुरी" नाम रख लिया। इनका देहांत वि० सं०१९६६ के लगभग ७० वर्ष की आयु में हुआ॥

२४—कविवर ऊमरदान (अमरदान)

ये जोधपुर राज्य के परगना फलोधी के ग्राम ढाढरवाड़ा में वि० सं० १९०८ वैशाख सुदि २ शनिवार को जन्मे और सं० १९६० फाल्गुन सुदि १३ बुधवार को जोधपुर में परलोक बसे। इनकी राजस्थानी भाषा की कविता, सरस, सरल एवं चित्ताकर्षक थी। उनके "ऊमर काव्य" का राजपूताने में बड़ा आदर है और लोग उसे बड़े चाव व उत्साह के साथ पढ़ते हैं। ये बड़े निर्भीक सुधारवादी कवि थे॥

२५—झालावाड़ नरेश महाराज राणा जालिमसिंह

इनका जन्म ई० सन् १८६४ ता० १ जून को हुआ ये ११ वर्ष की आयु में दत्तकरुण झालावाड़ राज्य (राजपूताना) के उत्तराधिकारी नियत हुए। और २५ मार्च १८७६ ई० को मेयो कालेज अजमेर में भरती हुए। १९ वर्ष की आयु मे मार्च १८८३ ई० में कालेज छोड़ा और ई० सन् १९१२ की ८ अक्टूबर को काशी में इनका देहांत हुआ। मेयो कालेज में इनके गार्डियन व शिक्षक श्री लेंग साहब व कैप्टेन रंडल थे॥

२६—श्री जे० डब्लू० लेंग

ये १३ मास तक मेयोकालेज अजमेर के हेडमास्टर रह कर २० जुलाई १८७७ ई० को झालावाड़ नरेश हिज-हाईनेस महाराणा श्री जालिम सिंह झाला के मेयो कालेज ही में ट्यूटर व गार्डियन (अतालिक) नियुक्त हो गये। साढ़े तीन वर्ष तक उन्होंने यह कार्य किया और अप्रेल सन् १८८० ई० को ये हिजहाईनेस झालावाड़ के १७,०००) रु० नकद व २ हजार का गहना और १२०००) सेठ मूलचन्द सोनी व गणेशदास आदि साहूकारों का कर्ज लेकर अकेला रात को रेल में अजमेर से भाग गया। गोरे अफसरों ने उसका कोई पता नहीं बताया॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation Chennai

श्रीरामलाल कपूर ट्रस्ट अमृतसर का नया प्रकाशन

क्षीरतरङ्गिणी

पाणिनीय व्याकरण का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ
धातुपाठ की सबसे प्राचीन व्याख्या

धातुपाठ पर प्रसिद्ध वैयाकरण क्षीरस्वामी ने एक व्याख्या लिखी है, जिसका नाम है क्षीरतरङ्गिणी। धातुपाठ की यह व्याख्या सब से प्राचीन और महत्त्वपूर्ण है। इसमें यत्र तत्र अनेक प्राचीन वैयाकरण सम्प्रदायों के ऐसे मतों का उल्लेख है, जो अन्यत्र उपलब्ध ही नहीं होते। इसका सम्पादन करते हुए श्री पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक ने पाणिनि से प्राचीन काशकृत्स्न के धातुपाठ, उसकी कन्नड टीका तथा संस्कृत-व्याकरण के उपलब्ध वाङ्मय के आधार पर स्थान-स्थान पर अनेक महत्त्वपूर्ण टिप्पणियां दी हैं। इससे इसका महत्त्व और भी अधिक बढ़ गया है।

इसके आरम्भ में लगभग ४० पृष्ठों में धातुपाठ और उसकी विविध वृत्तियों का इतिहास दिया गया है।

इस ग्रन्थ को प्रथम बार नागराक्षरों में मुद्रित करने का श्रेय श्रीरामलालकपूर ट्रस्ट अमृतसर को ही है।

पुस्तक १८×२२ अठपेजी आकार के एण्टीक पेपर पर बम्बईया टाइप में छपी है। सजिल्द—मूल्य १२)

मिलने का पता—वेदवाणी कार्यालय—पो० अजमतगढ पैलेस—बनारस नं० ६

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट का उपयोगी प्रकाशन

ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन

सम्पादक—श्री पं० भगवद्दत्तजी रिसर्चस्कालर

ऋषि दयानन्द इस युग के आदि निर्माता थे। राष्ट्रभाषा के प्रचारक, संस्कृत-भाषा के उद्धारक, प्राचीन वैदिक संस्कृति, सभ्यता तथा स्वतन्त्रता की भावना के उद्बोधक थे। ऐसे महापुरुष के जीवन तथा कार्यों को ठीक रूप से समझने के लिये उनके पत्र कितने उपयोगी होंगे, यह बात प्रत्येक विवेकशील व्यक्ति समझ सकता है। इसी पवित्र उद्देश्य से श्री माननीय पं० भगवद्दत्त जी तथा उनके अनन्य सहयोगी श्री मामराज जी ने वर्षों के अनथक प्रयत्न से सैकड़ों पत्र और विज्ञापनों का अन्वेषण करके उन्हें संगृहीत किया है।

इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का, जिसमें ५०० पत्रों और विज्ञापनों का संग्रह था, प्रथम संस्करण ट्रस्ट ने सन् १९४५ के अन्त में प्रकाशित किया था। जिसकी लगभग ८०० प्रतियाँ देश विभाजन काल में लाहौर (पैसा अखबार) में भस्मसात् कर दी गईं।

अब पुनः बड़े प्रयत्न और महान् व्यय से इसका परिवर्धित तथा परिशोधित संस्करण प्रकाशित किया है। इस संस्करण में लगभग ३४४ नये विज्ञापन, पत्र, पत्रांश तथा पत्र-सूचनाएँ आदि बढ़ी हैं, और बहुत सी उपयोगी टिप्पणियाँ बढ़ी हैं। जिनसे अनेक विषयों पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। इस संस्करण में ऋषि दयानन्द का १ असली चित्र तथा उनके स्वहस्तलिखित पत्रों की ३ प्रतिकृति (फोटो) भी दी गई हैं। इन सबसे इस ग्रन्थ की उपादेयता बहुत बढ़ गई है। **इस संस्करण का सम्पादन पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक ने बड़े परिश्रम से किया है।**

सुन्दर छपाई, बढ़िया पूरे कपड़े की सुन्दर तथा सुदृढ़ जिल्द और अनेक चित्रों से अलंकृत बड़े आकार के लगभग ६०० पृष्ठों के ग्रन्थ का मूल्य केवल ७) मात्र रखा गया है।

वेदवाणी के ग्राहकों को विशेष सुविधा

जो महानुभाव वेदवाणी के ग्राहक हैं, उन्हें यह महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ ७) के बदले ६) रु० में दिया जायगा। वेदवाणी के ग्राहक अपनी ग्राहक-संख्या बताकर निम्न स्थानों से ६) रु० में प्राप्त कर सकते हैं।

श्री रामलाल कपूर एण्ड संस लि० पेपर मर्चेण्ट

नई सड़क देहली। गुरु बाजार अमृतसर। बिरहाना रोड कानपुर।

वेदवाणी कार्यालय, पोस्ट अजमतगढ़ पैलेस, वाराणसी नं० ६

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

minus 1

anga Mai—"Mother Ganga"—is the greatest river of India and the most sacred. Its banks e lined with wonderful temples and stately cities which have risen through the ages.

son why till about 100 years people believed that the nga rose in Tibet.

There is an interesting legend out Bhagirathi. Vishwamitra, Great Sage, was taking Ram Lakshman to Mithila to see dra's bow and while camping the banks of the Ganga he told em this story.

Bhagirath was one of Ram's cestors. He was childless and cursed by Kapilmuni, had to leave the ashes of family in Patala.

To overcome this he went into mountains to fast and do nance and at last was granted o boons by Brahma—the birth a son, and the descent of nga to wash away the ashes of ancestors from Patala. But he as warned that the earth would t be able to stand the force of Ganga; only Shiva could do t. So Bhagirath prayed to iva, who consented to receive nga on his head.

Grand Sight

Ganga became arrogant and ought she could sweep Shiva th her to Patala but Shiva imoned her in his matted locks d not a drop came out. Bhagith in alarm pleaded with Shiva release her. When Shiva felt had been punished enough for r pride, he let her out in seven ncle streams. Three flowed east d three west.

The seventh followed Bhagirath he raced in his chariot towards Washing over rocks, down d mountains, an hum- rvlet here, a mighty river ere, she tumbled through the n green fields of the plains." ere had never been such a sight fore. And the Devas watched grand sight of Bhagirath's en chariot followed by the venly Ganga.

During the course of her descent, Ganga accidentally upset the Yagna platform of the rishi Jahnu. Annoyed, he took her up in his palm and drank her up. Bhagirath was alarmed and begged Jahnu to release her, which he did through his right ear. Because she came out of the sage's body, Ganga is also known as Jahnvi.

There were no further obstructions and Ganga reached Patala and washed away the sins of Bhagirath's ancestors.

The sun had set as Vishwamitra's tale ended. The river looked calm and golden as she caught the last rays of the sun. Ram and Lakshman bathed in the river brought down by their ancestor and offered their evening prayers.

Legends are stories of early times, usually of heroic deeds. But we must now leave Vishwamitra and rejoin the river. But before we do so perhaps you would like to know about the two young St. Stephen's College boys who set out on a raft from Birhai near Joshimath.

They felt that if the Alaknanda could be proved navigable (which had never been done before) Garhwal, which is rather isolated could have better trade and communications with the valley.

Unfortunately their raft, "Akshay," was caught in cross-currents and they were both lost.

Till Hardwar the river is a mountain torrent and in the words of the Brook.

I wind about, and in and out,
With here a blossom sailing,
And here and there a foamy flake
Up on me as I travel.
With many a silvery water break
Above the golden gravel
And I draw them all along, and flow
To join the brimming river--"

For, at Hardwar, lined with temples big and small, decorated with gaily coloured flags—and the stone-steps of Har ki Pauri leading down to the water for bathers, the river broadens and deepens as it flows slowly on towards Allahabad and the Triveni.

Hardwar, apart from being an important pilgrim centre, is the headworks of the Upper Ganga Canal System, which irrigates one-third of the Gangetic Plain. The canals carry water to remote villages and irrigate the land.

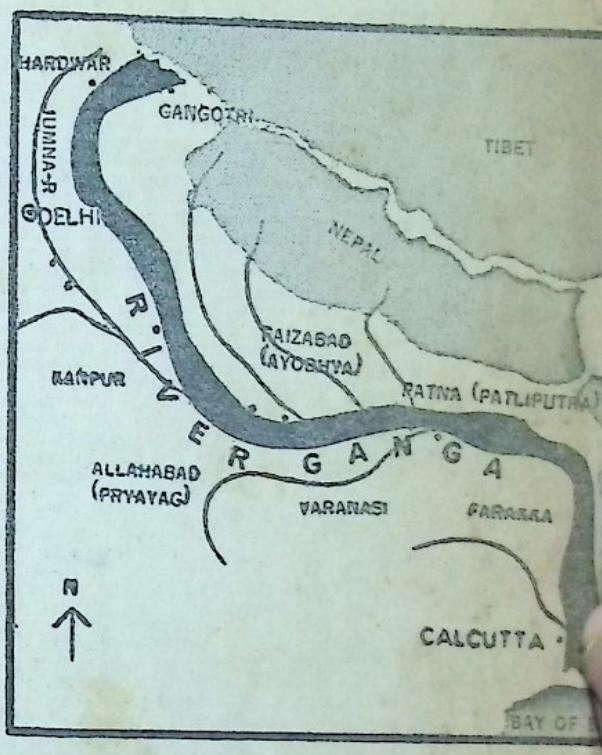

The Ganga plain is on most fertile parts of Indi its major crops are wh sugar-cane and jute. Som and tobacco are also grow

Next week we will mo Kanpur, known for its development, and see the Ganga has played in

TO BE CONTIN

es and views

es the crow fly

ver very long dis- to 60 miles an hour. xtraordinary stamina. during the day, di- lves by the position of At night, they find direc- the position of the stars. d flies is an inter- birds bodies are so

the upper and lower arms. This prevents the joints being completely extended and the wings from turning inside out like an old umbrella in a gale. The shape of a bird's wing is well adapted for flight. Thick and blunt along the leading edge, narrower and blade-like, the wings allow a smooth flow of air.

Scientists have tried

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

onstitutional history of India

FRAMING OF INDIA'S NSTITUTION: B. Shiva Rao: ndian Institute of Public ministration, New Delhi; Tripathi Ltd.; Rs 250 for mes.

Indian Institute of Public Administration, New has published, "The Fra- of India's Constitution— dy," with four companion nes of select constitutional ments comprising mate- n the form of notes, reports, randa etc. of (amongst contemporary politicians, experts and others, who a part, directly or in- ly, in the shaping of dian Constitution. These es are the result of posal for a comprehensive of the framing of the Indian tution based on materials ily co-ordinated before. The al originated in 1961 with V. K. N. Menon, the then or of the Indian Institute of Administration, and Mr B Rao who was himself a er of the Constituent As- y had prepared the ground- through a volume contain- e papers and memoranda n by his brother, the late N. Rau, Constitutional Ad- to the Constituent Assemb- later Judge of the Inter- al Court at The Hague. The of carrying out the proposal trusted to a Committee of Mr Shiva Rao was the ah. The committee took ix years to complete the and the result of its la- is now before the public.

work bears some resem- to the 'Munshi Papers' pub- some time ago, but has a comprehensive sweep and depth in examination and ination of the miscellaneous ents brought together in the ion. The leading volume to be a study of the main of the Indian Constitution by a short historical ound. The first volume of documents is again of a al nature and traces the s efforts at constitution- and the nationalist de- for a Constituent Assembly, ting up of such an Assembly h the vicissitudes of politi- troversy and manoeuvring, ure followed by the Consti- Assembly, transfer of power, s of the Constituent As- and the entry of the Indian into the Indian Union. It is documentation-study of itical and constitutional of India for the relevant ding to the partition of . The second volume of ments covers the main ng which the Consti- ublic and its [illegible]

and aspirations of the people of India as represented by the Founding Fathers. The first objective has been well served; the second not so well; and the third is more eclectic than penetrative.

In assessing the value of such a publication it is well to remember that in the matter of the interpretation of the various Articles of the Constitution, the main guide is furnished by the words actually used therein and the context in which they are so used; it is true that an organic instrument like a constitution has to be interpreted to serve the purpose for which it is intended, but in the absence of any doubt or ambiguity, historical matter in the shape of discussions in the Constituent Assembly or reports or memoranda prepared by draftsmen are hardly relevant. The value of such a publication arises in a different way. With the passing of time (we are now about twenty years from the commencement of the Constitution), we are able to judge how the Constitution has stood up to the stresses of a dynamic society in its political, social and economic evolution and to what extent the hopes and aspirations of the people have been fulfilled or belied. Such an assessment is intimately connected with the question of future amendment or adjustment in the relations envisaged by the Constitution, namely, as between the individual and the State, the States and the Union, and the different Governmental organs or agencies in their legislative, executive, or judicial functions.

Recent events have thrown up new challenges to the Constitution. The most important of these is the problem of Union-States relations, especially where parties with different ideological programmes and policies are in power at the Union and State levels. These relations are dealt with in section 21 of the Study and some of the select documents are in volume two. It is usual to describe the relations between the Union and the States under three heads —legislative, administrative and financial.

Dominant idea

By and large the dominant idea at the time of the framing of the Constitution was that of a strong Centre with residuary and, in some respects, over-riding powers. This was an inheritance of the Government of India Act, 1935, and some of the criticisms of the Indian Constitution stemmed from this. As long as the leadership at the Centre and the States was monolithic and strong, there was no strain. With the emergence of different leaderships at the Centre and the States and the formation of multi-party coalitions, the relations between the Union and the States a[illegible] showing stresses which [illegible] well become [illegible] the Emergency Provisions of the Constitution (see Art. 356).

The Constitution from its very nature cannot enter into a detailed specification of powers to meet all contingencies, particularly minor powers obviously included in and flowing from the great and important ones which are expressly granted. The rule is that when a general power is granted, it includes every particular power necessary for the performance of the general power. This is a salutary rule; but where the general power conferred is not well defined, disputes will arise and in the administrative and financial spheres of the Union-State relations there is scope for better definition and for the functioning of an Inter-State Council. The provisions in Parts XII and XIII of the Constitution have left lacunae in drafting which have evoked comments from the Supreme Court. It is greatly doubtful if the Zonal Councils or the National Development Council can absorb the shocks resulting from the constitutional pressures within the administrative and financial spheres of Union-State relations.

Governor's role

The Constitutional position of the Governor of a State has given rise recently to much controversy. Under the Constitution the Governor has certain functions, but the guiding principle is that he is aided and advised in the exercise of his functions by the Council of Ministers except when by or under the Constitution he is required to exercise his functions or any of them in his discretion. The provisions of the Constitution which expressly require the Governor to exercise his powers in his discretion are contained in Art. 239(2) and Sch. VI, paragraph 18. It is clear, however, that these Articles are not real exceptions to the general position that a Governor must act on the advice of his Ministers. Under Art. 239(2) the Governor acts as the agent of the President and not within the framework of the government of which he is the Chief Executive. So also under Sch. VI, para 18. It is clear, therefore, that the framers of the Constitution had very little doubt about the constitutional position of the Governor: he is the Chief Executive acting under the advice of his Ministers, which is of the essence of Parliamentary government.

There has been much loose talk of late of the Governor being the judge of his own discretion and his judgment being not open to question. Two views have been expressed of late about the powers of the President and the Governor: one view is that his position is that of a formal head of government, and the other view that in respect of certain matters, he is not obliged [illegible] the advice of his [illegible] tence of that form of government.

Some jurists have advocated change to the presidential form of government. This would be [illegible] against the whole trend of constitutional development of this country, and I am inclined to doubt whether such a change would be suited to the genius of our people. The remedy may well prove worse than the disease. I am, however, sure of one thing: the office of Governor should never be used to achieve party objectives. The Governor must always be above all considerations of party interests and should not be dragged into party politics. He must resist such attempt, from howsoever quarter it may come. There is often a lurking danger of bureaucracy of identifying part[illegible] with the national interest. It requires great foresight and [illegible]tive thinking to be able to distinguish between the two and it is doubtful if it is wise to [illegible] Governors from party politics or retired Civil Servants. Or, even doubt the usefulness or necessity of some of the functions of the Governor, at least those which have been slavishly [illegible] from English conventions. These conventions grew out of a different political climate in a different historical background and are likely to thrive in India.

Another disturbing phenomenon which the framers of the Constitution tried to prevent is the growth of narrow regionalism. At the time the Constitution was framed regional affiliation centered around language and [illegible]. Now, other disputes have emerged like boundary disputes, river disputes, etc. But the most [illegible] cause of trouble at the present moment is the widespread [illegible]tration in certain areas [illegible] regional imbalances, [illegible] partly at least by vacillating central leadership. This has bedevilled Centre-State [illegible]

The rights

Fundamental Rights [illegible] occupy an important place in the Indian Constitution. This [illegible] very fully covered in the [illegible] volume as also in volume II [illegible] select documents. The Supreme Court of India as the guardian [illegible] such rights has pronounced [illegible] content and effect of most [illegible] rights. Recently, there has been serious doubt on two [illegible] (a) whether it is sound [illegible] right to property as a fundamental right in a developing [illegible] and (b) whether [illegible] rights can be restricted by [illegible]mentary legislation. The controversy on the second question has been acute after the decision of the Supreme Court in Golaknath case; and has still to be [illegible] is significant to quote what Prime Minister Nehru said in the Constituent Assembly: "[illegible] Court and no [illegible]

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation Chennai

५२५ (अङ्क-VII)

—ओ३म्—

वेदवाणी

श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट (अमृतसर) की मासिक पत्रिका

वर्ष ३४] वयं जयेम (ऋक्) [अङ्क ४

विशेषाङ्क (भाग १)

ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज से संबद्ध महत्त्वपूर्ण अभिलेख

१. उस एक की ही स्तुति कर
२. ऋषि दयानन्द के नये उपलब्ध दो पत्र १
३. ऋ० द० द्वारा प्रकटित भावी प्रबल आशंका ३
४. आ० स० के आदिम २८ नियमों की ऋ० द० कृत व्याख्या ७
(मुम्बई आर्य-समाज के नियम और उस का व्याख्यान) ९
५. पं० गोपालराव हरिदेशमुख (संक्षिप्त परिचय) १०
६. पण्डित स्वामी श्रीमद्दयानन्द सरस्वती १८
पं० गोपालराव हरिदेशमुख
अनुवादक—प्रा० कुशलदेव जी २३
७. आ० स० बम्बई के साप्ताहिक अधिवेशनों की कार्यवाही (विवरण) ६०
८. ऋ० द० के बम्बई-निवास-काल की आ० स० बम्बई की सभाओं की कार्यवाही
(अनुवादक—श्री जगदेवसिंह जी आर्य) ६६
९. समाचार संग्रह
(आरम्भ में लगे पृष्ठ की पीठ पर)
१०. विज्ञापन (वेदमन्त्रों की संक्षिप्त व्याख्या सहित)
अन्त में

आद्य सम्पादक वा प्रतिष्ठापक—स्वर्गीय श्री पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु

सम्पादक—युधिष्ठिर मीमांसक, सह सम्पादक—विजयपाल

माघ सं० २०३८ वि०
फरवरी १९८२ ई०
दयानन्दाब्द १५६
वेद तथा सृष्टि सं० १९७२९४९०८२

वार्षिक मूल्य—भारत में १२-००
वी. पी. से १६-००
" " विदेशों में २५-००
इस अङ्क का ३-००

वेदवाणी कार्यालय,
बहालगढ़ (सोनीपत-हरयाणा) १३१०२१

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

रामलाल कपूर ट्रस्ट के स्थायी कोष के लिये प्राप्त धन

श्री बा० धर्मेन्द्र कुमार कपूर—बम्बई (पुत्र के विवाह पर)	५१००-००
श्री पं० मदनमोहन विद्यासागर—हैदराबाद	५००-००
श्री रा० सा० चौ० प्रतापसिंह—करनाल	५००-००
कु० रुची कपूर—सोनीपत	१०१-००
श्री घूड मल धर्मार्थ ट्रस्ट—हिण्डौन	१००-००
श्री चौकसी छगनलाल गंगाराम पटेल—मेहसाना	१००-००
श्री कन्हैयालाल आर्य—गोरखपुर	१००-००
योग	६५०१-००

(सभी दान-दाताओं को हार्दिक धन्यवाद)

जनवरी मास के अङ्क का योग	२७७५५-००
पूर्णयोग	३४२५६-००

रामलाल कपूर ट्रस्ट को दान में प्राप्त धन राशि

श्री डा० हरिचन्द्र गुप्त, इलाहाबाद	५००-००
श्री बा० धर्मेन्द्रकुमार कपूर, बम्बई	१०१-००

इनकम टैक्स फ्री का सार्टिफिकेट

सब सज्जनों को विदित होवे कि रामलाल कपूर ट्रस्ट को इनकम टैक्स फ्री का सार्टिफिकेट प्राप्त है। अतः इस ट्रस्ट को दान में दी जाने वाली धन राशि पर दान दाताओं को इनकम टैक्स नहीं देना पड़ेगा। आशा है वैदिक धर्म-प्रेमी ऋषि-भक्त महानुभाव इस सुविधा का लाभ उठाते हुए इस ट्रस्ट के स्थायी कोष के लिये अधिक से अधिक धन देकर ट्रस्ट की सहायता करेंगे।

विशेष सूचना—वेदवाणी के लिये जो सज्जन ड्राफ्ट से रुपया भेजें वह व्यवस्थापक वेदवाणी कार्यालय के नाम से भेजें।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विशिष्ट सूचनायें

१—वेदवाणी का विशेषाङ्क हम इस मास में दे रहे हैं। इस में हम जो-जो 'ऋ० द० तथा आ० स०' से सम्बद्ध अभिलेख देना चाहते हैं उन की सम्पूर्ण सामग्री लगभग २० फार्म की है। इस अंक में न्यूनातिन्यून १२ फार्म देना चाहते थे, परन्तु बड़ी कठिनाई से ९–१० फार्म ही हम दे रहे हैं। शेष सामग्री मार्च के अङ्क में देंगे।

२—'पण्डित श्रीमद्दयानन्द सरस्वती' निबन्ध के पदों और वाक्यों के ऊपर टिप्पणियों की १–५० संख्या दी गई है। इन टिप्पणियों को निबन्ध की समाप्ति पर देना था, परन्तु मूल मराठी निबन्ध के अनुवादक प्रा० श्री कुशलदेव जी से हमें ये टिप्पणियां आज २८ जनवरी तक भी प्राप्त नहीं हुई। इस कारण हम उन्हें निबन्ध के पश्चात् नहीं छाप सके। अब हम उन्हें अगले अंक में अन्त में छापेंगे। मुद्रण की दृष्टि से यह उचित नहीं है, परन्तु समय पर प्राप्त न होने के कारण हम यथास्थान छापने में असमर्थ हैं। पाठक महानुभाव इस असमर्थता के लिये हमें क्षमा करेंगे।

नवीन प्रकाशन

१. **ऋषि दयानन्द के शास्त्रार्थ और प्रवचन** नाम के संग्रह का पूर्व 'शास्त्रार्थ-संग्रह' भाग छप चुका है। आगे **पूना-प्रवचन** छापने थे, परन्तु कलकत्ता की नेशनल लायब्रेरी में संवत् १८७५ के मराठी में छपे प्रवचनों की विद्यमानता का ज्ञान हो जाने से हमने छापना रोक दिया है, क्योंकि हमारे लिये पूर्वमुद्रित हिन्दी अनुवाद का पुराने मराठी संस्करण से मिलान करना आवश्यक हो गया। पुस्तक बार-बार नहीं छपती है। मराठी में छपे प्रवचनों की प्राप्ति के लिये मैं स्वयं फरवरी में कलकत्ता जा रहा हूं।

२. **संस्कार विधि** का सस्ता संस्करण नया छपकर तैयार हो गया है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

समाचार-संग्रह

भारत बन्द को आंशिक सफलता

प्रमुख विपक्षी दलों तथा इंटक से भिन्न मजदूर संघटनों के आह्वान पर १९ जनवरी को आयोजित भारत बन्द अंशतः सफल रहा। पश्चिमी बंगाल, त्रिपुरा तथा केरल में बन्द लगभग पूर्ण सफल रहा, परन्तु शेष राज्यों में बन्द का कोई प्रभाव नहीं दिखाई दिया। विरोधी गुटों और पुलिस टकराव में दस आदमियों को प्राणों से हाथ धोने पड़े। भारत सरकार ने बन्द को विफल करने के लिये व्यापक तैयारी की थी।

भारतीय वैज्ञानिक दल की सफलता

डा० स० ज० कासिम के नेतृत्व में २१ सदस्यों के भारतीय वैज्ञानिक दल ने दक्षिणी ध्रुव पर पहुंचने में सफलता प्राप्त कर ली। दल ने वहां सौर पैनल तथा जानकारी संकलन करने वाला स्वचालित यन्त्र स्थापित कर दिया है। यह दल हिमनद विज्ञान, संचार, समुद्री जीवन विज्ञान आदि विभिन्न क्षेत्रों में अध्ययन एवं अनुसन्धान में संलग्न है। फरवरी मास के मध्य तक इसके लौटने की आशा है।

महाराष्ट्र में नया मन्त्रिमन्डल

महाराष्ट्र में अन्तुले सरकार के पतन के पश्चात् श्री बाबा साहेब भौंसले ने मुख्यमन्त्री पद सम्भाला है। भौंसले मन्त्रिमण्डल में मुख्यमन्त्री सहित सोलह सदस्य हैं। जिन में मुख्यमन्त्री के अतिरिक्त आठ मन्त्री, चार राज्यमन्त्री और तीन उपमन्त्री हैं। नये मन्त्रिमण्डल में पूर्व मन्त्रि-मण्डल के पांच सदस्य सम्मिलित किये हैं।

देश-विदेश में गणतन्त्र समारोह

२६ जनवरी को भारतीय गणराज्य की बत्तीसवीं वर्षगांठ देश-विदेश में उल्लास पूर्ण वातारण में मनाई गई। मुख्य समारोह राजधानी दिल्ली में आयोजित किये गये। गणतन्त्र दिवस की पूर्व संध्या को राष्ट्रपति श्री संजीव रेड्डी ने राष्ट्र को संबोधित किया। राष्ट्रपति ने लोकतन्त्र की रक्षा के लिये नैतिक मूल्यों के प्रतिष्ठापन पर विशेष बल दिया।

असम वार्त्ता में प्रगति

असम में विदेशियों की समस्या पर त्रिपक्षीय वार्त्ता में कुछ प्रगति हुई है। सीमा क्षेत्रों में घुसपैठ रोकने के लिये समझौता किया गया है कि सीमा के भीतर एक सड़क बनाई जायेगी और सीमा तथा सड़क के बीच कोई आबादी नहीं रहेगी। विपक्षी दलों ने पहली बार वार्त्ता में भाग लिया। वार्त्ता का अगला दौर फरवरी में आरम्भ होगा।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ऋग्वेद

ओ३म्

वेदवाणी

यजुर्वेद

सामवेद

अथर्ववेद

सं श्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन वि राधिषि ।

हम सदा वेदवाणी से संयुक्त रहें, उससे कभी विमुख न हों । अथर्व १।१।४॥

वर्ष ३४ | माघ सं० २०३८ वि०, १ फरवरी १९८२ ई० बहालगढ़ (सोनीपत-हरयाणा) | अङ्क ४

उस एक की ही स्तुति कर

त एक इत् तमु ष्टुहि कृष्वीनां विचर्षणिः ।
पतिर्जज्ञे वृषक्रतुः ॥ ऋ० ६।४५।१६॥

शब्दार्थ—(य एक इत्) जो एक ही है और जो (कृष्टीनाम्) मनुष्यों का (विचर्षणिः) सर्व-द्रष्टा और (वृषक्रतुः) सर्वशक्तिमान् (पतिः) पालक (जज्ञे) हुआ है (तम् उ) उसकी ही (स्तुहि) तू स्तुति कर ।

विनय—हे मनुष्य ! तू किस-किस की स्तुति करता फिरता है ? संसार में तो एक ही स्तुति के योग्य है । संसार में हम मनुष्यों का एक ही पति, पालक और रक्षक है । हे मनुष्य ! तू न जाने किस-किस को पालक समझता है और उस-उस की स्तुति करने लगता है । कहीं तू रुपये पैसे वाले व्यक्ति को अपना रक्षक समझता है, कहीं तू किसी लब्ध-प्रतिष्ठ रोबदाब वाले व्यक्ति को अपना बना कर रहता है । कहीं तू किसी दार्शनिक व कवि की प्रज्ञा व प्रतिभा के स्तुति-गीत गाने लगता है, उनके ज्ञान व कवित्व पर तू मोहित रहता है । संसार में ऐसे भी मनुष्य बहुत हैं जो कि किन्हीं जीवित व जीवरहित आकृतियों के सौन्दर्य को देख कर ऐसे मोहित हो जाते हैं कि उनका मन उस सौन्दर्य की प्रशंसा करता नहीं थकता । परन्तु संसार में मनुष्य की स्तुति के पात्र बहुत नहीं हैं । एक ही है, केवल एक ही है, और वह इन सब स्तुत्य वस्तुओं का एक स्रोत है । उसकी स्तुति न कर, इन शाखाओं की स्तुति करने से कल्याण नहीं होता, रक्षा नहीं मिलती । रूप, रस आदि ऐन्द्रियक विषयों

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

को स्तुति तो मनुष्य का विनाश ही करती हैं, पालन कदापि नहीं। इनकी स्तुति तो अति अज्ञानी पुरुष ही करते हैं। पर जो संसार में हमारे अन्य रक्षा करने वाले बल, ज्ञान और आनन्द हैं (बली, ज्ञानी और सुखी लोग हैं) वे भी "विचर्षणि" "वृषक्रतु" नहीं हैं, उन में ज्ञान और बल पर्याप्त नहीं है। संसार के ये सब बल, ज्ञान और आनन्द तो उस एक सच्चिदानन्द महासूर्य की क्षुद्र किरणें मात्र हैं। इन किरणों की स्तुति करने से अपने को बड़ा धोखा खाना पड़ेगा।

हे मनुष्य ! ये संसार के क्षुद्र बल और ज्ञान मनुष्य का पालन न कर सकेंगे, ये बीच में ही छोड़ देंगे। इनमें पूरा ज्ञान और बल नहीं है। अतः इन में आसक्त होकर इनकी स्तुति मत कर। स्तुति उस 'मनुष्यों के एक पति' की कर, जो "विचर्षणि" होता हुआ पालक है और "वृषक्रतु" होता हुआ पालक है। वह एक एक मनुष्य को विशेषतया देख रहा है। प्रत्येक मनुष्य को और उसके सब संसार को वह अच्छी तरह देख रहा है कि प्रत्येक मनुष्य यही अनुभव करेगा कि मेरे प्रभु को मानो एकमात्र मेरी चिन्ता है। और उस पालक पति का एक-एक क्रतु, एक-एक संकल्प, एक-एक कर्म ऐसा 'वृष' अर्थात् बलवान् है कि उसकी सफलता के लिये उसे दुबारा संकल्प व यत्न करने की जरूरत नहीं होती। हे मूर्ख मनुष्य ! अपने उस 'पति' की ही स्तुति कर, उसकी सैकड़ों किरणों की स्तुति छोड़ कर उस असली सूर्य की ही स्तुति कर, उस एक की ही स्तुति कर। वैदिक विनय से

आर्य-समाज के नियम

आर्यसमाज के जो २८ नियम प्रथम आर्यसमाज बम्बई (सन् १८७५) की स्थापना के समय बनाये गये थे, उन को ऋषि दयानन्द कृत व्याख्या सहित हम आगे (पृष्ठ ९ पर) छाप रहे हैं। उस के पश्चात् लाहौर में आर्यसमाज के जो १० नियम (सन् १८७७ में) स्वीकृत हुए और सम्प्रति सर्व-मान्य हैं। वे इस प्रकार है—

१—सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।

२—ईश्वर सच्चिदानन्द-स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।

३—वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४—सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

५—सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य का विचार करके करने चाहिये।

६—संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७—सब से प्रीति-पूर्वक, धर्मानुसार, यथायोग्य वर्तना चाहिये।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

८— अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

९—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये। किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

१० सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये। और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

ऋषि दयानन्द के नये उपलब्ध दो पत्र

गत मई मास (सन् १९८१) में 'पूना विद्यापीठ' के तत्त्वाधान में 'पाणिनि पर हुई विश्व विद्वद्गोष्ठी' (इण्टर नेशनल सेमिनार ओन पाणिनि) में भाग लेकर बम्बई गया था, उस समय आर्यसमाज काकड़वाड़ी बम्बई के वेदोपदेशक श्री पं० दयाशंकर जी ने मुझ से कहा था कि बम्बई में एक व्यक्ति के पास ऋषि दयानन्द के दो मूल पत्र हैं, मैं उन्हें प्राप्त करने का यत्न कर रहा हूं। सौभाग्य से दिसम्बर (१९८१) के आरम्भ में बम्बई जाने से पूर्व ही बहुत परिश्रम करके श्री पं० दयाशंकर जी ने उन पत्रों की फोटोस्टेट (भेरोक्स) कापी प्राप्त कर ली थी। उन्होंने मङ्गलवार ८ दिसम्बर १९८१ को उन दोनों पत्रों की फोटोस्टेट कापी मुझे प्रदान की। इस महत्त्वपूर्ण कार्य के लिये पं० दयाशंकर जी सम्पूर्ण आर्यजगत् के धन्यवाद के पात्र हैं।

प्रथम पत्र सं० १९३९ पौष सुदि १० बुधवार (=१४ जनवरी १८८३) का है। पत्र में 'कहां से लिखा गया' इस का निर्देश नहीं है, तथापि इस समय ऋ० द० उदयपुर में विराजमान थे। अतः यह पत्र उदयपुर से लिखा गया है। पत्र के मध्य भाग से भी इस की पुष्टि होती है। यह पत्र पं० गौरीशंकर को लिखा गया है। पं० गौरीशंकर का उल्लेख ऋ० द० के अन्य पत्रों में भी उपलब्ध होता है (द्र०—ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन, संस्करण ३, भाग २, पृष्ठ ७७२, ७७३, ७७४)। इस पत्र के अन्त में तथा द्वितीय पत्र के आद्यन्त में ऋ० द० के पत्र से बहिर्भूत कुछ पंक्तियां विद्यमान हैं, जिन में मूल पत्र देखने का निर्देश है (हम इन्हें नीचे टिप्पणी में दे रहे हैं) उनके अन्त में गौरीशंकर शर्मा के हस्ताक्षर हैं। यह गौरीशंकर शर्मा पत्र में उल्लिखित पं० गौरीशंकर से भिन्न व्यक्ति है।

दूसरा पत्र सं० १९ ९ चैत्र बदि १४, गुरुवार (=५ अप्रेल १८८३) का है। इस में रामगढ़ (सीकर—जयपुर राज्य) के निवासी महात्मा कालूराम जी शर्मा को लिखे ऋ० द० के कुछ उपदेशों का उल्लेख है। प्रतीत होता है यह पत्र महात्मा कालूरामजी के किसी पत्र के उत्तर में लिखा गया है।

विशेष—प्रथम पत्र की तिथि 'पौष सुदि १० बुधवार' अङ्कित है। परन्तु बुधवार को हमारे पास विद्यमान दक्षिण भारतीय पत्रानुसार ९ नवमी थी। इसी पक्ष की ३-४ के सम्मिलित होने से उक्त भेद उपपन्न हो सकता है। इसी प्रकार द्वितीय पत्र में 'चैत्र बदि १४ गुरुवार' लिखा है परन्तु हमारे पत्रानुसार गुरुवार को १३ त्रयोदशी थी। इस पक्ष में भी ९-१० सम्मिलित है। अतः यह भेद भी न गण्य है। दोनों पत्र इस प्रकार हैं—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

संख्या १॥[1]

ओ३म्

पंडित गौरीशंकर जी आनन्दित रहो ॥[2]

पत्र आया समाचार जाना। जो तुमने लिखा सो ठीक है। कायस्थ और कारीगर लोग जो मंत्रोपदेश चाहते हों उनको (विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद् भद्रं तन्न आसुव) इस मन्त्र का उपदेश कर दिया करें। वेदों का अधिकार सब को है और जो उचारण करने में असमर्थ हों उनके लिये (नमः परमेश्वराय) इतना ही उपदेश कर देना ॥

पहले से हम को यह सन्देह था कि जितनी राजनीति वेदशास्त्रों के अनुकूल हम जानते हैं सो कदाचित् शरीर के साथ ही न जावे। सो इसका जानना अब सफल हुआ और हमारा चित्त भी संतुष्ट हुवा। यहां श्री दरबार महाराणा जी सब राजनीति को पढ़ते सुनते और आचरण भी यथोचित करते हैं ॥

तुम्हारे समाज का.....[3] उन्नति सुनकर बड़ा आनन्द हुवा। शेष समाचार लिखने योग्य लिखा जावेगा। सब से हमारा आशीर्वाद कह देना ॥

मिति पोष शुदि १० बुधवार ॥

संवत् १९३९

(दयानन्द सरस्वती)[4]

---

१. यह संख्या पीछे से लिखी गई प्रतीत होती है क्योंकि कई मास पश्चात् लिखे गये अगले पत्र पर २ संख्या दी गई है।

२. इस पत्र की मूल प्रति पं० गौरीशंकर के पौत्र श्री सुधाकर दीक्षित के द्रामाद श्री जितेन्द्र जी आर्य, फोटो ग्राफर 'टाइम्स आफ इण्डियां' बम्बई के पास है।

३. यहां एक शब्द बहुत अस्पष्ट होने से पढ़ा नहीं गया।

४. इस के नीचे पत्र पर निम्न पङ्क्तियां लिखी मिलती हैं—

पूर्वोक्त पत्र श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज के हस्ताक्षरांकित पंडित गौरीशंकर निवासस्थान सूर्यपुर परगना बागपत जिला मेरठ के पास देखा है ॥

गौरीशंकर शर्मा ॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ओ३म्[1]

उपदेश ॥[2]

१ सब मन्त्रों के पूर्व ओ३म्कार का प्रयोग करना ॥

२ त्रिवर्ण को तत्सवितुः ० गायत्री मंत्र द्विजों कि स्त्रियो को (विश्वानि देव०) मन्त्र शूद्र और उनकी स्त्रियों को (विश्वानि देव०) मन्त्र और ईसाई मुसलमान आदि को भी विश्वानि देव० मन्त्र अन्त्यजादिको 'परमात्मानमिति मंत्र ॥

३ नमस्ते शब्द सब आपस में बोलें। छोटा प्रथम बोले बड़ा पीछे बोले ॥

४ जो कोई ब्राह्मण हो उसको संन्यास देकर नाम के अन्त में सरस्वती शब्द होना चाहिये और क्षत्रिय वैश्य को आनन्द शब्दांत जैसे अच्युतानन्द और शूद्र को दास जैसे अच्युतदास ॥[4]

५ अंत्यज[5] सब स्वजाति के उपदेशक और अध्यापक हों ॥

६ वर्ण व्यवस्था गुण कर्म से होनी चाहिये धर्मव्यवहार में ॥

७ कोई पूछे तुम कौन ? सादर हो कहे कि (वेदानुयायी) तुम्हारा मत क्या ? तो कहे (वेदोक्त) तुम्हारा धर्म्म क्या ? (पक्षपातरहित न्यायाचरण सत्य है)

८ भगवां वस्त्र सब को[6] होना चाहिये ॥

९ (प्रायश्चित्त) जिस समय कोई मतमतांतरस्थ पुरुष वेदमत ग्रहण करना

---

१. इस पत्र के ऊपर निम्न लिखित पंक्तियां लिखी हैं—

पण्डित कालूराम जी महाराज निवास स्थान रामगढ़ जिला सीकर इलाके जयपुर को श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज ने नि[ज ह]स्त द्वारा निम्न लिखित उपदेश किया।

२. इस पत्र की मूल प्रति पूर्व निर्दिष्ट श्री जितेन्द्र जी के पास है।

३. मूल पत्र में यहां पर चिह्न देकर नीचे निम्न पाठ अन्य के हस्ताक्षर से लिखा गया है—

ओं सर्वात्मानमतर्य्यामिनं कृपामृतसागरं परमात्मानमहं शरणं प्रपद्ये ॥

४. यह ऋषि दयानन्द का स्वमत नहीं है। अतः महात्मा कालूराम जी के भक्त सभी वर्णों के थे। वे सभी को 'साधु' की दीक्षा देते थे। अतः उनकी दृष्टि से यह उपदेश लिखा गया प्रतीत होता है।

५. 'अन्त्यज' यह शब्द किस अभिप्राय से लिखा है, हमारी समझ में नहीं आया।

६. 'सब को' अर्थात् सब प्रकार के संन्यासी को।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

चाहे तभी पवित्र होगा ॥ परन्तु पुनः वोह वेदमत छोड़ वेदविरुद्ध मत ग्रहण कभी न करे उसके लिये यही प्रायश्चित्त है ॥

१. सब लोग आचरण सत्यभाषणादि धर्मयुक्त ब्रह्मचारी रहैं और विद्या की उन्नति करैं ॥

मिति चैत्र बदि १४ गुरुवार सं० १९३९ (दयानन्द सरस्वती)[४]

विशेष—प्रथम पत्र के अन्त में तथा द्वितीय पत्र के आद्यन्त में लिखित पाठ(जो टिप्पणी में छापा है)से प्रतीत होता है कि जिन पत्रों की हमें फोटोस्टेट कापी प्राप्त हुई है वे मूल पत्रों की प्रतिलिपियां हैं। अन्यथा गौरीशंकर शर्मा द्वारा उन का सत्यापित(तस्दीक)करना उपपन्न नहीं होता। द्वितीय पत्र के अन्त में सत्यापन पाठ के अन्त में सीवनारायण और समर्थदान के दस्ताक्षर भी हमारे अनुमान में सहायक हैं। आश्चर्य की बात है कि इन पत्रों का लेख ऋ०द० के लेख से अद्भुत साम्य रखता है।

एक अन्य अमुद्रित पत्र

[सम्पादक थियोसोफिस्ट][१]

[२]जब अजमेर में सभा हुई थी तो मैंने पादरी साहब को कहा था कि अगले दिन सभा में आओ और शास्त्रार्थ करो, परन्तु उन्होंने आना स्वीकार नहीं किया इसलिये अब हम उनके साथ शास्त्रार्थ करना उचित नहीं समझते। हां यदि कोई शिक्षित बिशप इस प्रकार का शास्त्रार्थ आप के समाचार पत्र के द्वारा करने के लिये उद्यत हो तो हम निस्सन्देह शास्त्रार्थ करेंगे।

बनारस, १० फरवरी सन् १८८० (स्वामी दयानन्द सरस्वती)

---

१. इसके आगे निम्न पङ्क्तियां लिखी हुई हैं -

पूर्वोक्त पत्र श्री स्वामी दयानन्द जी सरस्वती के हस्ताक्षरांकित पंडित कालूराम जी निवास स्थान सेठों का रामगढ़ जिला सीकर इलाके जयपुर के पास हमने अपने नेत्र से देखा है ॥ गौरीशंकर शर्मा

ह० सीवनारायण मन्त्री वैदिक धर्म सभा रामगढ़

ह० समर्थदान, रामगढ़ माघ सुदी ९ सं० १९ (आगे संख्या त्रुटित है)

१. थियोसोफिस्ट पत्रिका खण्ड १, संख्या ६, मार्च सन् १८८०, पृष्ठ १४१ पर सम्पादक के नाम अजमेर के पादरी 'ग्रे' ने लिखा था—"यदि स्वामी जी उचित समझें तो आपके समाचार पत्र में अपने आक्षेपों को जिनका उत्तर सुनने के लिये वह अजमेर नहीं ठहरे-छपवा दिया करें और मेरे उत्तर के लिये इतना स्थान समाचार पत्र में दें तो मैं उस शास्त्रार्थ को जो अजमेर में अपूर्ण रह गया था प्रकाशित करूं।" (हस्ताक्षर) ग्रे। २७ जनवरी सन् १८८०। (द्र० पं० लेखरामकृत जीवनचरित हिन्दी संस्क० पृष्ठ ७४५)।

२. यह पत्र ऋ० द० ने थियोसोफिस्ट में छपे पादरी ग्रे के पत्र के उत्तर में लिखा था। द्र० पं० लेखराम कृत जीवनचरित, हिन्दी संस्क० पृष्ठ ७४५॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आर्यसमाज-स्थापना की स्वीकृति देते हुए

ऋषि दयानन्द द्वारा प्रकटित भावी प्रबल आशङ्का

ऋषि दयानन्द अत्यन्त दीर्घद्रष्टा थे। इस विषय के अनेक प्रमाण ऋषि दयानन्द के पत्रों में उपलब्ध होते हैं। हमारी दृष्टि में निम्न तीन विषयों की ओर आर्यों का ध्यान आकृष्ट करना प्रमुख हैं—

१—अंग्रेजी राज्य के प्रारम्भिक दिनों में जब मिडिल पास को भी सरकारी नौकरी सुगमता से मिल जाती थी, उस समय यह लिखना कि–'बहुत से पढ़े लिखे लोगों को नौकरी नहीं मिलती.....। ऐसी अवस्था देखकर मैं एक कला कौशल के स्कूल की आवश्यकता विचारता हूँ'। (द्र० ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन, संस्क० ३, भाग १, पृष्ठ ४५०)।

२—आज से सौ वर्ष पूर्व जब भारतीय घरों में अंग्रेजी भाषा का व्यवहार नव ईसाइमत दीक्षित भारतीयों तथा उंगलियों पर गिनने योग्य अन्य भारतीयों में मातृभाषा के रूप में होता था, उस समय इस दृश्य को देखकर ऋषि दयानन्द का हृदय भावी आशङ्का से कम्पायमान हो गया। वे २३ मई १८८१ के पत्र में लिखते हैं—'संस्कृतरूपी मातृभाषा की जगह अंग्रेजी लोगों की मातृभाषा हो चली है' (ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन, संस्क० ३, भाग २, पृष्ठ ५०१)।

यदि आज ऋषि दयानन्द होते और भारतीय जनों के घरों में अंग्रेजी भाषा को मातृभाषा के रूप में व्यवहृत देखते तो उन्हें कितना मनस्ताप एवं खेद होता, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

३— ऋषि ने सन् १८७५ में प्रथम आर्यसमाज (बम्बई) की स्थापना की स्वीकृति देते समय अपने नाम से मतवाद की जो प्रबल आशंका व्यक्त की थी, उसे हम ऋषि दयानन्द की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण चेतावनी मानकर 'मुम्बई आर्यसमाजनो इतिहास' पुस्तक से नीचे उद्धृत करते है और ऋषि दयानन्द के सभी अनुयायियों से विनम्र प्रार्थना करते हैं कि वे इस पर गम्भीरता से विचार करें और देखें कि क्या सम्प्रति ऋषि दयानन्द की आशंका वास्तविकता का रूप धारण करके आर्यसमाज मतवाद की ओर तो नहीं बढ़ रहा है?

'मुम्बई आर्यसमाज नो इतिहास' पृष्ठ ८-९ से

'— - ...त्यार बाद (शास्त्रार्थ में जीवनजी के पराभव के पश्चात्) एमना निवास स्थान मा एमने माटे मान धरावता मुम्बई ना सम्भावित गृहस्थो ए जाई ने धार्मिक चर्चा करता करता मुम्बई मां आर्यसमाजस्थापन करवानी स्वामीजी ने विनंति करी। त्यारे एमणे सर्वने उद्देशी ने स्पष्ट जणावी दीधुं के' (उसके बाद [शास्त्रार्थ में जीवन जी के पराजय के पश्चात्] इनके निवासस्थान पर इनके प्रति संमान रखनेवाले बम्बई के संभ्रान्त गृहस्थों ने जाकर धार्मिक चर्चा करते करते बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की स्वामी जी से प्रार्थना की। इस पर उन्होंने सब को उद्देश करके स्पष्ट बता दिया कि—)

"भाई, हमारा कोई स्वतन्त्र मत नहीं मैं तो वेद के अधीन हूं और हमारे भारत

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

में पच्चीस कोटि आर्य हैं। कई कई बात में किसी किसी में कुछ कुछ भेद है, सो विचार करने से आप ही छूट जायेगा। मैं संन्यासी हुं और मेरा कर्त्तव्य यही है कि जो आप लोगों का अन्न खाता हुं इसके बदले जो सत्य समझता हुं उसका निर्भयता से ऊपदेश करता हुं। मैं कुछ कीर्त्ति का रागी नहीं हुं। चाहे कोई मेरी स्तुति करे, वा नीन्दा करे, मैं अपना कर्त्तव्य समझ के धर्म बोध कराता हुं, कोई चाहे माने वा न माने इसमें मेरी कोई हानि लाभ नहीं है।[1]

त्यारे एक भाइ ए कह्यु के, अमे जो समाज स्थापन करीए, तो एमां कोई सार्वजनिक नुकसान छे? ते नो जवाब स्वामी जीए दीधो के—एक भाई ने कहा कि हम जो समाज स्थापित करें तो इसमें सार्वजनिक नुकसान है? इसका जवाब स्वामी जी ने दिया कि)—

"आप यदि समाज से पुरुषार्थ कर परोपकार कर सकते हो, समाज करलो इस में मेरी कोई मनाई नहीं। परन्तु इसमें यथोचित व्यवस्था न रखोगे तो आगे गडबडाध्याय हो जायगा। मैं तो मात्र जैसा अन्य को उपदेश करता हुं वैसा ही आपको भी करूंगा और इतना लक्ष में रखना कि कोई स्वतन्त्र मेरा मत नहीं है। और मैं सर्वज्ञ भी नहीं हुं। इस से यदि कोई मेरी गलती आगे पाइ जाए युक्तिपूर्वक परीक्षा करके इसी को भी सुधार लेना। यदि ऐसा कोई न करोगे तो आगे यह भी एक मत हो जायेगा, और इसीं प्रकार से वावावाक्यं प्रमाणं करके इस भारत में नाना प्रकार के मतमतान्तर प्रचलित होके, भीतर भीतर दुराग्रह रखके धर्मान्ध होके लड़के नाना प्रकार की सद्विद्या का नाश करके यह भारतवर्ष दुर्दशा को प्राप्त हुआ है इसमें, यह भी एक मत बढ़ेगा। मेरा अभिप्राय तो है कि ईस भारतवर्ष में नाना प्रकार के मतमतान्तर प्रचलित है वौ भी वे सब वेदों को मानते है, ईस से वेदशास्त्ररूपी समुद्र में यह सब नदी नाव पुनः मिला देने से धर्म ऐक्यता होगी। और धर्म ऐक्यता से सांसारिक और व्यवहारिक सुधारणा होगी और ईससे कला कौशल्यादि सब अभीष्ट सुधार होके मनुष्यमात्र का जीवन सफल होके अन्त में अपना धर्म बल से अर्थ काम और मोक्ष मील सकता है।"[2]

---

१. ऋषि दयानन्द का यह कथन 'मुंबई आर्यसमाजनो इतिहास' में आर्यभाषा और नागरी लिपि में छपा है। भाषा ऋ० द० की अपनी गुजराती मिश्रित है।

२. यह अंश भी पूर्ववत् आर्यभाषा वा देवनागरी लिपि में छपा है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आर्यसमाज के आदिम २८ नियमों की

ऋषि दयानन्द कृत व्याख्या

वि० सं० १९३२ (गुजराती सं० १९३१) सन् १८७५ में प्रथम स्थापित आर्यसमाज के पहले २६ नियम निर्धारित किये गये थे। तत्पश्चात् उसमें दो नियम बढ़ाये गये। द्र० ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन (तृतीय सं०), पूर्णसंख्या २२ का पत्र—**उन नियमों में दो नियम बढ़ाये हैं।** भाग १, पृष्ठ ५७, पं० ३॥

पूर्णसंख्या २३ के पत्र में श्री गोपाल राव हरि देशमुख को लिखते हैं—**आर्य समाज और उसकी व्याख्या पुस्तक छपता है।** भाग १, पृष्ठ ५८, पं० २-३।

मैंने यह पङ्क्ति सन् १९४५ में, जब पत्र और विज्ञापन का प्रथम संस्करण छप रहा था, पढ़ी थी। तभी से मैं पत्र में उल्लिखित आर्यसमाज के नियमों की व्याख्या प्राप्त करने के लिये उत्सुक था यद्यपि यह व्याख्या सन् १९३३ में प्रकाशित 'मुम्बई आर्य समाजनो इतिहास' में छप चुकी थी, पुस्तक मेरे पास भी थी, परन्तु इस ओर मेरा ध्यान नहीं गया। पत्र और विज्ञापन के तृतीय संस्करण के प्रथम भाग के छप जाने के पश्चात् अचानक इस व्याख्या पर दृष्टि गई। इस व्याख्या को यद्यपि हम 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' के द्वितीय भाग में पृष्ठ ९०८-९१८ तक छाप चुके हैं, तथापि 'पत्र और विज्ञापन' पुस्तक की पहुंच थोड़े पाठकों तक ही सीमित होने से हम वेदवाणी में भी छाप रहे हैं।

यह व्याख्या या व्याख्यान किस का किया हुआ है, यह उक्त इतिहास से ज्ञात नहीं होता, किन्तु व्याख्या की अन्तरङ्ग परीक्षा से हस्तामलकवत् स्पष्ट हो जाता है कि यह व्याख्या ऋषि दयानन्द कृत ही है। इसमें निम्न दो प्रमाण हैं—

१—आर्यसमाज के १७ वें नियम की व्याख्या में व्याकरण शास्त्र की **'असिद्ध बहिरङ्गमन्तरङ्गे'** महाभाष्यस्थ परिभाषा का उल्लेख किया है। उसको इस स्थान में घटाना ऋ० द० जैसे महाभाष्य के पारङ्गत वैयाकरण द्वारा ही संभव है।

२—आर्य समाज के १५ वें नियम की व्याख्या में 'पुंसवन संस्कार' का जो 'वीर्य रक्षा' प्रयोजन लिखा है वह भी ऋषि दयानन्द का विशिष्ट व्याख्यान है (द्र० संस्कार विधि ग्रन्थ)। अन्य सभी आचार्य इस संस्कार का प्रयोजन 'पुत्र' की उत्पत्ति मानते हैं। ऋ० द० पुत्र और पुत्री में भेद स्वीकार नहीं करते अतः उन्होंने पुंसवन शब्द की भी स्वतन्त्र, परन्तु व्याकरण सम्मत व्याख्या की है।

इस व्याख्या के ऋषि दयानन्दकृत होने में अन्य भी प्रमाण दिये जा सकते हैं, परन्तु ये दो ही इतने प्रबल प्रमाण हैं कि इनकी उपस्थिति में प्रमाणान्तर की आवश्यकता ही नहीं रहती।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मुम्बई आर्य-समाज के नियम[1] और उसका व्याख्यान[2]

मूल १. ओं सब मनुष्यों के हितार्थ आर्यसमाज का अवश्य होना चाहिये।

व्याख्यान--इस समाज से धर्म, अर्थ काम और मोक्ष इन चारों पदार्थों को प्राप्ति मनुष्यों को यथावत् होगी। अतएव आर्यावर्तादि देशस्थ मनुष्य जातिमात्र का हित इस समाज से निश्चित होना है ॥१॥

मूल २. ईस समाज में मुख्य स्वतः प्रमाण वेदों का ही माना जायेगा। तथा साक्ष्यर्थ वेदों के विज्ञानार्थ और आय इतिहासार्थ, शतपथ ब्राह्मणादि ६ छः वेदों के जो अङ्ग, ४ चार उपवेद, ६ छः दर्शन, तथा ११२७ वेदों की शाखा जो कि वेदों के व्याख्यान, ये सब आर्य सनातन संस्कृत ग्रन्थों का गौण प्रमाण माना जायगा, जो कि वेदानुकूल।

व्याख्यान—मुख्य वेदों से उत्तम कोई ग्रन्थ माना न जायगा, किन्तु नीचे लीखे प्रमाणे साक्ष्यादिक प्रयोजन के लिये यथोक्त शतपथादि ग्रन्थ माने जायँगे, जितना जितना अंश वेदानुकूल। विरुद्धांस को न माना जायगा। स्वतः प्रमाण ग्रन्थान्तर प्रमाणानपेक्ष, कि वेदों के प्रमाण विषे वेदों का ही प्रमाण माना जायगा। और शतपथादि पूर्वोक्त ग्रन्थों का परतः प्रमाण, अर्थात् वेदों के प्रमाण से ही उनका प्रमाण होगा, स्वतः नहीं ॥२॥

मूल ३. इस समाज में प्रतिदेश के मध्य एक-एक प्रधान समाज होगा, और अन्य सब शाखोपशाखारुप होंगे।

---

१. यहां हम मुम्बई आर्यसमाज के नियमों का पाठ सन् १९३३ में छपे 'मुंबई आर्यसमाजनो इतिहास' के पृष्ठ १०-२१ पर छपे पाठ के अनुसार दे रहे हैं। श्री पं० लेखराम रचित जीवनचरित हिन्दी, सं० पृष्ठ २००-२०३ तथा पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जीवनचरित भाग १, पृष्ठ ३३२-३५ में नियमों का पाठ हिन्दी भाषानुसार संशोधित छपा है।

२. 'मुंबई आर्यसमाजनो इतिहास' में नियमों के मूल पाठ के साथ 'व्याख्यान' भी छोटे अक्षरों में छपा है। इस व्याख्यान की भाषा भी हिन्दी है (मूल नियम और व्याख्यान की भाषा हिन्दी होते हुए भी गुजराती लिपि में छपे हैं)।

'मुम्बई आर्यसमाजनो इतिहास' के लेखक श्री दामोदरदास सुन्दरदास ने आर्य समाज के नियमों और उसके व्याख्यान के पाठ के अन्त में पृष्ठ २१ पर टिप्पणी में लिखा है—"उपला जुना मुल २८ नियमो जे ढबमां छापेला प्राप्त थया तेवोने तेवाज ऊपर मुजेब आपेला छे. ते समयनी छपाई तथा भाषापण कांइक जुदी पड़ती जणाय छे. तेमा कोई सुधारो के फेरफार कर्या वगैर एमज आपवा उचित लागयाथी ते गुजराती टाईप मां ज असल मुजब छाप्या छे।"

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

व्याख्यान--सब को निकट परस्पर व्यवस्था प्रीति और उपकार के लिये तथा विद्या वृद्धयर्थ यह नियम जानना ॥३॥

मूल ४. प्रधान समाज के अनुकूल अन्य सब समाजों की व्यवस्था रहेगी।

व्याख्यान--उन्नति के लिये यह नियम जानना ॥४॥

मूल ५. प्रधान समाज से वेदाक्तानुकूल संस्कृत और आर्य भाषा में नाना प्रकार पुस्तक होंगे। सदुपदेश के लिये, और आठ आठवे दिन एक आर्यप्रकाश पत्र निकलेगा। ये सब समाजों में प्रवृत्त किये जायंगे।

व्याख्यान--विद्वान्, अविद्वान्, स्त्री, पुरुष इन सभों को सत्यासत्य कर्तव्याकर्तव्य और ईश्वरादि पृथ्वी पर्यन्त सब पदार्थों का यथावत् बोध और अत्यन्त सुखप्राप्त होगा ॥५॥

मूल ६. प्रत्येक समाज में एक प्रधान पुरुष और दूसरा मन्त्री तथा अन्य पुरुष और स्त्री ये सब सभासद् होंगे।

व्याख्यान--जिस्से इस समाज की रक्षा और अत्यन्त उन्नति होय ॥६॥

मूल ७. प्रधान पुरुष इस समाज की यथावत् व्यवस्था पालन करेगा। और मन्त्री सब के पत्रों का प्रत्युत्तर तथा सब के नाम व्यवस्था लेख करेगा।

व्याख्यान--सब समाजस्थों को सब सभासदों का वर्तमान और प्रश्नोत्तर विदित रहने के लिये यह नियम है ॥७॥

मूल ८. इस समाज में सत्पुरुष सद्नीति सदाचरणी जनों के हितकारक समाजस्थ किये जायेंगे।

व्याख्यान--दुष्ट मनुष्य के सभासद् होने से समाज को दोष लगता है। इसलिये दुष्ट को सभासद् शीघ्र नहीं करना किन्तु जो दुष्टता छोड़ने के लिये और सज्जनता ग्रहण करने के लिये निष्कपट होके सभासद हुआ चाहै सो हो सकता है ॥८॥

मूल ९. जो गृहस्थ गृहकृत्य से अवकाश प्राप्त होय, सो जैसा गृहकार्य में पुरुषार्थ करता है, उस्से अधिक पुरुषार्थ ईस समाज की उन्नति के लिये करें। और विरक्त तो नित्य ही इस समाज की उन्नति ही करें अन्यथा नहीं।

व्याख्यान--जब परोपकार सर्वहित स्वहृदय की प्रीति होगी, तब यह कार्य बनता है जो इस नियम के अनुकूल आचरण करेगा, उसको धन्यवाद देना चाहीये। और परमात्मा की तर्फ से भी उसी को धन्यवाद अवश्य मिलेगा ॥९॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मूल १०. आठ आठवें दिन प्रधान मन्त्री और सब सभासद् समाज स्थान में एकीठे होंय, सब काम से इस काम को मुख्य जानके।

व्याख्यान—क्यांकि ईस व्यवहार से इस लोक और परलोक तथा मोक्ष की निश्चित सिद्धि होती है, ईस्से इस काम को सर्वोत्तम अवश्य जानना ॥१०॥

मूल ११. ऐकिठे होके सर्वथा उचित होंय परस्पर प्रीति से प्रश्नोत्तर पक्षपात छोड़ के करें, सामवेदादि गान करें। ईन विषयों में ही होय, कि परमेश्वर, सत्यधर्म, सद्नीति, सत्योपदेश विषयक ही वादित्रवादनपूर्वक गान, पूर्वोक्त विषयक मन्त्रों का अर्थ, ऐसा ही वक्तृत्व, पुनर्गान, पुनर्मन्त्रार्थ, पुनर्गान ईत्यादि।

व्याख्यान—सत्य प्रतिपादन असत्य का खण्डन जिस्से होय, ऐसा न होय, कि मेरा ही कथन अखण्डित जैसा होय, वैसा ही हठादी से दुसरे का सत्य का भी खण्डन करना अपने असत्य का भी मण्डन, करना इत्यादि सर्वथा छोड़ ही देना ॥११॥

मूल १२. प्रत्येक सभासदों को न्यायपूर्वक पुरुषार्थ से जितना धन प्राप्त होय, उसमें से आर्यसमाज आर्यविद्यालय तथा आर्यप्रकाश पत्र, ईन तीनों के प्रचार के लिये प्रीतिपूर्वक शतांश देवें। अधिक देने से अधिक धर्मफल। ईस धन का व्यय इन तीन विषयों में ही होय, अन्यत्र व्यय नहीं किया जाय।

व्याख्यान—इस नियम के विना आर्यसमाजादि की स्थिर व्यवस्था और उन्नति नहीं हो सकती वारंवार सभासदों से जादा लेने से अच्छा नहीं। और धनाढ्य लोगों पर अत्यन्त भार होने से उनकी अरुची हो सकती है। इसलिये यह नियम होना ही चाहिये। परन्तु जो जो व्यापारी है और अपना व्यवहार गुप्त रखना चाहै वह एक वार इकिट्ठा धन देवै, यथासामर्थ्य और श्रद्धा, अथवा मासीक किंवा वार्षिक निबन्ध न कर देवे। तथैव राजालोगों की भी व्यवस्था रहै। और अन्य सब लोगों का शतांश देना ही ठीक है ॥१२॥

मूल १३. जो धन ईन कार्यो को उन्नति और प्रचार के लिये जितना प्रयत्न करै उसका यथायोग्य सत्कार उत्साह के लिये होना चाहिये।

व्याख्यान—परन्तु वह जन सत्कार की इच्छा किंवा दंभादि से कोई काम न करें, किन्तु इस काम को अपना ही समजे। मनुष्यों के उपकार और इश्वर की प्रसन्नता के लिये ही करें, अन्यथा नहीं। क्योंकि जैसे जैसे विनयादि मनुष्य में होते हैं वैसे वैसे मनुष्य का सत्कार आप से आप ही होता है, स्वेच्छा से नहीं। परन्तु आर्यसमाज का उपकार जन परमार्थ दृष्टि से ही करे और सब लोग उसकी प्रतिष्ठा करें ॥१३॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मूल १४. इस समाज में वेदोक्त आदि प्रकार से ही एक अद्वितीय परमेश्वर की ही स्तुति, प्रार्थना और उपासना करने में आवेगी।

व्याख्यान—निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, दयालू, सर्वजगत् पिता, सर्वजगन्माता, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त, सर्वव्यापक, सर्वान्तरयामी, अजर, अमर, अभय, नित्यशुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव' अनन्त सुखप्रद, धर्मार्थ काम मोक्षप्रद ईत्यादि विशेषणों से परमात्मा ही स्तुति गुणकीर्तन प्रार्थना, उस्से सर्वश्रेष्ठ कार्यों में सहाय चाहना, उपासना, उसके आनन्द स्वरूप में मग्न हो जाना, सो पूर्वोक्त निराकारादि लक्षण-वाला की ही भक्ति करनी। उस्से विपरीत की कभी नहीं करनी ॥१४॥

मूल १५. इस समाज में निषेकादि अन्त्येष्टि पर्यन्त संस्कार वेदोक्त किये जायंगे।

व्याख्यान—निषेक (१) वीर्यप्रदान, पुंसवन (२) वीर्यरक्षोपाय, सीमन्तोन्नयन (३) गर्भरक्षोपाय, जातकर्म (४) बालक और प्रसूत स्त्री की सम्यक् रक्षाकरण, नामकरण (५) देवदत्त, यज्ञदत्त, सुशील, सुवीर, यशस्वी इत्यादि पुत्रों का नाम रखना; कलावती यशोदा, शर्मदा, धर्मदा इत्यादि कन्याओं के नाम रखना, निष्क्रमण (६) शुद्ध प्रदेश में बालक को घुमाना आदि, (७) कर्णवेध, (८) चुडाकर्म मुण्डन करना, यज्ञोपवीत (९) विद्या-पठनार्थ विद्यार्थी का चिह्न धारण करना, विद्यारम्भ (१०) नियमपूर्वक ब्रह्मचर्याश्रम-पालन, गुरुसेवा और यथार्थ विद्याभ्यास करना, सत्यभाषण, सुशीलादि सद्गुण धारना, समावर्तन (११) यथावत् चौदह विद्या पढ़ने शिल्पादि हस्तक्रिया सीख के विवाह करने की इच्छा करके गुरु को प्रसन्न करके घर को आना, विवाह (१२) २५ वर्ष उपरान्त ४८ वर्ष पुरुषों को विवाह करने का नियम है, वेदादिशास्त्रों में, तथा स्त्री लोगों का नियम १६ वें वर्ष से आगे और २५ वा ३० वर्ष से पूर्व कन्याओं का विवाह होना चाहिये। परस्पर प्रसन्नता, तुल्य विद्या, स्वभाव, रूप, बल, पराक्रम, शरीर के गुण, तुल्य होना चाहिये परन्तु स्त्री का शरीर पुरुष से छोटा कुछ कम बल होना चाहिये। तब गृहस्थाश्रम में सुख और उत्तम होते हैं, अन्यथा कुछ सुख तो नहीं होता, किन्तु दुःख ही भोगना पड़ता है, गृहाश्रम कृत्य(१३)नाना प्रकार गृहस्थों के व्यवहार, पञ्चमहा-यज्ञ, सन्तानोत्पत्ति, सन्तानों का सुशिक्षा पूर्वक विद्यादान, स्त्री पुरुष श्वसुर, सासू, भृत्य, गृह सम्बन्धि सब काम यथायोग्य करना, गार्हपत्यदीक्षादि होना, वानप्रस्थ दीक्षा (१४) वेदान्तसेवन योगाभ्यास शास्त्रों का सुविचार परमेश्वर की अत्यन्त भक्ति सब पदार्थों का गुणदोष विचार, शारीर पदार्थों में दोष दर्शन, हिताहित विचारादि करना, मोक्षविचार, उसके होने के उपायों का अनुष्ठान, संन्यास आश्रम दीक्षा, (१५) सब जगत् का कारण एक अद्वितीय परमात्मा और सब जगत् कार्य्य, परब्रह्म में दृढ़ निश्चय, धर्म का उपदेश और अधर्म का खण्डन, पक्षपात छोड़ के सब का हित करना। एक परमेश्वर परायण होके सर्वत्र घूमना मोक्ष का यथावत् निश्चय करना इत्यादि। मृत्युसंस्कार करना (१६) मृतक शरीर को स्नानादि से शुद्ध करना सुगन्ध युक्त करना, श्मशान में पांच हाथ लम्बी और तीन हाथ चौड़ी तथा तीन हाथ गहरी वेदी करके प्रथम अर्ध वेदी लकड़ी से भरनी। ऊपर मुड़दा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

रखना। फिर उस पर और बगल में लकड़ी चिरानी तथा एक हाथ भर पृथ्वी से उपर चिरानी चन्दन की लकड़ी कुछ १० वा २० सेर तो अवश्य चाहिये अन्य काष्ठ भी पलाश वा आम्रादिक होना, ३ तीन मण घी न्यून से न्यून २० सेर से कम न होना चाहिये। फिर अग्नि प्रवेश करना। पुनः शुक्ल यजुः के ३९ वें अध्याय के "स्वाहा प्राणभ्यः साधिपतिकेभ्यः" ईत्यादि मन्त्रों से चिता में कस्तूरी केसरादि युक्त घी का होम करना; जब तक मृतक शरीर भस्म न हो जाय। फिर शोक निवृत्यर्थ १० दिन कुछ अधिक वा न्यून दिन तक विद्वानों के साथ भाषण, विचार करना। जब शोक निवृत्त हो गया, तब विद्वानों को भोजन, दक्षिणा, धर्मात्माओं को यथा शक्ति देना। ए १६ सोलह संस्कारों में होम दानादि और वैद्यक शास्त्र की रीति से भोजन, पान, औषधादि सेवन करना। जिस्से शरीरारोग्य बढ़े और बुद्धि अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त होय, उस्से सब सुख होना, अन्यथा नहीं ॥१५॥

मूल १६. आर्य विद्यालय में वेदादि सनातन आर्ष ग्रन्थों का पठन और पाठन कराये जायंगे, वेदोक्त रीति से स्त्री और पुरुषों को सत्यशिक्षा करने में आवैगी।

व्याख्यान—संस्कृत वा भाषा में नाना प्रकार के ग्रन्थ बनाने और पढ़ाने में वेदानुकूल आवेंगे। कोई भाषान्तर भी पढ़ाये जायगे। परन्तु जो जो उत्तमत्ता युक्त होंगे मुख्य संस्कृत ग्रन्थों का ही पठन और पाठन कराया जायगा ॥१६॥

मूल १७. इस समाज में स्वदेशादिक हितार्थ दो प्रकार की शुद्धि के लिये प्रयत्न किया जायगा एक परमार्थ और द्वितीय लोकव्यवहार। इन दोनों का शोधन और शुद्धता की उन्नति तथा सब ससार के हित की उन्नति किइ जायगी।

व्याख्यान—जैसा "असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे" नौकर भी आपके स्वामी के काम से अपना काम प्रथम कर्ता है, पीछे स्वामी का। प्रातःकाल जब निद्रा से जगता है तब पहिले अपना मुख प्रक्षालन पुंछना आदि करके पुननौकरी का काम कर्ता है. वैसा ही सब मनुष्यों को उचित है कि अपना-अपना जन्म-देश का उपकार प्रथम करना और फिर अन्य देशस्थ मनुष्यों का उपकार करना। परमार्थ, ईश्वर, तद्भक्ति, तस्मादेव भय, तदाज्ञा पालन, सर्वजनोपकार, विद्याभ्यास, विद्यादान, अधर्म का सर्वथा त्याग, सत्यधर्म का सर्वथा अनुष्ठान, पक्षपात त्याग, सत्पुरुष संग, मन और इन्द्रियों का दमन, मोक्ष और वैराग्य, विज्ञानादि मोक्षोपायों का अनुष्ठान, इत्यादि परमाथ में लेना, और व्यवहार से ब्रह्मचर्यादि अनुष्ठान, यथाकाल न्यायपूर्वक पुरुषार्थ से राज्य और धनादि का संग्रह करना, वर्तमान में उसकी रक्षा यथायोग्य करना, रक्षित को युक्ति से बढ़ाना, बढ़े को सद्विद्यादि में यथायोग्य व्यय करना, कोई एक को राज्य वा धन का अधिकार नहीं देना। अयोग्य सन्तानों को भी भोजन वस्त्रादि योग्य क्षम मात्र से अधिक अधिकार न देना, किन्तु राज्य और धनादि की रक्षा उन्नति और व्यवस्था पालन धर्मात्मा विद्वान् और सज्जनों की सभा से ही सब व्यवस्था उत्तम उत्तम करना। शरीर के भोजनादि नियम सन्तानों को धर्म विद्या ही की सुशिक्षा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

करना, सत्य बात का प्रचार और मिथ्या बात का खण्डन करना और कराना। एक एक शरीर का नियम कुटुम्ब, घर, नगर, ग्राम, देश, और भूगोल, इन के सामाजिक नियम; सर्वोत्कृष्ट सर्वोत्कृष्ट यथायोग्य बांधना, जिनसे सब संसार का यथायोग्य परम हित होय वैसे वैसे अनेक सुनियम करना इत्यादि व्यवहार पक्ष में लेना ॥१७॥

मूल १८. इस समाज में न्याय जो पक्षपात रहित अर्थात् प्रत्यक्षादि प्रमाणों से यथावत् परीक्षित सत्य, धर्म, वेदोक्त, सोही माना जायगा; इस्से विपरीत न माना जायगा, यथाशक्ति।

व्याख्यान—आर्य सभासदों से कोई कहै कि यह बात वेदोक्त है तुम करो, तब दो बात विचारनी, जो वह युक्ति सिद्ध सत्य है तो माननी और युक्ति सिद्ध सत्यार्थ नहीं है, तो जानना कि ईस का यह अनर्थ करता है। फिर जो सर्वथा विद्वान् पक्षपात रहित लोगों को प्रत्यक्षादि प्रमाण और पदार्थ विद्या से युक्त नहीं अर्थ दिखता तो जानना कि यह वेदों का वचन नहीं है किन्तु कोइ की बनावट है, मतलब सिन्धू का वचन किं वा अविद्वान् का रचित है इश्वरोक्त नहीं। जब कोइ कहै कि वह काम परम्परा से चला आता है तुम लोग क्यों नहीं कर्ते? उस्से कहना कि वेदों में दिखला, पुस्तक के बीच में जो दिखलावे, फिर उस्से अर्थ करना, फिर जो अनर्थ होय, तो पूर्वोक्त रीति से ही निश्चय करके मानना वा छोड़ना। यथाशक्ति जितना अपना सामर्थ्य होय उस्से कमती काम कधी न रहै, अधिक श्रेष्ठ काम होय सो तो अच्छा ही है ॥१८॥

मूल १९. इस समाज की तर्फ से शिष्ट विद्वान् लोक सर्वत्र सत्योपदेश करने के लिये भेजे जायंगे; समयानुकूल।

व्याख्यान—जिस्से सब लोगों में सत्य असत्य यथावत् प्रकाशित होय, सत्य का ग्रहण सब लोक करैं और मिथ्याचार का त्याग करैं। तथा पाखण्डी धूर्त लोगों का खण्डन और धर्मात्मा सत्य-प्रिय विद्वानों का मण्डन और सत्कार सर्वत्र होय एतदाद्यर्थ यह नियम है ॥१९॥

मूल २०. पुरुष और स्त्री ईन दोनों के विद्याभ्यास के लिये भिन्न भिन्न आर्य-विद्यालय प्रत्येक स्थान में यथाशक्ति किये जायंगे। पुरुषों को पाठशाला में अध्यापन और सेवा प्रबन्धादि पुरुषों से ही प्रबन्ध किया जायेगा। तथैव स्त्रियों की पाठशाला का स्त्रियों से, विपरीत नहीं।

व्याख्यान—विद्या पुरुष और स्त्रियों को जब तक यथावत् नहीं होती तब तक उस देश में मनुष्यों को दुःख के दिन नष्ट होके सुख के दिन प्राप्त कभी नहीं होते। महापुण्य और धर्म यही है जो सत्य सनातन विद्या का प्रचार करना। यथोक्त रीति से प्रबन्ध होने से यथावत् विद्या होती और विघ्न कोई नहीं होता, इत्यादि प्रयोजन के लिये यह नियम है ॥२०॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मूल २१. आर्यसमाज, आर्यविद्यालय, आर्यप्रकाश पत्र और आर्य समाजाद्यर्थ धनकोश, इन चारों की व्यवस्था प्रधानार्य समाजानुकूल रहैगी। इनकी उन्नती और संरक्षण भी उस्से ही किया जायगा।

व्याख्यान—जो कुछ इन चारों का मुख्य प्रबन्ध आज्ञा और सम्यक् उनकी रक्षादिक मुख्य समाजानुकूल रक्खा है यह मुख्याधिकार प्रधानार्य समाजाधीन रहेगा। जिस्से किसी प्रकार व्यवस्थोलंघन कोई न कर सके। यथावत् उन्नति सब की होती जाय ॥२१॥

मूल २२. इस समाज में प्रधानादि सब सभासद् परस्पर प्रीत्यर्थ अभिमान हठ दुराग्रह और क्रोधादि दुर्गुण सब छोड़ के उपकार सुहृदता से सबसे निर्वैर होके स्वात्मवत् संप्रीति सबकी करनी होगी।

व्याख्यान—जो प्रीति से होता है सो काम वैर से कभी नहीं होता। वह छोटा है, मैं बड़ा हूं, मेरी बात झूठी भी होय, वही सत्य होय, सभा में बात कट जायेगी तो अप्रतिष्ठा मेरी होगी अर्थात् जैसे बनें वैसे मेरी बात सर्वोपरि रहैं, सत्य होय वा असत्य। ऐसा झुंठा हठ लेना कोई को नहीं चाहिये। यह सब का अभिप्राय रहे कि जो यथार्थ सत्य हैं वही स्थिर रहै। छोटा और बड़ा, छोटे और बड़े काम से ही मानना, अन्यथा नहीं ॥२२॥

मूल २३. विचार समय सब व्यवहारों में न्याययुक्त सर्वहित जो सत्य बात सम्यक् विचार से ठहरै उसी को सब सभासदों को विदित करके वही सत्य बात मानी जाय। विपरीत न मानी जाय। इसी का नाम पक्षपात छोड़ना है।

व्याख्यान—जिस देश में मनुष्यों को सुमति विचार युक्ति है उस देश का सौभाग्य नित्य ही बढ़ता जायगा, और दुःख सब नष्ट हो जायगा सब व्यवहारों में किं वा परमार्थ विचार में सदा सत्य की तर्फ ही रहना सबको चाहिये विपरीत को छोड़ के। मनुष्य की मनुष्यता यही है। अन्यथा पशुता ही जाननी ईत्यादि प्रयोजन के लिये यह नियम जानना ॥२३॥

मूल २४. जो जन ईन नियमों से अनुकूल आचरण करेगा उसको शिष्ठ समाज में ही स्थिर करना, वह धर्मात्मा सद्गुणी होय। इस्से विपरीत को साधारण समाज में रखना। और अत्यन्त प्रत्यक्ष दुष्ट को समाज से निकाल ही देना। परन्तु पक्षपात से यह काम नहीं करना, किन्तु ए दोनों बात शिष्ठ सभासदों के विचार से ही की जाय, अन्यथा नहीं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

व्याख्यान—शिष्ट की प्रतिष्ठा करनी दुसरे[1] को उपदेश और उत्साह देना तृतीय[2] से सदा उपेक्षा रखनी ॥२४॥

मूल २५. आर्यसमाज, आर्यविद्यालय, आर्य प्रकाश पत्र और आर्यसमाजाद्यर्थ धनकोश ईन चारों को रक्षा और उन्नति प्रधानादि सब सभासद तन मन और धन से यथावत् सदा करै।

व्याख्यान—ईन चारों की यथावत् प्रवृत्ति से आरम्भ से लेके उत्तरोत्तर मनुष्यों को महासुख लाभ होना अवश्य है ॥२५॥

मूल २६. जब तक नौकर करने और कराने वाला आर्यसमाजस्थ मिले तब तक और की नौकरी न करै और न अन्य को नौकर रक्खे। वे दोनों परस्पर स्वामी सेवक भाव से यथायोग्य वर्तें।

व्याख्यान—इस नियम से घर की नाई दोनों का अच्छा होगा और व्यवहार में भंग कधी नहीं होना, तथा धर्मरीति से धनाढ्य और दरिद्र का सुख से निर्वाह होना। इससे समाजादि की अत्यन्त उन्नति होगी ॥२६॥

मूल २७. जब जब विवाह, पुत्र जन्म महालाभ कि वा मरण अथवा कोई समय दान, धन व्यय करना होय, तब तब आर्यसमाजाद्यर्थ धनादि दान अवश्य करें। ऐसा धर्म काम कोई भी अन्य नहीं है, इस निश्चय को जान के कधो ही न भुलै।

व्याख्यान—इस नियम से आर्यसमाजादि की अत्यन्त उन्नति होने से स्वदेशादिस्थ मनुष्यादि को अत्यन्त सुखो का लाभ होगा। इसलीये यह नियम है ॥२७॥

मूल २८. इन नियमों से कोई नियम नया किया जायगा वा कोई निकाला जायगा, कि वा अधिक न्यून किया जायगा। सो सब शिष्ट सभासदों के विचार रीत से सब शिष्ट सभासदों को विदित करके हो, यथायोग्य करना होगा।

व्याख्यान—इस नियम से सब बुद्धिमानों को आगे विचार करने का अवकाश रहेगा। कोई बुद्धिमान् अत्यन्त बन्धन में नहीं पड़ेगा। किन्तु आगे आगे विचार शक्ति के बहाने का उत्साह बढ़ेगा। ईस्से विज्ञान नित्य बढ़ता ही जायगा ॥ ओ३म्. २८ ॥

---

१. द्वितीय को अर्थात् साधारण जन को। सम्पा०। २. तृतीय से अर्थात् दुष्ट से। सम्पा०।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

'पण्डित स्वामी दयानन्द सरस्वती' के लेखक

पण्डित गोपालराव हरि देशमुख

पण्डित गोपालराव हरिदेशमुख महाराष्ट्र में अपने समय के प्रमुख समाज सुधारक, श्रेष्ठवक्ता, विविध भाषाओं के विद्वान्, और महान् लेखक थे। इनके समाज सुधार कार्यों के कारण जनता जनार्दन ने इन्हें **'लोकहितवादी'** नाम से विभूषित किया था। आज भी ये महाराष्ट्र में 'लोकहितवादी' नाम से ही अधिक जाने जाते हैं। (हम भी आगे इनका उल्लेख 'लोकहितवादी' नाम से ही करेंगे)। आपने धार्मिक, नैतिक, चरित्र, इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र, समाजसुधार आदि विविध विषयों पर लगभग ४० छोटे मोटे ग्रन्थों की रचना की। आपने प्रमुख रूप से मराठी भाषा में ही लेखन कार्य किया। अक्टूबर सन् १८८२ में आपने **लोकहितवादी** नाम से एक मासिक पत्र का प्रकाशन भी आरम्भ किया था।

लोकहितवादी का जन्म १८ फर्वरी सन् १८२३ को पूना में हुआ था। आप का नाम 'गोपालराव और पिता का नाम 'हरि पन्त देशमुख' था। दक्षिण भारत में अपने नाम के आगे पिता का नाम जोड़ने की परिपाटी है। उसके अनुसार इनके नाम में 'हरि' शब्द इनके पिता के नाम का सूचक है। इसी प्रकार के नाम के साथ अपने प्राचीन स्थान वा कुल सूचक शब्दों के उल्लेख की भी रीति है। इसी रीति के अनुसार इनके नाम में 'देशमुख' शब्द का प्रयोग होता है। सह्याद्री बालघाट एवं गोदावरी से घिरा भूभाग 'देश' नाम से प्रसिद्ध है। इनका कोई पूर्वज कभी इस प्रान्त के राज्य का अधिकारी रहा होगा, उस से इनका कुल 'देशमुख' नाम से प्रसिद्ध हुआ। ब्रिटिश सरकार ने सन् १८७७ में दिल्ली दरबार के अवसर पर इन्हें 'रावबहादुर' उपाधि से अलंकृत किया था।

लोकहितवादी जन्मजात प्रतिभाशाली एवं जिज्ञासु स्वभाव के थे। अर्थशून्य पाठ एवं निरुद्देश क्रिया वा परम्परा के प्रति इनका विरोधी-स्वर बचपन से ही प्रकट होने लगा था। यथा—'प्राणायाम के समय नाक पकड़ने से क्या होता है ? ऐसे प्रश्न वे बालकपन में ही अपने शिक्षक से प्रायः पूछा करते थे।'[1]

अंग्रेजी शासन के आरम्भ के दिनों में ही अनेक मनस्वी व्यक्तियों ने महाराष्ट्र में देश जाति और समाज के उत्थान का कार्य प्रारम्भ किया था। इनमें विष्णुराव ब्रह्मचारी एक प्रमुख व्यक्ति थे (इनका उल्लेख 'लोक हितवादी ने प्रकृत लेख में भी किया है)। इनका **वेदोक्त धर्मप्रकाश** अद्भुत ग्रन्थ है[2]। धर्म, राजनीति, प्राचीन भारत में वैज्ञानिक उन्नति प्रभृति विविध विषयों के साथ ईसाई

१. लोकहितवादीः काल आणि कर्तृत्व, पृ० ५।

२. इन्होंने एक 'सुखदायक राज्यप्रकरणी निबन्ध' नामक अन्य ग्रन्थ भी लिखा था (द्र० लोकतिवादीः काल आणि कर्तृत्व, पृष्ठ २७९)।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

और मुसलमानों के मतों का खण्डन भी इस पुस्तक में प्रथमवार उपलब्ध होता है[1]। इस ग्रन्थ का प्रथम संस्करण मराठी भाषा में सन् १८५९ में प्रकाशित हुआ था। ग्रन्थकार ने स्वयं इसे व्रजभाषा में सन् १८६९ में प्रकाशित किया था। (यह संस्करण हमारे संग्रह में सुरक्षित है)। इस प्रकार महाराष्ट्र में जो समाज सुधार की प्रक्रिया आरम्भ हो चुकी थी, उसका लोकहितवादी के कार्य पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा।

ऋषि दयानन्द के अहमदाबाद जाने पर सन् १८७४ के अन्त में अथवा १८७५ के आरम्भ में लोकहितवादी का उनके साथ सम्पर्क हुआ। ऋषि दयानन्द के व्यक्तित्व और कार्य का इन पर बहुत प्रभाव पड़ा और वह उत्तरोत्तर बढ़ता चला गया। वे ऋषि दयानन्द के एक विश्वसनीय प्रभावशाली सहयोगी बन गये। 'लोकहितवादी-काल आणि कर्तृत्व' के लेखक डा० निर्मलकुमार फड़कुले ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है (द्र० पृ० १६)।

लोकहितवादी आर्यसमाज बम्बई के कई वर्ष तक प्रधान रहे। ऋषि दयानन्द ने इन्हें अपनी उत्तराधिकारिणी सभा का सदस्य भी नियत किया था। इसके साथ ही महाराष्ट्र में ऋषि दयानन्द को एक अन्य मनस्वी विद्वान् अनुयायी सहायक प्राप्त हुआ। इनका नाम था—**श्री महादेव गोविन्द रानाडे** न्यायमूर्ति। श्री रानाडे के प्रयत्न से ही ऋ० द० पूना पधारे थे। आपने ही उनके व्याख्यानों का न केवल प्रबन्ध किया था, अपितु उनका मराठी में अनुवाद कराकर उन्हें प्रकाशित भी किया। आज **पूना प्रवचन** अथवा **उपदेश मञ्जरी** के नाम से पूना के जो १५ व्याख्यान हमें उपलब्ध हो रहे हैं, इसका श्रेय श्री महादेव गोविन्द रानाडे को ही है। श्री रानाडे भी आर्यसमाज पूना के कई वर्ष प्रधान रहे और इन्हें भी ऋ० द० ने परोपकारिणी सभा का सदस्य बनाया था।

आर्यसमाज को महाराष्ट्र प्रान्त में उक्त दो महान् विभूतियां प्राप्त हुईं। फिर भी वहां आर्यसमाज का प्रचार नहीं हो पाया। इसमें प्रधान कारण सम्भवतः बम्बई आर्यसमाज में विद्यमान गुजराती समुदाय रहा हो। जहां तक हमें वहां के इतिहास का ज्ञान है, आर्यसमाज की स्थापना के कुछ वर्षों के पश्चात् बम्बई आर्यसमाज गुजरातियों के हाथों में चला गया और उन्होंने महाराष्ट्र प्रान्त की उपेक्षा की। यह कितने दुःख की बात है कि ऋषि दयानन्द के दृढ़ अनुयायी लोकहितवादी और न्यायमूर्ति रानाडे महाराष्ट्र के जनों में तो लब्ध-प्रतिष्ठ हैं, परन्तु इनका आर्यसमाज के साथ क्या सम्बन्ध था, इसे वहां कोई व्यक्ति नहीं जानता। अस्तु;

दोनों का परस्पर साक्षात् होने के पश्चात् लोकहितवादी गोपालराव हरि देशमुख के साथ ऋषि दयान्द का निरन्तर पत्र व्यवहार चलता रहा उनमें से लोकहितवादी के लिखे गये केवल १५ पत्र ३ पत्र सूचना और सब पारसल सूचना ही हमें प्राप्त हुई हैं, जिन्हें हमने 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' में यथास्थान प्रकाशित किया है इसी प्रकार लोकहितवादी तथा इनके पुत्र लक्ष्मण गोपाल देश-

१. मैंने म्लेच्छन के मत तोड़ के वेदोक्त धर्मप्रकाश ग्रन्थ रच्यो। पृष्ठ ८५८, व्रजभाषा सं०।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मुख के द्वारा लिखे गये ५-६ पत्र मिले हैं, जिन्हें हम 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' के तीसरे भाग में छापेंगे ।

श्री गोपालराव हरि देशमुख ने ऋषि दयानन्द के स्वर्गवास के पश्चात् अपने 'लोकहितवादी' (मासिक)के वर्ष १ अंक ४-५, जनवरी-फर्वरी १८८४' के सम्मिलित अंक में **'पण्डित स्वामी श्रीमद्दयानन्द सरस्वती'** शीर्षक से उनके व्यक्तित्व और कर्त्तृत्व को उजागर करनेवाला लगभग ४० पृष्ठ का एक निबन्ध प्रकाशित किया था। यह निबन्ध अक्टूबर सन् १९८० में 'मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय, दादर' में मुझे देखने को मिला। जनवरी १९८१ में पुनः बम्बई जाने पर मैंने इसकी फोटोस्टेट (झेरोक्स) कापी प्राप्त की। बाल्यावस्था के संस्कार रूप में मुझे मराठी का कुछ स्वल्प ज्ञान है, परन्तु मैं उसका भाव समझ लेता हूं। लोकहितवादी ने अपने इस निबन्ध में ऋषि दयानन्द के व्यक्तित्व, विद्वत्ता, और कार्य की महत्ता का जिन नपेतुले सारगर्भित शब्दों में तटस्थ भाव से सटीक वर्णन किया है उन्हें पढ़ कर पाठक भाव विभोर हो उठता है। मराठी भाषा का स्वल्प ज्ञान होते हुए भी मैं बिना रुके और बिना श्रम का अनुभव किये उसे एक बार में ही पढ़ गया। इसे पढ़कर मेरी इच्छा हुई कि इस निबन्ध को आर्यभाषा में प्रकाशित करके उत्तर भारतीय आर्य जनों को इससे परिचित कराना चाहिये। विद्वान् मनस्वी लोकहितवादी ने ऋषि दयानन्द का जो मूल्याङ्कन किया है, वह कोई अन्य व्यक्ति नहीं कर पाया, क्योंकि रत्न की परीक्षा जौहरी[1] ही कर सकता है।

सन् १९८० में यज्ञमूर्त्ति श्री रङ्गनाथकृष्ण सेलुकर जी के सोमयाग के समय मैं नांदेड़ गया था। वहां अनेक आर्यजनों से परिचय हुआ। १९८१ में श्री सेलुकर जी के ही अग्निचयन महायाग को देखने के लिये पुनः नांदेड़ गया। उस समय मैंने महाराष्ट्रिय आर्य प्रतिनिधि सभा के उपमन्त्री तथा नेता श्री सुभाषचन्द्र बोस महाविद्यालय नांदेड़ के प्राध्यापक श्री कुशलदेव शंकरदेव वडवलकर से लोकहितवादी के ऋ० द० के सम्बन्ध में लिखे गये निबन्ध का हिन्दी रूपान्तर करने के लिये निवेदन किया। आपके द्वारा मेरे निवेदन को स्वीकार करने पर मैंने उक्त निबन्ध की झेरोक्सकापी

---

१. 'लोकहितवादीः काल आणि कर्त्तृत्व' के लेखक निर्मल कुमार फडकुले ने अपने ग्रन्थ के पृष्ठ २३९ पर लिखा है कि पण्डित स्वामी श्रीमद्दयानन्द सरस्वती' लेख लोकहितकादी के ईसवी सन् १८८३ के मध्य प्रकाशित हुआ। पुनः लोकतिवादीचें प्रकाशित साहित्य' (परिशिष्ट २' पृष्ठ ३४९) में इसके प्रकाशन का काल 'जानेवरी फेब्रूवरी सन् १८८३' लिखा है ये दोनों लेख अशुद्ध है। 'पण्डित स्वामी श्रीमद्दयानन्द सरस्वती' लेख लोकहितवादी के जनवरी फरवरी सन् १८८४ के सम्मिलित अङ्क में छपा है। श्री फडकुलेजी की भूल के दो कारण हैं—प्रथम—ऋषि दयानन्द के स्वर्गवास की ३० अक्टूबर १८८३ तारीख का ज्ञान न होना। दूसरा—जनवरी फरवरी के अङ्क पर मुद्रण दोष से १८८४ में १८८३ छप जाना। हमने मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय से इस अङ्क की जो झेरोक्स कापी उपलब्ध की है, उसके मुख पत्र पर ३ के स्थान पर ४ हाथ से बनाया हुआ है।

२. श्री लोकहितवादी का जीवन **'सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता'** अथवा **'सुखदुःखे समेकृत्वा'** आदि शास्त्र वचनों के सर्वथा अनुरूप था। उनकी इस सुदृढ मनःस्थिति को दर्शाने वाली एक घटना का उल्लेख आगे पृष्ठ २२ पर करेंगे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उन्हें भेज दी। अनेक कार्यों में व्यस्त रहते हुए भी आपने उक्त निबन्ध का हिन्दी अनुवाद करके मुझे भेज दिया। इस महनीय कार्य के लिये मैं तो उनका हृदय से आभारी हूं ही, समस्त हिन्दी भाषी आर्य जनता भी उनकी आभारी रहेगी।

किसी भी भाषा में मूलरूप से लिखे गये लेख वा ग्रन्थ के भाषान्तर में वह स्वाभाविकता और सरसता नहीं आती जो मूलभाषा में होती है। फिर मराठी जैसी समृद्ध भाषा में और लोकहितवादी जैसे सशक्त लेखक; जिनके लेख में भावानुकूल चुने गये शब्दों की माला गुम्फित हो, का भाषान्तर करना ही कठिन है, क्योंकि उस भाव को व्यक्त करने वाले सशक्त पर्याय हिन्दी भाषा में दुर्लभ हैं। इस कठिनाई के होते हुए भी श्री प्रा० कुशलदेव जी ने लेखक के भावों को सुरक्षित रखते हुए जो अनुवाद प्रस्तुत किया है वह बहुत अच्छा है। उन्होंने अपने अनुवाद में जो शैली अपनाई है, उसे हम उन्हीं के शब्दों में नीचे दे रहे हैं—

अनुवादक की ओर से कुछ सूचनाएं

इस जीवन-चरित्रात्मक निबन्ध के मूल लेखक न्यायमूर्ति गोपालराव हरि देशमुख लोकहितवादी के कतिपय मराठी शब्दों या वाक्यों को इस प्रकार ( ) के कोष्ठ में रखा गया है। लोकहितवादी के मूल शब्दों या वाक्यों को कोष्ठ में लिखने के निम्न कारण हैं—

१—ये शब्द और वाक्य लोकहितवादी जी की भाषा शैली की विशेषता को रेखांकित [स्पष्ट] करते हैं।

२—कोष्ठान्तर्गत अनेक शब्द मनमोहक और आकर्षक भी हैं।

३—उन शब्दों और वाक्यों का न तो शब्दशः अनुवाद हो सकता है और न ही उनका पर्यायवाची शब्द दिया जा सकता है, केवल उनका तात्पर्यार्थ या भावार्थ ही दिया जा सकता है। शायद इसी परिस्थिति के कारण यह अनुवाद छायानुवाद अथवा भावानुवाद हो गया है।

इस कार्य को करते समय अनुवाद की [हिन्दी] भाषा को हिंदी लेखन शैली का सहज और पूर्ण रूप देने की दृष्टि से इस प्रकार[ ] के कोष्ठ में शब्द बढ़ाये गये हैं, जो मूल, लेखक के भाव, तात्पर्य और आशय की रक्षा करते हुए उसे स्पष्ट भी करते हैं। कहीं-कहीं आशय को स्पष्ट करने के लिये अपनी ओर से कुछेक शब्द और वाक्य भी बढ़ाये गये हैं, परन्तु ऐसा बहुत ही स्वल्प हुआ है।

लोकहितवादी जी के कथ्य एवं उनकी मराठी शैली को निरन्तर सुरक्षा का ध्यान रखने के कारण अथवा उनके कथ्य और आशय को सुरक्षित रखने के प्रयास में उनकी प्राचीन मराठी शैली का मेरी अनुवाद की [हिन्दी] भाषा पर भी प्रभाव पड़ा है। जैसी उनकी मराठी शैली ने हमारी हिन्दी को प्रभावित किया है, ठीक वैसे ही हमने जाने अनजाने उनकी पुरातन मराठी गद्य शैली को इस अनुवाद द्वारा आधुनिक हिन्दी गद्य शैली में रूपांतरित कर दिया है।

इस हिन्दी अनुवादक को अन्तिम रूप देने में मेरे भाई (गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के छात्र होने के नाते] व अग्रज वैद्य सुभाष कर्मवीर जी कंधारकर ने जो अयाचित और उत्साहपूर्ण

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

[उत्स्फूर्त] सहयोग दिया है, उसे मैं कभी नहीं भुला पाऊंगा। अनुवाद करते समय यह अनुभव हुआ कि कुछ स्थानों पर प्रसंग या विषय को स्पष्ट करने के लिये टिप्पणियों का देना बहुत जरूरी है, अतः मूल पाठ पर संख्या देकर पृथक् परिशिष्ट रूप में टिप्पणियों को भी जोड़ दिया गया है।

श्रद्धेय पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक ने मुझे इस कार्य के योग्य समझा, यह मैं अपना अहोभाग्य समझता हूं।

नेतजी सुभाषचन्द्रबोस महाविद्यालय, नांदेड़ कुशलदेव शंकरदेव वडवलकर

माननीय अनुवादक महोदय की सूचना के साथ ही हम इस प्रसंग को समाप्त करते हैं और पाठकों से निवेदन करते हैं कि वे भी लोकहितवादी की लेखनी से प्रसूत रस का आस्वादन करें।

स्थितप्रज्ञ मनस्वी महात्मा लोकहितवादी

शास्त्रों में स्थितप्रज्ञ मनस्वी और महात्मा के जो लक्षण शास्त्रकारों ने लिखे हैं, लोकहितवादी पं० गोपालराव हरि देशमुख का जीवन उनके सर्वथा अनुरूप था। वे प्रचण्ड सांसारिक विपदाओं के उपस्थित होने पर भी अपने छोटे से छोटे कर्त्तव्य को निभाने के लिये सर्वदा उद्यत रहते थे। उनके जीवन की ऐसी ही एक घटना डा० निर्मलकुमार फडकुले ने अपने 'लोकहितवादीः काल आणि कर्तृत्व' नामक ग्रन्थ के पृष्ठ १९-२० पर लिखी है। उसे हम लोकहितवादी के अनुपम जीवन-दर्शन की झांकी के रूप में नीचे उद्धृत करते हैं—

'लोकहितवादी के सन् १८८३ में गणपतराव, १८८७ में रामचन्द्रराव तथा १८९२ में कृष्णराव नाम के तीन पुत्र दिवंगत हुए। सन् १८८५ में इनकी पत्नी सौ० गोपिकाबाई का स्वर्गवास हुआ। इतना ही नहीं, उनकी दोनों विवाहिता पुत्रियों का भी निधन हो गया। इन प्रचण्ड आघातों से यद्यपि उनकी जीवन ज्योति कम्पायमान थी, पुनरपि उन की जीवन-यापन की वृत्ति उसी प्रकार शान्त तथा अलिप्त जैसी थी। सब दुःखों को विवेक से निगलते हुए कार्य पूर्ववत् निष्ठापूर्वक करते रहे। एक बार पुत्र की अन्त्येष्टि से लौटे ही थे कि किञ्चित् काल पश्चात् ही उन से आर्यसमाज के कार्य के सम्बन्ध में बातचीत करने के लिये सुन्दरलाल जी नाम के एक गृहस्थ उनके पास पहुंचे। अपने चेहरे पर किसी प्रकार के दुःख वा शोक का चिह्न न लाते हुए सुन्दरलाल जी के साथ उनके मनोनुकूल वार्त्ता करते रहे। परन्तु जब घर के नौकर ने उस समय घटी घटना सुन्दरलाल जी को बताई तो उन्होंने ऐसी मनःस्थिति के समय कष्ट देने के लिये क्षमा मांगी। परन्तु लोकहितवादी ने कहा—'समाज के कार्य के लिये अपने करने योग्य कार्य में उदासीनता दिखाना मेरे मत में अच्छा नहीं, सांसारिक घटनाओं से ऐसी बातचीत में दुःख मानना उपयोगी नहीं, तथा उसी प्रकार यदि कोई उत्कृष्ट कार्य सिद्धि हुई हो तो उससे हर्षित होना उचित नहीं। मैंने अपनी ओर से अपने बच्चों को विद्याज्ञान देने में कोई कमी नहीं रखी, फिर उनका अपना-अपना भाग्य उनके साथ है। यह संसार सुखदुःखमय है। इसलिये उनके विषय में सुख दुःख मानने का कोई कारण नहीं।"

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पंडित स्वामी श्रीमद्दयानन्द सरस्वती

मूल लेखक—न्यायमूर्ति गोपालराव हरि देशमुख लोकहितवादी

अनुवादक – प्रा० कुशलदेव शंकरदेव वडवलकर नेताजी सुभाषचंद्र बोस महाविद्यालय, नांदेड़ (महाराष्ट्र

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः ।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ प्रकृति सिद्धमिदं हि महात्मनाम् ।।*

—भर्तृहरि

जिन महात्मा दयानंद सरस्वती के संबंध में आज हम चार शब्द लिखने जा रहे हैं [पुरातन काल से ही] सत्पुरुषों का जीवन चरित्र लिखने का एक महाजन मार्ग रहा है, उसी [महाजनो येन गतः स पंथा] का अनुसरण हम यहां पर कर रहे हैं। संप्रति यहां पर जो स्वामी दयानंद जी का जीवन चरित्र लिखना है। उसमें वे किस कुल में उत्पन्न हुये, उनके शैशव, यौवन और प्रौढावस्था के बाद का बहुमुखी कार्य, उनका देशाटन इत्यादि का वर्णन करना हमारा उद्देश्य नहीं है, और यह हमें अभीष्ट भी नहीं है। हम तो यहां पर उनके जनमानस पर पड़े हुये सद्गुणों के प्रभाव का संक्षिप्त वर्णन कर उनके जीवन का उद्देश्य क्या था, तथा ध्येय प्राप्ति के लिये वे किन-किन क्षेत्रों में सतत प्रयत्नशील रहे, तथा किस प्रकार अपने कार्य में यशस्वी हुए। उसी प्रकार किन-किन विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यमों से अपने प्रिय तथा आदरणीय आर्यावर्त्त देश की उन्नति के लिये वे यत्नशील थे, इत्यादि कार्यों की रूपरेखा (तांत्रिक) का संक्षेप में वर्णन करना ही हमारा उद्देश्य है। यदि पण्डित स्वामी दयानन्द जी का संपूर्ण चरित्र लिखा जाय, तो वह तो एक विस्तृत बृहद् ग्रन्थ का रूप धारण कर लेगा, परन्तु यहां पर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि इस प्रकार का संपूर्ण जीवन चरित्र लिखने की न तो हमारे पास क्षमता है और न ही तदनुकूल स्थल और समय की यथोचित अनुकूलता और विपुलता है। इसलिये ऊपर लिखे अनुसार हम स्वामी दयानन्द जी के सम्बन्ध में उनकी कार्य प्रणाली (तांत्रिक) का वर्णन कर उस सत्पुरुष की नगण्य सी सेवा कर रहे हैं।

यदि स्वामी दयानन्द जी का समग्र जीवन चरित्र लिखना ही हो तो उसमें उनके यायावरीय जीवन[१] काल में, उनके द्वारा विभिन्न स्थानों पर धर्मादिक नाना विषयों पर किये गये शास्त्रार्थों के इतिहास[२] का भी समावेश करना होगा, जिससे यह ग्रन्थ अत्यन्त ही बृहद् होगा। स्वामी जी ने अपने जन्म से लेकर संन्यास ग्रहण पर्यन्त की आत्मकथा तो स्वयं लिखकर प्रकाशित की है, और विभिन्न

---

*विपत्ति के आने पर जो धैर्य धारण करता है, समर्थ होने पर जो क्षमा करता है, सभाओं में जो कुशलता से भाषण करता है, रणक्षेत्र में जो पराक्रम दिखाता है, यशप्राप्ति में जिसकी अभिरुचि है, वेद तथा उत्तम शास्त्रों के श्रवण का जिसको व्यसन है, ऐसा व्यक्ति स्वभाव से ही महात्मा होता है।

टिप्पणी—मूल लेख में टिप्पणी की जो संख्या दी है उनकी टिप्पणियां लेख के अन्त में देखें।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्थानों पर उनकी व्याख्यान मालाओं के जो सत्र आयोजित हुये, उनमें आत्मकथा-कथन[3] का एक विषय भी रहा है उनकी [पुणे[4] व्याख्यानमाला[5] के साथ] आत्मकथा विषयक व्याख्यान भी अनेक भाषाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। इसलिये हम उसकी यहां पर पुनरुक्ति अनावश्यक समझते हुये, ऊपर लिखे अनुसार उनके जीवन-चरित्र की प्रमुख, विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण तथा सभी के लिये वंदनीय ग्राह्य और अनुकरणीय ऐसी अनेक घटना संदर्भों का विवेचन करने का ही हमारा संकल्प है।

स्वामी दयानन्द जी जैसे व्यक्ति इस देश के दौर्भाग्य से अत्यन्त ही कम जन्म लेते हैं, यदि कोई तद्वत् विरले मनुष्य जन्म लेते भी हैं तो उनकी आयु बहुत ही कम होती है। यह आर्यावर्त्त देश का घोर दुर्दैव है कि प्रथम तो उत्तम मनुष्य व उत्तम पदार्थों की प्राप्ति अत्यन्त ही दुर्लभ है, यदि प्राप्ति होती भी हैं तो उनके दीर्घायु होने के लिये दैवानुकूलता का होना भी जरूरी है, परन्तु वैसी दैवानुकूलता अपने भाग्य हीन [आर्यावर्त्त] देश के भाग्य में नहीं है यह बात अब तक के अनुभव के आधार पर [हस्तामलकवत्] स्पष्ट ही है। न जाने क्यों सभी ओर से अपने इस भारतवर्ष को वनवास व विभिन्न आपदाओं को भोगने के लिये मजबूर होना पड़ रहा है। क्या अपने इस भारतवर्ष का प्रारब्ध ही इस प्रकार का है कि उसके सौभाग्य में मनोनुकूल कोई भी घटना नहीं घट रही है? शूर, वीर, वक्ता, पंडित, ज्ञानी दार्शनिक, कुशल-कलाकार, शिल्पज्ञ देशैकनिष्ठ व्यापार कुशल, परिश्रमी, साहसी (श्रमसाहक) धार्मिक, उदार, सदाचारी, निष्काम कर्मयोगी (निरभिलाषी) निरभिमानी, और समसामयिक घटनाओं की वास्तविकता को जानने वाले (प्रसंगानुरोधी) मनुष्य इस देश में जितने होने चाहिये यदि उतने व्यक्ति मैदान में निकल आयें तो इस देश का इससे बढ़कर और कौन सा भाग्योदय होगा ?

स्वामी दयानंद जी के व्यक्तित्व में उपरोक्त कितने ही गुण एक साथ एकाकार हो चुके थे, इसीलिये यह कहे विना नहीं रहा जाता कि वे अद्वितीय पुरुष थे। वक्तृत्व शक्ति, पांडित्य, ज्ञान, (ज्ञानवत्व), देशकल्याणैकनिष्ठा, परिश्रम, साहस (श्रमसाहकता), धार्मिकता, औदार्य, सदाचारी, निष्कामकर्मयोगित्त्व, निरहंकारित्व, और प्रसंगानुरूप निर्णय लेने की क्षमता (प्रसंगानुवर्तित्व) इत्यादि गुण स्वामीजी में पूर्णतया निवास करते थे। इन सब गुणों का वर्णन उनके निर्वाण के पश्चात् सभी देशी और विदेशी पत्रकारों ने तथा मासिकादि ग्रन्थकर्त्ताओं ने अपने लेखों में किया ही है, पुनः उनके गुणों के वर्णन की आवश्यकता नहीं है, हमने ऊपर जो उन्हें एक विशेषण दिया है, उसमें उनके सभी गुणों का समावेश (अंतर्भाव) तटस्थ, निष्पक्ष व निर्मत्सरता [पूर्वाग्रह राहित्य] के साथ समुचित प्रकार से हो जाता है; ऐसी हमारी धारणा है। वह विशेषण 'अद्वितीय' यह क्योंकि सभी लेखकों ने दयानंद जी के व्यक्तित्व में इस अद्वितीयता का प्रत्यक्ष दर्शन किया था। इस कथन में किञ्चिन्मात्र भी अतिशयोक्ति नहीं है (दयानंदजीच्या अस्तित्वात त्यांणी या 'अद्वितीयत्वा' चा पूर्ण उपभोग घेतला असे म्हणाण्यास हरकत नाहीं)। स्वामीजी में धैर्य, गांभीर्य, मनोत्साह और उस के अनुरूप प्रमाद रहित आचरण ये अपूर्व एवं पराकोटि का था, ऐसा असाधारण

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पुत्र-रत्न जिस मां की कोख से उत्पन्न हुआ है, उसकी कोख धन्य है, हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि जिस आर्य भूमि पर उन्होंने जन्म धारण किया, तथा जहां उन्होंने अपनी अज्ञान-निवारण प्रचार-यात्रा द्वारा अपने तपोमय और ज्ञान-कर्म संपन्न व्यक्तित्व का परिचय दिया, वह भूप्रदेश, वहां के लोग, वे बांधव, और वहां का समाज, सौभाग्यशाली हो गया, दयानंदजी का यहां जो हम यह वर्णन कर रहें हैं। इसमें अतिशयोक्ति का भाग किञ्चिन्मात्र भी नहीं है। उनकी जो कुछ यथार्थ-स्थिति थी और उन्हें जो जनता जनार्दन से प्रतिष्ठा मिलती थी, उसको ध्यान में रखते हुये, यहां उनके गुण वैभव का सामान्यतः (उगीच) वर्णन किया जाता है।

जितने भी ऋषि-महर्षि, साधु-संत आज तक इस भारत भूमि पर उत्पन्न (अवतरित) हुये, उन महापुरुषों की माला में 'परिगणन' की दृष्टि से ये सत्पुरुष स्वामी दयानन्द सरस्वती सभी ढंग से योग्य (सत्पात्र) हैं। इनका संपूर्ण जीवन जगद्धितार्थ संघर्ष [शील] और देशोन्नति के लिये अनथक परिश्रम करने में ही व्यतीत हुआ। उन्होंने अपनी अगाध विद्वत्ता, वैदिक धर्म के प्रति गहरी निष्ठा और तत्कालीन ज्ञानी और ऐश्वर्य सपन्न (श्रीमान्) व्यक्तियों के सहयोग से आर्यावर्त्त के चतुर्थांश भाग पर तो कम से कम अपने आलौकिक ज्ञान का प्रभाव स्थापित किया था ऐसा कहने में अतिशयोक्ति प्रतीत नहीं होती। राजस्थान, सिंध; बिलोचिस्तान, पाकिस्तान और पंजाब [वायव्य प्रान्त] प्रदेशों में राजा से लेकर रंक तक प्रायः सभी समझदार (ज्ञाते) लोग स्वामी जी के अनुयायी बन गये थे। उन सबने स्वामी जी के अनपेक्षित व आकस्मिक निधन का दुःखद समाचार (दुर्वार्ता) सुनकर अश्रुपात किया, और सभी फूट-फूट कर रो उठे, इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। कारण कि महर्षि दयानन्द का व्यक्तित्त्व ही ऐसा था कि उनकी मृत्यु से उनके अनुयायियों को अतिशय शोक [महाशोक] होना स्वाभाविक था।

अनेक लोगों से यह सुनने में आया कि दयानद जी के इतने जल्दी निधन के पीछे कोई तो गुप्त षड्यन्त्र जरूर रहा होगा, परन्तु हमारा तो इस लोकवार्त्ता पर थोड़ा सा भी विश्वास नहीं बैठता क्यों कि दयानंद जी से न तो किसी का द्वेष था और नहीं ईर्ष्या थी इसलिये गुप्त षड्यंत्र से उनकी आकस्मिक मृत्यु होने का कोई कारण नहीं है। हमारा तो इस लोकवार्ता के विपरीत यह मत है कि स्वामी जी अपने परिचित व्यक्तियों में अजातशत्रु माने जाते थे तथा वे हमेशा उन (परिचित व्यक्तियों) के साथ रहते थे ऐसी स्थिति में स्वप्न में भी हम कल्पना नहीं कर सकते कि किसी षड्यंत्र के निंदित मार्ग से उनकी हत्या का प्रयत्न हुआ होगा, स्वामी जी शारीरिक दृष्टि से बहुत ही सशक्त और उनका शरीर (अंगकाठी) बहुत ही सुदृढ़ था इसलिये इतनी जल्दी उन्हें मौत का निमंत्रण आयेगा, इसकी किसी को भी 'कल्पना' नहीं थी इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि मृत्यु के द्वारा उन पर झटपट [अति-शीघ्र] आक्रमण करने के कारण लोगों ने गुप्त षड्यंत्रों की संभावनाओं की कल्पना कर डाली, तो भी हम यहां पर यह विशेष रूप से कहना चाहते हैं—निधन से एक डेढ महीने पूर्व स्वामी जी बीमार थे और वही बीमारी कालांतर में [आगे चलकर] तीव्र हो गई और धीरे-धीरे स्वामीजी की जीवन

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शक्ति का ह्रास होने लगा और उसी से उनका २९ अक्तूबर[७] सन् १८८३ में अर्थात् आश्विन वद्य ३०, शक १८०५, विक्रमी संवत् १९४० के दिन अजमेर में जयपुर[८] [भिनाय] नरेश की कोठी में महा-निर्वाण हुआ, स्वामी जी के आकस्मिक दुःखद निधन का समाचार तडित्यंत्र (तार) से ताबडतोड चारों ओर फैल गया, स्वामी जी की मृत्यु का समाचार पाते ही समस्त भारतवर्ष को अचानक एक बहुत बड़ा आघात पहुंचा। निधन से आठ दिन पूर्व स्वामी जी का स्वास्थ्य बिगड़ जाने का समाचार तार द्वारा बम्बई उनके शिष्यों को मिला था। उसी समय शिष्य मण्डली बम्बई से निकलकर अजमेर पहुंच गई थी। परन्तु उस समय स्वामी जी के स्वास्थ्य में सुधार देखकर यह मण्डली पुनः बम्बई वापस लौट आई। तत्पश्चात् अचानक उनकी मृत्यु का दुःखद समाचार तार द्वारा प्राप्त हुआ। इस प्रकार इस महापुरुष (सत्पुरुष) का निधन अकस्मात् हो गया, इस कारण अनेक उनके अनुयायियों परमप्रिय शिष्यों को अतिशय महाशोक हुआ। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

स्वामी दयानन्द जी अपने प्रिय आर्यावर्त्त तथा अपने परम पूज्य [प्राण प्रिय] वैदिक धर्म के संबन्ध में कट्टर (विलक्षण) स्वाभिमानी थे, और उनका यह स्वाभिमान यथार्थ के धरातल पर आधारित था। इस विषय में लोगों को समझाने व उन्हें विश्वास दिलाने के लिये वे सदैव तत्पर रहते थे। सभी भारतीय (व्यक्ति) परस्पर एक-दूसरे का आर्य शब्द से संबोधित करें। और इसी प्रकार की परिपाटी चलाने का उनका विशिष्ट आग्रह था। तदनुसार सन् १८७२ की सार्वदेशिक (सार्वत्रिक) जनगणना वर्ष में सरकार द्वारा प्रसारित पत्रक में जातिभेद के खाने में हिंदू जाति के स्थान पर आर्य जाति का उल्लेख करने के लिये सरकार और समाज को बड़ी आस्था के साथ उन्होंने प्रेरणा[९] दी थी, परन्तु उस समय उनकी वह सूचना और आग्रह शासन और जन समुदाय के गले उतर नहीं पाया, अर्थात् दोनों में से उसे किसी ने भी स्वीकार नहीं किया—ऐसा प्रतीत होता है, क्योंकि आगे चलकर जनगणना की जो रपट प्रकाशित हुई, उसमें आर्य जाति का कहीं पर भी उल्लेख नहीं हुआ। हिंदू जाति की अपेक्षा आर्य जाति लिखने के आग्रह विशेष की पृष्ठ भूमि में स्वामी जी की यह भूमिका थी कि-आर्यावर्त (हिंदुस्तान) के वैदिक धर्मानुयायी आर्य थे किन्तु उनके श्याम वर्ण के आधार पर मुसलमानों ने उन्हें हिंदू कहा[१०] ऐसी स्थिति में हिंदू कहते ही केवल शाब्दिक अर्थ के आधार पर शारीरिक रंग (वर्ण) का ही भेद स्पष्ट होता है और इसीलिये स्वामीजी के मतानुसार आर्य शब्द से धर्म वा स्वदेश [निवास स्थल विशेष] (वास्तव्य-निवास भूमि) का ही भेद स्पष्ट प्रतीत होता है। इस प्रकार सरकार के लिये भी जातिभेद के कालम में आर्य शब्द का प्रयोग औचित्य रखता था, परंतु इस क्षेत्र में स्वामीजी को सफलता नहीं मिली, फिर भी उनके व्याख्यानों से और [अन्यत्र भी] निरंतर आर्य शब्द के प्रयोग से जनभाषा में आर्य शब्द का प्रयोग आपसी बातचीत में तथा लेखों में प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त होने लगा, ऐसा आर्य शब्द का प्रयोग इससे पूर्व नहीं होता था। इस आर्य शब्द के अर्थ और उसकी-गरिमा-महिमा से भी हम अपरिचित थे। इस आर्य शब्द से आबाल वृद्ध को परिचित कराने का सम्पूर्ण श्रेय श्रीमद्दयानंद सरस्वती जी को ही है।

✤ यह निर्देश दक्षिण भारतीय पञ्चाङ्ग के अनुसार है। उत्तर भारतीय पञ्चांग के अनुसार कार्तिक बदी' जानना चाहिये।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आधुनिक काल में वैदिक धर्म के प्रति अपूर्व स्वाभिमान [सर्वप्रथम] स्वामी दयानंद जी सरस्वती ने ही अभिव्यक्त किया। उनका कहना था कि वेद ईश्वर प्रणीत हैं और उनमें सभी प्रकार का मौलिक ज्ञान और उनके बीज विद्यमान हैं और वेदशास्त्र में सदोष स्थल एक भी नहीं है। ईश्वर प्रदत्त ज्ञान और धर्मादि की व्याख्या सब उसी में है, वेदों के बाद जितने भी ग्रन्थ ईश्वर प्रणीत निर्दिष्ट किये गये हैं, वे सब झूठे हैं और शुद्ध वास्तविक ज्ञान प्रतिपादन करने वाले नहीं है। उनके मंतव्य का अनुसरण कर आगे बढने के लिये उन्होंने संपूर्ण भारतवर्ष में आर्यसमाज नामक धार्मिक संस्था की स्थापना की। उन्होंने इस संस्था के द्वारा वैदिक सिद्धांतों के प्रसार का अभियान चलाया था। इस प्रकार उनके द्वारा स्थापित आर्यसमाज दक्षिण और उत्तर भारत और उसी प्रकार वायव्य प्रांत और पंजाब के इस विस्तृत भूभाग पर विद्यमान है और उनके मतानुयायी [वैदिक मतावलम्बी] उन-उन समाजों में हजारों की संख्या में विद्यमान हैं।" स्वामीजी का विचार था कि—हिंदुओं में अर्थात् आर्यों में 'नमस्कार' कहने और लिखने की जो परंपरा चालू है. उस पारंपरिक अभिवादन 'नमस्कार' के स्थान पर 'नमस्ते' कहने और लिखने की प्रथा प्रचलित होनी चाहिये ऐसा उन का आग्रह था। और उसके अनुरूप उन के द्वारा स्थापित आर्यसमाज के सदस्यों और आर्य परिवारों में नमस्ते कहने की प्रथा प्रचलित की, जो अब भी चालू है। इस प्रकार स्वामी दयानंद जी के वैदिक धर्म को सुदृढ़ और परिपुष्ट करने के लिये अनथक प्रयास चालू थे। यदि इस प्रयत्न का स्वरूप विशाल रूप धारण करता तो कितना अच्छा होता। यदि इस धरा पर स्वामी जी और कुछ दिन रहते तो आर्यावर्त्तवासी लोगों की दृष्टि में और अधिक विशेष उभर कर आते, पर इस प्रकार विचार का अब कोई औचित्य भी नहीं है उस दिव्य महापुरुष के साथ ही उनका स्वाभाविक और उनके [सूक्ष्म महत्प्रयास] सब प्रयास अस्त हो गये फिर उस महान्, आत्मा का पुनर्जन्म हो सकता हो तो होवे।

स्वामी जी वैदिक धर्म के कट्टर अभिमानी थे और अपने इस अभिमान की सत्यता को तर्क से सिद्ध करने का उनका प्रयास इतना स्तुत्य था कि उसमें किञ्चिन्मात्र भी अपरिपक्वता किसी को भी नजर नहीं आयी। वैदिक ग्रंथ के अभ्यास [अध्ययन] और उस पर शतशः टीकात्मक पुस्तकों के अवगाहन के कारण वे इस क्षेत्र के मर्मज्ञ बन गये थे। इस प्रकार के अभ्यास से उनकी यह धारणा बन चुकी थी कि वेद संहिता ईश्वर निर्मित हैं इसीलिये वे अपौरुषेय हैं ये संहितायें स्पष्ट रूप में ईश्वरीय वाणी हैं। इन संहिताओं के निर्माण के बाद ही ब्राह्मण ग्रन्थादि व्याख्यात्मक ग्रन्थों की रचना हुई, जिनका उद्देश्य संहिताओं के अर्थ का स्पष्टीकरण करना और इसी हेतु सरलतम सुग्राह्य व्याख्या प्रस्तुत करना था। स्वामी का मंतव्य था कि समस्त ग्रन्थ संपदा में ईश्वर निर्मित ग्रंथ ही एक मात्र वेद संहितायें हैं, और उनमें इह लौकिक और पारलौकिक सर्वांगीण ज्ञान है। प्रायः वे कहा करते थे कि वेद संहिताओं में संक्षिप्त और बीज रूप में सभी ज्ञान विज्ञान और विविध कलाओं का अन्तर्भाव है हमेशा वे इस बात का प्रतिपादन करते थे कि कालांतर में विद्वानों के बुद्धि के सामर्थ्य और शक्ति के अनुसार ज्ञान और पदार्थ आदि शास्त्रों पर पृथक्-पृथक् और अलग-अलग विशालकाय ग्रन्थों की निर्मिति (निर्माण) हुई। इस प्रकार क्रमशः कला और शास्त्र ज्ञान में अभिवृद्धि होने लगी। उनके कहने का

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तात्पर्य यह था कि—जिस प्रकार छोटे बालक को उसकी माता थोड़ा-थोड़ा बोलना सिखाती है और क्रमशः वह बालक जैसे-जैसे बड़ा होने लगता है, वैसे-वैसे अपनी बुद्धि सामर्थ्य के आधार पर प्रचार में आई संपूर्ण भाषा का ज्ञान संपादन [प्राप्त] कर, कालांतर में अपने बुद्धि वैभव के द्वारा विभिन्न शास्त्र-कला-ज्ञान में पारंगत हो जाता है, ठीक उसी प्रकार ईश्वररूपी माता ने अपने मानव-योनि प्राप्त बालक को वेद संहितारूपी सारगर्भित संक्षिप्त भाषामय ज्ञान प्रदान किया है और उस वेदज्ञान और वेदवाणी [वेद भाषा] के आधार पर आगे बढ़कर बुद्धिमान् आर्य बालकों ने अनेक शोध-अनुसंधान कर शास्त्र और कला विभाग के ज्ञानमय ग्रन्थों की रचना की, फिर भी ऐसी स्थिति में इन सब ग्रन्थों की रचनाओं का समग्र श्रेय केवलमात्र वैदिक संहिताओं को ही है। स्वामी जी का यह भी मत था कि—जिस प्रकार ईश्वर ने इस भूगोल पर असंख्य जड़ पदार्थों की सृष्टि की है और उसका सदुपयोग तथा उन्हें योग्यरीति से साफ सुथरा सुन्दर (नीटनेटकेपणा) मनुष्य अपनी मेधा और अनुसंधान सामर्थ्य के आधार पर कर लेता है ठीक उसी प्रकार यह बीज रूप, परन्तु सुदृढ़ (ठोकल) ज्ञान, ईश्वर ने वैदिक (वेद संहिता रूपी) भाषा के माध्यम से लोगों को दिया है, और फिर उस पर ऊपर दिये निर्देशानुसार आर्यों ने अपनी व्यापक (विशाल) बुद्धि के आधार पर नाना प्रकार के ग्रन्थ साहित्य की रचना की।

दयानन्द जी कठोर तपस्वी (दृढाभ्यासी) जितेन्द्रिय (निग्रही), और महान् विद्वान् थे, और ये सब गुण उनके [भाषण] उपदेश करने की प्रवृत्ति में अत्यन्त ही सहयोगी सिद्ध हुये। उनकी जो आत्मकथा प्रकाशित हुई है, उससे यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि उन्होंने लगभग ४० वर्ष तक निरन्तर [वेदादि विविध आर्ष ग्रन्थों का] अध्ययन किया और उस अध्ययन की सफलता का ही परिणाम था कि उन्होंने लगभग १५ वर्ष तक लोगों को अपने उपदेश [वेदोपदेश] द्वारा तृप्त किया। इसी कारण आज उनकी कीर्ति दिग्दिगंत में फैली हुई है। स्वामी दयानन्द जी जैसी प्रवचन शैली में, बहुत ही कम लोग, उपदेश दे पाते हैं। (थोड़े लोगों को ज्ञात हो पाती है)। (सावेल)। उपदेश [या उपदेशक] के लिये जो वक्तृत्व या वक्ता का गुण होना जरूरी है, वह गुण उनमें भरपूर था। उनकी वाणी का माधुर्य, जिन्होंने उनके उपदेशात्मक व्याख्यान सुने हैं, उन्हें ही मालूम है। उनके अधिकांश भाषण आर्यभाषा [हिन्दी] में, कोमल और मधुर (मिट्ट) शब्दों से भरपूर, धाराप्रवाह (अस्खलित) शैली में, ज्ञानोपदेश की रसीली मधुरता से रससिक्त हुआ करते थे। अनेक बार हमने श्रेष्ठ विद्वान् श्रोताओं के मुख से यही सुना है कि—दयानन्द जी का प्रत्येक व्याख्यान मधुर ज्ञान रस से परिपूर्ण मधुमक्खी के छत्ते (पोले) के समान था। और वास्तव में उनके व्याख्यान थे भी वैसे ही। निःसन्देह इसकी विश्वसनीयता उन व्यक्तियों के लिये स्वतःसिद्ध है, जिन्हें उनके व्याख्यान सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। शहद के छत्ते पर जैसे मधुमक्खियां इतनी ज्यादा संख्या में बैठ जाती हैं कि सूच्यग्रं जितना भी स्थान नहीं रह पाता और उस कारण मधु [मक्खियों का] छत्ता अत्यन्त ही लम्बा (लोंबले) हो जाता है, ठीक उसी प्रकार स्वामी दयानन्द जी का व्याख्यान रूपी मधुगृह मधुमक्षिका रूपी श्रोताओं की भीड़ के कारण अत्यन्त ही लम्बा और विशाल नजर आता था। उनकी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सरल और निर्बाध [धाराप्रवाह] ओजस्वी वाणी के प्रारम्भ होते ही श्रोतृ वृंद बिल्कुल तल्लीन और शांत हो जाता था, अतः उन्हें कोई भी और आवाज सुनाई नहीं देती थी। उनकी व्याख्यान शैली अत्यन्त ही सरल और छोटे बच्चों को भी समझ में आने जैसी थी। और अपने प्रतिपादन व वर्ण्य विषय को श्रोताओं के मन-मस्तिष्क में सहज-सरल रीति से समझा सकने (उतारने) में उनकी प्रतिभा अद्वितीय थी। उनको अगाध विद्वत्ता में वह ताकत थी कि अपने व्याख्यान में किसी भी प्रश्नकर्त्ता को वे अनुत्तरित कर देते थे। हमने सुना है कि स्वामी जी ने दो वर्ष पूर्व [सन् १८८२] अपनी अन्तिम बम्बई यात्रा के अवसर पर आर्यसमाज बम्बई के खुले मैदान में (उघडयाहवेंत) व्याख्यान दिये थे, उस समय एक बार (प्रसंगी), तो एक व्यक्ति ने अपने स्नेही से हठात् यह कहा था कि –"लगता है वाग्देवी और विद्यादेवी ने इस भव्य संन्यासी के गले में अपनी माला ही डाल दी है"। वेद वेदांगों के पारंगत (पंडित) दयानन्द अनेक शास्त्रों के अवगाहन कर्त्ता थे. अतएव उनके प्रवचन और उपदेश इतनी जल्दी (चपखल) समझ में आ जाते थे कि बड़े-बड़े पंडित आश्चर्य चकित हो उनके व्याख्यान सामर्थ्य की स्तुति और प्रशंसा कर उठते थे। स्वदेशाभिमानी स्वामी दयानन्द जी में प्राचीन विद्याओं के प्रति भी अगाध श्रद्धा थी और—**जसं बोलावें तसे चालावें** में उनकी अप्रतिम दृढ निश्चयात्मक आस्था थी वे निर्भीक थे, उन्हें स्व-मत प्रतिपादन में अपने प्रचण्ड विद्या बल के कारण कभी, कहीं पर, किञ्चित् सा भी भय प्रतीत नहीं होता था। अवास्तविक और कपोलकल्पित बातें उनके व्याख्यानों से कभी भी व्यक्त नहीं होती थी, अब यह बात सत्य सिद्ध हो चुकी है कि उनके विचार और उनका प्रतिपाद्य विषय जिन्हें अमान्य होता था वे व्यक्ति स्वामी जी के व्याख्यानों और वर्ण्य विषय से संभव है असंतुष्ट होते होंगे, तो भी यह निर्विवाद है कि उनकी विद्वत्ता अभिनंदनीय थी, वैयक्तिक ईर्ष्या-द्वेष और मतभेदों को भुलाकर सभी उनका समुचित आदर करते थे। वे यायावर थे, इसलिये उनका निवास किसी देश विशेष में नहीं था, वे सदैव उपदेशक और धर्म प्रचारक के रूप में ही सर्वत्र भ्रमण कर अपने परम पूज्य धर्म और उसके [वैदिक] सिद्धांतों का किसी प्रकार के जाति वर्ग का भेदभाव न रखते हुए सभी को उपदेश दिया करते थे। इस घुमक्कडी स्वभाव के कारण उनके व्यक्तित्व और विचारों को देखने तथा सुनने का सौभाग्य अधिकांश लोगों को प्राप्त हुआ। उनके रसमय सारगर्भित और गहन विचारों से युक्त प्रवचनों के प्रभाव से लोग उनके आदेशों की ओर आकर्षित हुये और उनके कट्टर भक्त बन गये। परन्तु स्वामी जी के संदर्भ में यह नहीं कहा जा सकता कि जनमानस में उनके प्रति जो भक्ति है वह आगे भी इसी प्रकार अव्याहत रूप से बनी रहेगी। इसमें किसी प्रकार की शंका नहीं कि स्वामी जी का विद्यावैभव और उनका अनवरत पुरुषार्थ उनके पश्चात् भी इस भूमण्डल पर अक्षुण्ण रहेगा।

जनमानस में दयानन्द जी के विचारों की महत्ता और उदात्तता के प्रति (कारण) जो संमान है, उसकी खोज करने पर यह सिद्ध होता है कि–यह सब केवल उनके स्वभाव वैशिष्ट्य के कारण है। प्रतिष्ठा व लोकप्रियता की अभिलाषा रखनेवाले सभी व्यक्तियों के लिए इस धरा पर अनेक उपकरण और साधन विद्यमान हैं –जैसे श्रेष्ठ संपन्न और कुलीन कुल में होना या विद्वान् पिता का

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पुत्र होने का सौभाग्य प्राप्त करना, अथवा अपूर्व और अद्वितीय गुण पराक्रम से समन्वित होना, या (किंवा) उन अभूतपूर्व गुण पराक्रम के (अनुसार) बल पर दुनिया में कुछ हलचल और उथल-पुथल करनी चाहिये, जिससे जनमानस का ध्यान अपनी ओर आकर्षित हो तथा हम विश्वप्रसिद्ध हों। इस में कोई संशय नहीं कि आज तक जितने भी प्रसिद्ध पुरुष हुये हैं, वे उपरोक्त किसी भी एक गुण के कारण ही प्रसिद्ध हुये होंगे। उपरोक्त गुणों में से सब से अन्तिम कर्तृत्वमय गुणों द्वारा प्रसिद्धि प्राप्त करना अत्यन्त ही प्रशंसनीय कार्य है। तदनुसार ही श्रीमान् स्वामी दयानन्द जी सरस्वती गुणी और पराक्रमी हैं। इस प्रकार (तदनुरूप) उन्होंने इस धरा के धर्म संबन्धी अनेक क्षेत्रों में बहुत बड़ी हल-चल उत्पन्न कर दी इस कारण आर्यों (भारतीयों) के धार्मिक विचारों में बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ और ऐसा परिष्कृत वैदिक-धर्म समस्त आबाल वृद्ध के लिये सुपरिचित हो गया। इसी कारण सामान्य जनता से लेकर प्रकांड पंडितों तक स्वामी जी परिचय हुआ। इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि वैदिक धर्म के सत्य संशोधन का महत्प्रयास स्वामी दयानंद जी की तरह इन दिनों अन्य किसी व्यक्ति ने किया हो, और इसी कारण वैदिक साहित्य का रुचिपूर्ण अध्ययन मनन और अनुसंधान जितना स्वामी जी के द्वारा हुआ उतना अन्य किसी भी व्यक्ति के द्वारा नहीं हुआ। वेदों में अनेक दोष बताये जाते थे, जिससे लोगों में यह भावना दृढ हो चुकी थी कि वेदों के अनेक स्थल सदोष हैं, परन्तु उन सभी सदोष स्थलों का युक्ति पूर्ण और समुचित उत्तर देने के लिये स्वामी जी ने महान् और अपूर्व प्रयास किया, जिससे वेदों की वास्तविकता का ज्ञान पाठकों को मिला। स्वामी जी का वह प्रयास उनके वेद भाष्य [और ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका] के रूप में विद्यमान है। स्वामी दयानन्द जी के वेदभाष्य की प्रसिद्धि दक्षिण में कन्याकुमारी से लेकर उत्तर में हिमाद्रि तक और पश्चिम में अटक से लेकर पूर्व दिशा में ब्रह्मदेश तक हो गई। वास्तविक रूप में यह भाष्य 'अपूर्व' था। इसकी विशेषता यह थी कि यह भाष्य आर्य-भाषा (हिंदुस्तानी) में प्रकाशित होने के कारण सभी लोगों को स्वाध्याय के लिये सुलभ हुआ और सभी वेदों के सत्य अर्थ का ज्ञान हुआ। इस भाष्य की भूमिका भी विशाल है और इस भूमिका में स्वामी जी ने वेदभाष्य के उद्देश्यों को स्पष्ट किया है, परन्तु यह इतना बड़ा प्रयास स्वामीजी के आकस्मिक निधन से अपूर्ण ही रह गया है। अतः इस वेदभाष्य के पूर्ण (फिरून उत्थापन) होने की संभावना नहीं है।

सारांश यह है कि स्वामी जी ने वेदों की महत्ता और उससे होने वाले अखिल भूमंडल के प्राणिमात्र के लाभ को अत्यन्त ही श्रेष्ठ शैली में वर्णित किया तथा बड़े ही आत्मविश्वास के साथ अपने विषय प्रतिपादन के लिये वे दृढ़ प्रतिज्ञ रहे। यह कार्य उनकी विद्वत्ता के अनुरूप असाधारण और वंदनीय रहा, इसमें किञ्चिन्मात्र भी संशय नहीं है।

स्वामीजी की तर्कशक्ति एवं संयोजन शक्ति अद्वितीय थी। इसकी अनुभूति उनके उपदेशात्मक व्याख्यानों से अनेकों को हुई है। [वे संप्रति हमारे बीच जीवितरूप में नहीं है] तो भी उनके ग्रन्थ तो आज भी उनकी तार्किकता और योजना शक्ति की गवाही देने में समर्थ है। हमारे विचार से इस कथन में किसी प्रकार को साहसिकता और अतिशयोक्ति नहीं है कि उन्होंने जितना श्रेष्ठ एवं

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सरल (बालबोध) शैली में हमें वेदों का अर्थ दिया, वह [उतना] उदात्त कार्य " आज तक अन्य किसी से संभव नहीं हो सका, और हमारे मत में सहसा होगा भी नहीं। उनकी बुद्धिमत्तापूर्ण एवं विचक्षण वेद भाष्य शैली के कारण किसी भी धर्म और संप्रदाय का लब्ध प्रतिष्ठ विद्वान् उनके सामने लड़खड़ा जाता था (लटपटून जाई)। हमारे इस कथन में किसी भी प्रकार की अतिशयोक्ति नहीं है कि—स्वामी जी के तेजस्वी विद्या-प्रतिभ रूपी दिवाकर के समक्ष अन्य विद्वानों की बुद्धिरूपी किरणें निष्प्रभ और दयनीय (गालण) हो जाती थीं। विलक्षण विद्वत्ता और तदनुरूप उनकी निस्पृहता रूपी देवताओं (दिव्य गुणों) के मिलाप के कारण वह [महा] पुरुष इतना बड़ा वीर शिरोमणि हो गया कि उसे पराजित (पराप्त)करने के लिये कैसा भी रथी, महारथी खुले मैदान [सभांगणी] में उपस्थित हुआ तो वह भी उन (स्वामी जी) के मुख से 'भोः पंडिताः !' इस प्रकार का संबोधन सुनते (होते) ही अपनी समस्त षड् शास्त्र युद्ध सामग्री के साथ निष्प्रभ और निष्क्रिय हो जाता था। इसका यह मतलब नहीं है कि स्वामी जी मैदान में उतरे कि प्रतिपक्षी विद्वान् से असभ्यता, उद्दंडता और निरंकुशता से पेश आते हों, और उनसे वादविवाद या शंका-समाधान करने के लिये आये शास्त्री, वैदिक या पंडित निर्बल, दयनीय या गप्पिष्ट होते हों और इसलिये वे परास्त (गालण) हो जाते थे। स्वामी जी के अद्भुत पांडित्य से प्रभावित हो उनकी जीभ लड़खड़ा जाती थी और मुंह बंद हो (मुंह को ताला लग) जाता था, स्वामी जी की तार्किकता, प्रतिभा और उनकी प्रतिपादन या वाद-विवाद की शैली को देखकर प्रतिपक्षी विद्वान् पूरी तरह घबरा (गांगरून) जाते थे स्वामी जी जैसी बुद्धि वैभव, उन जैसी तार्किकता, और उन जैसी शास्त्रार्थ (वाद) शैली अन्य पंडितों में बिलकुल भी न होने के कारण उनकी बुद्धि जडवत् हो जाती थी। इस प्रकार की अनेक घटनायें हमने अनेक स्थानों पर प्रत्यक्ष देखी हैं और उन क्षणों में हमें दयानन्द जी के असाधारण प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तित्व का पूर्ण विश्वास हो चुका था। ऐसे गुणशाली व विद्वत् शिरोमणि महापुरुषों की यशोगाथा की सुगन्ध युक्त पराग से आकृष्ट होकर जनमानस मुग्ध हो ही जाता था। परन्तु इसमें (यहां पर) दुःख की बात यही है कि—स्वामी दयानन्द जी के इस बुद्धि वैभव और सर्व गुण सम्पन्नता का परिचय जैसा अन्य लोगों को प्राप्त होना चाहिये था, वैसा नहीं हो पाया और इस कारण उस महापुरुष को सर्वत्र जिस स्तर की प्रतिष्ठा या आदर मिलना चाहिये था वैसा आदर नहीं मिल पाया। पुरातन काल से हमें यही अनुभव आता रहा है कि—श्रेष्ठ पुरुषों की योग्यता उनके जीवन काल में लोगों की समझ में नहीं आती, और इसी कारण उस व्यक्ति का जैसा मूल्यांकन होना चाहिये, वैसा मूल्यांकन उस काल में नहीं हो पाता। परन्तु कालांतर में वे लोग अपने आप ही उस विषय का वास्तविक ज्ञान होने पर पश्चाताप के साथ उस महापुरुष के यशस्वी व्यक्तित्व (सत्कीर्ति) के गीत गाने लगते हैं। इस संदर्भ में आदि काल से वर्तमान कालीन ऐतिहासिक-घटनाओं के हजारों उदाहरण दिये जा सकते हैं। यदि इसी प्रवृत्ति के अनुसार ही स्वामी दयानन्द जी के प्रति भी लोगों की उदासीनता रही हो तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। ऐसे सौभाग्यशाली सत्पुरुष इस धरती पर कम ही हुये होंगे कि जिन के जीवनकाल में और तत्पश्चात् समाज के सभी व्यक्तियों ने उन्हें एक जैसा ही समान रूप से आदर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दिया हो। इस कारण स्वामी दयानंद जी के संबन्ध में भी कहीं-कहीं पर जो लोगों ने आंशिक उपेक्षा व तटस्थता दर्शायी है, उसके प्रति अत्यधिक दुःखी होने की आवश्यकता नहीं है। स्वामी दयानंद जी के गुण कर्म-स्वभाव का योग्य मूल्यांकन कर यदि उसे आर्यावर्त्त में (पण्यागारांत) सभी जगह समान रूप से न्याय न भी मिला हो, तो भी अब हमारा यह आत्म विश्वास हो गया है कि उनके गुण-कर्म-स्वभाव की परख करनेवाले पारखी अब सामने आ रहे हैं। अब इसमें कोई शक नहीं कि निश्चित रूप से स्वामी जी की पहिले से अधिक प्रतिष्ठा (सन्मान) होगी।

स्वामी दयानंदजी सरस्वती का आचरण यावज्जीवन अत्यंत ही निर्मल और निष्काम कर्मयोगी सम रहा है। उनका तपोमय ब्रह्मचर्य और तदनुसार उनका तेजस्वी स्वरूप अत्यंत ही प्रशंसनीय और समादरणीय था। संसार सुख की उपेक्षा कर परोपकार की भावना से सद्धर्म की स्थापना के लिये जिन्होंने अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया था, और 'जो लोकापवाद', लोकनिंदा और [रूढिवादी लोगों से प्राप्त] विविध शारीरिक पीडाओं को सहन करते हुए, पक्षपातरहित और निरभिमानी होकर सद्धर्म और 'सत्यार्थप्रकाश' के ध्येय पथ का ही अनुसरण करते रहे, उनके दृढ निश्चय, मनोधैर्य और स्वदेशोन्नति की कामना के संदर्भ में तो कुछ कहने की आवश्यकता ही नहीं है। अर्वाचीन काल में तो इस देश में ऐसा अद्वितीय महापुरुष दूसरा कोई भी नहीं हुआ, हां यह गुण आंशिक मात्रा में (महाराष्ट्रीय) सुप्रसिद्ध ब्रह्मचारी विष्णु बुवा में थे, उनके आचार-विचारों में भी एकरूपता और समानता थी, परंतु स्वामी दयानंद सरस्वती के समान उनमें प्रकांड पांडित्य और अपूर्व असाधारण विद्वता न थी। ऐसे महापुरुषों के आविर्भाव के लिये प्रदीर्घकाल और महत् पुण्य संचय की आवश्यकता होती है। उसके विना ऐसे सत्पुरुषों और तपस्वियों का जन्म ही नहीं होता। इसलिये दयानंद जी के संबन्ध में गुणगान न करने का कारण (देव्हारे माजविण्यास कारण) यह है उनकी योग्यता ही ऐसी थी कि हमें गुणगान करना ही पड़ रहा है।

स्वामी जी के प्रयासों से असंभव प्रतीत होने वाली घटनायें भी संभव हो सकीं, हमारा यह विश्वास है कि उनकी कीर्ति अजरामर रहेगी, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण उत्तर भारत की घटनाओं पर दृष्टिपात करने से मिलता है। उत्तर भारतीय जनता यवनों (मुस्लिमों) के सतत संपर्क से अपनी वैदिक आचार संहिता को बिल्कुल भूल चुकी थी और नाममात्र की हिंदू रह गई थी। यह तो स्पष्ट नजर आता है कि वे अंधविश्वास से परिपूर्ण रूढिबद्ध आचार-विचार के अंधभक्त बन गये थे। संस्कृत साहित्य के ज्ञान-विज्ञानात्मक ग्रंथों की ओर तो उनका किञ्चिन्मात्र भी ध्यान न था। परंतु स्वामी दयानंद जी सरस्वती के महान् प्रयत्नों से जो क्रांति हुई उसी का परिणाम था कि उत्तर भारतीयों का ध्यान संस्कृत विद्या और अपौरुषेय वैदिक धर्म की ओर आकृष्ट हुआ और वे सब स्वामीजी के सहयोगी तथा अनुचर हो कर वेदोद्धार का प्रयत्न करने लगे। इस कार्य में स्वामीजी को अनेक विघ्न बाधाओं का सामना करना पड़ा। अनेक पंडितों को दयानंद जी के विचारों और उपदेशों में पाखंण्ड का आभास हुआ, उन्होंने उनसे विभिन्न स्थलों पर शास्त्रार्थ भी किये। परंतु स्वामी जी के पास की युद्ध सामग्री परिणामकारी, प्रभावशाली और तेजस्वी थी, इसीलिये उन्होंने हर जगह

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitizatioh by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पर प्रतिपक्षियों को परास्त कर यह सिद्ध कर दिया कि मेरे वैदिक आचार और विचार वास्तविक धरातल पर ही आधारित हैं। स्वामी जी के शास्त्रार्थ समर में विजयी होने का परिणाम यह होने लगा कि निरंतर उनके अनुयायियों को संख्या बढ़ने लगी और वेद वेदांग-उपांगादि शास्त्रों के अध्ययन-अध्यापन की जो प्रक्रिया लुप्त प्रायः हो गई थी वह पुनरुज्जीवित हुई। फलस्वरूप जनमानस में वैदिक ग्रन्थों के प्रति स्वाभिमान का भाव जागृत हुआ, वेदों का गौरव बढ़ने लगा। स्वामी जी के इसी अव्याहत पुरुषार्थ से और उनको सच्छिष्य मंडली के सहयोग से उत्तर भारत में संस्कृत अध्ययन के विद्यालय और शिक्षण केन्द्रों की स्थापना [13] होने लगी और अब दिन प्रतिदिन उधर संस्कृत वेद विद्या की वृद्धि होने लगी है। इसमें किञ्चिन्मात्र भी संशय नहीं है कि स्वामी जी के प्रयत्नों को, जो यह (इतनी) सफलता मिली वह उनकी असाधारण परोपकारी वृत्ति और सद्धर्म निष्ठा का ही परिणाम (फल) हैं। स्वामी जी को अनेक बार दुराग्रही वितण्डावादी, हठी, व तथाकथित विद्वानों से भी शास्त्रार्थ युद्ध में संघर्ष करना पड़ा। इस संदर्भ में फर्रुखाबाद के पं० गोपालराव हरि शर्मा नामक सज्जन ने दयानन्द दिग्विजय [दयानन्ददिग्विजयार्क] नामक एक ग्रन्थ लिखा है। इसमें पंडित जी ने अधिकांश सभी शास्त्रार्थ समरों का वास्तविक विवरण दिया है। उस ग्रन्थ से स्वामी जी के वैदिक धर्माभिमानी व्यक्तित्व का यथार्थ और स्पष्ट चित्र हमारे सम्मुख उभरता है, उपदेष्टा स्वामी दयानन्द जी की जय-विजय यात्राओं के वर्णनों को पढ़कर (उन विजय यात्राओं के कारण) परमानन्द का अनुभूति होती है, लोगों का अब यह मत बन गया है कि प्रदीर्घ काल से वेद क्या हैं? उनमें किन वषयों का प्रतिपादन हुआ है? उन वेदों में जो कुछ भी प्रतिपादित है वही किस आधार पर सत्य और यथार्थ है? इत्यादि जो लोगों की शंका-प्रतिशंका थी, और वैदिक धर्म के प्रति जो लोगों में अत्यन्त उदासीनता थी वह दयानन्द जी की इन अनवरत दिग्विजय और उपदेश यात्राओं से लगभग नष्ट हो गई हैं और इस प्रकार वैदिक धर्म का पुनरुद्धार ही हो गया है हमारा यह शतप्रतिशत विश्वास है कि—वेदोद्धार जैसा महत् कार्य स्वामी दयानन्द जी के सिवाय अन्य किसी पंडित से संभव नहीं था।

स्वामी जी से पूर्व भी अनेक ईश्वरभक्त, उपदेशक, सदाचारी, योगी-कर्मयोगी, परोपकारी, साधु संन्यासी हुये, और स्वामी जी के समय में भी थे, तथा अब स्वामी दयानन्द जी के बाद भी होंगे, परन्तु हमारा यह मत है कि भावी साधुओं में स्वामी दयानन्द जी के समान व्यक्तित्व उभरने में बहुत (सा) समय लगेगा। दयानन्द जी के समय बाबू केशवचन्द्र सेन और महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर जैसे साधु महापुरुष थे, उनका स्वभाव और उनका 'यौगिकाचरण' भी अत्यन्त ही प्रशंसनीय था। उसी प्रकार उन नवीन [ब्रह्मसमाजी] धर्मोपदेशकों के आदि पुरुष राजा राममोहनराय भी एक महान् [समाज सुधारक] साधु और ईश्वरभक्त हो गये हैं। उन्होंने वेदों [उपनिषदों] के आधार पर एकेश्वरवाद की स्थापना की थी [14]। उनके आसन पर देवेन्द्रनाथ जी आसीन (आरूढ़) हुये। तत्पश्चात् इस एकेश्वरवादी दल से केशवचन्द्र सेन पृथक् हो गये। उनके धर्मोपदेशों की नींव और उपदेशों का प्रासाद केवल मात्र ईसाइयों की धर्मपुस्तक बाइबिल और अपनी निर्मल बुद्धि के तर्क पर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ही आधारित थी। और इसकी भी बारंबार प्रतीति होती है कि उन्हें स्वदेश तथा अपने पूर्वजों के ग्रन्थों में कुछ भी ग्राह्य और स्वीकरणीय प्रतीत नहीं हुआ, और न उन्होंने उस दिशा में कुछ प्रयास ही किया। यह बात तो निर्विवाद कही जा सकती है कि उन्हें अपने ब्रह्मसमाज के उपदेशों की भूमिका लिखने के लिये बाइबिल और उस पर अनेक पादरियों द्वारा लिखी टीका व धर्मकथाओं के अतिरिक्त अन्य कोई धर्मग्रन्थ नजर नहीं आया। जनवरी १५ सन् १८७७ में दिल्ली में रानी विक्टोरिया के चक्रवर्तिनी [राजराजेश्वरी] पद से विभूषित करने के संदर्भ में इङ्गलैण्ड के भारतीय प्रतिनिधि वायसराय लार्ड लिटन की अध्यक्षता में एक बहुत बड़ा दरबार आयोजित किया गया था। इस समारोह में श्रीमत्पंडितवर्य स्वामी दयानन्द जी सरस्वती और बाबू केशवचन्द्र सेन इन दोनों ही महापुरुषों को निमन्त्रित किया गया था उस समय दोनों महान् धर्मोपदेशकों की परस्पर भेंट हुई थी और दोनों ने अपने-अपने विचारों को स्पष्ट रूप से एक दूसरे के समक्ष प्रस्तुत किया था। उस समय दोनों की विद्वत्ता व उनके धर्माभिमान के आदि मूल व आधारभूत महत् ग्रन्थों का उपस्थित जन समुदाय को परिचय प्राप्त हुआ था। उस समय सौभाग्य से हम [लेखक] भी वहां पर उपस्थित थे, इसलिये उन दोनों महोपदेशकों के परस्पर मिलन के अद्भुत श्रेष्ठों, तथा आपसी वार्त्तालाप व्याख्यान–संभाषणादि की झलकियां भी हमें साक्षात् देखने और सुनने को मिल सकीं। यह हमारे लिये एक अपूर्व संयोग ही था। इस समय यह स्पष्ट हुआ कि केवलमात्र भारतवर्ष की प्राचीनतम वेद संहिता ही स्वामी दयानन्द के उपदेशों की मुख्य आधारशिला है। इस आधार पर किसे भी यह बात ध्यान में आयेगी कि स्वामी जी का धर्माभिमान कितना अडिग था, इस बात का निश्चयात्मक निर्णय तो आर्य बन्धु गण सहज ही कर लेंगे, कि ईसाई धर्म से चिपके या जंचे हुए धार्मिक मतों का अहंभाव (प्रौढी) विशेष है, या मूल वेद संहिताओं में प्रतिपादित निर्दोष शुद्ध वेदमत का प्रतिपादन महत्त्वपूर्ण है। इस का निश्चयात्मक निर्णय तो आर्य बंधु गण सहजता और सरलता से कर ही लेंगे, इसलिये उस संदर्भ में यहां पर विस्तार से कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं है। बाबू केशवचन्द्र सेन ने इस ओर ध्यान नहीं दिया कि अपनी धर्म-मत [ब्रह्मसमाज-वेदान्त] प्रतिपादन शैली ईसाई मत से प्रभावित है। यही कारण था कि उनके धर्मोपदेश में, स्वामी दयानन्द जी के धर्मोपदेश की तुलना में आर्यत्व का तेज नहीं था। स्वामी दयानन्द जी की उपदेशशैली और स्वधर्माभिमान, शतप्रतिशत वेदानुकूल होने से उनका आर्यधर्मप्रतिपादक आचार्य या आर्य गुरु की पदवी से विभूषित होना योग्य है, राजाराममोहनराय द्वारा स्थापित मूल ब्रह्मसमाज के दो भाग हुये, उनमें से एक आदि ब्रह्मसमाज और दूसरा केशवचन्द्र सेन का भारतवर्षीय समाज, और इस भारतवर्षीय समाज का एक और भाग हुआ, जो 'साधारण समाज' के रूप में प्रसिद्ध हुआ, परन्तु स्वामी दयानन्द जी ने तो आर्यसमाज की अनेक संस्थायें (शाखायें) विभिन्न स्थानों पर स्थापित की हैं।

दयानन्द जी में दो अद्भुत गुण थे—एक असाधारण तार्किकता (वाग्मिता) और दूसरी संयोजन (योजना) शक्ति, ये दोनों गुण अन्य विद्वानों में दिखलाई नहीं देते थे। और विद्वान् तो परंपरागत विचारों और तर्कों की ही जुगाली (चर्वण) करते थे। और उन्हीं से चिपके रहते थे। सभी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जगह यही अवस्था दृष्टिगोचर होती थी, परन्तु स्वामी दयानन्द जी की बात तो सबसे निराली थी उन्होंने जड़ व मूर्खतापूर्ण कुविचारों और कुतर्कों का कभी भी आश्रय नहीं, लिया। स्वामी जी द्वारा लिखित सत्यार्थप्रकाश, कर्म पद्धति [पंच महायज्ञविधि, संस्कारविधि] ऋग्यजुर्वेद भाष्य, वेदांत ध्वांत निवारण आदि ग्रंथों से उनके प्राणवान् स्फूर्तिमय विचारों व उनकी विकसित बुद्धि का स्पष्ट परिचय मिलता है। स्वामी जी की पुणे व्याख्यानमाला पर आधारित टिप्पणियों को देखने पर यह विश्वास हो जाता है कि उनमें परिपक्व स्वतन्त्र विचार तथा विस्मयजनक असाधारण तर्क शक्ति विद्यमान है। फिर भी स्वामी दयानन्द जी को जैसा सम्मान पुणे में मिलना चाहिये था, वैसा नहीं मिल पाया। स्वामी जी का निष्कारण छल और अपमान करके वहां के कुछ चाटुकार लोग जनसाधारण में हंसी के पात्र बन गये। स्वामी जी के बारे में पुणे में जो भी हुआ वह बहुत बुरा हुआ। हमने तो यह अनुमान लगाया था कि—दयानन्द जी की विद्वता, उनकी सारगर्भित और रसभरी हास्य व्यंग्यात्मक व्याख्यान शैली और उनका धर्म प्रचार का सद्विचार पुणे नगरवासियों की ओर से अत्यन्त ही आदर भाव से समाहृत होगा, पर वैसा कुछ भी नहीं हुआ, हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि—'यह पुणे नगर वासियों ने बहुत बड़ी लापरवाही 'की'। पुणे में श्रेष्ठ विद्वत् समाज है, इसलिये वहां पर विद्वानों की विद्वत्ता का मूल्यांकन होगा, यह विचारकर दूर-दूर से लोग पुणे में आते हैं, पर दयानन्द जी के साथ तो ऐसी असंभव घटना घट गई, जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी इसमें किञ्चिन्मात्र भी संशय नहीं कि उस समय पुणे नगरवासियों की ओर से जो अश्लाघ्य और अश्लील व्यवहार हुआ, जिससे पुणे वालों ने अपनी ही कीर्ति को कलंकित कर लिया, उन्होंने इससे स्वकीर्ति पर बहुत बड़ा दाग लगा लिया, कुछेक लोग यह भी कहते हैं कि पुणेवासियों का स्वामी पर संतप्त होने का (संतापून पिसालण्यावें) कारण यह था कि स्वामी जी मूर्ति पूजकों को 'असह्य' होने वाले विचार व्यक्त करते थे, और इस प्रकार उनके द्वारा मूर्ति पूजकों के हृदय को ठेस पहुंचाने वाली घटना घट गई। यदि यह सच है, तो भी यह स्पष्ट है कि व्याख्यान में ऐसा कोई विचार व्यक्त नहीं हुआ होगा कि वाग्युद्ध [शास्त्रार्थ] की अपेक्षा अन्य किसी निंदनीय उपायों से बदला लेने की नौबत आये, परन्तु पुणेवासियों ने उस समय, अपनी सब शांति, गांभीर्य और गुण दोष परीक्षण की प्रणाली की अवहेलना कर अत्यन्त ही ईर्ष्या द्वेष की भावना से स्वामी जी को अपमानित करने का अतिशय निंदनीय कर्म किया, जिसका उन्हें आंशिक रूप में प्रायश्चित्त भी भोगना पड़ा[१६], परन्तु कम से कम, यह सब, (पण्डित) स्वामी दयानन्द जी के पुणे आगमन के समय में तो नहीं होना चाहिये था। इस बात की अनुभूति भी तत्कालीन अनेक विद्वानों को हुई थी और उन्होंने इस संदर्भ में स्वामी जी के पास जाकर अपना खेद भी व्यक्त किया था। खैर हमेशा ही अविचारी (सोरट) लोगों की ओर से साधुओं का छल और अपमान (हूड) होता है और नादान लोगों को इन निंदनीय कर्मों के बाद ही दुनिया को सत्पुरुषों की (कसौटी समझा गया है) वास्तविकता समझ में आती रही है। उस समय स्वामी जी का बहुत अधिक अपमान किया गया, फिर भी वे धीरोदात्त महापुरुष के धीर गंभीर व्यक्तित्व को, थोड़ा सा भी विचलित कर पाने में, असफल और असमर्थ ही रहे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जो किसान, मूढ, नासमझ और संकुचितवृत्ति के होते हैं, उन्हें यदि एक बार बम्बई ले जाकर वहां के अनेक प्रकार के यांत्रिक कल कारखानों व रेल आदि से परिचित कराया जाय, तो वे लोग जिस प्रकार उस भौतिकता से समृद्ध आधुनिक नगरी को देखकर कुछ आश्चर्यचकित हो, और कुछ घबराये-घबराये से यही महसूस करेंगे कि—यह सब क्या अद्भुत अतर्क्य और विचित्र है उसी प्रकार हमारी तरफ [पुणे] के अल्पज्ञ तथाकथित लब्धप्रतिष्ठ और संकीर्ण विचारों के (आशालभूत) शास्त्री गण भी स्वामी दयानन्द जी के प्रकांड पांडित्य की प्रतिभा (यन्त्र) को देखकर (बुझत व गांगरून जाउन) विचलित हो गये थे, और उनकी बुद्धि व विचार शक्ति [स्वामी जी के सामने] निष्प्रभ हो गई थी। खैर, इतनी ही बात नहीं, यह तो प्रसिद्ध ही है कि रामानुज कमलनयन आचार्य जैसे घमंडी विद्वानों की स्वामी जी की विद्वत्ता एवं शास्त्रार्थ के सामने बोलती बन्द (फे–फे उडाली) हो गई थी। नासिक, पुणे, बडोदरा, अहमदाबाद, मुंबई व काशी के पण्डितों की भी ऐसी ही दयनीय स्थिति बन गई थी। स्वामी जी के मंडितपक्ष को, कोई भी विपक्षी विद्वान् खण्डित करने में सफल नहीं हो पाया था, यदि हुआ तो भी ईमानदारी से नहीं, बेईमानी से हुआ। वह विजय और सफलता तो वास्तविक सच्चाई से कोसों दूर ही रही है। इन सभी स्थानों पर सभी प्रकार के, समस्त संप्रदायों के लोगों द्वारा, स्वामी जी की अपूर्व बुद्धिमत्ता की कद्र की गई थी। हम यह निःसंशय और दृढतापूर्वक कहते हैं, कि पश्चिम के विद्यासागर, बुद्धिमान् तथा बुद्धि वैभव की खान कहे जाने वाले अडानस्मिथ, बेकन, मिल आदि जो धुरंधर महापण्डित हुये, और जिस प्रकार अपने देश में प्राचीन काल में कणाद, गौतम अथवा शंकराचार्य जैसे वेदशास्त्र पारंगत व धर्म [दर्शन] प्रवर्त्तक (संस्थापक) हुये स्वामी जी (की मूर्त्ति) उनकी पंक्ति में (तोडीची) बैठने योग्य थे—फिर स्वामी दयानन्द जी की इतनी प्रचण्ड योग्यता होते हुये भी जनता की ओर से वह भी पुणे जैसी नगरी के नागरिकों की ओर से, स्वामी जी के साथ अपमानास्पद व्यवहार क्यों हुआ? यह प्रश्न समुपस्थित होता है, पर हमें इस 'असंमानास्पद' घटना में आश्चर्यजनक व असाधारण कुछ भी नहीं प्रतीत हुआ, हां, यदि इन लोगों की ओर से इस प्रकार का अशिष्टाचरण घटित न होता, तो हमें आश्चर्य ही हुआ होता, तो फिर हमें यही कहना चाहिये कि—जो भी कुछ घटित हुआ वह सब क्रमशः रूढिवादी और प्रतिगामी इतिहास से, कुछ भी भिन्न नहीं हुआ। परंपरागत रूढियों में, अंध श्रद्धायुक्त विचारों में, तथा मानस में रूढ धार्मिक जगत् में जो कोई ईमानदारी और दृढता से परिवर्तन करना चाहेगा उससे लोग विरोध करेंगे (त्राकून राहतील) ही और उसका उपहास भी करेंगे, उन्हें यदि इससे भी अधिक अधिकार के अवसर मिलें, या राजा या राज्यसत्ता उनके अनुकूल रही, तो प्रसिद्ध धर्म संस्थापक ईसा और लूथर की तरह उस सत्पुरुष पर प्राण घातक आक्रमण करने में भी ये लोग कोई कसर न छोड़ेंगे, वैसे कष्टप्रद प्राणघातक हमलों को भी सहन करने की अद्भुत क्षमता महापुरुषों में होनी चाहिये, और इस महापुरुष (दयानन्द) के व्यक्तित्व में तो वह [क्षमता][१७] कूट-कूट कर भरी हुई थी। ऐसे महामानव रूपी स्वर्ण को छलनादी लोग (वर्त्तनरूप शालिग्राम) शिलारूपी कसौटी पर परखने का प्रयत्न करते हैं। उसके विना सज्जनों की परख संभव नहीं है, अतः लोगों ने जो कुछ किया, वह

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उनके अपने छल कपट युक्त स्वभाव के विपरीत कुछ भी नहीं किया। यह समझकर संतुष्ट हो जाना चाहिये। क्योंकि इसके सिवाय दूसरा कोई पर्याय नहीं है।

जो संन्यासी पहली भेट में (सकृद्दर्शनीच) यह स्पष्ट कर देता है कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हो सकते, और जिन ब्राह्मण पंडितों ने जन्म से ही 'मन्त्रब्राह्मणयो वेदः' इत्यादि उक्तियों (फक्किकाओं) को रट रखा है, आखिर इन दोनों में एकमत कैसे होगा। ऐसी अवस्था में स्वामी जी व पंडितों में शास्त्रार्थ होता था, और पण्डित लोग परास्त होने पर निराश होकर स्वामी जी की निंदा करते थे। ऐसे किसी विषय पर, जिस पर पहले कभी विचार न किया गया हो, या किसी ने कोई नई बात, या नया सत्य प्रस्तुत किया हो, तो उस तथ्य की वास्तविकता और अवास्तविकता के संदर्भ में शांतचित्त से मनन करने की सद्बुद्धि बहुत कम लोगों को प्राप्त होती है। यदि दुराग्रही और दुरभिमानी लोग हों, तो वे परंपरागत और पीढी दरपीढ़ी से जो मत, जो बातें, और जो विचार (कल्पनायें) चले आ रहे हैं, उन्हीं का समर्थन करेंगे। और दयानन्द जी जैसे व्यक्ति को छलेंगे ही, क्योंकि वे अपने दुष्ट स्वभाव से उन्मुख हो ही नहीं सकते। यह पुरातनकालीन इतिहास से भी सिद्ध होता है। यह तो सबको मालूम ही है कि कोपर्निकस और गेलिलियो नामक यूरोपीय खगोल शास्त्री ज्योतिषियों (ज्योतिर्विदों) और गणितज्ञों ने जब इस बात की खोज की कि—'पृथ्वी स्थिर नहीं, अपितु वह [सूर्य की] निरंतर परिक्रमा करती है, तब टालमी और अरस्तू के अभिमानी अनुयायियों ने उन विचारकों को कितना छला था। इसी प्रकार पुरातन [जीर्ण शीर्ण] विचारों के दुरभिमानियों की ओर से प्रायः नवीन मत प्रतिपादकों का छल होता ही रहा है। इतिहास में इस प्रकार के उदाहरणों की कोई कमी नहीं है। लोगों के भ्रांत व असत्य विचारों का खण्डन कर उन्हें उपदेश के माध्यम से नये विचारों के प्रति विश्वास उत्पन्न कराने का कार्य बड़े ही खतरे का और अत्यन्त कठिन कार्य है। जनमत और उसके दुराग्रह युक्त दुरतिक्रम स्वभाव को परिवर्तित करने (मोडून काढण्याचा) के महत्कार्य को थोड़ी देर के लिये नजर अन्दाज भी कर दें, तो भी ईश्वर भक्ति और उसके भजन-पूजन में ही अपना समय समर्पित कर ईमानदारी (निरुपाधि), स्वतन्त्रता और साधुवृत्ति से रहने का भी यदि किसी ने दृढ निश्चय किया, तो भी लोगों की ओर से जो छल होना है वह तो होता ही है। लोगों को छल-कपट किये बगैर चैन की नींद नहीं आती। इस प्रकार की जन प्रवृत्ति के कारण मनुष्य की साधु वृत्ति का जैसा विकास और प्रकाश होना चाहिये, वैसा नहीं हो पाता। यदि मनुष्य के षड्विकारों में से मात्सर्य (ईर्ष्या-द्वेष) द्वेष का अभाव रहता तो संसार का कितना कल्याण हुआ होता! पर वैसी स्थिति अब तक तो नहीं हो पायी है। सभी ओर ईर्ष्या-द्वेष की भावना भरी होने के कारण इस धरातल पर अनेक सद्गुण परिपूर्ण, सुशील, महात्मा और सत्पुरुष अनधिकार छले और सताये (गांजिले) जाते हैं। उन्हें यम यातनाओं से भी अधिक दुःसह अपमानरूपी यातनाओं को चुपचाप सहन करना पड़ता है। सन्त तुकाराम तो बिचारे पूरी तरह ईमानदार स्वतन्त्र और साधु वृत्ति के भावना प्रधान पुरुष थे, पर उन्हें भी उनके ईर्ष्यालु शत्रुओं ने बहुत ही छला और सताया और इस तरह सभी प्रकार की यातनायें उन्हें सहन करनी पड़ी। सन्त

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तुकाराम का अभंग शैली में लिखा हुआ काव्य उन दुष्टों ने चन्द्रभागा नदी में डुबा दिया[१८]। और सड़क से जाते समय उन (सन्त तुकाराम) पर गोबर फेंकर उनकी मजाक उड़ाने का और उन्हें अपमानित कराने का पूरा प्रयास किया गया। भला बताइये! उस सन्त ने लोगों पर ऐसा कौनसा अन्याय किया था, जिसके फलस्वरूप लोगों ने उसे इस प्रकार से सताया! बेचारा गरीब सन्त! (गरीब बापड़ा!) फिर दयानन्द जी जसे महान् विद्वान्, वेदमत संस्थापक और धर्मोपदेशक के साथ लोगों ने इसी प्रकार छल-कपट युक्त व्यवहार किया तो उसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं इसी तरह हमें संतोष कर लेना होगा। यह सर्व साधारण नियम है कि साधुओं और धर्मोपदेशकों की कीर्ति और प्रतिष्ठा उनके जीवन समय में [जीते जी] प्रायः कभी नहीं होती। सन्त तुकाराम के स्मारक (देव्हारा) उनके जीवनकाल में नहीं बनाये गये। उसी प्रकार सुकरात्, लूथर, कोपर्निक्स या ग्यालिलियो आदि का मान-संमान उनके जीवन काल में जैसा होना चाहिये था वैसा नहीं हुआ; पर यह तो लोक प्रसिद्ध है कि उनकी मृत्यु के पश्चात् उनका नाम बड़ी श्रद्धा के साथ लोगों की जबानों पर नाचने लगा। बस इसी प्रकार की स्थिति दयानन्द जी के संदर्भ में भी समझनी चाहिये। यह प्रतीत होता है कि हमारे महाराष्ट्रीय विद्वद्वर्य प्राध्यापक रामकृष्ण गोपाल भांडारकर और (स्व०) पं० विष्णु शास्त्री चिपलूणकर को दयानन्द जी के स्तर और महिमा का उतना परिचय न हो सका, जितना कि होना चाहिये था। उनमें से पं० विष्णुशास्त्री चिपलूणकर ने तो अपनी निबन्धमाला पत्रिका के एक दो अंकों में (अशी कांही झोड उडवून स्वामी जी वर निवल आग पारवडली आहे की ती न भूतो न भविष्यति) स्वामी जी के विरुद्ध अपनी सदसद् बुद्धि को एक ओर रखकर ऐसे आक्षेपात्मक अनर्गल लेख[१९] लिखे जो 'न भूतो न भविष्यति' के स्वरूप थे। इस सम्बन्ध में हम आगे लिखेंगे ही एतदर्थ हम मूल विषय का अनुसरण करेंगे। (या साठी प्रकृत विषयाला अनुसरु)।

इससे पूर्व हम लिख चुके हैं कि जो साधु, दार्शनिक, (मत) संस्थापक और धर्मोपदेशक हुये उनके जीवनकाल में उन्हें बहुत ही छला और सताया गया। तो भी मरणोपरांत लोग उनकी भक्ति और पूजा (करेंगे और) करते ही हैं। उस प्रकार यह सत्पुरुष [दयानन्द] देशकल्याण और देश बांधवों की उन्नति हेतु (उर्जितावस्थ कडे) किस तरह तड़पता था और उसने अपने आपको इस महत्कार्य के लिये कितना अधिक (किसो) निष्काम भाव से समर्पित कर दिया था। इसका भी ज्ञान हमें उस पुरुषार्थी [दयानंद] के ऐहिक जीवन समाप्ति के बाद ही होना था और अनुभव के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि—यही दौर्भाग्य हमारे भाग्य में था दयानंद जी को अहर्निश इसी बात की चिंता (विपंचना) रहती थी कि आर्यावर्त्तीय आर्यों की इहलौकिक व पारमार्थिक सुख प्राप्ति और उन्नति किस प्रकार होगी? तद्विषयक युक्ति प्रयुक्ति और सद्धर्म का उपदेश करने की उन्हें अतिशय तडप (हव्यास) थी। किसी व्यक्ति की धर्म संबंधी शंका-प्रति शंकाओं का समाधान और विपक्ष का खंडन वे अत्यंत ही योग्यता, कुशलता और तार्किकता से करते थे। वैसी योग्यता और तार्किकता का गुण कुछ गिने-चुने साधकों को ही सिद्ध होता है। यही उनकी अद्वितीय बुद्धिमता का लक्षण भी है। हिंदू धर्म—स्वामी जी के मंतव्यानुसार आर्य धर्म—की कितनी ही बातें, व्यावहारिक रूढियां अस्पष्ट,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उलझन भरी (घोंटाल्याच्या), शंकास्पद, वादग्रस्त और अनिर्णीत थी, जिनका समाधान और विश्लेषण बड़े-बड़े पंडितों से भी नहीं हो सका था। वह स्वामी दयानंद जी सरस्वती ने अतिशय उत्कृष्ट पद्धति और तार्किकता से किया है। वह उनकी स्पष्टीकरण की उत्तम तर्क शैली उनके पूना प्रवचन या उपदेश मंजरी में स्पष्ट दृग्गोचर होती है। 'श्रीमद्भागवत् आदि ग्रंथों में श्रीकृष्ण का अवतारी, अधार्मिक, नीतिमूल्य विरहित जो लीलामयरूप का चित्रण किया है वह श्रीकृष्ण जैसे (अवतारी) पुरुष के लिये बहुत ही लांछनास्पद है ?—इस प्रकार के शंकात्मक प्रश्न यदि कोई स्वामी जी के समक्ष रखता तो वे उसका इस प्रकार समाधान करते कि ये सब दोष या कलंक उस भद्र पुरुष को कलंकित नहीं करते, क्योंकि श्रीकृष्ण कोई सामान्य पुरुष नहीं थे, वे तो योगेश्वर, विवेकी, और ज्ञान से समृद्ध थे, इसलिये ऐसी निंद्य और दुष्कर्मयुक्त घटनायें उनसे घटीं–इस प्रकार का कथन करना और तदनुसार उन कपोलकल्पित घटनाओं का वर्णन करना—यह सब कवि का दोष है। कवियों ने अपने काव्य में अनैतिहासिक मनचाही घटनाओं का वर्णन किया है। उन कल्पित कल्पनाओं को सत्य मानना अनुपयोगी व हानिकारक है, क्योंकि श्रीकृष्ण महान् ज्ञानी थे, यह उनके भगवद् गीता नामक उपदेशात्मक ग्रंथ से अनायास स्पष्ट हो जाता है। स्वामी जी, वेद प्रतिपादित यज्ञयागादि कर्मकाण्ड की अनुपयोगिता के बारे में, यदि किसी ने संदेहात्मक प्रश्न किया तो, वे उसकी उपयोगिता के बारे में यह कहते थे कि, वातावरण वायू-प्रदूषण आदि को शुद्ध करने के लिये यागिक-कर्म भी आवश्यक है, और इसीलिये वेदों ने उसका प्रतिपादन किया है। यदि किसी की यह शंका रही, कि वेद में यज्ञ संबंधी मंत्रों में पशु बलि का विधान है, तो स्वामी जी का यही उत्तर होता था कि—वेद में हिंसा नहीं है, यहां पर यह बात ध्यान में रखनी जरूरी है कि–वेदों का अर्थ सत्यार्थ पर ही आधारित होना चाहिये, वेदों में तो पशु पालन का वर्णन है, पशु हिंसा को नहीं"। इस सदर्भ में विस्तार से जानने के लिये स्वामी जी की ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका का अध्ययन करना चाहिये स्वामी दयानंद पशुबलि के कट्टर विरोधी थे, इस संबन्ध में उनकी 'गोकरुणानिधि' नामक पुस्तिका प्रकाशित हुई है। पशुहिंसा की जो कुप्रथा सर्वत्र प्रचलित है वह अतिशय घातक और हानिकारक है। इस कुप्रथा पर सरकार की ओर से त्वरित पाबंदी लगानी चाहिये'–इस भावना से एक विस्तृत निवेदन (अपील) पत्र तैयार करके, उस पर लाखों लोगों के हस्ताक्षर लेने का अभियान स्वामीजी ने चलाया था। स्वामी जी ने सभी राजाओं और देशी राज्यों को विनम्रता से अपील की थी और उन सब के सहयोग से वह निवेदन पत्र सरकार को भिजवाकर गोवध बंदी अभियान चलाया था, तदनुसार बंबई से एक लक्ष हस्ताक्षर प्राप्ति के पश्चात् अन्य स्थानों पर भी यह हस्ताक्षर अभियान चालू हो चुका था, परन्तु ऐसा कोई अवसर नहीं आ सका कि इस यज्ञ के पुरोहित स्वामी जी के हाथ से ही कार्य संपन्न होता। स्वामी जी के अकाल कवलित होने से गौ आदि पशुवध बंदी का अभियान अधूरा ही रह गया।

ज्ञान ग्रन्थ वेद और उसके मंत्रार्थ जो हजारों वर्षों से भयानक अज्ञान अंधकार फैला हुआ था, उसका परिणाम यह हुआ कि पंडित लोग भी अपने पूर्वजों की बुद्धिमत्ता और ज्ञान संपदा को सम-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

झने में असमर्थ रहे . (इसलिये) मानो, इस अमंगल वेला का विनाश करने के लिये ही सत्पुत्र स्वामी दयानंद जी सरस्वती आर्य माता की कोख में जन्मे थे। पुराण रचियताओं ने भ्रांत मूलक मत लिखकर नानाविध कपोल कल्पित कथा, कहानियों व विचारों से जनमानस को दिशा हीन कर दिया है (बाव-रुन टाकले)—यह सभी लोगों को समझ लेना चाहिये 'समाज सत्पथ से विचलित होकर अमावस्था की ओर जा रहा है, उससे उसकी रक्षा और मुक्ति होनी चाहिये। इस भावना से स्वामी जी ने अपना कर्त्तव्य कर्म समझकर, अनंत श्रमपूर्वक प्रवचन और सद्ग्रंथों के लेखन[२०] व प्रकाशन का कार्य आरम्भ किया था। स्वामी जी के उपदेशों में प्राय: इस तरह की बातों का समावेश रहता था कि --पुराण ग्रन्थों के माध्यम से रूढ हुई मूर्ति पूजा अवैदिक, अशास्त्रीय व अज्ञानमूलक होने से सर्वथैव त्याज्य और वर्ज्य है। प्राय: वे इस बात का प्रतिपादन करते कि वेदों से लेकर सूत्रोत्पत्ति के काल तक (वेदोक्त धर्माला अनुसरून सूत्रोत्पत्ति होई पर्यंत) सभी लोग वेदानुकूल चल रहे थे, परन्तु आगे चलकर पुराण काल से वैदिक धर्म और वेदमत की उपेक्षा होने लगी। इस संदर्भ में स्वामी जी पौराणिक कथाओं के विघा-तक स्वरूप, और अतार्किकता का वर्णन करते हुए, पुराण रचयिताओं, उनके अनुयायियों, और पुराण समर्थक पौराणिकों का बहुत ही मजाक उड़ाया करते थे। वह उपहास, भट्ट भिक्षुक, पंडे-पुजारी और सनातनी वैदिक शास्त्री पण्डितों के हृदय और मष्तिष्क को बहुत ही सालता था। जिसकी प्रतिक्रिया स्वरूप वे स्वामी जी के विरोधी (द्वेष्टा) बन कर उन्हें पाखण्डी, नास्तिक आदि गर्हित विशेषणों से लांछित कर, लोगों में उनका अपशय फैलाने की कोशिश किया करते थे। हमें यह सदैव ध्यान रखना चाहिये कि किसी भी प्रकार का सुधार करने से पूव, प्रचलित मिथ्या धारणाओं व रूढि-पद्धति और ग्रन्धविश्वासों का समूलोच्छेद करना पड़ता है। यह एक कटु सत्य नियम है कि इस प्रकार का मूलोच्छेदन उन व्यक्तियों के उदर निर्वाह पर या यों कहिये कि उनके 'पेट [पूजा] पर लातमारने' के समान है—जो व्यक्ति, अज्ञानी लोगों के अन्धविश्वासों और परंपरा से पोषित रूढियों के सहारे अर्थ प्राप्त कर रोजी-रोटी चलाते हैं। इस प्रकार के स्वार्थी पंडे-पुजारी और रूढिवादी लोग सुधारक की सर्वत्र बदनामी और अपकीर्ति फैलाते हैं। जैसे नवीन यन्त्रों के निकलने पर हस्तोद्योग या घरेलू उद्योग से जीविकोपार्जन करने वाले लोग उन नवीन (आविष्कृत) यन्त्रों के नाम पर आंसू बहाते हैं, ठीक उसी प्रकार रूढिवादी, प्रतिगामी और अन्ध परम्परानुयायी लोग हमेशा सुधारकों के नाम को बदनाम करने की कोशिश करते हैं। स्वामी दयानन्द जी ने ब्राह्मणों में प्रचलित संस्कार पद्धति को बदलकर (दरोबस्त), वैदिक मर्यादा के अनुकूल एक नयी 'संस्कारविधि' बनाई, जिससे भट्ट-भिक्षुक, पण्डे-पुजारियों की आय व पोपलीला को बाधा पहुंचने लगी, और वे परेशान हो उठे। जिस (सत्) पुरुष का वेद संहिता से परे, ब्राह्मण ग्रन्थों के अतिरिक्त अन्य किसी भी ग्रंथ में विश्वास न था और जो वेदों के सिवाय अन्य ग्रन्थों के वचनों को प्रमाण(प्रामा-णिक) मानने के लिये भी तैयार न था। ऐसे सत्पुरुष [स्वामी जी] को —वेद बाह्य और पाखण्ड से परिपूर्ण मतों का अनुकरण (अनुसरण) करने वाले दुराग्रही, सनातनो, रूढिग्रस्त शास्त्री पण्डितों से मैत्री आखिर हो ही कैसी सकती थी। यदि स्वामी दयानन्द जी के विचारों को या मत प्रतिपादन प्रणाली को ये लकीरी फकीर शास्त्री, भिक्षुक पंडित आदि पुराण पंथी पक्षपात रहित हो, विवेक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

और शांन्ति से सुन भी लेते, तो ऐसा कोई कारण नहीं था, कि जिस कारण वे स्वामी जी से ईर्ष्या-द्वेष की भावना रखते, (जो कि इन लोगों के अन्तःकरण में विद्यमान थी)। क्योंकि, स्वामी जी के विचार यथार्थ, निर्दोष और वास्तविकता पर आधारित थे, परंन्तु मिथ्याभिमानवश और शत-प्रतिशत अपने विवेक को गिरवी रखकर, पराधीन और गुलाम हो जाने के कारण, इन रूढ़िग्रस्त प्रतिगामियों के पास शांति के साथ स्वतंत्र विचार करने के लिये अवसर ही कहां था ? इस प्रकार भटके हुये [दिशाहीन] पुराणमतवादी लोगों में और स्वामीजी में मतभेद हो जाने से इन दोनों विचार प्रवाहों की अलग-अलग दो दिशायें बन चुकी थीं।

यह तो कोई भी समझदार व्यक्ति, कभी भी, नहीं कहेगा कि, स्वामी दयानंद जी के मत निरर्थक और विवेकशून्य हैं। स्वामी जी का यह मत था कि–आर्य धर्म के सिवाय दूसरा कोई भी धर्म सत्य पर आधारित नहीं है, और बुद्धि और स्वभाव की दृष्टि से, आर्यों की तुलना में अन्य कोई श्रेष्ठ और उत्कृष्ट नहीं है। जीव और शिव एक (अद्वैत) हैं अर्थात् हर प्राणी परमात्मा है–इस प्रकार का जो वेदांतियों का मत है वह मिथ्या है। शिव और जीव का पार्थक्य स्वामी जी सप्रमाण सिद्ध करके बतलाते थे। प्रायः वे यह कहा करते थे कि-जीवात्मा को सदाचरण व सद्भक्ति से ईश्वर का सानिध्य प्राप्त कर लेना चाहिये, और ऐसी स्थित में भी, यदि मनुष्य अपने आपको ब्रह्म समझ, मनचाहे कर्म करता है, तो वह अयोग्य और पाप का मूल (कारण) है। जीवात्मा अनंत काल तक पुनः-पुनः जन्म प्राप्त करता रहता है, उसे इस जन्म-मरण के बंधन से मुक्ति, ईश्वर की आराधना से ही मिल सकती है, परंतु उस मुक्ति का समय भी अनंत न होकर, एक कल्प " पर्यंत ही होता है। द्वितीय कल्प के प्रारंभ में जीव को पुनर्जन्म लेना पड़ता है। इससे यह स्पष्ट है कि वे जन्म जन्मांतर और पुनर्जन्म में विश्वास रखते थे। उसी प्रकार ईश्वर के संबन्ध में सदैव वे यह उपदेश किया करते थे कि, ईश्वर सगुण, निराकार, पवित्र, जगत् रक्षणकर्ता, जगदाधार मायातीत आदि दिव्य गुणों से युक्त है। मनुष्यों की तरह वह मनोविकारग्रस्त और सोपाधिक नहीं है; किंतु सृष्टिकर्त्ता, जगन्नियंता, जगत् संहारकर्त्ता स्वाधीन और स्वतंत्र है। इसलिये जीवात्मा को उस ईश्वर की भक्ति-भजन व आज्ञापालन करके उसकी कृपा संपादित करनी चाहिये। प्रायः वे इस बात का प्रतिपादन बड़े खेद से किया करते थे कि—पुराण तंत्रादि ग्रंथों के लेखकों ने नवीन आचार संहिताओं और कर्मों को वैदिक कर्मकांडों में मिला-कर दूषित कर दिया है, जिसके कारण लोगों में भ्रम और पाखंड फैलता जा रहा है, आखिर इस सबका निराकरण कैसे होगा ! इससे पूर्व हमने लिखा है कि स्वामी जी ने एक स्वतंत्र संस्कार विधि नामक ग्रंथ लिखा था, उस ग्रंथ से, स्वामी जी के वेद (श्रुति), स्मृति व गृह्य, आश्वलायन आदि सूत्रों में प्रतिपादित, आचार सबंन्धी सभी विचार स्पष्ट होते हैं। भिन्न-भिन्न आचार (कर्मकांड) प्रवर्त्तक आचार्यों ने जो सूत्र लिखे हैं, वे अनावश्यक है। इसलिये उन सब में एकता लाने का प्रयास स्वामी दयानंद जी सरस्वती ने संस्कारविधि में किया है विभिन्न आचार्यों ने (भिन्न-भिन्न) विविध स्मृति-शास्त्रों का निर्माण किया, परंतु आगे चलकर जिस प्रकार महानिबंध-कारों ने, सभी स्मृतियों को एकत्र कर आचार संहिता का निर्णय किया, बस, ठीक उसी प्रकार

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

'सूत्रोक्ताचार' के विषय में, और चतुःसूत्री एवम् चतुर्वेद [के मंत्रों एवं कर्मकांड] का एकत्रीकरण कर, स्वामी दयानंद जी ने महदाशय और अत्यंत परिश्रम से, सारासार का विचार करते हुये 'संस्कारविधि' नामक ग्रंथ की रचना की है, और साथ ही उन्होंने इस ग्रंथ में विविध ग्रंथों के आवश्यक सूत्रों को भी संमिलित किया है। अब उसका योग्य 'उपयोगानुपयोग' करने का काम उनके अनुयायियों सच्छिष्यों और छात्रों की ओर शेष है।

स्वामी जी के सर्वांगीण, अपूर्व और अभिनव मतों की पर्यालोचना कर, अपना समाधान और संतोष कर लेने की जिस किसी की इच्छा हो, उसे स्वामी जी लिखित सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थ और ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पढ़नी चाहियें, जिससे शंकाओं का निराकरण, समाधान और उन रचनाओं के प्रति विश्वास उत्पन्न होगा, और इस इच्छित कार्य में सफलता प्राप्त होगी। ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका में उनके सभी प्रकार के विचार, और आज तक उनके सामने, जो-जो शंकायें उपस्थित हुईं, उन सबका समाधान भी किया गया है, उससे उनके योग्य-अयोग्य विचारों का स्पष्टीकरण सहज रूप से हो सकेगा। इससे पूर्व हमने उनकी उपदेश शैली, विचार प्रतिपादन प्रणाली और उनके आशय का जो संक्षेप में स्थान-स्थान पर विवरण दिया है, वह सब ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में भी आप देख सकेंगे। "मैं जो यह अपूर्व भाष्य प्रारम्भ करने जा रहा हूं, उस पर किसी का शंका-प्रतिशंका शेष न रहे, और वह सभी को मान्य हो"—यह सोचकर ही उन्होंने इस ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका की सुदृढ़ नींव डाली थी। इस नींव के सुन्दर, स्थिर और शास्त्रानुकूल कार्य को देखकर ही, उस पर आगे चलकर खड़े होने वाले 'वेदभाष्य' रूपी भवन, जिसका शुभारम्भ और यत्किंचित् कार्य भी उस विलक्षण बुद्धिमान् शिल्पी के हाथों से आज सम्पन्न हुआ नजर आता है, उससे वह वेदभाष्यरूपी इमारत कितनी सुन्दर और अभूतपूर्व हुई होती, इसका सहज ही अनुमान होता है, परन्तु प्रारम्भ किया हुआ कार्य निर्विघ्नता से परिपूर्ण होने के लिये, कार्य का प्रारम्भ अनुकूल समय पर होना चाहिये, ऐसी जो भोले-भाले लोगों की भावना है, वह वास्तव में सही है। तदनुसार वेदभाष्यरूपी भवन का यह कार्य स्वामी जी ने जब प्रारम्भ किया तब यही समझना चाहिये कि उस समय अनु-कूल और मंगलवेला नहीं थी, और इसी कारण यह कार्य उस मुख्य शिल्पी के अकाल कवलित हो जाने से अधूरा ही रह गया! क्या यह अधूरा कार्य पूरा हो सकता है? क्या उसका कोई उपाय है? इसे कोई नहीं जानता! यदि कोई जानता भी हो तो किसे मालूम! इस प्रकार अब सभी विचारों के लोग महसूस करने लगे हैं। "मनसा चिंतितं कार्यं दैवमन्यत्र चिंतयेत्"। हम एक कार्य करने की योजना बनाते हैं, पर दुर्भाग्य से वह कार्य अधूरा ही रह जाता है। स्वामी जी द्वारा प्रारम्भ किया हुआ वेदभाष्य जब कुछ यूरोपीय और भारतीय विद्वानों ने पढ़ा तब उन्होंने यह कहा कि यह भाष्य वास्तविकता पर आधारित नहीं है। जब यह जानकारी विभिन्न आर्य व यूरोपीय (इंग्लिश) पंडितों की ओर से स्वामी जी को अन्तिम समय में मिली तब उनके अनुयायियों ने उनकी शंकाओं का उत्तर देने के लिये स्वामी दयानन्द जी के मन्तव्यानुकूल आर्य व आर्यपत्रिका" नामक अंग्रेजी व हिंदी भाषाओं में मासिक पत्रिकाओं का प्रकाशन क्रमशः लाहौर और प्रयाग से प्रारम्भ किया। ये दोनों मासिक पत्रिकायें आज भी प्रकाशित हो रही हैं। इन पत्रि-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

काओं के माध्यम से इनके संचालकों ने, उन शंकाओं के निवारण का अतिशय प्रशंसनीय कार्य किया है, साथ ही यह भी सिद्ध करने का प्रयास हुआ है कि स्वामी जी ने जो वेदार्थ और वेदभाष्य किया है, वही सत्य है—'वेदों का गौरव जिस प्रकार के अर्थों से अक्षुण्ण रहे, वही अर्थ श्रेष्ठ, सच्चा और ग्राह्य है'। ऐसा जो इन दोनों पत्रिकाओं के संचालकों का मत है, वह कोई अयोग्य (बावगे) नहीं है; तथा साथ ही दयानन्द दर्शन के भी अनुकूल है। यह कोई भी निष्पक्ष आर्य व्यक्ति स्वीकार करेगा ही। स्वामी जी ने वेदभाष्य का कार्य प्रारम्भ किया था। वह यथार्थ (खरया) वेदार्थ के अनुकूल कितना था, और उनसे पूर्व महीधर आदि प्राचीन भाष्यकर्त्ताओं ने जो वेदभाष्य किये, वे किस अंश और किस मात्रा में और कहां-कहां पर सदोष हो गये थे—इसका सप्रमाण विवरण स्वामी जी ने अपनी ऋग्वेदभाष्यभूमिका में सोदाहरण दिया है। उन्होंने यह भूमिका बहुत श्रेष्ठ, सरल और सप्रमाण (साधार) लिखी है। जिससे कि समस्त शंकाग्रस्त व्यक्तियों [पाठकों] की शंकाओं का समाधान हो जाता है। इसीलिये हमारी यह सिफारिश है कि, वेद महिमा से परिचित होने की अभिलाषा रखने वालों को ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका साद्यन्त पढ़ लेनी चाहिये। इन भूमिका ग्रंथ के अध्ययन से यह उपलब्धि होगी कि—अनेक अज्ञात और महत्त्वपूर्ण तथ्यों से हम सुपरिचित होंगे और समाज में प्रचलित मिथ्या-आचार और विचार किस प्रकार आज तक अपनी मोहिनी (अंमल) से समस्त भारतवर्ष को वशवर्त्ती बनाये हुये हैं—इसकी जानकारी मिलेंगी। तभी यह स्पष्ट होगा कि शास्त्री पण्डित इत्यादि ज्ञानी विद्वान् लोगों ने कितनी अनावश्यक उदासीनता और उपेक्षा (हेलसांड) दिखाई है। जाति भेद का क्या तात्पर्य है? वेदाध्ययन का अधिकारी कौन है? इत्यादि महत्त्वपूर्ण विषयों का स्पष्टीकरण भी स्वामी जी ने इस ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में विस्तार से किया है। गुणकर्मानुसार जाति व्यवस्था और हर बुद्धिमान व्यक्ति को वेदाध्ययन का अधिकार है, ऐसा प्राचीन स्मृतिकारों का जो स्पष्ट मत है, उसका समर्थन सद्गुण स्वामी दयानन्द जी सरस्वती ने किया है, और वह समर्थन बिल्कुल निर्दोष है। मैं यह स्पष्ट रूप से कहता हूं कि इस दोष रहित समर्थन की प्रतीति विद्वानों को हुए बिना नहीं रहेगी।

दो हजार वर्ष पूर्व से आज तक विद्वानों ने जो यह रट लगाई है कि—वेदादि शास्त्र ब्राह्मणों के गुप्त धन हैं, और उनकी ओर अपने अतिरिक्त अन्य कोई भी आंख उठाकर न देखें (डंकून वधूही नये) बिल्कुल इसके विपरीत जैसा कि हम पहले लिख आये हैं—स्वामी जी ने कहा था कि—'जिस व्यक्ति के पास प्रतिभा है, उसे बहुत ही प्रसन्नता के साथ वेद शास्त्र का अभ्यास करना चाहिये' उनका यह कथन सबको अप्रिय (विषय) प्रतीत हुआ, जिससे समस्त तथाकथित ब्राह्मण समाज क्रुद्ध हो उठा। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। यह स्वाभविक ही था। दयानन्द जी की वर्णन शैली निर्मूल और निराधार न होकर आत्मविश्वास से परिपूर्ण थी, परन्तु उनके द्वारा व्यक्त विचारों को शांति और विचार पूर्वक ग्रहण करने का साहस और पूर्ण सामर्थ्य किसी भी विद्वान् (ब्राह्मण) में न होने से, ब्राह्मणों में और स्वामी जी में, परस्पर विवाद और विचारों में मतभेद हुआ करता था। इससे स्वामी जी की उदारवृत्ति और ब्राह्मणों की अनुदार प्रवृति स्पष्ट दिखाई देती है। स्वामी जी स्वाधीनचेता थे। उनका व्यक्तित्व मोह पाश, लालच और भय आदि

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विकारों से पूर्णतया निर्लिप्त था। इसी कारण वे पूरी निर्भीकता (किंवा मर्यादा न ढेवता) से वेदानुकूल न्याययुक्त मतों का (धड़ाकून) प्रतिपादन करते थे। वे छल कपट रहित सर्वहितकारी संन्यासी थे, कोई भी जिज्ञासु यदि उनके पास शंका समाधान करने के लिये आता तो वे बड़ी ही निष्पक्षता और योग्यता से उसकी शंकाओं का समाधान करते थे। उनके व्याख्यानों में यवन, यहूदी, ईसाई, जैन आदि सभी संप्रदायों (धर्मों) के श्रोता बड़ी ही प्रसन्नता के साथ संमिलित होते थे। अर्थात् सभी को व्याख्यान सुनने की खुली छूट थी। वैरागी और निःस्पृह होने से उनके जीवन में सच्चाई [सत्यवादिता] कूट-कूट कर भरी हुई थी। किसी की भी सिफारिश पदप्रतिष्ठा या महत्ता उन्हें अपने सत्पथ से विचलित न कर पाती थी। इसी कारण भारतवर्ष के अनेक 'राजा और संस्थानिक' स्वामी जी को अपना गुरु मानते थे, और वे स्वयं भी उनके अनुयायी बन चुके थे। स्वामी जी से अनेक राजाओं का गुरु शिष्यवत् सम्बन्ध था[३३], इसी प्रकार के एक राज परिवार में जब स्वामी जी के विचारों के प्रतिकूल एक अघटनीय घटना घटी, तो स्वामी जी से न रहा गया और उन्होंने राजा को फटकारते हुए कहा कि" यदि तू अपने परिवार में ही सन्मार्गोपदेश और सत्य मत का व्यवहार [प्रसारे] नहीं कर पाता तो, स्पष्ट ही है कि तू अपने राज्य की जनता के के साथ कितने सत्पथ और सत्यमतोपदेशानुसार आचरण करना होगा? जैसा कि हमने अभी, इससे पूर्व इस तथ्य का उल्लेख किया है कि, स्वामी जी के विचारों के प्रतिकूल राजपरिवार में एक घटना घटी—वह घटना यह थी कि—जब एक परंपरागत वैष्णव पंथी राजा ने जब स्वामी जी के उपदेश और विचारों को सुना तब वह अपने वैष्णव पंथ को छोड़ कर वेदमतावलम्बी आर्य (वैदिकार्य) बन गया। परन्तु कुछ दिनों के बाद उस राजपरिवार के सभी लोगों ने अपने कुलीन वैष्णवाचार्य को निमंत्रित कर उससे अपने शरीर, तप्त मुद्राओं से मुद्रित कर लिये[३४]! जब यह समाचार स्वामी जी को विदित हुआ तब ऊपर लिखे अनुसार स्वयं उन्होंने राजा को कटु उपदेश देते हुये फटकारा। कहते हैं कि इसी फटकार के कारण राजा ने अपने परिवार के साथ बहुत ही कठोर रुख अपनाया। इस प्रकार की अनेक बातें सुनी जाती हैं, परन्तु यहां हमें यह प्रतीत नहीं होता कि उन बातों का हमारे चरित्रनायक स्वामी दयानन्द जी से कोई संबंध है। इसीलिये हम उन घटनाओं की उपेक्षा करके अपने मुख्य विषय की ओर आगे बढ़ते हैं। संक्षेप में हम यहां पर यही कहना चाहते हैं, स्वामी दयानन्द जी सरस्वती अत्यंत निःस्पृह थे। उनके यात्रा विवरण और यायावरी जीवन का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे परम धैर्यवान् थे। स्वामी जी का यायावरी जीवन दक्षिण भारत में उतना नहीं बीता, जितना कि उत्तर भारत में। प्रायः उत्तर भारत के समस्त प्रदेशों का उन्होंने भ्रमण किया था, और अनेक स्थानों पर तो उन्होंने विशाल जन सभाओं में बड़े-बड़े प्रसिद्ध पण्डितों से शास्त्रार्थ भी किया था यहां पर यह स्पष्ट करने की कोई आवश्यकता नहीं है कि ये वाद-विवाद या शास्त्रार्थ स्पष्ट रूप में एक दूसरे के प्रतिकूल होते थे अर्थात् स्वामी जी की प्रतिपक्षी पंडितमंडली मूर्तिपूजा मंडक थी तो स्वामी जी मूर्तिपूजा विरोधी थे। इस प्रकार परस्पर विरोधी विषयों में शास्त्रार्थ करने के लिये सुदूर और अपरिचित प्रदेशों में अचानक जाकर अतिरथी-महारथी पण्डितों के साथ वाग्युद्ध (शास्त्रार्थ) करने में स्वामी जी ने यश संपादन किया था, निर्विवादरूप से कोई भी यह स्वीकार करेगा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कि शास्त्रार्थ महारथी स्वामी दयानन्द में असाधारण धैर्य था. इसी धैर्यशील स्वभाव के कारण वे सुदूर और अपरिचित प्रदेशों में प्रतिपक्षी विद्वानों के साथ वाग्युद्ध करने के लिये पहुंच जाते थे। उस सत्पुरुष को सत्पथ पर चलते समय जो यथार्थ मत प्रतीत होता था, उस मत का अनुसरण करते हुए वह कभी भी, कहीं भी, किसी से भी भयभीत और विचलित नहीं होता था। स्वामी जी जब कहीं जाते तो, उनके अगल-बगल (परिपार्श्व) में उनकी सेवा के लिये दो शिष्य रहा करते थे। इसके अतिरिक्त कभी किसी भी प्रकार का परिवार और आडम्बर (डौल) उन्होंने अपने साथ नहीं रखा। आज तक धर्मोन्नति करने वाले जितने भी मत संस्थापक हुये, उनका लगभग इसी प्रकार का क्रम चला आ रहा है। इस धरातल पर दुराग्रही तथा मिथ्या धर्माभिमानियों के कारण न जाने कितने अनन्त अनर्थ हुए हैं। फिर भी लोग अपने जीर्ण-शीर्ण विचारों (जुन्या मतास) से बंधनमुक्त होने से कतराते हैं। जनमत के विरुद्ध अगर कोई क्रांतिदर्शी अपना मत अभिव्यक्त करता है, तो उसका वे किस प्रकार छल करते हैं। इस संदर्भ में हमें (भूगोल के समस्त राष्ट्रों में) सैकड़ों उदाहरण विश्व इतिहास की पुस्तकों में उपलब्ध होते हैं; और वर्तमान काल में भी प्रत्यक्षरूप में हमें ऐसी घटनायें दिखलायी देती हैं। स्वामी जी रूढिबद्ध प्रतिगामी व्यक्तियों से मिलने वाली यातनाओं से सुपरिचित होते हुये भी, अपने लोकविरुद्ध आचरण की किसी प्रकार परवाह न करते हुये, अतिशय शांति (धिम्मेपणाने) और परम धैर्य से, तथा निर्भीकता पूर्वक, और बेधड़क अपने प्रतिपक्षी वीर पण्डितों के क्षेत्र में जाकर, अपना आसन जमा देते थे। आखिर हम इसे क्या कहें? और ऐसे क्षेत्र में जाकर स्वमत प्रतिपादन के लिये तो वे सदैव सन्नद्ध रहते थे (स्वारी तय्यारच!) आखिर कौन इतना बड़ा साहस करेगा! प्रतिपक्षी मण्डली में सभी व्यक्तियों का स्वभाव एक जैसा होता है, ऐसी भी बात नहीं है। कोई क्रूर (खुनशी), कोई दीर्घद्वेष्टा कोई गुण्डा (कोणी दांडगे) कोई ईर्ष्यालु, कोई अविवेकी, स्वार्थी और कोई हत्यारा भी होता है, तब हम यह समझते हैं कि स्वामी जी अपने अतिशय धैर्यशाली स्वभाव के कारण ही इस प्रकार के रूढिवादी लोगों के बीच पहुंचकर, उनके विचारों के प्रतिकूल नितांत अभिनव विचारों को अभिव्यक्त कर निर्भीकता के साथ उनके जीर्ण-शीर्ण मतों को अपनी अपूर्व विद्वत्ता से छिन्न-भिन्न करने का कार्य, कर पाये। अन्यथा यह कार्य कदापि संभव नहीं था। स्वामी जी के यायावरीय जीवन के क्रमिक इतिहास से, और उनके विभिन्न स्थानों पर किये गये प्रकाशित शास्त्रार्थ पुस्तिकाओं के अध्ययन से, यह सहजता से स्पष्ट हो जाता है कि स्वामी जी में धीरता कूट-कूट कर भरी हुई थी; और वह (धीरता) संकटकाल में थोड़ी सी भी न डगमगाती थी।

संन्यस्त, निर्लोभी, निःसंकोची निर्भीक और स्पष्टवादी होने के कारण वे किसी की भी खुशामद न करते थे (त्यांना ललुलपु म्हणून विल्कुल नसे) इसी कारण स्वामी जी को आकृष्ट और पाशबद्ध करने का सामर्थ्य दुनियां की किसी भी शक्ति में नहीं था। इसीलिये हम यह कह सकते हैं कि, वे जो बड़ी स्पष्टता के साथ वेद प्रतिपादित मतों को अभिव्यक्त करते थे, उनमें उनकी व्यक्तिगत स्वार्थ की कोई भावना न थी। यजमान के सामने सत्य वेदमत प्रतिपादित करने में कुल पुरोहित (गुरु) को यह भय रहता है कि अपने पौरोहित्य के लिये इस परिवार के दरवाजे सदा-सदा के लिये

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वन्द हो जायेंगे। शास्त्री को शास्त्रों के आधार पर अभिनव मत प्रतिपादित करने पर समाज में अनाहत और अप्रतिष्ठित होने का भय लगा रहता है, और गृहस्थी को इस बात का भय रहता है कि—यदि मैंने आचार्य द्वारा दर्शाये मार्ग का अनुसरण करना छोड़ दिया तो जन-समाज में, मैं निस्तेज और निष्प्रभ हो जाऊंगा। परन्तु स्वामीजी इसके अपवाद थे, क्योंकि मन-बुद्धि को सत्य प्रतीत होने वाली विचारधारा का बड़ी ही निर्भीकता के प्रचार-प्रसार और तदनुकूल आचरण करने की प्रवृत्ति, विनम्रता (अदांभिकता) और धीरता स्वामी जी के अतिरिक्त अन्य किसी में दृष्टि गोचर नहीं है। जनसाधारण के समान दुनियावी मोहपाश या लोभ-लालच में बद्ध होने का स्वामी जी के पास अवसर ही नहीं था। इसीलिये वे ऋषियों के सत्पथ के पथिक बन सके। स्वामी जी में [पद्मपत्रमिवाम्भसा'] निष्काम निर्लिप्त रहने का अतिमानवीय ऋषि सम गुण, अत्यन्त ही अद्भुत और अलौकिक था। उनके इसी गुण के कारण हम यह कह सकते हैं कि, वे जनता के श्रद्धेय और [परम] पूज्य बन गये थे। उनसे पूर्व गुजरात में सहजानन्द स्वामी उपाख्य (उर्फ) नारायण स्वामी नाम के साधु पुरुष और धर्म संस्थापक हुये। उनका जीवन काल ई० सन् १८१८ से लेकर १८३२ तक था। स्वामी सहजानन्द जी ने अपने सदुपदेश और सत्संग से लाखों लोगों को 'साधु' बना लिया था। कालान्तर में उनके प्रभाव से गुर्जर प्रदेश में अनेक मठ-मंदिरों की स्थापना भी हुई थी। जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं, जब कोई सुधारक सुधार कार्य करता है, तब प्रायः (किसी न किसी) स्वार्थी, रूढिवादी लोगों की आय और पेट-पूजा खतरे में पड़ जाती है, और इस प्रकार अप्रत्यक्षरूप से उनके लाभांश पर आक्रमण होने की स्थिति में वे उस सुधारक को सताने और छलने लगते हैं। इसी दुष्ट प्रवृत्ति के वशीभूत होकर स्वामी सहजांनन्द जी को भी उनके जीवनकाल में लोगों ने बहुत छला और सताया था। फिर भी, नारायण स्वामी जी का पन्थ गुर्जर प्रदेश में अतिशय लोकप्रिय, विस्तीर्ण और प्रसिद्ध हुआ। स्वामी नारायण जी ने स्वमत प्रतिपादक—'वचनामृत' और 'शिक्षापत्री', आदि अनेक ग्रन्थों का निर्माण किया था। यह सब वर्णन-विवरण सत्य होने पर भी, हम यह कहने के लिये विवश हैं कि, स्वामी नारायण में स्वामी दयानन्द जी जितनी विद्वत्ता और गंभीरता नहीं थी, स्वामी नारायण जी भी तपोमूर्ति (तपोनिधि), ब्रह्मचारी और वक्ता थे, परन्तु स्वामी दयानन्द जी अपनी अद्वितीय विद्वत्ता के कारण स्वामी सहजानन्द (उपाख्य नारायण स्वामी) की तुलना में बड़ी ही उच्चकोटि के थे। जिस प्रकार श्रीमच्छंकराचार्य विद्वत्ता इत्यादि सर्व (यौगिक) गुणों से सम्पन्न थे, वैसे ही श्रीमद्दयानन्द जी भी थे। इसलिये हमारी दृष्टि में उन्हें प्रतिशंकराचार्य कहने में कोई भी संकोच और आपत्ति नहीं है। शंकराचार्य के बाद अपनी प्रतिभा के बल पर स्वामी दयानन्द के बिना शास्त्रार्थ समर में कोई भी अवतीर्ण नहीं हो सका। स्वामी दयानन्द जी रामानुजाचार्य माध्वाचार्य, वल्लभाचार्य आदि बड़े-बड़े मतसंस्थापकों और भाष्यकर्त्ताओं की विद्वत्श्रेणी (विद्वद्माला) में विराजमान होने योग्य हैं। यह बात निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि अर्वाचीन काल में स्वामी जी के अतिरिक्त अन्य कोई विद्वान् और तपोनिष्ठ नहीं हुआ।

अब तक हमने स्वामी जी, किस कोटि के मनुष्य रत्न थे, इसका विवेचन (विश्लेषण) किया

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

है। अब स्वामी जी के विपक्षियों के विचारों का संक्षेप में वर्णन (विचार) करके इस प्रकरण को हम यहीं समाप्त कर देंगे। स्वामी जी उत्तर भारत के विभिन्न नगरों में शास्त्रार्थ करते हुए भ्रमण करते थे। इस तथ्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्येक शास्त्रार्थ स्थल पर स्वामी जी की विचार प्रणाली और मत प्रतिपादन पद्धति पर शंका और शक व्यक्त करने वाले निःसंशय बहुत से प्रतिपक्षी विद्वान् होंगे: उन सभी शंकालु-संशयी विपक्षी विद्वानों के अनुकूल-प्रतिकूल मतों का खण्डन करने के लिये न तो हमारे पास समुचित अवसर है, और न ही यहां पर हमें यह सब अभीष्ट ही है। हम तो केवल, हमारे महाराष्ट्र प्रदेश (पुणे) में, जो स्वामी जी के विपक्षी या विरोधी थे, उनकी आक्षेपात्मक टीकाओं को समालोचना-समीक्षा, जनता के समक्ष प्रस्तुत करना चाहते हैं। क्योंकि देशभर में स्वामी जी पर जो आक्षेप (कटाक्ष) व्यक्त हुये, उनमें से महाराष्ट्रीय आलोचकों के विचार और लेख ही (महाराष्ट्रीय) लोगों को मालूम हैं। सम्भव है इन आलोचकों के विचारों को पढ़-सुनकर, महाराष्ट्रीय मन भ्रष्ट और दिशाहीन होकर, स्वामी जी जैसे महापुरुष के प्रति अनादरणीय भावना बना लें (या अपूज्य भाव से परिपूर्ण हो गये हों)। इसलिये स्वामी दयानन्द जी किस श्रेणी के मनुष्य थे, तथा स्वामी जी के आलोचकों (टीकाकारों) ने उनकी जो 'न भूतो न भविष्यति' उपहास व निंदा की है, वह समुचित थी, या विशुद्ध रूप में ईर्ष्या-द्वेष की भावना से प्रेरित थी—इन सब विषयों पर अब हम विचार करना चाहते हैं। उस सत्पुरुष पर निरर्थक जब किसी ने आग उगली है, तो उसे शांतिपूर्वक सुनने या सहन करने की अपेक्षा सम्यक् उपाय से (साम्यापायानी) उसे बुझाने का प्रयत्न करना, हम अपने अनेक कर्तव्यों में से एक कर्तव्य समझते हैं। और इसी ध्येय से प्रेरित होकर, हम इस प्रस्तुत निबन्ध को समाप्त करने से पूर्व संक्षेप में उन महाराष्ट्रीय पण्डितों की आलोचना का विश्लेषण करना चाहते हैं।

वर्तमान काल [स्वामी जी के मुंबई-पुणे आगमन काल[१५]] में ऋषि दयानंद की मत प्रणाली पर आक्षेप करने वालों में उपर्युक्त तीन [प्रा० रामकृष्ण गोपाल भांडारकर, स्व० पंडित विष्णु शास्त्री चिपलूणकर व कैलासवासी विष्णु शास्त्री पंडित] महाराष्ट्रीय सज्जन (गृहस्थ) महत्त्वपूर्ण थे। इन आक्षेप कर्त्ताओं में निबंधमाला पत्रिका के सम्पादक श्री विष्णु शास्त्री चिपलूणकर सर्वाग्रणी थे। प्रा० भांडारकर आदि के आक्षेप और संशय तो आपसी वार्त्ताओं में ही प्रकट हुये थे। भांडारकर जी के स्वामी दयानंद जी से संबंधित अभिमत (विचार) लिखित या व्याख्यानों के रूप में कहीं भी प्रकट रूप में व्यक्त न होने के कारण, उन तक ही सीमित रहे। हां, उनके अतिरिक्त अन्य महाराष्ट्रीय विद्वान् (स्व०) विष्णु शास्त्री पंडित जी ने एक बार स्वामी दयानंद जी के साथ हुई अपनी प्रथम भेंट का लिखित रूप में वर्णन करते हुये, स्वामी जी के विरोध में एक आक्षेपात्मक लेख लिखा था। परंतु, जब आगे चलकर उन्हें दयानंद जी की विद्वत्ता और तपस्या (तपोबल) का परिचय मिला तो उन्होंने स्वामी जी के विरोध में एक शब्द (अक्षर) भी नहीं लिखा, और वे खुले रूप में स्वामी जी की प्रशंसा करने लगे। हमने (लेखक ने) तो अनेक बार उन (के मुख) से स्वामी जी की प्रशंसा सुनी थी। इसके अतिरिक्त उनके द्वारा संपादित व संचालित इंदुप्रकाश नामक पत्रिका में भी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अहमदाबाद आदि नगरों में घटित घटनाओं के आधार पर, स्वामी जी संबंधी स्तुति और उनकी लोकप्रियता (लोकिभ) का परिचय देने वाले अनेक पत्र प्रकाशित हुये थे। इन तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट रूप से सिद्ध हो जाता है कि, विष्णु शास्त्री पंडित का दयानंद जी के प्रति अनुकूल मत हो गया था। जिनकी विचारधारा से अपनी विचारधारा प्रतिकूल हो, ऐसे व्यक्ति के संबंध में लगातार अनेक महीनों तक अपनी पत्रिका में अभिनंदनीय प्रशंसात्मक विस्तृत लेख प्रकाशित करने वाला उदार पत्रकार हमारी दृष्टि में कोई भी नहीं है। परंतु पत्रकार विष्णु शास्त्री पंडित इसके अपवाद थे। जब विष्णु शास्त्री पंडित ने अनवरत अनेक महीनों तक स्वामी दयानंद जी के गुणगौरव से संबंधित अनेक लेख, पत्र व समाचार प्रकाशित किये थे, तथा मुझसे संपन्न हुई अनेक वार्त्ताओं में भी, उन्होंने स्वामीजी के प्रति श्रद्धाभाव व्यक्त किया था, तो उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि, दयानंद विरोधी आक्षेप कर्त्ताओं की श्रेणी(खेमे) में उनको गणना करना अब ठीक नहीं है। हमारी दृष्टि में तो दयानंद विरोधी आक्षेप कर्त्ताओं में से उनका नाम निकाल देना ही ठीक होगा। प्रथम भेंट के समय स्वामी जी के संबन्ध में लोगों का जो विरुद्ध दृष्टिकोण बनता था। वह आगे चलकर स्वयं धीरे-धीरे परिवर्तित हो जाता था। इसका यथार्थ वर्णन, स्वामी जी के निधन पर, जो (उनसे संबंधित) श्रद्धांजलि (मृत्यु लेख) परक लेख ठाणे (महाराष्ट्र) से निकलने वाले सूर्योदय नामक पत्र में प्रकाशित हुआ था, उसमें हुआ है। उस लेख का आंशिक या संक्षिप्त रूप हम इस लेख के अन्त में—स्वामी जी के संबंध में समाचार पत्रों के अभिप्राय (स्वामीजीच्या संबंधाने वर्तमान पत्रांचे लेख) इस स्तंभ के नीचे स्वतंत्र रूप से एक परिशिष्ट के रूप में दे रहे हैं, उस [प्रथम] परिशिष्ट से भी यह स्पष्ट हो जायेगा कि निरंतर स्वामीजी के संपर्क में रहने के बाद लोगों के मत किस प्रकार से परिवर्तित हो जाते थे। उस लेख की तरह ही विष्णु शास्त्री पंडित ने भी स्वामी जी के संबन्ध में प्रथम भेंट में हुई गलतफहमी के आधार पर एक प्रतिकूल लेख लिखा था, परन्तु इसमें कोई संशय नहीं कि, बाद में सर्वसंशयों के निराकरण के बाद उनका स्वामी जी के संबंध में उज्वल मत हो गया था, यह बड़े ही संतोष और प्रसन्नता की बात है। समझदार और निष्पक्ष दृष्टि से विचार करने वाले पुरुषों का यही स्वभाव होता है। वे पहले से बने हुये भ्रष्ट और दूषित मत के लिये किसी भी प्रकार का दुराग्रह न रखकर सदसद् विचार पूर्वक अपने पूर्वदूषित मतों को परिवर्तित करने के लिये भी तत्पर हो जाते हैं। इस कथन में हमें कोई आपत्ति नहीं है कि विष्णु शास्त्री पंडित समझदार और तटस्थ दृष्टि से विचार करने वाले पुरुष थे। स्वामी दयानन्द विरोधी सुप्रसिद्ध महाराष्ट्रीय टीकाकारों में से केवल, निबंधमालाकार (स्व०) विष्णुशास्त्री चिपलूणकर ही ऐसे टीकाकार थे, जिनके दुष्टोद्गार पूर्वक लेखों से यह स्पष्ट हो जाता है कि, वह अंतिम समय तक स्वामी जी के विरोधी टीकाकार रहे। चिपलूणकर आज इस दुनियां में नहीं है। ऐसी स्थिति में हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि, हमारी उन पर किसी भी प्रकार की टीका करने का इरादा नहीं है। पाठक हमारे इस कथन पर विश्वास कर सकें, इसलिये हम उनके लिये एक छोटा सा प्रत्यक्ष प्रमाण प्रस्तुत करते हैं कि—चिपलूणकर ने अत्यंत श्रमपूर्वक लगभग डेढ वर्ष तक हमारे लेखों पर समीक्षा की थी। वह शतप्रतिशत हमारे मत से प्रतिकूल थी और हमने उस आलोचना का समा-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

लोचनात्मक प्रत्युत्तर देने में समर्थ होते हुये भी, किसी भी प्रकार का उत्तर नहीं दिया था, क्योंकि हमने, अपने और चिपलूणकर के लेखों के सत्यासत्य विवेचन का कार्य उन विद्वज्जनों को सौंपना ज्यादा पसंद (प्रशस्तदिसते) किया था जिन्हें ईश्वर कृपा से इस प्रकार के हंस क्षीर न्याय की शक्ति और बुद्धि प्राप्त हुई थी।

स्वामी दयानंद जी के संबन्ध में चिपलूणकर जी द्वारा किये गए अशोभनीय (अनिर्वाच्य) निंदायुक्त लेखों को पढ़कर हमें उदासीन और तटस्थ रहना अच्छा (प्रशस्त) नहीं लगता। टीकाकार विष्णु शास्त्री और टीका के केन्द्र स्वामी दयानंद जी, ये दोनों भी पंचत्व को प्राप्त हो गये हैं। उन दोनों की कीर्ति और रचना साहित्य ही सम्प्रति अवशिष्ट हैं। तब ऐसी स्थिति में इन दोनों के लिखित साहित्य के आधार पर अनुकूल-प्रतिकूल विचार (अभिप्राय) और तत्संबंधी आलोचना करने का अधिकार सभी को समान रूप से प्राप्त है। तदनुसार पाठकों की अनुमति से थोड़े से अधिकार का हम प्रयोग करते हैं।

[उपलब्ध कागज-पत्रों के आधार पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि] ई० सन् १८७५ के जून-जुलाई मास में स्वामी जी यहां (पुणे) आये, और उनके लगभग यहां पर १५, १६ व्याख्यान हुये [२७]। उनमें से अनेक व्याख्यान तो उसी समय किसी पुरुषार्थी पुरुष ने प्रकाशित भी किये थे [२८]। स्वामी जी की वक्तृत्व शक्ति का वर्णन तो हम इससे पूर्व कर ही चुके हैं। पुण्यनगरी [पुणे] में विद्वत् और ज्ञानी समुदाय की ओर से तो, स्वामी जी का बहुत बड़े पैमाने पर [पूर्णोत्साह और हर्षोल्लास के साथ] स्वागत किया गया। लोग अतिशय श्रद्धा से उनके प्रवचनों और व्याख्यानों को सुनने के लिये आते थे। अधिकतम (बहुशः) विद्वान्, समझदार (समंजस) और उदारचेता सज्जनों की ओर से ही, स्वामी जी को संमान प्राप्त होता था। ईर्ष्याद्वेष युक्त (मात्सर्य द्वेषान्वित) शास्त्री, पंडित और भिक्षुकों से तो, स्वामी जी को आदर संमान मिलने की कोई संभावना ही न थी। इस प्रकार उनकी यहां अतिशय कीर्ति (वाहवा) हुई। उनके निर्भीक, स्पष्ट और संशय (किन्तु) विरहित भाषण सभी को अत्यंत ही प्रिय लगते थे। इसलिये उनके व्याख्यान सुनने के लिये श्रोत्र समुदाय की अतिशय भीड़ रहती थी (अगदी भिंबड उडावी)। इस प्रकार स्वामी जी का समय पुणे में बहुत ही अच्छी तरह

हिंदू क्लब[२९] में गत जुलाई मास में बहुत चहल-पहल थी (मोठी झटपट चालली होती)। पहले दिन स्वामी जी का और दूसरे दिन उपर्युक्त 'रेवरंड' 'बुवा' का (रेवरंड नीलकंठ शास्त्री गोरे का) व्याख्यान होता था। उसमें कुछ विचित्र मजे (मौज) की बात यह होती थी कि, स्वामी जी के व्याख्यान के समय तो, दीवान खाने में आने के लिये श्रोताओं की भीड़ लगी रहती थी। और रेवरंड बुवा शास्त्री के व्याख्यान काल में तो, यदि प्रत्येक श्रोता को अपने साथ आसन-बिस्तर लाकर, प्रभु ईसा मसीह का ध्यान करना भी होता, तो भी वहां पर यथेष्ट जगह उपलब्ध थी! (आणि हातरुणाची गरज ही खरीच?) वास्तव में व्याख्यान ही ऐसा होता था कि श्रोताओं का शयन के लिये बिस्तर ले जाना ही अच्छा था।[३०]

—निबन्धमाला [विष्णु शास्त्री चिपलूणकर]
नवम्बर १८७५, अंक—२३

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

व्यतीत हुआ, और पुण्यनगरी की विद्वत्मंडली ने तो, उनका बहुत ही संमान किया (फार योग्य परामर्श घेतल)। पर, यह संमान ईर्ष्यालु और नीच (हलकट) बुद्धि के लोगों को सहन नहीं हुआ और इसीलिये उन्होंने स्वामी जी की 'फजिती' करने का निश्चय कर लिया[३१]। एक दिन जब स्वामी जी के भक्त और स्नेही लोगों ने स्वामी जी को हाथी पर बिठाकर उनका जुलूस निकाला[३२]। (गावांत मिखीत आणले] बस! तब उस अवसर का [अनुचित] लाभ उठाकर(कित्येक चटोर दांण्डया लोकांनी स्वामी जीच्या वरछोडचा बरोबरश्च) बदमाश और उद्दंड लोगों ने स्वामी जी के स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति को, एक सजे हुए गधे पर बिठाकर एक प्रति जुलूस (मिखणूक) निकाला। फलतः थोड़ी ही देर में ऊधम मचा और वहां पर दंगा शुरू हो गया। अन्त में पुलिस की सहायता से वह प्रति जुलूस बंद करवाया गया। इत्यादि वर्णन उस समय के दैनिकों में और स्वयं निबन्धमाला पत्रिका के २३ वें अंक में, विस्तार के साथ बढ़ा-चढ़ाकर प्रकाशित किया है। खैर, इस प्रकार की घटना, वह भी पुणे जैसी विश्वविद्यालयीन विद्यानगरी में घटित होना, किसी के लिये (परकीयांस) भी अत्यन्त खेद की बात है, और जिन्होंने दयानन्द जी को आग्रहपूर्वक (मुद्दाम) पुण्यनगरी में आमन्त्रित किया था, उन्हें तो यह सब दुष्ट प्रसंग देखकर कितना दुःख हुआ होगा इसका अनुमान (कल्पना) पाठकों को सहज ही हो सकता है। अपने घर में सम्मानपूर्वक बुलाये हुये अतिथि का यदि इस तरह अपमान हो, और उनके विद्या तपोबल का अत्यधिक अवमूल्यन करने का (अगदी हीनत्व आणण्याचा) कुप्रयास किया जाय, तो इस प्रकार की घटनाओं को न तो देखा ही जा सकता है, और न सहन ही किया जा सकता है। खैर आगे चल कर पुणेवासियों की इस उद्दण्डता और अतिशय दुर्व्यवहार व छल-कपट के (सोरटगिरीच्या) विरुद्ध प्रायश्चित स्वरूप जैसी उन्हें सजा मिलनी चाहिये, वैसी आंशिक रूप में सजा भी मिली[३३]। इसलिये अब तद्विषयक कोई बात नहीं रही है। परन्तु, इन सब अनिष्ट (दुर्) घटनाओं के विषय में, हमारे निबन्धमालाकार को यत्किंचित् भी दुःख प्रतीत नहीं हुआ, यह अत्यन्त ही आश्चर्य और दुःख की बात है। मालाकार ने अपनी निबन्धमाला के 'वक्तृत्व' इस निबन्ध में निरुपाय होकर वक्ताओं की माला में श्रीमद्दयानन्द जी का भी समावेश किया है[३४]। हम ऐसा समझते हैं कि यह कार्य उन्होंने निश्चित रूप से अपनी अन्तरात्मा (इच्छा) के विरुद्ध किया है। इसका अनुमान उन्होंने स्वामी जी के संबंध में जो अभिप्राय व्यक्त किया है, उससे सहजरूप से लगाया जा सकता है। या तो स्वामी जी के गुणावगुण और मतभेदों में पृथक्करण करने का सामर्थ्य निबन्ध मालाकार में नहीं था, और यदि था भी तो, तटस्थता से उस प्रकार का विश्लेषण करना उन्हें अभीष्ट नहीं था, यही कहना पड़ेगा। क्योंकि वैसा करते तो सम्भव है उनके बने बनाये प्रतिष्ठित सनातनी व्यक्तित्व पर ही आंच (मपलत) आती थी। पुणे में सम्पन्न विद्वद्वर्य स्वामी दयानन्द सरस्वती के लगभग १५, १६ (सवा दर्जन) व्याख्यान सुनकर निबन्धमालाकार विष्णु शास्त्री चिपलूणकर को व्याख्याता स्वामी जी में दूध की बटलोई खाली करने के अतिरिक्त (दुधाची चरवी रिचविण्यापेक्षा) अन्य कोई गुण नजर नहीं आया, यह आश्चर्य की बात है, या फिर इसमें आश्चर्य की तो ऐसी कौनसी बात है। मत्सर और अपरिपक्वता इन दो दुष्ट 'गुणों' के कारण तरुण निबन्ध मालाकार की न्याय दृष्टि निस्तेज हो (झापड़ घालून) गई थी। इसके साथ ही मानो उनकी गुणा-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वगुण विवेचक सद्बुद्धि भी अत्यन्त ही शिथिल और मन्द हो गई थी। इसी प्रकार उन्हें स्वामी दयानन्द जी में थोड़े से भी सद्गुण नजर नहीं आये। पुणे के दुष्ट, कुत्सित (कुठाल) और असभ्य (असंभावित) लोग स्वामी जी के जुलूस के साथ-साथ गधे का प्रतिजुलूस निकालकर (स्वामी जी चा वर घोड़ा मिरवला आणि कुठाललोकांनी गाढवाचा लविना काढून) सभ्य समाज में ही उपहासके ही पात्र बने। इससे अधिक और कुछ भी नहीं हुआ। परन्तु, इसमें अतिशय दुःख की बात यह है कि, उन असभ्य (असंभावित) लोगों के समाज में हमारे युवक निबन्धमालाकार ने अपने पाखण्डी, दुष्ट, अविचारी सहयोगियों की पीठ थपथपाई। यह एक दृष्टि से अच्छा ही हुआ। (मिलून त्यांणी आपल्या सोरट संवगड्याची पाठ थोपटली झाली हो गोष्ट अत्यन्त इष्ट झाली) और इस प्रकार का 'गौरव' अपनी पुस्तकों में प्रसिद्ध कर उन्होंने अपने जीवनभर के सुन्दर लेखों को कलुषित कर दिया। यह कोई अच्छी बात नहीं हुई। हमारा यह विश्वास है कि इस कालिमा को दूर किया जा सकता था, यदि निबन्धमालाकार स्वामी जी के देहावसान के समय तक जीवित रहते, क्योंकि, इन पांच-सात वर्षों में स्वामी जी की कीर्ति दिग्दिगंत में व्याप्त हुई है, और हजारों लोग स्वामी जी के भक्त और अनुयायी बनकर उनके गुण वर्णन करने और भजन गाने में तल्लीन हो गये हैं। स्वामी जी के इस उत्कर्ष को देखकर मालाकार जी के कुत्सित मतों में परिवर्तन हो सकता था, और वे स्वयं स्वामी जी के प्रशंसक और अनुयायी बन गये होते। परन्तु दुःख की बात यह है कि मालाकार दीर्घायु न प्राप्त कर सके, और स्वामी जी से तीन वर्ष पहले ही (निष्करुण यमराज के दाढ में) काल कवलित हो गये। जिससे वे पश्चात्ताप भी न कर पाये। बस! अन्ततः यमराज के सामने किसका वश चलता है! उनके लिये यह बात शेष [अपूर्ण-अधूरी] रह गयी कि—स्वामी जी के मन्तव्यों और उनके द्वारा रचित ग्रन्थों पर शांतिपूर्वक विचार करने का उन्हें अवसर भी न मिल पाया था कि, उन्होंने स्वामी जी के सम्बन्ध में बहुत ही·····जल्दबाजी में अपना अभिप्राय व्यक्त कर दिया, और इसी कारण उनके द्वारा दयानंद जी के सम्बन्ध में निंदा परक लेख लिखा गया, और वह उनके निधन के बाद भी शेष रह गया है। इसलिये बुरा मालूम होता है। क्योंकि, उससे निबन्धमालाकार विष्णु शास्त्री चिपलूणकर की धवल कीर्ति कलंकित हो जाती है। पुणे नगर के मूर्ख लोगों ने स्वामी जी की निन्दा और निबन्ध मालाकार ने स्वामी जी के विषय में उपहास गर्भित लेख लिखे। स्वामी जी ऐसी निंदा और उपहास के (किसी अंश में) पात्र थे या नहीं? इसका विचार तो हमारे पाठक करेंगे ही। हमारा तो निष्कर्ष यही है कि—स्वामी दयानंद जी सरस्वती के महाराष्ट्रीय आक्षेप कर्त्ताओं में विष्णु शास्त्री चिपलूणकर एक प्रमुख आक्षेपकर्त्ता थे। हम यहां पर यह भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि, उनके आक्षेप और उनके आक्षेपों की तरह उनके लेख भी कितने सदोष और कुत्सित भावनाओं से प्रेरित थे तथा ईर्ष्या-द्वेष और बालबुद्धि-युक्त थे। इसका संक्षेप में ऊपर स्पष्टीकरण किया गया है। अभिमान में मस्त या गर्व में चूर मनुष्य कभी-कभी कितना अश्लाघ्य व्यवहार [दुराचरण] कर बैठता है, इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हमारे इस मराठी के प्रसिद्ध लेखक निबंधमालाकार विष्णु शास्त्री चिपलूणकर का है, इसलिये कोई भी लेख और कोई सा भी आक्षेप प्रकाशित करने से पूर्व

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यदि उसे सोच-विचारपूर्वक लिखा जाय तो उससे किसी भी विषय पर लोगों का भ्रष्ट और प्रतिकूल मत होने की संभावना (भीति) नहीं रहती है। इस लेखकीय मर्यादा की ओर सभी लेखकों को ध्यान रखना चाहिये। दयानंद जी की निंदा पुणेवासियों और उनके बन्धु मालाकार जी ने की, तो भी समस्त भारतवर्ष और उसके लेखक, [कुछेक] पुणेवासियों और निबन्ध मालाकार की असभ्य और (असंभावित आणि) कुत्सित नहीं है। ऐसी भी कोई बात नहीं हैं कि दुनिया में गुण-दोष परीक्षण की अनावृष्टि होने के कारण आज सर्वत्र दुर्भिक्ष पड़ा हुआ है। पुणेवासियों ने अपने दुर्व्यवहार (अश्लील) से स्वामी जी का अपमान और अपकीर्ति (दुर्लौकिक) फैलाने की कोशिश की, परन्तु शेष आर्यावर्त्त में पुणे के समान दुर्व्यवहार कहीं भी नहीं हुआ। जहां चार सभ्य लोग रहते हैं वहां दस असभ्य लोग भी रहते ही हैं। इस प्रकार की स्थिति तो सर्वत्र दृग्गोचर होती है। परन्तु खेद की बात तो यह है कि निबन्धमालाकार जैसे सभ्य समझे जाने वाले लोग भी कभी-कभी दुराग्रह से प्रेरित होकर (पेटून) असभ्यों से मैत्री कर लेते हैं, और उनके मित्र बनकर उन्हीं की तरह निंदनीय कर्म करने लग जाते हैं—यह बहुत बुरी बात है। हमें यह बात स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं है कि—सभी स्थानों पर स्वामी जी का अतिशय आदर-सत्कार हुआ। उनके जीवनकाल में और देहांत के पश्चात् भी उन्हें समाज की ओर से अतिशय सम्मान प्राप्त हुआ, और इससे स्पष्ट है कि उनके सद्गुण, उनकी विद्वत्ता और तपश्चर्या कृतार्थ हो गई थी। जिस प्रकार गजेन्द्रारूढ चक्रवर्त्ती राजा की सवारी (स्वारी) नगरवीथियों से गुजरने के बाद जोर-शोर से कुत्तों (ग्रामसिंहों) का भौंकना चालू हो जाता है। उसी प्रकार (तद्वत्) इन सद्गुरु स्वामी दयानन्द जी के गजेन्द्र सम प्रभावशाली विशाल व्यक्तित्व को देखकर इस संसार के अनेक कुत्ते (ग्रामसिंह) भौंकते रहे, या उन्होंने उनकी उपहास गर्भित निंदा (कुचेष्टा) भी की, तो भी वह गम्भीरवृत्ति का दिग्गज विचलित होने [डगमगाने] वाला नहीं था। और (तदनुसार) वह कभी विचलित हुआ भी नहीं। जैसा कि हम इससे पूर्व लिख चुके हैं कि - सन्त तुकाराम (बोवा) का छल करने के लिये जिस प्रकार चांडालवृत्ति का ब्रह्मपुरुष [ब्राह्मण] रामभट्ट बाघोलकर हुआ था[३५], ठीक उसी प्रकार की छलवादीवृत्ति पुणेवासियों अथवा निबन्धमालाकार में सन्निविष्ट (निविष्ट) हुई थी। यह हठात् कहना पड़ता है कि, अगर वैसा नहीं होता तो उन्हें स्वामी जी के विषय में इतना द्वेष (अप्रेम) और अनादर (अभक्ति) नहीं होता था। स्वामी जी की अनुकूल रहनेवाली समस्त भारत भूमि एक ओर थी, तो दूसरी ओर उसकी निंदा और उपहास करने वाले पुणे नगर [के कुछ लोग], और उसमें निवास (अधिवास) करनेवाले निबन्धमालाकार थे। किस प्रकार आखिर इस विरोध में संगति बैठे? तब इस (वि) संगति में निश्चित रूप से कोई तो 'अपशकुनी' (नाटाल खटचाल) ही होगा और उसका अधिकांश भाग हमारे पुणेनगर और निबन्धमालाकार की ओर जाता है, यह देखकर निबन्धमालाकार से 'वात्सल्य' रखने वाले उनके मित्रों में से किसे बुरा भला प्रतीत नहीं होगा! खैर। 'गतं न शोचामि कृतं न मन्ये'! अब उस बात का कोई उपाय भी नहीं है। आगे तो कम से कम इन संकेतों को विशेष रूप से ख्याल में रखकर तदनुसार सदसद् विचारपूर्वक और दूर दृष्टि रखकर सद्व्यवहार करना चाहिये—यह सब लिखने का यही तात्पर्य है। इस स्पष्टीकरण के साथ हम आगे बढ़ते हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्वामी दयानंद सरस्वती के जीवन चरित्र और कीर्ति को सुनकर अमेरिका के अनेक लोग उनके भक्त बन गये थे। (भजनी लागले)। उनमें से कुछेक लोग तो भारत आकर स्वामी जी की सेवा में तल्लीन हो गये थे। इन अमेरिका प्रदेशस्थ थियोसाफिकल सोसाइटी के लोगों से तो हमारे पाठक सुपरिचित होंगे[३६]। इस सोसाइटी का 'थियोसाफिस्ट' नामक पत्र प्रतिमास प्रकाशित होता है। और इस पत्र [में प्रकाशित जीवन चरित्र-आत्मकथा] के माध्यम से दयानंद जी की लोकप्रियता और विद्वत्ता अखिल भूमंडल में व्याप्त हो गई है। स्वामी जी की कीर्ति को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक पहुंचाने में उपर्युक्त मासिक की बहुत बड़ी भूमिका रही है, और इसी के फल-स्वरूप सुदूर देश के लोग भी स्वामी जी के विषय में पूछताछ और स्पष्टीकरण भी चाहने लगे हैं। हमें यह कहने में कोई आपत्ति नहीं है कि सात समुद्र पार और पाताल (अमेरिका) लोक में भी जिसकी यशोदुंदुभि गूंज रही है, और वहां पर जिसकी कीर्ति पताका निरंतर (सदोदित) फहरा रही है। इस प्रकार का अद्वितीय व अपूर्व महापुरुष, सद्धर्म संस्थापकों में स्वामी दयानंद सरस्वती के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं हुआ। अतः (आतां) उपर्युक्त थियोसाफिकल सोसाइटी और स्वामी जी में (आगे चलकर जो) थोड़ा सा मतभेद या विरोध (=संबंध विच्छेद) हो जाने के पश्चात् भी थियोसाफिकल सोसाइटी के सभासदों में स्वामीजी के निर्वाण पर जो श्रद्धांजली परक (मृत्युलेख) लेख लिखा था, उससे इस तथ्य की पुष्टि होती है। इस प्रकार इस सत्पुरुष को समस्त जाति और संप्रदायों (धर्मों) की ओर से बहुत अधिक आदर प्राप्त हुआ था, निःसंशय [डंके की चोट के साथ] हम यह कहते हैं कि उस आदर के लिये वह महापुरुष पूर्णतया [शतप्रतिशत] योग्य था।

स्वामी जी ने अपनी ग्रंथ संपदा में व अन्यत्र जो अपने मत प्रतिपादित किये हैं, उनका उनके [स्वर्गवास के] पश्चात् सदुपयोग और मूल्यांकन जिस प्रकार से होना होगा, अवश्य होगा। परंतु अत्यल्प समय [जन्म १८२४ निर्वाण १८८३] में उनसे जितना कार्य संभव हो सका, उतना उन्होंने किया[३७] और अब उन्होंने अपना वह कार्य अपने अनुयायियों और सच्छिष्यों को सौंप दिया है। उसका वे जैसा सदुपयोग या दुरुपयोग करेंगे, वैसा ही होगा। छत्रपति शिवाजी महाराज ने दुष्ट यवनों को धूलि-धूसरित कर गो ब्राह्मण प्रतिपालन के लिये राज्य शासन (सुयंत्र राज्यकारभाराची) योग्य व्यवस्था की थी; परंतु शिवाजी के बाद जिनके हाथों में वह राज्य सत्ता आयी, उन लोगों के आचरण के अनुसार ही उस राजतंत्र की परिणति हुई, उसी प्रकार स्वामी जी ने व्यवस्था की है, उस व्यवस्था को कार्यरूप में परिणत करना भी उनके अनुयायियों पर निर्भर है। (तिचा परिणामही तिच्या वहिवाटदारा प्रमाणे आणिकारभार्‌या प्रमाणे होणार आहे)। जिस धुन और योग्यता से वे कार्य करेंगे, वैसा ही वह कल्पवृक्ष पल्लवित और पुष्पित होगा। उनके अनुयायियों और कार्यकर्त्ताओं का जैसा स्वामी जी के प्रति अनुराग (प्रेम), और उनकी अपनी जैसी योग्यता, निष्ठा, दृढता (निश्चय दाढर्य) व आस्था होगी, उसी प्रकार सब घटनायें अनुकूल या प्रतिकूल घटित होती रहेंगी। स्वामी जी ने सद्धर्म का मार्ग बतलाकर अनेक स्थानों पर आर्यसमाज की शाखाओं [संस्थाओं] को, अपने द्वारा संस्थापित सद्धर्म प्रसार के लिये अपनी सहयोगिनी संस्था के रूप में स्थापित किया है। उन आर्यसमाजों का सहयोग, स्वामी जी के सद्धेतु महदुद्देश्य तथा निर्मल

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यश को, अप्रतिबद्ध रूप से, दुनिया में अपना उत्तम रूप बतलायेगा, और उनका असहयोग हुआ तो उनका वह सुयश और सद्धेतु उनकी पुस्तकों और विचारों तक ही सीमित रह जायेगा। उसका उत्तरदायित्व अब स्वामीजी पर न रहकर उनके द्वारा नियुक्त उपर्युक्त सहयोगी, अनुयायी और कार्य-कर्त्ताओं पर निर्भर है, उसी प्रकार बाजारों की दुकान में श्रेष्ठ व सर्वोत्कृष्ट (शेलक्या) माल का ढेर पड़ा हुआ है। परन्तु उसकी बिक्री होकर लोकोपयोगी होना, यह सर्व ग्रामीण लोगों की [रुचि और] सामर्थ्य पर ही निर्भर है। उच्चतम माल की बिक्री के लिये लोगों में सम्पन्नता होनी जरूरी है। कंगाल और निर्धन (नादार) लोगों में उसकी बिक्री होना कठिन है, क्योंकि वे 'भिक्षुक' लोग उच्च-तम माल की ओर नजर उठाते हुए भी भयभीत से होते हैं। उसी प्रकार स्वामी जी का 'सद्धर्मत्व' दुनिया के सामने पड़ा हुआ है। उनकी सदसद् बुद्धि के अनुसार उस धर्मतत्त्व को ग्राहक मिलेंगे। तदनुसार [वेदमंथन कर] धर्मतत्त्व प्रस्तुत करनेवाले सत्पुरुष का सद्धेतु सफल या विफल होगा। इस सफलता-विफलता का श्रेय या दुःश्रेय, दयानन्द सरस्वती के अनुयायियों पर निर्भर है। अब तो स्वामी दयानन्द जी, अपने परिश्रम वृक्ष को, किस प्रकार के फल आये हैं, यह देखने के लिये तो इस मृत्युलोक में आयेंगे नहीं। और यदि उनके द्वारा लगाया हुआ अमृतवृक्ष लोगों की अकर्मण्यता (हय-गईनें) या उपेक्षा से (हेलसांडीने) मुरझा (वठून) या झुलस भी गया तो स्वामी जी को अब किसी भी प्रकार का दुःख नहीं होगा। और यदि लोगों ने पुनः आस्थापूर्वक उस अमृतवृक्ष की उपासना [सत-र्कता से देखभाल] की, और पूरी लगन से उसका सिंचन किया तो उसे कालांतर में जो फल (फलभार) आयेगा, उसका परिपूर्ण उपभोग किया तो भी उससे स्वामी जी को कोई प्रत्यक्ष सुख-लाभ भी होने वाला नहीं है। उनके द्वारा लगाये गये सद्धर्मरूपी छायावृक्ष की, बड़े ही ध्यानपूर्वक सतर्कता से उस की सेवा-रक्षा की गई तो, वह अपने ऐहिक मानव जीवन के लिये ही विशेषरूप से उपयोगी सिद्ध होने वाला है। इससे अधिक कुछ कहने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है।

यह तो हम प्रारम्भ में ही लिख चुके हैं कि स्वामी जी की मृत्यु किसी षड्यंत्र का परिणाम नहीं हैं (स्वामी जीच्या मृत्यूस फारसें काठी कारण झाले नाहीं)। फिर भी उन्हें यह अनुभव हो गया था कि इस बीमारी से (दुखण्यांतून) मैं बच नहीं पाऊंगा। इसीलिये उन्होंने अपने द्वारा स्थापित [परोपकारिणी] सभादि संस्थाओं में अपने [देहावसान के] बाद किस प्रकार की व्यवस्था करनी चाहिये, इत्यादि विषयों के स्पष्टीकरण के लिये एक मृत्युपत्र (स्वीकृति पत्र=वसीयतनामा) तैयार करके रखा है।[३८] वह मृत्युपत्र उदयपुर के महाराणा जी की शासकीय मुद्रा (शिक्का) व हस्ताक्षरों से युक्त है। अब स्वामी जी के निधन के पश्चात् उस मृत्युपत्र के अनुसार स्वामी जी द्वारा स्थापित सभा [संस्थाओं] की सब व्यवस्था होगी। अपने इस मुम्बई [महाराष्ट्र] प्रांत में प्रसिद्ध विष्णुबुवा ब्रह्मचारी के अनुयायी जिस प्रकार उनका मृत्यु [निर्वाण] दिवस महाशिवरात्रि के दूसरे दिन 'पुण्य-तिथि' के रूप में मनाते हैं। ऐसा विश्वास है कि ठीक उसी प्रकार समस्त आर्यसमाजीय बन्धु-बांधव स्वामी जी के निर्वाण (मृत्यु) दिवस को महत्वपूर्ण समझकर (पवित्र मान तील) पुण्यतिथि के रूप में मनायेंगे। स्वामी जी ने अपने उपर्युक्त 'मृत्युपत्र' में अनेक व्यक्तियों के नाम अंकित (नमूद) कर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उनकी स्वदेशहितकारिणी [परोपकारिणी] नाम की एक सभा बनाई है (नेमिली)। हमने सुना है कि स्वामी जी अपने 'मृत्युपत्र' में लिख गये हैं कि—स्वदेशहितकारिणी सभा का कर्त्तव्य है कि वह एक शिरोमणिसभा के रूप में, उदयपुर के महाराणा की अध्यक्षता में समस्त भारतवर्षीय आर्य-समाजों के काम-काज का निरीक्षण करे और स्वामी जी के नाम पर जो भी कार्य करना हो वह इस 'स्वदेशहितकारिणी' सभा की अनुमति (के विचार) से ही प्रारम्भ होना चाहिये। हमें इसमें कोई संशय नहीं कि स्वामी जी के मृत्युपत्र के अनुसार ही सभी कार्य सम्पन्न होंगे[३६]।

स्वामी जी के निधन का समाचार तार द्वारा संपूर्ण देश में पहुंचने के साथ ही, उनकी समस्त मण्डली शोक सागर में डूब गयी। (जो हल कोल्लोल उडाया तो सांगता पुर्वत नाहीं)। और शोक विह्वल लक्षावधि लोगों की ओर से शोक-संवेदना सम्बन्धी पत्र तार और स्वयं महाराणा उदयपुर के पास पहुंचे। स्वामी जी के समस्त शिष्य वर्ग में उदयपुर के महाराणा पट्टशिष्य थे। और—उनके [स्वामी जी के] पश्चात् महाराणा उदयपुर के हाथ से प्रायः (बहुतेक) सर्वविध व्यवस्था होनी चाहिये'। स्वामी जी द्वारा लिखित मृत्युपत्र (वसीतनामे) के इस आशय के अनुसार तो, यह महाराणा उदयपुर की पट्टशिष्य सम्बन्धी सत्यवार्त्ता, पाठकों को सहजरूप में ही समझ में आ जायेगी। इसके अतिरिक्त सभी को यह आशा [एवम् विश्वास] है कि उदयपुर के राजा ऐश्वर्य सम्पन्न (श्रीमान्) और राजा उपाधिधारी [राजपदधारी] हैं, अतः अपने मूल उद्देश्य के अनुसार सभी विषयों को यथोचित संपन्न कराने में, वे किसी भी प्रकार दुर्बल (असमर्थ) न होने से, उनके द्वारा की गई व्यवस्था सभी अच्छी तरह और विश्वासनीय (शाश्वतीची) होगी। गत दिसम्बर मास में उदयपुर में समस्त भारतवर्ष के सैकड़ों लोग (स्वामी जी के पश्चात्) 'स्वामी जी के महान् ध्येय को पूर्ण करने की दिशा में हमें कौन से कदम उठाने चाहिये'। इस विषय पर विचार करने के लिये एकत्रित हुये थे। इसके सिवाय स्वामी जी के भक्तों की यथार्थ भक्ति का परिचय भी तो नहीं मिल सकता है।

इस प्रकार इस महापुरुष के विषय में हमें जो कुछ लिखना था वह सब लिखकर यह लिखा हुआ भी हम उस सत्पुरुष के चरण कमलों में समर्पित करते हैं[४०]।

[दयानन्द सरस्वती : समाचार पत्रों के अभिप्राय]

इससे आगे हमने स्वामी जी के विषय में जो देशी व विदेशी पत्रकारों ने अपनी शोक-संवेदनायें और अभिप्राय समाचार पत्रों में प्रकाशित किये हैं, उनमें से कुछ (कित्येक) पत्रों के उद्धरण उद्धृत करते हैं। इन उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जायेगा कि स्वामी दयानन्द जी कितने लोकप्रिय थे। उन्हें हिन्दू, मुसलमान, पारसी, यूरोपियन, यहूदी आदि सभी जाति, वर्ण व संप्रदायों (धर्मों) के लोग कितना चाहते थे। मुंबई में 'वाइस आफ इंडिया' अर्थात् 'भारतवर्ष का कहना' इस नाम का एक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पाक्षिक पत्र (पुस्तक) निकलता है, पहले वह मासिक था, उसमें विविध महत्वपूर्ण विषयों के पृथक्-पृथक् स्तम्भ देकर उस-उस स्तम्भ के नीचे स्वदेशी पत्रकारों के उस विषय के सम्बन्ध में क्या अभिप्राय हैं, वह संक्षेप में (अंग्रेजी भाषा में) देने की प्रथा (वहिवाट) है। तदनुसार गत नवम्बर के 'वाइस आफ इंडिया' के अंक में दयानन्द सरस्वती' शीर्षक से एक स्वतन्त्र स्तम्भ देकर, उसके नीचे उस महापुरुष के सम्बन्ध में स्वदेशी पत्रकारों के अनेक (बहुतेक) उद्धरण उद्धृत किये हैं। उसके अतिरिक्त समस्त भारतवर्ष के और इंग्लैण्ड (विलायत), अमेरिका आदि प्रसिद्ध 'विदेशीय' पत्रकारों के क्या-क्या अभिप्राय (मत) हैं। उन सब अभिप्रायों को एकत्रित करना (म्हणजे =अर्थात्) [अपने आप में] महत्प्रयास और दीर्घकालीन काम होने के कारण, जितने अभिप्राय समय पर प्राप्त हो सके, उतने यहां हमने संकलित (निवड) कर निम्न प्रकारेण उद्धृत किये हैं। चरित्र लेखन की नवीन परिपाटी के अनुसार उस नायक के विषय में [प्रसिद्ध] लोगों के अभिप्रायों (संमतियों) का संकलन करने का यह एक नया ही संप्रदाय [मार्ग] दिखलाई देगा, फिर भी वह नितांत ही नया नहीं है। यह तो हमारे पाठकों को मालूम ही है कि जिन अंग्रेजों के चरित्र लेखन पद्धति का हमने अनुकरण किया है, उन अंग्रेजों के चरित्रों में इस प्रकार का लोकाभिप्राय [जनमत] संकलित [अंकित] करने की बहुत बड़ी व अतिशय दृढ प्रथा है। इसलिये हमारा भी यह विश्वास है कि स्वामी जी विषयक यह भाग पाठकों के लिये पठनीय होगा। उसी प्रकार स्वामी जी ने कौन-कौन से ग्रंथ लिखे हैं, उन ग्रंथों की सूची भी अंत [परिशिष्ट २] में दी गई है। उससे यह समझ में आ जायेगा कि उनका कैसा और कौन सा प्रयास (उद्योग) किस प्रकार चल रहा था[४३]।

पं० स्वामी दयानंद के विषय में अनेक समाचार पत्रों के अभिप्राय निम्न प्रकार हैं:—

पंडित दयानंद सरस्वती साधारण योग्यता के धर्मोपदेशक नहीं थे, उनके धर्म-मत चाहे हमें मान्य हो या न हों, उनके द्वारा किये गये वेदार्थ से चाहे हम असहमत हों, उस विषय में हमें कुछ कहना नहीं है। वे योगी थे और उन्होंने संसार का त्याग किया था। फिर भी उन्हें सांसारिक (लौकिक) ज्ञान इतना उत्कृष्ट था कि वैसा ज्ञान बहुत ही कम लोगों में दिखलाई देता था। उनके निधन से उनके द्वारा स्थापित आर्यसमाज की ही अपूरणीय क्षति(अनिवार्य हानि) हुई हो, ऐसी बात नहीं, अपितु उनके निधन से समस्त राष्ट्र की ही विलक्षण क्षति हुई है। उनकी अप्रतिम विद्वत्ता को लोग कभी भी नहीं भुला पायेंगे, और स्वामीजी (पंडित जी) को याद सभी को अनवरत आती रहेगी और उनके प्रति सभी को गौरवानंद भी अनुभव होता रहेगा।

—बंगाली, (कलकत्ता)[४४]

हमें शोकाकुल कर परलोकवासी हुये स्वामीजी (पंडित जी) के उपदेशों का परिणाम केवल आर्यसमाज पर ही हुआ हो, ऐसी बात नहीं, अपितु आर्यसमाज के अतिरिक्त अन्य लोगों के विचारों में भी परिवर्तन हुआ है। उन्होंने जो कुछ बताया या उपदेश किया वह सभी हमें मान्य है, ऐसी बात नहीं, फिर हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि, पंडित दयानंद एक असाधारण (मोठया) योग्यता के महापुरुष थे, और उनकी बुद्धि विशाल थी। उन्होंने अपनी अद्वितीय बुद्धि सामर्थ्य से [अनार्य]

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शास्त्रों में पाये गये सभी पाखंडों को खंडित किया था (झुगारून दिली)। यह बात अतिशय अभिनंदनीय है कि, उनकी याद निरंतर बनी रहे, इसलिये उनकी भक्तमंडली इस शहर में एक पाठशाला, उसमें वेद और अंग्रेजी के अध्ययन की व्यवस्था करवा रही है। यह बात भी सच है कि इस प्रकार की पाठशाला निर्बाध रूप से संचालित होने के लिये विपुल द्रव्य संकलित होना चाहिये। और हमें यह विश्वास है कि स्वामीजी को चाहने वाले असंख्य लोगों के होने से वह द्रव्य अनायास ही एकत्रित हो जायेगा।

—ट्रिब्यून, (लाहौर)[४३]

आर्यसमाज के प्रसिद्ध संस्थापक और वर्तमान पीढ़ी के प्रतिष्ठित (नामांकित) सुधारक स्वामी दयानंद के निधन की अति दुःखद वार्त्ता यथासमय न दे पाने के कारण हमें अतिशय पश्चात्ताप हो रहा है। उनकी अगाध विद्वत्ता, अनुपम तार्किकता(कोटिकस) और प्रशंसनीय स्वातन्त्र्य प्रेम इत्यादि गुण इस युग के लोग कभी भी नहीं भुला सकेंगे।

—इंडियन एम्पायर (कलकत्ता)[४४]

पण्डित दयानंद श्रेष्ठ वेदांती थे। और वे वेदों की ऋचाओं का [अन्य वेदभाष्यकर्त्ता विद्वानों से अलग, निघुंट-निरुक्त पर आधारित] नया ही अर्थ करते थे। वे जब संस्कृत में बोलते थे, तब उनके व्याख्यानों की मधुरता (रसाव्वता) से अतिशय (विलक्षण) आनंद मिलता था।

—हिंदू पेट्रिअट, (कलकत्ता)[४५]

संस्कृत के मार्मिक विद्वान्, आर्य धर्म ग्रंथों के पारंगत, मनोहर वाक्चातुर्य, उत्तम आदर-सत्कार(आदरातिथ्य) इत्यादि जो-जो गुण उत्कृष्ट धर्मोपदेशकों में होने चाहियें। वे सब पं० दयानंद जी में थे, धार्मिक क्षेत्र में सुधार करने के उद्देश्य से उनके द्वारा स्थापित आर्यसमाज चिरकाल तक टिकेगा। 'भारत में आगे कौन-सा धर्म चले' जब इस सम्बन्ध में निर्णय लिया जायेगा, तब लोग उनके उपदेशों को भूलेंगे नहीं, हिंदू धर्म का पुरातन विशुद्ध रूप पुनः प्रस्थापित कर उसमें रूढ हुये पाखण्डों को बहिष्कृत करना—यह स्वामी जी का मुख्य उद्देश्य था।

—इंडियन क्रानिकल (बांकीपुर)

पंडित दयानंद सुप्रसिद्ध संस्कृत पंडित और पूर्णोत्साह से कार्य करने वाले [असाधारण व्यक्ति] थे। उनके निधन से देश की अपरिमित (अतोनात) क्षति हुई है।

—हिंदू आब्झरवर, (मद्रास)

यह तो अत्यन्त ही आवश्यक (इष्ट) है कि स्वामी दयानन्द के अतिप्रचुर (परमोदार) स्वदेशाभिमान के लिये, देशवासियों ने उनका स्मरण निरन्तर करना चाहिये। उनमें वस्तुतः स्वदेशाभिमान के अतिरिक्त और भी अनेक गुण थे। श्रीमच्छंकराचार्य और तत्कालीन अन्य विद्या-महासागरों के समान इस पण्डित शिरोमणि (अवतंस) की योग्यता थी। आधुनिक अतिनिकृष्ट काल

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

में भी मानवमात्र में दृग्गोचर न होने वाले, परमोत्साह, बुद्धिमत्ता, और पुरुषार्थ (उद्योग), दृढतादि गुण स्वामी जी में कूट-कूट कर भरे हुये थे। उनके उपदेशों में प्रतिपादित धर्म, और उनके द्वारा स्वीकारे हुये मत से, यदि कोई असहमत (अमान्य) होता हो, तो हो, परन्तु भारतवर्ष में उत्पन्न हुये महापुरुषों में स्वामी दयानन्द की गणना करने से कतराना (नाकारणे) हमारी दृष्टि में उनके विचारों की अतिशय संकीर्णता और कार्पण्यवृत्ति का परिचायक (प्रकटीकरण) है।

—पंजाब टाईम्स, (रावलपिंडी)

पुरातन प्रणाली के अनुसार धार्मिक क्षेत्र में सुधार करने वाला भारत का एक मुकुटमणि खो गया! आदि ग्रन्थ वेद के श्रेष्ठ विचारों का संमान्य अर्थ करने वाला पण्डित [दयानन्द रूपी] सूर्य अस्त हो गया! इतिहास में निर्मल कीर्तिपताका फहराने वाला पंडितवर्य दयानन्द का अवतार समाप्त हो गया! स्वामी जी द्वारा किये गये वेद मन्त्रों (वेदवाक्यों) के अर्थ की यथार्थता और सत्यता के विषय में किसी को सन्देह प्रतीत होता हो तो हो, परन्तु [अंध विश्वास ग्रस्त निमग्न मानव समाज को] उपदेश देने की उत्सुकता (उपदेशाविषयी औत्सुक्य), सुमधुर भाषा, वाक्चातुर्य द्वारा प्रतिपक्षी को निरुत्तर करनेवाली हृदयस्पर्शिता (वाक्चातुर्यांची निरुत्तरकारी हृदयंगमता), पवित्र ध्येय, निश्चयात्मक दृढ़ता, मन की सरलता, स्वाधीनचेता आचार्य और विचारक (वर्तनाची आणि वृत्तिजी स्वतन्त्रता), तथा धर्म-भ्रम, मूर्तिपूजा, अर्थहीन दंभे, इत्यादि के घोर संकट में डूबे हुये देश का पुनरुत्थान करने की प्रबल आकांक्षा रखनेवाला व्यक्ति अब कहीं भी नजर नहीं आयेगा, क्या इस अभाव की अनुभूति प्रत्येक [व्यक्ति] को नहीं होगी?

—गुजरात मित्र, (सूरत)

श्रीमद्दयानन्द सरस्वती की ग्रन्थमाला[५०]

१. सत्यार्थप्रकाश
२. संस्कारविधि
३. वल्लभमतखण्डन
४. स्वामी नारायणमतखण्डन
५. वेदान्तिध्वांतनिवारणम्
६. आर्याभिविनय
७. संध्योपासना
८. पंचमहायज्ञविधि
९. गोकरुणानिधि

[५०] इस सूची में पुस्तकों का निर्देश क्रम बद्ध नहीं है, कुछ नाम छूट गये हैं तथा कुछ नाम भ्रामक भी है। यु० मी०

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

१०. भ्रमोच्छेदन
११. अनुभ्रमच्छेदन
१२. काशी शास्त्रार्थ
१३. चांदपुर शास्त्रार्थ
१४. वेदांग-प्रकाश
  १. वर्णोच्चारण शिक्षा
  २. [संस्कृत] वाक्यप्रबोध
  ३. व्यवहारभानु
  ४. संधिप्रकरणम्
  ५. नामिक
  ६. उणादि [कोष]
  ७. गणपाठ
  ८. निघण्टु
  ९. निरुक्त ✿
  १०. योगशास्त्र ✿
१५. अपूर्व वेदभाष्य ऋङ्माध्यन्दिन संहिता
१६. कारकीय
१७. सामासिक
१८. अव्ययार्थ
१९. आख्यातिक
२०. अष्टाध्यायी

स्वामी दयानन्द जी आश्रय से उनके विचारों का प्रतिपादन करने वाले जो मासिक, पुस्तक, [नियतकालिक] पत्र[४] प्रकाशित होते थे। वे निम्न प्रकार हैं—

१. दयानन्द दिग्विजयार्क : पं० गोपाल हरि शर्मा फर्रुखाबाद रचित ग्रन्थ
२. आर्य (अंग्रेजी)
३. भारत सुदशा प्रवर्त्तक
४. अजमेर हितैषी (देश हितैषी)

✿ निरुक्त का मुद्रण वेदाङ्गप्रकाश के रूप में नहीं हुआ था। इतना ही नहीं उसका प्रकाशन भी ऋ० द० के स्वर्गवास के कई वर्ष पश्चात् हुआ। यु० मी०

✿ इस नाम का कोई वेदाङ्गप्रकाश का भाग वा उनका स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है। यु० मी०

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आर्यसमाज (काकड़वाड़ी) बम्बई के साप्ताहिक अधिवेशनों की कार्यवाही

आज से लगभग १६-१७ वर्ष पूर्व आर्यसमाज काकड़वाड़ी, बम्बई के पुरोहित एवं आचार्य स्व० श्री पं० ऋषिमित्र जी ने मुझे लिखा था कि 'मुझे आर्यसमाज की रद्दी में से आर्यसमाजों के साप्ताहिक अधिवेशनों की कार्यवाही का एक रजिस्टर मिला है, उस में ऋषि दयानन्द के व्याख्यानों का सार संगृहीत है।' मुझे उसी समय से इस कार्यवाही को देखने की उत्कण्ठा रही, परन्तु कुछ समय तक मैं बम्बई न जा सका और कुछ वर्षों के अनन्तर श्री पं० ऋषिमित्र जी का स्वर्गवास हो गया। तत्पश्चात् बहुत वर्षों तक वह रजिस्टर गुम सा रहा और अन्त में आर्यसमाज को प्राप्त हुआ।

जनवरी ८१ में मुझे बम्बई जाना पड़ा। विशेष कारणवश मैं ३ दिन आर्यसमाज काकड़वाड़ी में ठहरा। इसी समय अपने मित्र श्री पं० दयाशंकर जी वेदोपदेशक, जो इसी आर्यसमाज से सम्बद्ध हैं, से आर्यसमाज की उक्त कार्यवाही के रजिस्टर की बात की। उन्होंने कहा कि वह रजिस्टर इस समय आर्यसमाज में विद्यमान है। उन्होंने श्री माननीय मन्त्री जी से कह कर उसे दिखाने की व्यवस्था कर दी। उसे पढकर प्रबल इच्छा हुई कि ऋषि दयानन्द के बम्बई-निवास काल के समय की साप्ताहिक अधिवेशनों की कार्यवाही को प्राप्त करके उसमें ऋषि के उपदेशों के जो सारांश संगृहीत हैं, उन्हें बम्बई-प्रवचन के नाम से प्रकाशित कर देना चाहिये, अन्यथा ये अमूल्य विचार नष्ट हो जायेंगे।

मैंने माननीय श्री मन्त्री जी से प्रार्थना की कि इस कार्यवाही के पृष्ठ ७० से १०२ तक के पृष्ठों की फोटोस्टेट (झेरोक्स) कापी मेरे लिये करा दीजिये। उन्होंने सहृदयता पूर्वक इसे स्वीकार किया। बम्बई से वापस लौट कर श्री पं० दयाशंकर जी के माध्यम से उक्त अंश की झेरोक्स कापी करा देने का अनुरोध करता रहा। मई १९८१ में पूना में सम्पन्न हुई पाणिनिविषयक अन्ताराष्ट्रिय विद्वद्गोष्ठी से निवृत्त होकर बम्बई आया। श्री पं० दयाशंकर जी से दूरभाष के द्वारा संपर्क किया। उन्होंने कहा कि आ० स० के साप्ताहिक अधिवेशनों की कार्यवाही की झेरोक्स कापी तैयार हो गई है, आप सायंकाल आकर ले जावें। इस समाचार को सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। सायंकाल आर्यसमाज में जाने पर ज्ञात हुआ कि श्री मन्त्री जी ने सुरक्षा की दृष्टि से पूरी कार्यवाही की ही झेरोक्स कापी करा ली है। मैंने उन के इस महनीय कार्य के लिये उन्हें धन्यवाद दिया। उन्होंने ३ मास के लिये मुझे उक्त कार्यवाही की झेरोक्स कापी उपयोग के लिये दे दी।

यह कार्यवाही गुजराती भाषा में लिखी हुई है। मुझे मुद्रित गुजराती भाषा पढ़ने वा समझने में तो कुछ कठिनाई नहीं होती है, परन्तु हस्तलिखित गुजराती लिपि पढ़ने में कठिनाई होती है उस पर इस झेरोक्स कापी में अनेक पृष्ट साफ न होने से पढ़े भी नहीं जाते हैं। इस कारण मैं इस को हिन्दी भाषा में अनूदित न कर सका। इसी मध्य हमारी वेदवाणी के ग्राहक ऋषिदयानन्द के भक्त

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

एवं आर्यसमाज के कर्मठ कार्यकर्त्ता विसनगर (महसाना-गुजरात) के निवासी श्री चौकसी छगनलाल गंगाराम जी पटेल के सुपुत्र गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक श्री कमलेशकुमार जी मुझ से मिलने के लिये बहालगढ़ आये। उस समय मैंने कुछ पृष्ठों के गुजराती भाषा के लेख को नागराक्षरों में लिखवा लिया। तदनन्तर १६-१८ अक्टूबर १८८१ को उदयपुर में हुई सत्यार्थप्रकाश शताब्दी समारोह से पूर्व ४-५ दिन के लिये मैं श्री भाई छगनलाल जी के यहां चला गया और वहीं श्री कमलेशकुमार जी से आवश्यक अंश के शेष भाग को भी नागराक्षरों में परिवर्तित करा लिया।

मैंने उस के आधार पर ऋषि दयानन्द के प्रवचनों के सारांश को संगृहीत करना आरम्भ किया तो आर्यसमाज के साप्ताहिक अधिवेशनों की इस कार्यवाही में उस समय की आर्यसमाज से सम्बद्ध प्रचीन बहुविध ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध हुई। उसे देख कर इच्छा हुई कि इस सम्पूर्ण भाग को ही वेदवाणी में प्रकाशित कर दिया जाये।

मैं गुजराती का आर्यभाषानुवाद कर सकता हूं तथापि समय बचाने की दृष्टि से जब मैं दिसम्बर १९८१ में पुन; बम्बई गया तो मैंने बम्बई निवासी श्री जगदेवसिंह जी आर्य से उक्त कार्यवाही की हिन्दी भाषा में अनुवाद करने के लिये कहा। आपने इसे सहर्ष स्वीकार किया और अल्पकाल में ही हिन्दी भाषा में इस को अनूदित करके मेरे पास भेज दिया। इस के लिये मैं आपका अनुगृहीत हूं।

आ० स० बम्बई की साप्ताहिक अधिवेशनों की कार्यवाही का विवरण और महत्त्व

आर्यसमाज बम्बई की जिस साप्ताहिक कार्यवाही का (ऋषि दयानन्द के बम्बई निवास के दिनों का) एक भाग हम आगे प्रकाशित कर रहे हैं, उस का विवरण इस प्रकार है—

इस कार्यवाही के दो भाग हैं—

प्रथम भाग—इस भाग की कायवाही के लेखन का आरम्भ फाल्गुन कृष्ण[1] १३, रविवार, सं० १९३४=३१ मार्च सन् १८७८ से होकर वैशाख कृष्णा[2] ३, रविवार, संवत् १९३४[3]=१९ मई १८७८ पर समाप्त होता है।

द्वितीय भाग—इस भाग का आरम्भ पौष शुक्ला १० रविवार, सं० १९३९=९ जनवरी १८८१ से होकर श्रावण कृष्णा[4] १, रविवार, सं० १९३९=१२[5] अगस्त सन् १८८३ पर समाप्त होता है।

---

१. उत्तरभारतीय पञ्चांगानुसार चैत्र कृष्णा १३।

२. उत्तरभारतीय पञ्चाङ्गानुसार ज्येष्ठ कृष्णा ३।

३. यह संवत् निर्देश गुजराती पञ्चाङ्गानुसार है। उत्तरभारतीय वा दाक्षिणात्य पञ्चाङ्गानुसार सं० १९३५ जानना चाहिये। गुजरात में नये संवत् का आरम्भ चैत्र शुक्ला १ के स्थान में कार्तिक शुक्ला १ से माना जाता है।

४. उ० भारतीय भाद्र कृष्णा।

५. यहां १९ अगस्त चाहिये।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इसमें प्रथम भाग पृष्ठ १-१३ तक तथा द्वितीय भाग पृष्ठ १४=१८० तक है ।

कार्यवाही का त्रुटित अंश—इस कार्यवाही में वैशाख कृष्णा[1] १० रविवार, सं० १९३४[2]= २६ मई सन् १८७८ से लेकर पौष शुक्ला २ रविवार सं० १९३७=२ जनवरी १८८१ तक के काल के साप्ताहिक अधिवेशनों की कार्यवाही लुप्त है ।

श्री पं० वैद्यनाथ शास्त्री की भूल—शास्त्री जी ने 'आर्यसमाज, काकड़वाड़ी बम्बई स्मृति ग्रन्थ' के पृष्ठ ११२ पर पूर्व निर्दिष्ट कार्यवाही संग्रह के संबन्ध में लिखा है—**इस रजिस्टर में ७ वीं अप्रेल १८७८ से २६ वीं अगस्त १८७३ ई० तक की कार्यवाही अङ्कित है ।'**

शास्त्री जी के लेख में दो भूले हैं । **प्रथम** कार्यवाही का लेखन ३१ मार्च सन् १८७८ से होता है और समाप्ति १२(१८)अगस्त १८७३ पर होती है, न कि ७ अप्रेल १८७८ से आरम्भ होकर २६ अगस्त १८८३ पर समाप्ति होता है; **दूसरी** भूल यह है कि बीच में २ वर्ष ७ मास ७ दिन के अधिवेशनों की कार्यवाही इस रजिस्टर में नहीं है, उसे उन्होंने या तो देखा ही नहीं या उसे छोड़ दिया । उनके सामान्य लेख से यह भ्रान्ति होगी कि उक्त रजिस्टर में ५ वर्ष ४ मास १९ दिन की कार्यवाही सुरक्षित है ।

भूल का कारण—साप्ताहिक अधिवेशनों की कार्यवाही के प्रसङ्ग में सर्वत्र दो दो तिथि मास संवत् और सन् का निर्देश है । कार्यवाही के ऊपर जो तिथि मास संवत् वा सन् दिया है, वह उस से पूर्व साप्ताहिक अधिवेशन में हुई कार्यवाही का अगले सप्ताह के अधिवेशन में सुनाकर सम्पुष्ट करने की है । और जिस दिन की कार्यवाही का लेखन किया गया है उसका निर्देश कार्यवाही के लेखन के साथ प्रारम्भ में किया गया है । प्रतीत होता है शास्त्री जी ने उक्त कार्यवाही संग्रह को भली प्रकार पढ़ा ही नहीं, जो तिथि तारीख ऊपर लिखी दिखाई पड़ी उसी का निर्देश कर दिया और इसलिये उक्त कार्यवाही संग्रह में जो २ वर्ष ७' मास ७ दिन के अधिवेशनों की कार्यवाही कहीं लिखी गई है, उसकी ओर भी उनका ध्यान नहीं गया ।

स्मृतिग्रन्थ में और भी ऐसी बहुत सी भूलें शास्त्रीजी ने की हैं । यथा—पृष्ठ २४ पर लिखा है—'[आर्यसमाज] ट्रस्ट डीड के दस्तावेज पर भी आर्यसमाज की स्थापना तारीख वही ७ अप्रेल १८७५ लिखी है' । शास्त्री का यह लेख भी मिथ्या है । आर्यसमाज के ट्रस्ट का जो डीड रजिस्टर्ड हुआ उस में स्पष्ट **७ मार्च १८७५** लिखा हुआ है । इस डीड का पाठ हम ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन, भाग २, पृष्ठ ९५२ पर छाप चुके हैं । जिन्हें देखना हो वहां देखे । समझ में नहीं आता कि डीड में **७ मार्च** का स्पष्ट निर्देश होते हुए **वही ७ अप्रेल १८७५ ई० लिखी है**, कैसे लिख दिया ।

कार्यवाही का लेखन प्रकार—प्रत्येक अधिवेशन की जो कार्यवाही लिखी गई है, उसका विवरण इस प्रकार है—

---

१. उ० भा० पञ्चाङ्गानुसार ज्येष्ठ कृष्णा ११ ।

२. उत्तरभारतीय पञ्चाङ्गानुसार सं० १९३५ जानें ।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

१. आरम्भ में तिथि वार संवत् तथा तारीख मास तथा सन् का लेखन।
२. समाज के नियमानुसार प्रति सप्ताह ५½ बजे अधिवेशन होने का निर्देश।
३. जिस स्थान पर सभा हुई उसका उल्लेख।
४. वेदमन्त्र से ईश्वर स्तुति का निर्देश। तत्पश्चात्
५. गवैया द्वारा स्तुति गायन का उल्लेख करना।
६. पूर्व सप्ताह की सभा की लिखी गई कार्यवाही को सुनाना।
७. समाचार पत्रों में [पहले से] दी गई सूचना के अनुसार—
८. व्याख्याता के नाम और व्याख्यान के विषय का उल्लेख करना।
९. व्याख्यान (सभा में हुए व्याख्यान का सार उद्धृत करना) तत्पश्चात्
१०. गवैया द्वारा पुनः प्रार्थना गायन।
११. अन्त में व्याख्यान के विषय का आर्यसमाज के प्रमुख (प्रधान) द्वारा वा सभा के प्रमुख द्वारा स्पष्टीकरण। तत्पश्चात्—
१२. सभाविसर्जन।

विशेष ध्यान देने योग्य विषय—इस कार्यवाही में कहीं पर भी अधिवेशन के समय सन्ध्या तथा हवन करने का उल्लेख नहीं हैं (वार्षिक उत्सव के समय होने वाले यज्ञ को छोड़कर)। तथा सभाविसर्जन से पूर्व शान्तिपाठ का भी निर्देश नहीं है। सन्ध्या का निर्देश न होने का कारण तो सम्भवतः यह हो कि मध्याह्नोत्तर ५½ बजे सन्ध्या का समय नहीं होता है। हवन सम्भवतः इसलिये नहीं किया जाता था कि उन दिनों साप्ताहिक अधिवेशन, अन्य स्थानों पर होते थे। उस समय तक समाजमन्दिर नहीं बना था। पर शांतिपाठ तो हो ही सकता था। हमारी मति में इसका भी एक कारण है, परन्तु उसे दर्शाने और स्पष्ट करने के लिये अधिक स्थान चाहिये। अतः यहां हम नहीं लिख रहे हैं।

कार्यवाही में लिखित मास पक्ष और संवत् उस समय बम्बई नगर के गुजरात और महाराष्ट्र के सम्मिलित प्रान्त में होने तथा उक्त आर्यसमाज में गुजरातियों की प्रधानता होने के कारण मास पक्ष और संवत् का निर्देश गुजराती पञ्चाङ्ग के अनुसार किया गया है। इस कार्यवाही को पढ़ते समय इस बात का ध्यान रखना अत्यावश्यक है। गुजराती पञ्चाङ्ग के अनुसार शुक्ल पक्ष के मास के नाम में भेद नहीं होता हैं, परन्तु कृष्ण पक्ष के निर्देश के समय महिने के नाम में उत्तर-भारत की अपेक्षा भिन्नता होती है। वहां महिना शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से आरम्भ होता है और अमावास्या पर समाप्त होता है। इस हेतु से उत्तरभारत का जो चैत्र कृष्ण पक्ष है, वह वहां का फाल्गुन का कृष्ण पक्ष होता है। हमारे यहां शिवरात्रि का पर्व फाल्गुन कृष्णा १३ को जिस दिन और जिस अंग्रेजी तारीख में मनाया जाता है, उसी दिन गुजरात में भी मनाया जाता है। परन्तु गुजराती पञ्चाङ्ग के अनुसार वह माघ कृष्ण की १३ मानी जाती है। इसी प्रकार गुजरात में नये संवत् का आरम्भ चैत्र शुक्ला प्रतिपद् से न होकर कार्तिक शुक्ला प्रतिपद् से होता है। इस प्रकार हमारे वर्ष के

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रथम ७ महीनों में दोनों के पञ्चाङ्गों के अनुसार वर्ष-निर्देश में भेद पड़ता है। यथा चैत्र शुक्ल ५ को आर्यसमाज का आरम्भ सं० १९३२ में हुआ। परन्तु गुजराती संवत् उस समय १९३१ था।

लिखित कार्यवाही का ऐतिहासिक महत्त्व

अब हम आर्यसमाज काकड़बाड़ी की उपलब्ध साप्ताहिक अधिवेशन की कार्यवाही की महत्ता के विषय में लिखते हैं। हमने सम्पूर्ण कार्यवाही को सरसरी दृष्टि से पढ़ा है। हमारी दृष्टि में इस का महत्त्व न केवल बम्बई आर्यसमाज के पुराने इतिहास के कारण ही है अपितु उसका अन्य कई दृष्टियों से भी महत्त्व है। इस विषय में हम संकेत रूप से कुछ विषयों की ओर आर्य जनता का ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं। विशेष करके आर्यसमाज के आरम्भ काल में साप्ताहिक अधिवेशनों के स्वरूप के विषय में। यथा—

१—अधिवेशन के समय आरम्भ में सन्ध्या हवन और अन्त में शान्तिपाठ नहीं होता था।

२—होने वाला अधिवेशन कब कहां तथा उस में किस विषय में व्याख्यान होगा? इसकी दैनिक पत्रों में नियमित सूचना छपती थी।

३—अधिवेशनों में पर्याय से एक बार किसी वक्ता का व्याख्यान होता था तो दूसरी बार ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का वाचन और उसका स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया जाता था। इस पर्याय नियम का अपवाद कुछ ही स्थलों पर देखने में आया है।

४ प्रत्येक अधिवेशन के अन्त में उस दिन के वक्ता के व्याख्यान वा ऋ० भा० भूमिका के प्रस्तुत किये गये अंश पर प्रधान द्वारा विवेचन किया जाता था।

५. आर्यसमाज से सम्बद्ध देशोन्नति समाज-सुधार आदि विषयों पर अन्य मतावलम्बी व्यक्तियों के भी व्याख्यान होते थे। यथा - ३० जनवरी १८८१ को रीसालदार मीरजा मुरादअली का 'भारत खण्ड के लोगों की द्वीपान्तर में जाकर बसने की आवश्यकता है' विषय पर व्याख्यान हुआ। १६ अक्तूबर को मुंशी रोबहुसेन का। ता० २४ दिस० १८८२ से १८ फर्वरी १८८३ तक ईस्राइल गृहस्थ सिमियन बेनजामी के विविध विषयों पर ४ व्याख्यान। ७ जनवरी १८८३ को पारसी गृहस्थ दादा भाई का 'मांस नहीं खाना' विषय पर। काशी के पं० बालशास्त्री के शिष्य पं० अचलेश्वर गणेश का १५, २९ जुलाई १८८३ को षट्शास्त्र-मण्डन पर, इन्हीं का १९ अगस्त १८८३ को वर्णाश्रम विषय पर व्याख्यान हुआ।

६—व्याख्यान गुजराती और मराठी के अतिरिक्त संस्कृतभाषा में हुए व्याख्यान का उल्लेख १९ नवम्बर १८८२ की कार्यवाही में मिलता है।

७—अधिवेशनों में विविध भाषाओं में लिखित निबन्ध भी पढ़े जाते थे।

८—पं० बालाजी विट्ठल गावस्कर द्वारा मराठी भाषा में लिखे वेदोक्तसंस्कारप्रकाश के विषय में इस कार्यवाही से विशेष सूचना प्राप्त हुई। (इस विषय पर वेदवाणी में शीघ्र ही स्वतन्त्र लेख देंगे)।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

९—विद्वानों का सत्कार। यथा—श्री रणछोड़ जी ओधव जी शास्त्री के कई व्याख्यान हुए। उन्हें ११ मार्च १८८३ को **पातञ्जल महाभाष्य** भेंट किया गया।

१०—इस कार्यवाही से उस समय के अनेक व्यक्तियों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती है। हमारी आर्यसमाज काकड़वाड़ी बम्बई के अधिकारियों से साग्रह निवेदन है कि आर्यसमाज के पुराने इतिहास को उजागर करनेवाली दैववशात् सुरक्षित सम्पूर्ण कार्यवाही को देवनागरी अक्षरों में अवश्य प्रकाशित करें।

ऋषि दयानन्द ३० दिसम्बर १८८१ से २४ जून १८८२ तक बम्बई में ठहरे थे। उस समय की आर्यसमाज की कार्यवाही में ऋषि दयानन्द के प्रवचनों का सारांश संगृहीत है। अतः हम उक्त अवधि की कार्यवाही आगे छाप रहे हैं। एक दो स्थानों पर ऋषि दयानन्द का प्रवचन न होने से कार्यवाही का कुछ भाग छोड़ दिया है। कुछ स्थानों पर ऋ० द० के प्रवचन के अभाव में भी कार्यवाही के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होने से समग्र कार्यवाही छापी है।

एक नई समस्या

हम आर्यसमाज काकड़वाड़ी बम्बई की ऋ० द० के बम्बई-निवास-काल की जो कार्यवाही छाप रहे हैं, इस में ऋषि दयानन्द के २ अप्रेल १८८१ के व्याख्यान के पश्चात् उसी दिन की कार्यवाही के अन्त में ५ अप्रेल को थाना (ठाणा) में ऋ० द० के १ व्याख्यान का निर्देश है परन्तु इस के आगे ९, १६, २३, ३० अप्रेल तथा ७, १४, २१, मई को साप्ताहिक सभाओं में ऋषि दयानन्द के व्याख्यान नहीं हुए। पुनः—२८ मई को उन के व्याख्यान का उल्लेख मिलता है। लगभग पौने दो मास ऋषि दयानन्द मौन क्यों रहे? यह एक समस्या है। ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन के पूर्ण-संख्या ५२२, ५२७, ५३०, ५३२, ५३४ से स्पष्ट हो जाता है कि इन दिनों में ऋषि दयानन्द बाल-केश्वर, बम्बई ठहरे हुये थे। ऋ० द० के भावी चरित-लेखकों को इस पर ध्यान देना होगा।

कार्यवाही के तिथि-निर्देश के सम्बन्ध में आवश्यक सूचना

१—कार्यवाही में जहां कृष्ण पक्ष के साथ महिने का निर्देश है उसे उत्तरभारतीय सज्जन अगले महिने का कृष्ण पक्ष समझें। द्र० पूर्व पृष्ठ ६३।

२. कार्यवाही में चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, मासों के साथ जो संवत् १९३८ लिखा हुआ है उसे उत्तर भारतीय पाठक अपना सं० १९३९ समझें।

———

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ऋषि दयानन्द के बम्बई-निवास-काल की आर्यसमाज बम्बई की सभाओं की कार्यवाही

पौष कृष्ण पक्ष ४, रविवार सं० १९३८; ता० ८ जनवरी १८८२ ई०[1]

पौष शुक्ल पक्ष १२, रविवार, सं० १९३८; ता० १ जनवरी १८८२ ईसवी। इस दिन नियमानुसार इस समाज की सभा साढ़े पांच बजे इसी स्थान पर हुई थी। सर्व-प्रथम नियमानुसार परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना की गई। तत्पश्चात् गायक ने स्तुति-गायन किया। तदनन्तर समाचार पत्र में दी गई सूचना अनुसार जगत्-प्रसिद्ध पण्डित दयानन्द सरस्वती स्वामीजी (आर्यसमाज के संस्थापक)। जो कृपापूर्वक बम्बई नगरी में पधारे हैं, उन्होंने समाज को पवित्र कर "धर्मोन्नति" विषय पर सरस, मनोवेधक भाषण दिया। इस भाषण का प्रत्येक शब्द लिखने योग्य था, परन्तु हम लोगों में से कोई शार्टहैंड से लिखनेवाला न होने के कारण यह लाभ नहीं मिल रहा है और इस अमूल्य भाषण की सुगन्ध सबको प्राप्त नहीं हो रही है। स्वामीजी ने धर्माधर्म के विषय में, लोगों को किस प्रकार विवेक पूर्वक विचार करना चाहिये, यह अपने भाषण में भलीभांति स्पष्ट किया था। साथ ही भारतवर्ष में धर्म सम्बन्धी महद् विचार में लोग कितने पिछड़े हुए हैं; मतवादी लोगों ने स्वार्थवश धर्म के नाम पर जाल फैलाकर जनता को किस प्रकार नष्ट भ्रष्ट कर दिया है, उसे सत्त्वहीन बनाकर अज्ञान की स्थिति में कैसे पहुंचा दिया है। इत्यादि के सम्बन्ध में स्वामीजी ने विवेचन करके इनका वास्तविक चित्र श्रोताओं के हृदय पटल पर अंकित कर दिया था। इस भाषण का समझदार और निष्पक्ष श्रोताओं के हृदय पर अत्यन्त उत्तम प्रभाव पड़ा हुआ दिखाई दे रहा था। भाषण के मुद्दे अत्यन्त ध्यान देने योग्य तथा मनन करने योग्य थे। इस देश में ऐसे विचार परिप्लुत भाषण प्रत्येक स्थान पर होने की आवश्यकता प्रतीत होती है। धर्माधर्मसम्बन्धी विचार किये विना लोग सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त नहीं हो सकते, न उनमें पारस्परिक प्रेम ही स्थापित हो सकता है। इसके विना इस देश की उन्नति होने की आशा अथवा सम्भावना भी नहीं है। इस

---

१. विशेष सूचना - प्रत्येक साप्ताहिक सभा की कार्यवाही के ऊपर यह जो मास, पक्ष तिथि, दिन, संवत् अंग्रेजी तारीख, महीना, और सन् लिखा हुआ है, वह नीचे लिखी हुई कार्यवाही को अगली साप्ताहिक सभा में सुनाने के काल का सूचक है प्रत्येक सभा की लिखित कार्यवाही को अगली सभा में सुनाने का निर्देश मिलता है। जिस साप्ताहिक सभा की कार्यवाही आगे लिखी जा रही है उसके काल का निर्देश प्रत्येक कार्यवाही के आरम्भ में किया गया है। इस प्रकार प्रत्येक सभा की कार्यवाही के सम्बन्ध में दो दो तिथि तारीखों को देखकर पाठक भ्रम में न पड़ें।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रकार के अनेक पुरुष अपने देश में उत्पन्न हों और उनके द्वारा सदुपदेश प्राप्त हों, इसके लिए सर्व-शक्तिमान परम दयालु परमात्मा की सच्चे अन्तःकरण से प्रार्थना करनी चाहिये। यह भाषण पूर्ण होने के पश्चात् गायक ने नियमानुसार पुनः प्रार्थना-गायन किया। तत्पश्चात् साढ़े सात बजे सभा विसर्जित हुई।

पौष कृष्ण पक्ष ११, रविवार, संवत् १९३८ ता० १५ जनवरी, १८८२ ई०

पौष कृष्ण पक्ष ४, रविवार, संवत् १९३८ ता० ८ जनवरी सन् १८८३ ई०। इस दिन इस समाज की सभा सायंकाल साढ़े पांच बजे इसी स्थान पर नियमपूर्वक हुई थी। इस सभा में एक हजार से अधिक सद्गृहस्थ विराजमान हुये थे। सर्वप्रथम गायक ने नियमानुसार गायन किया। तत्पश्चात् जगत्-प्रसिद्ध **पंडित दयानन्द सरस्वती स्वामीजी** ने वेदमन्त्र द्वारा ईश्वरोपासना करके **"धर्मोन्नति"** विषय पर अपना दूसरा व्याख्यान दिया था। यह व्याख्यान वर्तमान काल के लोगों के समझने तथा निष्पक्ष रीति से विचार करने योग्य था। इस भाषण में स्वामीजी ने चारों सम्प्रदायों[1] के मतवादों का स्पष्टीकरण करते हुए कहा था कि इन सम्प्रदायों के मत में तथा इनके मतवादी ग्रन्थों में जो कुछ कहा गया है वह वेदविरुद्ध है। वेदान्त का अद्वैत मत है। मैं इसके विरुद्ध नहीं हूं।[2] परन्तु इन लोगों ने जीव-ब्रह्म की एकता आदि से सम्बन्धित अनुचित विचार प्रचारित किये हैं। इन विचारों से सम्बन्धित महावाक्यों की रचना करके वे जो ज्ञान दे रहे हैं, वह बिल्कल असत्य है। **"अहं ब्रह्मास्मि" "तत्त्वमसि"** इत्यादि वाक्य जो प्रमाण में रखते हैं, वे वेद के नहीं हैं। ये वाक्य ब्राह्मण तथा उपनिषद् ग्रन्थों के हैं। साथ ही इनका जो अर्थ ये लोग करते हैं, वह मूल ग्रन्थ में नहीं है। वहां पर पूर्वापर सम्बन्ध को देखने से उनका अर्थ बिल्कुल भिन्न है।[3] सम्प्रति इन लोगों के द्वारा जो ज्ञान दिया जा रहा है, वह वेद-विरुद्ध है, साथ ही स्वयं के लिए हानिकारक है। इसका समझदार तथा निष्पक्ष पुरुषों द्वारा अवलोकन तथा विचार होना उचित है। उस अद्वैत मत के अतिरिक्त अन्य विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत तथा शुद्धाद्वैत तीन मत हैं[4]। ये एक दूसरे से अधिक

---

१. ये चार सम्प्रदाय हैं—अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, तथा शुद्धाद्वैत।

२. ऋषि दयानन्द का अभिप्राय यह है कि वेदान्त प्रतिपादित अद्वैत मत ब्रह्म सम्बन्धी है। अर्थात् ब्रह्म में द्वैत नहीं, वह एक ही है। इससे जीव और जगत् के उपादान कारण प्रकृति का निषेध में वेदान्त दर्शन का तात्पर्य नहीं है।

३. इस विषय में ऋषि दयानन्द विरचित वेदान्तिध्वान्त निवारण पुस्तक पढ़नी चाहिये। सत्यार्थप्रकाश के ७ वें तथा ११ वें समुल्लासों में भी इस विषय की विवेचना की गई है।

४. इन में विशिष्टाद्वैत मत रामानुजाचार्य का, द्वैताद्वैत मत निम्बार्काचार्य का शुद्धाद्वैत मत वल्लभाचार्य का है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भ्रमोत्पादक हैं। यह भली भांति संक्षेप में स्पष्ट किया था। इस विषय का विषय का विशेष विवेचन करने के लिये पर्याप्त समय न मिलने से यह विषय अगले रविवार के लिए स्थगित किया गया, तथा लगभग ८ बजे सभा विसर्जित की गई।

माघ शुक्ल पक्ष ३, रविवार, सवत् १८३८; ता० २२ जनवरी, सन् १८८२ ई०

पौष कृष्ण पक्ष ११, रविवार, संवत् १९३८, ता० १५ जनवरी सन् १८८२ ईसवी। इस दिन इस समाज की सभा सायंकाल साढ़े पांच बजे इसी स्थान पर हुई थी। इसमें प्रायः एक हजार से अधिक सद्गृहस्थ विराजमान हुये थे। सर्वप्रथम गायक ने नियमानुसार स्तुति-गायन किया था। तत्पश्चात् **स्वामीजी** ने वेद मन्त्र से परमात्मा की उपासना करके "**धर्मोन्नति**" विषय पर शेष रहा तीसरा व्याख्यान देकर यह विषय पूरा किया था। इस अन्तिम दिन **विशिष्टा-द्वैत, द्वैताद्वैत** तथा **शुद्धाद्वैत** के मतवाद का उत्तम रीति से स्पष्टीकरण करके श्रोताजनों के मन में विश्वास उत्पन्न कर दिया था तथा लोगों को धर्माधर्म का विचार किस प्रकार करना उचित है, यह बात भलीभांति दर्शा दी थी। धार्मिक अज्ञान तथा अधार्मिक मतवाद के प्रचार से इस देश की कैसी दुर्दशा हुई है और उस-उस धर्मवाद (मतवाद) के अयोग्य (अनुचित) जाल में फंसकर कैसी अज्ञान की स्थिति में यह आर्यसन्तान पहुंच गई, यह भी उत्तमरीत से दर्शाया था। तथा इस स्थिति से कैसे मुक्ति मिल सकती है इस सम्बन्ध में भी उत्तम बोध कराया था। और **लोगों का ध्यान संस्कृत अध्ययन तथा वेदाध्ययन की ओर आकृष्ट कर** स्वामी जी ने विषय पूर्ण किया था। तत्पश्चात् लगभग आठ बजे सभा विसर्जित हुई थी।

माघ शुक्ल पक्ष ११, रविवार, १९३८; ता० २९ जनवरी सन् १८८२ ई०

माघ शुक्ल पक्ष ३, रविवार, संवत् १९३८, ता० २२ जनवरी सन् १८८२ ई० के दिन इस आर्यसमाज की सभा 'फरामजी कावशजी इन्स्टीट्यूट' में सायंकाल साढ़े पांच बजे हुई थी। इस सभा में प्रायः दो हजार गृहस्थ उपस्थित हुये थे। सर्वप्रथम गायक ने नियमानुसार स्तुति गायन किया था और उसके बाद जगत्प्रसिद्ध **पंडित दयानन्द सरस्वती स्वामी जी** ने "**अहिंसा**" और '**क्रिश्चियनिटी**' इन दो विषयों पर अत्यन्त सरस व्याख्यान दिया था। प्रथम स्वामी जी ने 'हिंसा किसे कहते हैं तथा अहिंसा किसे कहते हैं,' इसका यथायोग्य स्पष्टीकरण किया था। उसका सारांश यह था कि मन, वचन और शरीर इनसे किसी की हानि का विचार करने तथा हानि पहुंचाने का ही नाम हिंसा है और ऐसा करने से दूर रहना अहिंसा है। **इस देश में इस समय विदेशियों की संख्या अत्यधिक बढ़ जाने से हिंसा बहुत बढ़ गई है और इससे देश को बहुत हानि पहुंची है। मनुष्यों का प्रतिपालन**

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

करनेवाले गौ आदि परोपकारी पशुओं की हत्या इस देश में होने से देश की बड़ी हानि हो रही है। हिंसा करनेवाले ईश्वर के समक्ष अपराधी हैं। इस प्रकार के पशुवध से कैसी-कैसी हानि होती है, इस को उत्तम रीति से विवेचना करके स्वामी जी ने यह विषय दूसरे दिन के लिए स्थगित कर दिया था। इसके बाद लगभग ७ बजे "क्रिश्चियन धर्म" विषय पर व्याख्यान आरम्भ किया था। इस व्याख्यान में क्रिश्चियन लोगों की बाइबल में कैसी न्यायशून्य लीला है, यह बात उत्तम रीति से दर्शाई थी। अन्त में ८ बजे के लगभग सभा समाप्त हुई थी।

इसके अनन्तर पुनः इसी स्थान पर शुक्रवार को सायंकाल साढ़े पांच बजे सभा हुई थी। इस दिन विद्वान् विचारवान् गृहस्थों को आमन्त्रण पत्र भेजकर बुलाया गया था, क्योंकि पिछली बैठक में समय से पहले अत्यधिक संख्या में श्रोताओं के भर जाने से विचारवान् गृहस्थों को निराश होकर वापस लौट जाना पड़ा था। इस दिन भी "अहिंसा" विषय पर और "किश्चियनिटी" पर विशेष व्याख्यान किया था। इस व्याख्यान में पहले दिन की अपेक्षा अधिक विवेचन किया गया था। एक गाय के वध से कितने मनुष्यों के पोषण में हानि पहुंचती है[1], यह बात आंकड़ों के द्वारा सिद्ध करके बताया था कि इस प्रकार हजारों गायों का वध होने से खेतीबाड़ी के काम में तथा लोगों के पोषण में प्रतिवर्ष कितनी हानि होती है इस बात को आंकड़ों के द्वारा स्पष्ट करके बताया था। इसके पश्चात् किसी गृहस्थ की प्रार्थना पर "क्रिश्चियनिटी की लीला" पर दूसरा व्याख्यान किया था। तत्पश्चात् लगभग साढ़े सात बजे सभा विर्जित की गई।

माघ कृष्ण पक्ष २, रविवार, संवत् १९३८; ता० ५ फरवरी सन् १८८२ ई०

माघ शुक्लपक्ष ११, रविवार संवत् १९३८, ता० २९ जनवरी सन् १८८२ ई० के दिन आर्यसमाज की सभा सायंकाल चार बजे 'हालाइ भाटिआ महाजन वाड़ी' में 'आर्यज्ञानवर्धक सभा' के सभासदों की मांग पर हुई थी। प्रथम गायक ने स्तुति-गायन किया तत्पश्चात् स्वामी जी यहां पधारे। स्वामी जी ने समाचार पत्रों में दी गई सूचना के अनुसार "अहिंसा" विषय पर बहुत ही रसमय व्याख्यान करके श्रोताओं को आनन्दित किया था। उस व्याख्यान का सारांश यह था कि हिंसा करने से स्वधर्म की हानि होती है तथा जनता की स्थिति निर्बल होती है। यदि कोई कहे कि वेदों में अश्वमेध, गोमेध, तथा अजामेध इत्यादि पशुयज्ञों का विधान है, इसका आप किस प्रकार खण्डन करेंगे, तो इसका उत्तर यह है कि उन स्थानों पर अश्व का अर्थ घोड़ा, गो का अर्थ गाय और अजा का अर्थ बकरी नहीं है। वहां अश्व का अर्थ अग्नि, गो का पृथ्वी और अजा का अर्थ प्रकृति है। परन्तु बाद में ब्राह्मणादि स्वार्थी वर्ग के लोगों ने इस प्रकार का अर्थ ठूंस दिया। आजकल अमर-

---

१. इस विषय को विस्तार से जानने के लिये ऋषि दयानन्दकृत 'गोकरुणानिधि' ग्रन्थ का अवलोकन करना चाहिये। इस विषय का विवेचन ऋ० द० ने सत्यार्थप्रकाश के १० वें समुल्लास में भी किया है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कोश के आधार पर लोग असत्य अर्थ करते हैं। अमरकोश की रचना जैन पण्डित ने की है। जैन लोग वेद धर्म के विरोधी हैं। यह बात सभी लोग जानते हैं। भला उनके द्वारा रचे हुए कोश में वेद के शब्दों का सच्चा अर्थ कैसे हो सकता है? वेद के शब्दों का वास्तविक अर्थ देखना हो तो इसके लिए यास्क मुनिकृत निघण्टु इत्यादि अन्य अनेक कोश ऋषि मुनि कृत हैं। उनमें देखने, तथा शतपथ, निरुक्त आदि ग्रन्थों को देखने पर इस सम्बन्ध में विश्वास होगा। इस व्याख्यान में, **ब्रह्मा ने मोहित होकर अपनी पुत्री सरस्वती के साथ संग किया, शेषनाग पर पृथ्वी रखी हुई है, गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या के साथ इन्द्र ने जार कर्म किया, गौतम के शाप से इन्द्र हजार भगवाला हो गया,** इस प्रकार जो कथायें पुराणों में लिखी हुई हैं उनकी पोल खोली थी। साथ ही ये कथायें ऐतरेय ब्राह्मण इत्यादि में रूपकालंकार में किस प्रकार वर्णित की गयी हैं, इन बातों का स्वामी जी ने स्पष्टीकरण किया था।[1] इसके पश्चात् स्वामी जी ने मूर्ति के विषय में कुछ भाषण किया था। उन्होंने कहा कि माता, पिता, आचार्य तथा अतिथि ये चार दृश्य मूर्तियां और पांचवीं अदृश्य मूर्त्ति परमात्मा इन पांच को मैं वेद के आधार पर मानता हूं। इसके अतिरिक्त अन्य किसी को अथवा अन्य किसी मूर्त्ति को मैं नहीं मानता। माना भी जाय, तो उससे कोई लाभ नहीं। और जिस से लाभ नहीं उस मूर्त्ति को मानना किसी को योग्य नहीं। व्याख्यान का सारांश इसी प्रकार का था। यह व्याख्यान लगभग ७ बजे पूर्ण हुआ था। इसके अनन्तर आर्यसमाज तथा आर्यज्ञानवर्धक सभा दोनों की इस संयुक्त सभा का विसर्जन हुआ था।

माघ कृष्ण पक्ष ६, रविवार, संवत् १९३८। ता० १२ फरवरी सन १८८२ ई०

माघ कृष्णपक्ष २, रविवार, संवत् १९३८, ता० ५ फरवरी सं० १८८२ ई० के दिन आर्यसमाज की सभा सायंकाल पांच बजे 'हालाइ भाटिया महाजन वाड़ी' में हुई थी। प्रथम गायक ने नियमानुसार स्तुतिगायन किया था। तत्पश्चात् समाचारपत्र में दी गयी सूचना के अनुसार जगत्प्रसिद्ध **पंडित श्री दयानन्द सरस्वती स्वामी** ने "**मनुष्योन्नति**" विषय पर उपयुक्त मनोवेधक सरस भाषण किया था। उसका सारांश यह है—शारीरिक शक्ति बढ़ाने तथा उत्तम बलवान् बुद्धिशाली और दीर्घजीवी प्रजोत्पत्ति करने के लिये प्रत्येक व्यक्ति को ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए बुद्धि बल बढ़ाने तथा ज्ञान प्राप्त करने के लिये एकान्त में गुरुगृह में अथवा पाठशाला में रहकर, भली भांति विद्याध्ययन करना चाहिये। पुरुष को अधिक से अधिक ४८ वर्षों का तथा कम से कम २५ वर्षों का ब्रह्मचर्य-पालन करना चाहिये स्त्रियों को अधिक से अधिक २४ वर्षों का तथा कम से कम १६ वर्षों का ब्रह्मचर्य पालन करना चाहिये। यह वेदाज्ञा है। जो पुरुष

---

१. इन कथाओं में से एक आध को छोड़कर सभी कथाओं का ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार जो रूपकालंकार है उनका विवरण ऋषि दयानन्द ने 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' के ग्रन्थ 'प्रामाण्याप्रामाण्य' विषय में तथा वेदभाष्य के स्वरूप निदर्शनार्थ प्रकाशित एक विज्ञापन' में दिया है। यह विज्ञापन 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' संग्रह के पूर्ण संख्या ३५ (पृष्ठ ६७) पर छपा है। पाठक इन दोनों का अवलोकन करें।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

२८ वर्षों का ब्रह्मचर्य-पालन करके चारों वेदों का सम्पूर्ण अध्ययन करता है वह पूर्णरूप से पुरुषार्थी और न्यायशील होता है। ऐसा ही व्यक्ति राजा, प्रधान और सेनापति के पद के योग्य होता है।[1] ऐसे ही लोगों के हाथों उनके पद का कार्य समुचित पुरुषार्थ से सम्पन्न होता है। अन्य पद न्यून ब्रह्मचर्य पालन करने वालों के लिए हैं। यदि इस प्रकार व्यवस्था की जायें तो राजनीतिक तथा सांसारिक व्यवस्था में सुधार हो सकता है। प्रारब्ध का आधार संचित और क्रियमाण पर है। संचित और क्रियमाण का सुधार पुरुषार्थ से होता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को पुरुषार्थ पर ध्यान देना चाहिये। इसी के द्वारा क्रियमाण, संचित तथा प्रारब्ध की स्थिति सुधरती है। इससे मनुष्य उत्तम स्थिति प्राप्तकर उन्नति का पात्र होता है। स्वामीजी के भाषण का यही तात्पर्य था। शेष अन्य अत्यन्त जानने योग्य बातें विस्तारपूर्वक प्रस्तुत की थीं। परन्तु उन सबका समावेश इस स्थान पर न हो सकने के कारण संक्षेप में मुद्दे की बात लिखी है। १२ फरवरी १८८२ के गुजराती समाचार पत्र—'जामेजमशेद' और 'बुम्बई समाचार' में सम्पादकों ने इस भाषण के सम्बन्ध में समुचित रूप से लिखा है। जिन लोगों ने यह पढ़ा होगा। इस अवसर पर सभा के सभापति मोरवी के ठाकुर साहेब वाघ जी बहादुर जी थे। अपने सभापति पद से स्वामी का उनके उत्तम श्रम के लिए अत्यधिक उपकार माना था। अन्त में साढ़े सात बजे सभा विसर्जित हुई।

———

फाल्गुन शुक्ल पक्ष २, रविवार, संवत् १९३८; ता० १९ फरवरी, सन् १८८२ ई०

माघ कृष्ण पक्ष ९, रविवार, सवत् १९३८ ता० १२ फरवरी सन् १८८२ ई० के दिन इस आर्य-समाज की सभा सायंकाल साढ़े चार बजे 'फरामजी कावशजी इन्स्टीट्यूट' में हुई थी। प्रथम गायक ने नियमपूर्वक स्तुति-गायन किया था। तत्पश्चात् श्रीमत् पंडित दयानन्द सरस्वती स्वामीजी ने "मनुष्योन्नति" विषय पर तीसरा व्याख्यान किया था। इस में मनुष्यों की शारीरिक संपत्ति और बुद्धिबल क्यों नष्ट भ्रष्ट हो गये और होते जा रहे हैं, इस बात को उत्तम रीति से स्पष्टीकरण करते हुए दर्शाया था। साथ ही स्वामीजी ने कहा कि पुरुषों को वीर्यरक्षा करनी चाहिये, परन्तु वे नहीं करते हैं। वीर्य रक्षण विद्या भूल जाने से मनुष्य पशुओं से भी नीचे गिर गया हैं। तात्पर्य यह है कि पशु निश्चित काल में वीर्यदान करता है, परन्तु मनुष्य दिन अथवा रात, ऋतुकाल अथवा अऋतुकाल इन बातों पर बिल्कुल ध्यान नहीं देता। पुरुष और स्त्रियों को पहले वेदाज्ञा के अनुसार ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करके वीर्य सुदृढ़ तथा परिपक्व करना चाहिए। परन्तु ऐसा वे नहीं करते। उल्टा अयोग्य समय में बालविवाह करके कच्चे वीर्य को नष्ट भ्रष्ट करके अपना शरीरबल तथा बुद्धिबल छिन्न-भिन्न करते हैं। कितने ही व्यभिचार में डूबकर वेश्यागमन तथा परस्त्री गमन करते हैं। स्त्रियां भी पतिव्रत भंग करके परपुरुष गमन करती हैं। इस प्रकार ये स्त्री पुरुष अपने शरीर तथा बुद्धि को

१. [illegible]पत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च। सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति॥ मनु॥ १२।१००।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

निर्बल कर रहे हैं। इनकी सन्तान भी अल्प वीर्यवान् तथा अल्पायुषी होती है। फलस्वरूप इन लोगों को सदैव वैद्यों के यहां दौड़ लगानी पड़ती है। ऐसे लोगों से कोई महान् कार्य नहीं होता। क्योंकि इन के नष्टवीर्य होने से इनमें शौर्य अथवा धैर्य होता ही नहीं। बलहीन होने से नपुंसक जैसे हो जाते हैं। इसी प्रकार और भी स्पष्टीकरण स्वामी जी ने किया था। इस सब का तात्पर्य यही था कि ठीक ठीक नियमपूर्वक वीर्यरक्षा करके **यथावत् प्रतिमास एक बार वीर्यदान द्वारा उत्तम प्रजोत्पत्ति करनी चाहिये**। यह भाषण सायंकाल साढ़े छह बजे पूर्ण हुआ और सभा विसर्जित हुई।

— —

फाल्गुन शुक्ल पक्ष ९, रविवार, संवत् १९३८। ता० २६ मी फरवरी सन् १८८२ ई०

फाल्गुन शुक्ल पक्ष २, रविवार, संवत् १९३८, ता० १९ फरवरी, सन् १८८२ ई० के दिन इस आर्यसमाज की सभा 'फरामजी कावशजी इन्स्टीट्यूट' में सायंकाल चार बजे हुई थी। सर्व प्रथम गायक ने परमात्मा का स्तुति गायन नियमानुसार किया था। तत्पश्चात् **पंडित दयानन्द सरस्वती स्वामी जी** ने **"मनुष्योन्नति"** पर अपना अन्तिम व्याख्यान किया था। इसमें स्वामी जी ने दर्शाया था कि पुरुषार्थ सभी उन्नतियों का मूल है। क्रियमाण, संचित तथा प्रारब्ध तीनों अनुक्रम से वृक्ष[1] हैं। यदि पुरुषार्थ उत्तम होगा तो तीनों अनुक्रम से उत्तम होंगे। यदि वह बिगड़ गया तो समझना चाहिए कि सभी बिगड़ गये। और फिर उसका फलभोग भी दुःखदायक ही होगा। परमेश्वर ने प्रारब्ध से प्रथम जगत् की रचना नहीं की। पुरुषार्थ और कर्मानुसार प्रारब्ध की रचना होकर विद्वान् अविद्वान् सभी को सुख दुःख प्राप्त होते हैं। परमेश्वर स्वतन्त्र है। परन्तु जीव सभी बातों में स्वतन्त्र नहीं है। जीव मात्र पुरुषार्थ करने तथा कर्म करने में स्वतन्त्र है। परन्तु वह पाप-पुण्य का फलभोगने में परतन्त्र है। अर्थात् न्यायकारी परमात्मा उसके अनुसार सुख दुःख देकर शासन करता है। **परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना करने से वह न्यायकारी प्रसन्न नहीं होता तथा जीव पाप पुण्य का फल भोगने से मुक्त नहीं होता**। परन्तु जो परमेश्वर की वेदयुक्त आज्ञा के अनुसार उत्तम पुरुषार्थ तथा उत्तम कर्म का आचरण करता है उससे बिना स्तुति प्रार्थना अपने आप परमात्मा प्रसन्न होता है। और जीव उत्तम कर्म के अनुसार अपने आप उत्तम फल प्राप्त करता है। वर्तमान समय में मनुष्यों का आयुष्य कम होता जाता है। इसका कारण यही है कि उनका पुरुषार्थ बिगड़ गया है। वे अपना वीर्य क्षीण करते जा रहे हैं। अतः यदि यह सब सुधारना है तो वीर्य रक्षा की जाये, पुरुषार्थ और कर्म सुधारे जायें। इस प्रकार सब कुछ सुधर जायगा, तथा उन्नति होगी। यह भाषण का सारांश था। इसके अतिरिक्त **सगुण-निर्गुण, उपासना, स्तुति प्रार्थना** इत्यादि पर बहुत सरस विवेचन किया था। साथ

---

१. तीनों अनुक्रम से वृक्ष हैं—पुरुषार्थ मूल का वृक्ष क्रियमाण कर्म है, क्योंकि वह पुरुषार्थ के बिना नहीं होता। क्रियमाण का संचित कर्म वृक्ष रूप है, क्योंकि वह क्रियमाण से बनता है। सञ्चित ही प्रारब्ध का मूल है अतः संचित का प्रारब्ध वृक्ष है। यु० मी०

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित और प्रसारित ग्रन्थ

संशोधित सूची-पत्र (१ जनवरी १९८२ से)

१. यजुर्वेदभाष्य-विवरण (प्रथम भाग) अप्राप्य—
यजुर्वेदभाष्य-विवरण (द्वितीयभाग)—२५-००
२. ऋग्वेदभाष्य—भाग—१ ३५-००
भाग २—३०-०० भाग ३— ३५-००
३. ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका पर किए गए आक्षेपों के उत्तर २-५०
४. अथर्ववेदभाष्य—पं० विश्वनाथ वेदोपाध्याय
काण्ड १४-१७ २४-००
काण्ड १८,१९—२०-००; काण्ड २०—२०-००
५. माध्यन्दिनपदपाठः—(यजुर्वेद पदपाठ) २५-००
६. गोपथ ब्राह्मण (मूल) ४०-००
७. ऋग्वेदानुक्रमणी वेङ्कटमाधव कृत—व्याख्याकार पं० विजयपाल जी। २०-००, राजसं० ३०-००
८. दर्शपौर्णमास-पद्धति—पं० भीमसेन। २५-००, विना जिल्द २०-००।
९. वैदिक-सिद्धान्त-मीमांसा—यु० मी० ३०-००
१०. ऋग्वेद की ऋक्संख्या— ,, २-००
११. वेद-संज्ञा-मीमांसा— ,, १-००
१२. वैदिक-छन्दोमीमांसा— ,, १५-००
१३. वेदों का महत्त्व, वेदार्थ-मीमांसा—,, ५-००
१४. देवापि और शन्तनु के वैदिक आख्यान का स्वरूप—श्री पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु १-००
१५. निरुक्तकार और वेद में इतिहास—,, १-००
१६. त्वाष्ट्री-सरण्यू आख्यान का वास्तविक स्वरूप—पं० धर्मदेव निरुक्ताचार्य १-००
१७. वेद में आर्य-दास युद्ध सम्बन्धी पाश्चात्य मत का खण्डन—श्री वैद्य रामगोपाल शास्त्री १-००
१८. यजुर्वेद का स्वाध्याय तथा पशुयज्ञ समीक्षा—
सजिल्द १६-००, बढ़िया जिल्द २०-००
१९. वैदिक-पीयूष-धारा—श्री देवेन्द्रकुमार कपूर।
सजिल्द १०-००, बढ़िया जिल्द १५-००
२०. शिवशंकरीय लघुग्रन्थ पञ्चक—वसिष्ठ-नन्दिनी, चतुर्दश भुवन आदि ५-००
२१. संस्कार-विधि—५-२५, बढ़िया सजिल्द ७-५०
आर्य-समाज-शताब्दी संस्करण—विविध सूचियों सहित सजिल्द १२-००, राज-संस्करण १५-००
२२ वैदिक-नित्यकर्म-विधि— (व्याख्या सहित)
युधिष्ठिर मीमांसक ३-००, सजिल्द ४-००
२३. वैदिक-नित्यकर्म-विधि—मूलमात्र ०-६०
२४. पञ्चमहायज्ञप्रदीप—मदनमोहन विद्या० ३-००
२५. हवनमन्त्र—(मूलमात्र) ०-३५
२६. सन्ध्योपासनविधि—(अर्थसहित) ० ३५
२७. सन्ध्योपासनविधि—अर्थ और दैनिक हवन-मन्त्र सहित— ०-५०
२८. वर्णोच्चारणशिक्षा—ऋषि दयानन्द ०-५०
२९. शिक्षासूत्राणि—आपिशल-पाणिनीय-चान्द्र २-५०
३०. शिक्षा-शास्त्रम्—जगदीशाचार्य ५-००
३१. अरबी शिक्षा-शास्त्रम्— ,, ५-००
३२. अष्टाध्यायीसूत्रपाठः—शुद्ध पाठ ३-००
३३. अष्टाध्यायी परिशिष्ट— ५-००
३४. धातुपाठ—धातु सूची सहित ३-००
३५. अष्टाध्यायी-भाष्य—प्रथम भाग— २४-००
द्वितीय भाग—२०-००, तृतीय भाग २०-००
३६. महाभाष्य—यु०मी० कृत हिन्दीव्याख्या सहित।
प्रथम भाग ५०-००, द्वितीय भाग २५-००
तृतीय भाग—२५-००
३७. संस्कृत पठनपाठन की अनुभूत सरलतम विधि
प्रथम भाग ८-००, द्वितीय भाग १०-००
३८. उणादिकोष—ऋषि दयानन्द कृत व्याख्या सहित। शतशः टिप्पणियों और विविध परिशिष्टों सहित अजिल्द ८-००, सजिल्द १२-००
३९. संस्कृत-धातु-कोष १०-००
४०. देवम्-पुरुषकारवार्तिकोपेतम्— १०-००

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

४१. काशकृत्स्न-व्याकरणम्— ६-००
४२. काशकृत्स्न-धातु-व्याख्यानम्— १५-००
४३. वामनीय लिङ्गानुशासन—नया संस्करण ८-००
४४ लिट् और लुङ् लकार की रूप-बोधक सरलविधि— ३-००
४५. शब्दरूपावली—(विना रटे स्मरण योग्य) २-००
४६. भागवृत्तिसंकलनम्—अष्टाध्यायी-वृत्ति ६-००
४७. ईशोपनिषद् व्याख्या—(हिन्दी अंग्रेजी) पं० रामगोपाल वैद्य १-५०
४८. केनोपनिषद् व्याख्या—(हिन्दी अंग्रेजी) पं० रामगोपाल वैद्य १-५०
४९. कठोपनिषद् व्याख्या—(हिन्दी अंग्रेजी) पं० रामगोपाल वैद्य ३-२५
५०. ध्यानयोगप्रकाश—स्वामी लक्ष्मणानन्द १०-००
५१. अनासक्ति-योग—मोक्ष की पगडण्डी —१५-००
५२. आर्याभिविनय—ऋ० द० सजिल्द ४-००
५३. Aryabhivinaya English Translation and notes स्वामी भूमानन्द सजिल्द ६-००
५४. विष्णुसहस्रनाम-स्तोत्रम् (सत्यभाष्य-सहितम्) ४ भाग। प्रति भाग १२-५०, सैट ५०-००
५५. वैदिक-ईश्वरोपासना—ऋ० द० १-००
५६. श्रीमद्भगवद्-गीता-भाष्यम्—श्री पं० तुलसी राम स्वामी कृत। चिरकाल से अप्राप्य। गीता की सरल सुबोध व्याख्या। ६-००
५७. अगम्य पन्थ के यात्री को आत्मदर्शन—३-००
५८. मानवता की ओर—श्री शान्तिस्वरूप कपूर ४-००
५९. वाल्मीकि-रामायण (हिन्दी अनुवाद सहित)—युद्ध काण्ड मात्र १०-५०
६० सत्याग्रहनीतिकाव्य—भाषानुवादसहित ५-००
६१. संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास नया संस्करण तीन भाग। पूरा सैट ७५-००
६२. संस्कृत व्याकरण में गणपाठ की परम्परा और आचार्य पाणिनि— १२-००
६३. विरजानन्द-चरित्र—भीमसेन शास्त्री। नया परिवर्धित परि संस्करण ३-००
६४ ऋषि दयानन्द सरस्वती का स्वलिखित और स्वकथित आत्म-चरित— १-००
६५. ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज की संस्कृत साहित्य को देन— सजिल्द १२-००
६६. मीमांसा-शाबरभाष्य व्याख्या—युधिष्ठिर मीमांसक कृत। प्रथम भाग ४०-००, द्वितीय भाग ३०-००, राज सं० ४०-००, तृतीय भाग ५-००। चौथा भाग यन्त्रस्थ।
६७. परमाणुदर्शनम्— ५-००, सजिल्द ६-००
६८. षट्कर्मशास्त्रम्— ८-००, सजिल्द ९-००
६९. नाड़ी-तत्त्व-दर्शनम्—(हिन्दी सहित) २०-००
७०. सत्यार्थप्रकाश—आर्यसमाज-शताब्दी संस्क०—बड़ा २४-०० (राज-संस्करण) ३०-००
७१. व्यवहारभानु—ऋषि दयानन्द १-००
७२. आर्योद्देश्यरत्नमाला—,, ,, ०-५०
७३. दयानन्दीय लघुग्रन्थ संग्रह—१४ग्रन्थ २५-००
७४. ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन—नया परिवर्धित सं०। प्रथम भाग ३५-००, द्वितीय भाग ३०-००; तीसरा भाग छप रहा है।
७५. ऋषि दयानन्द और आर्य समाज से संबद्ध महत्त्वपूर्ण अभिलेख— ८-००
७६ अष्टोत्तरशतनाममालिका—व्याख्यासहित ६-००
७७. प्यारा ऋषि—श्री आनन्द स्वामी १-००
७८. आर्य-मन्तव्य-प्रकाश—श्री पं० आर्यमुनि जी प्रथम भाग ५-००, द्वितीय भाग ५-००
७९. Vegetarianism Vs : Meat-Eating ०-५०
८. अमीरसुधा—भक्त अमीचन्द १-००

पुस्तक-प्राप्तिस्थान—१. रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, जिला—सोनीपत (हरयाणा)

२. रामलाल कपूर एण्ड संस पेपर मर्चेन्ट्स—

गुरु बाजार, अमृतसर ✤ ५१ सुतारचाल, बम्बई ✤ नई सड़क, देहली ✤ बिरहाना रोड, कानपुर

३. रामलाल कपूर एण्ड कम्पनी, बारी मार्केट, सदर बाजार, देहली।
४. डा० शंकरसिंह आर्य, वैदिक साहित्य भण्डार, द्वारका पुरी चाल में, इन्दौर।
५. श्री हरिकिशन मलिक जज, सी ४, सी० सी० कालोनी, दिल्ली।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पाप के मैल को धो डालो

द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नात्वा मलादिव।
पूतं पवित्रेणेवाज्यं विश्वे शुम्भन्तु मैनसः॥ अथर्व० ६।११५।३॥

पदार्थः—(मुमुचानः) खड़ाऊं को छोड़ देने वाला मनुष्य (इव) जैसे (द्रुपदात्) खड़ाऊं से अलग हो जाता है, (स्विन्नः) पसीने से भीगा हुआ मनुष्य (स्नात्वा) स्नान करके (इव) जैसे (मलात्) मैल से रहित हो जाता है, (पवित्रेण) शुद्ध वस्त्र की छननी से (इव) जैसे (आज्यम्) घी (पूतम्) छन घर शुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार (विश्वे) सब दिव्यशक्तियों से युक्त विद्वान् (मा) मुझ को (एनसः) पाप से (शुम्भन्तु) पृथक् करके पवित्र कर दें।

हे मानव, पाप सदा तुझ से दूर रहे, तेरा मन कभी दुर्गुणों, दुर्व्यसनों से अभिभूत न हो। इस के लिये तुझे सदा प्रयत्नशील रहना चाहिये। देख, तपस्वी जन अपनी इच्छा से आवश्यकताओं को कम करते-करते इस स्थिति तक पहुंच जाते हैं कि उन्हें खड़ाऊं की भी आवश्यकता अनुभव नहीं हो, उन से मुक्ति पा कर के वे सुख का अनुभव करते हैं, पसीने से निकले हुए मल को स्नान द्वारा साफ कर के लोग स्वस्थ हो जाते हैं। वस्त्र से छान देने पर घी कैसा निर्मल हो जाता है? इन लौकिक व्यवहारों को प्रतिदिन देख कर भी क्या तेरे मन में अपने दुर्गुणों को छोड़ कर पवित्र हो जाने की इच्छा जागरित नहीं होती? होती है, तो क्यों नहीं तपस्वी विद्वानों के पास जाता है? ढूंढ ऐसे दिव्य शक्तियों से दीप्तिमान् सज्जनों को, जो तेरे मन पर पड़ी हुई मल-विक्षेपों की धूल को अपने पवित्र ज्ञान जल से धो कर साफ कर सकें। जिन महात्माओं ने अपनी साधना के द्वारा अपने मन को निर्मल कर के परम प्रकाश के दर्शन किये हैं, उन की सङ्गति में बैठने से, उन को बताये हुए मार्ग का अनुसरण करने से तेरे सब पाप (कुसंस्कार) धुल जायेंगे। उस प्रकार तू न केवल अपना, अपितु अपने सम्पर्क में आने वाले अन्य मनुष्यों का उद्धार करेगा, जीवन सफल करेगा।

रबड़ रिक्लेम कम्पनी प्रा० लिमिटेड

जी० टी० रोड, बहालगढ़ (सोनीपत) हरयाणा

की ओर से

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्राता रत्नं प्रातरित्वा दधाति तं चिकित्वान् प्रतिगृह्या नि धत्ते।
तेन प्रजां वर्धयमान आयू रायस्पोषेण सचते सुवीरः ॥

ऋ० १।१२५।१॥

प्रातः की अमृत बेला में,
उठ नवरत्नों को प्राप्त करो।
हो प्रभु भक्ति में ध्यानलीन,
तन मन का सब सन्ताप हरो॥

वह अमित ज्ञान आनन्द स्रोत,
नित भरो अमित आनन्द ज्ञान।
अनुपम रत्नों को लो बटोर,
निज जीवन को कर लो महान्।

सन्तान तुम्हारी सुखी रहे,
धन और पुष्टि से सदा पूर्ण।
घर में मङ्गल का राज्य रहे,
सब रहें सदा अवसाद शून्य॥

Awake in the early hours of dawn,
To achieve precious jewels sublime !
Sleep after sunrise, strongly scorn,
To get pure air, wisdom divine !!

In tranquil atmosphere, when no bird flutters,
Go deep in trance, where no tension matters !
Get Godly Bliss and distribute free,
His divine knowledge and Blissful spree !!

With the knowledge and power attained,
And the riches, copious obtained !
Nourishing his children, begetting long life,
The hero of morn, tastes joys of life !!

"वैदिक पीयूष धारा" से उद्धृत

Quoted from the New fascinating Book of
'Success Motivating"

VEDIC LORES

by Shri Devendra Kapoor

Available from :-

1. Ram Lal Kapoor Trust
   G. T. Road, Bahalgarh
2. 123-Nibbana Pali Hill
   Bandra, BOMBAY-50

With best compliments from ;

ISHA STEEL TREATMENT

Vikloli, BOMBAY-83

Tele: 584029, 582038

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शुनं नो अस्तु प्रपणो विक्रयश्च प्रतिपणः फलिनं मा कृणोतु ।
इदं हव्यं संविदानौ जुषेथां शुनं नो अस्तु चरितमुत्तिथं च ॥ अथर्व ३।१५।४॥

भाषार्थ—हमारे अपने पदाथ का मोल भाव व दर, विक्रय, और दूसरे के माल का भाव वा दर नियत करना, ये सब व्यवहार हमारे लिये शुभ होवें, मुझे सफल लाभ प्राप्त करने में समर्थ करें। हम ग्राहक और विक्रेता दोनों इस लेन-देन को भली भांति सोच-समझ कर प्राप्त करें। जिससे हमारा चलान किया गया माल, और, उठाया गया माल शीघ्र मिलने वाला होवे ॥

Tele No. 43548

LUBRICHEM

413, Ashoka Estate, 24, Bara Khamba Road,

New Delhi-110001

Manufacturers of:

INDUSTRIAL CHEMICALS

AND

PREVENTIVE OILS

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उभा हि हस्ता वसुना पृणस्वा प्रयच्छ दक्षिणादोत सव्यात् ॥ यजु० ५।१९॥

अर्थ—हे यज्ञरूप प्रभो ! तू हमारे हाथों को उत्तम द्रव्यों और ऐश्वर्य से लबालब भर दे दक्षिण और वाम पार्श्व से भी सर्वसुखदायक धन हमें प्रदान कर ॥

धान का छिलका उतारने की आधुनिक मशीनों के रबड़ के रोल

तथा

अन्य कई प्रकार की रबड़ का सामान बनानेवाले

आर्गेनो कैमिकल इण्डस्ट्रीज

—एवं—

आर्गेनो रबड्ज प्राइवेट लिमिटेड

इण्डस्ट्रियल एरिया, सोनीपत (हरयाणा)

की ओर से

हार्दिक शुभ कामनायें

RAM LALL KAPOOR & SONS

WHOLE SALE PAPER MERCHANTS

Distributors : TITAGHUR PAPER MILLS CO. LTD.,
HOOGHLY INK CO. LTD.,

Offices :—

Nai Sarak, DELHI. Phone 265794 266131

Guru Bazar AMRITSAR Phone 42689

Bazar Kharadian, LUDHIANA Phone 20879

Adda Hoshiarpur, JULLUNDUR CITY. Phone 72757

Nichelson Road, AMBALA CANTT, Phone 21025

Sadar Bazar PATIALA. Phone 2367

Bay Shop 11, Sector 27-D, CHANDIGARH. Phone 29280 & 25176

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सामूहिक स्तुति करो, पवित्र हो जाओ

सखाय आ नि षीदत सविता स्तोम्यो नु नः ।
दाता राधांसि शुम्भति ॥ ऋ० १।२२।८॥

(सखायः) मित्रो, (आ नि षीदत) आओ, बैठो (नः) हमें (नु) अवश्य ही (सविता) सब के प्रेरक, उत्पादक प्रभु की (स्तोम्यः) स्तुति करनी है। (राधांसि) सब प्रकार के साधनों को (दाता) देने वाला वह परमेश्वर (शुम्भति) हमें पवित्र करता है।

सामूहिक उपासना का अपना विशेष प्रभाव होता है। अतः प्रयत्न पूर्वक सब मित्र मिल कर परमेश्वर की स्तुति करें। इस प्रकार स्तुति करने से सब के अन्तःकरण में प्रभु के प्रेम की तरङ्गें उठने लगती हैं, मन शुद्ध, पवित्र हो जाते हैं। आन्तरिक पवित्रता का परिणाम होता है—पवित्र कर्म। प्रभु की कृपा से पवित्र कर्मों के सम्पादन के लिए उत्तम साधनों की उपलब्धि होती है जिस से सारा समाज सुखी रहता है।

CHLORUB PAINTS

THE MOST

LONG LASTING # EASY TO APPLY # ECONOMIC

Corrosion protection

RESISTANT TO WATER-ACIDS-ALKALIES-SALT SOLUTIONS-FLAME-FUNGUS

• AVAILABLE FROM ALL LEADING PAINT COMPANIES

FOR FURTHER INFORMATION WRITE TO

RISHIROOP POLYMERS PVT. LTD.

65, ATLANTA, NARIMAN POINT, BOMBAY 400021

Phone ; 240148, Gram : RISHIROOP, Telex : 011 4780

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इन्द्रमहं वाणिजं चोदयामि स न येतु पुरएता नो अस्तु ।
नुदन्नरातिं परिपन्थिनं मृगं स ईशानो धनदा अस्तु मह्यम् ॥ अथर्व ३।१५।१॥

भाषार्थ—मैं 'कृषि-वाणिज्य-गोरक्षा' द्वारा संसार का उपकार चाहनेवाला व्यक्ति, धनी व व्यापार-कुशल पुरुष को प्रेरणा करता हूं कि वह हमारे पास आये, और हमारे सामने मुख्य-पुरुष होकर रहे। वह समय पर माल न देने वाले को व्यापार के मार्ग में व्यवस्था के उल्लंघन करने वाले, लूट व चोरी करने वाले, तथा चंचलवृत्ति, व्यापारी को दण्डित करता हुआ हमें हमारे माल का पैसा दिलाता रहे ॥

Grams : 'Pharmaglass'

Tele. : 44460
661684

M/S. RADHA GLASS WORK

Manufacturers of

NETURAL GLASS AMPOULES,
VIALS, TABLET TUBES
AND
TEST TUBES.

Factory :—

Modern Industrial Estate, BAHADURGARH.
(Distt. Rohtak) Haryana.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पृणीयादिन्नाधमानाय तव्यान् द्राघीयांसमनु पश्येत पन्थान् ।
ओ हि वर्त्तन्ते रथ्येव चक्राऽन्यमन्यमुपतिष्ठन्तं रायः ॥ ऋ० १०।११७।५॥

भावार्थ—समथ धनीमानी व्यक्ति को चाहिये कि वह सहाय के इच्छुक व अशक्त मनुष्य को अन्नादि पदार्थों की अवश्य सहायता देवे। सर्वदा उदार भावना बनाये रक्खे, क्योंकि निश्चय है धन-दौलत रथ के पहिये की तरह ऊपर-नीचे घूमते रहते हैं। ये धन-सम्पत्तियां वा वैभव कभी भी एक के ही पास न रह कर दूसरे के पास रहने लग जाती हैं॥

Grams—Water Mark

Tele.—325782

M/s. Adarsh Industries

51, Sutar Chawl,
Bharat Bhavan,
Bombay—400002

Manufacturers of
PHARMACEUTICAL GLASS CONTAINERS.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

देहि मे ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे ।
निहारं च हरासि मे निहारं निहराणि ते ।। यजु० ३।५०।।

भावार्थ—तुम अपना पदार्थ वा ठीक मूल्य मुझे दो; मैं अपना पदार्थ वा सही मूल्य तुम्हें देता हूं। तुम मेरा माल असबाव वा हिसाब अपने पास रक्खो, मैं तुम्हारा माल का हिसाब अपने पास रक्खूंगा। यदि तू मूल्य से खरीदने योग्य मेरी वस्तु को लेगा, तो मैं भी वैसा ही करूंगा। इस प्रकार सत्यवाणी व सत्यक्रिया द्वारा दोनों पक्ष व्यापार करें। इस प्रकार मन्त्र में व्यापार के लेन-देन का नियम दर्शाया है ।।

With best compliments from :

KAPOOR INDUSTRIES

IMPORTERS & EXPORTERS OF :

LEATHER BAGS, SANDLES READYMADE GARMENTS ETC.

Manufacturer of :

MACHINE MADE GLASS AMPOULES, VIALS AND TABLET TUBES

Head Office
51, Sutar Chawl,
Bharat Bhavan,
BOMBAY. 400 002.
Teleelephones 325782, 344671, 344294
Telex : Shivya 011-2447

Branch Office
306 & 307, Wellesly Mansions
44-A Rafi Ahmed Kidwai St.
CALCUTTA. 700016
Telephones 248631, 248924, 249921
Telex : Mamta 021-2126

संपादक पं० युधिष्ठिर मीमांसक के प्रबन्ध से रामलाल कपूर ट्रस्ट प्रेस, बहालगढ़ से मुद्रित तथा वेदवाणी कार्यालय जी० टी० रोड़, बहालगढ़ (सोनीपत-हरयाणा) से १ फरवरी ८२ को प्रकाशित।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सत्यार्थप्रकाश वाङ्मय

(१) सत्यार्थप्रकाश (विभिन्न संस्करण)

	सम्पादक	प्रकाशक	विशेष	प्रकाशन काल
१.		राजा जयकृष्णदास	स्टार प्रेस बनारस (मुद्रक)	१८७५ ई.
२.		वैदिक यन्त्रालय, प्रयाग/अजमेर	अब तक ३५ संस्करण प्रकाशित	१८८४ ई.
३.		गोविन्दराम हासानन्द कलकत्ता	दयानन्द जन्मशताब्दी पर प्रकाशित	१९८१ ई.
४.		आर्य साहित्य मण्डल, अजमेर	दयानन्द निर्वाण अर्द्ध शताब्दी पर प्रकाशित	१९९० वि.
५.	पं. जयदेव शर्मा, विद्यालंकार	" "	तृतीय संस्करण	१९९६ वि.
६.		शारदा मन्दिर लि. दिल्ली	धार्मिक जगत् का विश्वकोष	१९९८ वि.
७.		सार्वदेशिक प्रकाशन, दिल्ली		१९५३ ई.
८.	स्वा. वेदानन्द तीर्थ	विरजानन्द वैदिक संस्थान गाजियाबाद	सटिप्पण:	२०१३ वि.
९.	पं. जगदेवसिंह शास्त्री, सिद्धान्ती	हरयाणा साहित्य संस्थान गुरुकुल झज्जर	स्थूलाक्षर संस्करण	१९६१ ई.
१०.	पं. भगवद्दत्त	गोविन्दराम हासानन्द दिल्ली		१९६३ ई.
११.		देहाती पुस्तक भण्डार दिल्ली		१९६३ ई.
१२.	पं. युधिष्ठिर मीमांसक	रामलाल कपूर ट्रस्ट सोनीपत		२०२९ वि
१३.	"	" "	आर्यसमाज शताब्दी संस्करण	२०३२ वि.
१४.	आचार्य सुदर्शनदेव	आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट दिल्ली	द्वितीय संस्करणानुसारी	
१५.		" "	गुटका संस्करण	
१६.		वैदिक साहित्य सदन, दिल्ली		
१७.		सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली	आर्यसमाज स्थापना शताब्दी संस्करण	
१८.		आर्य साहित्य भवन, दिल्ली		
१९.		दयानन्द, संस्थान नई दिल्ली	प्रचार संस्करण	
२०.		" "	राज संस्करण	
२१.			उपहार संस्करण	
२२.		"	जनता संस्करण	
२३.		"	आर्यसमाज शताब्दी संस्करण	

परोपकारी/ज्येष्ठ २०३४—मई १९७७/४१

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(२) सत्यार्थप्रकाश के बाल अथवा लघु संस्करण

	सम्पादक	प्रकाशक	विशेष	प्रकाशन काल
१.	बाल सत्यार्थप्रकाश	शिवशर्मा	शंकरदत्त शर्मा, मुरादाबाद	
२.	"	"	आर्य प्रेमी कार्यालय, अजमेर	
३.	बाल सत्यार्थप्रकाश	विश्वनाथ विद्यालंकार	आर्य पुस्तकालय, लाहौर	
४.	"	"	राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली	
५.	लघु सत्यार्थप्रकाश (पूर्वार्द्ध)		हजारीलाल आर्य बुक सेलर लखनऊ	१९१९ ई.
६.	महिला सत्यार्थप्रकाश	सं. विश्व प्रकाश	कला प्रेस, प्रयाग	
७.	सत्यार्थप्रकाश संग्रह	सं. गंगाप्रसाद, तुलसीराम स्वामी, शिवशर्मा		
८.	लघु सत्यार्थप्रकाश	आर्य प्रतिनिधि सभा सं. प्रा.	घासीराम प्रकाशन विभाग	१९६४ वि.
९.	सत्यार्थ सार रीडर नं. ४		स्वामी प्रेस, मेरठ	
१०.	बाल सत्यार्थ प्रकाश		आर्य साहित्य मण्डल, अजमेर	
११.	बाल संक्षिप्त सत्यार्थप्रकाश	जगदीश्वरानन्द सरस्वती	दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली	२०३३ वि.
१२.	सत्यार्थ सुधा पूर्वार्द्ध	आचार्य जगदीश विद्यार्थी	आर्य कुमार सभा किंग्स वे दिल्ली	१९७० ई.
१३.	" उत्तरार्द्ध	"	"	१९७० ई.
१४.	संक्षिप्त सत्यार्थप्रकाशः	सार्वदेशिक दयानन्द संन्यासी	वानप्रस्थ मण्डल, ज्वालापुर	१९६७ (द्वि.सं.)
१५	जगमगाते हीरे	हरिदेव आर्य	मधुर प्रकाशन, दिल्ली	१९७१ ई.
१६.	गुरु शिष्य संवाद	मित्रसेन आर्य	भारतवर्षीय वैदिक सिद्धांत परिषद् अलीगढ़	१९६७-६८ ई.
१७.	सत्यार्थप्रकाश उपदेशामृत	चतुरसेन गुप्त	सत्यार्थप्रकाश धर्मार्थ ट्रस्ट शामली	१९६५ ई.
१८.	ज्ञान प्रकाश	सं. हरिशरण सिद्धांतालंकार दीनानाथ सिद्धान्तालंकार	जनज्ञान प्रकाशन, दिल्ली (विशेषांक)	१९६९ वि.
१९.	कुमार सत्यार्थ प्र. (गुजराती)	वल्लभदास रत्नसिंह मेहता	आर्यसमाज बम्बई	१९३५ ई.

(३) सत्यार्थप्रकाश (पृथक् समुल्लासों का प्रकाशन)

१.	सत्यार्थप्रकाश संग्रह	सं. दुर्गाप्रसाद	डी. ए. वी कॉलेज लाहौर पुस्तक ६	१८९१ ई.
२.	आर्य सिद्धान्त दर्पण (दशम समुल्लास)	सं. रामलाल लुधियाना	लाहौर	१९१४ ई.
३.	सत्यार्थप्रकाश द्वितीय समुल्लास	सार्वदेशिक दयानन्द संन्यासी	वानप्रस्थ मण्डल, ज्वालापुर	१९७४ ई.
४.	सत्यार्थप्रकाश प्रथम अंक		आर्यसमाज सिलीगुड़ा	
५.	राजधर्म (षष्ठ समुल्लास)	लक्ष्मीदत्त दीक्षित	सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली	१९५० ई.
६.	राजधर्म प्रकाश		सार्वदेशिक प्रकाशन, दिल्ली	२०१३ वि.
७.	आचार अनाचार और भक्ष्याभक्ष्य (दशम समुल्लास)		गोविन्द ब्रदर्स, अलीगढ़	१९४८ ई.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

	सम्पादक	प्रकाशक	विशेष	प्रकाशन काल
८.	सत्यार्थप्रकाशस्य परीक्षोपयोगी दशम समुल्लासः		आर्य साहित्य मण्डल, अजमेर	२००६ वि.
९.	सत्यार्थप्रकाश का सारांश (प्रथम समुल्लास)	श्यामस्वरूप	सत्यव्रत आर्यसंघ बरेली	१९४० ई.
१०.	सत्यार्थप्रकाश का १३ वाँ समुल्लास		आर्योदय विशेषांक	१९६५ ई.
११.	सत्यार्थप्रकाश प्रथम व द्वितीय समुल्लास	सं. रघुनन्दनसिंह 'निर्मल'	आर्य सत्संग सभा दिल्ली	२०१० वि.
१२.	सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास	"	"	

(४) विभिन्न अनुवाद

अंग्रेजी अनुवाद

		अनुवादक	प्रकाशक	प्रकाशन काल
1.	Light of Truth	Dr. Chiranjiva Bharadwaja	Lahore	1906
2.	"	"	Arya Pritinidhi Saba U. P.	1915
3.	"	"	Dr. Satya Kama Bharadwaja	1924-27
4.	"	"	Arya Samaj Madras	1932
5.	"	"	Sarvadeshik Arya Pratinidhi Sabha, New Delhi	1975
6.	An English Translation of the Satyartha Prakash	Durga Prasad	Virjanand Press Lahore	1908
7.	"	"	Jangyan Prakashan. Delhi	1970-1972
8.	Light of Truth	Ganga Prasad Upadhyaya.	Kala Press, Allahabad.	1946

(५) अंग्रेजी में विभिन्न समुल्लासों का पृथकशः प्रकाशन

1.	Satyartha Prakash (First, Second, Third, Fifth Chapters)	Tr. Charan Das	The Aryan Printing, Publishing and General Trading Co. Lahore	1903,04
2.	Satyartha Prakash (English Translation of the seventh, eighth, ninth and tenth—	Tr. Durga Prasad	Virjanand Press Lahore	1903

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सम्पादक	प्रकाशक	विशेष	प्रकाशन काल
Chapters)			
3. Satyartha Prakash English translation or the eleventh Chapter)	Tr. Durga Prasad	Virjanand Press Lahore	1903
4. Satyartha Prakash Selections. (The Niyoga doctrine of Arya Samaj)	Ruchi Ram Sahni	Punjab Economical Press, Lahore	1897

(६) उर्दू अनुवाद

१. मुस्तनिद उर्दू सत्यार्थप्रकाश	अनु. आत्माराम अमृतसरी, भक्त रैमल	आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब	१८९९ ई.
२. "	"	राजपाल एण्ड संस लाहौर १९०८ से १९३० तक १० संस.	
३. अनवार हक़ीकत	अनु. पं. चमूपति	आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब	१९३९ ई.
४. "	"	सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली	
५. "	"	मास्टर लक्ष्मण राम नगरी आर्योपदेशक	
६. सत्यार्थप्रकाश	अनु. मेहता राधाकृष्ण		
७. "	"	आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, लाहौर	१९४३ ई.
८. "	अनु. लाजपतराय साहनी	"	
९. " ११ वाँ समुल्लास	अनु. जीवनदास पैंशनर	आर्य प्रतिनिधि सभा, लाहौर	१८९९ ई.
१०. " प्रथम संस्करण (१८७५ ई.) का उर्दू अनुवाद	प्रकाशक	पं० धर्मपाल लाहौर	

गुजराती अनुवाद

१. सत्यार्थप्रकाश	अनु. मंछशंकर जयशंकर द्विवेदी	प्रकाशक जगदीश्वर प्रेस बम्बई	१९०५ ई.
२. सत्यार्थप्रकाश	अनु. मया शंकर शर्मा	आर्य प्रतिनिधि सभा, बम्बई	१९२६ ई.
३. "	"	शूरजी वल्लभदास बम्बई	१९२८ ई.
४. "	"	गुरुकुल सूपा (नवसारी)	२००९ वि.
५. "	,, सं. डा. दिलीप वेदालंकार	चरोतर प्रदेश आर्यसमाज आनन्द	२०३२ वि.

मराठी अनुवाद

६. सत्यार्थप्रकाश	श्रीपाद दामोदर सातवलेकर लक्ष्मणराव ओघले	आर्यसमाज कोल्हापुर	१९०४ ई.

बंगाली अनुवाद

७. सत्यार्थप्रकाश		वैदिक यंत्रालय, अजमेर	

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

	सम्पादक	प्रकाशक	विशेष	प्रकाशन काल
८.	"	शंकरनाथ	आर्यसमाज कलकत्ता	१९११ ई. १९२६ ई.
९.	"	"	वंग आसाम आर्य प्रतिनिधि सभा, कलकत्ता	१९४७ ई.
१०.	"	दीनबंधु वेद शास्त्री	गोविन्दराम हासानन्द, कलकत्ता	१९३४ ई.
११.	"			
	सिंधी अनुवाद			
१२.	सत्यार्थप्रकाश	जीवनलाल आर्य	गोविन्दराम हासानन्द	१९१२ ई.
१३.	"	"	आर्य प्रतिनिधि सभा सिंध	१९३७ ई.
१४.	"		हकीम वीरूमल आर्य प्रेमी अजमेर	
	पंजाबी अनुवाद			
१५.	सत्यार्थप्रकाश	आत्माराम अमृतसरी	आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब	१९१२ ई.
१६.	"	"	अमृतसर	१८९९ ई.
१७.	"	"	वजीरसिंह प्रेस, अमृतसर	१९०२ ई.
				प्रथम सं. द्वि. सं.
	सत्यार्थप्रकाश	उड़िया	अनु. श्रीवास पण्डा बी. ए. गोरक्षाश्रम तनरडा (गंजाम)	१९१७
	"	"	अनु. लक्ष्मीनारायण शास्त्री उत्कल साहित्य संस्थान, गुरुकुल आमसेना (वरियार रोड़)	१९३७
	"	तमिल	एम. आर. जम्बुनाथन आर्यसमाज मद्रास	१९२५, १९३५ ई.
	"	तेलुगु	सोमनाथ राव	१९२३ ई.
	"	"	" आर्यसमाज बैंगलोर	१९३३ ई.
	"	मलयालम	आर्यसमाज मिशन कालीकट	१९३३ ई.
	"	"	आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा	
	"	कन्नड़	भास्करपन्त आर्यसमाज बैंगलोर	१९३२ ई.
	"	असमी		
	सत्यार्थप्रकाश :	संस्कृतानुवादः	शंकरदेव पाठक दयानन्दर्षि जन्मशताब्दी ग्रन्थ माला १	१९८१ वि.

(७) विदेशी भाषानुवाद

नेपाली अनुवाद			
सत्यार्थप्रकाश	दिलुसिंग राई	आर्यसमाज दार्जिलिंग (बंगाल)	१९६३ ई.
" (नेपाली भाषा को)	"	दार्जिलिंग	१९३१ ई./३६
बर्मी अनुवाद	अनु. श्री कित्तिमा	आर्यसमाज रंगून	
चीनी अनुवाद	डॉ० चाऊ	हांग-कांग से प्रकाशित	१९५८ ई.
जर्मन अनुवाद	अनु. डॉ० दौलतराम देव	आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब	१९३०
फ्रैंच अनुवाद		आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब	१९३८/४०

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सम्पादक	प्रकाशक	विशेष	प्रकाशन काल

(८) सत्यार्थप्रकाश के हिन्दी काव्यानुवाद

१. पद्यात्मक सत्यार्थप्रकाश (प्रथम समुल्लास)	रामलाल अग्निहोत्री	हजारीलाल शर्मा शाहाबाद आर्य ग्रन्थ माला—१	१९७२ वि. १९१५ ई.
२. सत्यसागर (कथात्मक पद्यानुवाद)	गदाधरप्रसाद वैद्य 'इष्ट'	आर्य आदर्श ग्रन्थमाला लखनऊ	१९९० वि. (चतुर्थ संस्करण)
३. सत्यार्थप्रकाश कवितामृत	जयगोपाल	सं. रामगोपाल शास्त्री	२००३ वि.

सत्यार्थप्रकाश विषयक हिन्दी काव्य (पद्य) ग्रन्थ

सत्यार्थप्रकाश महिमा	रामप्रसाद वानप्रस्थी
" गौरवगान	शीतलचन्द्र शर्मा 'शीतल'
" पुष्पाञ्जली	मोहरसिंह आर्य भजनोपदेशक

(९) सत्यार्थप्रकाश विषयक व्याख्या ग्रन्थ

१. सत्यार्थप्रकाश भाष्य (प्रथम समुल्लास)	वाचस्पति आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, लाहौर		आर्यसात्यिह विभाग ग्रन्थ माला—८	१९९१ वि.
२. सत्यार्थप्रकाश भाष्य (द्वितीय समुल्लास)	" "		" —१४	१९९२ वि.
३. सत्यार्थप्रकाश भाष्य (तृतीय समुल्लास)	शिवपूजनसिंह कुशवाहा	रुद्र ग्रन्थमाला–१७		१९५५ ई.
४. अष्टोत्तर शतनाम मालिका	विद्यासागर शास्त्री		प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, अजमेर, मामराजसिंह ग्रन्थ माला—३	१९६३ ई.
५. सत्यार्थप्रकाश चतुर्दश समुल्लास में उद्धृत कुर्आन की आयतों का देवनागरी में उल्था और अनुवाद	रामचन्द्र देहलवी	सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली		१९४३ ई.
६. सत्यार्थप्रकाश कोष	शेरसिंह (सुरजनगर निवासी)	आर्यमित्र यंत्रालय, मुरादाबाद		१९०१ ई.
७. सत्यार्थप्रकाश का आधुनिक-हिन्दी अनुवाद (प्रथम—समुल्लास)	भूदेव शास्त्री	आर्य साहित्य मण्डल, अजमेर		१९७४ ई.
८. ज्ञान दर्शन (११वें समुल्लास-की व्याख्या)	डॉ. भवानीलाल भारतीय	दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली		१९७७ ई.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

	सम्पादक	प्रकाशक	विशेष	प्रकाशन काल
९. महर्षि दयानन्द की तालीम (२, ३ समुल्लासों की उर्दू टीका)	राय ठाकुरदत्त धवन	आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब		१९०३ ई.

(१०) सत्यार्थप्रकाश विषयक आलोचनात्मक साहित्य

१. भास्कर प्रकाश	तुलसीराम स्वामी	स्वामी प्रेस, मेरठ		१९५६वि./१८९९ ई.
२. दिवाकर प्रकाश	"	"		१९७२ वि.
३. आदिम सत्यार्थप्रकाश और आर्यसमाज के सिद्धान्त	मुंशीराम जिज्ञासु	श्रद्धाञ्जलि ग्रन्थ—१		
४. "	"	वेदवाणी विशेषांक		
५. सत्यार्थप्रकाश की व्यापकता	महेशप्रसाद मौलवी	आलिम फाजिल बुक डिपो इलाहाबाद		
६. " पर विचार	"	"		
७. " विषयक भ्रम	"	"		
८. अमर सत्यार्थप्रकाश	"	"		
९. सत्यार्थप्रकाश और उसकी रक्षा	सुधाकर	सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली		१९४५ ई.
१०. " की सार्वभौमता	धर्मदेव विद्यावाचस्पति	"		
११. " का प्रभाव	वेदानन्द तीर्थ	विरजानन्द वैदिक संस्थान गाजियाबाद		२०१६ वि. (१९५९ ई.)
१२. " की रक्षा का प्रयोजन	"	"		
१३. " आन्दोलन का इतिहास	हितैषी अलावलपुरी	प्रकाश पुस्तकालय, दिल्ली		१९४६ ई.
१४. महर्षि दयानन्द और चौदहवाँ समु.	नरेन्द्र	आर्यसमाज सुलतान बाजार, हैदराबाद		२००२ वि.
१५. सत्यार्थप्रकाश शंका समाधान	(पं. तुलसीराम स्वामी के भास्करप्रकाश के आधार पर)	गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली		२००७ वि.
१६. सत्यार्थप्रकाश का विरोध क्यों?	कृष्णदत्त	आर्य प्रतिनिधि सभा, हैदराबाद		
१७. " का चमत्कार	रामदुलारेलाल चतुर्वेदी	आर्यसमाज चावड़ी बाजार, दिल्ली		१९३० ई.
१८. " प्रश्नोत्तरी	मेहरसिंह			
१९. " की भूमिका	डॉ० जनार्दन प्रसाद सिन्हा	आर्य संस्थान, पटना–१		१९७५ ई.
२०. " एक मूल्यांकन	विनयकुमार पाठक	भारतवर्षीय वैदिक सिद्धान्त परिषद् अलीगढ़		१९६९ ई.
२१. आर्योदय के सत्यार्थप्रकाश – विशेषांक पर समालोचना	सत्यपाल शास्त्री	आर्यसमाज करौल बाग नई दिल्ली		१९६३ ई.
२२. सत्यार्थ-विवेक निरीक्षणम्	सत्यव्रत शर्मा	सरस्वती यन्त्रालय, इटावा		१९०१ ई.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सम्पादक	प्रकाशक	विशेष	प्रकाशन काल
२३. सत्यार्थप्रकाश के संशोधनों की समीक्षा	राजेन्द्रनाथ शास्त्री	आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट दिल्ली	१९६६ ई.
२४. सत्यार्थप्रकाशः दार्शनिक विचार	भानुचरण आर्षेय	आर्ष ग्रन्थ प्रकाशन मण्डल, काशी	
उर्दू ग्रन्थ			
१. चौदहवीं का चांद	पं. चमूपति	(सन्नाउल्लाह के हक प्रकाश का उत्तर)	
२. गुमराही के समुद्र में रास्ती की किश्ती	पं. मनसाराम	'वैदिक तोप'	
३. यथार्थप्रकाश की हकीकत	(यथार्थप्रकाश का उत्तर)	आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, पंजाब लाहौर	

(११) सत्यार्थप्रकाश विषयक आलोचनात्मक अंग्रेजी ग्रन्थ

1, The Immortal Satyartha Prakash.	Mahesh Prasad.	Alim Fazil Book Depot, Allahabad.	1943
2. In Defence of Satyartha Prakash.	M. Sudhakar.	Sarvedeshik Arya Pratinidhi Sabha, Delhi.	
3. The Sind Ban on Satyartha Prakash	C Parmeshwaran	"	1945
4. The Leage assults on Satyartha Prakash	"	Lahore	
5. Universatity of Satyartha Prakash.	Dharm Dev. Vidya Vachaspati.		

(१२) सत्यार्थप्रकाश पर विपक्ष के खण्डनात्मक ग्रन्थ

१. सत्यार्थ विवेक	साधुसिंह		
२. दयानन्द तिमिर भास्कर	ज्वाला प्रसाद मिश्र	क्षेमराज श्रीकृष्णदास बम्बई	
३. धर्मदिवाकर	बलदेवप्रसाद मिश्र	(भास्करप्रकाश का खण्डन)	
४. भास्कराभास निवारण	लाला भवानीप्रसाद	ब्रह्मप्रेस, इटावा	
५. सत्यार्थप्रकाश समीक्षा	लाला जगन्नाथदास	"	
६. सत्यार्थप्रकाशालोचन	अखिलानन्द शर्मा	अनूपशहर	
७. सत्यार्थप्रकाश की छीछालेदर	कालूराम शास्त्री	अमरोधा (कानपुर)	
८. दयानन्द मत विद्रावण	भवानीप्रसाद	तन्त्र भास्कर प्रेस, मुरादाबाद	१९०० ई.
९. "	"	ब्रह्मदेव शर्मा इटावा	१९१४ ई. III Ed.
१०. महताब दिवाकर	यमुनादासा शाण्डिल्य	क्षेमराज श्रीकृष्णदास बम्बई	१८९५ ई.
११. यथार्थप्रकाश (३ भाग)	आनन्दस्वरूप (साहबजी महाराज)		

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

	सम्पादक	प्रकाशक	विशेष	प्रकाशन काल
	सत्यार्थ दर्पण	अजितकुमार शास्त्री	चम्पावती जैन पुस्तक माला	
	सत्यार्थप्रकाश दर्पण (उर्दू)	पादरी जे. एल. ठाकुरदास	नौलखा बाजार, लाहौर	
१.	हक प्रकाश	मौ. सनाउल्लाह अमृतसरी		
२.	सत्यार्थप्रकाश एजीटेशन पर तबसरा		कादियाँ (पंजाब) से प्रकाशित	
3.	A Refutation of the Satyartha Prakash of Pt. Dayanand Saraswati. Pt-I	By Gulam Mahomad. (Hazi Hanif Sadiq)	Surat, (गुजराती से अनूदित)	1910

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

५९५ (IX)

—ओ३म्—

वेदवाणी

श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट (अमृतसर) की मासिक पत्रिका

वर्ष ३४] वयं जयेम (ऋक्) [अङ्क ५

विशेषाङ्क (भाग २)

ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज से संबद्ध महत्त्वपूर्ण अभिलेख

१. यज्ञ से वृष्टि होती है १
२. ऋ० द० के बम्बई-निवास-काल की सभाओं की कार्यवाही (गताङ्क से आगे) ७३
३. परिशिष्ट—आ० स० बम्बई की कार्यवाही के शेष भाग से विशिष्ट अंशो का संकलन ९१
४. ऋ० द० द्वारा संगृहीत हस्तलिखित तथा मुद्रित पुस्तकें ९४
५. 'पण्डित स्वामी श्रीमद्दयानन्द सरस्वती' पर टिप्पणियां प्रा० श्री कुशलदेव जी १०५
६. समाचार संग्रह आरम्भ में पृष्ठ २
७. विज्ञापन (वेदमन्त्रों की संक्षिप्त व्याख्या सहित) अन्त में
८. वेदवाणी के प्रकाशक सम्पादक मुद्रक आदि का विवरण—टाइटल पेज २ पर

आद्य सम्पादक वा प्रतिष्ठापक—स्वर्गीय श्री पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु

सम्पादक—युधिष्ठिर मीमांसक, सह सम्पादक—विजयपाल

फाल्गुन सं० २०३८ वि०
मार्च १९८२ ई०
दयानन्दाब्द १५७
वेद तथा सृष्टि सं० १९७२९४९०८२

वार्षिक मूल्य—भारत में १२-००
वी. पी. से १६-००
" " विदेशों में २५-००
इस अङ्क का ३-००

वेदवाणी कार्यालय,
बहालगढ़ (सोनीपत-हरयाणा) १३१०२१

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वेदवाणी के नियम

१—यह पत्रिका प्रतिमास की प्रथम तिथि को प्रकाशित हुआ करती है। यदि पत्रिका १० तारीख तक न पहुंचे, तो तत्काल सूचना मिलने पर पुनः भेजी जा सकेगी।

२—वार्षिक मूल्य १२) रुपये है, जो धनादेश (मनिआर्डर) द्वारा अग्रिम भेजना चाहिये। वी पी० से खर्चा ४-०० पड़ने से वी० पी० भेजना बन्द कर दिया है।

३—वेदवाणी की आजीवन-सदस्यता का शुल्क (चन्दा) २५० रुपया है।

४—वार्षिक चन्दा **मनि-आर्डर** से भेजें। कूपन पर ग्राहक नम्बर लिखना न भूलें। आजन्म सदस्यता का शुल्क **मनि-आर्डर** अथवा **ड्राफ्ट** से भेजें। **पोस्टल-आर्डर तथा चैक से रुपया स्वीकार नहीं किया जायेगा। ड्राफ्ट 'व्यवस्थापक वेदवाणी कार्यालय' के नाम से भेजें।**

५—लेख **'सम्पादक वेदवाणी'** के नाम से आने चाहियें। लेख छोटे, सरल, संक्षिप्त, सारगर्भित तथा मौलिक होने चाहियें, और वे स्पष्ट, शुद्ध और कागज पर एक ओर लिखे होने चाहियें। उनका प्रकाशित करना, न करना तथा संशोधन करना सम्पादक के अधीन होगा। अस्वीकृत लेख पोस्टेज प्राप्त होने पर ही लौटाये जायेंगे।

६—वेदवाणी के नये वर्ष का प्रारम्भ कार्त्तिक (नवम्बर) मास से होता है। प्रतिवर्ष एक या दो **विशेषाङ्क** दिये जाते हैं।

७—वार्षिक मूल्य, विज्ञापन सम्बन्धी धन, और व्यवस्था सम्बन्धी समस्त पत्र **'व्यवस्थापक वेदवाणी'** के पते से भेजे, **किसी व्यक्ति के नाम से न भेजें।**

पता—व्यवस्थापक—वेदवाणी कार्यालय, जी टी० रोड़
बहालगढ़—जिला—सोनीपत (हरयाणा) १३१०२१

'वेदवाणी' हिन्दी मासिक-पत्रिका का प्रकाशन-विषयक विवरण

१—प्रकाशन का स्थान - वेदवाणी कार्यालय, बहालगढ़ (सोनीपत-हरयाणा)

२—प्रकाशन की अवधि—मासिक

३—मुद्रक का नाम—युधिष्ठिर मीमांसक
राष्ट्रियता—भारतीय
पता—रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़ (सोनीपत-हरयाणा)

४—प्रकाशक का नाम—युधिष्ठिर मीमांसक
राष्ट्रियता—भारतीय
पता—रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़ (सोनीपत-हरयाणा)

५—सम्पादक का नाम—युधिष्ठिर मीमांसक
राष्ट्रियता—भारतीय
पता—रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़ (सोनीपत-हरयाणा)

६—सहसम्पादक का नाम—श्री पं० विजयपाल
राष्ट्रियता—भारतीय
पता—रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़ (सोनीपत-हरयाणा)

७—उन व्यक्तियों के नाम व पते, जो इस समाचार पत्र के मालिक हैं। जो इस की पूंजी के भागीदार हैं—
रामलाल कपूर ट्रस्ट,
गुरु बाजार, अमृतसर
(पंजाब)

मैं युधिष्ठिर मीमांसक इसके द्वारा यह घोषित करता हूँ कि ऊपर लिखी बातें मेरी अधिकतम जानकारी तथा विश्वास के अनुसार यथार्थ हैं।

२८ फरवरी १९८२ ई०

—युधिष्ठिर मीमांसक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ऋग्वेद

ओ३म्

वेदवाणी

यजुर्वेद

सामवेद

अथर्ववेद

सं श्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन वि राधिषि ।

हम सदा वेदवाणी से संयुक्त रहें, उससे कभी विमुख न हों । अथर्व १।१।४॥

वर्ष ३४ | फाल्गुन सं० २०३८ वि०, १ मार्च १९८२ ई० बहालगढ़ (सोनीपत-हरयाणा) | अङ्क ५

यज्ञ से वृष्टि होती है

यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य धारा अभि तत् पवन्ते ॥

ऋ० ४ । ५८।९ ॥

(यत्र) जहां (सोमः) सोम (सूयते) अभिषिक्त किया जाता है,अर्थात् सोम को कूट कर उसका रस निकाला जाता है (यत्र) जहां (यज्ञः) यज्ञ किया जाता है (तत्) उस स्थान को (घृतस्य) जल की (धाराः) धाराएं (अभि पवन्ते) पवित्र करती हैं ।

आर्य जाति का यह मन्तव्य है कि यज्ञ करने से जहां रोगादि की निवृत्ति होती है, वहां सब से बड़ा लाभ यह है कि उसके द्वारा यथोचित काल में वृष्टि होती है, अर्थात् यज्ञ से अनावृष्टि का नाश होता है, दूषित पर्यावरण की शुद्धि होती है । इस प्रकार यज्ञ के द्वारा समस्त प्राणि-मात्र का कल्याण होता है । क्योंकि सब प्राणियों का जीवन जल के ऊपर निर्भर है । अत एव जल का एक वैदिक नाम "जीवन" भी है । मनु से कहा है—

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥

अर्थात्—अग्नि में डाली हुई आहुति आदित्य द्युलोक) को प्राप्त होती है और उससे वृष्टि होती है ॥ और उससे वृष्टि होती है । वर्षा से सब प्राणियों की उत्पत्ति होती है यही गीता में भी कहा है—**यज्ञाद् भवति पर्जन्यः पर्जन्याद् वृष्टिसम्भवः ।**

अतः प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि वह नित्य नैमित्तिक यज्ञों को श्रद्धापूर्वक नियम से करे ।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

समाचार-संग्रह

भारतीयों का दक्षिण ध्रुव-अभियान

इस वर्ष के आरम्भ की यह सब से महानीय घटना है जब हमारे देश के वैज्ञानिकों ने दक्षिणी ध्रुव पर पहुँच कर अपने देश का तिरङ्गा झण्डा फहराया। वैज्ञानिक अनुसंधान किये और अनुसंधान के लिये वहां वैज्ञानिक उपकरण रख आये। इस घटना से संसार में हमारे देश की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ी है।

शिवरात्रि का पर्व

फाल्गुन कृष्ण १३ दशी=२२ फरवरी को देशभर में भारतवासियों ने अपनी-अपनी श्रद्धा के अनुसार शिवरात्रि का पर्व बड़े हर्षोल्लास से मनाया। ऐसा हम प्रतिवर्ष करते हैं। परन्तु इसका फल मानवजाति में शिवसंकल्प का उदय दिखाई नहीं देता। आर्यसमाजें भी इस पर्व को दयानन्द बोधोत्सव के रूप में मनाती हैं परन्तु वे अपने भीतर बोध उत्पन्न नहीं करते। झगड़े गुटबन्दी आदि रोग बराबर बढ़ते जाते हैं।

मुस्लिमी-करण का षड्यन्त्र

अरब के धनी देशों की सहायता से भारत में हिन्दुओं को विशेष करके दलितवर्ग को बड़े पैमाने पर मुसलमान बनाने का षडयन्त्र चल रहा है। उनकी दो दशकों में ही २० करोड़ हिन्दुओं को मुसमलमान बनाने की योजना है। यदि समय रहते आर्यजाति ने इसका प्रतिकार न किया तो कुछ समय पश्चात् भारत में एक नया पाकिस्तान और बन जायेगा।

मुस्लिम-तुष्टिकरण-नीति

राजनीति के चक्कर में पड़ी प्रायः सभी पार्टियां विशेषकर कांग्रेस पार्टी अपनी सत्ता की रक्षा के लिये मुस्लिम-तुष्टिकरण की नीति पर चल रही है। अतः वह मुसलमानों की अनुचित मांगों को भी स्वीकार करने में अपना लाभ देखती है।

उर्दू को द्वितीय राज-भाषा का दर्जा

युक्तप्रान्त जो हिन्दी भाषा का गढ़ है। वहां हमारी कांग्रेसी सरकार मुसलमानों को खुश करने के लिये उर्दू को द्वितीय राजभाषा स्वीकार करने जा रही है। इस उर्दू ने ही तो पाकिस्तान बनाया उस को हम स्वार्थ-वश भूल रहे हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ही अन्य विवेचन भी पर्याप्त मात्रा में किया था। परन्तु उस सब का समावेश इस स्थान में नहीं हो सकता। यह भाषण सायंकाल छह बजे पूर्ण हुआ और सभा विसर्जित की गयी।

फाल्गुन शुक्ल पक्ष ६, गुरुवार, संवत् १९३८, ता० २३ फरवरी १८८२ के दिन आर्यसमाज की सभा उसी स्थान पर सायंकाल साढ़े पांच बजे हुई थी। स्वामी जी ने **'अवतार'** विषय पर व्याख्यान किया था। स्वामीजी ने कहा ईश्वर का अवतार मानना वेद विरुद्ध तथा समस्त आर्ष ग्रन्थों के विरुद्ध है। किसी स्थान पर अवतार का प्रतिपादन नहीं किया गया है। उलटा वहां पर अवतार का खण्डन है। स्वामीजी ने **'पर्यगाच्छुक्रमकाय०"** (यजु० ४०।८) इत्यादि वेद मन्त्रों से तथा अन्य आर्ष ग्रन्थों के प्रमाणों से सिद्ध कर दिया था कि ईश्वर का अवतार नहीं होता उन्होंने कहा कि युक्ति से भी ईश्वर का अवतार सिद्ध नहीं होता। इस प्रकार युक्ति तथा वेदादि सर्व शास्त्रों के द्वारा अवतार का खंडन किया था। तत्पश्चात् **नास्तिक मत का भली भांति खंडन** किया था। **पुराणादि** आधुनिक ग्रन्थों में जहां-तहां ईश्वर अवतार का तथा मूर्तिपूजा का मंडन किया हुआ दिखाई देता है। वह वेदादि सब शास्त्रों तथा ऋषिमुनिकृत आर्ष ग्रन्थों के बिल्कुल विरुद्ध और न्यायशून्य है। उन पुराणों तथा अन्य आधुनिक ग्रन्थों का अभिप्राय और मंडन **एक दूसरे के विरुद्ध है। वे एक दूसरे का खंडन करते हैं।** अर्थात् एक ने शिव के चौबीस अवतारों का वर्णन किया है, तो दूसरे ने विष्णु के और तीसरे ने देवी के। इस प्रकार प्रत्येक पुराण में भिन्न भिन्न गप्पें हैं। **इनमें एक दूसरे की निन्दा और खंडन है।** तात्पर्य यह कि वेदादि समस्त आर्ष ग्रन्थों का जैसा एक सिद्धान्त है, वैसा पुराणादिक आधुनिक ग्रन्थों का नहीं है। परन्तु उनमें तो आपस में भारी विरोध स्पष्टरूप से दृष्टिगोचर होता है। अतएव वे विद्वानों के लिए स्वीकार करने योग्य नहीं है। इस आशय का उस दिन के भाषण का सारांश था। यह भाषण रात के साढ़े सात बजे पूर्ण हुआ था। तत्पश्चात् तत्काल सभा विसर्जित की गयी थी।

फाल्गुन कृष्ण पक्ष १, रविवार, संवत् १९३८। ता० ५ मार्च, सन् १८८२ ई०।

फाल्गुन, शुक्लपक्ष ९ संवत् १९३८, रविवार, ता० २६ फरवरी, सन् १८८२ के दिन आर्य समाज की सभा 'फरामजी कावशजी इन्स्टीट्यूट' में सायंकाल चार बजे हुई थी। सर्वप्रथम गायक ने नियमानुसार स्तुतिगायन तम्बूरे के साथ किया था। तत्पश्चात् समाचार पत्रों में दी गई सूचना के अनुसार **"पुनर्जन्म तथा सृष्टिविद्या,'** विषय पर जगत्प्रसिद्ध **पंडित दयानंद सरस्वती स्वामीजी** ने उत्तमभाषण किया था। जीवों का पुनर्जन्म अर्थात् पुनः पुनः जन्म, विभिन्न योनियों में अपने किये हुए पापपुण्य के अनुसार **पशु योनि तथा वनस्पति योनि में जीव शरीर धारण करता है।** पाप-पुण्य समान हों तो मनुष्य देह की प्राप्ति होती है तथा अधिक पुण्य से उत्तम मनुष्य होता है जीव मनुष्य देह में उत्तम ज्ञान, गुण को प्राप्त कर, पुरुषार्थ करके, उत्तम क्रियमाण करे, तो संचित प्रारब्ध का

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सुधार होकर, अन्त में मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है। इत्यादि बातों का विवेचन प्रथम भाग में था भाषण के उत्तर भाग में **'सृष्टि विद्या'** अर्थात् सृष्टि का निर्माण पालन और उसका नाश कालान्तर में किस प्रकार होता है और ऐसा करने में क्या प्रयोजन है इत्यादि बातें थीं। सृष्टि ईश्वर के महद्गुणों का उसमें विवेचन था। इस प्रकार यह भाषण साढ़े सात बजे पूर्ण हुआ था और सभा विसर्जित हुई थी।

———

फाल्गुन कृष्ण पक्ष ७, संवत् १९३८; रविवार। ता० १२ मार्च सन् १८८२ ई०

फाल्गुन कृष्ण पक्ष १, संवत् १९३८ रविवार, ता० ५ मार्च सन् १८८२ के दिन सायंकाल पांच बजे तथा **फाल्गुन कृष्ण पक्ष ५ शुक्रवार ता० १० मार्च** के दिन सायंकाल साढ़े पांच बजे आर्यसमाज की सभा 'फरामजी कावशजी इन्स्टीट्यूट' में हुई थी। पहले रविवार की सभा में नियमानुसार गायक के स्तुति गायन करने के पश्चात् स्वामी जी ने समाचार पत्रों में दी गयी सूचना के अनुसार **"पुनर्जन्म और सृष्टि विद्या"** इन दो विषयों पर दूसरा व्याख्यान करके इन के सम्बन्ध में विशेष व्याख्यान किया था। पुनर्जन्म मानने के लिये सबल प्रमाण देकर श्रोताओं को इस सम्बन्ध में निःशंक कर दिया था। उन्होंने पुनर्जन्म न मानने से कौन से दोष उत्पन्न होते हैं यह सिद्ध करके दिखाया था। साथ ही सृष्टि रचना से सम्बन्धित जानने योग्य बातों का उत्तमतापूर्वक स्पष्टीकरण किया था। **शुक्रवार की रात की दूसरी सभा** में भी सृष्टि विद्या के ही सम्बन्ध में तीसरा भाषण किया था। और वह सम्पूर्ण जानने योग्य आवश्यक विषय उस दिन पूर्ण किया था। इन दोनों सभाओं में नियमानुसार ठीक दो घण्टे भाषण हुये थे।

———

फाल्गुन कृष्ण पक्ष ३०, रविवार, संवत् १९३८। ता० १९ मार्च सन १८८२ ई०

फाल्गुन कृष्ण पक्ष ७, रविवार, संवत् १९३८, ता० १२ मार्च सन् १८८२ ई० के दिन सभा साढ़े पांच बजे 'मादक-वस्तु-निषेध सभा' के साथ, आमन्त्रण के अनुसार 'झवेर बाग' में (मोतीरुघ के बाग में) हुई थी। प्रथम नियमानुसार गायक ने स्तुति गायन तंबूरे के साथ किया था। पश्चात् समाचारपत्रों में दी गयी सूचना के अनुसार "**मादक-द्रव्य निषेध**" विषय पर स्वामी जी ने, प्रथम वेदमन्त्र से ईश्वरोपासना करके, अपना व्याख्यान प्रारम्भ किया था। इस व्याख्यान में **मदिरा, ताड़ी, भांग, गांजा, अफीम, चंडू** इत्यादि मादक पदार्थों के सेवन से मनुष्यों की कैसी बरबादी हुई है और होगी, इस सम्बन्ध में भली-भांति विवेचन किया था। उन्होंने कहा कि अंग्रेज लोगों की संगति से अभक्ष्य पदार्थ मदिरा और मांस हमारे भीतर घुस गये हैं। उन लोगों के ये दुर्गुण लेकर भ्रष्ट तथा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तमोगुणी पदार्थों का सेवन करने से शरीरबल तथा बुद्धिबल का कैसे नाश होता है, यह भी उत्तम रीति से दर्शाया था। साथ ही वैदिक रीति से यह सिद्ध किया था कि इन पदार्थों के सेवन से आयु कैसे कम हो जाती है। स्वामी जी ने कहा कि अंग्रेजी डाक्टर इस देश की स्थिति, प्रकृति की जांच किये बिना प्रत्येक रोग पर यूरोप के लोगों के अनुकूल पड़ने वाली दवा देते हैं। उनमें भी विशेष रूप से मादक पदार्थ मिश्रित करके देते हैं। इससे यह दवा जितनी चाहिये उतनी अनुकूल नहीं बैठती। साथ ही ठीक-ठीक प्रभाव भी नहीं करती। इत्यादि वर्णन उत्तम रीति से किया गया था। अन्त में साढ़े पांच बजे सभा विजर्जित गई थी।

चैत्र शुक्ल पक्ष ७, रविवार, संवत् १९३८। ता० २६ मार्च, १८८२ ई०

फाल्गुन कृष्ण पक्ष अमावस्या, रविवार, संवत् १९३८, ता० १९ मार्च, सन् १८८२ ई० के दिन आर्य समाज की सभा 'रा० रा० गोविन्द विष्णु की पाठशाला' में सायंकाल साढ़े पांच बजे हुई थी। प्रथम वेद मन्त्र से ईश्वर स्तुति और गायक द्वारा स्तुति गायन करने के पश्चात् समाचारपत्र में दी गयी सूचना के अनुसार कवि कृष्णराय इच्छाराम ने "देशोन्नति" विषय पर सरस भाषण किया था।

तत्पश्चात् दूसरे दिन अर्थात् चैत्र शुक्ल पक्ष प्रतिपदा, सोमवार संवत् १९३८, ता० २० मार्च सन् १८८२ ई० के दिन 'आर्यसमाज का जन्म दिन होने के कारण महोत्सव'[1] किया गया था। इस दिन प्रातःकाल आठ बजे समाज के नये खरीदे गये भवन में महोत्सव का यज्ञ किया गया था। इस अवसर पर दक्षिण शुक्ल[2] तथा गुजराती शुक्ल[2] इत्यादि कितने ही वेदरक्षक ब्राह्मणों ने वहां आकर इस मांगलिक क्रिया में सम्मिलित होकर, स्वामी जी की आज्ञानुसार होम-क्रिया करके होमाहुति दी थी। इस समय वेद मन्त्र पढ़ने के लिये दो टुकड़ियां बनायी गयी थी। एक ओर स्वामी जी के शिष्य ब्रह्मचारी गौरानन्द जी और दूसरी ओर से पूर्व कहे गये शुक्ल आदि अन्य ब्राह्मण वेद मन्त्रों का घोष

---

१. आर्यसमाज के इस महोत्सव की सूचना ऋ० द० ने चैत्र बदी १३ शुक्रवार सं० १९३८ (=१७ मार्च १८८२) के दिन स्वामी कृपाराम को लिखे गये पत्र में इस प्रकार दी थी—'३ दिन के पश्चात् वार्षिक उत्सव समाज का (७ सातवां) होगा। द्र० ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन, पूर्ण संख्या ५०७ का पत्र, भाग २, पृष्ठ ५४२। इस पत्र में वार्षिक उत्सव शब्द का प्रयोग है। कार्यवाही के उपर्युक्त लेख से इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि आर्यसमाज का जन्म दिन चैत्र शुक्ला १ को मनाने का उपक्रम उन दिनों हो चुका था। इस पर विशेष विचार 'ऋ० दयानन्द के पत्र और विज्ञापन' भाग २, पृष्ठ ९५६-९५८ तक देखें।

२. यहां 'शुक्ल' शब्द से 'कर्मकाण्डी' का अभिप्राय है। यद्यपि ब्राह्मणों में 'शुक्ल' नाम की एक उपजाति भी है तथापि उसका यहां ग्रहण नहीं है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

करके चारों दिशाओं से सभी एक साथ अभ्याहुति[1] देते थे। इस अवसर पर आर्यसमाजी तथा अन्य बाहर के बहुत से ज्ञानी गृहस्थ भी इस शुभ कार्य को देखने के लिए, तथा **यज्ञनारायण** के दर्शन करने के लिए पधारे थे। यह क्रिया **निरन्तर[2] तीन घण्टों** तक चली थी। पूर्णाहुति होने के बाद **शुक्ल इत्यादि ब्राह्मणों को यथावत्** दक्षिणा देकर सत्कार किया गया था।

तत्पश्चात् उसी दिन उसी स्थान पर **सायंकाल पांच बजे** महोत्सव की सभा हुई थी। इस सभा में ज्ञानी विद्वान् तथा सेठ साहूकारादि सज्जन गृहस्थ पधारे थे। स्वामी जी ने **"वेद विषय"** पर सरसमय व्याख्यान करके श्रोताजनों को प्रसन्न किया था। इस समय श्रोताओं को स्पष्ट रूप से प्रकट कर दिया था कि "वेद" विद्याओं के मूल का भण्डार है और वह ईश्वर-प्रणीत अर्थात् ईश्वर प्रदत्त ज्ञान है। इसका रचयिता कोई मनुष्य नहीं है। परन्तु इस ज्ञान के द्रष्टा पूर्व ऋषि-मुनि हो गये हैं। वेद से भिन्न कोई अन्य पुरानी पुस्तक इस पृथ्वी पर नहीं है। वेद पुस्तक में अन्य किसी भी ग्रन्थ का लिया गया आधार दिखाई नहीं देता। साथ ही उसमें जो कुछ दर्शाया गया है उसमें से कुछ भी न्याय विरुद्ध अथवा अन्य आक्षेपार्ह नहीं है। परन्तु जो कुछ है वह मनुष्यमात्र के लिये ग्रहण करने योग्य है। अर्थात् उसे ईश्वर प्रणीत मानने में कोई बाधा भी नहीं आती। पहले से ही ऋषि मुनि आदि महात्माओं से लेकर साधारण मनुष्यों तक चारों वर्णों के आर्य लोग उसे ईश्वर प्रणीत मानते आये हैं। अर्थात् अब उसे अकारण तथा बिना किसी दोष के, ग्राह्य होने पर भी छोड़ देना, अज्ञानता तथा दुराग्रह का कारण कहा जायेगा। ऐसे ही लोगों को मनुस्मृति में नास्तिक[3] माना गया है तथा उन्हें अनार्य संज्ञा दी गयी है। इस प्रकार उस भाषण का सारांश था। इस भाषण के पश्चात् प्रसाद बांटा गया था। तत्पश्चात् प्रायः आठ बजे महोत्सव की सभा विसर्जित हुई थी।

इसके बाद दूसरी सभा **चैत्र शुक्ल पक्ष ३, बुधवार, संवत् १९३८, ता० २२ मार्च सन् १८८२ के दिन** सायंकाल पांच बजे इसी स्थान पर पुनः हुई थी। इस दिन भी स्वामी जी ने फिर **'वेद विषय'** पर ही विशेष व्याख्यान किया था। इसका सारांश भी उसी सिद्धान्त के अनुसार था। साथ ही वेद में जो-जो विद्यायें प्रदर्शित हुई हैं, उनका स्पष्टीकरण किया था। इस दिन भी रात्रि के आठ बजे सभा विसर्जित हुई थी। इस सभा में भी पूर्व सभा की भांति सभी सज्जन गृहस्थ पधारे थे।

---

१. 'अभ्याहुति' शब्द का अर्थ ज्ञातव्य है। यहां होम के किसी द्रव्य का उल्लेख नहीं मिलता।

२. यहां मूल गुजराती पाठ 'बरोबर' है। इस का अर्थ निरन्तर है। अन्य ठीक-ठीक, उचित मात्रानुसार आदि अर्थ भी होते हैं। इस प्रसंग में 'निरन्तर' अर्थ उचित है। हिन्दी में भी इसी अर्थ में 'बराबर' शब्द का प्रयोग होता है।

३. नास्तिको वेदनिन्दकः। मनु० २।११॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

चैत शुक्ल पक्ष १४, रविवार, १९३८; दि० २ अप्रेल, सन् १८८२ ई०

चैत्र शुक्ल पक्ष ७, रविवार, संवत् १९३८, ता० २६ मार्च सन् १८८२ ई० के दिन आर्य-समाज की सभा सायंकाल साढ़े पांच बजे 'फरामजी कावशजी इन्स्टीट्यूट' में हुई थी। इस अवसर पर समाचारपत्र में दी गयी सूचना के अनुसार स्वामी जी ने **'आर्यसमाज तथा थिओसोफिकल सोसायटी का सम्बन्ध'** विषय पर भाषण किया था।[1] इसमें आर्यसमाज का थिओसोफिकल सोसायटी के साथ प्रथम किस प्रकार तथा किस की मांग पर सम्बन्ध हुआ और यह सम्बन्ध आज तक किस पद्धति से तथा किस प्रकार चलता रहा है इत्यादि बातों का स्वामी जी ने यथावत् सत्य वर्णन किया था। इस व्याख्यान के समय **कर्नल अल्काट तथा मैडम ब्लेवेटस्की के समस्त पत्र, जो स्वामी जी को भेजे गये थे स्वामी जी ने सुनवाये थे।** इन पत्रों में इन लोगों के द्वारा की गयी स्वीकारोक्ति तथा स्वामीजी की प्रशंसा के विपरीत यहां आने के बाद वे कितना उल्टा चल रहे थे, तथा इस समय भी चल रहे हैं, यह सब स्वामी जी ने यथातथ्य दर्शा दिया था साथ ही वे थिओसोफिकल सोसायटी के नाम तथा नियमों के कितना विरुद्ध आचरण करते हैं, यह भी स्पष्ट किया था। ये लोग मीठा-मीठा प्रभाव कारक बोलकर, सत्य को ढककर, इस देश के लोगों को अपने मोह जाल में लाने के लिए दिखावे के लिए प्रत्येक धर्म की कैसी स्तुति करते हैं, परन्तु स्वयं कितना विरुद्ध आचरण करते हैं, इसका स्वामी जी ने यथातथ्य वर्णन किया था। ये लोग अन्दर से कैसे नास्तिक मत के हैं तथा अपनी सोसायटी के नाम के विरुद्ध होकर ईश्वर का अस्तित्व तक नहीं मानते, ये सभी बातें स्वामी जी ने खोलकर रख दी थी। यह भाषण साढ़े सात बजे लगभग पूर्ण हुआ था तथा सभा विसर्जित हुई थी।

इसके पश्चात् **चैत्र शुक्ल पक्ष ११, गुरुवार, संवत १९३८, ता० ३० मार्च सन् १८८२ ई०** के दिन सायंकाल साढ़े पांच बजे इसी स्थान पर पुनः सभा हुई थी। इस सभा में स्वामी जी ने फिर से तीसरी बार **'वेद विषय'** पर व्याख्यान किया था। यह भाषण भी इसी विषय पर पहले किये गये भाषणों के पूरकरूप में था सभा साढ़े सात बजे के लगभग विसर्जित हुई।

---

१. ऋषि दयानन्द ने २२ मार्च १८८२ के पत्र में २८ मार्च १८८२ मंगलवार के दिन आप लोगों (कर्नल अल्काट और ब्लेवेत्सकी) के विरुद्ध व्याख्यान देने का निर्देश किया है (द्र० 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' पूर्ण संख्या ५१२, भाग २, पृष्ठ ५४५)। ऐसा ही उल्लेख प० लेखरामजी कृत जीवनचरित, हिन्दी सं० पृष्ठ ८७८ पर मिलता हैं। हमारा विचार है कि २६ मार्च १८८२ तक उक्त पत्र का उत्तर प्राप्त न होने से कर्नल अल्काट और मैडम ब्लेवेत्सकी के विरुद्ध आर्यसमाज की रविवासरीय सभा में ही ऋषि दयानन्द ने उक्त भाषण दिया। इस कार्यवाही के अनुसार ऋषि दयानन्द के जीवन चरित्रों में संशोधन होना चाहिये।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

चैत्र कृष्ण पक्ष ६, रविवार, संवत् १९३८; ता० ९ अप्रेल, सन् १८८२ ई०

चैत्र शुक्ल पक्ष १४, रविवार, संवत् १९३८, ता० २ अप्रेल सन् १८८२ ई० के दिन आर्यसमाज की सभा 'फरामजी कावशजी इन्स्टीटयूट हाल' में सायंकाल साढ़े पांच बजे हुई थी। इस अवसर पर **स्वामीजी** ने समाचार पत्र में दी गयी सूचना के अनुसार **"आर्यसमाज तथा ब्रह्मसमाज के नियम"** विषय पर व्याख्यान किया था। इसमें आर्यसमाज, ब्रह्मसमाज तथा प्रार्थना समाज के प्रत्येक नियम को पढ़कर, उनकी तुलना करके, कितने नियम समान हैं तथा कितने परस्पर विरुद्ध हैं, लोगों के समक्ष इस बात का स्पष्टीकरण किया था। ब्रह्मसमाज तथा प्रार्थना समाज के कौन-कौन से नियम अयोग्य, हानिकारक साथ ही देश के हितों के प्रतिकूल हैं, यह सब स्पष्ट किया था। यह भाषण साढ़े सात बजे पूर्ण हुआ था। तत्पश्चात् सभा विसर्जित हुई थी।

इसके अनन्तर दि० ५ अप्रेल बुधवार को स्वामी जी थाने[1] (ठाणे) गये थे और वहां **'वेद विषय"** पर एक व्याख्यान किया था।

चत्र कृष्ण पक्ष १३, रविवार संवत् १९३८। ता० १६ अप्रेल १८८२ ई०

चैत्र कृष्ण पक्ष ६, रविवार संवत् १९३८, ता० ९ अप्रेल सन १८८२ ई० के दिन आर्यसमाज की सभा रा० रा० गोविन्द विष्णु की पाठशाला' में सायंकाल साढ़े पांच बजे हुई थी। प्रथम वेद मन्त्र से ईश्वर-स्तुति करने के पश्चात् गायक ने स्तुति गायन किया था। तत्पश्चात् समाचार पत्र में दी गयी सूचना के अनुसार **रा०रा० आत्माराम बापूजी दलवी**[2] ने 'वेंगुर्ला'[3] में वेदोक्त संस्कार [प्रकाश][4]

---

१. थाना (ठाणा) बम्बई से लगभग २२ मील दूर है। उन दिनों यह स्वतन्त्र कसबा था। अब यह बृहद् बम्बई के अन्तर्गत आ गया है।

२. ये महाशय प्रधान उपप्रधान आदि के रूप में आर्यसमाज (काकड़वाड़ी) बम्बई से बहुत समय तक सम्बद्ध रहे। ३. जिला रत्नागिरी, कर्णाटक।

४. 'वेदोक्तसंस्कार प्रकाश' नाम का ग्रन्थ श्री बालाजी विट्ठल गोवस्कर ने लिखा था। यह ग्रन्थ मराठी भाषा में है। यह वि० सं० १९३८ के आरम्भ में छपा था और श्री रा० रा० आत्माराम बापूजी दलवी को ही समर्पित किया गया है। आर्यसमाज काकड़वाड़ी बम्बई की हस्तलिखित कार्यवाही पृष्ठ ६४ के अनुसार प्राण जीवन दास काहनदास ने इस पुस्तक के 'सामान्य संस्कार और विवाह संस्कार पर १३ नवम्बर १८८१ को व्याख्यान दिया था। इसी प्रकार (पृष्ठ ६५ के अनुसार) एक व्याख्यान 'गर्भाधान संस्कार और गृहस्थाश्रम पर २७ नवम्बर १८८१ को व्याख्यान दिया था। प्राण जीवनदास काहनदास ने इस पुस्तक का सं० १९३८ में ही गुजराती अनुवाद भी प्रकाशित कर दिया था। यह गुजराती अनुवाद ऋ० द० के संग्रह में विद्यमान था। इधर ३-४ वर्षों में ही यह उस संग्रह से नष्ट हो गया। इस ग्रन्थ का ऋ० द० कृत संस्कारविधि के साथ बहुत महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध है। इस विषय पर हम वेदवाणी में कभी स्वतन्त्र लेख देंगे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

के अनुसार पंडित बालाजी के यहां पर हुए "उपनयन संस्कार का वृत्तान्त" सुनाया था। उसका सारांश इस प्रकार था, इस वेदोक्त संस्कार के विरुद्ध आजकल के आधुनिक प्रापंचिक संस्कारवाले उलटी बाधा डालने के लिए तत्पर हुये थे तथा इन लोगों ने अपने दुष्ट उपायों का अवलम्बन किया था। परन्तु सत्य के सम्मुख उनकी एक भी न चली थी। उलटा पराजित होकर बेपरदा हो गये थे। संस्कार के अवसर पर आमन्त्रित लोग तथा अन्य अनाहूत दर्शक सत्य संस्कार पद्धति देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए थे। इन लोगों ने यह प्रकट किया था कि यदि इस प्रकार की पद्धति का प्रसार हो तो वे प्रसन्न होंगे। संस्कार के उपरान्त उन लोगों ने रा० रा० आत्माराम बापूजी दलवी तथा शास्त्री कृष्ण-राय इच्छाराम के व्याख्यान करवाये थे। उन लोगों ने इन वक्ताओं का उपकार माना था। दलवीजी के भाषण का यह सारांश था। इस भाषण के उपरान्त गायक ने पुनः प्रार्थना गायन किया था। प्रायः ८ बजे के लगभग सभा विसर्जित की गयी थी।

वैशाख शुक्ल पक्ष ६, रविवार, संवत् १९३८। ता० २३ अप्रेल, सन् १८८२ ई०

चैत्र कृष्ण पक्ष १३, रविवार, संवत् १९३८, ता० १६ अप्रेल सन् १८८२ ई० के दिन आर्य-समाज की सभा 'रा० रा० गोविन्द विष्णु की पाठशाला' में सायंकाल साढ़े पांच बजे हुई थी। प्रथम वेद मन्त्र से नियमानुसार ईश्वर स्तुति तथा स्तुति गायन किया गया था। तत्पश्चात् समाचारपत्र में दी गयी सूचना के अनुसार **रा० रा० अन्ना मार्तंड जोशी** ने **"कीर्तन"** विषय पर व्याख्यान किया था। उसका सारांश यह था कि कीर्तन प्रथा की उत्पत्ति के समय उस का हेतु भिन्न था परन्तु वर्तमान समय में उसका अर्थ भिन्न हो गया है। सर्वप्रथम वक्ता ने कीर्तन शब्द की व्याख्या की। यह प्रथा कब से तथा किस के समय से उत्पन्न हुई प्रतीत होती है। इस सम्बन्ध में अपनी खोज तथा अनुमान श्रोताओं के सम्मुख उपस्थित किये। तत्पश्चात् कीर्तन किसे करना चाहिये। किस भाव से करना चाहिए, तथा कीर्तन करने का वास्तविक प्रयोजन क्या है, इन बातों का यथातथ्य वर्णन किया था। इसके अनन्तर उन्होंने इस सम्बन्ध में विवेचन किया था कि वे रामकृष्ण आदि पुरुषों को क्या मानते हैं तथा उनका कीर्तन क्यों करते हैं। इस विवेचन में उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा था कि मैं रामकृष्ण आदि को ईश्वर नहीं मानता। सद्गुणी महात्मा पुरुष होने के कारण मैं कीर्तन के द्वारा उनकी स्तुति गाता हूं। उनके गुणों का स्मरण करके शक्त्यनुसार उनको ग्रहण करता हूं। इसी से अपनी मान्यता को सब के सामने प्रकट करके, मैं एक राम मन्दिर के राम महोत्सव में उसके कार्यकर्ता के आग्रह पर गया था। वहां मैंने अपने उद्देश्य के अनुसार कीर्तन किया था। इसी प्रकार कीर्तन होना चाहिये। मैंने उनके उद्देश्य तथा विचार के अनुसार कीर्तन किया ही नहीं। प्रत्येक कीर्तनकार को अपने काम में सुधार करना चाहिये। इतने पर भी विरोधी लोग मेरे सम्बन्ध में मनमानी बातें कहें, तो निस्सन्देह वे निन्दक, झूठे तथा कपटी हैं। इस प्रकार कहकर उन्होंने अपना भाषण समाप्त किया था। तत्पश्चात्

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नियमानुसार गायक द्वारा पुनः प्रार्थना गायन करने के बाद इस सम्बन्ध में कितने ही गृहस्थों ने अपने विचार प्रकट किये थे। इनमें से एक विद्वान् ने स्पष्टरूप से कहा था कि यदि कीर्तनकार इस पद्धति से कीर्तन करके स्थान-स्थान पर कथा करें तथा ठीक-ठीक सत्य अर्थ समझायें, तो अंग्रेजी पद्धति के वक्ता भी उस से भली-भांति लाभान्वित हों तथा देश में द्रुतगति से सुधार हो। उनकी यह बात सत्य तथा सर्वमान्य प्रतीत हुई थी। तत्पश्चात् पेशावर वाले बाबा करमशी (कर्मसिंह) ने कुछ विवेचन करते हुए अपने विचार रखे थे। अन्त में अध्यक्ष आत्माराम बापू जी दलवी ने अपना न्याययुक्त अभिप्राय प्रकट करके सभा विसर्जित की थी।

———

वैशाख शुक्ल पक्ष १२, रविवार, संवत् १९३८। ता० ३० अप्रेल सन् १८८२ ई०

वैशाख शुक्ल पक्ष ६, रविवार, संवत् १९३८ ता० २३ अप्रेल सन् १८८२ ई० के दिन आर्य-समाज की सभा 'रा० रा० गोविन्द विष्णु की पाठशाला' में सायंकाल साढ़े पांच बजे हुई थी। प्रथम नियमानुसार वेदमन्त्र से ईश्वरस्तुति और गायन हुआ था। पश्चात् समाचारपत्र में दी गयी सूचना के अनुसार पेशावर आर्यसमाज के करमशी ने **"नास्तिकमत तथा नवीन वेदान्त मत खण्डन"** इन दो विषयों पर हिन्दी में व्याख्यान किया था। यह स्वामीजी के सिद्धांत के अनुकूल था। इसका सारांश यह था। सृष्टिमण्डल तथा खगोलमण्डल की नियमानुसार रचना, उस मण्डल में विद्यमान नियमानुसार कालगति, उसकी गतिमानता, फलस्वरूप उसमें घट रही नानाविध क्रियायें, हलचल इत्यादि प्रत्यक्ष देखने में आती हैं। ये सारी क्रियायें कर्त्ता के विना हो नहीं सकती न अपने नियम में ही रह सकती हैं। कर्त्ता के विना उनका वियोग-संयोग स्वयं उनके द्वारा नियमानुसार नहीं हो सकता। वे अमुक स्थान पर अस्तित्व में रहकर यहां पुनः अपना काम नियमानुसार नहीं कर सकते। सभी कुछ नियम में रह सकना असम्भव है। यदि स्वयमेव कोई रचना होगी तो निरुपयोगी होगी और उसमें कोई क्रम नहीं रहेगा। अतएव ईश्वर का अस्तित्व तो मानना ही चाहिये। यह भाषण-कर्ता का दृढ़ सिद्धान्त था। नवीन वेदान्तियों के मत के खण्डन में उन्होंने जो कुछ कहा था वह इस प्रकार था। जीव ब्रह्म की एकता मानने से जैसे ईश्वर न्यायकारी, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ और उपाधि तथा सुख-दुःख रहित अनेक गुणयुक्त है, वह उत्पत्ति-प्रलय करता है, वैसे ही जीव को भी मानना पड़ेगा। और फिर जीव को किसी की प्रार्थना, उपासना करने की आवश्यकता न रहेगी उसके पाप पुण्य का न्यायकर्ता और फल देनेवाला भी जीव से भिन्न ईश्वर नहीं माना जायगा। जैसे स्वयं ही अपनी मूर्खताओं का न्याय करके स्वयं ही दण्ड ले लिया जाय इस प्रकार कहा जायगा। इसके विरुद्ध विचार करने पर ज्ञात होता है कि सर्वज्ञ कभी भूल नहीं करता साथ ही पाप-पुण्य का भी अधिकारी नहीं होता। ये लोग कहते हैं कि संसार मिथ्या है, जो कुछ दिखाई पड़ता है वह कुछ नहीं है, केवल भ्रान्ति से दृष्टिगोचर होता है। यह भी कहते हैं कि मानों न कुछ हुआ है न होगा। परन्तु इससे यहां बहुत बड़ी बाधा उपस्थित होती है। भ्रान्ति में जो कुछ मिथ्या हम देखते हैं वह दिखानेवाला और

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कहनेवाला होना चाहिये। परन्तु यह मिथ्या आभास दिखाने का प्रयोजन क्या है? मिथ्या को वस्तु रूप में देखनेवाला कहां से आया? और जब मिथ्या देखा, तो द्रष्टा सत्य कैसे हो सकता है, साथ ही उसका अनुमान भी कैसे सत्य हो सकता है? जब जीव ब्रह्म की एकता होने से जीव ब्रह्मरूप हो जायगा, तो मिथ्या भान से भ्रान्ति में पड़कर देखनेवाला भी स्वयं भ्रान्ति रूप ब्रह्म ठहरता है। यदि ऐसा माना जाय तो उसकी सर्वज्ञता नहीं रहती। इसी प्रकार अन्य गुण होने के कारण वह ईश्वर ही नहीं ठहरता। यह वक्ता के कथन का भावार्थ था। इस भाषण के बाद वेदान्तियों (गोजा-मुसलमान) ने कितनी ही शंकाएं उठायी थीं। उनका उचित उत्तर देने के बाद अध्यक्ष ने इस पर अपना न्याययुक्त अभिप्राय प्रकट करके आठ बजे के लगभग सभा विसर्जित की थी।

वैशाख कृष्ण पक्ष ४, रविवार, संवत् १९३८ ता० ७ मई सन् १८८२ ई०

वैशाख शुक्ल पक्ष १२, रविवार, संवत् १९३८, ता० ३० अप्रेल सन् १८८२ ई० के दिन आर्य-समाज की सभा 'रा० रा० गोविन्द विष्णु की पाठशाला' में सायंकाल साढ़े पांच बजे हुई थी। प्रथम नियमानुसार वेदमन्त्र से ईश्वर स्तुति तथा स्तुति गायन किया गया था। तत्पश्चात् समाचारपत्र में दी गयी सूचना के अनुसार **रा०रा० आत्माराम बापूजी दलवी ने**[1]……विषय पर व्याख्यान किया था। परन्तु उस दिन मन्त्री के बम्बई में न होने से उस भाषण की रिपोर्ट नहीं ले सका। इससे उस भाषण का सारांश इस स्थान पर नहीं दे सका। परन्तु भाषण के अन्त में नियमानुसार गायक ने प्रार्थना गायन किया था। सभा नियमानुसार आठ बजे के निकट समाप्त हुई थी।

वैशाख कृष्ण पक्ष १२, रविवार, संवत् १९३८। ता० १४ मई, सन् १८८२ ई०

वैशाख कृष्ण पक्ष ४, रविवार, संवत् १९३८, ता० ७ मई सन् १८८२ ई० के दिन आर्यसमाज की सभा 'रा०रा० गोविन्द विष्णु की पाठशाला' में सायं साढ़े पांच बजे हुई थी। प्रथम नियमानुसार वेदमन्त्र से ईश्वर-स्तुति तथा स्तुति गायन किया गया था। तत्पश्चात् समाचार पत्र में दी गयी सूचना के अनुसार **रा० रा० अन्ना मार्तंड जोशी ने "उपवास तथा गंगा स्नान से क्या मोक्ष प्राप्त होती है?"** विषय पर व्याख्यान किया था। इसमें वक्ता का भावार्थ यह था कि उपवास करने से अजीर्ण, ज्वर तथा अजीर्ण से हुए अन्य रोगों के क्लेश से छुटकारा मिलता है। परन्तु देह धारण करने के बन्धन से तथा पाप-पुण्य के भोग से उपवास करने वाला मुक्त नहीं होता। गंगादि के स्नान से

---

१. मूल कार्यवाही में यहां स्थान खाली छोड़ा है। मन्त्री जी के बम्बई में न होने से (आगे द्रष्टव्य) जिस व्यक्ति ने यह अंश लिखा वह 'विषय' भूल गया, ऐसा प्रतीत होता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

देह की शुद्ध होती है तथा कितने ही शरीर विकार भी पानी-गुण से दूर होते हैं। परन्तु देह धारण तथा पाप-पुण्य इससे नहीं छूटते। यदि इतनी सुगमता से मोक्ष होता हो, तो सभी मोक्ष-सुख की प्राप्ति कर सकते हैं। विद्याभ्यास, सन्त समागम तथा पठन-पाठन करके वेद सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करने की, वेदादि शास्त्र में प्रदर्शित ईश्वरीय नियमों के प्रमाण की तथा उनको पालन करने की कोई आवश्यकता ही न रहे। यदि इस प्रकार उपवास करने से मोक्ष होता हो, तो अकाल में उपवास से मरने वाले सभी लोगों को मोक्ष की प्राप्ति हो। गंगा स्नान से मोक्ष प्राप्त होता हो, तो सदैव जल में पड़ी रहने-वाली मछलियां सब की सब मोक्ष-सुख को प्राप्त करें। यदि फल, कन्द-मूल और घास-पात खाने से मोक्ष प्राप्त होता हो, तो वे पशु पक्षी जो सदैव ऐसा ही भोजन करके मनुष्य जाति को अनेक प्रकार के सुख देकर परमार्थ करते हैं, उन्हें तो सबसे पहले मोक्ष होना चाहिये। यदि यह हो तो मनुष्य देह सभी पशु आदि के देहों से नीच तथा दुःखदायक माननी चाहिये। अतः ऐसे विचार प्रकट करनेवाला कपटी, माननेवाला तथा समझनेवाला बिल्कुल अज्ञानी और भोला है। इस प्रकार वे एक दूसरे का अहित अज्ञानता से अपने हाथों कर लेते हैं। इस प्रकार समझकर इन लोगों को अन्धकार से बचाने के लिए ज्ञानियों को सदैव उपदेश करना चाहिये। यह वक्ता का भावार्थ था। भाषण के उपरान्त गायक ने पुनः प्रार्थना-गायन नियमानुसार किया था। पश्चात् कितने ही बुद्धिमान जनों ने अपने अमूल्य विचार प्रदर्शित किये थे। तत्पश्चात् अध्यक्ष प्राणजीवन दास ने इन पर अपना न्याययुक्त अभिप्राय देकर प्रायः आठ बजे सभा विसर्जित की थी।

———

ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष ४, रविवार, संवत् १९३८। ता० २१ मई, सन् १८८२ ई०

वैशाख कृष्णपक्ष १२, रविवार, संवत् १८३८, ता० १४ मई, सन् १८८२ के दिन आर्यसमाज की सभा 'रा० रा० गोविन्द विष्णु की पाठशाला' में सायंकाल साढ़े पांच बजे हुई थी। प्रथम नियमानुसार वेद मन्त्र से ईश्वर प्रार्थना और स्तुति गायन किया गया था। पश्चात् समाचार पत्र में दी गयी सूचना के अनुसार रवरशाड़ (वलसाड़ का गांव) के निवासी **कवि कृष्णराम इच्छाराम शास्त्री** ने अपनी गोमान्तक देश में (गोवा प्रान्त में) की गयी यात्रा तथा वेंगुर्ला में आर्यसमाज के निश्चय के अनुसार शास्त्रीजी द्वारा वेदोक्त उपनयन संस्कार कराये जाने का विवरण उपस्थित किया। इस भाषण में पर्याप्त जानने योग्य बातें थीं। वक्ता ने अपने भाषण में सम्पूर्ण गोमान्तक प्रान्त का जैसा का तैसा चित्रण उपस्थित किया था। वहां के पर्वत, नदी, नाले, वनस्पति, बाग बगीचों की शोभा, फिरंगियों (पोर्तुगालियों) तथा आर्य लोगों के देवस्थानों का वर्णन, उनकी उत्पत्ति वहां के लोगों का व्यवहार धर्म सम्बन्धी विचार, अभ्यागतों के आगत-स्वागत की पद्धति, फिरंगी राज्य की व्यवस्था, स्मार्त और वैष्णवों के परस्पर विरोधी खानपान और स्वभाव और वहां उत्तम गृहस्थों की सभ्यता इत्यादि बातों का उत्तमता पूर्वक विवेचन किया था। वक्ता ने अपनी वेंगुर्ला यात्रा का वर्णन करते हुए

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कहा था कि वहां उसने पंडित बालाजी गावस्कर के यहां स्थानीय ब्राह्मणों के समक्ष वेदोक्त उपनयन संस्कार कराया था। वहां उसके भाषण से लोग सन्तुष्ट हुए थे। सावन्तवाड़ी (कोंकण का एक शहर) में उपनयन संस्कार विषय पर वाद विवाद करके उन लोगों को पराजित किया था तथा अपने भाषण से लोगों को सन्तुष्ट किया था। गोवा में अपने भाषणों द्वारा वहां के लोगों को वेद, स्वामीजी और आर्यसमाज से परिचित कराकर उन्हें प्रसन्न किया था। वक्ता ने विस्तार से इन सब का विवरण उपस्थित किया था। उसने कहा कि वहां के लोगों में सत्य धर्म जानने के लिए बहुत जिज्ञासा है। स्वामीजी जैसे महात्मा पुरुष की वहां जाने की अत्यन्त आवश्यकता है। कार्यक्रम के अन्त में पुनः प्रार्थना गायन हुआ था। रा० रा० आत्माराम बापूजी दलवी के साक्षी रूप वक्तव्य के अनन्तर अध्यक्ष अन्ना मार्तंड जोशी ने अपना न्याययुक्त अभिप्राय देकर सभा विसर्जित की थी।

ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष ११, रविवार, संवत् १९३८। ता० २८ मई, सन् १८८२ ई०।

ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष ४, रविवार, संवत् १९३८, ता २१ मई सन् १८८२ के दिन आर्यसमाज की सभा 'रा० रा० गोविन्द विष्णु की पाठशाला' में सायंकाल साढ़े पांच बजे हुई थी। प्रथम नियमानुसार वेदमन्त्र से परमात्मा की स्तुति की गयी थी। पश्चात् गायक ने स्तुति गायन किया था। तत्पश्चात् समाचार पत्र में दी गयी सूचना के अनुसार **रा० रा० तुकजाराम चुनीलाल** ने **"लग्न विचार"** विषय पर अपने लिखित निबन्ध का कुछ भाग पढ़कर सुनाया था।

[आगे का अंश हमने छोड़ दिया है। यु० मी]

ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष ३, रविवार संवत् १९३८। ता० ४ जून सन् १८८२ ई०

ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष ११, रविवार, सं० १९३८, ता० २८ मई सन् १९८२ ई० के दिन आर्यसमाज की सभा 'एस्प्लेनेड थियेटर' में सायंकाल साढ़े चार बजे हुई थी। इस दिन श्रोताओं की उपस्थिति बहुत अधिक थी। प्रथम नियमानुसार गायक के स्तुति-गायन करने के बाद, प्रख्यात **पंडित दयानन्द सरस्वती स्वामी जी** ने वेदमन्त्रों से परमात्मा की प्रार्थना करके समाचार पत्र में दी गयी सूचना के अनुसार **"देशोन्नति"** विषय पर अति सुन्दर बोधकारक व्याख्यान किया था। इस व्याख्यान में **बालविवाह, देशाटन, क्रय-विक्रय में प्रामाणिकता, विद्याभ्यास, सत्य-भाषण** इत्यादि बहुत

---

१. इस कार्यवाही में २ अप्रेल के ऋ० द० के व्याख्यान के अनन्तर ९, १६, २३, ३० अप्रेल तथा ७, १४, २१ मई की सभाओं में अथवा इन लगभग पौने दो मास के समय में बम्बई में रहते हुए भी ऋषि दयानन्द के व्याख्यान क्यों नहीं हुए, यह विचारणीय है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

से उन्नति के विषयों पर अत्यन्त प्रभावशाली भाषण किया था देश की उन्नति के लिए किन-किन उपायों को कार्यान्वित किया जाय, इत्यादि बातें स्वामी जी ने स्पष्ट की थीं। उनका सम्पूर्ण भाषण अंकित करने योग्य था। परन्तु उस सम्पूर्ण भाषण का समावेश करने से यह विवरण बहुत बड़ा हो जायगा, अतः पूर्ण वृत्तान्त यहां नहीं अंकित किया जा रहा है। फिर भी सारांश[1] यहां दिया जा रहा है।

बालविवाह करने से विद्यार्थियों से अपेक्षित विद्याभ्यास नहीं होता, साथ ही अयोग्य समय में विषयानन्द के तुच्छव्यसन में पड़कर शरीर का विनाश करते हैं। इससे आगे जाकर वीर्यहीन, बुद्धिहीन और बलहीन होकर शरीर सामर्थ्य तथा बुद्धिबल विनष्ट कर देते हैं। ऐसे व्यक्ति जगत् में निरुपयोगी तथा अन्य लोगों के लिए विनाशक सिद्ध होते हैं। अतएव बालविवाह की प्रथा बन्द करके वीर्य परिपक्व होने तक ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करवाकर भलीभांति विद्याभ्यास करवाना चाहिये तथा विद्यार्थियों के शरीर, बल, बुद्धि बढ़ाने के उपाय करने चाहिये। इससे वे पराक्रमी और देशोपयोगी पुरुष बन सकेंगे। यह बालविवाह के सम्बन्ध में सारांश था।

देशाटन के सम्बन्ध में यह सारांश था कि पुराणों की गप्पों में देशाटन को धर्म विरोधी बताया गया है, जो बिल्कुल झूठ है। वेदादि सत्य आर्ष ग्रन्थों में इस सम्बन्ध में ऐसा कुछ भी नहीं हैं। उलटा इन ग्रन्थों से ऐसा ज्ञात होता है कि अपने देश के आर्य लोग तथा बड़े-बड़े ऋषि मुनि जैसे लोग समस्त भूमंडल में घूमते थे। यहां के राजा दूरदेश की कन्याओं से विवाह करते थे। स्वामी जी ने इन बातों के कितने ही उदाहरण दिये थे। साथ ही देशाटन करने से मनुष्यों में शरीरबल, बुद्धिबल, साहस तथा जानकारी बढ़ती है। अन्य देशों की राज्यनीति, व्यापार, कलाकौशल के कामों को देख-सीखकर, अपने देश में उनका प्रचार करने से, स्वदेशवासियों के सुख में वृद्धि होगी। देशाटन करनेवाले व्यक्ति उत्साह और आग्रहपूर्वक इन बातों के प्रचार में प्रयत्नशील होंगे, जिससे स्वदेश को समृद्धि होगी। अतः देशाटन करनेवाले लोगों के मार्ग में बाधा उपस्थित करना मूर्खता है। इतना ही नहीं अपने ही हाथों अपने देश का विनाश करना है। इसलिये ज्ञानवान् धनाढ्य व्यापारियों को इस सम्बन्ध में एकमत से विचार करके भावी दुर्भाग्य से बचने के लिये अवश्य सोचना चाहिये। शास्त्र के अनुसार परदेश जाने में कोई दोष अथवा धर्मभंग नहीं है। स्वामीजी ने देशाटन के सम्बन्ध में इस प्रकार के विचार प्रकट किये थे। स्वामी जी ने इस सम्बन्ध में विशेष बात कही थी कि विदेशी लोग वेद में वर्णित अभक्ष्य वस्तुओं का भक्षण करते हैं। यह धर्म-विरुद्ध है। हम लोगों को ये वस्तुयें नहीं ग्रहण करनी चाहिये। खानपान में ऐसे लोगों के संसर्ग से दूर रहकर अपने खाने-पीने की विधि

---

१. ऋ० द० के इस व्याख्यान का सारांश जितने विस्तार से कार्यवाही में अङ्कित किया है, उसने विस्तार से अन्य व्याख्यानों का सारांश भी अङ्कित हो तो अनेक ऐसे विज्ञानों का ज्ञान होता जिनका उल्लेख उनके ग्रन्थों में नहीं मिलता। यथा इसी व्याख्यान में देशान्तर में जाने वालों के सम्बन्ध में देशकालानुसार प्रायश्चित्त का विचार प्रकट किया है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सुरक्षित रखने की व्यवस्था विदेश में करनी चाहिये। जब तक इस प्रकार की व्यवस्था न हो जाय तब तक अपने देश की पद्धति के अनुसार देह शुद्धि के लिये प्रायश्चित्त की विधि करनी चाहिए। यहां के लोगों को न चिढ़ाना ही बुद्धिमत्तायुक्त है। अभक्ष्य वस्तुओं का भक्षण न करने के लिये वेदोक्त धर्म का अंकुश रखना चाहिए।

तीसरे विषय क्रयविक्रय के सम्बन्ध में स्वामी जी ने कहा कि हमारे आर्य पूर्वज पुरातनकाल में सभी व्यवहारों में प्रामाणिक और न्यायी थे। इससे उस समय विदेशों में उनकी प्रामाणिकता और प्रतिष्ठा प्रथम श्रेणी की थी। परन्तु आजकल हमारे देश के लोगों ने क्रिय-विक्रय के व्यवहार में पूर्वजों की प्रामाणिकता छोड़ दी है। व्यापार में अत्यन्त अप्रामाणिकता का व्यवहार करते हैं तथा नाना प्रकार के षड्यन्त्र रचते हैं। इससे व्यापारियों की प्रतिष्ठा स्वदेश में भी कम हो गयी है। इस समय लेन देन में तथा दिये गये वचन पर बाप बेटे अथवा भाई-भाई का एक दूसरे पर विश्वास नहीं है। फलस्वरूप आपस में धन इत्यादि से एक दूसरे की सहायता करनी इन लोगों ने छोड़ दी है एक दूसरे का बिल्कुल विश्वास नहीं करते। विदेशियों को प्रेमपूर्वक लोन, शेर(शेयर) इत्यादि अनेक बातों में करोड़ों रुपये देते हैं। इस देश में व्यापारार्थ आये हुए विदेशियों को करोड़ों रुपये देकर उनकी कमाई में वृद्धि करते हैं। परन्तु अपने भाइयों को उनका अप्रामाणिक वर्तन देखकर कोई एक फूटी कौड़ी भी ऋण नहीं देता। इससे देश की समृद्धि नष्ट होती है। हम अपनी आंखों से देखते हैं कि हमारे ही लोग माल देने में अत्याधिक धोखा धड़ी करते हैं। विक्रेता तथा क्रेता दोनों ही माल का वास्तविक मूल्य नहीं जानते, फिर भी एक अधिक तथा दूसरा कम मूल्य कह-कह कर अपना-अपना समय झगड़े में नष्ट करते है। ये व्यर्थ ही अप्रामाणिता की छाप प्राप्त करते हैं। साथ ही हमारे कितने ही व्यापारी दिखाते हैं एक वस्तु और देते है दूसरी, जिस माल में कोई मिलावट सम्भव होती है, उसमें मिलावट कर देते हैं। कितने ही माप भी झूठा रखते हैं। कितने ही बड़े व्यापारी अपना घर धनादि से भरकर दीवाला निकाल निकलवा कर दूसरों को जान बूझकर रुलाते हैं। इसमें अपनी तथा अपने वंशजों की भविष्य के लिए प्रतिष्ठा नष्ट होती है। विश्वास उठ जाने से आगे चलकर व्यापार धन्धे में कोई एक दूसरे को एक कौड़ी भी उधार नहीं देते इससे अपने वंशजों की भविष्य में दुर्दशा होगी। वे अत्यन्त दुःखी होंगे। ये लोग सामान्य बुद्धि से भी नहीं सोचते कि इस प्रकार का धिक्कार योग्य व्यवहार करने से कचहरी दरबार में अनेक प्रकार के झगड़े खड़े होते हैं, जिनमें लाखों रुपये नष्ट होते हैं। कोर्ट में जानेवाले अन्त में निर्धन होकर पश्चाताप करते हैं। अतः कहने का तात्पर्य यह है कि क्रय-विक्रय में अप्रामाणिकता, धोखाधड़ी और षड्यन्त्र करने से तथा अकारण ही भाई-भाई की मूर्खता से कचहरी दरबार में न जाकर प्रामाणिकता का पालन करते हुए सत्यता पूर्वक क्रय विक्रय करना चाहिये। आपस में विश्वास बढ़ाना चाहिये। एक-दूसरे की सहायता करके परस्पर अपनी समृद्धि करनी चाहिये। इस प्रकार देश देशान्तर में अपनी साख जमानी चाहिये। इस प्रकार स्वामी जी ने क्रय-विक्रय के सम्बन्ध में अपने मन के वास्तविक भाव व्यक्त किये थे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तत्पश्चात् स्वामी जी ने विद्याभ्यास के सम्बन्ध में पर्याप्त ज्ञानवर्धक बातें कही थीं। उनका तात्पर्य यह था कि पारमार्थिक ईश्वर सम्बन्धी तथा व्यावहारिक पदार्थ विज्ञान सम्बन्धी ज्ञान जिससे प्राप्त हो, उसी का नाम विद्या है। इसे पढ़ना-पढ़ाना तथा लोगों की उन्नति करना ही मानव धर्म है। इसे प्रत्येक व्यक्ति को अंगीकार करना चाहिये। यही उसका पुरुषार्थ है। यदि वस्तुतः यह विद्या हम लोग प्राप्त करना चाहते हैं, तो वेदादि आर्ष ग्रन्थों तथा महान् ऋषिमुनियों द्वारा आदरित ग्रन्थों का भलीभांति अध्ययन करना चाहिये। सत्य क्या है? ईश्वर कौन है? कैसा है? मनुष्य को उसकी आज्ञा क्या है? मनुष्य का कर्तव्य तथा उसे निभाने का धर्म क्या है? इन सब बातों को सबसे पहले जान लेना चाहिये। इसी के साथ व्यावहारिक, राजकीय तथा पदार्थ विद्या का ज्ञान उत्तमता पूर्वक सम्पादन करना चाहिये। **संसार के लोगों की भाषाओं के ग्रन्थों से यदि उत्तम ज्ञान मिले तो उसे भी प्राप्त करना चाहिये।** उनकी भाषाएं भी सीखनी पड़े तो अवश्य सीखनी चाहिये। उनमें से जहां भी सत्य प्राप्त हो उसे ग्रहण करना चाहिये। इसी का नाम विद्याभ्यास है। अन्यथा विदेशी भाषा सीखकर उन लोगों के दुराचरण ग्रहण करना तथा अपनी भाषा के तत्त्व भंडार की ओर से आंख मूंद लेना उसके सत्य की उपेक्षा करके मौन हो जाना, थोड़ी विद्या के बल पर दुराग्रह करना सर्वज्ञ की भांति होकर पाखंडी लोगों का बिल्कुल होटलपन्थी[1] हो जाना इत्यादि विद्याभ्यास नहीं है। इससे अपना अथवा संसार का कल्याण नहीं हो सकता। यह अविद्या का प्रकाश न (प्रकट करना) कहा जायगा। इस प्रकार का पढ़ा लिखा बाहर से स्वच्छ बोलने में मधुर, विनम्रता प्रदर्शन में चतुर, अल्प विद्या से सन्तुष्ट होकर सर्वज्ञता के अभिमान में दुराग्रही होता है। अपने मानसिक कलुष के कारण वह पक्का स्वार्थी होता है। इस व्यवहार के द्वारा प्राप्त किये धन से वह अत्यन्त मदोन्मत्त होकर विषयानन्द भोगने में डूबा रहता है। ऐसा व्यक्ति स्वदेशी भाई की स्थिति के सम्बन्ध में कोई परवाह नहीं करता। ईश्वर के सम्बन्ध में उसके भीतर किसी प्रकार का भय नहीं रहता। वह प्रत्येक विषय में अग्रगण्य होकर देशी भाइयों को दुःखी करने तथा उनमें फूट उत्पन्न करते का मार्ग स्वीकार करता है। उनके दुःख-क्लेश बढ़ाने में अपने ज्ञान का उपयोग करता है। इस से लोगों की और दुर्दशा होती है। अतएव यदि देश की अर्थात् स्वदेश के भाइयों की कोई परवाह हो, तो वेदादि आर्षग्रन्थों का अध्ययन अभिमान और हठवादिता त्यागकर अपने पूर्वज आर्यों की भांति उत्तम गुण तथा उत्तम ज्ञान को ग्रहण करना चाहिये। यही मुख्य आर्यधर्म है। इस प्रकार स्वामीजी ने विद्याभ्यास के सम्बन्ध में भाषण किया था। इसी प्रकार उन्नति के अन्य विषयों पर भी बहुत कुछ कहा था। इसका ठीक ठीक ज्यों का त्यों चित्रण असम्भव है। यह भाषण ठीक साढ़े छह बजे समाप्त हुआ था। अन्त में सभा विसर्जित हुई थी।

इसके पश्चात् ता० ३ जून सन् १८८२, शनिवार के दिन आर्यसमाज की सभा 'गइटी थिएटर' में सायंकाल साढ़े चार बजे हुई थी। इस अवसर पर स्वामीजी ने **"अहिंसादि देशोन्नति"** विषय पर

१. यहां 'होटलपन्थी' शब्द का अभिप्राय ज्ञातव्य है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पहले भाषण के पूरक रूप में अत्यन्त ज्ञानवर्धक भाषण किया था। इसका सार उपर्युक्त भाषण से बहुत कुछ मिलता हुआ होने के कारण उसका वृत्तान्त देने की आवश्यकता नहीं है। इसीलिये वह वृत्तान्त नहीं दिया गया। इस दिन बहुत अधिक वर्षा होने पर भी सभा में उपस्थिति बहुत अच्छी थी। सेठ लक्ष्मीदास खीमजी तथा मथुरादास लवजी इत्यादि बहुत विचारवान् गृहस्थ कष्ट उठाकर बीच बरसात में पधारे थे। यह भाषण सायंकाल साढ़े छह बजे पूर्ण हुआ था। तत्पश्चात् यद्यपि मकान के स्वामी पारसी गृहस्थ थे[1] तथापि अपना यह उत्तम मकान भक्ति पूर्वक लोगों के लाभार्थ निःशुल्क उपयोगार्थ दे दिया था। इसके उपलक्ष्य में उनका महान् उपकार मानकर सभा तुरन्त विसर्जित की गई थी।

आषाढ़ शुक्ल पक्ष ३, रविवार, संवत् १९३८। ता० १८ जून, सन् १८८२ ई०[2]

(पहले मुंशी समर्थदान के व्याख्यान का उल्लेख है, जो **ज्येष्ठ कृष्ण ३ रविवार सं० १९३८, ता० ४ जून १८८२** को हुआ था। हमने उसे छोड़ दिया है। सम्पा०)

इसके अनन्तर पुनः आर्यसमाज की सभा 'फरामजी कावशजी इन्स्टीटयूट' में **कृष्ण पक्ष ११, रविवार संवत् १९३८, ता० ११ जून सन् १८८२** के दिन सायंकाल साढ़े पांच बजे हुई थी। गायक के स्तुतिगायन करने के पश्चात् समाचार पत्र में दी गयी सूचना के अनुसार **श्रीमत् पंडित दयानन्द सरस्वती स्वामीजी** ने **"मूर्त्ति, मन्त्र, देव, ऋषि, पितृ, उपासना आदि कर्तव्याकर्तव्य"** विषय पर अत्यन्त सरसमय व्याख्यान किया था।

प्रथम स्वामी जी ने **मूर्त्तिपूजा** को वेदविरुद्ध बताते हुए कहा कि यह जैनों से आई है। इससे कोई लाभ नहीं है। मूर्त्तिपूजा की निस्सारता वेदादि आर्ष ग्रन्थों के द्वारा स्वामीजी ने सिद्ध की थी। मूर्त्तिपूजा बच्चों के खेल सदृश है। इससे ईश्वरादि के सम्बन्ध में किसी प्रकार का कल्याणकारी ज्ञान कुछ भी नहीं होता। परन्तु उसके मोह में पड़कर इस विश्वास से कि उससे कल्याण होगा, धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चार पदार्थों की सिद्धि के लिए जो ज्ञान, पठन-पाठनादि के द्वारा सम्पादन करना चाहिए वह नहीं किया जाता। **आर्य लोगों में जो राम कृष्ण आदि समर्थ महापुरुष हो गये हैं, उनके गुण, आचरण तथा पराक्रम को स्मरण करके अपने आचरण में लाना चाहिये।** परन्तु यह न करके उन्हें ईश्वर का अवतार मानकर उनकी मूर्त्ति बना बनवाकर पूजते पुजाते हैं। उनके नाम पर बड़े-बड़े आचार्य बनकर देश के अज्ञानी भोले लोगों को धर्म के बहाने फंसाते हैं। कुछ दूसरे

---

१. इन गृहस्थ के नाम का उल्लेख आवश्यक था।

२. यहां जिस तिथि तारीख का निर्देश है वह ज्येष्ठ कृष्णा ३, ४ जून की दृष्टि से नहीं है। अपितु अगली ज्येष्ठ कृष्णा ११; ता० ११ जून की सभा की कार्यवाही की दृष्टि से दी गई है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

लोग साधु सन्त का स्वांग करके राम कृष्णादि महात्मा पुरुषों की मूर्त्तियां बनाकर उन्हें रास्ते की धूल मिट्टी खाते हुए ठण्डी गर्मी में बैठाकर, उनके नाम से भीख मांगकर अपना पापी पेट भरते हैं तथा राम, कृष्णादि महात्माओं तथा चक्रवर्ती राजाओं को संसार में भिखारी सिद्ध करते हैं। यदि इस समय उनका राज्य होता तो ऐसे ढोंगियों की दुर्दशा होती इस बात की कल्पना ज्ञानीजन स्वयं कर सकते हैं परमेश्वर सर्वव्यापक है अपनी अनन्त सम्पदाओं से सभी पूर्ति करता है। राम कृष्णादि महापुरुष अपने सद्गुण तथा पराक्रम से चक्रवर्ती राजा बने। इनकी मूर्त्ति बनाकर 'बालाजी तथा ठाकुर जी को आज भोग नहीं है' इस प्रकार कह कर अपने पेट के लिये भीख मांगना, हरामखोरी करना, अन्य सद्गृहस्थों को भीख दिलाना क्या लज्जाजनक नहीं है? क्या यह विचारवान् देशी-परदेशी लोगों के लिये उपहास्य तथा तिरस्करणीय नहीं है? जो व्यक्ति अपने जन्मदाता तथा पोषणकर्त्ता को भूखों मरते भिखारी की भांति प्रकट करते हैं क्या वे मनुष्य संज्ञा के अधिकारी हैं? जिस परमेश्वर ने अपनी महान् अद्भुत शक्ति से सूर्य चन्द्रादि अनेक लोकों का निर्माण किया है उसकी कल्पना पाषाणादि मनुष्यकृत मूर्त्ति में करना क्या बुद्धिमान् का काम है? और क्या इससे ईश्वर-भक्ति अथवा ईश्वरोपासना होती है? इत्यादि मूर्ति पूजा के विषय में और बहुत कुछ वर्णन करके स्वामी जी मन्त्र विषय पर आये थे।

स्वामी जी ने मन्त्र का अर्थ बताते हुए कहा था कि मन्त्र अर्थात सद्विचार दर्शक संक्षिप्त वचन,। इसी के आधार पर राजा के प्रमुख पदाधिकारियों को मन्त्री संज्ञा प्राप्त हुई थी। मन्त्री अर्थात् सद्विचार दर्शक व्यक्ति मन्त्र तथा मन्त्री का यही मूल अर्थ है। इसे स्वार्थी लोगों ने मोहन, मारण, उच्चाटन की सिद्धि से जोड़कर कितने ही, स्वार्थसाधक वाक्य रचकर, उन्हें मन्त्र नाम देकर उनके द्वारा ये लोग ठगाई का व्यापार चला रहे हैं पर उनसे यह कोई नहीं पूछता कि तुम्हारे पास मारण मन्त्र है, जीवन मन्त्र क्यों नहीं? क्या ईश्वर अथवा तुम्हारा अन्य देवता तुम्हारे मन्त्र से दूसरों का घात करने की शक्ति तो रखता है, पर इसी प्रकार किसी को जीवित करने की शक्ति क्या उसमें नहीं है? क्या ये देवता हत्यारे हैं? तथा तुम्हारी आज्ञा में रहकर ऐसे ऐसे ही काम करते हैं? क्या उनमें तुम्हारी जैसी बुद्धि नहीं है कि जिस से वे तुम्हारे इस प्रकार का दुष्ट दासत्व करते हैं? लोगों को यह विचार करना चाहिये कि ईश्वर-ज्ञान-सम्बन्ध में क्या ऐसी बातें उचित हैं और वे शोभा देती हैं? और यदि ऐसा हो तो ऐसे लोग इस देश को कभी भी परतन्त्र होने अथवा रहने देते? अतएव विद्वज्जनों को इसके सम्बन्ध में विचार करना चाहिये तथा मन्त्र सिद्धि सम्बन्धी इस प्रकार की गप्पाष्टक कथी नहीं माननी चाहिये। परन्तु चार वेदों के मन्त्र जो सद्विचार तथा सद्विद्या से भरे हुए हैं, उनका मनन करना चाहिये। इनमें से जो ज्ञान प्राप्त हो उसके अनुसार प्रत्येक को आचरण करना चाहिए। यही मन्त्र सिद्धि है। इसके अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार की मन्त्र सिद्धि इस संसार में नहीं है। यह बात निश्चय पूर्वक जान लेनी चाहिए। इस प्रकार मन्त्र के विषय में व्याख्यान करने के पश्चात् —

देव, ऋषि, पितृ तथा उपासना आदि के विषय में, इन शब्दों के वास्तविक अर्थ करके,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विस्तार पूर्वक समझाया था। इसका विस्तार पूर्वक वर्णन इस विवरण में नहीं किया जा सकता। परन्तु उनके द्वारा की गई इन शब्दों की व्याख्या इस स्थान पर संक्षेप में दे रहें हैं जिस से बुद्धिमान् जन सारांश समझ लेंगे। देव का अर्थ है—दिव्य गुणवाला अपना कल्याण करनेवाला। ऋषि अर्थात् पठन-पाठन क्रिया चलाकर ग्रन्थों की रचनाकर विद्या का प्रकाश करनेवाला। पितृ का अर्थ है—माता, पिता, आचार्य, अतिथि ये चार प्रत्यक्ष देवता तथा अन्य बड़े लोग, महान् विद्वान्, वृद्ध पुरुष जो जीवित हैं, उन्हें पितृ समझना चाहिये। इनकी जीवित अवस्था में श्राद्ध के द्वारा तृप्ति करनी चाहिये अन्य की नहीं। मृत्यु के उपरान्त किसी के द्वारा श्राद्ध करने से उनकी तृप्ति नहीं हो सकती। मृत्यु के पश्चात् उनके निमित्त ढोंग करना बिल्कुल असत्य तथा धर्मशास्त्र के विरुद्ध है। इस प्रकार स्वामीजी ने अत्यन्त रसमय व्याख्यान किया। तत्पश्चात् साढ़े सात बजे सभा विसर्जित हुई थी।

इसके अनन्तर आर्यसमाज की सभा ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष १३, मंगलवार ता० १३ जून के दिन 'फरामजी कावशजी इन्स्टीट्यूट' में सायंकाल साढ़े पांच बजे हुई थी। इस दिन भी पिछलें विषय पर शेष रहा हुआ विशेष व्याख्यान किया था। अन्त में साढ़े सात बजे सभा विसर्जित हुई थी।

तत्पश्चात् पुनः तीसरी बार आर्यसमाज की सभा 'फरामजी कावशजी इन्स्टीट्यूट' में आषाढ़ शुक्ल २, शनिवार, ता० १७ जून, सायंकाल साढ़े पांच बजे हुई थी। इस दिन स्वामी जी ने "योग विद्या" विषय पर अन्तिम व्याख्यान किया था। इसका सारांश निम्नलिखित है—

योग का अर्थ है चित्तवृत्ति का निरोध। बुरा काम करनेवाली रजो [गुण वा] तमो गुणवाली वृत्ति को रोककर चित्तवृत्ति को शुद्ध सत्त्व गुणवाली वृत्ति में प्रेरित करने को योग कहते है। योग आत्मा के साथ तथा आत्मा परमेश्वर के साथ सम्बन्ध रखता है। वियोग पूर्वक योग होता है। स्वयंभू सर्वव्यापक है। उसे योग और वियोग कुछ नहीं होता। मन, इन्द्रिय तथा आत्मा का विचार जो मनुष्य नहीं करता वह अयोगी रहता है। उसे अन्तर का कोई ज्ञान नहीं होता साथ ही इन्द्रिय के साथ मन और मन के साथ आत्मा बहिर्मुख हो जाती है, जैसे नशे में। ध्यान से प्रत्येक पदार्थ को समझता है तथा अपने स्वरूप को ठीक-ठीक पहचानता है। आवृत्तचक्षु होकर अर्थात् बाह्य इन्द्रियों को अन्दर खींच मनन करे, उसको योग का ज्ञान होता है। तथा जिस पदार्थ (कारण) से जगत् बना है उसके साथ आत्मा का योग होता है और उसके साथ सर्व कार्य रूप जगत् का भी ज्ञान होता है। कोई इस प्रकार की शंका करे कि मन, इन्द्रिय तथा आत्मा को रोककर एकान्त में बैठा रहे, तो इससे मनुष्य मूढ़ बन जायगा, तो यह शंका असत्य है। किसी वस्तु को आप एक स्थान से रोकेंगे तो वह जल की भांति दूसरे स्थान से फैलेगी। इसी प्रकार आत्मा के विषय में समझना चाहिए। स्थूल जगत् में से मन-वृत्ति को हटाएंगे तो मनवृत्ति दूसरे स्थान पर लग जायगी और भीतर का ज्ञान होगा। मनुष्य रात दिन कामकाज करे, परन्तु निद्रा न ले तो इससे उसके शरीर और मन का कितना बिगाड़ होता है। इसी पर से विचार करना चाहिए कि एकान्त में बैठने से कितना लाभ होता है। कोई वस्तु यदि हम भूल गये हों तो याद करने के लिये मनवृत्ति को स्थिर करना पड़ता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

'भीतर के पदार्थ बहुत महान् तथा गुह्य हैं' इस स्थूल जगत् में जो गुण तथा चमत्कार देखने में आते हैं उनसे करोड़ों गुने अधिक गुण तथा चमत्कार भीतर विद्यमान हैं। बाहर के चमत्कार इन्द्रियों से ग्रहण कर सकते हैं। परन्तु मनुष्य स्थिर होकर शोध (खोज) करेगा तो उससे बहुत अधिक चमत्कार भीतर के उसे दिखाई पड़ेंगे। इस प्रकार की भीतरी चमत्कृतियों का कारण यह है कि योग में विभु पदार्थों के साथ आत्मा का संयोग होने से उसे दुर्लभ्य ज्ञान होता है। दृश्य विषयों से मन को हटाने से मन अदृश्य स्वरूप को विषय बनाता है। जिसने कभी विचार नहीं किया है, उसे मन, आत्मा तथा भीतर का कुछ आभास ही नहीं है। जिस समय आत्मा घबराहट में होती है उस समय कोई भी सोचने का काम मनुष्य से नहीं होता, मनुष्य के समस्त बाह्य व्यवहार भीतरी व्यवस्था के कारण हैं। ध्यान में विचार करने से मनुष्य की वृत्ति परमेश्वर के साथ एकरूप हो जाती है। तब इस प्रकार का ध्यानी पुरुष बाह्य वृत्ति में कैसे रहेगा? ऐसा पुरुष बाह्य व्यवहार तथा योग इन दोनों में ही शुद्ध रहेगा। मनुष्य पूरे दिन [ईश्वर का नाम] रटता रहे और सायंकाल दो घड़ी भी समाधि (सन्ध्योपासना) न करे तो उसका बल क्षीण होगा। जो व्यवहार के साथ ही योग आरंभ करेगा, उसकी शक्ति बहुत बढ़ेगी।

इस संसार में पांच प्रकार की वृत्ति चल रही है—(१) **प्रमाण** जिसमें प्रत्यक्ष, अनुमान तथा शब्द। (२) **विपर्यय ज्ञान** अर्थात् मिथ्या ज्ञान (३)**विकल्प वृत्ति** अर्थात् विद्या सत्संग के विना जहां शब्द सुने वैसा ज्ञान। जैसे कि एक देश ऐसा देखा कि जहां मनुष्य शरीर से चलता है और पैर से खाता है। (४) **निद्रा** की वृत्ति (५) **स्मृति** अर्थात् अनुभव किये हुए विषय का स्मरण करना। रजो [गुण] तमो गुणवाली वृत्ति क्लेशयुक्त तथा सात्त्विक गुणवाली वृत्ति क्लेश रहित है। संसार की इन पांच वृत्तियों को रोकने के दो उपाय हैं—(१) **योगाभ्यास** तथा (२) **वैराग्य**। **अभ्यास** अर्थात् ऐसा प्रयत्न कि जिससे मन, इन्द्रिय तथा आत्मा स्थिर हों। मन तथा आत्मा से पहचाने जानेवाले पदार्थों को जानने का अभ्यास नित्य (प्रतिदिन) तथा बहुत लम्बे समय तक [करना] चाहिए। मन को वश में करना समस्त संसार को वश में करने के समान है। **मन को वश में करने का अर्थ है अभ्यास करने योग्य विषय से उसे बाहर न जाने देना तथा समस्त बाह्य व्यवहार स्थिर [होकर] करना।**

योगाभ्यास के लिए हजारों उपाय कहे गये हैं। उनमें प्राणापान अथवा श्वासोच्छ्वास लेना श्रेष्ठ है। श्वासोच्छ्वास (अन्दर प्राण खींचना **श्वास** है तथा बाहर निकालना **प्रश्वास**) के लिए लोग कहते हैं कि [श्वासोच्छ्वास] बन्द करने से मृत्यु होती है तथा बिगाड़ उत्पन्न होता है। परन्तु अभ्यास से ऐसा नहीं होता। आत्मा को इस वायु का स्पर्श होने से (आत्माने वायुनी झपट् लावाथी) ठीक-ठीक ज्ञान नहीं होता अर्थात् वायु रोकने से आत्मा के ज्ञान की ज्योति ठीक-ठीक स्फुरित होती है। आजकल योगाभ्यास में बहुत विकृति आ गयी है। प्राण भिन्न प्रकार से रोकते हैं। योगी होने के लिए सकरे मुंह की वायु बन्द हुई गुफा में जाकर बैठना चाहिए, इस प्रकार का विचार लोगों में फैला हुआ है। परन्तु ऐसा करने से तो मनुष्य बिल्कुल रोगी हो जायगा। अतएव जिस स्थान पर बाहर तथा भीतर की वायु का संयोग हो ऐसे स्थान पर योगाभ्यास करना चाहिये। आजकल के प्रसिद्ध योगी मुख के मार्ग से पेट में कपड़ा उतार कर पुनः बाहर निकालते हैं। यह एक प्रकार का जुलाब है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शरीर की हड्डियां तक टूट जायं इस प्रकार के महा कष्टदायक आसन करते हैं। यह एक प्रकार की नट-क्रिया के अतिरिक्त कुछ नहीं है। आसन तो ऐसे होने चाहिये कि जिससे मन स्थिर होकर अपने आप में स्थित होवे। योग का तो आत्मा तथा मन के साथ सम्बन्ध होता है, परन्तु शरीर के साथ नहीं।

जो मनुष्य क्षिप्त विक्षिप्त तथा मूढ़ है, वह कभी योग नहीं कर सकता। योगी का सच्चा स्वरूप और लक्षण यह है कि वह प्रपंची नहीं होता। बुरे काम से उसकी आत्मा दूर रहती है। भीतर तथा बाहर से पवित्र रहता है। आहार शुद्ध रहता है, मद्य-मांस नहीं खाता। सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर-प्रणिधान—आत्मा को ईश्वर के अनुकूल करना, वि..ोकवृत्ति—शोकरहित बुद्धि तथा प्रत्याहार—इन्द्रियों का मन के साथ एकाकार होना, इन लक्षणों से रहित पुरुष में योग का लेश भी नहीं होगा। विशेष करके उनमें ये पांच लक्षण होने चाहिए—अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना) उपस्थ-इन्द्रिय-निग्रह (ब्रह्मचर्य) और अपरिग्रह। योग के आठ अंग अष्टांग कहलाते हैं। उनमें यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार ये पांच बाहर के अंग तथा धारणा ध्यान और समाधि ये तीन भीतर के अंग कहलाते हैं, जिन में आत्मा का परमात्मा से साथ संयोग होता है। योगी परमेश्वर से वियुक्त नहीं है। उसके साथ संयोग स्थापित करना योगी का मुख्य काम है।

योग में होनेवाले विघ्न—व्याधि, स्त्यान, चित्तमलिनता, संशय, प्रमाद, आलस्य, भ्रान्ति, अलब्ध-भूमिकत्वं (बीच में ही छोड़ देना)। और अन्वस्थितत्त्व हैं, इन विघ्नों से योग में सफलता नहीं मिलती। मन को शुद्ध करने के लिए चार प्रकार की भावना चाहिए—सुखीजन के साथ मित्रता दुःखी जन के साथ करुणा, पुण्यात्मा के साथ हर्ष, दुष्ट के साथ उपेक्षा (प्रीति अप्रीति कुछ नहीं)।

[इसके आगे मूल गुजराती में लिखी कायवाही में एक पृष्ठ खाली छोड़ा हुआ है प्रतीत होता है लेखक इस भाषण का शेष भाग भी लिखना चाहता था परन्तु किसी कारण वश नहीं लिख सका। इस से यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाषण भी अधूरा रह गया। सम्पा०]

परिशिष्ट

पूर्व मुद्रित आ० स० बम्बई की कार्यवाही के शेष भाग से विशिष्ट अंशों का संकलन

आर्यसमाज काकड़वाड़ी, बम्बई की साप्ताहिक अधिवेशनों की कार्यवाही का जो पुराना रजिस्टर उक्त समाज में सुरक्षित है और जिस के एक भाग का हिन्दी अनुवाद 'ऋषि दयानन्द के बम्बई-निवास-काल की सभाओं की कार्यवाही' के शीर्षक से हमने छापा है, उसका संक्षिप्त विवरण और उसकी महत्ता का परिचय हम पूर्व

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पृष्ठ ६१ पर दे चुके हैं। हमने उस कार्यवाही को सरसरी दृष्टि से पढ़ा है। उस में से किस अधिवेशन में किस का भाषण किस विषय पर हुआ इसका संकलन भी हमने अपने ज्ञान के लिये कर लिया है। उसमें से कतिपय अत्यन्त उपयोगी अंशों को हम नीचे उद्धृत करते हैं। इन से उस समय के आर्यसमाज के अधिवेशनों की सर्वतोमुखी गतिविधि तथा अतिशय उदार दृष्टि का परिज्ञान मिलता है। यहां हम तिथि तारीख के साथ केवल वक्ता का नाम और विषय का ही उल्लेख कर रहे हैं।

चैत्र कृष्ण पक्ष (उ० भा० वैशाख कृष्ण पक्ष) ४, रवि, सं० १९३४ (उ० भा० सं० १९३५) = २१ अप्रेल १८७८—श्रीकृष्ण शास्त्री गोडबोले—वैदिक ज्योतिष।

चैत्र कृष्ण पक्ष (उ० भा० वैशाख कृष्ण पक्ष) ११, रवि, सं० १९३४ (उ० भा० सं० १९३५) = २८ अप्रेल १८७८—राजे श्री शोपुर जी लीमजी भाई तारापारेवाला—पेगम्बर जरथोस्त।

वैशाख शुक्ल १०, रवि० सं० १९३४ (उ० भा० सं० १९३५) = १२ मई १८७८—राजे श्री सदल जी शोपुरजी—खेतीबाड़ी का लाभ।

वैशाख कृष्ण पक्ष (उ० भा० जेष्ठ कृष्ण पक्ष) ३, रवि, सं० १९३४ (उ० भा० सं० १९३५) = १९ मई १८७८—राजे श्री विष्णुभास्कर लेले—स्वदेशाभिमान।

माघ शुक्ल पक्ष १, रवि, सं० १९३७ = ३० जनवरी १८८१—काठियावाड़ के प्रख्यात रीसालदार नीरजा मुरादअलीबेग—भारत खण्ड के लोगों को द्वीपान्तर में जाकर बसने की आवश्यकता है।

फाल्गुन शुक्ल पक्ष ६, रवि, सं० १९३७ = ६ मार्च १८८१—थीयोसोफिकल सोसाइटी के प्रधान—कर्नल अल्काट साहब—उत्तर भारत में स्वयं प्रवास करके आया (अंग्रेजी में)।

फाल्गुन कृष्ण पक्ष (उ० भा० चैत्र कृष्ण पक्ष) १२, रवि, सं० १९३७ = २७ मार्च १८८१—प्रार्थना समाज के महोत्सव पर प्रार्थना समाज द्वारा आर्यसमाज को आमन्त्रण देने पर आर्यसमाजस्थ पुरुष उनके महोत्सव में सम्मिलित हुए।

वैशाख शुक्ल पक्ष ३, रवि, सं० १९३७ (उ० भा० सं० १९३८) = १ मई १८८१—प्रार्थना समाज के रा० रा० पाण्डुरंग सदाशिव केलकर—यज्ञ (पशुहिंसा के विरुद्ध)।

ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष २, रवि, सं० १९३७ (उ० भा० सं० १९३८) = २९ मई १८८१—राजे श्री अंकुश (?) रामचन्द्र गाडेकर—देशी कारीगरी।

आश्विन कृष्ण पक्ष (उ० भा० कार्त्तिक कृष्ण पक्ष) ९, रवि, सं० १९३७ (उ० भा० सं० १९३८) = १६ अक्टूबर १८८१—मुन्शी रोव हुसेन वलदेशेजर (?) चांदनरकर—हितोपदेश से।

कार्त्तिक कृष्ण पक्ष (उ० भा० मार्गशीर्ष कृष्ण पक्ष), रवि, सं० १९३८ = १३ नवम्बर १८८१—प्राणजीवनदास काहनदास—पं० बालाजी[1] कृत वेदोक्त संस्कारप्रकाश में से सामान्य-संस्कार और विवाह संस्कार।

---

१. इन का पूरा नाम 'बालाजी विट्ठल गांवस्कर' था।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष ५, रवि, सं० १९३८=२७ नवम्बर १८८१—प्राणजीवनदास काहनदास—पं० बाला जी कृत वेदोक्त संस्कार प्रकाश में से गर्भाधानसंस्कार और गृहस्थाश्रम।

३० दिसम्बर शुक्रवार १८८१—भावनगर के रिसालेदार मीरजा मुरादअलीबेग—हिन्दुस्थानी मां एक टुकु पण……।

मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष १५, रवि, सं० १९३९=२४ दिसम्बर १८८२—ईस्रायल गृहस्थ मी० सीमियन बेनजामी—नीति की उत्पत्ति।

मार्गशीर्ष कृष्ण पक्ष(उ० भा० पौष कृष्ण पक्ष) १३, रवि, संवत् १९३९=७ जनवरी १८८३—ईस्रायल गृहस्थ सीमियन बेनजामी—अहिंसा की ओर मेरा आगमन पारसी गृहस्थ, दादा भाई—मांस नहीं खाना चाहिये।

पौष शुक्ल पक्ष १३, रवि, सं० १९३९=२१ जनवरी १८८३—ईस्रायल गृहस्थ सीमियन बेनजामी—'मनुष्य में आत्मा है और गवादि पशु में आत्मा नहीं है' इस बाइबिल के वाक्य का खण्डन।

पौष कृष्ण पक्ष (उ० भा० माघ कृष्णपक्ष) १२, रवि, सं० १९३९=४ फर्वरी १८८३—ईस्रायल गृहस्थ सीमियन बेनजामी प्राणियों में उत्पन्न मति और तर्क शक्ति।

माघ शुक्ल पक्ष १२ रवि, सं० १९३९ =१८ फर्वरी १८८३—ईस्रायल गृहस्थ सीमियन बेनजामी—सरकारी मराठी पाठशाला में लगी हुई पहली से छठी पुस्तकों में जो कवितायें लिखी हैं उन पर टीका इन में छपी कवितायें बच्चों को नहीं पढ़ानी चाहिये। उनमें विद्या और नीति सिखाने वाली कवितायें होनी चाहिये। विषयानन्द की अनीति के माग पर चलाने वाली कवितायें नहीं होनी चाहियें आदि विस्तार से।

फाल्गुन शुक्ल पक्ष ३, रवि, सं० १९३९=११ मार्च १८८३—आर्य ज्ञानवर्धक सभा के आमन्त्रण पर उस सभा की… …महाजनवाड़ी में आर्यसमाज लगी।……आर्यज्ञानवर्धक सभा के निश्चयानुसार पहले वक्ताओं को इनाम मिलने के पीछे……। शास्त्री रणछोड़ जी ओधनजी को पूर्वनिश्चयानुसार पातञ्जल महाभाष्य समाज की तरफ से भेंट किया गया……।

चैत्र कृष्ण पक्ष (उ० भा० वैशाख कृष्ण पक्ष) ७ रवि, सं० १९३९ (उ० भा० सं० १९४०)=६ मई १८८३—ईस्रायल गृहस्थ सीमियन बेनजामी—योगसाधन।

आषाढ़ शुक्ल पक्ष ११, रवि, सं० १९३९ (उ० भा० सं० १९४०)=१५ जुलाई १८८३—पं० अचलेश्वर गणेश—षट्शास्त्र मण्डन और आधुनिक शास्त्र खण्डन (ये काशी के प्रसिद्ध पं० बालशास्त्री के शिष्य हैं)।

विशेष—इस सम्पूर्ण कार्यवाही में ऋषि दयानन्द के बम्बई-निवास-काल को छोड़कर प्रायः सभी अधिवेशनों में पर्याय से—एक बार व्याख्यान और दूसरी बार ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के प्रकरणों का वाचन और उन का स्पष्टीकरण होता था।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ऋषि दयानन्द के द्वारा संगृहीत हस्तलिखित तथा मुद्रित पुस्तक

जो उनके निधन के समय विद्यमान थीं

ऋषि दयानन्द के निर्वाण के समय उनके पास किन-किन पुस्तकों का संग्रह था और वह कहां-कहां रक्खी हुई थीं, इसका एक लेखा श्रीमती परोपकारिणी सभा के तात्कालिक उपमन्त्री श्री पं० मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्या ने तैयार कराकर सन् १८८५ के सभा के अधिवेशन में आवेदन-पत्र के रूप में उपस्थित किया था। वह सं० १९४२ सन् १८८५ में वैदिक यन्त्रालय में छपकर प्रकाशित हुआ था। उसकी हमने १९४४ में प्रतिलिपि की थी। उसके अनुसार हम ऋषि दयानन्द के द्वारा छोड़ी गई पुस्तकों की सूची नीचे दे रहे हैं।

आवेदन पत्र के मुख्य पृष्ठ पर निम्न लेख है--

वार्षिक आवेदन

पण्डित श्री मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्या
उपमन्त्री श्रीमती परोपकारिणी सभा निवेदित
श्रीमद्दयानन्दस्वामीकृत स्वीकारपत्र संबन्धिनी
श्रीमती परोपकारिणी सभा कार्यालय उदयपुर
ता० ६ दिसम्बर सन् १८८५ ई०

इस आवेदन पत्र के पृष्ठ २ पर निम्न लेख छपा है—

(१) पुस्तकों की एक फैरिस्त इसके साथ पेश करता हूं कि जिस पर (क) चिह्न है, यह सब पुस्तकें मेरे पास उदयपुर में धरी हैं और इसी के साथ दूसरी पुस्तकों की एक फैरिस्त(ख)चिह्न की जो मुंशी समर्थदान जी ने मेरे पास भेजी है, पेश करता हूं, उसमें लिखी सब पुस्तकें वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में हैं।

(क) पुस्तकों की फैरिस्त जो उदयपुर में उपस्थित हैं*

सं०	नाम वेष्टन	पुस्तक का नाम	अजमेर के संभाले के अनुसार	उदयपुर के संभाले के अनुसार	वृत्तान्त
१	वेष्टन १	ऋग्वेद- ऋग्वेद संहिता मूल जिल्द१ छपी.	१		प्रयाग भेजे गये

* यह फैरिस्त आवेदन पत्र के पृष्ठ ७–१६ तक छपी है। ऐसी ही एक पुस्तक सूची परोपकारिणी सभा की सन् १८९१-९२-९३ के सम्मिलित 'वार्षिक वृत्तान्त' के अन्त में 'नकशा नंबर' १७ के अन्तर्गत 'पुस्तकालय' शीर्षक के नीचे पृष्ठ ५-१२ तक छपी है इस सूची में उत्तरकाल में संगृहीत पुस्तकों का भी निर्देश है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सं०	नाम वेष्टन	पुस्तक का नाम	अजमेर के संभाले के अनुसार	उदयपुर के संभाले के अनुसार	वृत्तान्त
२	विषयक पुस्तकानि	ऋग्वेद संहिता पदपाठ जिल्द १ छपी	१		प्रयाग भेजे गये
३		ऋग्वेद सभाष्य जिल्द २ छपी भाग ३ और ४ था २	२		तथा "
४		वेदार्थयत्न पुस्तक १ छपी अंक १✡	१		"
५	वेष्टन २ यजुर्वेद–	संहिता मूल १ छपी	१		"
६	विषयक पुस्तकानि	यजुर्वेद संहिता पदपाठ पुस्तक १ लिखी	१		"
७		यजुर्वेद संहिता सभाष्य पुस्तक १ छपी	१		"
८		यजुर्वेद अनुक्रमणिका पुस्तक १ लिखी	१		"
९	वेष्टन ३ सामवेद–	सामवेद संहिता मूल पुस्तक	१		"
	विषयक पुस्तकानि	१ छपी			
१०		" " " " लिखी हुई	१		"
११		" " " पदपाठ लिखित	१		"
१२	वेष्टन ४ अथर्ववेद–	अथर्ववेद संहिता मूल पुस्तक	२		"
	विषयक पुस्तकानि	२ छपी			
१३		† " " " पदपाठ आठवें काण्ड तक लिखित	१		
१४		† अथर्ववेद की अनुक्रमणिका पुस्तक १ लिखित		१	"
१५		† अथर्ववेद संहिता मूल पुस्तक १ प्राचीन लिखित सं० १९४१ की पण्डित मोहनलाल जी विष्णुलाल जी पण्ड्या को भेंट करी हुई		१	"
१६		† अथर्ववेद संहिता मूल पुस्तक १ प्राचीन १३ काण्ड			

✡ अगली दूसरी सूची में '७० अंक' लिखे हैं।

† राथ और ह्विटनी ने शौनकीय अथर्वसंहिता का सम्पादन सन् १८५६ (सं० १९१३) में किया था। ऋ० द० ने अपने ग्रन्थों में अथर्ववेद के पाठ इसी संस्करण के अनुसार दिये हैं। अथर्ववेद का भाष्य करने के लिये उन्होंने सन् १८८२ के उत्तरार्ध में बम्बई आर्यसमाज के मन्त्री श्री मेघकलाल कृष्णदास को अथर्ववेद की टीका, ऋषि, छन्द और मूल ग्रन्थ की हस्तलिखित पुस्तक ढूंढने के लिये लिखा था। इसका निर्देश मेघकलाल कृष्णदास

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सं० नाम वेष्टन	पुस्तक का नाम	अजमेर के संभाले के अनुसार	उदयपुर के संभाले के क्षनुसार	वृत्तान्त
	से १७ काण्ड तक सं० १८२२ की लिखित पण्डित मोहनलाल जी विष्णुलाल जी पण्ड्या को भेंट करी हुई		१	,,
१७	† अथर्ववेद संहिता मूल पुस्तक १ प्रथम काण्ड से ६ काण्ड के २७ सूक्त के पहिले मन्त्र तक पण्डित मोहनलाल जी विष्णुलाल जी पण्ड्या को भेंट करी हुई		१	,,
१८	† अथर्ववेद संहिता मूल ११ वें काण्ड से १९ तक प्राचीन पण्डित मोहनलाल जी विष्णु जी पण्ड्या को भेंट करी हुई		१	,,
१९	† अथर्ववेद संहिता मूल पदपाठ १ दूसरे काण्ड के पहिले सूक्त के चौथे मन्त्र से चौथे काण्ड के पन्दरहवें सूक्त के दूसरे मन्त्र तक प्राचीन पण्डित मोहनलाल जी विष्णुलाल जी पण्ड्या को भेंट करी हुई।		१	,,
२० वेष्टन ५ ब्राह्मण–	शतपथ ब्राह्मण १ छपी		१	प्रयाग भेजे
२१ पुस्तकानि	ऐतरेय ब्राह्मण १ छपी		१	,,
२२	आर्षेय ब्राह्मण १ छपी		१	,,
२३	तथा तथा १ लिखित		१	,,
२४	संहितोपनिषद् ब्राह्मण १ छपी		१	
२५	वंशब्राह्मण १ छपी		१	,,

के २० जनवरी सन् १८८३ के पत्र में मिलता है। (देखो श्री म० मुंशीराम सं० पत्रव्यव० पृष्ठ २६९, २७०)। इसके लिये सेवकलाल कृष्णदास ने प्रयत्न भी किया था। अतः सम्भव है, अथर्ववेद के उक्त हस्तलिखित ग्रन्थ सेवकलाल कृष्णदास के सहयोग से श्री स्वामी जी ने प्राप्त किये होंगे जैनियों के भी बहुत से हस्तलिखित ग्रन्थ सेवकलाल कृष्णदास ने ही संग्रह करके ऋ० द० को भेजे थे। अथर्ववेद के इन हस्तलेखों में से एक भी हस्तलेख श्रीमती परोपकारिणी सभा के संग्रह में विद्यमान नहीं है। आवेदन पत्र में इन हस्तलेखों के विषय में, "पण्डित मोहनलाल जी विष्णुलाल जी पण्ड्या को भेंट करी हुई" लेख कुछ सन्देह प्रकट करता है कि कहीं पण्ड्या जी ने इन्हें दबाने के लिए ही ये शब्द नहीं लिख दिए? सेवकलाल कृष्णदास ने राथ ह्विटनी द्वारा प्रकाशित अथर्ववेद की प्रतिलिपि सन् १८८४ में लीथो प्रेस में छपवाई थी।

† यह टिप्पणी पूर्व पृष्ठ पर देखें।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सं०	नाम वेष्टन	पुस्तक का नाम	अजमेर के संभाले के अनुसार	उदयपुर के संभाले के अनुसार	वृत्तान्त
२६		षड्विंशब्राह्मण १ छपी	१		
२७		कौषीतकी ब्राह्मण १ छपी	१		
२८		गोपथ ब्राह्मण १ छपी	१		
२९	वेष्टन ६ वेदाङ्ग पुस्तकानि	वेदाङ्ग की पुस्तक १ प्राचीन लिखित सं० १५६२ जिस में शिक्षादि	१		
३०		अष्टाध्यायी की पुस्तक १ लिखित सं १६६२	१		
३१		निरुक्त पुस्तक १ प्राचीन लिखित सं १६६२	१		
३२		तथा एक तथा सं० १९९	१		
३३		तथा तथा १ सभाष्य १ छपी कलकत्ते को अंक ६	१		
३४		निघण्टु मूल पुस्तक १ प्राचीन लिखित सं० १८५३	१		
३५		निघण्टु और निरुक्त की पुस्तक १ छपी	१		प्रयाग भेजे
३६		पाणिनीय शिक्षा सभाष्य १ छपी	१		
३७		अष्टाध्यायी मूल १ छपी	१		
३८		तथा तथा १ काशिका सहित छपी २	१		
३९		तथा तथा १ छपी	१		
४०		धातुपाठ मूल १ लिखित सं० १९२७	१		
४१		उणादिपाठ १ लिखित	१		
४२		तथा तथा सवृत्ति १ छपी	१		
४३		पाणिनीय लिङ्गानुशासन १ छपी	१		
४४		वार्तिकपाठ सभाष्य १ स्वामी जी का बड़े भाष्य से छंटाया लिखी	१		
४५		पिङ्गलसूत्र सभाष्य १ छपी	१		
४६		परिभाषेन्दुशेखर १ छपी	१		
४७		महाभाष्य कैयटविवरण सहित भाग ५ छपी	१		प्रयाग भेजो
४८		चरणव्यूह १ लिखी	१		
४९		कात्यायन प्रातिशाख्य १ छपी	१		

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सं०	नाम वेष्टन	पुस्तक का नाम	अजमेर के संभाले के अनुसार	उदयपुर के संभाले के अनुसार	वृत्तान्त
५०		सोपसर्ग धात्वादर्श पुस्तक १ छपी	१		
५१	वेष्टन ७ षट्शास्त्र–न्यायदर्शन सभाष्य १ छपी		१		
५२	पुस्तकानि	वैशेषिक दर्शन १ छपी	१		
५३		वैशेषिक प्रशस्तपादभाष्य १ लिखी	१		
५४		पूर्वमीमांसा दर्शन १ छपी	१		
५५		उत्तरमीमांसा १ छपी	१		
५६		तथा तथा अंक १ छपी	१		
५७		सांख्यदर्शन १ छपी सूत्र	१		
५८		वेदान्त सभाष्य १ छपी	१		
५९		योग पातञ्जल सभाष्य १ छपी	१		
६०		वेदान्त तत्त्वसार रामानुज कृत १ लिखित	१		
६१		सर्वदर्शन संग्रह १ छपी	१		
६२		षड्दर्शन चिन्तामणिका अंक	१		
६३	वेष्टन ८ उपनिषद्–ईशावास्यादिक उपनिषद्				
	पुस्तकानि	सभाष्य १ छपी	१		
६४		मैत्र्युपनिषद् १ छपी	१		
६५		छान्दोग्य उपनिषद् १ छपी	१		प्रयाग भेजे
६६		मन्त्रोपनिषद् पाठ मूल १ लिखित	१		
६७		तैत्तिरीय आरण्यक १ छपी	१		प्रयाग भेजे
६८	वेष्टन ९ धर्मशास्त्र–मनुस्मृति भाषाटीका सहित १ छपी		१		
६९	पुस्तकानि	तथा मूल १ छपी	१		
७०		शुक्रनीति १ छपी[1]	१		
७१		संन्यास पद्धति १ लिखित	१		
७२		संस्कारविधि[2] गुजराती टीका सहित १ छपी	१		प्रयाग भेजे

१. क्या यह पं० जीवाराम विद्यासागर (कलकत्ता) द्वारा प्रकाशित है वा अन्य ?

२. यह संम्भवतः पं० बाला जी विठल गांवस्कर द्वारा लिखित 'वेदोक्त संस्कार प्रकाश' की पुस्तक होगी। वेदोक्त संस्कार का ऋ० द० कृत संस्कार विधि (संशोधित सं०) के साथ गहरा संबन्ध है। परोपकारिणी सभा के सन् १८९१-९२-९३ के सम्मिलित वार्षिक वृत्तान्त में नक्शा नं० १६ के अन्तर्गत 'पुस्तकालय' शीर्षक के नीचे छपी पुस्तकों में पृष्ठ ८ पर 'वेदोक्त धर्म प्रकाश गुजराती में' निर्दिष्ट है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सं०	नाम वेष्टन	पुस्तक का नाम	अजमेर के संभाले के अनुसार	उदयपुर के संभाले के अनुसार	वृत्तान्त
७३		मनुस्मृति के उपयोगी श्लोकों का संग्रह १ पुस्तक १ लिखी	१		
७४		विदुर प्रजागर के उपयोगी श्लोकों का संग्रह पुस्तक १ लिखी	१		
७५		अग्निहोत्र १ लिखी			
७६	वेष्टन १० कोश—	अमरकोश भाषाटीका सहित १ छपी	१		प्रयाग भेजो
७७	पुस्तकानि	नानार्थाभिधान कोश १	१		" "
७८	वेष्टन ११ वैद्यक—	अमृतसागर १ छपी	१		
७९	पुस्तकानि	वैद्यक कोश १ छपी	१		
८०		निघण्टुभाषा १ छपी			
		नाडीतत्त्व बोधिनी १ छपी	२		
८१		ओषधियों का यादीपत्र—स्वामी जी के लिखे हुए†	१		
८२	वेष्टन १२ कुरान—	कुरान अरबी भाषा का १ छपी	१		प्रयाग भेजी
८३	पुस्तकानि	तथा हिन्दीभाषा में अनुवाद स्वामी जी का बनाया हुआ लिखी*	१		प्रयाग भेजी
८४	वेष्टन १३ ईसाई—	बाईबल जिल्द ३	१		
८५	मतकी	भट्टमोक्षमूलर कृत अंग्रेजी में ऋग्वेदभाष्य	१		
८६		तथा तथा कृत व्याख्यान अंग्रेजी	१		
८७	वेष्टन १४ जैनीमत—	जिनपूजा संग्रह १ छपी	१		
८८	की पुस्तकें	रत्नसार भाग १ छपी	१		
८९		विवेकसार १ छपी	१		
९०		जैनप्रभाकर १ छपी	१		
९१		कल्पभाष्य १ छपी	१		
९२		तत्त्वविवेक १ छपी	१		

† सम्भव है ऋ० द० का लिखा हुआ ओषधियों का यह यादी-पत्र वही होगा, जो 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' में पूर्ण संख्या ८०१ (पृष्ठ ८०१-८०६) पर '३४ ओषधियों का खरड़ा' छापा है।

* इसके विषय में विशेष देखिए हमारा 'ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास' पृष्ठ १९२-१९४ तथा 'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन' पूर्ण संख्या २०७ का पत्र तथा पृष्ठ २६० की टिप्पणी २।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सं०	नाम वेष्टन	पुस्तक का नाम	अजमेर के संभाले के अनुसाध	उदयपुर के संभाले के अनुसार	वृतान्त
९३		श्राद्धदिन कृत्य १, छपी पार्श्वजिनवर महिमन स्तोत्र १	२		
९४		प्राकृत भाषा का संस्कृत शब्दों के साथ अनुवाद		१	
		अस्तव्यस्त स्वामी जी का बनाया, लिखित पुस्तक		१	
९५		जैन फुटकर श्लोकों का संग्रह स्वामी जी कृत लिखी		१	
९६	वेष्टन १५	पदार्थ–रामस्नेही मत गुटका १ लिखी	१		
९७		विद्यादि विषयक–चन्द्रालोक काव्य १ संस्कृत छपी	१		
९८		सर्वभाषा के पुस्तक–भोजप्रबन्ध १ छपी	१		
९९		पदार्थविद्या की पुस्तक हिन्दी १ छपी	१		
१००		भूविद्या की पुस्तक हिन्दी १ छपी	१		
१०१		प्रार्थनासमाज की प्रार्थनादि पुस्तक ३ छपी	१		
१०२		ब्राह्मसमाज की पुस्तक १ छपी		१	
१०३		दयानन्द दिग्विजयार्क अंक ३ छपी	१		
१०४		अहिंसाधर्मप्रकाश १ छपी*		१	
१०५		भाषाभास्कर १ हिन्दी छपी		१	
१०६		इतिहासतिमिरनाशक खण्ड ३ के ७ छपी		१	
१०७		नीलदेवी १ छपी		१	
१०८		कुटुम्बवत्सल १ छपी		१	
१०९		विजयनीविजयवैजयन्ती १ छपी		१	
११०		भारत जननी १ छपी		१	
१११		गोमहिमा १ छपी		१	
११२		दुःखिनी बाला १ छपी		१	
११३		स्वामी जी कृत ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका उर्दू अनुवाद†	१		
११४		वेदविरुद्धमतखण्डन		१	
११५		दयानन्द सरस्वती मुखचपेटका १ जैनियों की		१	

* यह 'वेदोक्त संस्कार प्रकाश' के लेखक पं० बाला जी विट्ठल गावस्कर कृत मराठी में छपा ग्रन्थ है।

† इसके विषय में विशेष देखिए "ऋ० द० के ग्रन्थों का इतिहास" पृष्ठ १००, १०१। तथा म० मुंशी राम जी सं० पत्र व्यवहार पृष्ठ ३०५।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सं०	नाम वेष्टन	पुस्तक का नाम	अजमेर के संभाले के अनुसार	उदयपुर के संभाले के अनुसार	वृत्तान्त
११६		थियोसोफिकल सोसाइटी के दोषों का स्वामी जी का उत्तर*			
११७		अंग्रेजी में आर्य प्रश्नोत्तर १ छपी		१	
११८	वेष्टन १६ दयानन्द स्वामी सरस्वती कृत सर्व-	चारों वेदों का अकारादि क्रम से सूची ❀ १ लिखी	१	१	
१२०	सूचीपत्र	ऋग्वेद सूचीपत्र १ लिखी	१		
१२१		अथर्ववेद के मन्त्रों का सूची १ लिखी	१		
१२२		उपनिषदों की सूची १ लिखी	१		
१२३		अकारादि क्रम से चार वेद और ब्राह्मणों की सूची ९ लिखी	१		
१२४		ऐतरेय ब्राह्मण की सूची १	१		
१२५		शतपथब्राह्मण की सूची १	१		
१२६		निरुक्त सूची	३		
१२७		निरुक्त और शतपथ अमूल (१) सूची	१		
१२८		निघण्टु सूची ३	३		
१२९		धातुपाठ सूची २ अकारादि क्रम से	२		
१३०		उणादि सूची २	२		
१३१		वार्तिक सूची ३	३		
		ऋग्वेद के विषयों की यादी के लिये सूची २	३	१	

* सम्भव है, यह उत्तर वही विशिष्ट विज्ञापन हो जो ऋषि दयानन्द ने "थियोसोफिस्टों की गोलमाल पोलपाल" नाम से बम्बई में छपवाया था। वह 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' में पूर्ण संख्या ५१७, पृष्ठ ५४८-५५४ पर छपा है।

❀ यह वही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है, जिस में ऋषि दयानन्द ने वेदभाष्य का आरम्भ करने से पूर्व चारों वेदों का पूर्ण मन्थन करके सूक्त-अध्याय-मन्त्र के अनुसार चारों वेदों के विषयों का संकलन किया है। ऋषि दयानन्द द्वारा रचे गए चतुर्विध भाष्य में से यह प्रथम कोटि का अति संक्षिप्त भाष्य चारों वेदों का उपलब्ध है। श्रीमती परोपकारिणी सभा की कार्यकारिणी ने २३-३-५७ की मीटिङ्ग में इतने महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का कुछ भी मूल्याङ्कन न करके इसे 'न छापने' का अविवेकपूर्ण निश्चय किया था, परन्तु मेरे तथा अन्य कई व्यक्तियों द्वारा इसे प्रकाशित करने का अन्दोलन करने पर सन् १९७१ में इसे छाप दिया। परन्तु इस का मुद्रण बहुत अशुद्ध हुआ। हमने इसे पुनः हस्तलिखित प्रति से मिलान करके इसे १९७५ में 'दयानन्दीय-लघु-ग्रन्थ-संग्रह' में प्रकाशित किया है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सं०	नाम वेष्टन	पुस्तक का नाम	अजमेर के संभाले के अनुसार	उदयपुर के संभाले के अनुसार	वृत्तान्त
१३२		कुरान की सूची १		१	
१३३		बाइबल की सूची १		१	
१३४		जैनियों की सूची १		१	
१३५	वेष्टन १७ स्वामी	ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका			
१३६	जी कृत और	ऋग्वेदभाष्य ३ अंक १+४८+५०+५१ तक		१	
१३७	मुद्रित पुस्तकें	यजुर्वेदभाष्य पुस्तक ३ अंक १+४८+५०+५१ तक		१	
१३८		सत्यार्थप्रकाश पुराने छापे का			
१३९		वेदाङ्गप्रकाश व्यवहारभानु	१		
१४०		तथा सन्धिविषय	१		
१४१		तथा नामिक	१		
१४२		तथा कारकीय	१		
१४३		तथा सामासिक	१		
१४४		तथा स्त्रैणतद्धित १	१		
१४५		तथा अव्ययार्थ	१		
१४६		तथा आख्यातिक	१		
१४७		तथा सौवर	१		
१४८		तथा पारिभाषिक	१		
१४९		तथा गणपाठ	१		
१५०		सन्ध्योपासनादि[1]	१		
१५१		पञ्चमहायज्ञविधि	१		
१५२		वेदान्तिध्वान्तनिवारण[2]	१		
१५३		आर्योद्देश्यरत्नमाला	१	१	
		गोकरुणानिधि	१	१	
		भ्रमोच्छेदन	१	१	
		अनुभ्रमोच्छेदन	१	१	
		काशी शास्त्रार्थ	१	१	
		महेशचन्द्र न्यायरत्न के किये वेदभाष्य पर दोषों का उत्तर[2]	१	१	

१. यह सं० १९३१ की छपी पंचमहायज्ञविधि है।

२. अर्थात् 'भ्रान्तिनिवारण' नामक पुस्तक।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सं० नाम वेष्टन	पुस्तक का नाम	अजमेर के संभाले के अनुसार	उदयपुर के संभाले के अनुसार	वृत्तान्त
वेष्टन १८	श्री स्वामी जी कृत ऋग्वेद और यजुर्वेद भाष्य का अशुद्ध लेख[1] अर्थात् संस्कृत शोधकर भाषा बनाने का	१		प्रयाग भेजा
वेष्टन १९	श्री स्वामी जी कृत ऋग्वेद और यजुर्वेद भाष्य का शुद्ध[2] लेख भाषा सहित छापने योग्य	१		तथा
वेष्टन २० छोटा	श्री स्वामी जी कृत ऋग्वेदभाष्य भाषा सहित, इसकी शुद्ध प्रति लिखी जाकर वेष्टन संख्या १९ में रखनी चाहिये और इसी में संस्कारविधि के पत्रे हैं अर्थात् उनकी शुद्ध प्रति करके छपवानी होगी	१		तथा
वेष्टन २१	ऋग्वेद यजुर्वेद सौवर पारिभाषिक उणादि कुछेक अष्टाध्यायी की संख्या और संस्कारविधि के रद्दी कागज	१		तथा
वेष्टन २२	स्वामीजी कृत और मुद्रित विक्री पुस्तक की फैरिस्त	१		
वेष्टन २३	मूल्य सहित जुदी है जिसमें हिसाब की वही ४ और नोटबुक	२		
वेष्टन २४	गोरक्षार्थ हस्ताक्षरी पत्र विना छाँटे बहुत गड़वड़[3]	१		

ह० मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या
उपमन्त्री

(ख) श्री स्वामी जी महाराज की पुस्तकें जो वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में हैं जिसकी फैरिस्त[4]

संख्या	नाम पुस्तक	संख्या पुस्तक	संख्या	नाम पुस्तक	संख्या पुस्तक
१	महाभारत सम्पूर्ण जिल्द ४ में	१	३	सामवेद संहिता ३७ जिल्द[5] में	१
२	तथा सूची जिल्द ४ में	१	४	शतपथ ब्राह्मण लिखा	१

१. 'अशुद्ध लेख' का अर्थ है पाण्डुलिपि (रफ कापी)। यही अर्थ आगे ही स्पष्ट कर दिया है। ऋषि दयानन्द कृत वेद भाष्य के मुद्रण से शेष भाग के विषय में श्री मोहन लाल विष्णु लाल पाण्ड्या के निर्देश से ब्रह्मचारी रामानन्द ने विवरण तैयार करके दिया था उसे हमने 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' के तृतीय परिशिष्ट में पृष्ठ ९४०-९४२ पर छापा है। उस में भी 'अशुद्ध' शब्द का अभिप्राय रफ कापी से ही है।

२. 'शुद्ध' का अर्थ है—मुद्रणयोग्य प्रतिलिपि (प्रेस कापी)। यही अर्थ आगे स्पष्ट कर दिया है।

३. यदि ये पत्रे सुरक्षित रहते तो इनसे ऋ० द० के गोरक्षा संबन्धी महान् कार्यपर अद्भुत प्रकाश पड़ता। परोपकारिणी सभा को पुराने कागजों के ढेर में इन्हें ढुंढवाना चाहिए।

४. यह फैरिस्त आवेदन पत्र के पृष्ठ १७-१८ तक छपी है।

५. यहां जिल्द से अभिप्राय खण्ड का है। यह ऐशियाटिक सोसाइटी बंगाल से सौ सौ पृष्ठों के खण्डों में छपा था।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

संख्या	नाम पुस्तक	संख्या पुस्तक
५	विक्रमोर्वशी नाटक	१
६	रेखागणित भाग २	२
७	बीजगणित जिल्द १	१
८	क्षेत्रमिति	१
९	पाटीगणित भाग ९	४
१०	ऐतरेय ब्राह्मण	१
११	इङ्गलेण्डीय व्याकरण भाग २	२
१२	भिक्षुक	१
१३	जातिभेद	१
१४	धातुरूपावली	१
१५	शब्दरूपावली	१
१६	गणपाठ	१
१७	वार्तिकपाठ	१
१८	परिभाषापाठ	१
१९	गुरुमुखी की पुस्तक	१
२०	कविरहस्य	१
२१	सन्मार्गदर्शन	१
२२	षड्दर्शनचिन्तनिका	२
२३	बृहदारण्यक भाष्य	१
२४	धमरक्षा	१
२५	मसीह इबन अल्लाह	१
२६	दीनहक की इतफाल	१
२७	रिसाले पादास इसलाम	१
२८	सत्यनिरूपण	१
२९	तोफेतुल इसलाम	१
३०	शलभसूत्र[1]	१
३१	बाइबल अंग्रेजी	१
३२	हैईलोज ग्रामर बड़ी	१
३३	,, ,, छोटी	१
३४	मथुराप्रसाद की डिक्सनरी अंग्रेजी	१

संख्या	नाम पुस्तक	संख्या पुस्तक
३५	गुरु तेगबहादुरसिंह का वृत्तान्त	१
३६	ऐतरेय ब्राह्मण अंग्रेजी में हाग [कृत]	१
३७	ऋग्वेदसंहिता अंग्रेजी में भाग ४	१
३८	,, ,,	
३९	सैक्रेट एन्थालोजी	१
४०	वेदोक्तधर्मप्रकाश[3]	१
४१	सर्वशास्त्र का सूचीपत्र	१
४२	व्यामोहविद्रावण	१
४३	जागदीशी	१
४४	दीधिती जागदीशी की व्याख्या	१
४५	विषयवाद	१
४६	मुक्तावली आदि	१
४७	न्यायपदार्थ तत्व	१
४८	सुश्रुत भाग ३	३
४९	चरकसंहिता खण्डित	१
५०	गोभिलसूत्र	१
५१	प्रतिष्ठामयूख	१
५२	मेदिनीकोश	१
५३	वेदार्थयत्न अंक ७०	७०
५४	सूचीपत्र	१
५५	वेदमन्त्र सूचीपत्र	१
५६	भाषाभा (१)	१
५७	सिद्धान्त	१
५८	प्रकरणरत्नाकर भाग १ छपा	१
५९	प्राकृत बालभाषा व्याकरण १छपा	१
६०	पिण्डनिर्युक्तवृत्ति लिखी	
६१	भगवतीसूत्रवृत्ति लिखी	१
६२	आवश्यकनिर्युक्तिटीका छपी	१
६३	संस्कृत बाइबल छपी	१

ह० मोहनलाल विष्णुलाल पण्डया
उपमन्त्री

१. सम्भवतः बुल्व सूत्र ? २. प्रतिलिपि करते समय नाम लिखना रह गया। यु० मी०

३. यह महाराष्ट्र के विष्णु बाबा ब्रह्मचारी कृत है। विष्णु बाबा ब्रह्मचारी ने यह ग्रन्थ पहले मराठी भाषा में प्रकाशित किया था। तत्पश्चात् उन्होंने स्वयं सन् १८६९ में इसे ब्रजभाषा में लिख कर छपवाया। उपरिमुद्रित ब्रजभाषा में मुद्रित ग्रन्थ है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पं० गोपाल हरि देशमुख-लोक हितवादी-कृत

पं० स्वामी श्रीमद्दयानन्द सरस्वती पर टिप्पणियां

सम्पादक--प्रा० कुशलदेव शंकरदेव वडवलकर

टि० संख्या	पृष्ठ	पं०	
१	२३	२३	**यायावरीय जीवन—**

"स्वामी दयानन्द ने अपने मतव्यों के प्रचार के लिये रेल आदि वाहनों से की गई यात्राओं के अतिरिक्त लगभग १५ हजार किलोमीटर पैदल यात्रा की और करोड़ों लोगों को व्याख्यानों द्वारा अपना संदेश सुनाया"।

—आचार्य चतुरसेन शास्त्री, हिंदी भाषा और साहित्य का इतिहास, पृ० ४३४।

२	२३	२२	**शास्त्रार्थों के इतिहास—**

स्वामी जी ने १८६७ ई० से १८८२ तक लगभग ५४ [महत्त्वपूर्ण] शास्त्रार्थ किये।

—डा० भवानीलाल भारतीय, आर्य समाज के शास्त्रार्थ महारथी—पृ० ५-१४

३	२४	१	**आत्मकथा कथन—**

पुणें के अतिरिक्त अन्य किसी व्याख्यानमाला में स्वामी जी के आत्मकथा विषयक व्याख्यान का उल्लेख अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है।

४	२४	२	**पुणें—**

महाराष्ट्र शासन ने पुणें शब्द को ही मान्यता दी है। इसलिये हमने मूल नाम को वैसे ही रहने दिया है, उसके हिन्दी रूप 'पूना' के प्रयोग से प्रायः हम बचते रहें हैं। क्यों कि हमारा यह विचार है कि यथा संभव मूल नामों का अनुवाद (रूपांतर) नहीं होना चाहिये।

५	२४	२	**पुणें व्याख्यान माला—**

(क) पुणें नगर के बुधवार पेठ विभाग में. जोगेश्वरी मंदिर और वेद पाठशाला के मध्य में स्थित भिड़ेवाड़े की पहली मंजिल के दीवान खाना (हिन्दू क्लब) नामक ७०×२० 'फिट' के हॉल में स्वामी जी की यह पुणे व्याख्यान माला संपन्न हुई थी। इन सभी व्याख्यानों का प्रारम्भकाल, रात्रि ८ बजे का था। यहां पर स्वामी जी के निम्नांकित विषयों पर और निम्नलिखित तिथियों में पन्द्रह (१५) व्याख्यान हुये।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

	विषय	तिथि		विषय	तिथि
१	ईश्वरसिद्धि	४ जुलाई १८७५	८	इतिहास	२४ जुलाई १८७५
२	ईश्वरसिद्धि पर वाद-विवाद	६ जुलाई १८७५	९	इतिहास	२५ जुलाई १८७५
३	धर्माधर्म	८ जुलाई १८७५	१०	इतिहास	२७ जूलाई १८७५
४	धर्मा-धर्म विषय पर शंका-समाधान	१० जुलाई १८७५	११	इतिहास	२९ जुलाई १८७५
			१२	इतिहास	३१ जुलाई १८७५
५	वेद	१३ जुलाई १८७५	१३	इतिहास	२ अगस्त १८७५
६	पुनर्जन्म	१७ जुलाई १८७५	१४	नित्यकर्म और मुक्ति	३ अगस्त १८७५
७	यज्ञ और संस्कार	२० जुलाई १८७५	१५	स्वयं कथित जीवन-चरित्र	४ अगस्त १८७५

(ख) इन व्याख्यानों के हर भाषणों की संक्षिप्त रपट उसी समय श्रीयुत महादेव मोरेश्वर कुंटे बी० ए० व श्री गणेश जनार्दन आगाशे ने मराठी भाषी जनता के लिये मराठी में प्रकाशित करवाई थी। जो आज पुणे-प्रवचन या उपदेश मंजरी के रूप में उपलब्ध हैं। इन उपर्युक्त १५ व्याख्यानों के अतिरिक्त स्वामी जी के अन्य तीन व्याख्यानों की भी सूचना मिलती है। 'भालेकरांचे कागद पत्र संक्षिप्त इतिहास' से इस बात की पुष्टि मिलती है कि—'स्वयं भालेकर जी ने स्वामी जी का एक व्याख्यान भांबुर्डा (पुणे शहर का वर्तमान शिवाजी नगर विभाग) में आयोजित किया था। इसी प्रकार न० र० फाटक लिखित 'न्याय मूर्त्ति रानडे यांचे चरित्र' पुस्तक से भी इस बात की पुष्टि हो जाती है कि पुणे शहर के तत्कालीन प्रतिष्ठित वकील व महादेव गोविंद रानड़े के मित्र श्री गंगा राम भाउ म्हस्के जी ने छावनीस्थ अपने बंगले पर अंतिम दिनों में स्वामी जी को विदाई देने के लिये वक्ता के रूप में स्वामी जी को निमंत्रित किया था। ५ सितम्बर १८७५ को हाथी पर बिठा कर स्वामी जी का जूलूस निकाला था। जूलूस के बाद भिडेवाडे के दीवान खाने में आजोजित सभा में भी स्वामी जी ने भाषण दिया था, जो कि उन का पुणे नगर के लिये अन्तिम भाषण था। इन तीनों व्याख्यानों का विवरण अभी तक अप्राप्त है। पुणे के तत्कालीन पत्रों (दैनिक-मासिक-पाक्षिक समाचार-पत्रों के अंक) के प्राप्त होने पर इस विषय में और अधिक प्रकाश डाला जा सकेगा।

—प्रो० रत्नसिंह एम० ए०, भूमिका—उपदेश मंजरी पृ० ५,६।

—न० र० फाटक, न्यायमूर्ति रानडे यांचे चरित्र, पृ० २३२, ३३।

—य० दि० फडके, व्यक्ति आणि विचार पृ० ४९,५०।

—य० दि० फडके, लेख-शोध सत्य शोध-कांचा-मौज मासिक दिवाली अंक १९७८ (इसमें भालेकरांचे कागद पत्र संक्षिप्त इतिहास स्वामी जी विषयक उद्धरण उद्धृत किया गया है)।

—भिडे वाडे (दीवान खाने) के वर्तमान मालिक लक्ष्मण शंकर भिडे से मई १९८१ को हुई मेरी (कुशलदेव) वार्त्ता के आधार पर।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

टि० संख्या	पृष्ट	पं०	
६	२५	२२	गुप्त षड्यंत्र—

घटना स्थल (जोधपुर, आबू, अजमेर) से हजारों कोस की दूरी पर बैठे-गोपाल हरि देशमुख जो के (स्वामी जी को विष न दिये जाने कि वा गुप्त षड्यंत्र न होने के इस लिखित) तथ्यविरहित भावुकता पूर्ण और अनुमानित वक्तव्य को विश्वसनीय नहीं माना जा सकता, क्यों कि घटना स्थल पर विद्यमान महानुभावों का मत लोकहितवादी जी से प्रतिकूल व विष दिये जाने की ऐतिहासिक तथ्य की साधार पुष्टि करता है। 'स्वामी दयानन्द जी अजात शत्रु' थे इसलिये उन्हें विष देने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता'। पं० गोपाल हरि देशमुख जी का इस प्रकार का तर्क बुद्धि पर आधारित न होकर अतिशय भावुकता पर आधारित है। समाज सुधार के कार्यक्षेत्र में पदार्पण करने के बाद प्रायः प्रत्येक व्यक्ति को विषपान-अमृतदान के पथ से ही गुजरना पड़ता है, फिर स्वामी दयानन्द जी तो सर्वांगीण सुधारक थे और उससे पूर्व उन्हें एक बार नहीं अनेक बार विष दिया जा चुका था।

स्वामी दयानन्द जी के निर्वाण का दुःखद समाचार पाकर शाहजहांपुर के समाचार-पत्र 'शुभचिंतक' ने जो श्रद्धाञ्जलि दी थी, उससे भी स्वामी को विष दिये जाने की पुष्टि मिलती है। शुभचिंतक में प्रकाशित समाचार निम्नांकित है—

"॥ ओ३म् ॥ छंद शिखरिणी

अहो अनरथ हुइगो, भारत हितैषी चलि बसो
प्रभाकरि जग को, श्रुति पथ-उधारक छिप गओ
सकल नर नग चलिगो, सतयुग प्रचारक उठि गयो
अहो हा हा हा हा, स्वामी हमारो चली गयो ॥१॥

.....सुनि ऐसी वार्त्ता प्रोहितन तिनको विष दियो।
खुली तिनकी जड़ता कल्पित प्रथा दर्श होयगो।
लखी जीविका जाति दुर्मति अधर्मि करि गयो।
दियो विष हा हा हा स्वामी हमारो चली बसो ॥६॥"

—साभार—गोपालराव हरि शर्मा—श्रीमद्दयानन्द दिग्विजयार्क पृ० २०५।

विष—ऋषि मृत्यु का कारण—एतद्विषयक जानकारी पाठक निम्नांकित लेखों व पुस्तकों से भी भी प्राप्त कर सकेंगे—

१—स्वामी श्रद्धानन्द—क्या ऋषि दयानन्द को जहर दी गई थी? प्रकाश (उर्दू साप्ताहिक) पृ० १२-१३, अंक ४ ज्येष्ठ संवत् १९८२।

२—स्वामी श्रद्धानन्द—क्या ऋषि दयानन्द को जहर दी गई थी? अर्जुन (दिल्ली से निकलने वाला हिंदी दैनिक)—मई १९२५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

३—रामविलास शारदा—स्वामी जी को जहर ही दिया गया था—प्रकाश (लाहौर से निकलने वाला उर्दू साप्ताहिक) अंक ११ ज्येष्ठ संवत् १९८२ वि०।

४—इन्द्र विद्यावाचस्पति—आर्य समाज का इतिहास [परिशिष्ट संख्या-४-ऋषि की मृत्यु कैसे हुई ?] प्रथम भाग—पृ० ३२०-३२४।

५—रामविलास शारदा—आर्यधर्मेंद्र जीवन

६—पं० गोपालराव हरि—श्रीमद्दयानन्द दिग्विजयार्क [अथ सप्तमो मयूख—अनिष्टोत्थान] पृ० १८६-१९२।

७—श्री ओमप्रकाश आर्य—ऋषि दयानन्द का विषपान एक निर्णीत तथ्य; परोपकारी—अगस्त-सितम्बर १९७९ पृ० १०-१८।

८—डा० भवानीलाल भारतीय अध्यक्ष दयानन्द पीठ पंजाब विश्वविद्यालय। विदेह गाथा में महर्षि का मृत्यु विषयक भ्रम पूर्ण उल्लेख—परोपकारी अक्तूबर १९७९ पृ० ६-८।

९—भैरव सिंह वर्मा आर्य—परोपकारी जून १९७९ में छपे श्रीमान् [लक्ष्मीदत्त] दीक्षित जी के मिथ्या कथन का प्रतिवाद [संपादक की डाक स्तंभ]—परोपकारी अक्टूबर ७९ पृ० २५-२७।

१०—प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु—महर्षि का विषपान अमर बलिदान। प्रकाशक—आर्य युवक समाज अबोहर प्रकाशन काल २०२९ वि०।

११—सं० शिवराजसिंह शास्त्री—विष ऋषि मृत्यु का कारण; प्रकाशक वैदिक परमार्थ आश्रम बम्बई, प्रकाशन काल १९७४ ई०।

एतद्विषयक (विष : ऋषि की मृत्यु का कारण) लेख स्वर्गीय प्रो० श्री राम शर्मा, श्री वी० के० सिंह, श्री पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक आदि विद्वानों ने लिखे हैं, उन्हें भी अवश्य पढ़ लेना चाहिये, क्यों कि गवेषणा का कार्य अनवरत चलने वाला कार्य है।

टि० संख्या	पृष्ठ	पं०	
७	२६	१	२९ अक्टूबर—

२९ अक्टूबर के स्थान पर ३० अक्टूबर चाहिये। क्योंकि ग्रन्थकार द्वारा स्वयं निर्दिष्ट 'आश्विन वद्य ३०' (उत्तर भारतीय पञ्चाङ्गानुसार—कार्त्तिक वदि ३०) को अक्टूबर की ३० तारीख ही थी। पुनरपि इस ऐतिहासिक तथ्य की पुष्टि के लिये निम्न सम-सामयिक व्यक्ति व समाचार पत्रों के प्रमाण प्रस्तुत हैं—

(१) "ता० ३० अक्टूबर सन् १८८३ ई० अर्थात् कार्त्तिक कृष्णा ३० मंगलवार सं० १९४० वि० के दिन ठीक सूर्यास्त होने के समय यह अपर भानु [स्वामी दयानन्द] भी क्षणमात्र में अस्त हो गया और समस्त भूमंडल न जाने किस काल तक के लिये तिमिरावृत्त हो गया"।

—गोपाल हरि शर्मा—श्रीमद्दयानन्द दिग्विजयार्क पृ० १९३ प्रकाशक—आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट दिल्ली ६

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(२) "हमको यह सुनकर बड़ा पश्चात्ताप हुआ कि ३० अक्टूबर सन् १८८३ ई० कार्त्तिक बदी ३०, संवत् १९४० को श्रीमान् दयानन्द सरस्वती जी महाराज वैकुंठ पधार गये"।

—भारत बन्धु [समाचार पत्र] अलीगढ़, तत्रैव-२०४।

(३) "फिर क्यों ऐ खुदा तूने हमको यह लख्त इस तरह बेसरो सामान और बेमान कर दिया। यानी हमारे सच्चे हावी और हादी को स्वामी दयानन्द जी सरस्वती महाराज को जो हमें यह सब सिखाते थे ३० तारीख अक्टूबर के ६ बजे शाम को बुला लिया"।

—देशोपकारक [समाचार-पत्र लाहौर] तत्रैव पृ० २११।

"जिस वक्त यह खबर वहशत असर बजरिये तार बर्कों के इस समाज में आई कि उस फाजिल, अजल और आलिम बेमिसल फरवर मुल्क और मुहिब कौन यानी स्वामी दयानन्द सरस्वती महाराज ने ३० अक्टूबर सन् १८८३ ई० के शाम को ६ बजे इस जहान फानी ले रहिलात फरमाई जमाना आंखों में स्याह हो गया। और सर्माया होश बहवास यकलम तबाह"।

—आर्य समाचार मेरठ-तत्रैव पृ० २१४।

"संवत् उन्नीस सौ चालीस में बंग विक्रम के।
कार्त्तिक मास अमावस को दिवाकर छिपते॥
कर दिया कूच जमाने से श्री स्वामी ने।
आखिरी लब्ज यही आपके मुंह से निकले॥
ईश्वर इच्छा आपकी ही हो सदा पूरन।
बस यह कहते ही निकल जान गई छोड़ के तन॥

बदायूं समाचार-तत्रैव पृ० २२१।

टि० सं०	पृष्ठ	पं०	
८	२६	२	**जयपुर नरेश—**

जयपुर शब्द के स्थान पर भिनाय शब्द का प्रयोग होना चाहिए, क्योंकि स्वामी जी जयपुर नरेश की कोठी में नहीं भिनाय नरेश की कोठी में ठहरे थे, और वहीं पर उनका निर्वाण हुआ था।

९	२६	१७	**हिंदू जाति के स्थान पर आर्य जाति का उल्लेख करने के लिये सरकार और समाज को प्रेरणा—**

स्वामी दयानन्द जी सरस्वती ने ३१ दिसम्बर १८८० ई० को मास्टर दयाराम जी को लिखे पत्र में जनगणना सम्बन्धी आदेश निम्न प्रकार दिया था—

"मास्टर दयाराम जी! ...आपने जो नकशा मर्दुम शुमारी का लिखा है सो उसकी खानापूरी इस प्रकार करो—

मजहब-फिरके मजहबी—वैदिक। असल कौम—आर्य।
जात या फिरका—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

टि० संख्या पृष्ठ पं०

गोत्र या शाखा—जो अपना गोत्र है जिस को अपना गोत्र याद न हो वह अपना काश्यप गोत्र या पाराशर लिखा दें और यह—सब समाजों तथा पंजाब भर में इसी प्रकार से लिख भेजें।

—ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ४६० सं० २०३७। इस के अतिरिक्त विज्ञापनों और भाषण-संभाषणों में भी स्वामी जी ने इस संबन्ध में जन-जागरण करने का प्रयास किया था।

१० २६ २२-२३ **आर्यावर्त्त के वैदिक धर्मानुयायी आर्य थे, किन्तु उनके श्यामवर्ण के आधार पर मुसलमानों ने उन्हें हिन्दू कहा—**

'श्यामवर्ण के आधार पर मुसलमानों ने आर्यों को हिंदू कहा' लोकहितवादी जी ने स्वामी जी की यह जो भूमिका बतायी है, उसका स्वामी के ग्रंथों में कहीं भी प्रमाण नहीं मिलता है, यदि किसी को इस विषय में जानकारी हो तो सूचित करें।

११ २७ ९-१० **आर्यसमाज दक्षिण और उत्तर भारत···के···विस्तृत भू-भाग पर विद्यमान है और उनके वैदिक मतावलम्बी उन-उन समाजों में हजारों की संख्या में विद्यमान हैं।**

महर्षि दयानन्द सरस्वती एवं गोपाल हरिदेशमुख लोकहितवादी के काल में आर्यसमाजों व वैदिक मतावलंबियों की निश्चित संख्या का विवरण तो संप्रति प्राप्त नहीं है। यहां हम आर्यसमाज स्थापना शताब्दी वर्ष (१९७५) में आर्यसमाज की शाखाओं का संख्यात्मक विवरण प्रस्तुत करते है।

१ हिन्दुस्तान में लगभग ५२०० आर्यसमाज हैं।

२ पूर्वी अफ्रीका, दक्षिण अफ्रीका, मारीशस, फिजी, इंग्लैण्ड आदि देशों में लगभग ६०० आर्यसमाज मन्दिर हैं।

३ जर्मनी, सिरिया, अफगानिस्तान, अरब, अमरीका, ईरान, बगदाद, गुयाना, सिंगापुर, श्याम, कम्बोडिया, मलेशिया, हांगकांग आदि देशों में आर्यसमाज का कार्य चलता है।

४ प्रांतीय तथा जिला आर्य प्रतिनिधि सभाओं तथा उपसभाओं की संख्या लगभग २०० है।

—भगवान देव शर्मा आर्यसमाज का कार्यक्षेत्र-धर्मयुग ६ अप्रैल १९७५

१२ ३१ १ **श्रेष्ठ एवं सरल शैली में वेदार्थ देने का उदात्त कार्य—**

स्वामी दयानन्द ने ठीक ही वेदों को भारत के युगों की चट्टान समझकर पकड़ लिया और उसमें उन्होंने तारुण्य की समग्र शिक्षा, एक समग्र पुरुषत्व तथा एक समग्र राष्ट्रीयता का जो दर्शन किया, उसके ऊपर निर्णय करने का साहस दिखलाया···उनमें राष्ट्रीय भावना थी और उन्होंने उस भावना को एक आत्मानुभूति का रूप देकर उसे ज्योतिर्मय बना दिया।

—अरविंद घोष, बंकिम-तिलक-दयानन्द पृ० ४५।

स्वामी दयानन्द जी ने एक सर्वोपरि आत्मबल के साथ अपनी स्थितियों का निर्धारण किया,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

अपने यन्त्रों को चुना और एक जन्मजात कर्मठ प्रबल अधिकार के साथ अपने संकल्प को पूरा किया।

—अरविंद घोष-तत्रैव-पृ० ४३।

स्वामी दयानन्द सत्य के योद्धा व आध्यात्मिक क्रियात्मकता की शक्ति संपन्न मूर्ति थे।

—अरविंद घोष-तत्रैव-पृ० ५०।

स्वामी दयानन्द के वेद विषयक दावे अतिरंजित न होकर न्यूनातिन्यून ही हैं।

—अरविंद घोष-तत्रैव-पृ० ३९८।

टि० संख्या	पृष्ठ	पं०	
१३	३३	६-७	**संस्कृत अध्ययन के विद्यालय और शिक्षण केन्द्रों की स्थापना होने लगी—**

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने आर्य समाज दानापुर व आर्य समाज फर्रुखाबाद व कासगंज में संस्कृत पाठशाला स्थापित व सुव्यवस्थित ढंग से संचालित करने की अनेक पत्रों द्वारा प्रेरणा दी थी, उन पत्रों में से कुछ वचन यहां पर उद्धृत किये जा रहे हैं—

'मुझे यह सुनकर बहुत प्रसन्नता हुई है कि आप आर्य-संस्कृत-पाठशाला का यत्न कर रहे हैं।' (द्र०—ऋ० द० स० के पत्र और विज्ञापन, पूर्ण संख्या १९२, भाग १, पृष्ठ २४९-२५)।

'इस पाठशाला में अधिक करके संस्कृत की उन्नति पर ध्यान रहना चाहिये, और इसमें केवल लड़के ही पढ़ते हैं अथवा हमारे रईस लोगों में से भी कोई पढ़ता है'। (द्र० ऋ० द० स० के पत्र और विज्ञापन, पूर्ण संख्या ४५५, भाग २, पृष्ठ ५००, पं० १-३)।

आप लोगों की पाठशाला में आर्य भाषा संस्कृत का प्रचार बहुत कम और अन्य भाषा अर्थात् अंग्रेजी व उर्दू फारसी अधिक पढ़ाई जाती है। इससे वह अभीष्ट, जिसके लिये यह शाला खोली गई है, सिद्ध होता नहीं दीखता, वरन आपका हजारह मुद्रा का व्यय संस्कृत की ओर से निष्फल होता भासता है। आप लोग देखते हैं कि बहुत काल से आर्यावर्त्त में संस्कृत विद्या का अभाव हो रहा है, वरन् संस्कृत रूपी मातृभाषा की जगह अंग्रेजी लोगों की मातृभाषा हो चली है। हमारी अति प्राचीन मातृभाषा संस्कृत जिसका सहायक वर्तमान में कोई नहीं है'। (द्र० ऋ० द० स० के पत्र और विज्ञापन, पूर्ण संख्या ४५७, भाग २, पृष्ठ ५०१)।

'तुम्हारी पाठशाला में अलिफ बे और कैट बैट का भर्मार है, जो कि आर्य समाजों को विशेष कर्त्तव्य नहीं है'। (द्र० ऋ० द० स० के पत्र और विज्ञापन, पूर्ण संख्या ६५६, भाग २, पृष्ठ ६८३)।

'आर्यावर्त्त देश की स्वाभाविक सनातन विद्या संस्कृत ही है। उसी से देश का कल्याण होगा। अन्य भाषा से नहीं'। (द्र० ऋ० द० स० के पत्र और विज्ञापन, पूर्ण संख्या ११, भाग १, पृष्ठ ४२, पं० २-५)।

[मैंने] फर्रुखाबाद, काशी आदि स्थानों में चार पाठशालायें आर्यविद्या सिखाने के लिये स्थापित की हैं—स्वामी दयानन्द का आत्म चरित पृ० ३६।

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मुंबई में महर्षि दयानन्द द्वारा निर्मित आर्यसमाज के २८ नियमों में से ५ वां और १६ वां नियम तथा सुप्रसिद्ध आर्यसमाज के दस नियमों से ३ नियम इस बात की पुष्टि करते हैं कि महर्षि ने आर्यभाषा से अधिक संस्कृत पर बल दिया था। क्यों कि संस्कृत ग्रन्थों के पठन-पाठन के सिवाय वेदादि सनातन आर्ष ग्रन्थों का पठन-पाठन हो ही नहीं सकता। ६ अप्रैल १९७५ के साप्ताहिक धर्मयुग में आर्यसमाज का कार्यक्षेत्र शीर्षक के अन्तर्गत भगवान् देव शर्मा द्वारा प्रदत्त विवरण के अनुसार संप्रति आर्यसमाज की ओर से लगभग ८० गुरुकुल तथा संस्कृत पाठशालाएं चलायी जाती हैं।

टि० संख्या	पृष्ठ	पं०	
१४	३३	३०	**उन्होंने (=राजा राममोहन राय ने) वेदों के आधार पर एकेश्वरवाद की स्थापना की थी—**

यहां 'वेदों से' का तात्पय उपनिषदों से है, न कि मन्त्र संहिताओं से।

डा० भवानीलाल भारतीय के अनुसार—भारतीय समाज को रूढिवाद बनाने का एक उपाय यह भी था कि देशवासियों का ध्यान भारत के उस सुदूर अतीत की ओर खींचा जाये जो विकार रहित था..... [तदनुसार] भारत के नवजागरण के प्रथम ज्योतिर्धर राजा राममोहन राय ने उपनिषदों में व्याख्यात अध्यात्म तत्त्व को अपने मनन और चिंतन का आधार बनाया [और उपनिषदों की ओर लौटने का संदेश दिया] तो आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द का तो वह प्रचलित नारा ही 'वेदों की ओर लौटो था'।

इस उद्धरण को उधृत करने का यही तात्पर्य है कि राजा राममोहन राय ने अपने वाद की स्थापना में उपनिषदों का जितना आश्रय लिया, उतना वेदों का नहीं। क्योंकि उनकी दौड़ विशेष रूप से उपनिषदों तक ही सीमित थी।

१५	३४	५	**जनवरी सन् १९७७ में** दिल्ली में रानी विक्टोरिया के चक्रवर्तिनी पद से विभूषित करने का संदर्भ में.....आयोजित समारोह में.....स्वामी दयानन्द जी सरस्वती और बाबू केशवचन्द्र सेन..... को निमंत्रित किया गया था।

'भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास' के इतिहास लेखक पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति के अनुसार —'इस दरबार का आयोजन १ जनवरी १८७७ को किया गया था, जिसमें लार्ड लिटन ने यह घोषणा की कि रानी विक्टोरिया भारत की राज राजेश्वर हो गयी हैं'।

महर्षि दयानन्द प्राय: मेलों में जाकर अपने मंतव्यों का प्रचार करते थे। इस दरबार में जाने का भी उनका यही उद्देश्य था कि 'अनायास एकत्रित समाज को वैदिक धर्म के आधार पर एकता के सूत्र में संगठित कर दें, इसीलिये उन्होंने अन्य मतावलम्बियों के आचार्यों को एक मंच पर लाने का प्रयास किया था' महर्षि दयानन्द जी का तो दिल्ली दरबार में संमिलित होने का उद्देश्य स्पष्ट है, परन्तु अंग्रेज सरकार का स्वामीजी को इस दिल्ली दरबार में बुलाने का क्या उद्देश्य था—यह अभी अस्पष्ट है, आशा है आर्यसमाज व भारतीय इतिहास के अनुसंधाता इस विषय पर विशेष रूप से प्रकाश डालेंगे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

टि० संख्या पृष्ठ पं०

१६ ३५ २४-२६ **स्वामीजी को अपमानित करने का निंदनीय कर्म किया जिसका उन्हें आंशिक रूप में प्रायश्चित्त भी भोगना पड़ा—**

इस पुणे प्रकरण का विवरण हम न० र० फाटक लिखित न्यायमूर्ति रानडे यांचे चरित्र (जिसकी प्रस्तावना रमाबाई रानडे ने लिखी है) से संक्षेप में हिन्दी में रूपांतरित कर यहां प्रस्तुत कर रहे हैं—

"स्वामी दयानन्द की वक्तृत्व शक्ति को अपने व्याख्यानों द्वारा निष्प्रभ करने के लिये महामहोपाध्याय राम शास्त्री आप्टे व रेवरंड नीलकंठ शास्त्री कटिबद्ध हुये थे [डा० भवानीलाल भारतीय के अनुसार—'जुलाई १८७४ में स्वामी जी प्रयाग पधारे थे, उस समय म्योर कालेज के संस्कृत प्रोफेसर पं० काशीनाथ शास्त्री, महाराष्ट्र के ईसाई पंडित नीलकण्ठ शास्त्री के साथ स्वामी जी के पास आये थे। इस अवसर पर नीलकण्ठ शास्त्री से स्वामीजी का वेदों में विशुद्ध एकेश्वरवाद की सत्ता पर विचार हुआ। स्वामी जी ने बाईबिल की विज्ञान विरूद्ध शिक्षाओं का भी खण्डन किया'—हमारा यह पूर्ण विश्वास है कि प्रयाग में १८७४ में स्वामीजी से विचार विमर्श करने वाले ही उपर्युक्त नीलकण्ठ शास्त्री हैं; क्योंकि वे महाराष्ट्रीय भी हैं, और ईसाई भी हैं—कुशलदेव] पर सारा शिक्षित समाज स्वामी दयानन्द की ओर आकृष्ट हो गया था। आप्टे-शास्त्री के सब प्रयत्न निरर्थक साबित हुये। पुणे के न्यायमूर्ति महादेव गोविंद रानडे व प्रतिष्ठित वकील श्रीयुत गंगाराम भाऊ म्हस्के ने स्वामीजी का हाथी पर जुलूस निकालने की योजना बनाई थी। स्वामीजी ने अपने जुलूस का विरोध करते हुए वेदों को अंबारी (हौदे) में रखकर जुलूस निकालने की सलाह दी थी, वैसा निश्चय भी हुआ पर विष्णु शास्त्री जी चिपलूणकर लिखित निबंधमाला से यह प्रतीत होता है कि स्वामी जी का जो जुलूस निकाला गया, उसमें वे हाथी पर विराजमान थे। जुलूस में लोगों के पास मशालें (व दिवटया) थीं। वेद पालकी में और स्वामी जी हाथी पर इस प्रकार का भी एक जुलूस का वर्णन मिलता है। [महाराष्ट्र साहित्य परिषद् के इन्दौर अधिवेशन (सन् १९१७) के सभापति] गणेश जनार्दन आगाशे ने सन् १९०४ में आप बीती जग बीती-(स्मृति पर व्याख्यान) सुनाते हुये इस स्वामी दयानन्द जी के जुलूस विषयक एक तथ्य का रहस्योद्घाटन करते हुये कहा था कि—जुलूस निकलने से एक दिन पूर्व न्यायमूर्ति महादेव गोविंद रानडे ने मुझे कहा था कि—"समाज सुधार की ध्वजा के पीछे चलने के लिये कितने बहादुर पुणे में कटिबद्ध (सज्ज) हैं, इस जुलूस से वे बहादुर पूरी कसौटी पर कसे जायेंगे। सुधार-पक्ष इस कसौटी में उत्तीर्ण हुआ तो, प्रतिगामी समाज के शक्ति सामर्थ्य का अन्दाज आ सकेगा। आज तक कोई भी सुधार छल-प्रपंच की भट्टी से निकले बिना यशस्वी नहीं हुआ है। छल-प्रपंच व अपमान सहन करने की वेला भी आयी तो सुधारकों को सन्नद्ध रहना चाहिये। शोभा यात्रा(जुलूस) पर पत्थरों की या गन्दी नाली का कीचड़ भी फैंका जाये तो भी किसी प्रकार का ननु-नच न करते हुए वह सब चुपचाप सहन करने की मेरी तैयारी है। आप सभी मेरी तरह ही आचरण करें। यही आप सबसे मेरी प्रार्थना है"।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दूसरे दिन (५ सितंबर १८७५) शोभा यात्रा निकली। जब वह बुधवार पेठ के भिडेवाडे [भाषण स्थल] के पास आयी तो [ईर्ष्या द्वेष से पीड़ित व सुधार विरोधी पौराणिक विद्वानों द्वारा प्रेरित] सामने से गर्दभानन्द की सवारी अपने नेताओं के साथ गाते-बजाते आयी ···[स्वामी जी के भिडेवाडे में व्याख्यान वेदी पर पहुंच जाने के बाद] थोड़ी देर में गर्दभ स्वामी की शोभा यात्रा भिडेवाडे के पास आयी। जिससे स्वामी जी की शिष्य मण्डली स्वामी दयानन्द जी को सुरक्षित भिडवाडे में पहुंचाने का मौका पा गई। दयानन्द दीवान खाने में पहुंचकर अपने स्थान पर विराजमान हो गये। उनके इस अन्तिम भाषण को सुनने के लिये श्रोतृवर्ग दो-तीन घण्टे से प्रतीक्षा करते हुए बैठा था। राजमार्ग पर व आम जनता के बीच स्वामी जी व उनके अनुयायियों की उपहास करने व मजाक उड़ाने की प्रतिपक्षियों की आकांक्षा नाकामयाब हुई। जिससे वे अत्यन्त ही क्रुद्ध हो उठे और उन्होंने गर्दभानन्द की जय लगाते हुए स्वामी दयानन्द जी के दीवानखाने में चल रहे भाषण को बन्द करने की असफल कोशिश की। स्वामी जी का एक शिष्य विपक्षियों की इस चाल को भांपते ही बेचैन और क्रुद्ध हो गया और उसने पुलिस की मदद लेकर गर्दभानन्द [नकली दयानन्द] की पीठ पर जोर से लाठियां बरसवाईं। (पाठीत सोंगड्याचे धपाटे घातले)। उस दिन बरसात के कारण रास्ते में कीचड़ ही कीचड़ हो गया था। भिडेवाडा का दीवान खाना [कार्यक्रम स्थल] रास्ते से सलंग्न दूसरी मंजिल पर था। अतः सुधार विरोधी पौराणिक विद्वानों द्वारा उत्तेजित भीड़ रास्ते से दीवान खाने की खुली खिड़कियों में से श्रोताओं पर कीचड़ के गोले बना-बना कर फेंकने लगी। लोगों ने खिड़कियां बन्द कीं, पर खिड़कियां [भिडेवाडे के वर्तमान मालिक लक्ष्मण शंकर भिडे ने मुझे अपनी एक भेंट वार्ता में बताया कि दीवान खाने में दोनों ओर से ५×३ फिट की खिड़कियां थी एक ओर की खिड़कियों से सड़क का दृश्य तो दूसरी ओर की खिड़कियों से १७०×२५ फुट के आंगन का दृश्य दिखलाई देता था—कुशलदेव] बन्द करने से पूर्व अनेक प्रतिष्ठित व समादरणीय मंडली को कीचड़ के गोलों का प्रसाद मिल गया था ···दूसरों को भड़का कर स्वयं पृथक् रहने वाले लोग गर्दभानन्द के जलूस से थोड़ी दूर पर खड़े होकर सब तमाशा देख रहे थे।···[इन सब प्रतिगामियों की अभद्र शरारत को देखकर 'शठे शाठ्यं समाचरेत्'—इस न्याय से] स्वामी जी की जय बोलने के स्थान पर उपद्रवियों के नाम ले-लेकर जोर-जोर से गालियां देनी (घसा फोडण्याला) आरम्भ की। यह शोर-शराबा (धुमाकूल) रात के साढ़े नौ बजे तक चलता रहा। बीच में में यह अफवाह भी उठी थी कि स्वामी जी अपनी मित्र मंडली के साथ भिडेवाडे के पिछले दरवाजे से चुपचाप चले गये हैं (पसार झाले)। जिससे बहुत से लोग शिकार हाथ से निकल जाने की भावना से अपने-अपने घरों की ओर चले गये थे। बुधवार पेठ से कोतवाल चावड़ी तक का रास्ता अपने-अपने घरों की ओर लौटने वाले लोगों की भीड़ से खचाखच भरा था। दंगा होने का समाचार पाते ही शहर के न्यायधीश भिडेवाडे के पास आये और फिर स्वामी जी सुरक्षित अपने अगले स्थान (मुकाम) की ओर रवाना हो गये"।

माधवराव (न्याय मूर्ति महादेव गोविंद रानडे) जब अपने घर पहुंचे तो उनके पूरे शरीर पर कीचड के धब्बे दिखलाई दे रहे थे इस दंगे में एक सिपाही (पुलिस) भयानक रूप से घायल हो गया, और शेष अन्य १४-१५ व्यक्ति (आसामी) भी पुलिस की लाठियों से घायल हो गये। गर्दभानंद का

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जूलूस निकालने वाले (मीरविणारीतले) दोनों नेताओं को पुलिस ने गिरफ्तार कर दंडित किया। ये नेता कमिश्नर तहसील के सिपाही थे (कमिश्नर कचेरीतल पट्टीवाले होते) जो प्रत्यक्ष रूप से दोषी थे, क्योंकि अपराध उन्हीं के हाथ से हुआ था, पर इन नेताओं को भड़काने वाले असलो नेता तो दूसरे ही थे। इन विघ्न संतोषी लोगों ने क्षमा याचना भी की'। [कै० ग. ज. आगाशे यांचे १९०४ सालांतले स्मृति पर व्याख्यान—पृ० ९] क्षमादान के समय उपस्थित बहुत से मित्रों ने न्यायमूर्ति महादेव रानडे के इस [क्षमादान] कृत्य का तीव्र विरोध किया। स्वामी दयानन्द जी का उपहास करने वाले पुणेत्रासियों के इस मूर्खतापूर्ण (गाजर पारखेपणा) कृत्य से सारा संसार सुपरिचित हो गया, परन्तु इस पुणे-प्रकरण से स्वामी दयानन्द की महत्ता में कोई आंच नहीं आयी। स्वामी दयनंद जी के प्रति जन-मानस में जो श्रद्धा थी उसका किञ्चिन्मात्र भी अवमूल्यन नहीं हुआ, अपितु उत्तर भारत में तो स्वामी दयानन्द का पुनजर्गारण आंदोलन (पंथ) एक देशोद्धार की प्रबल शक्ति का आंदोलन बन गया। ...यह घटना ५ सितम्बर १८७५ को घटित हुई'। (न० र० फाटक: न्यायमूर्ति रानड़े यांचे चरित्र—पृ० २३२—२३७ का सार-संक्षेप)।

'भाले करांचे कागद पत्र: संक्षिप्त इतिहास' से य० दि० फडके द्वारा 'व्यक्ति आणिविचार' पुस्तक में उद्धृत इस पुणे-प्रकरण से संबंद्ध अंश नीचे दिया जा रहा है :-

"....भालेकर जी ने स्वामी जी का एक व्याख्यान भांबुर्डा (वर्तमान शिवाजी नगर विभाग-पुणे) में आयोजित किया था वे लिखते हैं—५ सितम्बर १८७५ को स्वामी जी के स्नेही भक्तों ने उन्हें गजेन्द्रारूढ कर जुलूस निकाला था, तब पुणे के सनातनियों (प्रतिगामियों) ने दंगा किया'। निबंध माला' के वक्तृत्त्व नामक निबंध की एक टिप्पणी में विष्णु शास्त्री चिपलूणकर ने अत्यन्त ही प्रसन्नता के साथ इस दंगे का वर्णन किया है और वह निबंध उनके लेखन की एक विशिष्ट शैली के नमूने के रूप में सुप्रसिद्ध है, [यह 'वक्तृत्व' निबन्ध लगभग १३ पृष्ठों का है, जिसमें बाबू केशवचंद्र सेन व बाबू प्रतापचन्द्र की वक्तृत्व कला पर केवल ३ पृष्ठों में प्रकाश डाला गया है, शेष १० पृष्ठ स्वामी दयानन्द जी की वक्तृत्व कला व उस समय सुधारविरोधी पौराणिकों द्वारा कराये गये दंगे से सम्बन्धित है] भालेकर जी ने भी गर्दभानन्द [नकली दयानन्द] के जुलूस (स्वामी दयानन्द के विरोधियों द्वारा निकाला गया प्रति जुलूस) का जो परिणाम हुआ उसका वर्णन नम्न प्रकार किया है:—

"उस गधे (गर्दभानन्द) के साथ माली परिवार के पट्टेवाले थे, और उग्र ब्राह्मणमण्डली थोड़ी दूरी पर अन्तर छोड़कर [जैसे हमारा इस जुलूस से कोई लगाव नहीं] चल रही थी, बाद में इस गधे (गर्दभानन्द) कांड के कारण कोर्ट में जब [मान हानि] की अपील हुई तब लोगों को भड़काने व प्रेरित करने वाले, लोगों से अप्रत्यक्ष रूप में दंगा कराने वाले उग्रपंथी ब्राह्मण निरपराधियों का स्वांग रचकर तटस्थ हो गये, विचारेब्राह्मणों से छू कहलाना और हमारे मराठों और मालियों को भौंकने और डसने में लगाना, उसी प्रकार गधों (गर्दभानन्द) के जुलूस में उन्हें अग्रणी होने के लिये मजबूर किया गया, उन पट्टेवाले सिपाहियों को जब फटाफट सजा हुई, तब उग्रब्राह्मण मंडली

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अपने-अपने घरों में आराम से चैन की बंसी बजा रहीं थी।" (य० दि० फडके—व्यक्ति और विचार पृ० ४९-५०)।

टि० सं० पृष्ठ पं०

१७ ३६ ३० **प्राणघातक हमलों को सहन करने की अद्भुत क्षमता..... (दयानन्द) के व्यक्तित्व में कूट-कूट कर भरी हुई थी।**

स्वामी जी की हत्या के उद्देश्य के अनेक बार यत्न किये गये, पर हम यहां केवल ७ (सात) प्राणघातक आक्रमणों का विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं:—

"वहां [रामगढ़ में] चक्रांकितों के दश आदमी मुझे मारने को आये, परन्तु उनसे बड़े संकट से बचा"। —स्वामी दयानन्द का आत्मचरित्र—पृ० ३७।

"शास्त्रार्थों की बहुत धूम तो पुष्करराज में रही,.....एक बार बहुत से पंडे लट्ठ लेकर स्वामीजी पर चढ़ आये, यों तो स्वामी जी अकेले पर्याप्त थे, परन्तु एक सहायक भी आ पहुंचा। ब्रह्माजी के मन्दिर के पुजारी मानपुरी जी मोटा डण्डा लेकर पहुंच गये और पंडों को भगा दिया"।

—इन्द्र विद्या वाचस्पति—आर्यसमाज का इतिहास—भाग १ पृ० ६२-६३।

"स्वामी जी ने [कर्णवास में बरेली के रईस राव कर्णसिंह की] धमकी के उत्तर में चक्रांकित संप्रदाय का बड़े बल से खंडन किया। ...कर्णसिंह की आँखे लाल हो गई, नथुने फड़कने लगे और हाथ तलवार की मूठ पर गया। कर्णसिंह का एक पहलवान आगे बढ़कर स्वामीजी पर हाथ डालने लगा। ब्रह्मचारी दयानन्द ने एक झटके से पहलवान को दूर फेंक दिया।.....इतने में वहाँ उपस्थित जनता में से ठाकुर कृष्णसिंह आदि राजपूत लट्ठ लेकर खड़े हो गये और कर्णसिंह को ललकारने लगे। कायर कर्णसिंह अपने पहलवानों को लेकर वहां से चला गया।... इसके पीछे भी कर्णसिंह कई नीच उपायों से क्रोध शांत करने का यत्न करता रहा। स्वामी जी को मारने के लिये उसने बदमाश भेजे।" —तत्रैव पृ० ७०।

"अनूपशहर में स्वामी जी लगभग चार मास तक रहे। पं० हीरावल्लभ और पं० टीकाराम मूर्तिपूजक थे, कई बार स्वामी जी से भिड़े भी, परन्तु अन्त को शिष्य बन गये और मूर्तियों को गंगा में प्रवाहित कर दिया। ...ब्राह्मण लोग नाराज हो गये और पराजित कायरों के हथियारों से कार्य लेना आरम्भ किया। स्वामी जी को एक ब्राह्मण ने पान में जहर दे दिया। स्वामी जी को पता चल गया और उन्होंने न्यौली कर्म द्वारा विष को शरीर से निकाल दिया। —तत्रैव पृ० ७०-७१।

[मथुरा में] "पन्डों, गुंडों और चौबों के एक बड़े समूह ने स्वामीजी के निवास स्थान पर धावा बोल दिया। धावा करने वालों के हाथों में डंडे थे। इधर स्वामीजी का स्थान भी अरक्षित नहीं था, स्वामी जी के भक्त राजपूत सदा पहरे का प्रबन्ध रखते थे। गुंडा मण्डली स्वामी जी के द्वार को सुरक्षित देखकर आगे न बढ़ सकी"। — तत्रैव पृ० ८७।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

"एक बार [प्रयाग में] राय बहादुर पं० सुन्दरलाल आदि सज्जन स्वामी जी के स्थान पर बैठे हुये थे। स्वामी जी मुस्कराते हुए उनके सम्मुख आये और उन लोगों से कहने लगे कि एक मनुष्य मेरी ओर चला आता है। उसके आने पर आपको एक कौतुक दिखाई देगा थोड़ी देर में एक ब्राह्मण मिठाई लिये आ पहुंचा, और सामने रख दी। स्वामीजी ने मिठाई का एक टुकड़ा उसे खाने को दिया, परन्तु उसने खाने से इंकार किया, उलटा कांपने लगा, तब सबने समझ लिया कि अवश्य इस मिठाई में विष मिला हुआ है, मिठाई का एक टुकड़ा कुत्ते के आगे फेंका गया, जिसे खाकर कुत्ता छटपटाने लगा और शीघ्र ही मर गया। स्वामीजी ने अपनी दयालुता के कारण उसे क्षमा कर दिया" —तत्रैव पृ० ८८

"२३ अक्टूबर १८७४ को [स्वामी जी] प्रयाग से बम्बई पहुंचे।.....बम्बई में वल्लभ संप्रदाय का विशेष जोर है।.....स्वामी जी ने जब बम्बई में उनके आचरण देखे और सुने तो उनके हृदय में बड़ा क्षोभ उत्पन्न हुआ उन्होंने बलपूर्वक खण्डन आरम्भ किया।...वल्लभ संप्रदाय के अनुयायियों में हलचल पैदा हो गयी। गोकुलिये गोसाइयों में जीवन जी गोसाईं बहुत प्रभावशाली था, उसने स्वामीजी के सेवकों को बहकाकर विष द्वारा धर्म की आवाज शांत करने का यत्न किया, परन्तु स्वामी जी को रहस्य का पता चल गया, और जीवन जी का कंटक दूर न हुआ। कुछ लोग स्वामी जी का पीछा करने लगे. वे छाया के समान पीछे रहने लगे। ताकि अवसर पाकर कांटे को उखाड़ दें। स्वामी जी निर्भय थे, परन्तु असावधान नहीं थे।" —तत्रैव पृ० ९१

टि० संख्या	पृष्ठ	पं०	
१८	३८	१	**संत तुकाराम का अभंग शैली में लिखा हुआ काव्य उन दुष्टों ने चन्द्रभागा नदी में डुबो दिया—**

संत तुकाराम के रूढि, वाह्याडम्बर, व पाखंड विरोधी काव्य से विक्षुब्ध होकर ईर्ष्यालु दुष्टों ने तुकाराम का अभंग शैली में लिखा काव्य चन्द्रभागा नदी में डुबो दिया। यहां लोकहितवादी जी ने तुकाराम के काव्य को चन्द्रभागा नदी में डुबा देने की बात कही है, परन्तु लोक कथा के अनुसार तुकाराम का यह काव्य, पुणे जनपद के, आव्वंदीदेहू क्षेत्र में प्रवाहित होने वाली इन्द्रायणी नदी में डुबाया गया।

१९	३८	१८	**पं० विष्णु शास्त्री चिपलूणकर का निबंध माला में आक्षेपात्मक अनर्गल लेख—**

"निबंध मालाकार पं० विष्णु शास्त्री चिपलूणकर ने अपने वक्तृत्व इस निबधात्मक लेख में स्वामी जी की अतिशय आलोचना की है, जो औचित्य रहित, लड़कपन से परिपूर्ण एवं गांभीर्य रहित है"।

—निर्मलकुमार फडकुले : 'लोकहितवादी : काल आणि कर्तृत्व' पृ० २४३।

२०	४०	६	**सद् ग्रन्थों के लेखन व प्रकाशन का कार्य आरम्भ किया था—**

महर्षि दयानन्द सरस्वती लिखित ग्रन्थों का विवरण परिशिष्ट दो में दिया गया है। एत-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

द्विषयक विशेष प्रामाणिक ऐतिहासिक विवरण हेतु पं० युधिष्ठिर मीमांसक लिखित—'ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास' पढ़ें। सद्ग्रन्थों के प्रकाशन के लिये ऋषि दयानन्द ने एक प्रेस भी खरीदा था जिसका नाम उन्होंने वैदिक यंत्रालय (वैदिक प्रेस) रक्खा था। यह प्रेस अब भी परोपकारिणी सभा अजमेर में सक्रिय है। महर्षि दयानन्द ने अपने सर्वाधिकार इसी परोपकारिणी सभा को प्रदान किये थे और परोपकारिणी सभा का प्रथम कर्त्तव्य 'वेद-वेदांग वा सत्य शास्त्रों के··· ·····छापने छपवाने' का बतलाया था।

टि० संख्या पृष्ठ पं०

२१ ४१ १७ **एक कल्प पर्यन्त—**

यद्यपि एक कल्प से तात्पर्य, ब्रह्मा के एक दिन (ब्राह्म दिन) से है। एक हजार चतुर्युगियों या महायुगों को ब्राह्म दिन कहते हैं। परन्तु यहां जिस प्रसङ्ग में कल्प शब्द का प्रयोग किया है—यह ब्रह्मा की १०० वर्ष की आयु की दृष्टि से है। इतना ही मुक्ति काल है। द्र० ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, सृष्टिविद्याविषय अन्तर्गत पुरुषाध्याय के १६ मन्त्र की व्याख्या में—न तस्माद् ब्रह्मणः शतवर्षसंख्याकात् कालात् कदाचित् पुनरावर्तन्त इति। १००० चतुर्युगियों का ब्राह्म दिन और इतने ही काल की ब्राह्म-रात्रि होती है। ऐसे ३६० अहोरात्र का एक वर्ष ऐसे १०० वर्षों की ब्रह्मा की आयु। इस में ३६ हजार बार सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय होता है इतना मुक्ति का काल है। द्र०—सत्यार्थप्रकाश नवम समुल्लास।

२२ ४२ ३२ **आर्य व आर्यपत्रिका नामक अंग्रेजी व हिन्दी भाषाओं में मासिक पत्रिकाओं का प्रकाशन क्रमशः लाहौर और प्रयाग में प्रारम्भ किया—**

(क) **द आर्य मंगजीन** (The Arya Magazine) - लाहौर "आर्यसमाज का प्रथम अंग्रेजी मासिक पत्र, 'दि आर्य' स्वामी दयानन्द के जीवन काल में ही प्रकाशित होना आरम्भ हो गया था। पत्र का प्रथम अंक १ मार्च १८८२ को श्री रतनचन्द बेरी के सम्पादन में सैदमिट्ठा (शहद मिट्ठा) बाजार लाहौर से निकला···ऋषि के जीवनकाल में उनके ऋग्वेद भाष्य का अंग्रेजी अनुवाद इस पत्र में प्रकाशित होता था। [इस आर्यपत्रिका की 'फाइल' से पता चलता है कि] आर्यसमाज ने अपनी शिक्षा विषयक महत्त्वपूर्ण योजना स्वामी दयानन्द के जीवनकाल में ही आरम्भ कर दी थी। इस बात का पता इसी तथ्य से लगता है कि आर्यसमाज लाहौर ने उसी समय एक पाठशाला प्रौढ़ों के लिये चालू की थी, जिसमें हिंदी एवं संस्कृत का शिक्षण होता था। इसी अंक में उक्त आर्यसमाज द्वारा एक कन्या विद्यालय स्थापित करने का भी समाचार प्रकाशित हुआ है। १८८२ में जब नारी शिक्षण स्वप्न ही था। आर्यसमाज द्वारा कन्या पाठशाला की स्थापना एक शुभारम्भ ही माना जायेगा। [इन आर्य पत्रों के अंकों में आर्यसमाज के विस्तार व स्वामी दयानन्द जी की गतिविधियों के अतिरिक्त] नवम्बर १८८३ के अंक में ऋषि दयानन्द के परलोक गमन का समाचार काला बार्डर देकर छापा गया है। दिसम्बर १८८३ के अंक में स्वामी जी के निधन के पश्चात् उनकी स्मृति को स्थायी बनाने हेतु लाहौर में डी० ए० वी० कालेज की स्थापना करने तथा तद्विषयक किये जाने

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रयत्नों का उल्लेख मिलता है। इसी अंक में कालेज के लिये प्रदत्त दान को सूची भी छपी है" [यह शोक का विषय है कि -स्वामी दयानन्द जी सरस्वती का स्मारक व भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरु, आजाद आदि क्रांतिकारियों की गौरव-गाथाओं से मंडित यह डी० ए० वी० कालेज लाहौर, देश विभाजन के बाद संप्रति इस्लामिया कालेज के नाम से संबोधित होता है इसके पास ही, लाल अक्षरों में लिखा डी० ए० वी० कालेज का नाम आज भी स्पष्ट रूप में दिखलायी देता है। इस कालेज का शुभारम्भ १ जून सन् १८८६ को हुआ था। "पत्र का वार्षिक मूल्य स्वदेश में ४ रुपये तथा विदेशों में १० शिलिंग था"। उन्नीसवीं शताब्दी के आर्यसमाजी अंग्रेजी पत्र कथ्य और प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से जितने समृद्ध थे। उतने इस शताब्दी के पत्र नहीं है"।

—डा० भवानी लाल भारतीय–आर्यसमाज के पत्र और पत्रकार पृ० १३१-१३५।

(ख) इस काल में प्रयाग से प्रकाशित होने वाली किसी 'आर्यपत्रिका' का उल्लेख नहीं मिलता है। पं० भीमसेन शर्मा सम्पादित 'आर्य सिद्धान्त' प्रयाग से प्रकाशित होता था, परन्तु उसका आरम्भ सं० १९४२ (=सन् १८८५) में हुआ था।

टि० संख्या पृष्ठ पं०

२३ ४४ १० **स्वामी जी व अनेक राजाओं का [परस्पर] गुरु-शिष्यवत् संबन्ध था—**

स्वामी जी सत्य धर्म व स्वदेशोन्नति चाहनेवाले धर्मोपदेशक थे। यथा राजा तथा प्रजा को दृष्टि में रख कर स्वामी दयानन्द जी ने राजाओं का सुधार कर राजभक्त प्रजा को सुधारने का प्रयास किया था। इसी हेतु स्वामीजी ने राजाओं के लिये एक निश्चित दिनचर्या भी बनाई थी। प्रजा का सुधार और बिगाड़ वे अधिकतम राजाओं पर ही निर्भर मानते थे, इसलिये वे उनकी दिनचर्या सुधारकर अपने समस्त आर्यावर्त्त देश का कल्याण करना चाहते थे। इसलिये उन्होंने उपदेश, विशेष नियम, रहस्य नियम, गुप्त-समाचार, औषधि-पत्रादि से राजाओं को स्वस्थ, निरोगी, पुष्ट, बलिष्ठ व्यसनमुक्त व चारित्रिक तेज से संपन्न बनाने की अन्तःकरण पूर्वक कोशिश की थी। वेद, व्याकरण, मनुस्मृति (सप्तम, अष्टम, नवम-अध्याय), षड्दर्शन (के मुख्य विषय), महाभारत (राजधर्म व आपद्धर्म प्रकरण), विदुर-प्रजागर (विदुर-नीति), आदि सत् शास्त्रों के अध्ययन की वे समय-समय पर राजाओं को प्रेरणा देते थे। अनेक राजाओं ने तो स्वामीजी के श्री चरणों में बैठकर नियमित दो-दो, तीन-तीन घंटे इन शास्त्रों का अध्ययन किया था। गुरुदेव दयानंद जी से निम्नांकित राजाओं का शिष्यवत् हार्दिक संबंध था—

१—महाराणा सज्जनसिंह उदयपुर, २–रावराजा तेजसिंह-जोधपुर, ३–नाहरसिंह जी महाराजाधिराज-शाहपुर, ४–प्रतापसिंह जी महाराजा-जोधपुर, ५–महाराज य (ज) शवंतसिंह जी राठौर-जोधपुर, ६–महाराज राजराणा जालमसिंह जी-झालावाड़, ७–महाराजा कश्मीर ८–डी० रे० ए० राजा पाकसा-मदुरा (लंका), ९–नुको जी राव महाराजा-इंदौर, १०–राव युधिष्ठिरसिंह जी रिवाड़ी (हरियाणा), ११–राव बहादुरसिंह जी राव-मसूदा। महर्षि व इन राजाओं में परस्पर हुये

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पत्राचार के विशेष अध्ययन के लिये-रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित ऋषि दयानंद सरस्वती के पत्र और विज्ञापन (भाग-१,२,३) ग्रंथ की सहायता ल ।

ऋषि दयानंद सरस्वती एवं नरेशों के आपसी प -व्यवहार से पता चलता है कि ऋषि दयानंद जी जब एक स्थान से दूसरे स्थान के लिये प्रस्थान करते थे, तब उनके साथ-तीन रथ या एक बैलगाड़ी, एक सरकारी रथ, व एक सरकारी तांगा, एक सैजगाडी, दो ऊंट, एक हाथी (या हाथी के स्थान पर रथ), छः या आठ जवानों (सिपाहियों) का पहरा, पुस्तकादि भार के लिये एक सवारी (बैलगाडी अथवा रथ आदि)और दो सवार, एक मशालची,तथा यदि साथ रहे तो, दस-बारह व्यक्ति स्वामी जी के सहयोगी कि वा सहयात्री के रूप में रहते थे । रथ, बैलगाडी, तांगा, ऊंट, हाथी आदि सवारी का सब प्रबंध स्वामी जी के लिए नरेशों की ओर से ही हुआ करता था—अनुवादक

टि० संख्या पृष्ट पं०

२४ ४४ १८-१९ **उस राज परिवार के सभी लोगों ने अपने कुलीन वैष्णवाचार्य को निमंत्रित कर उससे अपने शरीर तप्त मुद्राओं से मुद्रित (अंकित) करा लिये—**

यहां लोक हितवादी ने किस राज परिवार की ओर यह संकेत किया है, हमें ज्ञात नहीं। इस विषय का अनुसंधान होना चाहिये।

२५ ४७ २० **वर्तमान काल में [स्वामी जी के मुम्बई-पुणे आगमन काल में—**

(क) मुंबई आगमन काल (पहली बार):—मुंबई वासियों का निमंत्रण पाकर स्वामी दयानन्द जी प्रयाग से जबलपुर, नासिक होते हुए आश्विन सुदी १२ सं० १९३१ (२१ अक्तूबर १८७४) को मुंबई पहुंचे। पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक के अनुसार—"इस बार महर्षि बम्बई में कार्तिक कृष्णा (प्रतिपदा) १ से मार्गशीर्ष कृष्णा-८ संवत् १९३१ तदनुसार २६ अक्टूबर से १ दिसम्बर सन् १८७४ तक ठहरे थे। (दयानन्दीय लघु ग्रन्थ संग्रह-पृ० ६८) मुनिवर्य मेधाव्रत जी के अनुसार-ता० २६ अक्टूबर सन् १८७४ संवत् १९३१ आश्विन में स्वामी जो बम्बई पहुंचे और १-१२-१८७४ को बम्बई से सूरत गये (दयानन्द दिग्विजय-पृ० १५८-१६४)। (स्वामी सत्यानन्द सरस्वती—श्री मद्दयानन्द प्रकाश पृ० १८३) इन्द्र विद्यावाचस्पति-आर्यसमाज का इतिहास-पृ० ९१)।

(ख) बम्बई आगमन काल (दूसरी बार)—स्वामी दयानन्द जी द्वारा लाला हरिवंशलाल को अहमदाबाद से प्रेषित पत्र के निम्नांकित परिच्छेद से यह अनुमान किया जा सकता है कि स्वामी जी २९ जनवरी १८७५ के लगभग (दूसरी बार मुंबई पहुंचे होंगे। सम्बन्धित परिच्छेद निम्न प्रकार हैं।

"पौष सुदि ११ संवत् १९३१ सोमवार (१८ जनवरी १८७५) को राजकोट से अहमदाबाद आये पांच-सात दिन रहेंगे, फिर मुम्बई की तरफ जायेंगे" (ऋषि० द० स० पत्र और विज्ञापन-पृ० ४९)[८ जनवरी १८७५ से पूर्व भी एक बार "महर्षि अहमदाबाद में मार्गशीर्ष सुदि-३ से पौष वदी ५ ५ संवत् १९३१, तदनुसार ११ दिसंबर से २८ दिसंबर सन् १८७४ तक रहे थे (दयानंदीय लघु ग्रंथ संग्रह—पृ० ७४)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(ग) मुम्बई आगमन-काल(तीसरी बार)मुंबई में चैत्र शुद्ध ५ शनिवार[सं १९३२: १० अप्रैल १८७५] के दिन संध्या के साढ़े पांच बजे'(ऋषि द० स० के पत्र और विज्ञापन-पृ० ५५) 'आर्यसमाज स्थापित करके स्वामी दयानंद जी महाराज अहमदाबाद चले गये और वहां से लौटते हुये बड़ौदा में ठहरे। 'उधर मुंबई नगर में पौराणिक पंडितों ने बड़ा उधम मचा रखा था। वे आर्यसमाजियों को शास्त्रार्थ करने के लिये बार-बार विवश कर रहे थे' (श्री मद्दयानंद प्रकाश-पृ० १९८ व २०१)। बड़ौदा से स्वामी जी को पं० कमल से शास्त्रार्थ करने के लिये फिर(तीसरी बार) बंबई जाना पड़ा। 'फ्राम जी कावस जी इन्स्टीटयूट' में १२ जून सन् १८७५, ज्येष्ठ सुदी ९, संवत् १९३२ शनिवार को स्वामी दयानंद सरस्वती का पं० कमल-नयन आचार्य के साथ मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ (ऋषि० द० के पत्र और विज्ञापन-पृ० ५९) आयोजित किया गया था, परंतु अनावश्यक वाद-विवाद के अनंतर कमलनयनाचार्य सभा स्थल से उठकर चले गये। पुनः [शास्त्रार्थ के लिये आयोजित] उसी स्थान पर स्वामी जी का मूर्तिपूजा के खंडन पर व्याख्यान हुआ। (डा० भवानीलाल भारतीय आर्यसमाज के शास्त्रार्थ महारथी-पृ० ११) स्वामी जी इस नियत शास्त्रार्थ दिवस(१२ जून १८७५)से लगभग तीन सप्ताह पूर्व मुंबई पहुंच चुके थे क्योंकि संवत् १९३२ मिति चैत्र [ज्येष्ठ के स्थान में चैत्र भूल से लिखा गया है] वद्य ९ शनिवार अर्थात् २९ मई १८७५ को बंबई से श्री गोपाल राव हरि देशमुख आदि को स्वामी जी द्वारा प्रेषित पत्र इस बात का साक्षी है कि स्वामी जी २९ मई १८७५ को बंबई में थे। संभव है इस तिथि से दो-तीन दिन पूर्व भी आयें हों।

—द्रष्टव्य: संपादक: श्री पं० भगवद्दत्त बी० ए०, परिष्कर्त्ता एवं परिवर्धक: श्री पं० युधिष्ठिर मीमांसक—ऋ० द० स० के पत्र और विज्ञापन-पृ० ५७-५८

(घ) पुणे-आगमन काल [प्रथम बार] २९ मई १८७५ को स्वामी जी द्वारा बंबई से श्रीयुत गोपालराव हरि देशमुख आदि को प्रेषित पत्र से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि स्वामी जी सं० १९३२ के आषाढ मास के प्रथम चरण में पुणे पहुंच चुके थे। देशमुख जी को प्रेषित पत्र में स्वामी जी ने लिखा है कि—

"ज्येष्ठ वद्य १५ [यहां १५ के स्थान में ३० चाहिये। १५ संकेत पूर्णिमा का होता है] के पूर्व व पश्चात् पूना को हमारा जाने का विचार है। सो जिसको लिखने का योग्य होय, उसको आप लिखना" (-ऋषि० द० स० के पत्र और विज्ञापन-पृ० ५८)

"श्रीयुत महादेव गोविंद रानडे...की प्रार्थना को स्वीकार करके महाराज ने आषाढ वदी १३ सं० १९३२ को पूना नगरी में पदार्पण किया"—(स्वामी सत्यानन्द-श्रीमद्दयानंद प्रकाश-पृ० २०३)

"१८७५ ई० के जुलाई मास के आरंभ में प्रसिद्ध सुधारक श्रीयुत महादेव गोविंद रानडे के निमंत्रण पर स्वामी जी पूना गए"।

—इंद्र विद्यावाचस्पतिः आर्यसमाज का इतिहास। भाग-१-पृ० १७

स्वामीजी पर, मृत्युपर्यंत आक्षेप करनेवाले निबंधमालाकार विष्णु शास्त्री चिपलूणकर[विष्णु

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कृष्ण चिपलूजकर] ने अपने निबंधमाला [अंक-२३,नवंबर १८७५] मासिक के वक्तृत्व इस निबंध में स्वामी जी के पुणे निवास काल के संबंध में संकेत करते हुये लिखा है कि—

"या [पुणे] शहरात महिना दोन महिने सारखे गाजून केवल अजेयत्वानें जे चोहोंकडे मिखत होते" ।

अर्थात्-इस पुणे शहर में अनवरत दो मास तक यशस्वी होकर अजेय योद्धा के समान वे सर्वत्र शोभा पा रहे थे । सभी ओर उन्हीं की चर्चा और स्तुति हो रही थी ।

विष्णु शास्त्री चिपलूणकर के इस उद्धरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि-'स्वामी जी का पूरे दो महिने पुणे में निवास था' । न० र० फाटक लिखित, १ मार्च १९२४ को प्रकाशित 'न्यायमूर्ति रानडे यांचे चरित्र' से भी इस तथ्य को पुष्टि होती है कि 'स्वामी जी का पूरे दो महिने पूना में निवास था' । न्यायमूर्ति रानडे के इस जीवन चरित्र में न० र० फाटक लिखते है कि:—'पुण्यांत स्वामी चा दो महिने तक होता' । अर्थात्- स्वामी जी पूरे दो महिने तक पुणे में अपना डेरा डाले हुये थे' । (इन दो महिनों में कोई भी पौराणिक पंडित, अंगद पैर के समान [सनातनियों के गढ व महाराष्ट्र केंद्र पुणे में] दृढ स्वामी दयानंद जी के आसन को विचलित नहीं कर सका) ।

शिवरात्रि संवत् २०३२ में, जन ज्ञान प्रकाशन द्वारा प्रकाशित उपदेश मंजरी (पूना-प्रवचन) की प्रो० रत्नसिंह एम० ए० द्वारा लिलित भूमिका से यह स्पष्ट हो जाता है कि-पूना में महर्षि के सुप्रसिद्ध 'पुणे-प्रवचन' ४ जुलाई सन् १८७५ से ४ अगस्त १८७५ तक (अर्थात् पूरे एक महीने के भीतर) संपन्न हुये । तदनंतर 'स्वामी जी एक महीने और पूना में रहे-इस तथ्य को पुष्टि विष्णु शास्त्री चिपलूणकर लिखित वक्तृत्व निबंध से, न० र० फाटक लिखित, "न्यायमूर्ति रानडे यांचे चरित्र से" स्वामी जी का पुणे के भांवुर्डा (शिवाजी नगर) विभाग में एक व्याख्यान आयोजित करनेवाले श्रीयुत भालेकर जी के-'भालेकरांचे कागद पत्र: संक्षिप्त इतिहास' से, व महाकवि मेधाव्रत कृत-दयानंद दिग्विजय महाकाव्य से होती है, इन सभी का यह मत है कि 'स्वामी जी जब पुणे से अन्यत्र जाने के लिये उत्सुक हुये तो रविवार ५ सितंबर १८७५ को उनकी शोभा यात्रा निकाली गई । महाकवि मेधाव्रत जी अपने महाकाव्य में लिखते हैं—'संतरत्न [महर्षि दयानंद] जब पूने से शिवराज (शिवाजी महाराज) की राजधानी 'सतारा' को जाने के लिये उत्सुक हुये, तब श्रेष्ठ सभ्यों ने संसार हितकारी योगीश्वर [दयानंद] की शोभा यात्रा ता० ५ सितंबर [१८७५] रविवार को समारोह पूर्वक निकालने का निश्चय किया । न० र० फाटक लिखित [न्यायमूर्ति रानडे के जीवन चरित्र में] शोभा यात्रा के विवरण से यह स्पष्ट होता है कि ५ सितंबर १८७५ को रात के दस बजे तक तो स्वामी जी पुणे में ही थे । संभव है ५ सितंबर की रात या ६ सितंबर की प्रात ट्रेन से स्वामी जी पुणे से सतारा की ओर रवाना हो गये होंगे ।

इस सब विवरण के आधार पर हम यह अनुमान लगाते हैं कि—स्वामी जी का पुणे आगमन काल १ जुलाई १८७५ रहा होगा (क्योंकि ४ जुलाई १८७५ को पूने में उनके व्याख्यान प्रारंभ हो गये थे) और पुणे से (सतारा की ओर) प्रस्थान काल ६ सितंबर १८७५ को रहा होगा । (क्योंकि

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

रविवार ५ सितंबर १८७५ को रात के लगभग १० तो शोभायात्रा विदाई स्वागत समारोह में ही बज चुके थे)।

सतारा:आगमन-काल

पुणे से मंगलवार-११ अगस्त १८७५ को श्रीयुत गोपालराव हरि देशमुख को लिखित पत्र में स्वामी जी लिखते हैं:—

"आगे हम यहाँ (पूना) से सतारे को जानेवाले हैं दो एक दिन में अथवा बड़ौदे की ओर आने वाले हैं। **सो जब यहां से,वा सतारे को जाके मुम्बई की ओर चलेंगे** तब एक आद दिन दादरे के रेलघ[र] पर ठहर के उधर आने का विचार है, सो दादरे से आपके पास तार द्वारा खबर देने में आवेगी। फेर जैसी आप खबर देंगे कि प्रथम बड़ौदे को ही आना किंवा सूरत और भरूच को होके बड़ौदे को आना, वैसा किया जायेगा"।

इस पत्र से स्पष्ट है कि स्वामी जी का, ११ अगस्त १८७५ को, दो-एक दिन में, पुणे से सतारा जाने का दृढ निश्चय नहीं था, क्योंकि वे यह निश्चय नहीं कर पाये थे कि 'पुणे से सीधा मुंबई जायें या सतारा से मुंबई जायें किंवा सतारा होकर पुणे से मुंबई जायें'। पत्रानुसार दो-एक दिन में तो स्वामी जी सतारा नहीं गये। हां पुणे से २४-२५ दिन और बीत जाने के बाद रविवार ५ सितंबर १८७५ की रात को वे वाष्पयान (ट्रेन) द्वारा सतारा की ओर रवाना हुये।

पुणा:आगमनकाल (द्वितीय बार)

स्वामी जी द्वारा पुणे (या बम्बई) से १६ अक्टूबर १८७५ को श्रीयुत गोपालराव देशमुख को लिखित पत्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि स्वामी जी सतारा से पुणे नगरी में आये थे, और इस द्वितीय यात्रा में ही विधिवत् पुणे आर्यसमाज की स्थापना के साथ-साथ ही निर्वाचन भी हुआ था— सम्बन्धित पत्रांश निम्न प्रकार है—

"....पूना और सतारा का वर्त्तमान, वर्त्तमान पत्रों से सुन लिया होगा, एक नवीन बात यह है कि पूना में आर्यसमाज स्थापन हो गया है, आगे [पीछे] आर्यसमाज स्थापनार्थ दो सभा पूना में हुई थी, सो तो समाचार पत्रों से जाना होगा। परन्तु हम सतारे से आये तब यह निश्चित हुआ कि महादेव गोविंद रानडे प्रधान, केशवराव गोडबोले मन्त्री। जितने प्रार्थना-समाज के सभासद थे वे सब और अन्य बाबा गोकुले तथा काशीनाथ गाडगील एवं गंगाराम भाऊ आदि लस्करस्थ (छावनीस्थ) ६० वा ७० सभासद हुये हैं, और अन्य भी बहुत होने वाले हैं"।

—ऋषि० दयानन्द के पत्र और विज्ञापन पृ० ६०-६१ दयानन्द दिग्विजय महाकाव्य के रचयिता मुनिवर्य मेधाव्रताचार्य जी के अनुसार—'स्वामीजी' सतारा की जनता को उपदेश देकर शीघ्र ही...ता० २३-१०-१८७५ को पूना लौट आये', पूने से.....पुनः मुम्बई पधारे.....मुम्बई में २०-१०-१८७५ को पूज्यपाद (स्वामी दयानन्द जी) का 'आर्यों का नए वर्ष का प्रथम दिवस' विषय पर एक व्याख्यान हुआ"। (दयानन्द दिग्विजय—पृ० १८३-१८४)

यहाँ मेधाव्रत जी ने [किंवा: संस्कृत महाकाव्य दयानन्द दिग्विजय के हिन्दी अनुवादक :

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आर्यरत्न पं० श्री सत्यव्रत तीर्थ जी ने] स्वामीजी का यात्राक्रम तो सतारा से पुणे और पुणे से मुम्बई बताया है, पर भूल से मुम्बई में सम्पन्न व्याख्यान को तिथि पुणे आगमन से भी पूर्व [सतारा निवास काल] की दी है, उसमें असावधानी से कुछ गलती हो गई हैं, सम्भव है लेखन या मुद्रण-दोष के कारण दि १३ के स्थान पर २३ हो गया हो, क्योंकि २० अक्टूबर को स्वामी दयानन्द जी महाराज के मुम्बई में उपस्थित होने के बाद पुनः २३ को पुणे में उपस्थित रहने का प्रश्न ही नहीं उठता। अतः हमारा यह अनुमान है कि—स्वामी दयानन्द जी सतारा से चलकर १३-१०-१८७५ को (या उस से भी पूर्व) लौट आए थे। पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक के अनुसार भी "श्री स्वामी जी महाराज १६ अक्टूबर से पूर्व ही सतारा से [पूना] लौट आये थे, अतः २३ अक्टूबर को सतारा से पूना लौटना निश्चय ही अशुद्ध है" सं० युधिष्ठिर मीमांसक ऋषि द० स० के पत्र और विज्ञापन —पृ० ६२).

मुम्बई : आगमन-काल (चौथीं-बार)

"भाद्रपद सुदी २ सम्वत् १९३२ को स्वामी जी पूना से लौटकर मुम्बई में शोभित हुये।"

—स्वामी दयानन्द सरस्वती, श्री मद्दयानन्द प्रकाश—पृ० २०२

स्वामीजी द्वारा १६ अक्टूबर १८७५ को श्रीयुत गोपालराव देशमुख को प्रेषित पत्र के आधार पर युधिष्ठिर जी मीमांसक ने यह मत व्यक्त किया है कि—

"यदि यह पत्र बम्बई से लिखा गया हो तो स्वामीजी १६ अक्टूबर से पूर्व ही बम्बई पहुँच गये होंगे"।

—ऋषि द० स० के पत्र और विज्ञापन—पृ०]६२

उपर्युक्त सम-सामयिक पत्रों. लेखों व महर्षि के विभिन्न जीवन चरित्रों के आधार पर वर्त्तमान काल [अर्थात् स्वामीजी के मुम्बई, पुणें, सतारा, पुणे, मुम्बई, आगमन काल] को हम निम्न प्रकार प्रस्तुत करते हैं—(यह प्रस्तुतीकरण शत प्रतिशत सत्य न भी हो तो भी ९५% यथार्थ ही है—

मुंबई आगमन-काल (पहली बार)—
२६ अक्तूबर १९७४ [किंवा: आश्विन सुदी-१२ संवत्-१९३१]
मुंबई आगमन-काल (दूसरी बांर)—
२९ जनवरी १८७५ [किंवा: पौषः संवत् १९३१]
मुंबई आगमन-काल (तीसरी बार)—
२९ मई १८७५ [किंवाः ज्येष्ठ वद्य ९ शनिवारः संवत् १९३२]
पुणे : आगमन-काल (पहली बार)—
१ जुलाई १८७५ [किंवा: आषाढ़ः संवत् १९३२]
सतारा : आगमन काल (पहली बार)—
६ सितंबर १८७५ [किंवा : श्रावणः संवत् १९३२]

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पुणे : आगमन-काल (दूसरी बार)—
१३ अक्टूबर १८७५ [किंवा: भाद्रपद: संवत् १९३२]
मुंबई : आगमन-काल (चौथी बार)—
१५ अक्टूबर १८७५ [किंवा भाद्रपद-सुदी-२-संवत् १९३२]

टि० संख्या	पृष्ठ	पं०	
२६	४८	१२-१९	स्वामी जी के संबंध में जो लोगों का विरुद्ध दृष्टिकोण बनता था वह आगे चलकर स्वयं धीरे-धीरे परिवर्तित हो जाता था। इसका यथार्थ वर्णन···स्वामी जी के संबंध में वर्तमान पत्रों के अभिप्राय इस स्तंभ के नीचे···दे रहे हैं। उस प्रथम परिशिष्ट से यह स्पष्ट हो जायेगा कि स्वामी जी के संपर्क में रहने के बाद लोगों के मत किस प्रकार परिवर्तित हो जाते थे—

गोपालहरि देशमुख लोकहितवादी के इस जीवन चरित्र के अनुसार-पंडित विष्णु शास्त्री [विष्णु परशुराम शास्त्री] भी उन व्यक्तियों में से थे जिनका स्वामी जी के विरुद्ध दृष्टिकोण बन गया था। और उन्होंने अपनी प्रथम भेंट का लिखित रूप में वर्णन करते हुये स्वामी जी के विरोध में एक आक्षेपात्मक लेख भी लिखा था परंतु आगे चलकर वे खुले रूप में स्वामीजी की प्रशंसा करने लगे थे। परंतु लोकहितवादी जी ने इस दयानंद के व्यक्तित्व-कृतित्व परक लेख में जो यह वचन दिया था कि—'स्वामी जी के संबंध में लोगों के विरोधी दृष्टिकोण (मत) में स्वयं धीरे-धीरे या (स्वामी जी के संपर्क में रहने के बाद किस प्रकार परिवर्तन हो जाता था, उसका यथार्थ वर्णन सूर्योदय नामक पत्र से 'वर्तमान पत्रों के अभिप्राय' इस स्तंभ के नीचे स्वतंत्र रूप से एक परिशिष्ट के रूप में देंगे'। लगता है श्रीयुत लोकहितवादी जी को उस वचन पूर्ति का ध्यान नहीं रहा और जब वे स्वामी-जी विरोधी आक्षेपकर्त्ताओं के नाम भी देना भूल गयें तो, उनके मत परिवर्त्तन की यथार्थ वर्णन की तो बात ही दूर रह गयी।

१६ मार्च १८७५ को मुंबई से, श्रीयुत गोपालराव हरि देशमुख को प्रेषित पत्र में, अपने [स्वामी जी के] आकृष्णेन मंत्र (यजु० ३३।४३) के अर्थ पर, विष्णु परशुराम शास्त्री के आक्षेपात्मक लेख पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुये स्वामी दयानंद जी लिखते हैं कि—

"इंदु प्रकाश के संपादक विष्णु शास्त्री के पास आप लोगों में से कोई ने "आकृष्णेनेति" मंत्र के अर्थ हमारा उनके पर (पास) निश्चय के अर्थ पत्र भेजा होगा। उस पर उसने जो कुछ लिखा, सो सब मिथ्या ही है। और यह विष्णु शास्त्री धूर्त, विद्याहीन, हठी दुराग्रही मिथ्याचारी है। इसमें संदेह नहीं, उस विष्णु शास्त्री के विषय में एक बानगी लिखते हैं कि ऐसी मूर्खता कोई विद्यार्थी भी नहीं करेगा। [वह लिखता है—] 'ऋ गतिप्रापणयोः' इस धातु से रथ शब्द सिद्ध हुआ है, रमु क्रीडायाम्' इस धातु से नहीं। 'इससे यह अर्थ निर्युक्तिक और निर्मूल है'। इस अंधा की, भीतर और बाहर की दोनों फूट गई—आंख। पाणिनि मुनि रचित उणादिगण सूत्र [का] प्रमाण—हनिकुषिनीरमिकाशि-भ्यःक्थन् [उणा० २।२॥]। हथः। कुष्ठः। नीथः। रथः। काष्ठम्॥ यास्को निरुक्तकारः—"रथो रंहते

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

गति कर्मणः [निरुक्त ९।११॥] इत्यत्र रममाणोऽस्मिंस्तिष्ठतीति वेति ॥ इस्से रमुधातु से ही रथ शब्द सिद्ध होने से 'रमणीयो रथो रमतेऽस्मिन्निति वा'। अतः एव विष्णु शास्त्री का कहना व्यथ ही हुआ। और उसको सभा के लिये निमंत्रण भी दिला [दिया] है। परंतु वहां काय को आवेगा? वह तो झूठा-झूठा घर से बैठा बकेगा। जिसने उसके पास पत्र भेजा, सो भी व्यर्थ किया। क्योंकि ऐसे मिथ्यावादी मूर्ख के कहने का क्या ठिकाना? इसका खंडन सभा में हमने सबको सुना दिया तथा लिख भी दिया है। परंतु वह धूर्त अपने पत्र में छापेगा नहीं। और जो छापेगा तो उसका [उसको] आप लोग लिखना कि हमारा किया समाधान और उनका खंडन छापै। जो विष्णु शास्त्री न छापेंगे, तो फेर अन्यत्र छपाया जावेगा। आप लोग इन नष्ट बुद्धि वाले पक्षपातियों को पूछते हो निश्चय करने को, सो सायणाचार्यादिकों को ही यथावत् वेदार्थ का बोध नहीं है। इसीलिये इन धूर्त्तों को मध्यस्थ हम नहीं करते। इन पंडितो की बुद्धि अविद्या, लोभादि दोषों से नष्ट हो गयी है। और सब अहमदाबाद के पंडितों से उन्नीस वा बीस, तथा वैसे ही सब पंडितों का स्वभाव जानना, तथा हमारा नाम सुनते हो विपरीत उलटे चलते हैं, सो जिस पण्डित से पूछोगे वह झूठा ही कहेगा। इन पण्डितों को वेदार्थ ज्ञान का लेशमात्र भी ज्ञान नहीं है"। [ऋषि द० स० के पत्र और विज्ञापन पृ० ५३-५४, संपादक—श्री भगवद्दत्त, परिष्कर्त्ता : पं युधिष्ठिर जी मीमांसक, प्रकाशक—रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, हरयाणा]।

इसी प्रकार ११ अप्रैल १८७५ को मुम्बई से, श्रीयुत गोपाल हरि देशमुख को प्रेषित पत्र में स्वामीजी विष्णु शास्त्री के पक्षपाती स्वभाव पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहते हैं कि—

"इन्दुप्रकाश वाले विष्णुशास्त्री सुधारे वाला तो नहीं, किन्तु कुधारे वाला मालूम पड़ता है, उसका प्रत्युत्तर करके उसके पास भेजा था, परन्तु उसने नहीं छापा। इससे पक्षपाती भी दीखता है। अब वह अन्यत्र छपवाया जायगा"।

[ऋषि द० स० के पत्र और विज्ञापन—(रामलाल कपूर ट्रस्ट—ग्रा० पो० बहालगढ़, जि० सानीपत, हरियाणा)—पृ० ५६]

भरुच से स्वामी दयानन्द जी दिसम्बर सन् १८७४ में अहमदाबाद गये थे। वहां पर उनका रायबहादुर बेचरदास अम्बाईदास के मकान पर गुजराती, पौराणिक, पंडित मण्डली के साथ शास्त्रार्थ हुआ था। यह शास्त्रार्थ 'आ कृष्णेन रजसा०' तथा 'या ते शिवा तनूः' इन दो मन्त्रों पर था। शास्त्रियों को मन्त्रार्थ करने में योगीन्द्र (स्वामी दयानन्द जी) ने जीत लिया था। ('आ कृष्णेन० मन्त्र का ऋषि दयानन्द कृत अर्थ [रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा नवम्बर सन् १९८० में प्रकाशित] 'ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन' के प्रथम भाग में पूर्ण संख्या १७ पर देखें और इसी मन्त्र का पौराणिक पण्डित मण्डली द्वारा किया गया अर्थ, ऋषि द० स० के पत्र और विज्ञापन के ३ भाग में पूर्ण संख्या ६ पर देखें)।

—स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, श्रीमद्दयानन्द प्रकाश—पृ० १९३ अहमदाबाद में सम्पन्न मंत्रार्थ विषयक शास्त्रार्थ का विवरण व ऋषि दयानन्द कृत 'आ कृष्णेन०' मन्त्र का अर्थ सम्भव है

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

किसी ने तो इन्दु प्रकाश (बम्बई) के संपादक] विष्णु परशुराम शास्त्री के पास परीक्षणार्थ किंवा निश्चयार्थ भेजा था, ऋषि दयानन्द कृत मंत्रार्थ पर विष्णु परशुराम शास्त्री ने जो आक्षेपात्मक लिखा था, उसका प्रत्युत्तर ऋषि ने विष्णु शास्त्री के पास प्रकाशनार्थ भेजा था, पर उस पक्षपाती ने वह छापा नहीं, और सभा में चर्चा हेतु निमन्त्रित करने पर भी वह 'मिथ्यावादी मूर्ख' नहीं आया। स्वामी जी ने ऐसी स्थिति में अपना प्रत्युत्तर(खण्डन) सभा में सबको सुनाया और तत्पश्चात् उसे अन्यत्र भी प्रकाशित करवाने का निश्चय किया।

श्रीयुत लोकहितवादी और पं० लेखराम लिखित 'स्वामी दयानन्द' सम्बन्धी जीवन चरित्रों से तो अब यह स्पष्ट हो हो गया है कि – विष्णु परशुराम शास्त्री आरम्भ में स्वामी दयानन्द के विरोधी थे, पश्चात् तो वे स्वामीजी के प्रशंसक ही बन गये थे।

टि० संख्या	पृष्ठ	पं०
२७-२८	४९	१३-१४

—यहां (पुणे) पर १५,१६ व्याख्यान हुये,[२७] उनमें से अनेक व्याख्यान तो उसी समय किसी पुरुषार्थी पुरुष ने भी प्रकाशित किये थे[२८]।

स्वामी जी द्वारा ११ अगस्त १८७५ [संवत् १९३२: श्रावण शुद्ध ९ मंगलवार] को पुणे से श्रीयुत गोपाल राव हरि देशमुख, भोलानाथ, महीपतिराम वैचर भाई को प्रेषित पत्र से भी पुणे की गतिविधियों की जो विश्वसनीय एवं प्रामाणिक जानकारी मिलती है, वह स्वामी जी के शब्दों में ही प्रस्तुत है:—

"...पूना में महादेव [माधवराव] गोविंद रानडे, महादेव [माधवराव नहीं] मोरेश्वर कुंटे तथा लस्कर [छावनी] में गंगाराम भाऊ आदि पुरुषों ने अच्छी प्रकार व्याख्यानादि प्रबन्ध पूर्वक कराये और व्याख्यान छपवाते भी हैं"। [पुणे—प्रवचन या उपदेश मंजरी में केवल १५ व्याख्यान ही प्रकाशित हुये हैं परन्तु देवेन्द्र बाबू, पं घासीराम व मुनिवर्य मेधाव्रताचार्य के अनुसार पुणे में ५० व्याख्यान हुये [और छपे भी] थे...कुछ व्याख्यान शहर में और कुछ छावनी में होते रहे। लेखक—मेधाव्रत, अनुवादक, सत्यव्रत, दयानंददिग्विजय—पृ० १७८] "तथा वेदभाष्य बनवाने के लिए पंडित रखने के वास्ते कुछ फण्ड जमा किया है। और कुछ करने का भी है, तथा आर्यसमाज स्थापन अवश्य करना। इसलिए दो वक्त सभा होके व्यवस्थापक मण्डली निश्चित हो गई है, और एक सभा करने वाले हैं, उनमें प्रधान, मंत्री और कोषाध्यक्षादिक निश्चित करके आर्यसमाज का आरम्भ करने वाले हैं, सो शीघ्र ही होगा ऐसा मालूम पड़ता है अन्य सब वर्त्तमान "ज्ञानप्रकाश समाचार" से आप लोगों ने देखा ही होगा, ...एक पंडित रखने के लिये महादेव गोविंद आदि ने ५० रूपैयों का निश्चय किया है, तथा मथुरादास लौजी और छबीलदास लल्लू भाई आदि आर्यसमाज के सभासदों ने भी वेद-भाष्य होने के लिये २०००० रुपये जमा करने के लिये सेर(शेयर) १०० रुपैयों का खडा करके १०००० रुपैये तक तो सेर (शेयर)भर गये हैं, और बहुत शीघ्र ही वे लोग बीस हजार ही रुपैये जमा कर लेंगे, ऐसा मालूम पड़ता है, एक पंडित के लिये राजा जयकृष्णदास जी ने स्वीकार किया ही है, तथा यहां महादेव गोविंद आदि की तथा हमारी भी इच्छा है कि एक पण्डित के रखने के लिये ५० रुपैयों

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

का प्रबन्ध आप लोगों की ओर से होय तो अच्छा है, फेर जैसी आप लोगों की इच्छा होय वैसा कीजिये"। इसी प्रकार १६ अक्टूबर १८७५ [उत्तर भारतीय पञ्चांगानुसार कार्तिक बदी-२] को पूना या बम्बई से श्रीयुत गोपालराव देशमुख को प्रेषित पत्र में पुणे में आर्यसमाज स्थापित हो जाने की सूचना देते हुए स्वामी दयानन्द सरस्वती लिखते हैं कि—

"—पूना और सतारा का वर्त्तमान, पत्रों से सुन लिया होगा एक नवीन बात यह है कि पूना में आर्यसमाज स्थापन हो गया हैं। आगे आर्यसमाज स्थापनार्थ दो सभा पूना में हुई थी। सो तो समाचार-पत्रों से जाना होगा। परंतु हम सतारे से आये तब यह निश्चित हुआ कि महादेव गोविंद रानडे प्रधान, केशवराव गोडबोले मंत्री, जितने प्रार्थना समाज के सभासद् थे वे सब और अन्य बाबा गोकुले तथा काशीनाथ गाडगील एवं गंगाराम भाऊ आदि लस्करस्थ (छावनीस्थ) ६० वा ७० सभासद् हुवे हैं, और अन्य भी बहुत होने वाले हैं"। —(ऋषि द० स० के पत्र और विज्ञापन-पृ० ५९-६१)

"महर्षि दयानंद जी ने पुणे व्याख्यानों को लिपिबद्ध और प्रकाशित करनेवाले पुरुषार्थियों में सर्व श्री महादेव गोविंद रानडे, महादेव मोरेश्वर कुंटे तथा गंगाराम भाऊ [म्हस्के] की स्पष्ट गणना की है शेष नाम 'आदि' में ले लिये है। इन शेष नामों में से एक नाम गणेश जनार्दन आगाशे काजी है। पुणे प्रवचन या उपदेशमंजरी के रूप में अभी स्वामी जी के १५ व्याख्यान ही उपलब्ध हो पाये हैं। यदि उनके पुणे में ५० व्याख्यान लिपिबद्ध और प्रकाशित हुये हैं तो अवशिष्ट अन्य ३५ व्याख्यानों का अनुसंधान कार्य भी अत्यावश्यक है, परंतु महाराष्ट्र साहित्य परिषद् ग्रंथालय के प्रमुख स्तंभ म० श्री दीक्षित के कथनानुसार–'यह शोक का विषय है कि 'आर्यभूषण मुद्रणालय' के अग्नि भस्म हो हो जाने से अब ज्ञानप्रकाश पत्र की कोई फाइल शेष नहीं रही है'। यदि ज्ञान प्रकाश पत्र की फाइल मिल जाये तो इन ३५ व्याख्यानों की भी प्रकाश में आने की पूर्ण संभावना है।

टि० सं० पृष्ठ पं०

२९ ४९ २४ **हिंदू क्लब—**

इंग्लैण्ड में लगभग दो-सौ वर्ष पूर्व बड़े-बड़े सुप्रसिद्ध पंडितों की एक विद्वत् सभा जिस स्थान पर विविध विषयों पर विचार-विमर्श करने हेतु हर सप्ताह आयोजित होती थी, वह 'जानसन क्लब' के नाम से मशहूर था। उसी स्तर पर पुणे में भी विविध विषयों पर चर्चा, व्याख्यान-प्रबोधनादि करने हेतु यहां के एक प्रसिद्ध स्थान [बुधवार पेठ पुणे में-तांबडी जोगेश्वरी मंदिर से संलग्न-भिडे-वाडा] पर कुछ हदों तक विद्वत् परिषद् जमती थी। वही स्थान उस समय 'हिंदू क्लब' के नाम से सुप्रसिद्ध था। इसी हिंदू क्लब में स्वामीजी के ४ जुलाई से ४ अगस्त १८७५ तक पंद्रह व्याख्यान हुये थे।

३० ४९ ३० **वास्तव में व्याख्यान ही ऐसा होता था कि श्रोताओं को व्याख्यान भवन में शयन के लिये बिस्तर ले जाना ही अच्छा था—**

स्वामी जी की व्याख्यान-प्रभा को निष्प्रभ करने का बीड़ा रेवरंड नीलकंठ शास्त्री गोरे ने

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उठाया था, परंतु खुद उनकी विद्वता व व्याख्यान-प्रभा स्वामी दयानंद जी की तुलना में निष्प्रभ सिद्ध हो गई थी। जादू वह जो सिर पर चढ़कर बोले स्वामी दयानंद जी पर मृत्यु पर्यंत-आक्षेप करने-वाले निबंधमालाकार विष्णु शास्त्री चिपलूणकर के इस लिखित वक्तव्य का यही अभिप्राय है कि—रेवरंड नीलकंठ शास्त्री गोरे का व्याख्यान इतना नीरस निस्सार व उबा देनेवाला होता था कि श्रोताओं को नींद आने लगती थी। गोरे जैसे वक्ता का व्याख्यान सुनने की अपेक्षा (एक) नींद लेना अधिक श्रेयस्कर व लाभप्रद था।

टि० संख्या पृष्ठ पं०

३१ ५० ३ **स्वामी जी का फजिती करने की निश्चय कर लिया—**

"न्यायमूर्ति महादेव गोविंद रानडे श्री महादेव मोरेश्वर कुंटे आदि सुधारक दल के नेताओं ने यति-सम्राट् को पूना आने के लिये निमंत्रण दिया था।··· पूना में [स्वामीजी] विट्ठल पेठ में श्री शंकर सेठ के भवन में ठहरे। पश्चात् शीघ्र ही उन्होंने यह विज्ञापन दिया कि—हम अमुक-अमुक ग्रंथ को प्रामाणिक और अमुक-अमुक को अप्रामाणिक मानते हैं [प्रायः स्वामीजी जहां-कहीं भी जाते थे। लिखित विज्ञापन देकर वेद-विरुद्ध बातों पर शास्त्रार्थ के लिये पंडित मंडली को आहूत करते थे। शास्त्रार्थ के अतिरिक्त ज्ञान-चर्चा और व्याख्यानों के माध्यम से भी प्रबोधन के महत्कार्य में वे सतत सक्रिय रहते थे] उस समय पुण्य नगर में पुण्यात्मा के जन-पुण्य-कारक प्रभावशाली उत्तम ५० व्याख्यान हुये, वे मनोहर दृष्टांतों से रुचिकर होने के कारण जनता को प्रिय लगते थे। वाग्मीश्वर का एक दिन व्याख्यान और दूसरे दिन शंका समाधान क्रमशः हुआ करता था। ···न्यायमूर्ति रानडे महोदय और कुंटे महोदय, युगांतर प्रवर्त्तक आचार्य दयानंद के शिष्य रत्न बन गये थे," (मुनिवर्य मेधाव्रताचार्य-दयानंद दिग्विजय-उत्तरार्द्ध-पृ० १७८-७९) पर कुछ ईर्ष्यालु लोगों ने स्वामी जी की फजिती (उपहास) करने का निश्चय कर लिया था। जिनमें महाराष्ट्र के कुछ प्रसिद्ध नाम निम्न प्रकार हैं:—

१. विष्णु शास्त्री चिपलूणकर, २. महामहोपाध्याय रामशास्त्री आपटे, ३, रेवरंड नीलकंठ शास्त्री, ४-५, कमिश्नर कचेरी के पट्टेवाले व गर्दभानंद शोभा यात्रा के दो नेता, [संभवतः इनमें से एक का नाम-नारायण भिकाजी जोगलेकर है]।

पूना से ११ अगस्त १८७५ को-श्रीयुत गोपालराव हरि देशमुखको प्रेषित पत्र में संभवतः इन्हीं ईर्ष्यालु (पुणे) महाराष्ट्र के रत्नों के संदर्भ में स्वामी दयानंद जी सरस्वती लिखते हैं कि—"यहां (पूना) के पंडित लोग सामने तो कोई भी नहीं आये, किंतु दूर से बड़-बड़ किया और करते भी हैं, सो जानना"।

३२ ५० ४ **भक्त और स्नेही लोगों ने स्वामी जी को हाथी पर बिठाकर उनका जुलूस निकाला—**

न्यायमूर्ति महादेव गोविंद रानडे, श्री महादेव मोरेश्वर कुंटे [ये दोनों ही सहाध्यायी व स्नेही थे] व पुणे शहर के तत्कालीन सुप्रसिद्ध वकील व म० गो० रानडे जी के मित्र श्री गंगाराम भाऊ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

म्हस्के तथा गणेश जनार्दन आगाशे आदि "श्रेष्ठ सभ्यों ने संसार हितकारी योगीश्वर की शोभा यात्रा ता० ५ सितम्बर रविवार को समारोह पूर्व निकालने का निश्चय किया। निश्चित दिन [५ सितंबर को ही, क्योंकि जलूस इसी दिन निकाला था] संवर्धन सभा [व्यवस्थापक मंडली पुणे छावनी में] संगठित हुई। योगिराज ने "यथेमां वाचं कल्याणीम्" इत्यादि वेद मंत्र की व्याख्या की। पश्चात् गंगाराम भाऊ म्हस्के ने पूना निवासियों की ओर से कृतज्ञता प्रकट की। अनेक वक्ताओं ने संयमीश्वर के उपकारों का वर्णन किया। इसके अतिरिक्त गुरुदेव को पुष्पमाला पहनाई गई। कई सज्जनों ने एक जोड़ा-शाल, पगड़ी, एक रेशमी पीताम्बर और एक रेशमी चादर श्रद्धा के साथ श्री चरणों में भेट किए और उन पर पुष्प वर्षा की। यतीन्द्र को पश्चात् दंतीन्द्र (गजेन्द्र) पर सवार होने के लिए निवेदन किया गया, किंतु वे उसको स्वीकार न कर विद्वान् महोदयों के साथ पैदल ही चले। आगे-आगे हाथी, उसके पीछे अश्व सेना, तदनु सैनिक-दल, उनके पीछे बाजे वाले फिर योगी सम्राट् और उनके भक्तजन और अंत में अन्य लोग चले। इस स्थान सभा [समारोह] में पारसी और यहूदी सज्जन भी सम्मिलित हुये थे। भला! मनुष्य मात्र के उपकार का व्रत धारण करनेवाले महापुरुष में कौन श्रद्धा नहीं प्रकट करेंगे"? (मुनिवर्य मेधाव्रताचार्यः दयानंद दिग्विजयः उत्तरार्ध—पृ० १७९—१८०)।

टि० संख्या पृष्ठ पं०

३३ ५० १७-१९ **पुणे वासियों को इस उद्दंडता और अतिशय दुर्व्यवहार व छल कपट के विरुद्ध प्रायश्चित्त स्वरूप जैसी सजा मिलनी चाहिये, वैसी आंशिक रूप में सजा भी मिली—**

"छावनी से समारोह पूर्वक यतिराज की शोभा यात्रा निकली" तो "दूसरी ओर गर्दभ दल के नेता नारायण भिकाजी जोगलेकर आदि पौराणिकों ने जड़ पूजा से उत्पन्न जड़मति को दर्शानेवाली, मानव जन्म में भी पशुता का अभिनय करनेवाली महर्षि के उपहास में गर्दभ समारोह यात्रा निकाली। गजेन्द्र को महापथ से जाते हुये देखकर कुत्ते और गदहे चाहे जितना भोंके!! किंतु नरेन्द्रों से पूजित गजराज अपनी गौरव युक्त गंभीरता को छोड़ दें? खल मंडली ने ब्रह्मज्ञानी मुनीन्द्र पर ईटें, पत्थर, गोबर और कीचड़ फेंकना आरंभ कर दिया और गालियां भी बरसाने लगे, किंतु गुरुदेव ने समुद्र की सी असीम गंभीरता और हिमाचल की सी निश्चलता की शोभा को धारण किया। यतिराज (दयानंद) की शोभा-यात्रा पुण्यपुरी के व्याख्यान भवन के ज्यों ही पास आई त्योंही उन 'गर्दभों' ने लोक निंदित उपद्रव किया। किंतु शांति के सागर, चन्द्र विनिन्दक मुखवाले, बृहस्पतिसम स्वामीजी ने सहस्त्रों श्रोताओं से घिरे हुये सभा भवन में गंभीर शांति से जन कल्याणकारिणी वाणी से उपदेश दिया। पश्चात् न्यायमूर्ति रानडे, कुण्टे महोदय और शास्त्री रघुनाथ ने अपने अपने भाषणों में कहा कि 'महापुरुषों! जगन्मंगलाभिलाषी जगद्गुरु दयानंद ने मनुष्य जाति के अभ्युदय एवं मोक्ष के लिये वैदिक धर्म का प्रकाश किया है।...सज्जनों ने सोचा कि—"संन्यासी, भेंट रूप में द्रव्य न ग्रहण करेंगे तो वेदभाष्य प्रकाशन के लिये अर्थ साहाय्य करना अच्छा होगा"। इस प्रकार प्रस्ताव करके सर्वानुमति से २५) रुपये यतीन्द्र को भेंट किए गए। मुनींद्र ने यह साहाय्य सादर ग्रहण किया। तत्पश्चात् सभास्थ पुरुषों ने स्वामी जी पर पुष्प वर्षा की। महर्षि सभा से अपने स्थान पर जा रहे थे.

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तब गदहों ने उनके ऊपर ढेले (ऊले) फेंके। इस गदर्भ लीला को देखकर इंसपेक्टर 'ट्रेन' उन नर पशुओं को पकड़ने लगे। तब ऋषि ने मना कर दिया और समझाया कि ये मूर्ख भले ढेले फेंके। मेरी इससे कोई हानि नहीं है और न ही इन पर मेरा रोष है"।

मेधाव्रत-दयानंद दिग्विजय-उत्तरार्ध-(पृ० १८०-१८२)—

दोषी पुणेवासियों को इस उद्दंडता और अतिशय दुर्व्यवहार युक्त छलकपट के विरुद्ध प्रायश्चित्त स्वरूप आंशिक रूप में जो सजा मिली, उसका विस्तार से विवरण=वर्णन टिप्पणी संख्या १६ पृष्ठ ११३-११५ में पीछे कर दिया गया है अतः वहीं पर अवलोकन करें।

टि० संख्या पृष्ठ पं०

३४ ५० २१-२२ **मालाकार ने अपनी निबंधमाला के 'वक्तृत्व' इस निबंध में निरुपाय होकर वक्ताओं की माला में श्रीमद्दयानंद का भी समावेश किया है—**

निबंध मालाकार विष्णु शास्त्री चिपलूणकर का उद्देश्य स्वामी दयानंद जी की वक्तृत्व कला पर प्रकाश डालना न होकर, उनका उपहास करना है। स्वामी जी की वक्तृत्व कला पर प्रकाश डालने की अपेक्षा स्वामीजी के प्रगतिशील विचारों का उपहास करना ही उनका ध्येय रहा है, इसलिये श्रीयुत लोकहितवादी जी के मतानुसार–'उपहास करने के उद्देश्य से ही विष्णु शास्त्री चिपलूणकर ने निरुपाय होकर वक्ताओं की श्रेणी में स्वामीजी की गणना की है। फिर भी चिपलूणकर जी का यह निबंध सरस, रोचक व मार्मिक शैली में लिखा हुआ है और स्वामी जी का एक प्रत्यक्ष सजीव चलचित्र सा सक्रिय शब्द चित्र प्रस्तुत करता है।

३५ ५२ २०-२२ **संत तुकाराम (बोवा) का छल करने के लिये जिस प्रकार चांडाल वृत्ति का ब्रह्मपुरुष (ब्राह्मण) रामभट्ट वाघोलकार हुआ था—**

संत तुकाराम की जैसे-जैसे कीर्ति फैलने लगी। वैसे-वैसे ईर्ष्यालु लोगों की ओर से उन्हें छला और सताया जाने लगा। एतद्विषयक एक आख्यायिका प्रायः सुनाई जाती है:—पुणे के पास वाघोली गांव में रामेश्वर भट्ट नामक एक विद्वान् ब्राह्मण रहता था। वह बड़ा ही ईर्ष्यालु था, उसे तुकाराम की प्रगति असह्य होने लगी, वह उनका द्वेष्टा बन गया। एकदिन उसने तुकाराम को बुलाकर कहा कि–तू लोगों को बहका रहा था, ब्राह्मण न होते हुये भी वेदों का अर्थ बतलाने का तूने बहुत बड़ा पाप किया है। तुम्हें अभंगों (काव्य) की रचना करना तुरंत बंद कर देना चाहिये। यह सुनकर तुकाराम को बहुत बड़ा आघात हुआ। ईश्वरीय प्रेरणा से वे काव्य रचना करते थे, पुनरपि उन्होंने रामेश्वर भट्ट की इच्छानुसार अभंग लिखना बंद करने का तो निश्चय कर लिया, पर प्रश्न यह उठा कि अब तक जो अभंग रचे गये थे, उनका क्या करना चाहिये। रामेश्वर भट्ट ने उत्तर दिया-नदी में फेंक दो। यह सुनकर तुकाराम को असीम दुःख हुआ, फिर भी उन्होंने कठोर अन्तःकरण से सभी गीत, भजन, अभंगादि काव्य पत्र के साथ कपड़े में बांधकर इंद्रायणी नदी में डाल दिये और यह अनुभव किया कि–'स्वयं ईश्वर को ही मेरी सेवा की आवश्यकता नहीं है। यह सोचकर उन्होंने अपने जीवन का अंत करने का निश्चय कर लिया। मंदिर के सामने बैठकर उन्होंने अनवरत ईश्वर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

[विट्ठल] का जप करना शुरु कर दिया। इसी तरह तेरह दिन बीत गये। न तो भोजन किया और न ही पानी पिया। सभी तुकाराम के भक्त चिंतित हो उठे। चौदहवें दिन एक चमत्कार हुआ-एक भक्त ने आकर सूचना दी कि अभंग (काव्य) की गठरी नदी पर तैर रही है। यह जानकर तुकाराम को अतिशय प्रसन्नता हुई वे नदी पर गये और उन्होंने अपना अमूल्य ग्रंथ.अभंग काव्य-बाहर निकाल लिया। जब यह समाचार रामेश्वर भट्ट को मिला तो उन्हें अपने किये कर्मों पर बहुत ही पश्चात्ताप हुआ और उन्होंने सत तुकाराम का शिष्यत्व स्वीकार कर लिया। इसी प्रकार देहू गांव के पुजारी मंबाजी भी, संत तुकाराम का द्वेष किया करते थे। तुकाराम द्वारा मंदिर मार्ग से कांटे हटाने पर उन्होंने उन पर बगिया को तहस-नहस करने का आरोप लगाकर उनकी कीकर की कंटारी डार से पिटाई की थी।

टि० सं० पृष्ठ पं०

३६ ५३ ३-४ **इन अमेरिका प्रदेशस्थ थियोसाफिकल सोसाइटी के लोगों से तो हमारे पाठक सुपरिचित होंगे ही।**

यहां पर 'थियोसाफिकल सोसाइटी के लोगों से' तात्पर्य कर्नल अल्काट और मैडम ब्लैवेटस्की से है, 'कर्नल अल्काट की जन्मभूमि अमेरिका थी तो मैडम ब्लैवेटस्की की रूस थी। मैडम ब्लैवेटस्की रूस में एक जर्मन परिवार में उत्पन्न हुई थी, परन्तु कालांतर में उन्होंने रूस से मिश्र होते हुये अमेरिका में आश्रय लिया था'।

—इन्द्र विद्या वाचस्पति, आर्यसमाज का इतिहास प्रथम भाग पृ० ११७

"कर्नल अल्काट का जन्म अमेरिका के आंरेज नगर में ई० सन् १८३२ में हुआ। आप वहां कृषि विभाग में अफसर थे। फिर वकालत शुरु की। उसी समय रूसी महिला काउन्टेस मेडम ब्लैवेटस्की से उनकी भेंट हो गई। दोनों ने मिलकर करामात की चर्चा फैलायी कि वे स्वर्ग से चीजें मंगा देते हैं और भूत-प्रेत उनके हाथ में हैं। वहां न्यूयार्क शहर में इन्होंने ८ सितम्बर १८७५ ई० को अपने नये मत 'थियोसाफिकल सोसायटी' की नींव डाली और आर्यसमाज से अपना सम्बन्ध जोड़ने व ऋषि दयानन्द के दर्शनार्थ १६-२ १८७९ ई० को भारत में आये। इनकी संस्था को आर्यसमाज की शाखा घोषित करने के कुछ दिन बाद जब दयानन्द को ज्ञात हुआ कि ये ईश्वर को नहीं मानते हैं और झाडे झपटे की बातें भी इनमें हैं, तब इनसे कोई सम्बन्ध न रक्खा। तब सन् १८८२ ई० में इस युगल जोड़ी ने मद्रास के आडियार स्थान में थियोसाफिकल सोसाइटी की इमारत बनवाई, १८९१ ई० में मैडम ब्लैवेटस्की मर गई। कर्नल अल्काट भी १७ फरवरी १९०७ ई० को इस संसार से चल बसे। कर्नल के शव का अग्नि संस्कार हुआ। भस्मी आधी तो समुद्र में डाली व आधी (काशी में) गंगा में प्रवाहित हुई। यह बात हिंदू धर्मानुकूल हुई। इन्होंने ३१ वर्ष में अपनी सभा की लगभग १ हजार शाखाएं खोली।" —ऋषि द० स० के पत्र और विज्ञापन, परिशिष्ट, पृ० ९८३-९८४

३७ ५३ २०-२१ **अत्यल्प समय में उनसे जितना कार्य संभव हो सका उतना उन्होंने किया।**

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्वामी जी का जन्म विक्रमी संवत् १८८१ में, व निर्वाण विक्रमी संवत् १९४० में हुआ था। तदनुसार उनकी आयु ५१ वर्ष की थी। परन्तु विद्याध्ययन [मथुरा] के दो वर्ष पश्चात् विक्रमी संवत् १९२२ में स्वामी जी ने सर्वप्रथम कार्यक्षेत्र में पदार्पण किया था, तदनुसार १८ वर्ष का अत्यल्प समय ही उनके कार्यकाल का रहा है।

टि० संख्या पृष्ठ पं०

३८ ५४ २६ **मृत्यु-पत्र तैयार करके रखा है।**

मृत्यु पत्र से तात्पर्य स्वीकार-पत्र (वसीयतनामा) से है, प्रथम स्वीकार पत्र ऋषि दयानन्द जी ने अत्यधिक शारीरिक अस्वस्थता के कारण तैयार किया था, इसकी रजिस्ट्री १६ अगस्त १८८० के दिन मेरठ में हुई थी, और द्वितीय स्वीकार पत्र २७ फरवरी संवत् १८८३ ई० को, मंगलवार के दिन सायंकाल ७ बजे, उदयपुर में, श्रीमानों के हस्ताक्षर और राजकीय मोहर लगाने के पश्चात् माननीय व प्रतिष्ठित हुआ था, प्रथम स्वीकार पत्र में परोपकारिणी सभा के अष्टादश सभासद् थे तो द्वितीय स्वीकार पत्र में त्रयोविंशति सभासद् थे।

३९ ५५ ६ **हमें इसमें कोई संशय नहीं कि स्वामीजी के मृत्युपत्र के अनुसार ही सभी कार्य सम्पन्न होंगे।**

स्वामी जी ने अपने मृत्युपत्र [स्वीकार-पत्र] में परोपकारिणी सभा के सभासदों को निम्नांकित ३ कर्त्तव्यों को पूर्ण करने के लिये, निजी सम्पत्ति व्यय करने के अधिकार प्रदान किये थे। **पहला कर्त्तव्य वैदिक शिक्षा का प्रबन्ध था, दूसरा कर्त्तव्य लेख वेदवाणी द्वारा उपदेशक मंडली को भेजकर प्रचार-व्यवस्था करना था और तीसरा कर्त्तव्य दीनों, अनाथों को उठाना उनकी सहायता करना था।** इस प्रकार आर्यसमाज की संरक्षिका परोपकारिणी सभा को स्थापित करने की पृष्ठभूमि में स्वामी जी के ३ उद्देश्य थे -- १—वेद और वेदांग आदि के पढ़ने-पढ़ाने व वैदिक ग्रन्थों के छपवाने की व्यवस्था। -- २—देश और देशांतर में भेजने के लिये उपदेशक मंडलियों का प्रबन्ध। ३—भारत के दीन और अनाथ जनों को सहायता देना।

'लोकहितवादी' को इस बात का पूर्ण विश्वास था कि स्वामीजी के मृत्यु-पत्र के अनुसार सभी कार्य सम्पन्न होंगे। इसी लिये उन्होंने यह कहा है कि हमें इसमें कोई संशय नहीं है। यहां पर 'हमें' शब्द भाषा लोकानुसारिणी होती है, इस सिद्धान्त के आधार पर व्यक्तिवाचक है, वैसे परोपकारिणी सभा के सभासदों में लोकहितवादी जी के अतिरिक्त मुम्बई राज्य से अन्य दो सभासद् लिये गये थे। मुम्बई राज्य के लिये गये तीनों परोपकारिणी सभासदों के नाम निम्न प्रकार हैं—

१—(लाला) राव बहादुर रा० रा० पंडित गोपालराव हरि देशमुख [लोकहितवादी] —पूना
मेम्बर कौंसिल गवर्नर बंबई और प्रधान आर्यसमाज, बंबई।

२—(लाला) राव बहादुर रा० रा० महादेव गोविंद रानडे जज। —पूना

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

३—पं० श्यामजी कृष्ण वर्मा प्रोफेसर संस्कृत यूनिवर्सिटी आक्सफोर्ड, लंडन। —बंबई

टि० संख्या पृष्ठ पं०

४० ५५ २३ **इस प्रकार·····यह लिखा हुआ भी हम उस सत्पुरुष के चरण कमलों में समर्पित करते हैं।**

मूल मराठी लोकहितवादी मासिक [पं० स्वामी श्रीमद्दयानन्द सरस्वती विशेषांक] पत्र में—'इस प्रकार·····समर्पित करते हैं'—इस वाक्य से न तो कोई नया परिच्छेद प्रारम्भ होता है और न ही समाप्त होता है, इससे पूर्व व पश्चात् के परिच्छेद मूल लेख में एक परिच्छेद के रूप में ही हैं, अर्थात् तीनों परिच्छेद मूल मराठी लेख में इस हिन्दी अनुवाद की तरह तीन परिच्छेदों में न होकर मूलतः एक परिच्छेद के रूप में ही एकाकार हैं, हमने प्रसंगानुकूलता, सरलता और सुविधा की दृष्टि से मूल मराठी लेख के एक परिच्छेद को तीन परिच्छेदों में विभक्त कर दिया है।

—अनुवादक

४१ ५६ १६-१७ **इससे आगे हमने····उससे यह समझ में आ जायेगा कि उनका कैसा और कौन सा प्रयास (उद्योग) किस प्रकार चल रहा है—**

मूल मराठी लोकहितवादी मासिक [पं० स्वामी श्रीमद्दयानंद सरस्वती: विशेषांक] में यह [इससे···चल रहा था] संपूर्ण परिच्छेद—पं० दयानंद सरस्वती: अनेक समाचार पत्रों के अभिप्राय'—इस शीर्षक से पूर्व प्रकाशित किया गया है, पर हमने उसे मूल लेख से कम और समाचार पत्र विषयक शीर्षक से अधिक संबंधित होने के कारण [दयानंद सरस्वती: समाचार पत्रों के अभिप्राय] इस कोष्ठान्तर्गत शीर्षक की छाया में (अंतर्गत) दिया है, शब्दांकित किया है

४२ ५६ १७ **बंगाली, (कलकत्ता)**—द्र०—३ नवंबर, १८८३ ई०। [इस पत्र के संपादक भारतीय ग्लैडस्टन, बंगाल केसरी सुप्रसिद्ध देशभक्त और राष्ट्रीय नेता-बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जी थे]।

४३ ५४ ७ द्र० **ट्रिब्यून, (लाहौर)**—द्र० ३ नवंबर, १८८३ ई०

४४ ५७ १२ द्र० **इंडियन एम्पायर, (कलकत्ता)**—द्र०—४ नवंबर, १८८३ ई०

४५ ५७ १६ द्र० **हिंदू पेट्रिअट, (कलकत्ता)** द्र०—८ नवंबर, १८८३ ई० [मराठी में पेट्रियट का उच्चारण पेट्रिअट किया जाता है]

४६ ५७ २२ **इंडियन क्रानिकल (बांकीपुर)**

इंडियन क्रानिकल कलकत्ता [तिथि अज्ञात] संभवत 'इंडियन क्रानिकल' बांकीपुर व कलकत्ता से, एक ही समय प्रकाशित होता होगा। लोकहितवादी पं० गोपालराव हरि देशमुख जी ने इसे बांकीपुर से प्रकाशित बताया है तो पं० गोपालराव हरि प्रणतांकर ने दयानंद दिग्विजयार्क [महर्षि के जीवन काल में लिखा प्रथम प्रामाणिक जीवन चरित्र] में इसे [इंडियन क्रानिकाल

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

को] कलककत्ता से प्रकाशित बताया है। संभव है इंडियन क्रानिकाल के कलकत्ता संस्करण के अतिरिक्त बांकीपुर संस्करण भी एक साथ निकलता होगा, क्योंकि दोनों सस्करणों [श्रद्धांजलि] की भाषा मूलतः एक ही है।

टि० संख्या पृष्ठ पं०

४७ ५७ २५ हिंदू आब्झरवर, मद्रास—
हिंदू अब्जरवर, मद्रास: १८ नवंबर, १८८३ ई०

अब्जरवर का मराठी उच्चारण 'आब्झरवर' होता है। हिंदू अब्जरवर-मद्रास की तरह, मद्रास से ही प्रकाशित होने वाले थिंकर (११ नवंबर, ८३) तथा हिंदू में भी इस प्रकार की सम्मतियां छपी थीं।

४८ ५८ ६ पंजाब टाईम्स, (रावलपिंडी)—टाईम्स पंजाब [केवल शब्द विपर्यय], रावलपिंडी,: १० नवम्बर १८८३ ई०

४९ ५८ १८ गुजरात मित्र, (सूरत)—द्र०—११ नवंबर १८८३ ई०

—गोपालराव हरि-दयानंद दिग्विजयार्क-पृ० २२१-२२४।

[इसी प्रकार-बंगाल पब्लिक ओपिनियनःकलकत्ता (८ नवंबर, १८८३), लिबरलः कलकत्ता (११ नवंबर १८८३), इंडियन मैसेञ्जरः कलकत्ता (११ नवंबर १८८३), बंगवासी, संजीवनी, एज्युकेशन गजट, सलवा समाचार तथा ग्राम बांट प्रकाशिकाः (सम-सामयिक कलकत्ता के पत्र), इंडियन स्पीकरः बंबई (१८ नवंबर १८८३), इंग्लिश क्रानिकलः बांकीपुरः पटना (५ नवंबर १८८३), दीनबंधुः बंबई (४ नवंबर १८८३), बंबई प्रांत के गुजरातीः बंबई (४ नवंबर १८८३), दैनिक समाचारः बंबई (२ नवंबर १८८३), सुबोध पत्रिका, यजदान परस्त, सन्मार्ग दीपिका (सम-सामयिक बंबई के पत्रों, जमशेद दैनिकः बंबई (२ नवंबर, १८८३), वर्त्तमान सार, सूर्यप्रकाश (सूरत के सम-सामयिक पत्रों), रास्त गुफ्तार (सत्यवक्ता) [संभवत] बंबई (४ नवंबर १८८३] अवध अखबारः उर्दू दैनिक (८ नवंबर १८८), हिंदुस्तानी, नसीम हिंद, बुल्द केसरी, क्षत्रिय हितकारी, बनारस (संयुक्त प्रांत के सम-सामयिक पत्र) कोहिनूर, लाहौर, आफताब पंजाब, अंजुमन अखबार, ज्ञान प्रदायिनी पत्रिका, लाहौर विक्टोरिया पेपर, स्यालकोट, (पंजाब के सम-सामयिक पत्र), मध्यप्रदेश विलासपुर-समाचार (सामयिक मध्य प्रदेश का पत्र) सज्जन कीर्ति सुधारक-उदयपुर (राजस्थान का सामयिक पत्र), हिंदी प्रदीपः प्रयाग (यह पत्र हिंदी के विख्यात लेखक पं० बालकृष्ण भट्ट के संपादन में प्रकाशित होता था), भारतबंधुः अलीगढ, शुभचिंतकः शाहजहांपुर, आर्य समाचारः मेरठ, बदायूं समाचार (सम-सामयिक संयुक्त प्रांत के पत्र) आर्यावर्त्त-कलकत्ता, दि आर्य मैगजीन-लाहौर, रीजेनेरेटर आफ आर्यावर्त्त-लाहौर, देशहितैषी अजमेर, आर्यदर्पण-शाहजहांपुर, देशोपकार-लाहौर (आर्यसमाजिक पत्र) आदि सम-सामयिक पत्रों में भी महर्षि के महानिर्वाण पर सम्मतियुक्त श्रद्धांजलियों व लेखों द्वारा शोक व्यक्त किया गया था। [—द्रष्टव्य-गोपालरावहरि प्रणतकारः दयानंद दिग्विजयार्क-[सं० डा० भवानीलाल भारतीय] पृ० २ ० से २२७)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

टि० संख्या पृष्ठ पं०

५० ५८ १९ **श्रीमद्दयानंद सरस्वती की ग्रंथमाला—**

वर्णानुक्रमानुसार ऋषि दयानंद जी के स्वरचित ग्रंथों की सूची निम्न प्रकार है:—

१, अनुभ्रमोच्छेदन
२. अष्टाध्यायी भाष्य
३. आत्मचरित
४, आर्यसमाज बंबई के २८ नियमों की व्याख्या
५. आर्याभिविनिय
६. आर्योद्देश्यरत्नमाला
७. काशी शास्त्रार्थ
८. कुरान हिंदी
९. गोकरुणानिधि
१०. गौतम अहिल्या की कथा
११. जालंधर की बहस
१२. पञ्चमहायज्ञविधिः संध्याभाष्य-प्रथम संस्करण
१३. पञ्चमहायज्ञविधिः द्वितीय संस्करण
१४. पोपलीला
१५. प्रतिमापूजनविचार
१६. प्रश्नोत्तर हलधर
१७. प्रश्नोत्तर उदयपुर
१८. प्रश्नोत्तरी (जगन्नाथ कृत) का उत्तर
१९. भागवतखंडनम् (वैष्णम् मत खंडन)
२०. भ्रमोच्छेदन
२१. भ्रांतिनिवारण
२२. मेला चांदापुर (सत्यधर्म विचारः चांदापुर शास्त्रार्थ)
२३. वेदभाष्यः —
    १. चतुर्वेद-विषय सूची
    २. ऋग्वेद-विषय-स्मरणार्थ-सूची (अप्राप्त)
    ३. ऋग्वेद भाष्यम्ः प्रथम 'नमूने का अक
       (गुजराती और मराठी अनुवाद सहित
    ४. ऋग्वेद भाष्यम्ः द्वितीय नमूना अंक
    ५. ऋग्वेद के कुछ सूक्तों का विस्तृत भाष्य (अप्रकाशित)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

६. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका

७. ऋग्वेदभाष्य } १. 'अपूर्व वेदभाष्य

८. यजुर्वेदभाष्य } ऋङ्-माध्यन्दिन—संहिता।

२४. वेदविरुद्ध मत-खंडनम् (वल्लभ[आचार्य] मत खंडन)

२५. वेदन्ति-ध्वान्त-निवारणम् (अद्वैतमत खंडन)

२६. व्यवहार भानु

२७. शिक्षापत्री-ध्वान्त-निवारणम् (स्वामी नारायण मत खंडन)

२८. संस्कारविधि प्रथम संस्करण

२९. संस्कारविधि द्वितीय संस्करण

३०. संस्कृत-वाक्य-प्रबोध

३१. सत्यार्थप्रकाश प्रथम संस्करण

३२. सत्यार्थ प्रकाश द्वितीय संस्करण

३३. सत्यासत्य-विवेक (स्काट के साथ शास्त्रार्थ)

३४. **वेदांग प्रकाशः—**

१. वर्णोच्चारण शिक्षा

२. संधि विषय

३. नामिक

४. आख्यातिक

५. पारिभाषिक

६. सौवर

७. उणादि कोष

८. निघण्टु

९. अव्ययार्थ

३५. निरुक्त [निरुक्त ब्राह्मण आदि के प्रसिद्ध शब्दों की सूची]

३५, पाणिनि के ग्रन्थः—

१. अष्टाध्यायी

२. धातुपाठ गण

३. उणादि गण

४. शिक्षा

५. प्रातिपदिक गण

३७. आलंकारिक कथाः—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

[१. प्रजापति और उसकी दुहिता, २. गौतम और अहल्या, ३. इन्द्र और वृत्रासुर : ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन, प्रथम भाग, पृ० ७२-७६]

विशेष:—"ऋषि दयानन्द के हस्तलेखों की जो सामग्री परोपकारिणी-सभा के संग्रह में इस समय तक सुरक्षित है, उसमें अभी भी बहुत सी सामग्री वा पुस्तकें ऐसी हैं, जिनका प्रकाशन अभी तक सम्भव नहीं हो सका। हमारा तो मन्तव्य है कि न केवल ऋषि के बनाये या बनवाये ग्रन्थ वा अन्य अप्रकाशित सामग्री (सूचियां आदि) ही छपनी चाहियें, अपितु जिन मुद्रित ग्रन्थों का उपयोग ऋषि दयानन्द ने अपने ग्रन्थों के लेखन में किया था, उनके मार्जन-स्थान (=हाशिये) पर कहीं-कहीं उनके हाथ के संकेत वा शुद्धिकरण किया गया है, उनका भी संकलन प्रकाशित करना चाहिये" अत: आवश्यक है कि इस प्रकार के कार्य को परोपकारिणी सभा के सदस्य विशेष महत्त्व दें, अन्यथा "वह सामग्री जो प्रकाश में आनी चाहिये, कुछ समय पश्चात् काल के महागर्त में विलीन हो जायेगी"।

—युधिष्ठिर मीमांसक

द्रष्टव्य:—

१. ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन (द्वितीय भाग)—पृ० १३-१८
२. दयानन्दीय लघु संग्रह पृ० ३-९०
३. इन्द्र विद्यावाचस्पति: आर्यसमाज का इतिहास (प्रथम भाग)—पृ० ३३३

टि० सं०	पृष्ठ	पं०	
५१	५९	२३	[नियतकालिक] पत्र।

क:—आर्य (अंग्रेजी)—द आर्य मेगजीन [The Arya Magazine] इस पत्र के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए टिप्पणी संख्या २२ देखें।

ख:—भारत सुदशा प्रवर्त्तक— यह आर्यसमाज फर्रुखाबाद का मुखपत्र था। आर्यसमाज फर्रुखाबाद की स्थापना २२ जुलाई १८७९ को हो चुकी थी। पत्र का प्रकाशन भी जुलाई १८७९ में ही आरम्भ हुआ। पहले इस पत्र का नाम 'भारत दुदशा प्रमर्दक' था स्वामी दयानन्द जी ने इस नाम को बदलकर 'भारत सुदशा प्रवर्त्तक' रखा'। "स्वामी जी महाराज ने कहा कि आरम्भ में जो पत्र का नाम 'भारत दुर्दशा प्रमर्दक' रखा है। उसमें यह दोष है कि यदि कोई आधा नाम ले तो 'भारत दुर्दशा' इतना कथन कटूक्त होगा, इस कारण 'भारत सुदशा प्रवर्त्तक', कहना चाहिये।" पत्र के प्रारम्भिक दस अंकों का संपादन, महाराष्ट्रीय विद्वान् पं० गोपाल हरि प्रणतांकर ने किया था। बाद में पं० गणेश प्रसाद शर्मा संपादक बन गये,...पत्र का आकार १०×१६ था...वार्षिक मूल्य २ रु० रक्खा गया।...जुलाई १८८१ के अंक में मैनपुरी, एटा, दातागंज, पेशावर और अजमेर में आर्यसमाजों के स्थापित होने की सूचना है,...दिसंबर १८८१ के अंक में स्वामी दयानन्द के अजमेर आगमन और उनकी इस यात्रा में एक व्यक्ति द्वारा असफल बाधक बनने का रोचक वृत्तांत भी छपा है।...स्वामी दयानन्द जी के जयपुर प्रवास का विवरण जून तथा उदयपुर प्रवास का

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विवरण दिसंबर १८८२ के अंक में दिया है··· जुलाई ८३ के अंक में स्वामी दयानंद का संपादक के नाम वह पत्र छपा है जिसमें श्री ए० ओ० ह्यूम के वेदविषयक विचारों की आलोचना की गई है। ह्यूम ने एक स्थान पर लिखा था कि यदि स्वामीजी अपने वेदभाष्य को ईश्वर प्रेषित घोषित कर दे तो उनके वेद व्याख्यान को निर्भ्रान्त माना जा सकता है। इसके उत्तर में स्वामी दयानंदजी ने लिखा —मैं ईश्वर नहीं किन्तु ईश्वर का उपासक हूँ। वेद मनुष्यों के हितार्थ परमात्मा ने प्रकाशित किये हैं, इसलिये यावत् मेरी बुद्धि और विद्या है तावत् निष्पक्षपात होकर वेदों का अर्थ प्रकाशित करता हूं।" अक्टूबर १८८३ के अंक में स्वामी जी की रुग्णावस्था तथा अंततः उनके निधन का समाचार प्रकाशित हुआ है। सुदशा प्रवर्तक के अंकों में साहित्य समालोचना का स्तंभ भी रहता था। इसके अंतर्गत भारतेन्दु हरिश्चंद्र,···सुधारवादी उदार विचारधारा के अनुयायी राधाकृष्ण गोस्वामी की पुस्तकों की समालोचनायें प्रकाशित हुई हैं। इसी प्रकार 'साहित्य समीक्षा' के अंतर्गत पं० लेखराम द्वारा संपादित 'धर्मोपदेश', राधाचरण गोस्वामी द्वारा संपादित 'भारतेंदु', बद्रीनारायण चौधरी प्रेमधन द्वारा संपादित 'आनंद कादंबिनी' तथा प्रतापनारायण मिश्र द्वारा संपादित ब्राह्मण-पत्र का परिचय दिया गया है। ···भारतसुदशा प्रवर्त्तक की फाइलें आर्यसमाज के इतिहास की जानकारी की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। अप्रैल १९१५ के बाद यह गौरवशाली पत्र बंद हो गया। ···३६ वर्ष तक निरंतर प्रकाशित होने के बाद भारत सुदशा प्रवर्त्तक का तिरोधान हुआ'।

अजमेर हितैषी (देश हितैषी)—'स्वामी दयानंद जी के जीवनकाल में ही आर्यसमाज अजमेर से एक मासिक पत्र-'देश हितैषी' निकलने लगा था। पत्र का प्रथम अंक १८८२ में प्रकाशित हुआ। इसके मुखपत्र पर लिखा होता था—'देश हितैषी=अर्थात् एक मासिक जो प्रति मास की पहली तारीख को बाबू मुन्नालाल के प्रबंध से आर्यसमाज की आज्ञानुसार प्रकाशित होता है जिसमें वेदादि सत्य शास्त्रानुकूल सनातन धर्मोपदेश, देशोन्नतिकारक व्याख्यान, और विविध समाचार तथा प्रेरित पत्रादि निष्पक्षतायुक्त सरल भाषा में मुद्रित होते हैं"। यह धर्म संबंधी पत्र लीथो पर छपता था। वार्षिक मूल्य २ रु० था। आकार रायल अष्ट-पत्री २२ पृष्ठ था"। पहले····"इस पत्र का नाम 'शुभ-चिंतक' रखने का विचार था परंतु कतिपय हितैषी मित्रों के सुझाव के अनुसार पत्र का नाम देश हितैषी रख गया"। लोकहितवादी जी ने देशहितैषी पत्र को अजमेर हितैषी के नाम से संबोधित किया है। अजमेर से प्रकाशित होने के कारण···अजमेर, और पत्र नामों को आगे अधूरे ढंग से संबोधित करने के कारण देश हितैषी का हितैषी शेष रह गया है व इस प्रकार अजमेर व हितैषी मिलकर [देश हितैषी के स्थान पर] अजमेर हितैषी हो गया है। ···'देशहितैषी के प्रथमांक में आर्यसमाज बंबई के उत्सव का समाचार प्रकाशित हुआ था। यह उत्सव २० मार्च ८८२ को संपन्न हुआ था तथा स्वयं स्वामीजी इसमें उपस्थित थे। १५ जनवरी १८८२ को मथुरा नगर में आर्यसमाज की स्थापना का समाचार भी छपा है। ···ज्येष्ठ १९३९ के अंक में मसूदा (राजस्थान) में स्वामी दयानन्द के निवास तथा यहां जैन सिद्धकरण से हुये उनके शास्त्रार्थ का विवरण विस्तारपूर्वक प्रकाशित किया गया है स्वामी जी के शिष्य स्वामी आत्मानंद जी सरस्वती के उद्योग से ११ मार्च १८८२ को बिलासपुर (मध्यप्रदेश) में आर्यसमाज के स्थापित होने का समाचार भी महत्त्वपूर्ण है। ···तत्कालीन

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वायसराय को प्रेस एक्ट वापस लेने पर धन्यवाद अर्पित करते हुये 'लार्डरिपन की जय' शीर्षक लेख में यह प्रार्थना की गई है कि गोवध बंद किया जाये। ···लाहौर से प्रकाशित 'मित्रविलास' आर्यसमाज तथा स्वामी दयानंद का विरोधी था"। देशहितैषी ने मित्रविलास में छपे एकांगी समाचारों की समीक्षा 'एक स्वतंत्र जीव' के नाम से छापी है। ···तथा मित्र विलास को कृकल (गिरगिट) नीति त्यागने का उपदेश दिया है। भाद्रपद १९३९ के अंक में भारतेंदु हरिश्चंद्र के मित्र व समकालीन, हिंदी के प्रसिद्ध लेखक पं० राधाचरण गोस्वामी का 'स्वामी दयानंद और आर्यसमाज' शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ है।·····देशहितैषी में स्वदेशी और विदेशी समाचारों का संग्रह भी रहता था। आश्विन १९३९ के अंक में जापान में बाल विवाह पर प्रतिबंध तथा इटली के सिद्ध देशभक्त गैरी बाल्डी के मृत शरीर का दाह संस्कार करने पर हर्ष व्यक्त किया गया है। ···पं० प्रतापनारायण मिश्र की 'देशदशा' शीर्षक कविता का दूसरा भाग इस अंक में छपा है कसौली, शिमला, और जयपुर आदि स्थानों में आर्यसमाज स्थापना का उल्लेख समाचारों के अंतर्गत हुआ है। समालोचना स्तंभ के अंतर्गत लाहौर आर्यसमाज के सभासद् लाला साईंदास की 'एक आर्य' पुस्तक की चर्चा है। इसमें कलकत्ता के विश्वविद्यालय के सिनेट हाल में स्वामी दयानंद के विरोध में आयोजित पौराणिक पंडितों की 'आर्य सन्मार्गदर्शिनी सभा' की कार्यवाही की आलोचना की गई है। यह पुस्तक ऐतिहासिक महत्त्व की है। ···पौष १९३९ के अंक में स्वामी दयानंद के शिष्य स्वामी आत्मानंद जी की प्रचार-यात्राओं का विवरण छपा है"। [देशहितैषी (मासिक पत्र खंड-१ अंक १० माघ संवत् १९४० वि०) में परोपकारिणी सभा की कायवाही भी छपी है जिसमें श्रीयुत राव बहादुर गोपालराव हरि देशमुख जी ने समुपस्थित आर्यों को स्वामी दयानंद जी के सिद्धांत सुनाये हैं व तदनुसार आचरण करने की अपील है। (द्रष्टव्य-दयानंदीय लघुग्रंथ संग्रह–संपादक युधिष्ठिर मीमांसक-पृ० ८४-८५] "देशहितैषी को राजस्थान से प्रकाशित होनेवाले आर्यसमाज के प्रथम-पत्र होने का गौरव प्राप्त है"।

[स्वामी दयानंद के समकालीन अन्य नियत कालिक आर्य पत्र निम्न प्रकार हैं:—**'आर्यदर्पण'** शाहजहाँपुर (सन् १८७८-१९०६), **आर्य-समाचार**-मेरठ (१८७८ ई०), **धर्मोपदेशक**-पेशावर (१८८०-१८८३), **रीजेनेरेटर आंफ आर्यावर्त्त**-लाहौर (१८८२), **आर्यभूषण**-शाहजहाँपुर (१८७६), अजाब [अनजान] (१८७७) आदि।

—द्रष्टव्यः डा० भवानीलाल भारतीय-आर्यसमाज के पत्र और पत्रकारी(परोपकार विशेषांक) पृ० १९-३७, १२४, १३१-१३५।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

...नलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित और प्रसारित ग्रन्थ

संशोधित सूची-पत्र (१ जनवरी १९८२ से)

१. यजुर्वेदभाष्य-विवरण (प्रथम भाग) अप्राप्य-
यजुर्वेदभाष्य-विवरण (द्वितीयभाग)—२५-००
२. ऋग्वेदभाष्य—भाग—१ ३५-००
भाग २—३०-०० भाग ३— ३५-००
३. ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका पर किए गए आक्षेपों के उत्तर २-५०
४. अथर्ववेदभाष्य—पं० विश्वनाथ वेदोपाध्याय
काण्ड १४-१७ २४-००
काण्ड १८,१९—२०-००; काण्ड २०—२०-००
५. माध्यन्दिनपदपाठः—(यजुर्वेद पदपाठ) २५-००
६. गोपथ ब्राह्मण (मूल) ४०-००
७. ऋग्वेदानुक्रमणी वेङ्कटमाधव कृत—व्याख्याकार पं० विजयपाल जी। २०-००, राजसं० ३०-००
८. दर्शपौर्णमास-पद्धति—पं० भीमसेन। २५-००, विना जिल्द २०-००।
९. वैदिक-सिद्धान्त-मीमांसा - यु० मी० ३०-००
१०. ऋग्वेद की ऋक्संख्या— ,, २-००
११. वेद-संज्ञा-मीमांसा— ,, १-००
१२. वैदिक-छन्दोमीमांसा— ,, १५-००
१३. वेदों का महत्त्व, वेदार्थ-मीमांसा—,, ५-००
१४. देवापि और शन्तनु के वैदिक आख्यान का स्वरूप - श्री पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु १-००
१५. निरुक्तकार और वेद में इतिहास—,, १-००
१६. त्वाष्ट्री-सरण्यू आख्यान का वास्तविक स्वरूप—पं० धर्मदेव निरुक्ताचार्य १-००
१७. वेद में आर्य-दास युद्ध सम्बन्धी पाश्चात्य मत का खण्डन—श्री वैद्य रामगोपाल शास्त्री १-००
१८. यजुर्वेद का स्वाध्याय तथा पशुयज्ञ समीक्षा—
सजिल्द १६-००, बढ़िया जिल्द २०-००
१९. वैदिक-पीयूष-धारा—श्री देवेन्द्रकुमार कपूर।
सजिल्द १०-००, बढ़िया जिल्द १५-००
२०. शिवशंकरीय लघुग्रन्थ पञ्चक—वसिष्ठ-नन्दिनी, चतुर्दश भुवन आदि ५-००
२१. संस्कार-विधि—५-२५, बढ़िया सजिल्द ७-५०
आर्य-समाज-शताब्दी संस्करण-विविध सूचियों सहित सजिल्द १२-००, राज-संस्करण १५-००
२२. वैदिक-नित्यकर्म-विधि— (व्याख्या सहित) युधिष्ठिर मीमांसक ३-००, सजिल्द ४-००
२३. वैदिक-नित्यकर्म-विधि—मूलमात्र ०-६०
२४. पञ्चमहायज्ञप्रदीप—मदनमोहन विद्या० ३-००
२५. हवनमन्त्र—(मूलमात्र) ०-३५
२६. सन्ध्योपासनविधि -(अर्थसहित) ०-३५
२७. सन्ध्योपासनविधि—अर्थ और दैनिक हवन-मन्त्र सहित— ०-५०
२८. वर्णोच्चारणशिक्षा—ऋषि दयानन्द ०-५०
२९. शिक्षासूत्राणि—आपिशल-पाणिनीय-चान्द्र २-५०
३०. शिक्षा-शास्त्रम्—जगदीशाचार्य ५-००
३१. अरबी शिक्षा-शास्त्रम्— ,, ५-००
३२. अष्टाध्यायीसूत्रपाठः—शुद्ध पाठ ३-००
३३. अष्टाध्यायी परिशिष्ट— ५-००
३४. धातुपाठ—धातु सूची सहित ३-००
३५. अष्टाध्यायी-भाष्य—प्रथम भाग— २४-००
द्वितीय भाग - २०-००, तृतीय भाग २०-००
३६. महाभाष्य—यु०मी० कृत हिन्दीव्याख्या सहित।
प्रथम भाग ५०-००, द्वितीय भाग २५-००
तृतीय भाग २५-००
३७. संस्कृत पठनपाठन की अनुभूत सरलतम विधि
प्रथम भाग ८-००, द्वितीय भाग १०-००
३८. उणादिकोष—ऋषि दयानन्द कृत व्याख्या सहित। शतशः टिप्पणियों और विविध परिशिष्टों सहित अजिल्द ८-००, सजिल्द १२-००
३९. संस्कृत-धातु-कोष १०-००
४०. दैवम्-पुरुषकारवार्तिकोपेतम्— १०-००

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

४१. काशकृत्स्न-व्याकरणम्— ६-००
४२. काशकृत्स्न-धातु-व्याख्यानम्— १५-००
४३. वामनीय लिङ्गानुशासन—नया संस्करण ८-००
४४ लिट् और लुङ् लकार की रूप-बोधक सरलविधि— ३ ००
४५. शब्दरूपावली—(विना रटे स्मरण योग्य) २-००
४६ भागवृत्तिसंकलनम्—अष्टाध्यायी-वृत्ति ६-००
४७. ईशोपनिषद् व्याख्या—(हिन्दी अंग्रेजी) पं० रामगोपाल वैद्य १-५०
४८. केनोपनिषद् व्याख्या—(हिन्दी अंग्रेजी) पं० रामगोपाल वैद्य १-५०
४९. कठोपनिषद् व्याख्या—(हिन्दी अंग्रेजी) पं० रामगोपाल वैद्य ३-२५
५०. ध्यानयोगप्रकाश—स्वामी लक्ष्मणानन्द १०-००
५१ अनासक्ति-योग—मोक्ष की पगदण्डी—१५-००
५२. आर्याभिविनय—ऋ० द० सजिल्द ४-००
५३. Aryabhivinaya English Translation and notes स्वामी भूमानन्द सजिल्द ६-००
५४. विष्णुसहस्रनाम-स्तोत्रम् (सत्यभाष्य-सहितम्) ४ भाग। प्रति भाग १२-५०, सैट ५०-००
५५. वैदिक-ईश्वरोपासना—ऋ० द० १-००
५६. श्रीमद्भगवद्-गीता-भाष्यम्—श्री पं० तुलसी राम स्वामी कृत। चिरकाल से अप्राप्य। गीता की सरल सुबोध व्याख्या। ६-००
५७. अगम्य पन्थ के यात्री को आत्मदर्शन- ३-००
५८. मानवता की ओर—श्री शान्तिस्वरूप कपूर ४-००
५९ वाल्मीकि-रामायण (हिन्दी अनुवाद सहित)—युद्ध काण्ड मात्र १०-५०
६०. सत्याग्रहनीतिकाव्य—भाषानुवादसहित ५-००
६१. संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास - नया संस्करण तीन भाग। पूरा सैट ७५-००
६२. संस्कृत व्याकरण में गणपाठ की परम्परा और आचार्य पाणिनि— ८-००
६३. विरजानन्द-चरित्र—भीमसेन शास्त्री। नया परिवर्धित परि संस्करण ३-००
६४. ऋषि दयानन्द सरस्वती का स्वलिखित और स्वकथित आत्म-चरित— १-००
६५. ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज की संस्कृत साहित्य को देन— सजिल्द १२-००
६६. मीमांसा-शाबरभाष्य व्याख्या—युधिष्ठिर मीमांसक कृत। प्रथम भाग ४०-००, द्वितीय भाग ३०-००, राज सं० ४०-०० तृतीय भाग ५०-००। चौथा भाग यन्त्रस्थ।
६७. परमाणुदर्शनम्— ५-००, सजिल्द ६-००
६८ षट्कर्मशास्त्रम्— ८-००, सजिल्द ९-००
६९. नाड़ी-तत्त्व-दर्शनम्—(हिन्दी सहित) २०-००
७०. सत्यार्थप्रकाश—आर्यसमाज-शताब्दी संस्क०—बड़ा २४-०० (राज-संस्करण) ३०-००
७१. व्यवहारभानु—ऋषि दयानन्द १-००
७२. आर्योद्देश्यरत्नमाला—,, ,, ०-५०
७३. दयानन्दीय लघुग्रन्थ संग्रह—१४ग्रन्थ २५-००
७४. ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन—नया परिवर्धित सं०। प्रथम भाग ३५-००, द्वितीय भाग ३०-००; तीसरा भाग छप रहा है।
७५. ऋषि दयानन्द और आर्य समाज से संबद्ध महत्त्वपूर्ण अभिलेख— ८-००
७६. अष्टोत्तरशतनामावलिका—व्याख्यासहित ६-००
७७. प्यारा ऋषि—श्री आनन्द स्वामी १-००
७८. आर्य-मन्तव्य-प्रकाश—श्री पं० आर्यमुनि जी प्रथम भाग ५-००, द्वितीय भाग ५-००
७९. Vegetarianism Vs : Meat-Eating ०-५०
८०. अमीरसुधा—भक्त अमीचन्द १-००

पुस्तक-प्राप्तिस्थान—१. रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, जिला—सोनीपत (हरयाणा)

२. रामलाल कपूर एण्ड संस पेपर मर्चेन्ट्स—

[illegible] बाजार, अमृतसर ✤ ५१ सुतारचाल, बम्बई ✤ नई सड़क, देहली ✤ बिरहाना रोड़, कानपुर

३. रामलाल कपूर एण्ड कम्पनी, बारी मार्केट, सदर बाजार, देहली।

४. डा० शंकरसिंह आर्य, वैदिक साहित्य भण्डार, द्वारका पुरी चाल में, इन्दौर।

५. श्री हरिकिशन मलिक जज, सी ४, सी० सी० कालोनी, दिल्ली।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पाप के मैल को धो डालो

द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नात्वा मलादिव।
पूतं पवित्रेणेवाज्यं विश्वे शुम्भन्तु मैनसः॥ अथर्व० ६।११५।३॥

पदार्थः—(मुमुचानः) खड़ाऊं को छोड़ देने वाला मनुष्य (इव) जैसे (द्रुपदात्) खड़ाऊं से अलग हो जाता है, (स्विन्नः) पसीने से भीगा हुआ मनुष्य (स्नात्वा) स्नान करके (इव) जैसे (मलात्) मैल से रहित हो जाता है, (पवित्रेण) शुद्ध वस्त्र की छननी से (इव) जैसे (आज्यम्) घी (पूतम्) छन कर शुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार (विश्वे) सब दिव्यशक्तियों से युक्त विद्वान् (मा) मुझ को (एनसः) पाप से (शुम्भन्तु) पृथक् करके पवित्र कर दें।

हे मानव, पाप सदा तुझ से दूर रहे, तेरा मन कभी दुर्गुणों, दुर्व्यसनों से अभिभूत न हो। इस के लिये तुझे सदा प्रयत्नशील रहना चाहिये। देख, तपस्वी जन अपनी इच्छा से आवश्यकताओं को कम करते-करते इस स्थिति तक पहुंच जाते हैं कि उन्हें खड़ाऊं की भी आवश्यकता अनुभव नहीं हो, उन से मुक्ति पा कर के वे सुख का अनुभव करते हैं, पसीने से निकले हुए मल को स्नान द्वारा साफ कर के लोग स्वस्थ हो जाते हैं। वस्त्र से छान देने पर घी कैसा निर्मल हो जाता है? इन लौकिक व्यवहारों को प्रतिदिन देख कर भी क्या तेरे मन में अपने दुर्गुणों को छोड़ कर पवित्र हो जाने की इच्छा जागरित नहीं होती? होती है, तो क्यों नहीं तपस्वी विद्वानों के पास जाता है? ढूंढ ऐसे दिव्य शक्तियों से दीप्तिमान् सज्जनों को, जो तेरे मन पर पड़ी हुई मल-विक्षेपों की धूल को अपने पवित्र ज्ञान जल से धो कर साफ कर सकें। जिन महात्माओं ने अपनी साधना के द्वारा अपने मन को निर्मल कर के परम प्रकाश के दर्शन किये हैं, उन की सङ्गति में बैठने से, उन को बताये हुए मार्ग का अनुसरण करने से तेरे सब पाप (कुसंस्कार) धुल जायेंगे। उस प्रकार तू न केवल अपना, अपितु अपने सम्पर्क में आने वाले अन्य मर्त्यों का उद्धार करेगा, जीवन सफल करेगा।

रबड़ रिक्लेम कम्पनी प्रा० लिमिटेड

जी० टी० रोड, बहालगढ़ (सोनीपत) हरयाणा

की ओर से

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रातरत्नं प्रातरित्वा दधाति तं चिकित्वान् प्रतिगृह्या नि धत्ते ।
तेन प्रजां वर्धयमान आयू रायस्पोषेण सचते सुवीरः ॥

ऋ० १।१२५।१॥

प्रातः की अमृत वेला में,
उठ नवरत्नों को प्राप्त करो ।
हो प्रभु भक्ति में ध्यानलीन,
तन मन का सब सन्ताप हरो ॥

वह अमित ज्ञान आनन्द स्रोत,
नित भरो अमित आनन्द ज्ञान ।
अनुपम रत्नों को लो बटोर,
निज जीवन को कर लो महान् ।

सन्तान तुम्हारी सुखी रहे,
धन और पुष्टि से सदा पूर्ण ।
घर में मङ्गल का राज्य रहे,
सब रहें सदा अवसाद शून्य ॥

"वैदिक पीयूष धारा" से उद्धृत

Awake in the early hours of dawn,
To achieve precious jewels sublime !
Sleep after sunrise, strongly scorn,
To get pure air, wisdom divine !!

In tranquil atmosphere, when no bird flutters,
Go deep in trance, where no tension matters !
Get Godly Bliss and distribute free,
His divine knowledge and Blissful spree !!

With the knowledge and power attained,
And the riches, copious obtained !
Nourishing his children, begetting long life,
The hero of morn, tastes joys of life !!

Quoted from the New fascinating Book of
"Success Motivating"

VEDIC LORES

by Shri Devendra Kapoor

Available from :-

1. **Ram Lal Kapoor Trust**
   G. T. Road, Bahalgarh
2. **123-Nibbana Pali Hill**
   Bandra, BOMBAY-50

With best compliments from ;

ISHA STEEL TREATMENT
Vikloli, BOMBAY-83

Tele: 584029, 582038

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शुनं नो अस्तु प्रपणो विक्रयश्च प्रतिपणः फलिनं मा कृणोतु ।
इदं हव्यं संविदानौ जुषेथां शुनं नो अस्तु चरितमुत्थितं च ॥ अथर्व ३।१५।४॥

भाषार्थ—हमारे अपने पदार्थ का मोल भाव व दर, विक्रय, और दूसरे के माल का भाव वा दर नियत करना, ये सब व्यवहार हमारे लिये शुभ होवें, मुझे सफल लाभ प्राप्त करने में समर्थ करें। हम ग्राहक और विक्रेता दोनों इस लेन-देन को भली भांति सोच-समझ कर प्राप्त करें। जिससे हमारा चलान किया गया माल, और, उठाया गया माल शीघ्र मिलने वाला होवे ॥

Tele No. 43548

LUBRICHEM

413, Ashoka Estate, 24, Bara Khamba Road,

New Delhi-110001

Manufacturers of :

INDUSTRIAL CHEMICALS

AND

PREVENTIVE OILS

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उभा हि हस्ता वसुना पृणस्वा प्रयच्छ दक्षिणादोत सव्यात् ॥ यजु० ५।१९॥

अर्थ—हे यज्ञरूप प्रभो ! तू हमारे हाथों को उत्तम द्रव्यों और ऐश्वर्य से लबालब भर दे दक्षिण और वाम पार्श्व से भी सर्वसुखदायक धन हमें प्रदान कर ॥

धान का छिलका उतारने की आधुनिक मशीनों के रबड़ के रोल

तथा

अन्य कई प्रकार की रबड़ का सामान बनानेवाले

आर्गेनो कैमिकल इण्डस्ट्रीज

—एवं—

आर्गेनो रबड्ज प्राइवेट लिमिटेड

इण्डस्ट्रियल एरिया, सोनीपत (हरयाणा)

की ओर से

हार्दिक शुभ कामनायें

RAM LALL KAPOOR & SONS

WHOLE SALE PAPER MERCHANTS

Distributors : TITAGIIUR PAPER MILLS CO. LTD.,
HOOGHLY INK CO. LTD.,

Offices :—

Nai Sarak, DELHI. Phone 265794 266131

Guru Bazar AMRITSAR Phone 42689

Bazar Kharadian, LUDHIANA Phone 20879

Adda Hoshiarpur, JULLUNDUR CITY. Phone 72757

Nicholson Road, AMBALA CANTT, Phone 21025

Sadar Bazar PATIALA Phone 2367

Bay Shop 11, Sector 27-D, CHANDIGARH. Phone 29280 & 25176

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सामूहिक स्तुति करो, पवित्र हो जाओ

सखाय आ नि षीदत सविता स्तोभ्यो नु नः ।
दाता राधांसि शुम्भति ॥ ऋ० १।२२।८॥

(सखायः) मित्रो, (आ नि षीदत) आओ, बैठो (नः) हमें (नु) अवश्य ही (सविता) सब के प्रेरक, उत्पादक प्रभु की (स्तोभ्यः) स्तुति करनी है। (राधांसि) सब प्रकार के साधनों को (दाता) देने वाला वह परमेश्वर (शुम्भति) हमें पवित्र करता है।

सामूहिक उपासना का अपना विशेष प्रभाव होता है। अतः प्रयत्न पूर्वक सब मित्र मिल कर परमेश्वर की स्तुति करें। इस प्रकार स्तुति करने से सब के अन्तःकरण में प्रभु के प्रेम की तरङ्गें उठने लगती हैं, मन शुद्ध, पवित्र हो जाते हैं। आन्तरिक पवित्रता का परिणाम होता है—पवित्र कर्म। प्रभु की कृपा से पवित्र कर्मों के सम्पादन के लिए उत्तम साधनों की उपलब्धि होती है जिस से सारा समाज सुखी रहता है।

CHLORUB PAINTS
THE MOST
LONG LASTING # EASY TO APPLY # ECONOMIC
Corrosion protection
RESISTANT TO WATER-ACIDS-ALKALIES-SALT SOLUTIONS-FLAME-FUNGUS
AVAILABLE FROM ALL LEADING PAINT COMPANIES
FOR FURTHER INFORMATION WRITE TO
RISHIROOP POLYMERS PVT. LTD.
65, ATLANTA, NARIMAN POINT, BOMBAY 400021
Phone ; 240148, Gram : RISHIROOP, Telex : 011 4780

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इन्द्रमहं वाणिजं चोदयामि स न येतु पुरएता नो अस्तु ।
नुदन्नरातिं परिपन्थिनं मृगं स ईशानो धनदा अस्तु मह्यम् ॥ अथर्व ३।१५।१॥

भाषार्थ—मैं 'कृषि-वाणिज्य-गोरक्षा' द्वारा संसार का उपकार चाहनेवाला व्यक्ति, धनी व व्यापार-कुशल पुरुष को प्रेरणा करता हूं कि वह हमारे पास आये, और हमारे सामने मुख्य-पुरुष होकर रहे। वह समय पर माल न देने वाले को व्यापार के मार्ग में व्यवस्था के उल्लंघन करने वाले, लूट व चोरी करने वाले, तथा चंचलवृत्ति, व्यापारी को दण्डित करता हुआ हमें हमारे माल का पैसा दिलाता रहे ॥

Grams : 'Pharmaglass'

Tele. : 44460
661684

M/S. RADHA GLASS WORK

Manufacturers of

NETURAL GLASS AMPOULES,
VIALS, TABLET TUBES
AND
TEST TUBES.

Factory :—

Modern Industrial Estate, BAHADURGARH.
(Distt. Rohtak) Haryana.